

पुरुदेव चम्पू प्रबन्धः

सम्पादन-अनुवाद
पं. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रथम संस्करण

संशोधित मूल्य : Rs. 60/-

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : संस्कृत ग्रन्थांक ४१

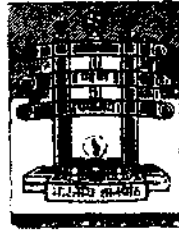
महाकविश्रीमदहर्द्दासविरचितः

पुरुदेवचम्पूप्रबन्धः

['वासन्ती'समाख्यया संस्कृतटीकया हिन्दीटीकया च समन्वितः]

सम्पादन-अनुवाद

पण्डित पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर नि० संवत् २४९८ : विक्रम संवत् २०२९ : सन् १९७२

प्रथम संस्करण : मूल्य इक्कीस रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध भागमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन मण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

●

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ. हीरालाल जैन, एम. ए., डी. लिट्.

डॉ. आ. ने. उपाध्ये, एम. ए., डी. लिट्.

●

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० ● विक्रम सं० २००० ● १८ फरवरी, १९४४
सर्वाधिकार सुरक्षित



भारतीय ज्ञानपीठ

स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

PURUDEVACAMPŪ

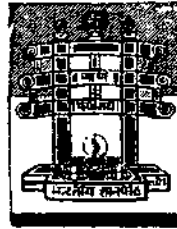
of

MAHĀKAVI ŚRĪMAD ARHADDĀSA

[Edited with a Vāsantī Sanskrit Commentary, Hindī Translation]

by

Pt. Pannalal Jain, Sāhityācārya



BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA PUBLICATION

VĪRA SAMVAT 2498 : V. SAMVAT 2029 : 1972 A. D.

First Edition : Price Rs. 21/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ
JAIN GRANTHAMĀLĀ
FOUNDED BY
SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN
IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER
SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL,
PAURĀṆIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS
AVAILABLE IN PRAKṚTA, SAṂSKṚTA, APABHRAṂSA, HINDI,
KANNADA, TAMIL, ETC., ARE BEING PUBLISHED
IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR
TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES
AND
CATALOGUES OF JAIN BHANDARAS, INSCRIPTIONS,
STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR
JAIN LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.



General Editors

Dr. Hiralal Jain, M. A., D. Litt.
Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.



Published by
Bharatiya Jnanapitha

Head office : 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6
Publication office : Durgakund Road, Varanasi-5.



Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000, 18th Feb., 1944
All Rights Reserved.

प्रधान सम्पादकीय

संस्कृत रचनाओंकी अनेक शैलियाँ और विधाएँ हैं, जैसे काव्य, नाटक, चरित, पुराण, कथा, आख्यायिका, स्तोत्र, गीत तथा मुक्तक आदि। इन सबका तीन वर्गों में विभाजन किया जाता है, गद्य, पद्य और मिश्र। मिश्र रचना-शैली प्राचीनतम ब्राह्मणोंमें पायी जाती है। उदाहरणार्थ, ऐतरेय ब्राह्मणकी शुनःशेष कथा गद्यमें रचित होनेपर भी उसमें एक सौसे अधिक पद्यात्मक गाथाएँ आयी हैं। इस शैलीका प्रयोग पालि भाषाकी जातक कथाओंमें और पश्चात् पंचतन्त्र, हितोपदेश जैसी रचनाओंमें बहुलतासे हुआ। नाटकमें भी गद्य और पद्य दोनोंका प्रयोग हुआ। किन्तु यहाँ गद्य और पद्यका अपना-अपना विशिष्ट स्थान बन गया। यहाँ कथात्मक या वार्तालाप भाग गद्यमें और उसका सार अथवा उपदेशात्मक, भावात्मक या रसात्मक अंश पद्यमें रचे गये जिससे कि वे सरलतापूर्वक स्मरण रखे जा सकें एवं सभा-गोष्ठी आदिमें अपनी बातकी पुष्टिके लिए सुभाषित रूपसे सुनाये जा सकें। इन्हें जो जितना स्मरण रख सके वह उतना ही सभा-चातुर विद्वान् माना जाने लगा।

किन्तु जब पद्य व गद्य रचनाओंमें कलात्मकताकी मात्रा बढ़ी, तब उनके उक्त प्रकार क्षेत्रोंका बँटवारा नियत न रह सका। अश्वघोष और कालिदाससे प्रारम्भ होकर भारवि, माघ और श्रीहर्ष तक महाकाव्य शैलीने अर्थ-गाम्भीर्यके साथ छन्द, रस, भाव, अलंकार आदिमें अति कृत्रिम रूपसे विकास किया। गद्य रचना भी पीछे न रही और सुबन्धु तथा बाणने उसे भी इतना पुष्ट और कलात्मक बना दिया कि उसे भी महाकाव्यके समकक्ष स्थान प्राप्त हो गया। उक्त प्रसिद्ध कृतियोंके रचयिताओंका कौशल दोमें-से किसी एक ही क्षेत्रमें पाया जाता है, पद्य या गद्य।

स्वाभाविक था ऐसी प्रतिभाओंका भी उदित होना जो एक ही कृतिमें अपने गद्य और पद्य दोनों प्रकारके रचना-कौशलकी अभिव्यक्ति करना चाहें। ऐसी रचनाएँ चम्पूके रूपमें सम्मुख आयीं। इनका नाम चम्पू क्यों पड़ा यह अभी तक एक रहस्य ही है। संस्कृत धातुओं और व्याकरणसे इस नामकी कोई व्युत्पत्ति समझमें नहीं आती। चम्पूकाव्य-कर्ताओंने भी उसे नहीं समझाया। बहुत सम्भव है यह आर्यभाषाका शब्द न होकर द्राविड़ भाषा का हो ?

सबसे प्रथम दण्डीने अपने काव्यादर्शमें चम्पूकी परिभाषा की “गद्य-पद्यमयी काचित् चम्पूरित्यभिधीयते” अर्थात् “ऐसी कोई विशेष रचना जो गद्य और पद्यमय हो चम्पू कहलाती है”। यह सातवीं शतीके लगभगकी परिभाषा है। किन्तु जो चम्पू रचनाएँ उपलब्ध हैं वे दशवीं शतीसे पूर्वकी कोई नहीं हैं। सर्व-प्रथम रचना त्रिविक्रम भट्टकी नलचम्पू और दूसरी सोमदेवसूरिकी यशस्तिलकचम्पू हैं। वे दोनों ही कवि दशवीं शतीके पूर्वार्धमें हुए। प्रथम कृतिके विषयमें डॉ. कीथका मत है कि उसका पद्य साधारण कोटि का है (His verses are no more than mediocre) किन्तु उनके मतानुसार द्वितीय कृति मुरुचि और सद्बुद्धिपूर्ण है (He is a poet of taste and good sense)। अन्य क्षेत्रोंके अनुसार इस साहित्यिक शाखाका भी जैन कवियोंने अच्छा विकास किया जिसका कुछ विवरण इस ग्रन्थकी प्रस्तावनामें किया गया है। इस शृंखलामें अन्तिम रचना है अर्हदास कृत प्रस्तुत पुरुदेवचम्पू।

दशवीं शतीकी उक्त दो रचनाओंसे प्रारम्भ होकर चम्पूकाव्योंकी बड़ी बाढ़ आयी और आगामी सात-आठ शतियोंमें दो सौसे भी अधिक चम्पू रचे गये। (डॉ. छविनाथ त्रिपाठीने अपनी ‘चम्पूकाव्यका आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन’ नामक कृतिमें २४५ चम्पूकाव्योंकी सूची दी है)। अति आधुनिक चम्पुओंमें उल्लेखनीय है शंकर-चेतो-विलासचम्पू जिसमें शंकर नामक कविने उन महाराज चेतसिहूको अपना नायक बनाया है जो लार्ड वारन हेस्टिंग्स सम्बन्धी इतिहासमें प्रसिद्ध हुए।

चम्पूकाव्यके इस आठ सौ वर्षके इतिहासमें प्रस्तुत रचना पुरुदेवचम्पूका स्थान मध्यमें अर्थात् १३-१४वीं शतीके लगभग आता है। यहाँ तथा अपनी अन्य दो रचनाओं ‘मुनिसुव्रत काव्य’ तथा ‘भव्य-कण्ठाभरण’में कर्ता अर्हदासने अपने विषयमें इतना ही कहा है कि वे आशाधरसूरिकी रचनाओंसे बहुत

लाभान्वित हुए थे। ये आशाधर निस्सन्देह वे ही सागार व अनगर धर्माभूत आदि अनेक ग्रन्थोंके रचयिता हैं जो शहाबुद्दीन बादशाहके अत्याचारोंसे श्रुत हो अपनी जन्मभूमि मांडलगढ़ (सपादलक्ष, राजस्थान) को छोड़ मालवाकी धारा नगरी और अन्ततः नलकच्छ नामक ग्राममें वि. सं. १२५० के लगभग जा बसे थे। उनके उल्लेखसे प्रस्तुत ग्रन्थकर्ताकी यहाँ पूर्व कालावधि तो सिद्ध हो जाती है, किन्तु इससे कितने काल पश्चात् वे हुए इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि उन्होंने यह कहीं नहीं कहा कि वे आशाधरके साक्षात् शिष्य थे। अर्हदासकी रचनामें हमें चम्पूकाव्यके उच्चतम विकासका स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। कविने स्वयं अपनी रचनाको “चञ्चत्कीमल-चाह-शब्द-निचयैः पत्रैः प्रकामोज्ज्वला” अर्थात् ‘लहराते हुए कोमल और सुन्दर शब्दावलिरूपी पत्रोंसे नितान्त उज्ज्वल’ कहा है जो उसके अवलोकनसे यथार्थ प्रतीत होता है।

पुरुदेवचम्पूका मूलपाठ आजसे लगभग पचास वर्षों पूर्व माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला (क्र. २७) में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थमालाके संस्थापक सम्पादक स्वर्गीय पं. नाथूराम प्रेमीने अपना यह ध्येय बनाया था कि अप्रकाशित, अन्धकारमें पड़े हुए संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थोंको कमसे कम मूलरूपमें अवश्य प्रकाशित करा दिया जाये। और इस प्रकार उन्होंने सैकड़ों अज्ञात छोटी-बड़ी रचनाओंकी प्रकाशमें लानेका असाधारण श्रेय प्राप्त किया। प्रस्तुत रचनाका सम्पादन उसी प्रकाशनके आधारसे हुआ है। एक अन्य हस्तलिखित प्रतिसे भी पाठान्तर लिये गये हैं।

इस काव्यका विषय प्रथम जैन तीर्थंकर वृषभनाथ, आदिनाथ या पुरुदेवका चरित्र है। इसकी विशेषता यह है कि जैन साहित्यके अतिरिक्त वैदिक साहित्यमें भी इसका कुछ विवरण मिलता है। वेदोंमें ऋषियोंसे भिन्न ऐसे मुनियोंके व उनकी साधनाओंके उल्लेख मिलते हैं जो नग्न रहते थे, अतः जिन्हें ‘वातरशन’ कहा गया है। महापुराणानुसार वातरशन दिगम्बरका पर्यायवाची है। यही नहीं अनेक वैदिक पुराणोंमें तो वृषभका चरित्र भी वर्णित पाया जाता है। और वह मुख्य बातोंमें जैन मान्यतासे मेल भी खाता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वेदोंमें जहाँ भी वृषभ अथवा अन्य कोई समान शब्द आवे उसे जैन तीर्थंकरका नामवाची ही मान लिया जाये। वृषभका अर्थ बैल भी होता है और विशेषणरूपसे श्रेष्ठके अर्थमें उसका प्रयोग प्राचीनतम वेद रचनाओंसे लेकर आज तक पाया जाता है। अतः प्रसंगपर भलीभाँति विचार कर जब तक अपने अभीष्ट अर्थकी अच्छी तरह पुष्टि न हो जाये तब तक उसे वैसा माननेकी शीघ्रता नहीं करना चाहिए। अपुष्ट कल्पनासे न केवल उस स्थलके वास्तविक ज्ञानका अभाव तथा लेखकका पूर्वाग्रह सिद्ध होता है, किन्तु जहाँ उसकी सार्थकता है उसके विषयमें भी विद्वानोंकी उपेक्षा-दृष्टि बन जाती है।

पुरुदेवचम्पू एक उत्कृष्ट संस्कृत काव्य है। चरित्र-नायक आदिनाथका जीवन भी बड़ा ही रोचक और उपदेशप्रद है। अपनी पद्य रचनामें यह ग्रन्थ भारवि और माघ, तथा गद्यमें सुबन्धु और बाणकी कृतियोंसे तुलनीय और प्रभावित है। समासोंकी प्रचुरता व श्लेषादि अलंकारोंकी बहुलताके कारण उसके रस और भावका माधुर्य सहज हाथ नहीं लगता। इस कठिनाईको दूर करने हेतु अनुभवी व सिद्धहस्त विद्वान् पं. पन्नालालजी साहित्याचार्यने उसपर सुबोध संस्कृत टीका भी लिखी और हिन्दी अनुवाद भी किया। इसके लिए वे हमारे तथा समस्त संस्कृत-प्रेमियोंके धन्यवादके पात्र हैं। बड़ा कठिन होता ऐसी रचनाओंको उक्त सामग्री सहित प्रकाशमें लाना, यदि ज्ञानपीठके संस्थापक व संचालक इस कार्यमें विशेष उदार दृष्टि न रखते तथा धर्मकी गरिमाको अर्थसे अधिक महत्त्वशाली न समझते। इस हेतु हम श्री शान्तिप्रसादजी, उनकी पत्नी रमाजी तथा ज्ञानपीठके मन्त्री लक्ष्मीचन्द्रजीका बड़ा आभार मानते हैं।

ही. ला. जैन
आ. ने. उपाध्ये

प्रस्तावना

चम्पूकाव्य का विस्तार

‘गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते’ इस लक्षणके अनुसार गद्यपद्यमिश्रित रचनासे युक्त काव्यको चम्पूकाव्य कहा है। लोगोंकी अभिरुचि विभिन्न प्रकारकी होती है, कुछ लोग तो गद्य-काव्यको अधिक पसन्द करते हैं और कुछ लोग पद्य-काव्यको अच्छा मानते हैं, पर चम्पूकाव्यमें दोनोंकी रुचिका ध्यान रखा जाता है इसलिए वह सबको अपनी ओर आकृष्ट करता है। महाकवि हरिचन्द्रने जीवन्धरचम्पूके प्रारम्भमें ही कहा है—

गद्यावलीः पद्यपरम्परा च प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदम् ।

हर्षप्रकर्षं तनुते मिलित्वा द्वाग्बाल्यतारुण्यवतीव कान्ता ॥

—गद्यावली और पद्यावली—दोनों ही पृथक्-पृथक् प्रमोद उत्पन्न करती हैं फिर यतश्च हमारी यह रचना तो दोनोंसे युक्त है अतः बात्य और तारुण्य अवस्थासे युक्त कान्ताके समान अत्याह्लाद उत्पन्न करेगी इसमें संशय नहीं है।

चम्पूसाहित्यकी ओर जब दृष्टि डालते हैं तब सर्वप्रथम त्रिविक्रम भट्टकी ‘नलचम्पू’ पर दृष्टि जा सकती है। इसमें नल-दमयन्तीकी मनोहारिणी कथा गुम्फित की गयी है। श्लेष परिसंख्या आदि अलंकार पद-पदपर इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। पदविन्यास इतना सरस और सुकुमार है कि कविकी कलाके प्रति मस्तक श्रद्धावान्त हो जाता है। इसी कविकी दूसरी रचना ‘मदालसाचम्पू’ भी है। यह कवि ९१५ ई० में हुआ है। इसके बाद ई० ९५९ में आचार्य सोमदेवके ‘यज्ञस्तिलकचम्पू’ की रचना हुई है। इस चम्पूमें आचार्यने कथाभागकी रक्षा करते हुए कितना प्रमेय भर दिया है? यह देखते ही बनता है। इसके गद्य कादम्बरीसे भी चार हाथ आगे हैं। कल्पनाएँ अद्भुत हैं। कथाका सौन्दर्य ग्रन्थके प्रति आकर्षण उत्पन्न करता है। सोमदेवने प्रारम्भमें ही लिखा है कि जिस प्रकार नीरस तृण खानेवाली गायसे सरस दूधकी धारा प्रवाहित होती है उसी प्रकार जीवनपर्यन्त न्याय जैसे नीरस विषयका अध्ययन करनेवाले मुझसे यह काव्य-सुधाकी धारा बह रही है। इस ग्रन्थरूपी महासागरमें अवगाहन करनेवाले विद्वान् ही समझ सकते हैं कि आचार्य सोमदेवके हृदयमें कितना अगाध वैदुष्य भरा है। उन्होंने एक जगह स्वयं कहा है कि लोकवित्त्व और कवित्वमें समस्त संसार सोमदेवका उच्छिष्टभोजी है अर्थात् उनके द्वारा वर्णित वस्तुका ही सब वर्णन करने वाले हैं। इस महाग्रन्थमें आठ समुच्छ्वास हैं। अन्तके तीन समुच्छ्वासाँमें सम्यग्दर्शन तथा उपासकाध्यय-नांग-श्रावकाचारका कितना विस्तृत और समयानुरूप वर्णन किया है यह देखते ही बनता है। तृतीय उच्छ्वास तो राजनीतिका भाण्डार ही है।

इसके बाद महाकवि हरिचन्द्रके ‘जीवन्धरचम्पू’ काव्यकी रचना हुई है। इसकी कथा वादीभट्टिकी गद्यचिन्तामणि अथवा क्षत्रचूडामणिसे ली गयी है। यद्यपि जीवन्धर स्वामीकी कथाका मूल स्रोत गुणभद्रके उत्तरपुराणमें मिलता है तथापि उसमें और इसमें कितने ही स्थलोंमें नाम तथा कथामें वैचित्र्य पाया जाता है। इसमें प्रत्येक लम्बकी कथावस्तु तथा पात्रोंके नाम आदि गद्यचिन्तामणिके नामोंसे मिलते-जुलते हैं। महाकविने इस काव्यमें भगवान् महावीरस्वामीके समकालीन क्षत्रचूडामणि श्रीजीवन्धरस्वामीकी कथा गुम्फित की है। पूरी कथा अलौकिक घटनाओंसे भरी है। कथाकी रोचकता देखते हुए जब कभी हृदयमें आता है कि यदि इसका चित्रपट बन जाता तो अनायास ही एक आदर्श लोगोंके सामने आ जाता।

इस ग्रन्थकी रचनामें कविने बड़ा कौशल दिखाया है। अलंकारकी पुट और कोमलकान्त पदावली बरवश पाठकके मनको अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। मुझे तो लगता है कि कविको निसर्गसिद्ध प्रतिभा प्राप्त थी इसीलिए प्रकरणानुकूल अर्थ और अर्थानुकूल शब्दोंके अन्वेषणमें उसे जरा भी प्रयत्न नहीं करना पड़ा है। कितने ही गद्य तो इतने कौतुकावह हैं कि उन्हें पढ़कर कविकी प्रतिभाका अलौकिक चमत्कार दृष्टिगत होने लगता है। नगरीवर्णन, राजवर्णन, राजीवर्णन, चन्द्रोदय, सूर्योदय, वनक्रीड़ा, जलक्रीड़ा तथा युद्ध आदि महाकाव्यके समस्त वर्णनीय विषयोंको कविने यथा स्थान इतना सजाकर रखा है कि देखते ही बनता है। इसके बाद जैनचम्पू ग्रन्थोंमें महाकवि अर्हदासके पुरुदेवचम्पूका नम्बर आता है, इसमें श्लेषादि अलंकारोंकी प्रधानता है। भगवान् आदिनाथका दिव्यचरित्र, भवान्तरवर्णनके साथ-साथ उसमें अंकित किया गया है। इसकी विशेषता और साज-सजावटपर आगे लिखा जायेगा।

पुरुदेवचम्पूके बाद भोजराजके 'चम्पूरामायण' अभिनव कालिदासके 'मागवतचम्पू' कवि कर्णपूरके 'आनन्दवृन्दाधनचम्पू', जीव गोस्वामीके 'गोपालचम्पू', श्रीशेषकृष्णके 'पारिजातहरणचम्पू', नीलकण्ठ दीक्षितके 'नीलकण्ठचम्पू', वेंकटाचर्यके 'विश्वगुणादर्शचम्पू', अनन्तकविके 'चम्पूमारत', केशवभट्टके 'नृसिंहचम्पू', रामनाथके 'चन्द्रशेखरचम्पू', श्रीकृष्णकविके 'मन्दारमरन्दचम्पू' और पन्त विठ्ठलके 'गजेन्द्रचम्पू' आदि ग्रन्थ दृष्टिमें आते हैं, जिनमें लेखकोंने अपनी अपूर्व प्रतिभाका परिचय दिया है। इस अल्पकाय लेखमें समग्र ग्रन्थोंका परिचय दे सकना सम्भव नहीं है इसलिए नाममात्र देकर सन्तोष धारण किया है। इस प्रकार गद्य-पद्यात्मक चम्पूसाहित्यका बड़ा विस्तार है। दशम ईसवीय शतीके पूर्वकी चम्पू रचना मेरी दृष्टिमें नहीं आयी है।

पाठकों के हाथमें 'पुरुदेवचम्पू'का यह सुसज्जित संस्करण समर्पित करते हुए प्रसन्नता होती है। पुरुदेव, भगवान् वृषभदेवका नाम है। दक्षिण भारतमें इस नामका अब भी खूब प्रचार है। उन्हींके कथानक-को लक्ष्यमें रखकर इस चम्पूकाव्यकी रचना हुई है। इसका सम्पादन श्रीमान् पं० जिनदास शास्त्री फड़कुले, सोलापुरके द्वारा सम्पादित और माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे प्रकाशित संस्करणके आधारपर हुआ है। इसके पाठभेदोंका संकलन ऐ. पन्नालाल सरस्वती भवन, ब्यावरसे प्राप्त हस्तलिखित प्रतिसे हुआ है।

हस्तलिखित प्रतिका परिचय

यह प्रति श्रीमान् पं० हीरालालजी शास्त्रीके सौजन्यसे प्राप्त हुई थी। इसमें ८१ पत्र हैं, पत्रोंका आकार ११।। × ६ इंच है। प्रतिपत्रमें १२ पंक्तियाँ और प्रति पंक्तिमें ४८-४९ अक्षर हैं। अक्षर सुवाच्य हैं। लेखनसम्बन्धी अशुद्धियाँ हैं। नीचे टिप्पण भी दिया गया है। दशा अच्छी हैं। इसका सांकेतिक नाम 'क' है। यद्यपि पाठभेद अत्यन्त अल्प है तथापि जो हैं वे महत्वपूर्ण हैं। द्वितीय स्तवकके अन्तमें ६५ और ६६वें श्लोकके बीचमें निम्नांकित श्लोक अधिक पाया गया है—

क्रीडायुद्धे चकोराक्ष्या तथा धूतायुधोज्यसौ ।

बभूव सहसा चित्रं धनचापलतामिव ॥

इस प्रतिके आधारपर मुद्रित प्रतिके पाठ शुद्ध करने तथा छूटे हुए पाठोंके समावेश करनेमें बहुत सहायता प्राप्त हुई है।

कथानायक

पुरुदेवचम्पूके कथानायक भगवान् वृषभदेव हैं। वृषभदेव इस अवर्सापिणी कालके चौबीस तीर्थकरोंमें आद्य तीर्थकर थे। तृतीयकालके अन्तमें जब भोगभूमिकी व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी और कर्मभूमिकी रचनाका प्रारम्भ हो रहा था तब उस सन्धिकालमें अयोध्याके अन्तिम कुलकर श्री नाभिराजके घर उनकी पत्नी मरुदेवीसे इनका जन्म हुआ था। यह जन्मसे ही विलक्षण प्रतिभाके धारक थे। कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जानेके बाद बिना बोये उपजनेवाली धानसे लोगोंकी आजीविका होती थी परन्तु कालक्रमसे जब वह धान भी नष्ट हो गयी तब लोग भूख-प्याससे अत्यन्त क्षुभित हो उठे और सब नाभिराजके पास जाकर 'त्रायस्व

त्रायस्व' करने लगे। नाभिराज, शरणागत प्रजाको भगवान् वृषभनाथके पास ले गये। लोगोंने अपनी करुण-कथा उनके समक्ष प्रकट की।

प्रजाजनौकी विह्वल दशा देखकर भगवान्की अन्तरात्मा द्रवीभूत हो उठी। उन्होंने उसी समय अवधिज्ञानसे विदेह क्षेत्रकी व्यवस्थाका स्मरण कर इस भरतक्षेत्रमें भी वही व्यवस्था चालू करनेका निश्चय किया। उन्होंने असि (सैनिककार्य), मषी (लेखनकार्य, कृषि (खेती), विद्या (संगीत-नृत्यादि), शिल्प (विविध वस्तुओंका निर्माण) और वाणिज्य (व्यापार)—इन छह कार्योंका उपदेश दिया तथा पुरन्दर—इन्द्रके सहयोगसे देश, नगर, ग्राम आदिकी रचना करवायी। भगवान्के द्वारा प्रदर्शित छह कार्योंसे लोगोंकी आजीविका चलने लगी। कर्मभूमिका प्रारम्भ हो गया। उस समयकी सारी व्यवस्था भगवान् वृषभदेवने अपने बुद्धिबलसे की थी। इसीलिए यह आदिपुरुष, ब्रह्मा, विधाता आदि संज्ञाओंसे व्यवहृत हुए।

पिता नाभिराजकी प्रेरणासे उन्होंने कच्छ, महाकच्छ राजाओंकी बहनें यशस्वती और सुनन्दाके साथ विवाह किया। नाभिराजके महान् आग्रहसे राज्यका भार स्वीकृत किया। आपके राज्यसे प्रजा अत्यन्त सन्तुष्ट हुई। कालक्रमसे यशस्वतीकी कुक्षिसे भरत आदि सौ पुत्र तथा ब्राह्मी नामक पुत्री हुई और सुनन्दाकी कुक्षिसे बाहुबली पुत्र तथा सुन्दरी नामक पुत्री उत्पन्न हुई। भगवान् वृषभदेवने अपने पुत्र-पुत्रियोंको अनेक जनकल्याणकारी विद्याएँ पढ़ायी थीं। जिनके द्वारा समस्त प्रजामें पठन-पाठनकी व्यवस्थाका प्रारम्भ हुआ।

नीलांजनाका नृत्यकालमें अचानक विलीन हो जाना भगवान्के वैराग्यका कारण बन गया। उन्होंने बड़े पुत्र भरतको राज्य तथा अन्य पुत्रोंको यथायोग्य देशोंका स्वामित्व देकर प्रव्रज्या धारण कर ली। चार हजार अन्य राजा भी उनके साथ प्रव्रजित हुए थे परन्तु वे क्षुधा, तृषा आदिकी बाधा न सह सकनेके कारण कुछ ही दिनोंमें अष्ट हो गये। भगवान्ने प्रथमयोग छह माहका लिया था। छह माह समाप्त होनेके बाद वे आहारके लिए निकले परन्तु उस समय लोग, मुनियोंको आहार किस प्रकार दिया जाता है, यह नहीं जानते थे। अतः विधि न मिलनेके कारण आपको छह माह तक विहार करना पड़ा। आपका यह विहार अयोध्यासे उत्तरकी ओर हुआ और चलते-चलते आप हस्तिनागपुर जा पहुँचे।

वहाँके तत्कालीन राजा सोमप्रभ थे। उनके छोटे भाईका नाम श्रेयांस था। इस श्रेयांसका भगवान् वृषभदेवके साथ पूर्वभक्तका सम्बन्ध था। वज्रजंघकी पर्यायमें वह उनकी श्रीमती नामक स्त्री था। उस समय इन दोनोंने एक मुनिराजके लिए आहार दिया था। श्रेयांसको जातिस्मरण होनेसे वह सब घटना स्मृत हो गयी इसलिए उसने भगवान्को देखते ही पडगाह लिया और इक्षुरसका आहार दिया। वह आहार वैशाख शुक्ला तृतीयाको दिया गया था तभीसे इसका नाम अश्वय तृतीया प्रसिद्ध हुआ। राजा सोमप्रभ, श्रेयांस तथा उनकी रानियोंका लोगोंने बड़ा सम्मान किया। आहार लेनेके बाद भगवान् वनमें चले जाते थे और वहाँके स्वच्छ वायुमण्डलमें आत्मसाधना करते थे। दीर्घकालीन तपश्चरणके बाद उन्हें दिव्यज्ञान—केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अब वह सर्वज्ञ हो गये, संसारके प्रत्येक पदार्थको स्पष्ट जानने लगे।

उनके पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए। उन्होंने चक्ररत्नके द्वारा षट्खण्ड भरतक्षेत्रको अपने अधीन किया और राजनीतिका विस्तार कर आश्रित राजाओंको राज्यशासनकी पद्धति सिखलायी। उन्होंने ही ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण इस भरतक्षेत्रमें प्रचलित हुए। इनमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण आजीविकाके भेदसे निर्धारित किये गये थे और ब्राह्मण व्रतीके रूपमें स्थापित हुए थे। सब अपनी-अपनी वृत्तिका निर्वाह करते थे इसलिए कोई दुःखी नहीं था।

भगवान् वृषभदेवने सर्वज्ञ दशामें दिव्यध्वनिके द्वारा संसारके पथभ्रान्त प्राणियोंको हितका उपदेश दिया। उनका समस्त आर्यखण्डमें विहार हुआ। आयुके अन्तिम समय वे कैलास पर्वतपर पहुँचे और वहीसे उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। भरत चक्रवर्ती यद्यपि षट्खण्ड पृथिवीके अधिपति थे फिर भी उसमें आसक्त नहीं रहते थे। यही कारण था कि जब उन्होंने गृहवाससे विरक्त होकर प्रव्रज्या—दीक्षा धारण की तब अन्तर्मुहूर्तमें ही उन्हें केवलज्ञान हो गया। केवलज्ञानी भरतने भी आर्य देशोंमें विहार कर समस्त जीवोंको हितका उपदेश दिया और आयुके अन्तमें निर्वाण प्राप्त किया।

सुनन्दाके पुत्र बाहुबलीने भी दिग्विजयके बाद भरतके साथ हुए संघर्षसे विरक्त हो दीक्षा धारण कर ली और एक वर्ष तक खड़े-खड़े तपश्चरण कर केवलज्ञान प्राप्त किया। शेष भाइयोंने भगवान् वृषभदेवके समवसरणमें दीक्षा ग्रहण की थी। ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनों पुत्रियोंने ब्रह्मचारिणी रहकर आर्थिकाके व्रत धारण किये।

भगवान् वृषभदेव और भरतका जैनेतर भारतीय साहित्यमें उल्लेख

भगवान् वृषभदेव और सम्राट् भरत इतने अधिक प्रभावशाली पुण्यपुरुष हुए हैं कि उनका जैनग्रन्थोंमें तो उल्लेख आया ही है उसके अतिरिक्त वेदके मन्त्रों, जैनेतर पुराणों तथा उपनिषदों आदिमें भी उल्लेख मिलता है। भागवतमें भी मरुदेवी, नाभिराय, वृषभदेव और उनके पुत्र भरतका विस्तृत विवरण दिया है। यह दूसरी बात है कि वह कितने ही अंशोंमें भिन्न प्रकारसे दिया गया है। इस देशका भारत नाम भी भरत चक्रवर्तिके नामसे ही प्रसिद्ध हुआ है।

यह वृत्तान्त हमें मार्कण्डेय, कूर्म, अग्नि, वायु, ब्रह्माण्ड, वाराह, लिंग, विष्णु तथा स्कन्द इन नौ पुराणोंमें मिलता है जिसका विवरण उद्धरणों-सहित आदिपुराण प्रथम भागकी प्रस्तावना (पृ. १४-१५) में दिया जा चुका है। उनके अतिरिक्त कुछ अन्य उल्लेख निम्न प्रकार हैं—

“आसीत्पुरा मुनिश्रेष्ठः भरतो नाम भूपतिः ।
आर्षभो यस्य नाम्नेदं भारतखण्डमुच्यते ॥५॥
स राजा प्राप्तराज्यस्तु पितृपैतामहः क्रमात् ।
पालयामास धर्मेण पितृवद्रज्यन् प्रजाः ॥६॥”

—नारदपुराण, पूर्वखण्ड, अध्याय ४८

“अंहोमुचं वृषभं यज्ञियातां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण इन्द्रियं देतमोजः ॥”

—अथर्ववेद, कां० १९।४२।४

—सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त तथा अहिंसक क्रतियोंके प्रथम राजा, आदित्यस्वरूप, श्रीवृषभदेवका मैं आवाहन करता हूँ। वे मुझे बुद्धि एवं इन्द्रियोंके साथ बल प्रदान करें।

“अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कं ।”

—ऋ० मं १, सू. १९०, मं० १

मिष्टभाषी, ज्ञानी, स्तुतियोग्य, ऋषभको पूजासाधक मन्त्रों द्वारा वर्धित करो। वे स्तोताको नहीं छोड़ते।

“एव बभ्रो वृषभचेकितान यथा देव न हूणीसे न हंसि ।”

भगवान् वृषभदेव और ब्रह्मा

लोकमें ब्रह्मा नामसे प्रसिद्ध जो देव है वह जैन परम्परानुसार, भगवान् वृषभदेवको छोड़कर दूसरा नहीं है। ब्रह्माके अन्य अनेक नामोंमें अप्रलिखित नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं— हिरण्यगर्भ, प्रजापति, लोकेश, नाभिज, चतुरानन, स्रष्टा और स्वयंभू। इनकी यथार्थ संगति भगवान् वृषभदेवके साथ ही बैठती है, जैसी कि आदिपुराणकी प्रस्तावना (पृ. १५) में बतलायी जा चुकी है।

ऋषभदेव और महादेव

वर्तमानमें ग्यारहवें रुद्र सात्यकिको महादेवके रूपमें माना जाने लगा है परन्तु तथ्य यह है कि प्राचीनकालमें महादेव संज्ञा भगवान् वृषभदेव की ही थी। उनका वृषभ चिह्न था, उन्होंने कैलास पर्वतपर तपश्चरण कर निर्वाण प्राप्त किया था और रत्नत्रयरूप त्रिशूलके वे धारक थे। सही मायनेमें मदनका दाह भी उन्होंने किया था। वे ही शंकर-शान्तिके कर्ता और त्र्यम्बक—ज्ञान नेत्र सहित तीन नेत्रके धारक थे।

इनकी एकतापर प्रकाश डालने वाले, डॉ० राजकुमार साहित्याचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी० आगरा, पं० हीरालालजी शास्त्री व्यावर और डॉ० कामताप्रसादजी एम० आर० ए० एस० डी० एल० अलीगंजके लेख, जो कि अनेकान्त में प्रकाशित हैं, द्रष्टव्य हैं ।

पुरुदेवचम्पूका आधार

इन वृषभदेवका विस्तृत चरित्र जिनसेनाचार्यने महापुराण (आदिपुराण) में लिखा है उसीके आधारपर कविवर अर्हदासजीने 'पुरुदेवचम्पू' की रचना की है । पुरुदेवचम्पू की पीठिका (श्लोक ९-१०) में कविवर अर्हदासजी ने आचार्य जेनसेनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए लिखा है कि—

अमृत तरंगिणीके सदृश प्रसिद्ध कोमल वचन पंक्तिसे युक्त तथा फैलती हुई कीर्तिसे सहित वे पूर्व कवि कल्याण करें जिन्होंने किसी अन्यके द्वारा अखण्डित संसारसम्बन्धी सन्तापको समूल नष्ट करनेवाली, आदि जिनेन्द्रकी कथारूप अमृतका स्रोत प्रकट किया है ।

आदि जिनेन्द्रकी उत्कृष्ट कथाके रससे सुपरिचित मेरी जिह्वा उन गुरुओंकी स्तुति करे जिनके कटाक्ष रूप अमृतके सेचनसे मेरी सुभाषितलता सुपुष्पित हुई है ।

प्रतिवादियोंकी प्रगल्भतारूप उन्नत शिखरको गिरानेके लिए जो वज्रके समान समर्थ हैं, तथा विकसित मालती लताके कुसुम रसकी सुगन्ध सन्ततिको छोड़नेवाली वाणीसे जो कदलीफल सम्बन्धी मधुर रसकी चोरीमें चतुर हैं, ऐसे श्रीमन्त जिनसेनाचार्य गुरु जयवन्त हों ।

वास्तवमें जिनसेन स्वामीने महापुराणकी रचना कर जैनजगत्का महान् उपकार किया है तथा उत्तरवर्ती ग्रन्थ कर्ताओंके लिए सुयोग्य सामग्री प्रदान की है ।

पुरुदेवचम्पूके रचयिता कवि अर्हदास

पुरुदेवचम्पू प्रबन्धके रचयिता कविवर अर्हदासजी हैं । इनके द्वारा रचित पुरुदेवचम्पू, मुनिसुव्रत काव्य तथा भव्य कण्ठाभरण ये तीन ग्रन्थ उल्लेख्य हैं । इन तीनोंके अन्तमें इन्होंने जो संक्षिप्त प्रशस्तियाँ दी हैं उनमें पं० आशाधरजी का बड़ी श्रद्धाके साथ उल्लेख किया है । यथा—

मिथ्यात्वपङ्ककलुषे मम मानसेऽस्मि—

न्नाशाधरोक्तिकतकप्रसरैः प्रसन्ने ।

उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभक्त्या

तच्चम्पुदम्भजलजेन समुज्ज्वम्भे ॥

—पुरुदेवचम्पू ।

मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे

युग्मे दृशोः कुपथयाननिधानभूते ।

आशाधरोक्तिलसदङ्गनसंप्रयोगैः

स्वच्छीकृते पृथुलसत्सत्पथमाश्रितोऽस्मि ॥६५॥

—मुनिसुव्रत काव्य ।

सूक्त्यैव तेषां भवभीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्माः ।

त एव शेषाश्रमिणां सहायधन्याः स्युराशाधरसुरिवर्याः ॥

—भव्यकण्ठाभरण ।

१. 'वृषभदेव तथा शिवसम्बन्धी प्राच्य मान्यताएँ' शीर्षक लेख : अनेकान्त, दिसम्बर १९६५ फरवरी, १९६६ ।

२. 'वृषभदेव और महादेव' शीर्षक लेख : अनेकान्त, नवम्बर १९५६, वर्ष १४, किरण ३-४ ।

३. 'ऋषभदेव और शिवजी' शीर्षक लेख : अनेकान्त, अक्टूबर १९५३, वर्ष १२, किरण ५ ।

इन प्रशस्तियोंके आधारपर माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे प्रकाशित पुरुदेवचम्पूकी प्रस्तावनामें उसके सम्पादक श्री पं० जिनदासजी शास्त्रीने यह सम्भावना प्रकट की है कि अर्हदासजी पं० आशाधरजीके शिष्य थे । परन्तु पं० के० श्रीभुजबली शास्त्री और स्व० पं० नाथूरामजी प्रेमीने इस कल्पनामें अपनी असहमति प्रकट की है । यदि यह आशाधरजीके शिष्य हैं तो यह भी तेरहवीं विक्रम शतीके अन्तिम और चौदहवीं शतीके प्रथम चरणके विद्वान् सिद्ध होते हैं । इनके विषयकी अन्य जानकारी अप्राप्त है ।

श्री पं० नाथूरामजी प्रेमीने सागारधर्मकी प्रस्तावनामें मुनिसुव्रतकाव्यकी प्रशस्तिके—

धावन्कापथसंभृते भववने सन्मार्गमेकं परं—

त्यक्त्वा श्रान्ततरश्चिराय कथमप्यासाद्य कालादमुम् ।

सद्धर्मामृतमुद्धृतं जिनवचः क्षीरोदधेरादरात्

पायं पायमितः श्रमः सुखपथं दासो भवाम्यर्हतः ॥६४॥

मिथ्यात्व कर्मपटलैश्॥६५॥

अर्थात्—कुमार्गसे भरे हुए संसाररूपी वनमें जो एक श्रेष्ठमार्ग था, उसे छोड़कर मैं बहुत कालतक भटकता रहा । अन्तमें बहुत थककर किसी तरह काललब्धिवश उसे फिर पाया । सो अब जिनवचनरूप क्षीर सागरसे उद्धृत किये हुए धर्मांमृत (आशाधरके धर्मांमृत शास्त्र ?) को सन्तोषपूर्वक पी-पीकर और विगतश्रम होकर मैं अर्हद्भूगवान्का दास होता हूँ ॥६४॥

कर्म-पटलसे बहुत कालतक ढँकी हुई मेरी दोनों आँखें जो कुमार्गमें ही जाती थीं, आशाधरकी उक्तियोंके विशिष्ट अंजनसे स्वच्छ हो गयीं और इसलिए अब मैं सत्पथका आश्रय लेता हूँ ॥६५॥

—इन श्लोकोंके आधारपर यह अनुमान किया है कि सम्भवतः यह अर्हदास, वह मदनकीर्ति यति-पति जान पड़ते हैं जिनके विषयमें राजशेखर सूरिके 'चतुर्विंशति-प्रबन्धमें' यह उल्लेख किया गया है कि मदनकीर्ति, वादीन्द्र विशालकीर्तिके शिष्य थे । वे बड़े भारी विद्वान् थे । चारों दिशाओंके वादियोंको जीतकर उन्होंने 'महाप्रामाणिक-चूडामणि' पदवी प्राप्त की थी । एकबार गुरुके निषेध करनेपर भी वे दक्षिणापथको प्रयाण कर कर्णाटकमें पहुँचे । वहाँ विद्वत्प्रिय विजयपुर नरेश कुन्तिभोज उनके पाण्डित्यपर मोहित हो गये और उन्होंने उनसे अपने पूर्वजोंके चरित्रपर एक ग्रन्थ निर्माण करनेको कहा । कुन्तिभोजकी कन्या मदनमंजरी सुलेखिका थी । मदनकीर्ति पद्य रचना करते जाते थे और मदनमंजरी पदके ओटमें बैठकर उसे लिखती जाती थी ।

कुछ समयमें दोनोंके बीच प्रेमका आविर्भाव हुआ और वे एक दूसरेको चाहने लगे । जब राजाको इसका पता लगा तो उसने मदनकीर्तिका वध करनेकी आज्ञा दे दी । परन्तु जब उनके लिए कन्या भी अपनी सहेलियोंके साथ मरनेको तैयार हो गयी, तब राजा विवश हो गया और उसने दोनोंका विवाह कर दिया । मदनकीर्ति अन्ततक गृहस्थ ही रहे और विशालकीर्तिके द्वारा बार-बार समझाये जानेपर भी प्रबुद्ध नहीं हुए ।

क्या यही मदनकीर्ति ही तो कुमार्गमें ठोकरें खाते-खाते अन्तमें आशाधरकी सूक्तियोंसे अर्हदास न बन गये हों । मुनिसुव्रत काव्यकी प्रशस्तिके ६४वें श्लोकसे इस विचारधाराको बहुत कुछ पुष्टि मिलती है । फिर 'अर्हदास' यह नाम भी विशेषण जैसा ही जान पड़ता है । सम्भव है उनका वास्तविक नाम कुछ और ही रहा हो । एक बात यह भी विचारणीय है कि अर्हदासजीके ग्रन्थोंका प्रचार प्रायः कर्णाटक प्रान्तमें ही रहा है जहाँ कि वे 'चतुर्विंशति प्रबन्ध' के उल्लेखानुसार सुमार्गसे पतित होकर रहने लगे थे । सत्पथपर पुनः लौटनेपर उनका वहीं रह जाना सम्भव भी प्रतीत होता है ।

१. देखो, मुनिसुव्रत काव्यकी प्रस्तावना ।

२. देखो, सूरतसे प्रकाशित सागारधर्मांमृतकी प्रस्तावना ।

प्रेमीजीकी इस कल्पनाके सन्दर्भमें इतना ही लिखना है कि अन्य प्रबल प्रमाणोंके बिना उसपर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है ।

पुरुदेवचम्पूके अन्यत्र उद्धरण

कविवर अर्हदासजीकी कविता प्रसाद आदि गुणोंसे परिपूर्ण तथा उपमा-रूपक आदि अलंकारोंसे अलंकृत है । पुरुदेवचम्पू तो श्लेषके चक्रमें पड़ जानेसे दुरूह हो गया है परन्तु मुनिमुद्रत काव्य, कवि की नैसर्गिक बागधारीमें प्रवाहित होनेके कारण अपने प्रसादादि गुणोंको सुरक्षित रख सका है । इसके अलंकार भी यथास्थान शोभा पाते हैं । यही कारण है कि अलंकारचिन्तामणिमें इसके कितने ही श्लोक उदाहरणके रूपमें उद्धृत किये गये हैं । जैसे प्रथम सर्गका निम्नांकित द्वितीय श्लोक, अलंकारचिन्तामणिमें भ्रान्तिमान् अलंकारके उदाहरणमें उद्धृत किया गया है—

चन्द्रप्रभं नौमि यदङ्गकान्ति ज्योत्स्नेति मत्वा द्रवतीन्दुकान्तः ।

चकोरयूथं पिबति स्फुटन्ति कृष्णेऽपि पक्षे किल कैरवाणि ॥२॥

अत्र चन्द्रप्रभाङ्गकान्तौ ज्योत्स्नाबुद्धिः ज्योत्स्ना सादृश्यं विना न स्यादिति सादृश्यप्रतीतौ भ्रान्तिमदलंकारः ।

—अलंकार चिन्तामणि, पृष्ठ ५६

प्रथम सर्गके निम्नांकित ३१ और ३२वें श्लोक अलंकारचिन्तामणिके पंचम परिच्छेदके इस प्रकरणमें समुद्धृत हैं—

मुक्तागुणच्छायमिवेण तन्व्याः रसेन लावण्यभयेन पूर्णे ।

नाभिहृदे नाथनिवेशितेन विलोचनेनानिमिवेण जने ॥३१॥

अमर्षणायाः श्रवणावतंसमपाङ्गविलुद्धिनिवर्तनेन ।

स्मरेण कोषादवकृष्यमाणं रथाङ्गमुर्वीपतिराशशङ्के ॥३२॥

प्रथम सर्गका चौथीसर्वां श्लोक, अलंकारचिन्तामणिमें परिसंख्या अलंकारके उदाहरणमें उद्धृत किया गया है—

श्लेषेऽपि चारुत्वातिशयरूपा परिसंख्या यथा—

यत्रार्तवत्त्वं फलिताटवीषु पलाशिताद्री कुसुमेष्वरागः ।

निमित्तमात्रे पिशुनत्वमासीन्निरीष्टचकाव्येष्वपवादिता च ॥८९॥

ऋतुःप्राप्त आसामटवीनां आर्तवास्तासां भावः । आर्तवतो दुःखवतो भावश्च । द्रौ द्रुमे पर्णवत्ता मांसभक्षित्वं च । परागः पुष्परजः अपरागः संतोषाभावः परेषामागोऽपराधो वा । शुभाशुभ-सूचकत्वं कर्णेजपत्वं च । पश्च वश्च पवौ आदी येषां ते पवादयः । पकारादय ओष्ठचवर्णा न एषां तानि अपवादीनि तेषां भावस्तत्ता निन्दा वादिता च ।

—अलंकार०, पृष्ठ ९१

द्वितीय सर्गका निम्नांकित ३३वां श्लोक अलंकारचिन्तामणिमें प्रयोऽलंकार और संसृष्टि अलंकारके उदाहरणमें समुद्धृत हैं—

रहस्यु वस्त्राहरणे प्रवृत्ताः सहासगर्जाः क्षितिपालवध्वाः ।

सकोपकन्दर्पधनुःप्रमुक्तशरीरहंकाररवा इवाभुः ॥३३॥

अत्र शृङ्गाररसस्य पोषणम् । एवं रसान्तरेष्वपि योज्यम् ।

—पृष्ठ ९४

उपमारसवदलंकारयोः संसृष्टिः ।

—पृष्ठ ९८

१४०० ई० के पूर्वभागके विरचित साहित्यदर्पणमें विश्वनाथ कविराजके द्वारा उद्धृत निम्न श्लोक—

लभं रागावृताङ्गया सुदृढमिह यथैवारिकण्ठे पतन्त्या

मातङ्गानामपीहोपरि परपुरुषैर्या च दृष्टा पतन्ती ।

तत्सक्तोऽयं न किञ्चिद् गणयति विदितं तेऽस्तु तेनास्मि दत्ता

भृत्येभ्यः श्रीनियोगात् गदितुमिति गतेवाम्बुधि यस्य कीर्तिः ॥

—साहित्यदर्पण, सप्तम परिच्छेद

पुरुदेवचम्पूके इस श्लोककी छाया रूप है—

मातङ्गोपरि संपतन्त्यनुदिनं श्यामा कृपाणीलता

सद्धारान्ध्रितया तथा परवशो नान्यां समालोकते ।

मां भृत्येषु नियुक्तवान्निधिपतिस्तात श्रुतं तेऽस्त्विति-

श्रीवार्ता गदितुं ध्रुवं जलनिधिं यत्कीर्तिराटीकत ॥३॥

—पुरुदेव-स्तवक १०

पुरुदेवचम्पूका काव्यात्मक अन्तःपरिचय

पुरुदेवचम्पूमें दश स्तवक हैं । जिनमें प्रारम्भके ३ स्तवकोंमें पुरुदेव भगवान् आदिनाथके पूर्वभवोंका वर्णन किया गया है । शेष स्तवकोंमें भगवान् आदिनाथ और उनके पुत्र भरत तथा बाहुबलीका चरित्र-चित्रण किया गया है । ग्रन्थका कथाभाग अत्यन्त रोचक है, उसपर कविने उसे अपनी कलमसे और भी रोचक बना दिया है । यही कारण है कि संस्कृत साहित्यमें इसका अनूठा स्थान माना जाता है । कविकी नयी-नयी कल्पनाओं तथा श्लेष, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारोंके पुटने इसके गौरवमें चार चाँद लगा दिये हैं । कितने ही श्लेष तो इतने कौतुकावह हैं कि अन्यत्र उनका मिलना असम्भव सा है । ग्रन्थका प्रत्येक भाग सरस और चुटीला है । ज्यों-ज्यों ग्रन्थ आगे बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसकी भाषा और भाव-में प्रौढ़ता आती जाती है । इस कथनकी पुष्टिके लिए कुछ समुद्धरण आवश्यक हैं ।

प्रारम्भमें मंगलपीठिकाके तीन श्लोक देखिए, जिनमें क्रमसे वृषभजिनेन्द्र और कल्पवृक्ष, आदि-जिनेन्द्र और सूर्य तथा आद्यजिनपति और चन्द्रमाके रूपको श्लेषका पुट देकर कितना आकर्षक बनाया गया है ।

मंगलपीठिकाके अन्तमें कवितारूपी लताका रूपकालंकारके द्वारा अत्यन्त सुन्दर वर्णन है ।

अलकातनगरीके वर्णनमें श्लेषका चमत्कार देखिए—

‘या खलु घनश्रीसम्पन्ना निभूतसामोदसुमनोऽभिरामा, सकलसुदृग्भिः शिरसा श्लाघ्यमानमहिमा, विविधविचित्रविशोभितमालाढ्या, अलकाभिधानमर्हति’ ।

जो नगरी अलकाभिधान—अलका इस नामको (पक्षमें अलक—केश इस नामको) धारण करनेके योग्य है क्योंकि यह घनश्रीसम्पन्ना—अत्यधिकलक्ष्मीसे सम्पन्न है (पक्षमें मेघके समान शोभासे युक्त है—कृष्णवर्ण है), निश्चल तथा हर्षसे भरे हुए विद्वानोंसे मनोहर है (पक्षमें धारण किये हुए सुगन्धित फूलोंसे मनोहर है, समस्त सुदृग्—विद्वान् (पक्षमें समस्त स्त्रियाँ) अपने मस्तकसे जिसकी महिमाका यशोगान करते हैं और विचित्र तथा विशोभी-तमालों—तमाल वृक्षोंसे युक्त है (पक्षमें नाना रंगकी सुशोभित मालाओंसे सहित है ।

अतिबल राजाकी मनोहरा नामक रानीका वर्णन करते हुए जो ‘यस्याः किल मृदुलपदयुगलं गमन-कलाविलासतिरस्कृतहंसकमपि विश्वस्तलालितहंसकं’ (पृ० १४)

गद्य खण्ड दिया है उसमें विरोधाभास अलंकार कितना साकार हुआ है यह देखनेके योग्य है ।

राजा महाबलका वर्णन करते समय जो गद्यपंक्तियाँ अवतीर्ण की हैं (पृ० १९) उन पंक्तियोंमें परिसंख्यालंकार कितना स्पष्ट है तथा श्लेषालंकारने उसे कितना विकसित किया है यह दर्शनीय है ।

त्रिदशोपसेवितो यः प्राज्यविराजितरुचिर्महामेरुः ।

यहाँ सुमेरुके वर्णनमें रूपक और श्लेषोपमाका चमत्कार देखिए कितना सुखद है ।

ललितांगदेवकी स्वयंप्रभा देवीके वर्णनमें देखिए श्लेषोपमाने कितना स्पष्ट रूप प्राप्त किया है । (देखिए श्लोक ७१-७२)

द्वितीय स्तवकमें पाणिग्रहणके लिए उद्यत श्रीमतीकी नेपथ्यरचना देखिए—(पृ. ८७) जहाँ उत्प्रेक्षा, श्लेष और उपमाने कितना चमत्कार दिखलाया है ।

संयोगशृंगारके (श्लोक ६७) वर्णनमें अतिशयोक्तिका चमत्कार देखिए जहाँ उपमेयका अभाव कर मात्र उपमानको शेष रखा गया है ।

इसी सन्दर्भका असंगति अलंकार (श्लोक ६८) भी द्रष्टव्य है ।

तृतीय स्तवक (पृ. १३२) में वचनश्लेष, उपमा और परिसंख्याकी महिमा देखिए ।

अहमिन्द्रके वर्णन (पृ. १३६) में विरोधाभास और व्यतिरेकका सम्मिश्रण देखिए कितना सुन्दर है ।

चतुर्थ स्तवकसे भगवान् वृषभदेवकी कथाका प्रारम्भ होता है । यहाँ कविने मरुदेवीके नख-शिख वर्णनमें अपनी काव्यप्रतिभाका अपूर्व प्रदर्शन किया है (श्लोक ११) मरुदेवीके नखोंका वर्णन देखिए जहाँ नखत्र और राशियोंको माध्यम बनाकर कितना सुन्दर विरोधाभास दिया है ।

संस्कृतमें अब्ज शब्दके तीन अर्थ हैं कमल, चन्द्रमा और शंख । यहाँ मरुदेवीके नेत्र, मुख और कण्ठका वर्णन करनेके लिए (श्लोक १३१) उन तीनोंको देखिए, कितनी सुन्दरताके साथ एकत्र सँजोया है ?

अयोध्यानगरीके वर्णनमें (पृ. १४८) अनन्वय, श्लेष, विरोध और व्यतिरेकको किस खूबीके साथ एक साथ बैठाया है यह देख कविकी काव्यप्रतिभापर आश्चर्य प्रकट होता है ।

मरुदेवीका स्वप्नदर्शन और पद्कुमारिका देवियोंका विनोदोक्ति सन्दर्भ कवित्वकी दृष्टिसे बेजोड़ है । एक देवीकी विनोदोक्ति देखिए (श्लोक ३६) कितनी मनोरम है जहाँ आदिमें रूपयुता—सौन्दर्यसे युक्त द्राक्षावली, आदिमें 'रु' अक्षरसे युक्त होकर रुद्राक्षावली और मध्यमें अधिका सिता, ककारसे युक्त होकर सिकता बन गयी—कितनी चमत्कारपूर्ण उक्ति है ।

भगवान् वृषभदेवके जन्मोत्सवके प्रसंगमें सुमेरुपर्वतका वर्णन करते हुए कविने जो पद्य और गद्य लिखे हैं उनमें उनकी काव्यप्रतिभा कितनी साकार हुई है, देखिए (श्लोक ६६-६८ व गद्य पृ. १८२) ।

यह सुमेरु शैलका वर्णन, कविने सौधमन्द्रके द्वारा, ऐशानेन्द्र आदिको लक्ष्य कर कराया है अतः सौधमन्द्रकी उक्तिका गौरव सुरक्षित रखनेका ध्यान रखा गया है ।

पंचम स्तवकमें जन्माभिषेकका जल लानेके लिए देवपंक्तियाँ क्षीरसागर पहुँचती हैं उस समय श्लेषोपमा विरोध और व्यतिरेकके माध्यमसे कविने क्षीरसागरका वर्णन करनेके लिए (पृ. १९१) पर जो गद्य-पंक्तियाँ लिखी हैं वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं ।

जिनबालक वृषभदेवका अभिषेक, इन्द्रने क्यों किया ? इसकी कल्पना करते हुए कविने जो (पृ. १९६) गद्यपंक्तियाँ लिखी हैं वे कविकी काव्यप्रतिभाका जीता-जागता आदर्श हैं ।

अभिषेकके बाद बिखरे हुए जलका तथा इन्द्रके द्वारा किये हुए ताण्डव नृत्यका वर्णन भी कविने अनुपम काव्यशैलीमें किया है । इन्द्रकृत भगवान्का स्तवन साहित्यिक दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण है । जिनबालककी बालचेष्टाओंका वर्णन, यद्यपि धर्मशर्माभ्युदयसे प्रभावित है, तथापि अपनी विशेषता पृथक् रखता है ।

षष्ठ स्तवकमें भगवान् वृषभदेवकी गुवावस्थाका वर्णन करते हुए शिखासे लेकर नख तक वर्णन किया गया है । उसमें कविकी काव्यप्रतिभाका अच्छा दिग्दर्शन हुआ है । मुखका वर्णन देखिए (श्लोक ३ व गद्य पृ. २२४) कितना कल्पनापूर्ण है ।

पिता नाभिराजकी प्रार्थना स्वीकृत कर युवा वृषभदेवने यशस्वती और सुनन्दाके साथ विवाह किया। यशस्वतीने स्वप्नदर्शनपूर्वक गर्भ धारण किया। शुभमुहूर्तमें भरतको जन्म दिया। भरतका वर्णन करते हुए कविने जो आर्यायुगल (३७-३८) लिखा है उसका चमत्कार देखिए।

यशस्वतीने भरतके अनन्तर निन्यानवे पुत्र और ब्राह्मी नामक पुत्रीको भी उत्पन्न किया और सुनन्दाने बाहुबली पुत्र तथा सुन्दरी नामक पुत्रीको जन्म दिया। भगवान्ने अपने पुत्र-पुत्रियोंको अनेक प्रकारकी शिक्षा दी। कल्पवृक्षोंके नष्ट होनेपर प्रजामें संकटकी स्थिति आ गयी। नाभिराजा प्रजाजनोंको साथ लेकर भगवान् आदिनाथके पास गये। उन्होंने सबको सान्त्वना देते हुए इन्द्रके सहयोगसे कर्मभूमिकी रचना की। इन्द्रने भगवान्का राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेकके अवसरपर सुवन्दीजनोंके मुखसे राजा वृषभदेवकी जो स्तुति की गयी है उसमें कविने कितना कौशल दिखाया है यह पद्य १३-१४ व १५ में देखिए।

बाहुबलीके सौन्दर्य और शौर्यके वर्णनमें कविकी श्लेषप्रतिभाका चमत्कार देखिए (स्तबक ६ श्लोक ४६)।

भगवान्की राज्यावस्था और राज्यशासनकी कुशलताका वर्णन करते हुए देखिए कितना श्लेषात्मक तथ्यका वर्णन हुआ है। (स्त. ७, २१) श्लेषमूलक विरोधाभासका कितना सुन्दर उदाहरण है यह।

कदाचित् सभामें बैठे हुए भगवान्, नीलांजना नामक सुरनर्तकीका नृत्य देख रहे थे कि अकस्मात् उसकी आयु समाप्त हो गयी। उसका विलय देख भगवान् संसारसे विरक्त हो गये। वे संसारकी अनित्यताका विचार करने लगे। लक्ष्मीके विषयमें उनका हृदय क्या सोचने लगा यह श्लोक २६ में देखिए।

लौकान्तिकदेव आकर भगवान्के वैराग्यचिन्तनका समर्थन करते हैं। अन्तमें भगवान्ने भरतका राज्याभिषेक कर चार हजार राजाओंके साथ निर्यन्त्र दीक्षा धारण कर ली। देवोंने भगवान्का दीक्षा कल्याणक किया।

नमि और विनमिके लिए धरणेन्द्रने विजयार्थका राज्य प्रदान किया। हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभ और श्रेयांसने भगवान्को एक वर्षकी तपस्याके बाद इक्षुरसका आहार दिया। एक हजार वर्षकी मौन तपस्याके बाद भगवान्ने केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्द्रका आदेश पाकर कुबेरने समवसरणकी रचना की। कविवर अर्हद्वासजीने समवसरणके वर्णनमें अपनी काव्यप्रतिभाकी बड़ी कुशलतासे साकार किया है। समवसरण सभा जिस वनचतुष्टयसे सुशोभित थी उसे श्लिष्टोपमालंकारसे कैसा अलंकृत किया गया है, यह देखनेके योग्य है (पृ. ३०१)।

समवसरणमें विराजमान वृषभजिनेन्द्रका स्तवन इन्द्रके मुखसे देखिए कितना सुन्दर बन पड़ा है। स्तोता और स्तुत्य—दोनोंकी अनुरूपतापर कविने पूर्ण ध्यान रखा है (स्त. ८, श्लोक ३८-४१)।

बोतराग जिनेन्द्रकी दिव्यध्वनि सुनकर भरत राजा सम्यग्दर्शनकी विशुद्धताको प्राप्त हुए तथा समस्त सभा परम धैर्यको प्राप्त हुई। दिव्यध्वनिके अनन्तर भगवान्का आर्यखण्डमें विहार हुआ। अन्तिम समय वे कैलासपर्वतपर आरुढ़ हुए।

समवसरणसे वापस आकर भरतने पुत्र जन्म तथा चक्ररत्नकी प्राप्तिका उत्सव किया। शरद् ऋतुमें सम्राट् भरतने दिग्विजयके लिए प्रस्थान किया। उस सन्दर्भमें शरद् ऋतुका वर्णन देखिए कितना सुन्दर हुआ है (स्त. ९, श्लोक ३)।

सम्पूर्ण नवम स्तबक, सेनाके वैभव और दिग्विजयकी विविध घटनाओंके वर्णनसे भरा हुआ है। कवित्वकी धारा प्रारम्भसे लेकर अन्ततक एक सी प्रवाहित हुई है। जान पड़ता है कविका हृदय अनन्त शब्दोंके भाण्डारसे परिपूर्ण है। चारों दिशाओंमें भ्रमण करनेके बाद चक्रवर्ती भरत कैलास पर्वतपर पहुँचते हैं और वहाँ श्री आदिजिनेन्द्रके दर्शन कर कृतकृत्य हो जाते हैं।

अयोध्याके गोपुरमें जब चक्ररत्नने प्रवेश नहीं किया तब पुरोहितके द्वारा उसका कारण जानकर बाहुबलीके पास दूत भेजा गया। बाहुबली द्वारा भरतकी अधीनता स्वीकृत न किये जानेपर मन्त्रियोंके विमर्शानुसार दोनों भाइयोंमें नेत्रयुद्ध, जलयुद्ध और बाहुयुद्ध हुए। तीनों युद्धोंमें प्राप्त पराजयसे खिन्न होकर

भरतने बाहुबलीपर चक्ररत्न चला दिया । परन्तु वह भी उनका कुछ कर न सका, अन्तमें उन्होंने संसारसे विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली । भरतने षट्खण्ड भरतक्षेत्रका राज्य शासन सँभाला ।

अन्तमें श्री वृषभ जिनेन्द्रका कैलास पर्वतसे निर्वाण हुआ, देवोंने निर्वाण कल्याणकका उत्सव किया ।

इस प्रकार इस अल्पकाय काव्यमें कविने बड़ी कुशलताके साथ सम्पूर्ण आदिपुराणका समावेश किया है और इस खूबीसे किया है कि पुराणका रूप बदलकर एक काव्यकी सजीव प्रतिमा सामने खड़ी कर दी है ।

पुरुदेवचम्पूपर अन्य कवियोंका प्रभाव (आदान-प्रदान)

तुलनात्मक पद्धतिसे अध्ययन करनेपर प्रतीत होता है कि अर्हदासजीने बाणभट्टकी कादम्बरी, तथा हरिचन्द्रके धर्मशर्माम्पुदय और जीवन्धरचम्पूका अच्छी तरह आलोडन करनेके बाद ही पुरुदेवचम्पूकी रचना की है । जिनसेनका आदिपुराण तो इसका मूलधार है ही अतः उसकी कल्पनाओं और कहीं-कहींपर शब्दोंका सादृश्य पाया जाना सब तरह सम्भव है । कादम्बरीकी निम्नांकित पंक्तियाँ देखिए—

यस्यां च सन्ध्यारागारुणा इव सिन्दूरमणिकुट्टिमेषु, प्रारब्धकमलिनीपरिमण्डला इव मरकतवेदिकासु,
गगनपर्यस्ता इव वैडूर्यमणिभूमिषु, तिमिरपटलविघटनोद्यता इव कृष्णागुरुधूममण्डलेषु, अभिभूततारकापङ्क्तय
इव मुक्ताप्रालम्बेषु, विकचकमलचुम्बिन इव नितम्बिनीमुखेषु, प्रभातचन्द्रिकामध्यपतिता इव स्फटिकभित्ति-
प्रभासु, गगनसिन्धुतरङ्गावलम्बिन इव सितपताकांशुकेषु, पल्लविता इव सूर्यकान्तोपलेषु, राहुमुखकुहरप्रविष्टा
इवेन्द्रनीलवातायनविवरेषु विराजन्ते रविगभस्तयः ।

—कादम्बरी, निर्णयसागर बम्बईका अष्टम संस्करण, पृष्ठ ११६-११७

इसका पुरुदेवचम्पूकी 'यत्र च जिनभवने' आदि (पृ. ६५) पङ्क्तियोंसे तुलना कीजिए ।

कादम्बरीका विलासवती वर्णन देखिए—

अथ तस्य चन्द्रलेखेव हरजटाकलापस्य, कौस्तुभप्रभेव कैटभारातिवक्षःस्थलस्य, वनमालेव मुसला-
युधस्य, वेलेव सागरस्य, मदलेखेव दिग्गजस्य, लतेव पादपस्य, पुष्पोद्गतिरिव सुरभिभासस्य, चन्द्रिकेव
चन्द्रमसः, कमलिनीव सरसः, तारापङ्क्तिरिव नभसः, हंसमालेव मानसस्य, चन्दनवनराजिरिव मलयस्य,
फणामणिशिखेव शेषस्य, भूषणमभूतिरिवभुवनविस्मयजननी जननीव वनिताविभ्रमाणां सकलान्तःपुरप्रधानभूता
महिषी विलासवती नाम ।

—कादम्बरी उक्त संस्करण, पृष्ठ १३५ ।

इसके साथ पुरुदेवचम्पूका 'सा खलु विम्बौष्टी' आदि मरुदेवीवर्णन देखिए (पृ. १४१) ।

कुछ सन्दर्भ धर्मशर्माम्पुदयके देखिए—

प्रस्थैरदुःस्थैः कलितोऽप्यमानः पादैरमन्दैः प्रसृतोऽप्यगेन्द्रः ।

मुक्तो वनैरप्यवनः श्रितानां यः प्राणिनां सत्यमगम्यरूपः ॥ (ध० श० १०।५)

इसका 'गान्धिलविष्टपे' आदि वर्णन (पृ. ८) से तुलना कीजिए—

अवकरनिकुरम्बे मारुतेनापनीते

कुरुत घनकुमाराः साधु गन्धोदवृष्टिम् ।

तदनु च मणिमुक्ताभङ्गरङ्गावलीभिः—

विरचयत चतुष्कं सत्त्वरं दिक्कुमार्यः ॥

स्वयमयमिह धत्ते छत्रमीशाननाथ—

स्तदनुगतमृगाक्ष्यो मङ्गलान्युत्क्षिपन्तु ।

जिन सविधममर्त्यी नर्तिताबालवाल—

व्यजनविधिसनाथाः सन्तु सानत्कुमाराः ॥

बलिफलकुसुमस्रगन्धधूपक्षताद्यैः

प्रगुणयत विचित्राण्यन्नपात्राणि देव्यः ।

सलिलमिह पयोधेरेष्यति व्यन्तराद्याः

पटुपटहृमृदङ्गादीनि तत्सज्जयन्तु ॥

प्रवणय वरबीणां वाणि रीणासि कस्मा-

त्किमपरमिह ताले तुम्बरो त्वं वरोऽसि ।

इह हि भरतरङ्गाचार्यविस्तार्यरङ्गं

त्वरयसि नटनार्थं किं न रम्भामदम्भाम् ॥

समुचितमिति कृत्यं जैनजन्माभिषेके

त्रिदशपतिनियोगाद् ग्राह्यन्ताग्रहेण ।

कलितकनकदण्डोदण्डदोर्दण्डचण्डः

सुरनिवहमवादीद् द्वारपालः कुबेरः ॥ (कुलकम्) (ध० श० ८।५-९)

इसे प्रस्तुत चम्पूके 'तदनु जिनेन्द्रजन्माभिषेक' आदि (पृ. १८८) से मिलाइए ।

अभ्युपात्तकमलैः कवीश्वरैः संश्रुतं कुवलयप्रसाधनम् ।

द्रावितेन्दुरसराशिसोदरं सच्चरित्रमिव निर्मलं सरः ॥

पीवरोच्चलहरिब्रजोद्धुरं सज्जनक्रमकरं समन्ततः ।

अब्धिमुग्रतरवारिमज्जितक्षमाभूतं पतिमिवावनीभुजाम् ॥

यह 'निजवल्लभमिव' (पृ० १५४) आदि पंक्तियोंसे तुलनीय है ।

सिद्धतः सुरैरित्थमुपेत्य विस्फुरज्जटालबालोऽथ स नन्दनद्रुमः ।

छायां दधत्काञ्चनसुन्दरीं नवां सुखाय वपुः सुतरामजायत ॥ (ध० श० ९।१)

इसका मिलान प्रस्तुत 'जिननन्दनद्रुमोऽयं' आदि (५, ३१) श्लोकसे कीजिए ।

रेखात्रयेणेव जगत्त्रयाधिकां विरुपयन्तं निजरूपसंपदम् ।

तत्कण्ठमालोक्य ममज्ज लज्जया विशीर्यमाणः किल कम्बुरम्बुधौ ॥ (ध० श० ९।२५)

इसे 'भुवनत्रितयातिशायिशोभा' आदि (६, ८) से मिलाइए ।

अजस्रमासीद्धनसंपदागमो न वारिसंपत्तिरदृश्यत क्वचित् ।

महौजसि त्रातरि सर्वतः सतां सदा पराभूतिरभूदिहाद्भुतम् ॥ (ध० श० १८।६२)

इसे 'तदा देवे पृथ्वीमवति' आदि पद्य (७, २१) से मिलाकर देखिए ।

इसी प्रकार मिलाइए—

औत्सुक्यनुत्था शिशुमप्यसंशयं चुचुम्ब भुवितनिभूतं कपोलयोः ।

माणिक्यताटङ्ककरापदेशतस्तथाहि ताम्बूलरसोऽत्र संगतः ॥६॥

—धर्मशर्मा० सर्ग ९, पु. च. ५, ३७ ।

क्रमेण सोऽयं मणिकुट्टिमाङ्गणे नखस्फुरत्कान्तिझरीभिरञ्जिते ।

स्खलत्पदं कोमलपादपङ्कजक्रमं ततान प्रसवास्तृते यथा ॥१०४॥

—जीवन्धरचम्पू, लम्भ १, पु. च. ५, ३९ ।

बभ्राम पूर्वं सुविलम्बमन्थरप्रवेपमानाग्रपदं स बालकः ।

विश्वम्भरायां पदभारधारणप्रगल्भतामाकलयन्निव प्रभुः ॥९॥

—धर्मशर्मा० सर्ग ९, पु० च० ५, ३९

भवान्तर वर्णन और उसकी उपयोगिता

अन्य शास्त्रोंमें जहाँ महापुरुषोंकी अवतारवादकी चर्चा आती है वहाँ जैन शास्त्रोंमें उनके उत्तारवादकी चर्चा की गयी है अर्थात् नीचेसे उठकर वे महापुरुष किस प्रकार बने, इसका वर्णन किया गया है। जैनदर्शन अनादि सिद्ध ईश्वरकी सत्ताको स्वीकृत नहीं करता। उसकी मान्यता है कि संसारका प्राणी ही अपनी साधनासे आत्मशुद्धिको प्राप्त करता हुआ अन्तमें परमशुद्ध अवस्थाको प्राप्त होता है और वही ईश्वर कहलाता है। ऐसे ईश्वर एक नहीं किन्तु अनन्त हैं। जैनपुराण ग्रन्थोंमें वर्णनीय महापुरुषोंके पूर्वभव वर्णनका प्रसंग इसी उद्देश्यसे किया जाता है कि जिससे जनसाधारण समझ सके कि यह महापुरुष किस प्रकारकी साधना कर उत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त हुए हैं—

पुरुदेवचम्पूके कथानायक भगवान् वृषभदेव हैं। इनका अस्तित्व आजसे असंख्य वर्ष पूर्व था। तृतीय कालके जब तीन वर्ष साढ़े आठ माह बाकी थे तभी इनका निर्वाण हो चुका था। यह इस अवसरपिणीमें होने वाले चौबीस तीर्थंकरोंमें प्रथम तीर्थंकर थे। ग्रन्थकर्ताने आदिपुराणके अनुसार इनके निम्नांकित १० पूर्व भवोंका वर्णन किया है—

१. जयवर्मा, २. राजा महाबल, ३. ललितांगदेव, ४. वज्रजंघ, ५. भोगभूमिका आर्य, ६. श्रीधरदेव, ७. राजा सुविधि, ८. अच्युतेन्द्र, ९. वज्रनाभि चक्रवर्ती, १०. सर्वार्थसिद्धि और उसके बाद भगवान् वृषभदेव।

(१) **जयवर्मा**—पश्चिम विदेह क्षेत्रमें विद्यमान सिंहपुरके राजा श्रीषेण और उनकी रानी श्रीमुन्दरीके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके छोटे भाईका नाम श्रीवर्मा था। श्रीवर्मा, समस्त जनताको प्रिय था इसलिए पिताने उसे ही राज्य दिया। इससे जयवर्माके मनमें बड़ा खेद हुआ। उन्होंने विरक्त होकर मुनिदीक्षा ले ली। एक बार आकाशमें एक विद्याधर राजा बड़े वैभवके साथ जा रहा था। मुनि जयवर्मनने उसके वैभवको देखकर मनमें निदान किया कि इस तपस्याके फलस्वरूप मैं भी इसी प्रकार वैभवका स्वामी बनूँ। निदानके समय ही वामीसे निकले हुए एक सर्पने उन्हें डस लिया जिससे वे मरकर महाबल हुए और जन्मान्तरसे आगत भोगाकांक्षाके कारण भोग-विलासमें मग्न रहने लगे।

(२) **महाबल**—गान्धिल देशके अलकापुरीके राजा अतिबल और उनकी रानी मनोरमाके पुत्र थे। पिताके दीक्षा लेनेके बादसे राज्यके अधिपति हुए। इनके स्वयंबुद्ध, महामति, सम्भिन्नमति और शतमति नामक चार मन्त्री थे। इन मन्त्रियोंमें स्वयंबुद्ध मन्त्री परम आस्तिक और महाबलका हितैषी था। एक बार उसने राजसभामें रौद्रध्यान, आर्तध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यानका वर्णन करते हुए उनमें प्रसिद्ध हुए राजा अरविन्द, दण्डविद्याधर, शतबल और सहस्रबलकी कथा सुनायी जिससे महाबलका मन जैनधर्मके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु हो गया। एक बार उसी स्वयंबुद्धने सुमेरु पर्वतपर चारणश्रद्धिधारी मुनिराजसे महाबलके विषयकी जानकारी प्राप्त कर उसे सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम्हारी आयु केवल एक माहकी अवशिष्ट है अतः आत्मकल्याणके लिए अग्रसर होना श्रेयस्कर है। स्वयंबुद्धका सम्बोधन पाकर महाबलने बाईस दिन तक सत्लेखना व्रत धारण कर मरण किया और उसके फलस्वरूप ऐशान स्वर्गमें ललितांग देव हुए।

(३) **ललितांगदेव**—उपपाद शय्यासे ऐसा उठा जैसे सोकर उठा हो। ऐशानस्वर्गका वैभव देख वह आश्चर्यमें पड़ गया। अन्तर्गत अन्य देवोंके कथनानुसार स्नानादिसे निवृत्त हो उसने सर्वप्रथम जिनेन्द्र भगवान्की अर्चा की। पश्चात् स्वर्गके भोगोपभोगोंमें मग्न लगाया। उसके अन्तिम समयमें एक स्वयंप्रभा नामकी देवी हुई थी। उसके साथ ललितांगका सघन स्नेह था। उसी स्नेहके कारण इन दोनोंका अगले भवोंमें भी सम्पर्क होता रहा। आयु पूर्ण होनेपर ललितांगदेव वज्रजंघ हुआ और स्वयंप्रभा श्रीमती।

(४) वज्रजंघ—जम्बूद्वीपस्थ सुमेरु पर्वतकी पूर्व दिशा सम्बन्धी विदेहक्षेत्रके पुष्कलावती देशकी राजधानी उत्पलखेट नगरीके राजा वज्रबाहु और उनकी रानी वसुन्धराके वज्रजंघ नामक पुत्र थे। बहुत ही प्रतापी और गुणवान् थे। स्वयंप्रभा देवीका जीव पूर्वविदेह क्षेत्रकी पुण्डरीकिणी नगरीके राजा वज्रदन्त और उनकी रानी लक्ष्मीमतीके श्रीमती नामकी पुत्री हुई। एक बार श्रीमती महलकी छतपर बैठी थी। वहाँ उसने आकाशमें जाते हुए एक देवको देखा। देखते ही उसे ललितांगदेवका स्मरण हो आया और उसके विरहमें वह दुःखी होने लगी। पण्डिता धायके प्रयत्नसे वज्रजंघका पता लगा और अन्तमें उसके साथ श्रीमतीका विवाह हुआ। श्रीमतीने कालक्रमसे पचास युगलोंमें सौ पुत्रोंको जन्म दिया। श्रीमतीके पिता चक्रवर्ती थे। वे एक बार कमलमें मृत भ्रमरको देखकर संसारसे विरक्त हो गये। उन्होंने पुत्रोंको राज्य देना चाहा पर वे भी राज्य लेनेको तैयार नहीं हुए तब पुत्रके पुत्र पुण्डरीकको राज्य देकर मुनि हो गये। उन्हींके साथ उनके दो पुत्रोंने भी मुनिदीक्षा धारण कर ली।

श्रीमतीकी माताका पत्र पाकर वज्रजंघ श्रीमतीके साथ पुण्डरीकिणी नगरी गये। मार्गमें इन्होंने एक सरोवरके तटपर मुनिके लिए आहार दान दिया। वे मुनि श्रीमतीके ही छोटे पुत्र थे। पुण्डरीकिणी नगरमें बालक पुण्डरीककी राज्यव्यवस्था जमाकर वज्रजंघ वापस आ गये। एक बार शयन कक्षमें सुगन्धित घूपके धूमसे कण्ठावरोध हो जानेके कारण वज्रजंघ और श्रीमतीकी साथ ही साथ मृत्यु हो गयी और दोनों ही भोगभूमिमें आर्य-दम्पती हुए।

(५) आर्यदम्पती—आर्यदम्पती भोगभूमिमें कल्पवृक्षके नीचे बैठे थे उसी समय स्वयंबुद्ध मन्त्रीका जीव जो अब प्रीतिकर नामका चारणऋद्धिधारी मुनि था, आकाश मार्गसे भोगभूमिमें गया, वहाँ उसने आर्यदम्पतीको सम्यग्दर्शनका उपदेश दिया जिसे श्रवण कर दोनोंने सम्यग्दर्शन धारण किया। आयुके अन्तमें मरकर आर्यदम्पती स्वर्गमें देव हुए। वज्रजंघका जीव आर्य श्रीप्रभ विमानमें श्रीधरदेव हुआ और श्रीमतीका जीव आर्या भी सम्यक्त्वके प्रभावसे स्त्रीलिंग छेदकर स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ नामका देव हुई।

(६) श्रीधर—एक बार श्रीधरदेवने अपने गुरु प्रीतिकर मुनिसे महाबल भवके शेष तीन मन्त्रियोंके विषयमें पूछा तो उन्होंने बताया कि सम्भिन्नमति और महामति तो तीव्र मिथ्यात्वके कारण निरोदको प्राप्त हुए हैं और शतमति दूसरे नरक गया है। श्रीधरदेवने दूसरे नरक जाकर शतमतिके जीवको सम्यग्दर्शन धारण कराया। श्रीधरदेवका जीव स्वर्गसे च्युत होकर सुविधि हुआ।

(७) सुविधि—सुसीमा नगरके राजा सुदृष्टि और उनकी रानी सुनन्दाके पुत्र हुआ था। श्रीमतीका जीव, स्वयंप्रभ भी स्वर्गसे च्युत होकर सुविधिके केशव नामका पुत्र हुआ। पूर्व भवके कारण सुविधिका केशवके ऊपर अत्यन्त राग था। सुविधि, अभयघोष चक्रवर्तीका भानेज था इसलिए उसने चक्रवर्तीकी पुत्री मनोरमाके साथ विवाह कर चिरकाल तक राज्यसुखका उपभोग किया। अन्तमें तपश्चरण कर सुविधि अच्युत स्वर्गमें इन्द्र हुआ। केशवका जीव भी स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ।

(८) अच्युतेन्द्रका बाईस सागरका समय सानन्द व्यतीत हुआ तदनन्तर वहाँसे चयकर वह वज्रनाभि हुआ।

(९) वज्रनाभि—जम्बूद्वीप सम्बन्धी पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीके राजा वज्रसेन और उनकी रानी श्रीकान्ताका पुत्र था। केशवका जीव भी इसी नगरीमें कुबेरदत्त वणिक् और उसकी अनन्तमति स्त्रीके धनदेव नामका पुत्र हुआ। वज्रनाभि चक्रवर्ती था अतः चक्ररत्नके प्रकट होनेपर वह दिग्विजयके लिए निकला। इसी पर्यायमें दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारणभावनाओंका चिन्तन कर उसने तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध किया। अन्तमें समाधिमरण कर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ। केशवका जीव भी यहीं अहमिन्द्र हुआ।

(१०) सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र—तैंतीस सागरकी आयुवाला था, तैंतीस हजार वर्ष बाद उसे आहारकी इच्छा होती थी और तैंतीस पक्ष बाद स्वासोच्छ्वास चलता था । उसका उतना लम्बा समय तत्त्वचर्चामें व्यतीत हुआ ।

पुरुदेवचम्पूकारने भगवान् वृषभदेवके उपर्युक्त दश भवोंके प्रसंगमें उनसे सम्बन्ध रखने वाले अन्य लोगोंके भी भवान्तरोंका वर्णन किया है । यह पूर्वभव वर्णन प्रारम्भके तीन स्तवकोंमें पूर्ण हुआ है । आख्यानकी दृष्टिसे यह भाग, काव्यप्रबन्ध न रह कर पुराण बन गया है परन्तु कविने इस भागको भी अलंकारोंकी पुट देकर काव्य प्रबन्ध बनानेका पूर्ण प्रयत्न किया है और उसमें वे सफल भी हुए हैं । कुछ भाग तो साहित्यिक दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है ।

भरत और बाहुबली

भरत, भगवान् वृषभदेवके प्रथम पुत्र थे । यह इस अवसर्पिणी युगमें होनेवाले बारह चक्रवर्तियोंमें प्रथम चक्रवर्ती थे । भगवान् आदिनाथको केवलज्ञान, भरतकी स्त्रीके प्रथम पुत्र रत्न और आयुधशालामें चक्ररत्न ये तीन कार्य एक साथ प्रकट हुए थे । 'धर्म ही अर्थ और कामका मूल है' ऐसा विचारकर भरतने सर्वप्रथम भगवान् आदिनाथके केवलज्ञान कल्याणका महोत्सव मनाया । कुबेर द्वारा रचित समवसरणमें जाकर उन्होंने भगवान्की पूजा की । दिव्यध्वनि सुनी । पश्चात् घर आकर पुत्र जन्मका उत्सव किया तदनन्तर दिग्विजयके लिए प्रस्थान किया । जिनसेनाचार्यने अपने आदिपुराणमें इस दिग्विजयका विस्तारके साथ वर्णन किया है । उसी आधारपर अर्हद्वासजीने भी यहाँ दिग्विजयका वर्णन यथासम्भव विस्तारसे किया है और इस वर्णनमें उन्होंने पूरा नवम स्तवक व्याप्त किया है । (पाँच सौ छब्बीस योजन विस्तृत भरतक्षेत्रके छह खण्डोंमें भ्रमण करते हुए भरत चक्रवर्तीको साठ हजार वर्ष लगे थे ऐसा आदिपुराणमें स्पष्ट किया गया है ।)

दिग्विजयसे लौटनेके बाद जब चक्ररत्नने अयोध्यामें प्रवेश नहीं किया तब पुरोहितने बताया कि अभी आपको अपने भाइयोंको वश करना बाकी है, उनके वशीभूत होनेपर ही चक्ररत्नका अयोध्यामें प्रवेश होगा । पुरोहितकी आज्ञानुसार भरतने सब भाइयोंके पास दूत भेजे और अधीनता स्वीकृत करनेका आदेश भेजा । बाहुबलीको छोड़ सब भाइयोंने संसारसे विरक्त हो दीक्षा धारण कर ली परन्तु बाहुबलीने युद्ध करनेकी इच्छा प्रकट की । दोनों ओरकी सेनाएँ युद्धस्थलमें आ पहुँचीं तब उभयपक्षके मन्त्रियोंने विचार किया कि भरत और बाहुबली—दोनों ही चरमशरीरी—तद्भवमोक्षगामी हैं अतः इनका तो कुछ झिगड़ने-वाला नहीं है परन्तु युद्धमें निरपराध सैनिक मारे जायेंगे । अच्छा हो कि ये अपना शक्ति परीक्षण स्वयं करें । मन्त्रियोंकी संमतिमें दोनोंके बीच दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध होना निश्चित हुए । बाहुबलीने तीनों युद्धोंमें भरतको पराजित कर दिया । भरतने क्रोधसे पीड़ित हो बाहुबलीके ऊपर चक्ररत्न चला दिया । पर यह चक्ररत्न भी बाहुबलीकी प्रदक्षिणा देकर अकर्मण्य हो गया ।

इस घटनासे बाहुबलीको वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने दीक्षा धारण कर ली । एक वर्ष तक खड़े-खड़े तपश्चरण किया । ग्रीष्म ऋतुकी धूप, वरसातकी मूसलधार वर्षा और शीतकालकी भयंकर शीत-लहर उन्हें ध्यानसे विचलित नहीं कर सकी । एक वर्षके बाद उन्हें केवलज्ञान हो गया ।

भरत निष्कण्ठक राज्य करने लगे । इन्होंने ब्राह्मणवर्णकी स्थापना की तथा उन्हें धार्मिक संस्कारोंका उपदेश दिया । दिग्विजयके समय जो जयकुमार इनके सेनापति थे उन्होंने संसारसे विरक्त होकर आदिजिनेन्द्र के पास दीक्षा धारण कर ली और भगवान्के समवसरणमें गणधर पद प्राप्त किया । माघ कृष्ण चतुर्दशीके दिन भगवान् आदिनाथने कैलासपर्वतसे मोक्ष प्राप्त किया । अन्तमें भरतने भी दीक्षा धारण कर यत्र-तत्र भ्रमण कर धर्मोपदेश दिया और उसी कैलाससे निर्वाणपद प्राप्त किया ।

भरतके नामपर ही इस देशका भारत नाम प्रसिद्ध हुआ है, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है ।

छन्दोयोजना

गुरुदेवचम्पूमें प्रायः सभी प्रसिद्ध छन्दोंका प्रयोग हुआ है। 'रसके अनुरूप छन्दका प्रयोग काव्यकी शोभा बढ़ा देता है' इस सिद्धान्तकी दृष्टिमें रखते हुए कविने रसके अनुरूप ही छन्दोंका चयन किया है। यहाँ छन्दोंका वर्णानुक्रमसे नामोल्लेख किया जाता है तथा उनके आगे उन छन्दोंवाले स्तवकों व पद्योंके अंक दिये जाते हैं—

अनुष्टुप् (८ वर्ण, पाँचवाँ लघु, छठा गुरु, सातवाँ १-३ गुरु २-४ लघु)

[१] १६, १७, २०, २२, २५, २८, २९, ३१, ३२, ३४, ३५, ३७, ३८, ३९, ४१, ४३, ४४, ४६, ४८, ५२, ५४, ५६, ६८, ६९, ७० । [२] ४, ६, १०, १४, १५, १६, १७, २०, २५, २७, २८, ३०, ३१, ३३, ३५, ३६, ३७, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४७, ४८, ४९, ५३, ५४, ५६, ५७, ६१, ६४, ७०, ७१ । [३] १, ३, ४, ५, ९, ११, १२, १४, १६, १७, २२, २३, २६, २७, २९, ३१, ३२, ३६, ३७, ३८, ४०, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ५०, ५१, ५३, ५४, ५८, ६५ । [४] २, ७, १७, १८, २०, २१, २२, २६, २८, २९, ३०, ३२, ३४, ३५, ४०, ५२, ५३, ६०, ६३, ६६, ६७, ६८, ७१, ७२ । [५] २, ६, ११, २३, २९, ३४, ३७, ३८, ४० । [६] ५, ११, १३, १५, १६, १७, २०, २३, २६, २८, ३२, ३९, ४३ । [७] ३, ७, १०, १६, १८, २२, ३१, ३४, ३७ । [८] ४, ५, ७, १२, १५, १६, १८, १९, ३०, ३४, ४२ । [९] २, ९, १०, ११, १६, २०, २४, २५, २६, २८, २९, ३१, ३३, ३४, ३६, ३८ । [१०] ५, ८, ९, १२, १४, २०, २१, २२, २६, २७, ३१, ३२, ३५, ३८, ३९, ५१ ।

आर्या (विषम-१२, दूसरा-१८, चौथा-१५ मात्रा)

[३] ५९, ६० । [४] ८, ९, १४, १६, २३, ३३, ४३, ४४, ४७, ४८, ४९, ५०, ६९, [५] १६, १७, १८, २६, २७, २८, ३१, ३२, ३५, ३६ । [६] ७, ३०, ३७, ३८, ४४, ४५ । [७] २५ [८] २९, ३२, ३८, ३९, ४१ ।

इन्द्रवज्रा (११ वर्ण तौ ज गौ गः)

[४] १ [७] २, ३५, [९] ३५ [१०] ३७ ।

उपजाति (११ वर्ण, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा मिश्रित)

[१] ३, ९, १३, ४५, ४९, ५९, ६२, ६६, ७३ । [२] ११, २३, ४६, ५०, ५९, ६०, ६६, ६९ । [३] २, १०, १५, २५, ३०, ३५, ५५, ६१, ६४ । [४] ४, ५, ६, ११, १२, २५, ५८, ६२ । [५] ३९ । [६] २२, २७, ३५, ४० । [७] ४, २१, ४० । [८] १० । [९] ५ [१०] २८, ४०, ४७, ४९ ।

उपेन्द्रवज्रा (११ वर्ण, ज त ज गौ)

[१] ५५ [२] ५२ [४] ४६, ५४, ५६ [१०] १ ।

द्रुतविलम्बित (१२ वर्ण, न भौ भ रौ)

[१] ५७ [८] ४ [१०] ४८, ५० ।

पुष्पिताग्रा (विषम-न न र य, सम-न ज ज र ग)

[६] ६ [१०] २४

पृथ्वी (१७ वर्ण, ज सौ ज स य)

[१] ४, १४, २४, २६, ४०, ५० । [२], १३, ६३ । [३] २०, २१, २८ । [४] ५१ [५] १३ [७] ८, ३२ । [८] १७, ४५ । [९] ३, ८, २७, ३० । [१०] २३ ।

भुजङ्गप्रयात (१२ वर्ण, ययौ ययौ)

[१] ५८ [६] ९ ।

मञ्जुभाषिणी (१३ वर्ण, सजसा जगौ)

[१] ६३ [२] ३४

मन्दाक्रान्ता (१७ वर्ण, मो भनौ तौ गौ)

[१] ३, १८, ४२ । [२] १ [३] ८, ५६ । [४] १०, ६४ । [५] १४, १९ । [७] १२, २३ । [१०] १, १५ ।

माकिनी (१५ वर्ण, न न म य य)

[२] ८ [३] १९, ३४, ३५, ४१ । [४] ३१, ५७ । [५] ४ [६] १८, ४१ । [७] १७, ४२ । [८] ३५ [१०] ३३, ४५ ।

रथोद्धता (११ वर्ण, रतरा लगौ)

[२] ५ [३] ६२ [४] ४२ [५] २५ [७] २८

वंशस्थ (१२ वर्ण, जती जरौ)

[१०] ६

वसन्ततिलका (१४ वर्ण, तभज जगौ गः)

[१] २१, ५१, ५३, ६५ । [२] २४, २६, २९, ३२, ३९, ७० । [३] ७, २४, ४२, ४३, ५२ । [४] २४, २७, ३०, ६५, ७० । [५] ४७ [७] ३९, ४१ । [८] १३, २० । [१०] (प्रशस्ति)

वियोगिनी (विषमे ससजा गुरुः समे सभरा लगौ)

[१०] १० ।

मालभाषिणी

[२] ४५ [६] २, ४ । [७] २९ [९] २१, २३ । [१०] २५ ।

शार्दूलविक्रीडित (१९ वर्ण, मः सजौ सतत गाः)

[१] २, ६, ८, ११, १२, १५, १९, ३६, ६४, ६७, ७२, ७४ । [२] २, १२, २१, ५८ । [३] ६, १८, ३९, ४९ । [४] ३, १५, १९, ३६, ३८, ३९, ५५, ६१ [५] १, ३, ७, ८, १०, १२, २०, २१ । [६] १, ३, १०, २९, ३३, ३४, ४८ । [७] १, ९, ११, १३, १४, १५, १९, २६, २७, ३८ । [८] ६, ९, २४, २८, ३३, ४३, ४६ । [९] ४, ५, ३२ [१०] ३, ७, १३, १९, २९, ३६, ४४, ४६ ।

शाकिनी (११ वर्ण, म तौ गौ)

[२] ५१, ६७ [४] ५९ [५] १४ [७] २४ ।

शिखरिणी (१७ वर्ण, य म न स भ ला गः)

[१] १, २, १०, २७, ३०, ३३, ४७ । [२] ७, ९, १९, ५५, ६४ । [३] १३, ५७, ६३ । [५] ९, १५, २४, ३० । [६] २१, २४, ३१, ३६, ४२ । [७] ६, २०, ३०, ३३, ३६ । [८] २, ३, ८, ११, १४, ३६ । [९] ८, १२, १३, १४, १७, १८ । [१०] २, ११, ३०, ३४, ४२ ।

सुगंधरा (२१ वर्ण, भ र भ न य य य)

[१] ६२ [३] ३३ [४] ४५ [५] २२ [६] २५, ४६ । [८] १७, २२, २३, ३१, ४४ । [९] १, ६, ७, १९, २२, ३७ ।

स्वागता (११ वर्ण, र न भ गौ)

[२] २२, ३८ । [४] ४१ [५] ३३ [६] ८ ।

हरिणी (१७ वर्ण, न स म र स ला गः)

[२] ३, १८, ६२, ६८ [४] १३ [५] ५, १९ [६] १२ [७] ५ [८] १, २१, २५,
२६ [९] १५ [१०] १६, १७, ४१, ४३

पुरुदेवचम्पू प्रबन्धका यह संस्करण और आभार-प्रदर्शन

आदिपुरुष भगवान् वृषभदेवको कथानायक बनाकर कविवर अर्हदासजीने अपनी काव्यप्रतिभाको कृतकृत्य किया है। आजसे ४३ वर्ष पूर्व जब मैं सागरके गणेश० विद्यालयमें अध्ययन करता था तब श्रीमान् पं० जिनदासजी शास्त्री फड़कुलेके द्वारा सम्पादित होकर माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बईसे पुरुदेवचम्पूका प्रकाशन हुआ था। नयी पुस्तक छपकर आयी थी अतः उसके पढ़नेका उत्साह हृदयमें उत्पन्न हुआ। विद्यालयके तात्कालिक साहित्याध्यापक श्री कपिलेश्वर शाने इसे पढ़ाना स्वीकृत किया और मनोयोगपूर्वक मैंने इसका अध्ययन शुरू कर दिया। दो-तीन वर्ष बाद मैं इसी विद्यालयमें जब साहित्याध्यापक हो गया तब प्रायः प्रतिवर्ष इसे पढ़ानेका अवसर मिलने लगा। ज्यों-ज्यों अनुभव बढ़ता गया त्यों-त्यों इसकी साहित्यिक विधाकी ओर आकर्षण बढ़ता गया। श्री पं० जिनदासजीने टिप्पणीके द्वारा ग्रन्थका हार्द प्रकट करनेका प्रयत्न तो किया परन्तु ऐसे श्लेषमय ग्रन्थोंका हार्द संक्षिप्त टिप्पणसे प्रकट नहीं होता अतः मनमें इच्छा होती थी कि इसकी एक टीका लिख दूँ इसके पूर्व जीवन्धरचम्पूकी टीका लिख चुका था। संस्कृत और हिन्दी टीका सहित उसका प्रकाशन जैन विद्वानोंने तो पसन्द किया ही परन्तु मध्यप्रदेशीय शासन साहित्यपरिषद्ने भी उसे अत्यन्त पसन्द किया और सन् १९६० में उसपर ५००) का मित्र पुरस्कार घोषित किया।

पिछले वर्षोंमें जब भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्की ओरसे गुरुगोपालदास बरैया शताब्दी समारोहका उत्सव दिल्लीमें किया गया तब उसमें जानेका अवसर मिला। उसी प्रसंगपर लोकप्रिय वक्ता श्री १०८ मुनि विद्यानन्दजीसे साक्षात् मिलनेका भी अवसर प्राप्त हुआ। मिलते ही आपने कहा कि 'पुरुदेवचम्पूकी टीका भाप कर दीजिए'। मैंने कहा कि हो जायेगी। दिल्लीसे वापस आनेपर महाराजजीका ओर भी आदेश मिला। उससे प्रेरित होकर मैंने टीकाका काम प्रारम्भ कर दिया। हस्तलिखित प्रतिसे पाठभेद लेनेके बाद संस्कृत और हिन्दी टीका लिखी। तैयार होनेपर मैंने पाण्डुलिपि श्री १०८ मुनि विद्यानन्दजीके पास भेज दी। उन्होंने बड़ीतेके चातुर्मासमें उसे मनोयोगपूर्वक देखा। श्लेषमय ग्रन्थकी मात्र हिन्दी टीकासे ग्रन्थका भाव स्पष्ट नहीं होता क्योंकि हिन्दीमें कोश, व्याकरण तथा अलंकारका चमत्कार उतना प्रकट नहीं किया जा सकता जितना कि संस्कृतमें; इसलिए मैंने दोनों टीकाएँ लिखी थीं। परन्तु दोनों टीकाओंको मिलाकर ग्रन्थका परिमाण विस्तृत हो गया अतः मुनिजी द्वारा उसके प्रकाशनकी व्यवस्था नहीं हो सकी। ऐसे प्रकाशन, व्ययसाध्य होनेसे छोटी-मोटी संस्थाओंसे हो भी नहीं सकते अतः भारतीय ज्ञानपीठके मन्त्री श्रीमान् बाबू लक्ष्मीचन्द्रजीको मैंने लिखा और प्रसन्नताकी बात है कि उन्होंने यह अपूर्व ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे प्रकाशित करना स्वीकृत कर लिया। पूज्य मुनिराजसे इसके निर्माणकी प्रेरणा मिली और ज्ञानपीठकी ओरसे इसके प्रकाशनकी व्यवस्था हुई इसलिए मैं मुनिराज जी तथा ज्ञानपीठके संचालकोंका अत्यन्त आभारी हूँ। साहित्य प्रकाशनके क्षेत्रमें भारतीय ज्ञानपीठने थोड़े ही समयमें जो कार्य किया है वह वचनागोचर है।

पुरुदेवचम्पूप्रबन्ध अपने ढंगका एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसके श्लेष बहुत बुद्धिगम्य हैं उनका भाव प्रकट करनेका मैंने बुद्धिपूर्वक प्रयत्न तो किया है पर शायोपशमिक ज्ञानका भरोसा क्या? अतः त्रुटियोंके लिए मैं विद्वद्गणसे क्षमाप्रार्थी हूँ।

सागर (म. प्र.)

माघ कृष्ण ८ वीर. २४९८

विनीत

पन्नालाल जैन

विषयानुक्रमणिका

प्रथम स्तबक	साधारण अंक	पृष्ठ
मङ्गलाचरण	१-७	१-४
पूर्वकविस्मरण	८-१०	५
उपोद्घात	११-१२	६
जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्रमें विजयार्थ पर्वतको उत्तरश्रेणी अलका नामकी नगरी है ।	१३	६-९
नगरी वर्णन	१४-२०	१०-१२
अलका नगरीका राजा अतिबल था, उसका वर्णन	२१-२४	१३-१४
अतिबलकी मनोहरा रानी थी, उसका वर्णन	२५-२६	१४-१६
अतिबल और मनोहराके महाबल नामका पुत्र हुआ, उसका वर्णन	२७-२९	१६-१७
राजा अतिबल, महाबलको युवराज बनाकर भोगोपभोगमें लीन हो गया	३०	१७
किसी समय राजा अतिबलने संसारसे विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली	३१	१७-१८
महाबलका राज्य वर्णन	३२-३५	१८-२०
महाबलके यौवनका वर्णन	३६-३८	२०-२१
राजा महाबलके महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध ये चार मन्त्री थे । उन सभीमें स्वयंबुद्ध सम्यग्दृष्टि था	३९-४०	२१-२२
राजा महाबलके भोगोपभोगका वर्णन	४१-४३	२२-२३
किसी समय राजा महाबलके वर्षवृद्धि महोत्सवमें स्वयंबुद्ध मन्त्रीने रौद्रध्यान, आर्तध्यान, धर्म्यध्यान और शुक्लध्यानके फलको सूचित करनेवाली अरविन्द, दण्ड, शतबल और सहस्रबल विद्याधरकी कथाएँ सुनायीं । जिन्हें सुनकर राजा महाबलने उसका बहुत सम्मान किया	४४-६२	२३-३०
एक बार स्वयंबुद्ध मन्त्री जिनचैत्यालयोंकी वन्दना करनेके लिए सुमेरु पर्वतपर गया । इस सन्दर्भमें सुमेरुका वर्णन	६३-६५	३१-३२

स्वयंबुद्ध मन्त्री वन्दना कर सीमन्तसवनके पश्चिम दिशा सम्बन्धी चैत्यालयमें बैठा ही था कि वहाँ चारणऋद्धिके धारी आदित्यगति और अरिंजय नामके दो मुनिराज जा पहुँचे । उनके दर्शन कर स्वयंबुद्धने उनसे पूछा कि हे भगवन् ! हमारा राजा महाबल भव्य है या अभव्य ?

६६-६९

३२-३४

स्वयंबुद्धके प्रश्नके उत्तरमें आदित्यगति मुनिराजने कहा कि वह भव्य है और दशमभवमें भरतक्षेत्रका तीर्थकर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा । इसी सन्दर्भमें उन्होंने महाबलके पूर्वभव सुनाते हुए कहा कि वह पश्चिम विदेहमें सुशोभित गन्धिला देशके सिंहपुर नगरके राजा श्रीषेण और श्रीमुन्दरीका जयवर्मा नामका पुत्र था । छोटे भाईको राज्य दिये जानेके कारण उसने संसारसे विरक्त हो मुनिदीक्षा ले ली । एक दिन आकाशमें वैभवके साथ जाते हुए एक विद्याधरको देखकर उसने निदान किया । उसी समय साँपके काटनेसे उसकी मृत्यु हो गयी और वह भरकर महाबल हुआ । पूर्वभव सम्बन्धी भोगलिप्साके कारण ही वह भोगोंमें लिप्त हो रहा है ।

७०-७५

३४-३५

आदित्यगति मुनिराजने यह भी कहा कि आज महाबलने दो स्वप्न देखे हैं । पहले स्वप्नमें देखा है कि तुम्हारे सिवाय तीन मन्त्रियोंने उसे बहुत भारी कीचड़में गिरा दिया है परन्तु तुमने उन मन्त्रियोंको डाँटकर महाबलको कीचड़से निकाला तथा सिंहासनपर बैठाकर अभिषेक किया । दूसरे स्वप्नमें क्षीण होती हुई दीपककी ज्वाला देखी है । वह स्वप्नोंका फल जाननेके लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है सो तुम जाकर उसे स्वप्नोंका फल बताओ । पहला स्वप्न उसकी समृद्धिको सूचित करनेवाला है और दूसरा स्वप्न, उसकी आयु एक माहकी शेष है, यह सूचित करना है । तुम्हारे मुखसे स्वप्नोंका फल सुनकर वह धर्म में श्रद्धा करेगा । यह कहकर मुनिराज चले गये । स्वयंबुद्धने भी घर आकर महाबलको स्वप्नोंका फल सुनाया ।

७६-८१

३५-३७

स्वयंबुद्ध मन्त्रीके मुखसे स्वप्नोंका फल सुनकर महाबलने आठ दिन तक आष्टाह्निक पर्वका सहोत्सव किया और शेष २२ दिनकी सल्लेखना धारण की । अन्तमें समताभावसे प्राण त्यागकर वह ऐशानस्वर्गमें ललितान्ग नामका देव हुआ ।

८२-८६

३७-३९

ललितान्गकी शोभा और वैभवका वर्णन

८७-९६

३९-४४

वहाँ ललितान्गदेवकी अनेक देवांगनाएँ हुई । अन्तमें स्वयंप्रभा नामकी देवी हुई जो बहुत ही सुन्दर थी । स्वयंप्रभाके साथ ललितान्गदेव नाना द्वीप समुद्रोंमें क्रीडा करता हुआ काल व्यतीत करने लगा ।

९७-१०२

४४-४६

स्तवकान्तमंगल

१०३

४७

द्वितीय स्तबक

आयु समाप्त होनेपर ललितांग देव स्वर्गसे च्युत होकर जम्बूद्वीप सम्बन्धी पुष्कलावती देशमें स्थित उत्पलखेट नामक नगरीके राजा वज्रबाहु और उनकी रानी वसुन्धराके वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ । वज्रजंघ बालचन्द्रके समान बढ़ने लगा ।

१-५

४८-५०

ललितांगदेवके वियोगसे स्वयंप्रभा देवी दुःखी तो हुई परन्तु दूढ़वर्म नामक देवके द्वारा सम्बोधित होकर उसने छहमाह तक जिनेन्द्र की पूजा की । पश्चात् सौमनस वनके चैत्यवृक्षके नीचे पंच परमेष्ठीका ध्यान करती हुई वहाँसे च्युत हुई और जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्व-दिशेह क्षेत्रकी पुण्डरीकिणी नगरीमें वहाँके राजा वज्रदन्त और रानी लक्ष्मीमतीके श्रीमती नामक पुत्री हुई । श्रीमती बहुत ही सुन्दर थी ।

६-१०

५०-५२

एक दिन श्रीमती राजभवनकी छतपर सो रही थी । उसी समय यशोधर केवलीकी पूजासे लौटे हुए देवोंका कल-कल शब्द सुनकर जाग गयी । इस घटनासे उसे जाति-स्मरण हो गया जिससे ललितांग देव उसकी आँखोंके सामने झूलने लगा । पहले तो वह मूर्च्छित हुई पश्चात् शीतलोपचार करनेसे सचेत हो गयी । वह मौनसे रहने लगी । माता-पिता आदि सभी उसकी चेष्टासे दुःखी हुए ।

११-१५

५२-५६

श्रीमतीके पिता वज्रदन्त चक्रवर्ती थे । वे प्रकट हुए चक्ररत्नकी पूजाको स्थगित कर अपने पिताके केवलज्ञान महोत्सवमें गये । वहाँ केवली भगवान्को नमस्कार करते ही उन्हें अवधिज्ञान हो गया जिससे वे अपने, श्रीमती तथा वज्रजंघके पूर्वभवोंको स्पष्ट जानने लगे । कैवल्य महोत्सवसे लौटकर वे दिग्विजयके लिए चल दिये और श्रीमतीकी सेवाके लिए पण्डिता नामक धायको नियुक्त कर गये ।

१६-२०

५६-५८

पण्डिता धायने एक दिन अशोक वाटिकामें स्थित श्रीमतीसे प्रेमपूर्वक उसके मौन रहनेका कारण पूछा तब उसने जाति-स्मरणको उसका कारण बताया । इसी सन्दर्भमें ललितांगदेव सम्बन्धी अनेक घटनाएँ सुनायीं । मैं पहले क्या थी, यहाँ कैसे उत्पन्न हुई, यह सब बताया । अन्तमें उसने अपने द्वारा लिखित चित्रपट देते हुए पण्डिता धायसे कहा कि तुम इस चित्रपटको दिखाकर उस ललितांगदेवका पता चलाओ । पण्डिता धायने उसे सान्त्वना दी ।

२१-३८

५८-६४

पण्डिता धाय चित्रपट लेकर महापूत नामक चैत्यालयमें गयी और वहाँ चित्रपट फैलाकर लोगोंको दिखलाने लगी ।

३९-४२

६५-६६

इसी बीचमें चक्रवर्ती दिग्विजयसे लौटकर राजधानीमें वापस आ गये । वापस आकर उन्होंने श्रीमतीको सान्त्वना दी और पिछले पाँच भवोंका वर्णन उसे सुनाया तथा यह भी बताया कि ललितांग देव हमारा भानेज है । वह यहाँ आ रहा है तथा शीघ्र ही उसके साथ

तुम्हारा सम्बन्ध होगा अतः शोक छोड़ो । यह कहकर वे राजा वज्र-
बाहु, बहन वसुन्धरा और उनके पुत्र वज्रजंघका स्वागत करनेके
लिए चल पड़े ।

४३-६८

६६-७६

इसी बीचमें पण्डिता धायने महापूत जिनालयसे लौटकर ललितांग देव-
का परिचय प्राप्त होनेका सुखद समाचार सुनाया । इसी सन्दर्भमें
उसने वज्रजंघकी सुन्दरताका वर्णन किया ।

६९-८८

७७-८४

चक्रवर्ती वज्रदन्तने राजा वज्रबाहु आदिका स्वागत किया । अनन्तर
श्रीमती और वज्रजंघके विवाहकी तैयारियाँ हुई । माताओंने अपने
पुत्र-पुत्रियोंको वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित किया । राजा वज्रदन्तने
जलधारा पूर्वक वज्रजंघके लिए श्रीमतीका पाणिग्रहण कराया ।

८९-१०४

८५-९१

दूसरे दिन वज्रजंघने श्रीमतीके साथ जितमन्दिर जाकर जिनेन्द्र
भगवान्का स्तवन किया । बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओंने वज्र-
जंघ और श्रीमतीका सम्मान किया । वज्रजंघ और श्रीमती परस्पर-
के मिलापसे अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

१०५-११६

९१-९५

वज्रबाहुने अपनी अनुन्दरी नामक कन्या वज्रदन्तके पुत्र अमिततेजके
लिए प्रदान की ।

११७-११८

९५-९६

तृतीय स्तवक

कुछ समय तक ससुरालमें रहनेके बाद वज्रजंघ श्रीमतीके साथ अपने
नगरमें वापस आये । वहाँ सुखोपभोगमें उनका समय व्यतीत होने
लगा । कालक्रमसे श्रीमतीने पचास युगल पुत्र उत्पन्न किये । इसी
बीच वज्रजंघके पिता वज्रबाहु संसारसे विरक्त हो मुनि हो गये और
केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष चले गये । वज्रजंघ पैतृक सम्पत्तिको
प्राप्त कर प्रजाका पालन करने लगे ।

१-८

९७-९९

इधर श्रीमतीके पिता वज्रदन्त चक्रवर्ती भी संसारसे विरक्त हो मुनि
हो गये । उनके पुत्रोंने भी उन्हींके साथ दीक्षा ले ली । राज्यका भार
बालक पुण्डरीकपर आ पड़ा । श्रीमतीकी माताने वज्रजंघके पास
समाचार भेजा जिससे वे श्रीमतीके साथ वहाँ गये । उनके साथ एक
बड़ी सेना भी गयी थी । वज्रजंघ और श्रीमतीने मार्गमें एक
तालाब के किनारे मुनिराजको आहार दान दिया । वे मुनि श्रीमती-
के ही पुत्र थे । दसधर सेन उनका नाम था । उनके मुखसे वज्रजंघ-
ने धर्मका उपदेश सुना तथा अपने और श्रीमतीके पूर्वभव पूछे ।
तदनन्तर यतिवर, धनमित्र, अकम्पन आदिके भी पूर्वभव पूछे ।

९-१९

९९-१०३

मुनिराजने उन सबके भवान्तर बताये । पश्चात् वज्रजंघने नकुल,
शार्दूल, गोलंगूल और सूकरके विषयमें प्रश्न किया कि ये जीव
निर्भय होकर यहाँ क्यों बैठे हैं ? मुनिराजने उन सबके भवान्तर भी

उन्हें बताये । साथ ही यह भी कहा कि ये जीव पात्रदानकी अनु-
मोदना करनेसे आपके साथ ही भोगभूमिमें उत्पन्न होंगे तथा
आगामी भवोंमें भी आपके ही साथ उत्पन्न होते रहेंगे । मुनिराज
चले गये ।

२०-३९

१०३-११०

वज्रजंघने पुण्डरीकिणी नगरी जा कर वहाँ की राज्यव्यवस्थाको
व्यवस्थित किया और वहाँसे लौटकर अपनी राजधानीमें प्रवेश
किया । वहाँ श्रीमतीके साथ सुखोपभोग करते हुए समय व्यतीत
करने लगे ।

४०-४२

११०-१११

वज्रजंघ और श्रीमती आयु समाप्त होने पर जम्बूद्वीपके विदेहक्षेत्र
सम्बन्धी उत्तरकुक्षेत्रमें आर्य दम्पती हुए । पूर्वोक्त मतिवर आदि
तथा नकुल आदि भी वहीं उत्पन्न हुए ।

४३-४७

११२-११४

दोनों दम्पती वहाँ कल्पवृक्षकी छायामें क्रीडा कर रहे थे । उसी समय
आकाशमें सूर्यप्रभ विमानको देखकर उन्हें जातिस्मरण हो गया ।
जातिस्मरण होनेसे वे प्रतिबोधको प्राप्त हो ही रहे थे कि उत्तनेमें दो
चारणऋद्धिधारी मुनिराज वहाँ जा पहुँचे । आर्यदम्पतीने उन्हें
नमस्कार कर उनसे वहाँ पहुँचनेका कारण पूछा । उनका प्रश्न सुन
ज्येष्ठ मुनि कहने लगे कि मैं आपके महाबल भवमें स्वयंबुद्ध नामका
मन्त्री था । आपके वियोगसे खिन्न हो कर मैंने दीक्षा ले ली और तप
कर मैं सौधर्म* स्वर्गमें मणिचूल नामक देव हुआ । वहाँसे आकर
पुण्डरीकिणी नगरीमें सुन्दरी और प्रियसेन राजदम्पतिके प्रीतिकर
नामक पुत्र हुआ । यह मेरा छोटा भाई है । स्वयंप्रभ जिनेन्द्रके समीप
दीक्षा लेकर हम दोनोंने तपश्चरण किया । चारणऋद्धि प्राप्त की ।
अवधिज्ञानसे आपको यहाँ उत्पन्न जान, सम्यग्दर्शन प्राप्त करानेके लिए
यहाँ आये हैं । महाबल भवमें आप सम्यग्दर्शन धारण नहीं कर सके
थे । अब उसे धारण करो । आर्यदम्पतिने सम्यग्दर्शनका स्वरूप सुन-
कर उसे धारण किया । उपदेश देकर दोनों मुनिराज चले गये । आर्य-
दम्पति मरण कर ऐशान स्वर्गमें देव हुए । वज्रजंघका जीव श्रीप्रभ
विमानमें श्रीधर देव और श्रीमतीका जीव स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ
देव हुआ । सार्दूल आदिके जीव भी उसी स्वर्गमें उत्पन्न हुए । श्रीधर
देवके स्वर्ग सुखका उपभोग करने लगा ।

४८-६९

११४-१२०

एक बार श्रीधर देवने प्रीतिकर केवलीसे पूछा कि मेरे महाबल भव-
में जो अन्य तीन मन्त्री थे वे कहाँ हैं । उन्होंने बताया कि संभिन्न-
मति और महामति निगोद गये हैं और शतमति दूसरे नरक गया
है । केवलीके वचन सुनकर श्रीधर देवने दूसरे नरक जाकर
शतमतिके जीवको सम्बोधा जिससे सम्यग्दर्शन धारण कर वह वहाँ से
निकल कर जयसेन हुआ पश्चात् ब्रह्मेन्द्र होकर उसने श्रीधरकी
पूजा की ।

७०-७६

१२१-१२३

श्रीधर देव स्वर्गसे च्युत होकर जम्बूद्वीपके विदेहक्षेत्र सम्बन्धी वत्सकावती देशकी सुसीमा नगरीमें सुविधि नामक पुत्र हुआ । अन्य साथी भी वहीं उत्पन्न हुए । उसके वैभवका वर्णन ।

७७-८६

१२३-१२७

तत्पश्चात् सुविधि, आयुके अन्तमें दीक्षा धारण कर अच्युत स्वर्गका इन्द्र हुआ । इनके अन्य साथी भी उसी स्वर्गमें उत्पन्न हुए । अच्युतेन्द्रके वैभवका वर्णन

८७-९५

१२७-१३०

तदनन्तर अच्युतेन्द्रकी पर्यायसे च्युत होकर अच्युतेन्द्रका जीव जम्बूद्वीप सम्बन्धी पुण्डरीकिणी नगरीमें श्रीकान्त और वज्रसेन नामक दम्पतीके वज्रनाभि नामक पुत्र हुआ यह वक्रवर्ती था । इसके अन्य साथी भी यहीं उत्पन्न हुए । वज्रनाभिकी शरीर सम्पत्ति तथा वैभवका वर्णन

९६-१११

१३०-१३५

एक दिन राजा वज्रनाभिने संसारसे विरक्त होकर वज्रदन्त नामक पुत्रको राज्य दिया और स्वयं जिनदीक्षा धारण कर ली । मुनि अवस्थामें सोलह कारण भावनाओंका चिन्तन कर उन्होंने तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध किया । आयुके अन्तमें समाधिमरण कर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुए । उनके अन्य साथी भी वहीं उत्पन्न हुए । अहमिन्द्र के सुखका वर्णन ।

११२-११८

१३५-१३९

चतुर्थ स्तवक

भोगभूमि और कर्मभूमिके सन्धिकालमें अन्तिम कुलकर नामिराज हुए । उनकी रानीका नाम मरुदेवी था । मरुदेवीका नख-शिख वर्णन ।

१-२०

१४०-१४७

नाभिराज और मरुदेवीसे अलंकृत उस देशमें इन्द्रने अयोध्याकी रचना की । अयोध्याका साहित्यिक वर्णन । इन्द्रने उस नगरीमें राजा नाभिराजका राज्याभिषेक किया । अहमिन्द्रकी आयुके छह माह शेष रहनेपर कुबेरने रत्नवृष्टि की । जिससे यह पृथिवी रत्नगर्भा हो गयी ।

२१-२७

१४७-१५३

कदाचित् महलमें सुखसे सोयी हुई मरुदेवीने सोलह स्वप्न देखे । राजा नाभिराजने उन स्वप्नोंका फल बताया कि तुम्हारे तीर्थकर पुत्र उत्पन्न होगा ।

२८-३६

१५३-१५८

इन्द्रकी आज्ञासे दिक्कन्यकाएँ मरुदेवीकी सेवा करने लगीं तथा तरह-तरह प्रश्नालापिकाओंके द्वारा उनका मन बहलाने लगीं ।

३७-५५

१५८-१६४

चैत्रकृष्ण नवमीके दिन मरुदेवीने जिनबालकको जन्म दिया । जिनेन्द्रका जन्म होते ही तीनों लोकोंमें हर्ष छा गया । प्रसूतिका गृहके दीपक निःप्रभ हो गये, सूर्यका प्रकाश मन्द पड़ गया, दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं और कल्पवृक्षोंसे पुष्प वर्षा होने लगी, अयोध्याकी शोभा निराली हो गयी । पताकाओंके कारण उसमें सूर्य किरणोंका प्रवेश दुर्भर हो गया ।

५६-६७

१६५-१३९

चतुर्णिकाय देवोंके भवनोंमें क्रमशः शंखनाद, भेरीनाद, सिंहनाद और घण्टा नाद हुए । इन्द्रका आसन कम्पित हुआ जिससे जिनेन्द्र भगवान्-के जन्मका निश्चयकर वह जन्माभिषेकके लिए समस्त देवोंके साथ अयोध्या आया ।

६८-८१

१६९-१७४

इन्द्रने इन्द्राणीको प्रसूतिगृहमें भेजा । वहाँ जिनबालक सहित माताको देखकर वह कृतकृत्य हो गयी । माताको मायामयी निद्रामें सुलाकर तथा उनके पास एक कृत्रिम बालक रखकर वह जिनबालकको ले आयी । इन्द्र उस बालकको लेकर ऐरावत हाथीपर सवार हुआ तथा देवसेनाके साथ सुमेरु पर्वतकी ओर चला ।

८२-९६

१७४-१८१

सौधर्मेन्द्र द्वारा सुमेरुपर्वतका वर्णन । पाण्डुकवनमें पाण्डुक शिलापर इन्द्रने जिनबालकको पूर्वाभिमुख विराजमान किया ।

९७-११०

१८१-१८७

पंचम स्तबक

सौधर्मेन्द्रने समस्त देवोंको अभिषेकके कार्यमें नियोजित किया । जिनबालकके वाम और दक्षिण भागमें स्थित आसनोंपर सौधर्म और ऐशान इन्द्र आरूढ हुए ।

१-३

१८८-१८९

‘भगवान्के शरीरका स्पर्श करनेके लिए क्षीर सागरका जल ही योग्य है’ ऐसा विचारकर उसका जल लानेके लिए आकाशमें देवोंकी दो पंक्तियाँ खड़ी हो गयीं । सुवर्ण-कलश उनके हाथमें थे । क्षीर समुद्रकी शोभाका वर्णन ।

४-८

१८९-१९३

समुद्रसे भरकर लाये हुए कलशोंसे जिनबालकका अभिषेक हुआ । भगवान्पर पड़ती हुई जलधाराकी शोभाका वर्णन । देवोंने भक्ति-भावसे अभिषेक सम्पन्न किया । देवोंमें जय-जयकारका भारी कोलाहल उत्पन्न हुआ ।

९-१६

१९३-२००

अभिषेकका जल सुमेरुको व्याप्त करता हुआ समस्त भूभागमें व्याप्त हो गया । तारामण्डलमें अभिषेक जलकी शोभाका वर्णन । शुद्ध जलका अभिषेक समाप्त होनेपर सुगन्धित जलसे भगवान्का अभिषेक हुआ । इन्द्राणीने भगवान्के अंगको पोंछ कर आभूषण पहनाये ।

१७-२४

२०१-२०४

इन्द्रने आभूषणोंसे विभूषित जिनबालककी सारगर्भित शब्दोंमें स्तुति की । पश्चात् देवसेनाके साथ वापस आकर इन्द्रने माता-पिताके लिए जिनबालकको सौंपा । पुत्रका मुखचन्द्र देखकर माता-पिताका हर्ष-सागर हिलोरें लेने लगा ।

२५-३१

२०४-२०६

नाभि राजाने पुत्रजन्मका उत्सव किया । इन्द्रने ताण्डव नृत्य कर सबको आश्चर्यमें डाल दिया । इन्द्रका नृत्य देखकर राजा नाभिराज महर्षि-के साथ आश्चर्यको प्राप्त हुए । इन्द्रने भगवान्का वृषभदेव नाम रखा ।

इस प्रकार जन्मकल्याणकका कार्य पूर्ण कर इन्द्र स्वर्गको वापस चला गया ।

३२-४९

२०७-२१३

जिनबालक और उनकी बाललीलाओंका वर्णन ।

५०-६५

२१४-२२१

षष्ठ स्तबक

भगवान् वृषभदेवके शरीरका वर्णन ।

१-१५

२२२-२२७

यौवनका प्रारम्भ होनेपर पिता नाभिराजने उनसे विवाहकी प्रार्थना की । भगवान् वृषभदेवने मन्दहास्यपूर्वक पिताकी आज्ञा स्वीकृत की । कच्छ, महाकच्छकी बहनें यशस्वती और सुनन्दाके साथ उनका विवाह सम्पन्न हुआ । उन स्त्रियोंके साथ सुखोपभोग करते हुए भगवान्का बहुत भारी समय क्षणभरके समान बीत गया ।

१६-२६

२२७-२३१

किसी समय रानी यशस्वतीने शुभस्वप्न देखकर गर्भधारण किया । गर्भवती यशस्वतीका वर्णन ।

२७-३७

२३१-२३६

तदनन्तर शुभलग्नमें यशस्वतीने पुत्र उत्पन्न किया । पितामह नाभिराजने पोतेके जन्मका महोत्सव किया । मत्तचाहा दान दिया । पुत्रका नाम भरत रखा गया । उसीके नामसे इस देशका भारत नाम प्रसिद्ध हुआ ।

३८-४८

२३६-२४१

भरतकी बालचेष्टाओंका वर्णन । भरत, धीरे-धीरे युवावस्थामें प्रविष्ट हुए ।

४९-५७

२४१-२४५

वज्रजंघभवमें जो मतिवर आदि साथी थे वे अब भगवान्के पुत्र हुए । कालक्रमसे यशस्वतीने भरतके बाद ९९ पुत्र और ब्राह्मी नामक पुत्रीको जन्म दिया ।

५८-६५

२४५-२४६

वज्रजंघ पर्यायमें जो अकम्पन नामका सेनापति था उसका जीव सुनन्दाके गर्भमें प्रविष्ट हुआ । नव माह बाद उसने बाहुबली पुत्रको जन्म दिया । कुछ समय बाद सुन्दरी नामक पुत्रीको भी उत्पन्न किया । बाहुबलीकी सुन्दरताका वर्णन ।

६६-७५

२४६-२४९

इस प्रकार एक सौ एक पुत्र तथा दो पुत्रियोंके साथ भगवान्का काल सुखसे व्यतीत होने लगा ।

७६-७७

२४९-२५०

सप्तम स्तबक

एक दिन सभामें बैठे हुए भगवान्ने विचार किया कि जगत्का कल्याण करनेके लिए समीचीन विद्याओंका उपदेश देना चाहिए । जिस समय उनके मनमें यह विचार चल रहा था उसी समय ब्राह्मी और सुन्दरी नामक पुत्रियाँ उनके पास आयीं । पुत्रियाँ पिताको नमस्कार करने लगीं । पिताने वेगसे उन्हें उठा कर तथा 'यह इनके विद्या ग्रहणका काल है' ऐसा विचारकर उन्हें वर्णमाला सिखाकर गणित आदिका

उपदेश दिया। पश्चात् भरत आदि पुत्रोंके लिए भी अनेक विद्याएँ पढ़ायीं। सुशिक्षित पुत्र-पुत्रियों के साथ उनका काल सुखसे बीतने लगा।

१-७

२५१-२५५

इसी बीच कल्पवृक्षोंके नष्ट होनेसे प्रजा दुःखी होकर शरण पानेके लिए राजा नाभिराजकी सम्मतिसे भगवान्के पास पहुँची। प्रजाने अपना दुःख उनसे निवेदित किया। भगवान्ने सान्त्वना देकर विदेहक्षेत्रके अनुसार यहाँ भी कर्मभूमिकी स्थापना की। नगर, ग्राम आदिकी रचना कर प्रमुख राजवंश स्थापित किये। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंका विभाग कर सबका कार्य निर्धारित किया। वह युग 'कृतयुग' के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

८-१५

२५५-२५८

इन्द्रने भगवान् वृषभदेवका राज्याभिषेक किया। बन्दीजनोंने विरदगान किया। इन्द्र आनन्द नाटककर स्वर्गको वापस गया।

१६-२५

२५९-२६६

भगवान्की राज्य-व्यवस्थाका वर्णन।

२६-३१

२६६-२६९

किसी समय भगवान् राजसभामें नीलांजना नामक सुरनर्तकीका नृत्य देख रहे थे। अकस्मात् ही सुरनर्तकीकी आयु पूर्ण हो गयी। यद्यपि इन्द्रने उसके स्थानपर उसीके समान रूपवाली दूसरी नर्तकी खड़ी कर दी। परन्तु भगवान् उसके अन्तरको समझ गये। भगवान्का चित्त संसारसे विरक्त हो गया। वे मनमें समस्त पदार्थोंकी अनित्यताका विचार करते हुए संसारसे विरक्त हो गये। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर भगवान्की विरक्तिका समर्थन किया। लौकान्तिक देवोंके वापस जाते ही सौवर्मन्द्रने दीक्षा कल्याणककी तैयारी शुरू कर दी।

३२-४६

२६९-२७३

भगवान्ने भरतका राज्याभिषेक किया, अन्य पुत्रोंके लिए भी यथा-योग्य देशोंका राज्य दिया। पश्चात् नाभिराज आदिसे पूछकर भगवान् शिविकापर सवार हुए। असंख्य नर-नारियों और देवोंके साथ वे दीक्षावनमें जाकर स्फटिकमणिकी शिलापर आरूढ़ हुए। उन्होंने पूर्वाभिमुख स्थित होकर सिद्ध परमेशीको नमस्कार किया। वस्त्राभूषण उतार दिये और पंचमुष्टियों से केशलोंच किया। इन्द्रने उन केशोंको रत्नमय पिटारेमें रखा। भगवान्का यह दीक्षा कल्याणक चैत्रकृष्ण नवमीके अपराह्णकालमें हुआ था। इन्द्रने उनके केशोंको क्षीर समुद्रमें क्षेप दिया। उनके साथ कच्छ-महाकच्छ आदि चार हजार राजाओंने भी दीक्षा ली थी। सूर्यास्त होते-होते भरत उत्सवसे वापस आ गये। देव लोग अपने-अपने निवास स्थानपर चले गये।

४७-६१

२७३-२७९

अष्टम स्तवक

कायोत्सर्ग मुद्रामें लीन होकर भगवान् दुश्चर तप करने लगे। उन्होंने छह माहका योग धारण किया था। वे पर्वतके समान अचल थे। कुछ

कम दो-तीन मास व्यतीत होनेपर अन्य मुनि भूख-प्याससे व्याकुल हो गये। भगवान् मौन-से रहते थे अतः किसीसे कुछ कहते नहीं थे। परीषहोंकी बाधा न सह सकनेके कारण वे मुनि, गृहीतव्रतसे च्युत हो गये, बल्कल आदि धारण कर वनमें रहने लगे तथा फल-फूल खाकर भगवान्की उपासना करने लगे। उन भ्रष्टराजाओंमें भरतका पुत्र मरीचि प्रधान था। उसने कपिलमत—सांख्यमत चलाकर जगत्में अपनी प्रभुता स्थापित की।

१-४ २८०-२८३

भगवान्की तपस्याका वर्णन

५-९ २८२-२८३

जब भगवान् ध्यानमें लीन थे तब कच्छ-महाकच्छ राजाके पुत्र नमि-विमि उनसे राज्य माँगनेके लिए प्रार्थना करने लगे। 'भगवान्-के ध्यानमें बाधा न हो' इस भावनासे धरणेन्द्रने प्रकट होकर उनसे कहा कि भगवान् तुम्हारे लिए जो राज्य दे गये हैं वह मैं तुम्हें देता हूँ। यह कह कर वह उन्हें विजयार्धपर्वत पर ले गया तथा दक्षिणश्रेणीका राज्य नमिको और उत्तर श्रेणीका राज्य विमिको देकर चला गया। साथ ही अनेक विद्याएँ भी उन्हें दे गया।

१०-१३ २८४-२८५

छह माह व्यतीत होनेपर भगवान् आहारके लिए निकले परन्तु उस समय कोई आहारकी विधि नहीं जानता था इसलिए छह माह तक उन्हें भ्रमण करना पड़ा। इस प्रकार एक वर्षका अनशन समाप्त कर कुरुजांगल देशके हस्तिनापुर नगर पहुँचे। उसी रात्रिको वहाँके राजा सोमप्रभने शुभ स्वप्न देखे। पुरोहितने बताया कि किसी महापुरुषका आज नगरमें आगमन होगा। कुछ देर बाद महायोगीन्द्र वृषभदेवने नगरमें प्रवेश किया। उन्हें देखते ही राजा सोमप्रभके भाईको जातिस्मरण हो गया। जिससे उसे दानकी सब विधि स्मरणमें आ गयी। उसने पडगाह कर इक्षु रसका आहार दिया। देवोंने पंचाशत्तर्य किये। एक वर्ष बाद भगवान्की पारणा हो जानेसे सर्वत्र हर्ष छा गया। भरत महाराजने सोमप्रभ राजा, उनकी स्त्री लक्ष्मीमती, राजा श्रेयान्स और उनकी स्त्रीका बड़ा सम्मान किया। दानका स्वरूप तथा उसके फलका विस्तृत वर्णन श्रेयान्सने किया।

१४-३४ २८६-२९२

बट वृक्षके नीचे ध्यान निमग्न होकर भगवान्ने फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन केवलज्ञान प्राप्त किया। सौधर्मेन्द्र, ज्ञानकल्याणकका उत्सव करनेके लिए आया। उस समय देवोंके विसान, आकाशरूपी समुद्रमें नावोंके समान जान पड़ते थे।

३५-३९ २९२-२९५

इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने समवसरणकी रचना की। समवसरणका विस्तृत वर्णन।

४०-५६ २९६-३०८

इन्द्रादिकोंने समवसरणमें प्रवेश कर वृषभ जिनेन्द्रकी स्तुति प्रारम्भ की। स्तुतिका वर्णन। स्तुतिके अनन्तर सब देव अपने-अपने कोठों में बैठे।

५७-६५ ३०९-३१५

‘भगवान्को केवलज्ञान हुआ है’ यह जानकर भरत महाराज वैभवके साथ समवसरणमें आये तथा भक्तिपूर्वक भगवान्की पूजा कर कृत-कृत्य हुए। तदनन्तर भगवान्की दिव्यध्वनि खिरी। राजा श्रेयान्स, तथा ब्राह्मी, सुन्दरी आदि पुत्रियोंने दीक्षा ग्रहण की। जो कच्छ-महा-कच्छ आदि राजा पहले भ्रष्ट हो गये थे उन्होंने पुनः दीक्षा ग्रहण की। किन्तु मरीचि नहीं सुलटा। अनन्तवीर्य पुत्रने दीक्षा ली और इस अवसर्पणिकालमें सबसे प्रथम मोक्ष प्राप्त किया। भगवान्की स्तुति कर भरत अपने नगरमें वापस आये।

६६-७३

३१५-३१८

इन्द्रकी प्रार्थनासे अनेक देशोंमें विहार कर भगवान् पुनः कैलास पर्वत-पर जा पहुँचे।

७४

३१९-३२०

नवम स्तवक

समवसरणसे वापस आकर भरतराजने आयुधशालामें प्रकट हुए चक्ररत्न की पूजा की। उसी समय शरद् ऋतुका सुहावना समय आ गया। जिससे भरत महाराज चतुरंगिणी सेनाके साथ दिग्विजयके लिए नगरसे बाहर निकले। सेनाका वर्णन। क्रमसे बढ़ते हुए भरत महाराजने गंगा नदीको देखा। सारथिने गंगाकी शोभाका वर्णन किया। सारथिके वचन सुनते हुए वे गंगाद्वार पहुँचे। वहाँ समुद्रतट पर सेनाको ठहरा कर उन्होंने पंचपरमेष्ठीकी पूजा की।

१-१८

३२१-३३१

अमोघ बाण छोड़कर लवण समुद्रके अधिष्ठाता व्यन्तरदेवको वश किया। तदनन्तर दक्षिण और पश्चिम दिशाको जीतकर उत्तर दिशाकी ओर प्रयाण किया।

१९-२९

३३१-३३६

उत्तर दिशामें विजयार्धगिरिका शासक विजयार्धदेव नतमस्तक होकर और चक्रवर्तीकी स्तुति कर कृतकृत्य हुआ। तदनन्तर विजयार्धकी पश्चिमा गुहाके समीप जब पहुँचे तब कृतमालदेवने आत्मसमर्पण किया। म्लेच्छ खण्डोंकी विजयका वर्णन। कुछ म्लेच्छ राजाओं में मेघ-मुख नामसे प्रसिद्ध नाग देवोंका आराधन कर चक्रवर्तीके साथ युद्ध किया। मेघमुख देवोंने घनघोर वर्षा कर इन्हें सात दिनतक संकटमें डाला। अनन्तर जयकुमार सेनापतिके आग्नेय बाणसे वे मेघमुख देव भाग गये। विजयी चक्रवर्तीने जयकुमारका बहुत सम्मान किया।

३०-५२

३३७-३४५

इसके पश्चात् चक्रवर्तीने हिमवत्कूटको लक्ष्य कर बाण चलाया। जिससे वहाँका देव इतना सम्मान करनेके लिए आया। इस प्रकार उत्तर खण्डोंकी विजय कर वे वृषभाचलपर आये। वहाँ उन्होंने हजारों राजाओंकी प्रशस्तियोंको उत्कीर्ण देख गर्वका त्याग किया। तथा किसी अन्यकी प्रशस्तिको मिटाकर उसपर अपनी प्रशस्ति खुदवायी। नमि-विनमि विद्याधर राजाओंकी प्रार्थनासे उन्होंने उनकी सुभद्रा नामक बहनसे विवाह किया। पश्चात् कितने ही पड़ावकर वे कैलास पर्वतपर पहुँचे। वहाँ त्रिलोकपति भगवान् वृषभदेवकी पूजा कर कुछ पड़ावों द्वारा अयोध्या वापस आ गये।

५३-५९

३४५-३४७

दशम स्तवक

जब चक्ररत्नने अयोध्याके गोपुरमें प्रवेश नहीं किया तब उन्होंने पुरोहितसे इसका कारण पूछा । पुरोहितने बताया कि अभी भाइयोंको वश करना बाकी है । चक्रवर्तीने सब भाइयोंके पास दूत भेजकर यह सन्देश भेजा कि हमारी अधीनता स्वीकृत करो । बाहुबलीको छोड़ सब भाइयोंने भगवान् वृषभदेवके पास जिनदीक्षा धारण कर ली । अब बाहुबलीके पास भरतने दूत भेजा । दूतने जाकर भरतकी यशःप्रशस्ति सुनाते हुए बाहुबलीसे भरतकी अधीनता स्वीकृत करनेको कहा परन्तु बाहुबली इसके लिए तैयार नहीं हुए । रोषपूर्ण शब्दोंमें उन्होंने भरतके सन्देशका उत्तर देकर दूतको बिदा किया और सेना साथ लेकर युद्धके प्रांगणमें आ पहुँचे ।

१-२२

३४८-३५५

युद्धके प्रांगणमें जब दोनों ओरकी सेनाएँ पहुँच चुकीं तब बुद्धिमान् मन्त्रियोंने मन्त्रणा की कि यह शक्ति-परीक्षणका युद्ध सेनामें न होकर दोनों भाइयोंमें ही हो और वह भी शस्त्रोंके प्रयोग के बिना । दृष्टि-युद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध इस प्रकार तीन युद्ध निश्चित किये गये । तीनों युद्धोंमें जब बाहुबली विजयी घोषित किये गये तब भरतने क्रोधके वशीभूत हो उनपर चक्ररत्न चला दिया । इस घटनासे बाहुबलीका चित्त संसारसे विरक्त हो गया । उन्होंने एक वर्षके योगका नियम लेकर जिनदीक्षा धारण कर ली और घोर तपश्चरण कर केवलज्ञान प्राप्त किया ।

२३-३७

३५५-३६१

अब समस्त छह खण्डोंके विजेता भरत चक्रवर्तीने चक्ररत्नके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया । चक्रवर्तीके भोगोपभोगका वर्णन ।

३८-४१

३६१-३६२

ब्राह्मणवर्णकी स्थापनाका वर्णन ।

४२-४५

३६२-३६४

चक्रवर्ती भरतके द्वारा स्वप्नदर्शन तथा भगवान् वृषभदेवके द्वारा उनके फलोंका वर्णन ।

४६-५६

३६४-३६८

हस्तिनापुरके राजा जयकुमारकी दीक्षा लेने तथा गणधर होनेका वर्णन । भगवान् वृषभदेव षट्खण्ड भरतक्षेत्रमें विहार कर कैलास पर्वतपर पहुँचे । तथा योग निरोध कर ध्यानारूढ हो गये । इधर भरतने स्वप्न देखे तथा शासनदेवसे भगवान्के योग निरोधका समाचार जानकर कैलासकी ओर प्रयाण किया । वहाँ जाकर १४ दिन तक भरतने भगवान्की पूजा की । भगवान्ने मोक्ष प्राप्त किया । देवोंने निर्वाण-कल्याणका उत्सव किया ।

५७-६६

३६९-३७१

वृषभसेन गणधरने पितृवियोगसे खिन्न भरतको सान्त्वना दी । भरतने भी संसारसे निर्विण्ण हो जिनदीक्षा धारण कर धर्माभूतकी वर्षा की । पश्चात् निर्वाणपद प्राप्त किया । अन्तिम मंगल ।

६७-७१

३७१-३७३

कविप्रशस्ति

३७४

टीकाकर्तृ प्रशस्ति

३७५

श्रीः

महाकविश्रीमदर्हदासविरचितः

पुरुदेवचम्पूपबन्धः

प्रथमः स्तवकः

§ १) क्रियाद्वः कल्याणं भ्रमरहितसामोदसुमनः

समासेव्यः श्रीमान् वृषभ इति विद्वत्सु विदितः ।

ददानः कल्पद्रुः श्रितजनततेस्तमफलं

समासीनो दिव्यध्वनिमृदुलतालंकृतमुखः ॥१॥

५

पुरुदेवमुरुं लक्ष्म्या लक्षितं परया मुदा । वन्दारवृन्दबन्धाङ्घ्रि वन्देजन्तगुणार्णवम् ॥१॥

महावीरं वीरं गुणगणनभीरं भवहरं महाधीरं धीरं निखिलजनहीरं सुखकरम् ।

१०

समीरं ध्यानाग्नेर्दुरितदवनीरं श्रमहरं भजामः सद्भक्त्या सुगतभवतीरं शमधरम् ॥२॥

पुरुदेवचम्पुकाव्यं गद्यपद्यावभासितम् । विवृणोमि समासेन विद्वज्जनमनोहरम् ॥३॥

ध्यायं ध्यायं गुरुगुणधरं ज्ञानलक्ष्म्या लसन्तं धीरं वीरं नततमसुरं भासुरं देहदीप्त्या ।

भक्त्या शक्त्या कृतविवरणं काव्यमेतत्करोमि ध्वान्तं चेतोगृहगतमिदं सत्त्वरं मे प्रणस्यात् ॥४॥

अर्हदासकृतं काव्यं नानालंकारभूषितम् । गहनं छात्रवृन्दस्य सत्यमन्धीयते सदा ॥५॥

१५

छात्रास्तरन्तु तत्क्षिप्रं तरण्या टीकयानया । इति चेतः समाधाय कृतयत्नो भवाम्यहम् ॥६॥

अथ निर्विघ्नं ग्रन्थपरिसमाप्तिकामो महाकविर्ग्रन्थनायकं वृषभं भगवन्तं स्तोतुमाह—

§ १) क्रियाद्व इति—वृषेण रत्नत्रयधर्मेण भाति शोभत इति वृषभः । वृषभ इति विद्वत्सु विज्ञेयुः

विदितः कल्पद्रुः कल्पवृक्षः, वो युष्माकं, कल्याणं क्रियादिति कर्तृकर्मसंबन्धः । अथ वृषभकल्पवृक्षयोः सादृश्य-

माह—भ्रमरहितसामोदसुमनःसमासेव्यः तत्र वृषभपक्षे—भ्रमेण संशयेन रहिताः भ्रमरहिताः, आमोदेन हर्षेण

२०

सहिताः सामोदाः, भ्रमरहिताः सामोदाश्च ये सुमनसो देवा विद्वांसो वा तैः समासेव्यः कल्पवृक्षपक्षे भ्रमरहिता

भृङ्गहितकराः सामोदाः सुगन्धिसहिताश्च या, सुमनसः पुष्पाणि ताभिः समासेव्यः । 'सुगन्धि मुदि वामोदः'

'सुमनाः पुष्पमालत्योः स्त्रियां धीरे सुरे पुमान्' इति च विश्वलोचनः । श्रीमान् अनन्तचतुष्टयलक्ष्मीसहितः पक्षे

शोभासहितः । श्रितजनततेः आश्रितजनसमूहस्य उत्तमफलं मोक्षफलं पक्षे वस्त्राभरणदिसमीप्सितफलं, ददानः,

समासीनः—वृषभपक्षे सम्यक्प्रकारेण आसीनः समवसरणस्थित इत्यर्थः, दिव्यध्वनिमृदुलतालंकृतमुखः दिव्यध्वने-

२५

§ १) क्रियाद्वः—विद्वांनोंमें वृषभ इस नामसे प्रसिद्ध वह कल्पवृक्ष तुम सबका कल्याण

करे जो कि संशय रहित तथा हर्ष सहित देवोंसे सेवनीय है (पक्षमें भ्रमरोंके लिए हितकारी

तथा सुगन्धित फूलोंसे सेवनीय है । अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीसे सहित है । (पक्षमें अनुपम

शोभासे सहित है) आश्रित जन समूहको मोक्षरूपी उत्तमफल देनेवाला है (पक्षमें मनोवांछित

वस्त्राभूषण आदि फल देनेवाला है) समवसरणसभामें विराजमान हैं और दिव्यध्वनिकी

३०

§ २) जीयादादिजिनेन्द्रवासरमणिः सच्चक्रसंतोषको

राजच्छोभनखाश्रयप्रविलसत्पादस्तमोनाशनः ।

श्रीमान्वासवशोभितामरसभाहर्षप्रकर्षप्रदो

भ्राजत्केवलबोधवासररुचिर्निःसीमसौख्योदयः ॥२॥

- ५ मृदुलतया मार्दवेनालंकृतं मुखं यस्य सः । कल्पवृक्षपक्षे दिवि स्वर्गे अध्वनि मार्गे आकाश इति यावत् समासीनः स्थितः, मृदुलतालंकृतमुखः मृदुलताभिः कोमलवल्लीभिरलंकृतं मुखमग्रभागो यस्य सः । श्लेषानुप्राणितो रूपकालंकारः । शिखरिणीछन्दः ॥१॥ § २) पुनरपि तमेवादिजिनेन्द्रं स्तोतुमाह—जीयादिति—आदिजिनेन्द्र एव वासरमणिः सूर्य इति आदिजिनेन्द्रवासरमणिः, जीयादिति कर्तृक्रियासंबन्धः । अथोभयोः सादृश्यमाह—सच्चक्रसंतोषकः—सतां साधूनां चक्रः समूहस्तस्य संतोषक आदिजिनेन्द्रः सन्तश्च ते चक्राश्चेति सच्चक्रा
- १० विद्यमानचक्रवाकास्तेषां संतोषको वासरमणिः 'अथ पुंस्येव चक्रः स्याच्चक्रवाकसमूहयोः' इति विश्वलोचनः । राजदिति—राजन्ती शोभा येषां तथाभूता ये नखा नखरास्तेषामाश्रयेण प्रविलसन्ती शोभमाना पादौ चरणौ यस्य तथाभूत आदिजिनेन्द्रः, राजत् शोभनं यस्य तथाभूतं यत् रवं गगनं तदेवाश्रयस्तस्मिन् प्रविलसन्तः शोभमानाः पादाः किरणा यस्य तथाभूतो वासरमणिः 'पादोऽश्री चरणे मूले तुरीयांशोऽपि दीधितौ' इति विश्वलोचनः । तमोनाशनः शोकनाशक आदिजिनेन्द्रः, ध्वान्तनाशको वासरमणिः 'तमो ध्वान्ते गुणे शोके क्लीबं वा ना विधुंतुदे' इति विश्वलोचनः । श्रीमान् अनन्तचतुष्टयरूपसंपत्तियुक्त आदिजिनेन्द्रः, शोभासहितो वासरमणिः 'शोभासंपत्तिपद्मासु लक्ष्मोः श्रीरपि गद्यते' इति विश्वः । वासवेति—वासवैरिन्द्रः शोभिता समलंकृता या अमरसभा देवनिर्मितसमवसरणपरिषत् देवसभा वा तस्या हर्षप्रकर्ष प्रमोदाधिक्यं प्रददातीति तथाभूत आदिजिनेन्द्रः, वा इति पदं त्यक्त्वा आसवेन मकरन्देन शोभीनि यानि तामरसानि कमलानि तेषां भा कान्तिस्तस्या हर्षो विकासस्तस्य प्रकर्षं प्रददातीति तथाभूतो वासरमणिः । भ्राजदिति भ्राजन् शोभमानः केवलबोधः केवलज्ञानमेव
- २० वासररुचिः सूर्यो यस्य तथाभूत आदिजिनेन्द्रः, केवलानां समग्रपदार्थानां बोधो ज्ञानं यस्मिन् तथाभूतो वासरो दिवसः केवलबोधवासरः, भ्राजन्ती शोभमाना केवलबोधवासरे रुचिर्वीर्यस्य तथाभूतो वासरमणिः । निस्सीम-सौख्योदयः—निस्सीम सीमातीतमनन्तमिति यावत् सुखमेव सौख्यं निस्सीम च तत् सौख्यं च निस्सीमसौख्यं तस्योदयः प्राप्तिर्यस्य तथाभूत आदिजिनेन्द्रः, सुष्ठु खं सुखं, सुन्दरगगनं सुखमेव सौख्यं निस्सीम सर्वतोऽनन्त-प्रदेशत्वात् निस्सीम सीमारहितं यत् सौख्यं सुगगनं तस्मिन् उदयो यस्य तथाभूतो वासरमणिः अथवा निस्सीम-
- २५ सौख्यस्थानन्तसुखस्योदयः प्राप्तिर्यस्मात् लोकानां तथाभूतः । श्लेषानुप्राणितो रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितं

- कोमलतासे सुशोभित मुखसे युक्त हैं (पक्षमें स्वर्ग तथा आकाश मार्गमें स्थित है एवं कोमल लताओंसे सुशोभित अग्रभागसे सहित है) ॥१॥ § २) जीयादिति—वे आदिजिनेन्द्र-रूपी सूर्य जयवन्त हों जो सज्जनों के समूह को सन्तोष देनेवाले हैं (पक्षमें विद्यमान चक्रवाक पक्षियोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं), शोभायमान नखोंके आश्रयसे जिनके चरण
- ३० अतिशय सुशोभित हो रहे हैं (पक्षमें सुन्दर आकाशरूपी आधारमें जिनकी किरणें सुशोभित हो रही हैं), शोकको नष्ट करनेवाले हैं (पक्षमें अन्धकारको नष्ट करनेवाले हैं), अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मीसे सहित हैं (पक्षमें शोभासे सहित हैं), इन्द्रोंसे सुशोभित देवनिर्मित समवसरण सभाको अत्यधिक हर्ष प्रदान करनेवाले हैं (पक्षमें मकरन्दसे सुशोभित कमलोंकी कान्तिके अत्यधिक विकासको देनेवाले हैं), देदीप्यमान केवल-ज्ञानरूपी सूर्यसे सहित हैं (पक्षमें समस्त पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले दिनमें जिसकी दीप्ति विद्यमान रहती है) और जिन्हें अनन्तसुख प्राप्त हुआ है (पक्षमें अनन्त आकाशमें जिसका उदय होता है अथवा जिससे अन्य जीवोंको अपरिमित सुखकी प्राप्ति होती है) ॥२॥

§ ३) जीवं जीवं प्रति कलयितुं नित्यसौख्यं प्रवृत्तः

श्रीमानाद्यो जिनपतिशशी संगतानन्तसौख्यः ।

भव्योल्लासं वितरतु सभोल्लासकलूषप्रतिष्ठः

प्रौढध्वान्तस्फुरणहरणः सत्पथे संनिविष्टः ॥३॥

§ ४) विशासितकुशासनं विविधबन्धविच्छेदनं

जिनाधिपतिशासनं जयति भव्यसंमाननम् ।

कुतीर्थकरवासनाकुलितचित्तसंत्रासनं

सतां सुगुणशासनं सकलमङ्गलाशासनम् ॥४॥

छन्दः ॥२॥ § ३) पुनरपि चन्द्ररूपकेणाद्यं जिनपतिं स्तोतुमाह—जीवं जीवमिति—आद्यः प्रथमः, जिनपतिरेव शशी जिनपतिशशी जिनेन्द्रचन्द्रः, भव्यानामुल्लासस्तं भव्योल्लासं पक्षे भव्यश्चासावुल्लासश्चेति भव्योल्लासस्तं, १० वितरतु ददातु, इति कर्तृक्रियासंबन्धः । अथोभयोः सादृश्यमाह—जीवं जीवं प्रति जन्तुं जन्तुं प्रति वीप्सायां द्वित्वम् पक्षे जीवंजीवं चकोरकं 'जीवंजीवश्चकोरकः' इत्यमरः, नित्यं च तत् सौख्यं चेति नित्यसौख्यं कर्मक्षय-जनितत्वेन स्थायिमुखं पक्षेऽभीक्षणसुखं कलयितुं प्रापयितुं प्रवृत्तस्तत्परः, श्रीमान् अनन्तचतुष्टयलक्ष्मीसहितः पक्षे शोभासहितः, संगतं प्राप्तमनन्तसौख्यं यस्य तथाभूतः, पक्षे संगतं प्राप्तमनन्तसौख्यं निस्सीमसुखं यस्मात् जीवानां तथाभूतः अथवा सुष्ठु खं सुखं, सुखमेव सौख्यम्, अनन्तं च तत्सौख्यं चेत्यनन्तसौख्यं सर्वतो निरवधि- १५ गगनं संगतं प्राप्तं सौख्यं येन तथाभूतः, सभायाः समवसरणपरिषद उल्लासे प्रहर्षणे वलूपा निश्चिता प्रतिष्ठा यस्य तथाभूतो जिनपतिः, पक्षे स इति पदं पृथक्कृत्य 'जिनपतिशशी' इत्यस्य विशेषणं कार्यम्, भायाः कान्तेरुल्लासे कलूषा प्रतिष्ठा यस्य तथाभूतः शशी, प्रौढध्वान्तस्य निबिडान्धकारस्य यत्स्फुरणं संचारस्तस्य हरणं यस्मात्तथाभूतो जिनपतिः पक्षे गाढतिमिरसंचारस्फहारी, सत्पथे समीचीनमार्गं पक्षे सतां नक्षत्राणां पन्थाः सत्पथम् तस्मिन् आकाशे संनिविष्टः स्थितः । मन्दाक्रान्ताच्छन्दः, श्लेषानुप्राणितो रूपकालंकारः । २० § ४) अथ जिनशासनं स्तोतुमाह—विशासितेति—जिनाधिपतेजिनेन्द्रस्य शासनं जिनाधिपतिशासनं जिन-समयः जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । तदेव विशिनष्टि—विशासितं विनाशितं कुशासनं मिथ्यासमयो येन तथाभूतं विशासितकुशासनम्, विविधानां प्रकृत्यादिभेदभिन्नानां बन्धानां विच्छेदनं विनाशकम् विविधबन्धविच्छेदनम्, भव्यानां मोक्षप्राप्त्यर्हणां संमाननं समादरणीयं भव्यसंमाननम्, कुतीर्थकरी मिथ्यासमयप्रवृत्तिका या वासना

§ ३) जीवं जीवमिति—वे आदि जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा भव्यजीवोंको परमहर्ष प्रदान करें २५ (पक्षमें ॥३॥ हर्ष प्रदान करें) जो प्रत्येक जीवके प्रति स्थायी सुख प्राप्त करनेके लिए तत्पर हैं (पक्षमें चकोर पक्षीके लिए निरन्तर आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, अनन्त चतुष्टय-रूप लक्ष्मीसे सहित हैं (पक्षमें शोभासे सहित हैं), जिन्हें अनन्त सुख प्राप्त हुआ है (पक्षमें जिनसे अनन्त सुख प्राप्त हुआ है अथवा जिन्होंने अवाधिरहित निर्मल आकाश प्राप्त किया है), जिनकी महिमा समवसरण सभाके हर्षित करनेमें निश्चित है ३० (पक्षमें जिनकी प्रतिष्ठा कान्तिके विस्तारमें निश्चित है), अत्यन्त सधन अज्ञानान्धकारके संचारको नष्ट करनेवाले हैं (पक्षमें प्रगाढ़ अन्धकारके संचारको नष्ट करनेवाले हैं) और समीचीन मार्गमें स्थित हैं (पक्षमें आकाशमें स्थित हैं) ॥३॥ § ४) विशासितेति—मिथ्याधर्मको नष्ट करनेवाला, अनेक प्रकारके बन्धोंको दूर करनेवाला, भव्य जीवोंके द्वारा आदरणीय, मिथ्याधर्मकी वासनासे दूषित चित्तवाले पुरुषोंको भय उत्पन्न करनेवाला, ३५

§ ५) रत्नत्रयं राजति जैत्रमस्त्रमचिन्त्यदिव्याद्भुतशक्तियुक्तम् ।

मोहक्षमावल्लभगुप्तसेनां जिगाय तां येन जिनाधिराजः ॥५॥

§ ६) वाणीं मे प्रथयन्तु ते गणधराः सज्ज्ञानवाराकराः

येषां निर्मलमानसे श्रुतमयी हंसी सदा खेलति ।

स्याद्वादोत्तमपक्षयुग्मिजनपतेर्वक्त्राम्बुजाभिर्गता-

मिथ्यैकान्तमृणालकाण्डनिचयं द्राक् खण्डशः कुर्वती ॥६॥

§ ७) श्रुतस्कन्धोदञ्चत्स्मधिकशाखाविलसितं

स्तुमो यस्य स्थानं जिनपवदनोद्यानमनघम् ।

दृग्म्भोजोपेतं स्मितमधुरहंसाढ्यमधर-

प्रवालं नीलभ्रूमरुक्मुदयद्रूपकलितम् ॥७॥

- तथा आकुलितं यच्चित्तं तस्य संत्रासनं भयोत्पादकम् अथवा कुतीर्यकरवासनया आकुलितं चित्तं येषां तेषां संत्रासनम्, सतां साधूनां सुगुणशासनं सम्यक्त्वादिगुणोपदेशकम्, सकलमङ्गलानां निखिलश्रेयसां स्वर्गापवर्गणा-
माशासनं प्रापकम् । पृथ्वीछन्दः ॥४॥ § ५) अथ रत्नत्रयं स्तोतुमाह—रत्नत्रयमिति—जिनाधिराजो जिनेन्द्रः, येन रत्नत्रयेण तां प्रसिद्धां मोह एव समावल्लभो राजा तेन गुप्ता सुरक्षिता या सेना तां मोहाधिष्ठितकर्मपूतनां
जिगाय जयति स्म, अचिन्त्या अज्ञानि जनमनोजोचरा, दिव्या—अलौकिकी, अद्भुताश्चर्यकरी च या शक्तिस्तथा युक्तं, रत्नत्रयं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यरूपं, जैत्रं जेतुं शीलम् अस्त्रं राजति शोभते । रूपकालंकारः, उपजातिवृत्तम् ।
§ ६) अथ गुरुन् स्तोतुमाह—वाणीमिति—सज्ज्ञानवाराकराः सद्बोधविन्धवः, ते वक्ष्यमाणगुणविशिष्टा गणधरा गौतमादयः, मे ग्रन्थकर्तुः, वाणीं भारतीं प्रथयन्तु विस्तारयन्तु । येषां निर्मलमानसे स्वच्छान्तःकरणे निष्पङ्क-
मानससरोवरे च, श्रुतमयी द्वादशाङ्गरूपा, स्याद्वादोत्तमपक्षयुक्—स्याद्वादेन प्ररूपितो उत्तमपक्षो निर्बाधविधि-
निषेवात्मकसिद्धान्तो पक्षे गच्छती ताभ्यां युज्यते तथाभूता, जिनपतेर्जिनेन्द्रस्य, वक्त्राम्बुजान्मुखारविन्दात् निर्गता प्रकटिता, मिथ्यैकान्त एव मृणालकाण्डनिचयो विसलतासमूहस्तं, द्राक् इदिति, खण्डशः कुर्वती नाशयन्ती हंसी मराली सदा खेलति क्रीडति । जिनवाणीप्रख्यापकाश्चतुर्जानसागरा गणधरा मम वाणीं विस्तारयन्त्विति भावः । श्लेषानुप्राणितो रूपकालंकारः, शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥६॥ § ७) अथ श्रुतस्कन्धं स्तोतुमाह—श्रुतस्क-
न्धेति—अधिकशाखाभिराचाराङ्गादिप्रभेदैर्विलसितं शोभितं तं श्रुतस्कन्ध एवोदञ्चत्स्मद्वन्नतवृक्षस्तं स्तुमो नुमः,
यस्य स्थानं धाम, जिनपवदनं जिनेन्द्रवक्त्रमेव उद्यानमुपवनमिति जिनपवदनोद्यानम् आसीदिति शेषः । कथंभूतं तदुद्यानमिष्युच्यते—अनघं निर्दोषम्, दृग्म्भोजोपेतं नयनारविन्दसहितं, स्मितं मन्दहसितमेव मधुरहंसी मनोज-

- सत्पुरुषोंको उत्तम गुणोंका उपदेश देनेवाला और समस्त मंगलोंको प्राप्त करानेवाला जिनेन्द्रदेवका शासन जयवन्त है—सबसे उत्कृष्ट है ॥४॥ § ५) रत्नत्रयमिति—जिनेन्द्र-
देवने जिसके द्वारा मोहरूपी राजाके द्वारा पालित उस प्रसिद्ध कर्मरूपी सेनाको जीता था
वह अचिन्त्य दिव्य तथा आश्चर्यकारी सामर्थ्यसे युक्त रत्नत्रय रूपी विजयी शस्त्र सुशोभित
हो रहा है ॥५॥ § ६) वाणीमिति—जिनके निर्मल मनरूपी मानसरोवरमें स्याद्वादके द्वारा
प्ररूपित उभयपक्ष रूपी पंखोंसे युक्त, जिनेन्द्रदेवके मुख कमलसे निकली हुई तथा मिथ्या
एकान्त रूपी मृणालोंके समूहको शीघ्र ही खण्ड-खण्ड करनेवाली द्वादशांगरूपी हंसी सदा
क्रीडा करती है; सम्यग्ज्ञानके सागर वे गणधर देव मेरी वाणीको विस्तृत करें ॥६॥
§ ७) श्रुतस्कन्धेति—निर्दोष, नेत्ररूपी कमलोंसे सहित, मन्दमुसकानरूपी हंससे सहित, अध-
रोष्ठरूपी किसलयसे सहित, श्यामभृकुटिरूपी मरुवासे युक्त एवं वर्धमान रूपसे सहित जिनेन्द्र

§ ८) कल्याणं कलयन्तु पूर्वकवयः पीयूषकल्लोलिनी-

सल्लापिप्रथमानकोमलवचोधाराः स्फुरत्कीर्तयः ।

यैरादीश्वरसत्कथामृतझरी नीता प्रकाशं परं

संसारोद्भवतापमप्रतिहतं लोपं नयन्त्यन्ततः ॥८॥

§ ९) आदीश्वरोदारकथारसज्ञा स्तुतिं गुरुणां तनुतां रसज्ञा ।

येषां कटाक्षामृतसेचनेन सुपुष्पिताभून्मम सूक्तिवल्ली ॥९॥

§ १०) जयन्तु श्रीमन्तः प्रथितजिनसेनार्यगुरवः

प्रवादिप्रागल्भ्योद्धुरशिखरदम्भोलिपटवः ।

दलन्मल्लीवल्लीकुसुमरससौरभ्यलहरी-

मुचा वाचा मोचाफलमधुरचौर्यैकचतुराः ॥१०॥

१०

मरालस्तेनाढ्यं सहितम्, अधर एव प्रवालः किसलयो यस्मिन् तत्, नीलभ्रूः श्यामभ्रुकुटिरेव मरुतं तन्नामवृक्षो यस्मिन् तत्, उदयद्रुपेण वर्धमानसौन्दर्येण कलितं सहितम् । रूपकालंकारः, शिखरिणीच्छन्दः ॥७॥ § ८) अथ पूर्वकवीन् स्तुतुमाह—कल्याणमिति—पीयूषकल्लोलिन्याः सुधास्रवन्त्याः सल्लापिनी सदृशी प्रथमाना प्रसिद्धा कोमला मृदुला वचोधारा वचनपङ्क्तिर्येषां तथाभूताः, स्फुरन्ती वर्धमाना कीर्तियेषां ते, पूर्वकवयः जिनसेनादयः, कल्याणं श्रेयः कलयन्तु कुर्वन्तु, यैः पूर्वकविभिः अप्रतिहतं अखण्डितं संसारोद्भवतापं भवभ्रमणसमुत्पन्नसंतापं अन्ततः सामस्त्येन लोपं विनाशं नयन्ती प्रापयन्ती आदीश्वरस्य भगवतो वृषभदेवस्य सत्कथैवामृतझरी पीयूष-निर्झरिणी परं सातिशयं प्रकाशं प्राकट्यं प्रख्यातिं वा नीता प्राप्तिता । रूपकालंकारः, शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥८॥

१५

§ ९) आदीश्वरेति—आदीश्वरस्य प्रथमतीर्थकरस्य उदारकथाया उत्कृष्टकथाया रसं जानातीति तथाभूता, रसज्ञा रसना, तेषां गुरुणामाशाधरसूरिवर्याणां स्तुतिं तनुताम् येषां कटाक्ष एवामृतं तस्य सेचनेन ममार्हदासस्य सूक्तिवल्ली सुभाषितलता, सुपुष्पाणि संजातानि यस्यां तथाभूता अभूत् । रूपकालंकारः । उपजातिवृत्तम् ॥९॥

२०

§ १०) जयन्त्विति—श्रीमन्तः काव्यलक्ष्मीयुक्ताः, प्रवादिनां प्रतिवादिनां प्रागल्भ्यमेवोद्धुरशिखरमुन्नतशृङ्गं तस्मिन् दम्भोलिवद् वज्रवत् पटवः समर्थाः प्रवादिमानशिखरभङ्गस्तार इत्यर्थः, दलन्ति विकसन्ति यानि मल्ली-वल्या मालतीलतायाः कुसुमानि पुष्पाणि तेषां रसस्य मकरन्दस्य या सौरभ्यलहरी सौगन्ध्यसन्ततिस्तां मुञ्चति तथाभूता तथा वाचा वाण्या मोचाफलस्य कदलीफलस्य मधुरो मधुररसस्तस्य चौर्यैष्यहरण एकचतुरा अति-निपुणाः प्रथितजिनसेनार्यगुरवः प्रसिद्धजिनसेनाचार्याः, जयन्तु जयवन्तो भवन्तु । रूपकानुप्रासयोः संसृष्टिः ।

२५

भगवान्का मुखरूपी उद्यान जिसका स्थान है आचारांगादि शाखाओंसे सुशोभित उस श्रुत-स्कन्धरूप उन्नत वृक्षकी हम स्तुति करते हैं ॥७॥ § ८) कल्याणमिति—अमृतकी नदीके समान प्रसिद्ध तथा कोमल वचनावलीसे सहित एवं बढ़ती हुई कीर्तिसे युक्त वे पूर्व कवि कल्याण करें जिन्होंने अखण्डित संसारसे समुत्पन्न संतापको सम्पूर्ण रूपसे नष्ट करनेवाली आदीश्वर भगवान्की उत्तम कथा रूपी अमृतझरीको उत्कृष्ट प्रकाशमें लाया है ॥८॥ § ९) आदीश्वरेति—भगवान् वृषभदेवकी कथाके रसको जाननेवाली मेरी जिह्वा उन गुरुओंकी स्तुतिको विस्तृत करे जिनके कटाक्ष रूप अमृतके सींचनेसे मेरी सुभाषित रूपी लता सुपुष्पित हुई थी ॥९॥ § १०) जयन्त्विति—प्रवादियोंके गाम्भीर्यरूपी शिखरको गिरानेके लिए वज्रके समान निपुण तथा मालतीलताके खिले हुए पुष्परसकी सुगन्धिसन्ततिको छोड़नेवाली वाणीके द्वारा कदली-फलके मिठासके अपहरण करनेमें अतिशय चतुर श्रीमान् प्रसिद्ध जिनसेनाचार्य गुरु जयवन्त

३०

३५

१. नयत्यन्ततः क० ।

§ ११) श्रीमद्गौतमनामधेयगणभृत्प्रोवाच यां निर्मलां

ख्यातश्रेणिकभूभृते जिनपतेराद्यस्य रम्यां कथाम् ।

तां भक्त्यैव चिकीर्षतो मम कृतिश्चम्पूप्रबन्धात्मिका

वेलातीतकुतूहलाय विदुषामाकल्पमाकल्पताम् ॥११॥

५ § १२) जातेयं कवितालता भगवतो भक्त्याख्यबीजेन मे

चञ्चत्कोमलचारुशब्दनिचयैः पत्रैः प्रकामोज्ज्वला ।

वृत्तैः पल्लविता ततः कुसुमितालंकारविच्छित्तिभिः

संप्राप्ता वृषभेशकल्पकतर्हं व्यङ्ग्यश्रिया वर्धते ॥१२॥

§ १३) अथ विशालबीचिमालाविक्षिप्तविविधमौक्तिकपुञ्जसंजातमरालिकाभ्रमसमागतदृढा-

१० लिङ्गनमङ्गलतरङ्गितकौतुकमराललोकविराजिततीरेण लवणाकरेण परिवृते, अधःस्थितकुण्डली-

शिखरिणीच्छन्दः । § ११) श्रीमदिति—श्रीमद्गौतमनामधेयगणभृत् भगवतो वर्धमानस्य प्रधानगणधरः ख्यात-
श्रेणिकभूभृते प्रसिद्धश्रेणिकमहोपालाय आद्यस्य प्रथमस्य जिनपतेर्वृषभजिनेन्द्रस्य निर्मलां निर्दोषां रम्यां मनोहा-
रिणीं यां कथां प्रोवाच जगद, तां कथां भक्त्यैव न तु धनादिवाञ्छयैव चिकीर्षतः कर्तुमिच्छतः ममार्हदासस्य

१५ विदुषां काव्यमर्मज्ञानां वेलातीतकुतूहलाय निर्मर्यादकौतुकाय आकल्पं कल्पकालपर्यन्तम्, आकल्पतां भवतु ।
शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥११॥ § १२) जातेयमिति—भगवतो वृषभदेवस्य भक्त्याख्यबीजेन भक्त्यधिधानबीजेन
जाता समुत्पन्ना मेऽर्हदासस्य इयं कवितालता काव्यवल्लरी, चञ्चन्तः शोभमानाः कोमलाः श्रुतिसुभगाः चारवो
मनोहरार्थप्रतिपादकाश्च ये शब्दास्तेषां निचयैः समूहैः पत्रैः पर्णैः प्रकाममतिशयेनोज्ज्वला, वृत्तैश्छन्दोभिः

२० पल्लविता किसलयिता ततस्तदनन्तरम् अलंकारविच्छित्तिभिरुपमारूपकाद्यलंकारशोभाभिः कुसुमिता पुष्पिता,
वृषभेश एव कल्पतस्तं पुरुषदेवकल्पानोकहं संप्राप्ता संश्रिता सती व्यङ्ग्यश्रिया ध्वनिलक्ष्म्या वर्धते । यथा
तरुमाश्रित्य लता वर्धते तथा मदोया कवितालता भगवन्तं वृषभमाश्रित्य वर्धत इति भावः । रूपकालंकारः,
शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । § १३) अथ—प्रस्तावमानन्तरं कथामारभते—विशालबीचिमालाभिर्वृहत्तरङ्गसंज्ञितभिः

विक्षिप्तेषु विप्रकीर्णेषु विविधमौक्तिकपुञ्जेषु नानामुक्ताफलराशिषु संजातः समुत्पन्नो यो मरालिकाभ्रमो
हंसोऽदेहस्तेन समागताः समायाताः, दृढालिङ्गनमङ्गलेन तरङ्गितं वृद्धिगतं कौतुकं येषां तथाभूता ये मराल-

२५ ह्यो ॥१८॥ § ११) श्रीमदिति—श्रीमान् गौतम नामक गणधरने प्रसिद्ध श्रेणिक राजाके लिए
आदिजिनेन्द्रकी जो निर्मल और रमणीय कथा कही थी उसे भक्तिसे ही बनानेकी इच्छा
करनेवाले मुझ अर्हदासकी यह चम्पूप्रबन्ध रूप रचना कल्पकाल पर्यन्त विद्वानोंके अपरिमित
कौतूहलके लिए हो ॥११॥ § १२) जातेयमिति—जो भगवान्के भक्तिनामक बीजसे उत्पन्न हुई

३० है, शोभायमान कोमल एवं मनोहर अर्थके प्रतिपादक शब्दोंके समूह रूप पत्रोंसे अत्यन्त
उज्ज्वल है, वसन्ततिलका आदि छन्दोंसे पल्लवित है, और अलंकारोंकी शोभासे पुष्पित है
ऐसी मेरी यह कविता रूपी लता वृषभजिनेन्द्ररूपी कल्पवृक्षको प्राप्त होती हुई ध्वनिरूपी
लक्ष्मीसे बढ़ रही है ॥१२॥ § १३) अथेति—तदनन्तर विशाल तरंगोंकी सन्ततिके द्वारा फैलाये
हुए नाना प्रकारके मोतियोंकी राशिमें समुत्पन्न हंसियोंके भ्रमसे आगत, गाढ़ आलिंगनरूप
मंगलसे बढ़े हुए कौतुकसे युक्त हंसोंसे जिसका तीर सुशोभित हो रहा है ऐसे लवणसमुद्रसे

३५ १. चम्पु क० । २. क्षेत्रच्छदेः पूर्वविदेहमुख्यैरधःस्थितस्फारफणीन्द्रदण्डः । चकास्ति रुक्माचलकर्णिको यः
सप्त धियः पद्म इवाब्धिमध्ये ॥ भ्रमशर्मान्पुद्गल प्र० स० ।

न्द्रमृणालदण्डमण्डिततया, धननीलगगनतललोलम्बचुम्बितकाञ्चनगिरिकर्णिकतया च लक्ष्मी-
निवासभूतलवणोदधिमध्यसंजातमञ्जुलकञ्जसंभावनासंपादके जम्बुद्वीपे विराजमानस्य लवण-
तरङ्गिणीरमणपयोमयस्नेहपरीतजम्बुद्वीपभाजनमध्यप्ररूढदीपकलिकाशङ्काकरस्यामरधराधरस्य प्र-
त्यग्दिशाश्रिते, फलशालिशालीवनोपान्तमनुपतन्तीभिस्तद्विषयवास्तव्यनानानोकहशाखाशिखा-
समुद्भूतसमीरसमाकृष्टसुरापगागलितशैवालमालाभिरिव, समुन्नततरुतरुणसमालिङ्गितनभो- ५
लक्ष्मीवक्षःस्थलवृटितोज्झितमरकतमयमालामणिश्रेणिभिरिव, तद्देशमध्यस्थलालंकारभूतविजयार्ध-
शिखरिसुरदन्तिसमुद्रस्तनुज्झतमशृङ्गहस्तनिर्मूलितान्तरिक्षाकूपारपद्मिनीहरितपत्रमालाभिरिव शुक्-

लोका हंससमूहास्तैर्विराजितं तीरं यस्य तेन लवणाकरेण लवणोदेन परिवृते परिवेष्टिते, अधःस्थितकुण्डलीन्द्र
एव मृणालदण्डस्तेन मण्डिततया नीचैःस्थितशेषनागविसदण्डशोभिततया, धननीलमतिशयनीलं धनैर्मैर्धैर्वा नीलं १०
यद् गगनतलं तदेव लोलम्बा भ्रमरास्तैश्चुम्बितः काञ्चनगिरिकर्णिका सुमेरुर्कर्णिका यस्य तस्य भावस्तया, लक्ष्म्या
निवासभूतं लवणोदधिमध्यसंजातं लवणसिन्धुमध्यसमुद्भूतं यत् मञ्जुलकञ्जं मनोहरकमलं तस्य संभावनायाः
समुद्रप्रेक्षायाः संपादके समुद्रावके जम्बुद्वीपे प्रथमद्वीपे विराजमानस्य शोभमानस्य । लवणतरङ्गिणीरमणस्य
लवणसमुद्रस्य पयोमयस्नेहेन जलरूपतैलेन परीतं व्याप्तं यत् जम्बुद्वीपभाजनं जम्बुद्वीपपात्रं तस्य मध्ये प्ररूढा
प्रद्योतमाना या दीपकलिका तस्याः शङ्काकरस्य संदेहोत्पादकस्य अमरधराधरस्य सुमेरुपर्वतस्य प्रत्यग्दिशाश्रिते
पश्चिमाशाश्रिते, गन्धिलविषये तन्नामदेशे, कथंभूते गन्धिलदेशे, शुक्पङ्क्तिभिः कीरश्रेणिभिः सदानोता १५
शश्वत्प्रापिता वन्दनमाला यस्मिंस्तथाभूते, कथंभूताभिः शुक्पङ्क्तिभिरिति तदेव विशिनष्टि—फलेति—फलशा-
लीनि प्रसवशोभीनि यानि शालिवनानि तस्यक्षेत्राणि तेषामुपान्तं समीपम् अनुपतन्तीभिरागच्छन्तीभिः, तद्विष-
येति—तद्विषयवास्तव्याः तद्देशस्थिता ये नानानोकहा विविधवृक्षास्तेषां शाखानां शिखाभिरथभागैः समुद्भूतो यः
समीरः पवनस्तेन समाकृष्टाः सुरापगाया वियद्गङ्गाया गलिताः पतिता याः शैवालमाला जलनीलीपङ्क्तयस्ता-
भिरिव, समुन्नतेति—समुन्नततरुः समुत्तुङ्गवृक्षा एव तरुणा युवानस्तैः समालिङ्गितं समाश्लिष्टं यद् नभोलक्ष्मी- २०
वक्षःस्थलं गगनश्रिया उरःस्थलं तस्मात् आदौ वृटिताः पश्चादुज्झिताः पतिता या मरकतमयमालानां हरित-
मणिमयमालानां मणिश्रेणयो मणिपङ्क्तयस्ताभिरिव, तद्देशेति—तद्देशमध्यस्थलस्यालंकारभूतो यो विजयार्धशि-
खरो खेचराद्रिः स एव सुरदन्ती तस्य समुद्रस्तं समुत्क्षिप्तं तुज्झतमत्युन्नतं यत् शृङ्गं शिखरं तदेव हस्तः शुण्डा-

धिरा हुआ जम्बूद्वीप है । वह जम्बूद्वीप, नीचे स्थित शेषनागरूपी मृणालदण्डसे सुशोभित २५
होने तथा अत्यन्त नील आकाशतलरूपी भ्रमरोंसे चुम्बित सुमेरुपर्वत रूपी डंठलसे युक्त
होनेके कारण, लवण समुद्रके मध्यमें उत्पन्न हुए लक्ष्मीके निवासभूत मनोहर कमलकी
संभावनाको उत्पन्न कर रहा है । उस जम्बूद्वीपमें वह सुमेरु पर्वत सुशोभित है जो
कि लवण समुद्रके जलरूपी तैलसे व्याप्त जम्बूद्वीपरूपी पात्रके बीचमें उत्पन्न दीपककी
लौकी शंका करता रहता है । उसी सुमेरुपर्वतकी पश्चिम दिशामें एक गन्धिल देश है ।
उस गन्धिलदेशमें उन तोताओंकी पंक्तियोंसे सदा वन्दनमाला बँधी रहती है जो कि ३०
फलोंसे सुशोभित धान्यके वनोंके समीप बार-बार आती रहती हैं, जो उस देशमें रहनेवाले
नाना वृक्षोंकी डालियोंके अग्रभागसे उत्पन्न वायुके द्वारा खिंची हुई आकाशगंगासे पतित
शेवालकी सन्ततिके समान जान पड़ती हैं, जो अत्यन्त उन्नत वृक्षरूपी तरुण पुरुषोंके द्वारा
आलिङ्गित आकाश लक्ष्मीके वक्षःस्थलसे टूट कर गिरे हुए हरे मणियोंकी मालाके मनकोंकी
श्रेणीके समान जान पड़ती है, अथवा उस देशके मध्यस्थलके अलंकारस्वरूप विजयार्धपर्वत ३५
रूपी ऐरावत हाथीके ऊँचे उठे हुए अत्यन्त उन्नत शिखर रूपी सूँडके द्वारा उखाड़ी हुई आकाश
रूपी समुद्रकी कमलिनियोंके हरे पत्तोंकी मानो माला ही हों । वह देश समस्त देवसभाके

पङ्क्तिभिः सदानीतवन्दनमाले, सकलगोर्वाणपरिषन्नयनपरितोषमूले 'आलेख्यलिखितैरिव निश्चलाङ्गैः कुरङ्गैः संततसंश्रूयमाणमानकलाप्रवीणसस्यस्थलीपालकबालस्त्रेणनिराकृताभिः पुनस्तदीयनयनमोभ्रान्त्या प्रतिनिवृत्ताभिर्गगनकाननच्युतपुष्पमञ्जरीरिव समापतन्तोभिर्बकावलोभिः प्रबल्लसकेतनजाले, निरालम्बतया नभोऽङ्गणनिपतितस्वर्गकखण्डसंदेहविषये गान्धिलविष्टपे, बाभा-
५ स्यमानस्यानेकप्रस्थकलितस्याप्यतीतमानस्य प्रसूतानेकपादस्यापि नगेन्द्रस्य, विचित्रवनराजिविराजितस्यापि समाश्रितविद्याधरवनितानामवनस्य रविं दधानस्याप्यरविन्दधानस्य, सुरभिवनकुसुम-

दण्डस्तेन निर्मूलिता उत्पाटिता या अन्तरिक्षाकूपारस्य गगनसागरस्य पद्मिनीनां कमलिनीनां हरितपत्रमाला हरितदलपङ्क्त्यस्ताभिरिव । सकलेति—सकलगोर्वाणानां निखिलदेवानां या परिषद् सभा तस्या नयनानां नेत्राणां परितोषस्य मूलं प्रमुखकारणं तस्मिन्, आलेख्यलिखितैरिव चित्राङ्कितैरिव निश्चलाङ्गैः निश्चलशरीरैः कुरङ्गैः
१० मूगैः, संततेति—संततं निरन्तरं संश्रूयमाणा समाकर्ण्यमाना या गानकला गीतवैदग्ध्यो तस्यां प्रवीणानि निपुणानि यानि सस्यस्थलीपालकबालस्त्रेणानि धान्यक्षेत्ररक्षकबालस्त्रीनिकुरम्बाणि तैः निराकृताभिर्विद्राविताभिः, पुनरिति—भूयस्तदीयनयनेषु तदीयलोचनेषु मीनभ्रान्त्या शफरसंदेहेन प्रतिनिवृत्ताभिः प्रत्यावृत्ताभिः, गगनेति—गगनमेव काननं नभोगहनं तस्माच्च्युता पतिता याः पुष्पमञ्जर्यस्ताभिरिव बकावलोभिः मीनभूषपङ्क्तिभिः, प्रबल्लसानि रचितानि केतनजालानि पताकानिकुरम्बाणि यस्मिन् तस्मिन् निरालम्बतया निराधारत्वेन नभोऽङ्ग-
१५ णाद् गगनाजिरात् निपतितं यत् स्वर्गकखण्डं त्रिविधैकशकलं तस्य संदेहस्य विषये गोचरे । एतादृशस्य रजताचलस्य विजयार्धपर्वतस्य उत्तरश्रेण्याम् अलकाभिधाना अलकानामधेया पुरी परिवर्तिता विद्यमाना वर्तते इति क्रियासंबन्धः । अथ तमेव रजताचलं वर्णयितुमाह—बाभास्यमानस्य अतिशोभमानस्य अनेकप्रस्थैः नानापरिमाणविशेषैः कलितस्यापि सहितस्यापि अतीतमानस्य परिमाणरहितस्येति विरोधः, परिहारपक्षे अनेकशिखरसहितस्यापि अत्युन्नतस्य 'प्रस्थोऽस्त्रियां मानभेदे सानावुन्मितवस्तुनि' इति मेदिनी । प्रसूताः समुत्पन्ना
२० अनेकपादा अनेकचरणा यस्य तथाभूतस्यापि नगेन्द्रस्य न गच्छन्तीति नगास्तेषामिन्द्रस्येति विरोधः योऽनेकपादसहितः स कथं नगच्छतां शिरोमणिरिति भावः, परिहारस्तु अनेकप्रत्यन्तपर्वतसहितस्यापि पर्वतश्रेष्ठस्य 'पादो ब्रह्मे तुरीयांशे शैलप्रत्यन्तपर्वते । चरणे च मयूखे च' इति मेदिनी । विचित्राणि विविधानि यानि वनानि काननानि तेषां राजिभिः श्रेणिभिः विराजितस्यापि शोभितस्यापि समाश्रितास्तत्रस्थिता या

नेत्रोंके सन्तोषका मूल कारण था । उसमें उड़ती हुई बगुलाओंकी उन पंक्तियोंसे सदा
२५ पताकाओंके समूह फहराते रहते हैं जो कि चित्रलिखितके समान निश्चल अंगोंके धारक हरिणोंके द्वारा निरन्तर सुनी जानेवाली गानकलामें प्रवीण धानके खेतोंकी रक्षा करवेवाली लड़कियोंके द्वारा दूर भगायी जाती थीं परन्तु उन लड़कियोंके नेत्रोंमें मछलियोंकी भ्रान्तिसे पुनः लौटकर आती थीं, अथवा जो आकाशरूपी वनके गिरे हुए फूलोंकी मंजरियोंके समान जान पड़ती थीं । उस देशमें एक विजयार्ध पर्वत सुशोभित था । वह विजयार्ध अनेक
३० प्रस्थों—धान्य नापनेके अनेक परिमाणोंसे सहित होनेपर भी अतीतमान था—परिमाणोंसे रहित था (परिहार पक्षमें अनेक शिखरोंसे सहित था तथा अतिशय ऊँचा था), यद्यपि उसके अनेक पाद = पैर थे फिर भी वह नगेन्द्र—नहीं चलनेवालोंमें श्रेष्ठ था (परिहार पक्षमें अनेक प्रत्यन्त पर्वतोंसे सहित था और पर्वतोंमें श्रेष्ठ था), नाना प्रकारके वनोंकी पंक्तियोंसे सुशोभित था और फिर भी सब ओरसे आयी हुई विद्याधरियोंके लिए वनसे रहित था (पक्षमें

३५ १. सस्यस्थलीपालकबालिकानामुल्लोलगीतश्रुतिनिश्चलाङ्गम् । यत्रैणयूथं पथि पान्थसार्थाः सल्लेप्यलोलामयमानन्ति ॥ धर्मशर्माभ्युदये । २. गन्धिलविषये क० । ३. भाभासमान क० । ४. प्रस्थैरुदस्थैः कलितोऽप्यमानः पादैरमन्दैः प्रसृतोऽप्यगेन्द्रः । युक्तो वनैरप्यवनः श्रितानां यः प्राणिनां सत्यमगम्यरूपः ॥ धर्मशर्माभ्युदये ।

विसरविसृतरजोभरपरिमलितस्यापि अत्युज्ज्वलस्य महीमहिलाविधृतदुकूलचेलस्येव, भगवदहंदि-
मलकीर्तिपुञ्जस्येव, व्योमचरवनितावदनविधुविलीनचन्द्रकान्तशिलातलविगलद्वारिधाराभिर्भन्द-
गन्धर्वहकन्दलस्पन्दनान्दोलितमाकन्दतरुसंदोहशिखरच्युतपक्वफलप्रसृतरसधोरणीभिः पम्फुल्लय-
मानमल्लिकातल्लजमञ्जरीसंजरीजृम्भमाणमकरन्दझरीभिर्गगनचरललनाजनकुलकलितकलगानक-
लाकालविद्रुतविधुमणिशिलातलविसृतस्रवन्तीभिश्च निरन्तरोपत्यकाभागस्य नैजकान्तिकल्लोल- ५
परिहसितकुलाचलस्य रजताचलस्योत्तरश्रेण्यामलकाभिधाना पुरी परिवर्तिता ।

विद्याधरवनिताः खेचर्यस्तासाम् अवनस्य न विद्यन्ते वनानि यस्मिन्नुवाभूतस्येति विरोधः परिहारपक्षे अवनस्य
रक्षकस्य, रवि सूर्यं घट इति दधानस्तस्य धृतवतोऽपि अरवि सूर्याभावं दधानस्येति विरोधः । परिहारपक्षे धीयते
यस्मिन्निति धानम् अरविन्दानां कमलानां धानं तस्य, सुरभीणि सुगन्धीनि यानि वनकुसुमानि तेषां विसरात्
समूहाद् विसृतेन निःसृतेन रजोभरेण धूलिसमूहेन परिमलितस्यापि परितः मलं संजातं यस्मिन्नुवाभूतस्यापि १०
अत्युज्ज्वलस्य निर्मलतरस्येति विरोधः । परिहारपक्षे सुरभिवनकुसुमविसरविसृतपरागभरेण परिमलितस्यापि
सुगन्धितस्यापि, 'रजः परागे रेणो तु' इति विश्वलोचनः । 'भवेत्परिमलश्चित्तहारिगन्धविमर्दयोः' इति च विश्व-
लोचनः । महीति—महोव पृथिव्येव महिला पुरन्ध्री तथा विधृतं यद् दुकूलचेलं क्षौमवस्त्रं तस्येव, भगवदिति—
भगवदहंतो भगवज्जिनेन्द्रस्य विमला निर्मला या कीर्तिस्तस्याः पुञ्जः समूहस्तस्येव, व्योमेति—व्योमचरवनितायां
विद्याधरीणां वदनानि मुखान्येव विधवश्चन्द्रास्तैर्विलीनानि विद्रुतानि यानि चन्द्रकान्तशिलातलानि शशिकान्त- १५
प्रस्तरफलकानि तेभ्यो विगलन्त्यः पतन्त्यो या वारिधारास्ताभिः, मन्देति—मन्दगन्धवहेन मन्दवायुना कन्दल-
स्पन्दनं यथा स्यात्तथान्दोलिताः कम्पिता ये माकन्दतरव आन्नवृक्षास्तेषां संदोहः समूहस्तस्य शिखरस्यश्च्युतानि
पतितानि यानि पक्वफलानि तेभ्यः प्रसृता या रसधोरण्यो रससंततयस्ताभिः, पम्फुल्लयमानेति—पम्फुल्लयमाना
अतिशयेन विकसन्तो ये मल्लिकातल्लजा मालतीश्रेष्ठास्तेषां मञ्जरीषु संजरीजृम्भमाणा अतिशयेन वर्धमाना या
मकरन्दझर्यस्ताभिः, गगनेति—गगनचराणां विद्याधराणां ये ललनाजनाः स्त्रीसमूहास्तेषां कुलेन कलिता कृता २०
या कलगानकला मधुरसंगीतवैदग्धी तस्याः काले विद्रुतानि समधिष्ठितानि यानि विधुमणिशिलातलानि चन्द्र-
कान्तमणिकुट्टिमानि तेभ्यो विसृता निःसृता याः स्रवन्त्यो नद्यो जलधारा इति यावत् ताभिश्च, निरन्तरेति—
निरन्तर उपत्यकाभागो यस्य तस्य 'उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यका' इत्यमरः । नैजेति—नैजकान्तिकल्लोलैः

विद्याधरियोंका अवन—रक्षक था), रवि—सूर्यको धारण कर रहा था फिर भी
सूर्याभावको धारण कर रहा था (पक्षमें अरविन्दधान—कमलोंको धारण करनेवाला था), २५
और सुगन्धित वनपुष्पोंके समूहसे फैली हुई धूलिके समूहसे यद्यपि परिमलित—सब ओर-
से मलिन था फिर भी अत्यन्त उज्ज्वल था (परिहार पक्षमें सुगन्धित वनपुष्पोंके समूहसे
फैली हुई परागसे परिमलित—अत्यन्त सुगन्धित था तथा अत्यन्त देदीप्यमान था) । वह
विजयार्थ पर्वत ऐसा जान पड़ता था मानो पृथिवीरूपी स्त्रीके द्वारा धारण किया हुआ रेशमी
वस्त्र ही हो, अथवा जिनेन्द्र भगवान्की निर्मलकीर्तिका समूह ही हो । उस पर्वतका समीप- ३०
वर्ती प्रदेश विद्याधरियोंके मुखरूपी चन्द्रमासे विद्रुत चन्द्रकान्तमणियोंके शिलातलसे झरते
हुए जलकी धाराओंसे, मन्द-मन्द वायुके द्वारा धीरे-धीरे हिलते हुए आन्नवृक्षोंके समूहके
शिखरोंसे गिरे हुए पके फलोंके फैली हुई रसकी धाराओंसे, अत्यन्त विकसित श्रेष्ठ मालतीके
पुष्पसमूहके भीतर बढ़ते हुए मकरन्दके झरनोंसे तथा विद्याधरियोंके समूहसे अधिष्ठित
सुन्दर गानकलाके समय विद्रुत चन्द्रकान्तमणियोंके शिलातलसे निकली हुई निर्झरिणियोंसे ३५
निरन्तर व्याप्त था । साथ ही वह विजयार्थपर्वत अपनी कान्तिकी तरंगोंसे कुलाचलोंकी
हँसी कर रहा था । उस विजयार्थपर्वतकी उत्तरश्रेणीपर अलका नामकी नगरी है ।

§ १४) मदीयरत्नप्रचयं महार्घमाहृत्य सर्वं क्व नु गच्छसीति ।

रुषा पयोराशिरिवावृतोऽद्य यस्याः समीपे परिखा समिच्छे ॥१३॥

§ १५) यदीयकनकोज्ज्वलप्रथितसालमालाभितो

विभाति नगरश्रिया विधृतकाञ्चनक्षौमवत् ।

नभश्चरवसुंधरारमणराजलक्ष्म्याः पुनः

परीतनवहाटकप्रचुरकाण्डवस्त्रालिवत् ॥१४॥

§ १६) यस्याः शारदनोरदामलमहाहर्म्यावलिप्रोल्लसत्-

प्रख्याताम्बुजरागरत्नखचितैर्वातायनैर्विस्तृतैः ।

मार्तण्डाधिककान्तिभिर्द्युतदिनीपाथोजचक्राङ्गना

रात्रौ मीलनविप्रयोगविषयव्युत्पत्तिशून्याः कृताः ॥१५॥

१०

१५

२०

२५

स्वदीप्तिरङ्गैः परिहसिताः कुलाचला येन तस्य । § १४) अथालकायाः परिखां वर्णयितुमाह—मदीयेति—महार्घं महामूल्यं सर्वं निखिलं मदीयश्चासौ रत्नप्रचयश्चेति मदीयरत्नप्रचयस्तं मामकीनरत्नसमूहम्, आहृत्य अपहृत्य क्व नु गच्छसि । इति रुषा क्रोधेन आवृतः परीत्य स्थितः पयोराशिरिव सागर इव यस्या अलकायाः समीपे परिखा खेयम् अस्तीति समिच्छे तर्कयामि । उपजातिवृत्तम्, उत्प्रेक्षांकारः ॥१३॥ § १५) अथालकायाः प्राकारं वर्णयितुमाह—यदीयेति—अभितः परितः, यदीया यत्संबन्धिनी कनकोज्ज्वला सुवर्णनिर्मला प्रथिता प्रसिद्धा च या सालमाला प्राकारपङ्क्तिः सा, नगरश्रिया नगरलक्ष्म्या विधृतं यत् काञ्चनक्षौमं सुवर्णवस्त्रं तद्वत्, विभाति शोभते । पुनर्भूयः नभश्चराणां विद्याधराणां यो वसुन्धरारमणो नृपस्तस्य राज्यलक्ष्म्या राज्यश्रियाः, परीतानि परिधृतानि नवहाटकप्रचुराणि प्रत्यग्रभर्मव्याप्तानि काण्डवस्त्राणि चण्डातकानि 'लहंगा' इति प्रसिद्धानि कटिवस्त्राणि तेषामालिः पङ्क्तिस्तद्वत् विभाति । उपमांकारः । पृथिवीच्छन्दः ॥१४॥ § १६) अथालकाया वातायनानि वर्णयितुमाह—यस्या इति—यस्या अलकायाः, शारदनोरदा इव शरन्मेवा इवामला धवला या महाहर्म्यावल्लयो महाभवनपङ्क्तयस्तासु प्रोल्लसन्ति शोभमानानि प्रख्यातानि प्रसिद्धानि यानि अम्बुजरागरत्नानि पद्मरागरत्नानि तैः खचितैर्व्याप्तैः विस्तृतैर्बृहद्भिः, मार्तण्डादिकादधिका कान्तियेषां तैः, तथाभूतैर्वातायनैर्नगवाक्षैः पाथोजानि च चक्राङ्गनाश्चेति पाथोजचक्राङ्गनाः द्युतिन्या पाथोजचक्राङ्गना इति द्युतदिनीपाथोजचक्राङ्गनाः मन्दाकिनीकमलचक्रवाक्यः, रात्रौ रजन्यां, मीलनं च विप्रयोगश्चेति मीलनविप्रयोगौ निमीलनविप्रलम्भौ तौ विषयौ यस्यास्तथाभूता या व्युत्पत्तिः कविसंप्रदायस्तया शून्या रहिताः कृताः । यस्या वातायनैर्मन्दाकिन्याः कमलानि न निमीलन्ति चक्रवाक्यश्च न वियुक्ता भवन्तीति भावः । अतिशयोक्तिः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥१५॥

३०

३५

§ १४) मदीयेति—जिस अलका नगरीके समीप परिखा ऐसी जान पड़ती है मानो 'मेरे समस्त महामूल्य रत्नोंके समूहको चुराकर कहाँ जाते हो,' इस क्रोधसे समुद्र ही उसे घेरकर स्थित हो ॥१३॥ § १५) यदीयेति—जिस नगरीके चारों ओर स्थित सुवर्णसे देदीप्यमान कोटोंकी पंक्ति नगरलक्ष्मीके द्वारा धारण किये हुए सुवर्णकी लड़ीवाले वस्त्रके समान सुशोभित होती है अथवा विद्याधर राजाकी राज्यलक्ष्मीके पहने हुए नवीन सुवर्णकी लड़ियोंसे व्याप्त कटि-वस्त्रों (लहंगों) की पंक्तिके समान जान पड़ती है ॥१४॥ § १६) यस्या इति—शरद् ऋतुके मेघोंके समान सफेद बड़े-बड़े महलोंके समूहमें सुशोभित प्रसिद्ध पद्मराग मणियोंसे जड़े हुए तथा सूर्यसे अधिक कान्तिसे युक्त जिसके बड़े-बड़े झरोखोंके द्वारा रात्रिमें आकाशगंगाके कमल और चकवियाँ निमीलित होने तथा बिछुड़ने सम्बन्धी कविसम्प्रदायसे शून्य कर दिये गये थे अर्थात् वहाँके ऊँचे-ऊँचे महलोंके लम्बे-चौड़े झरोखे सूर्यसे भी अधिक कान्तिवाले थे इसलिए रात्रिके समय आकाशगंगाके कमल निमीलित नहीं होते थे और चकवियाँ चकवोंसे

§ १७) यत्र च पूजोत्सवमङ्गलतरङ्गितदुन्दुभिमन्द्रतमनिध्वाननिर्भरेण, पिकनायकमदनिर्मूल-
ननिदानललनाजनकलगीतकलाकल्लोलपल्लवितवल्लकोक्वणितकमनोयेन, विद्याधरीजनकलितला-
स्यवेलाचलितरसनादाममञ्जुमञ्जोररवमेदुरेण, तत्समाकर्णनवेलादोलायमानसंगीतविद्यापारीण-
विद्याधरमुकुटतटघटितमालाजालोच्चलितचञ्चरीकसंचयसंकल्पितझङ्कारमनोहरेण, उत्सवकोला-
हलेन जागरूकेव लक्ष्मीरालक्ष्यते ।

§ १८) द्विविधाः सुदृशो भान्ति यत्र मुक्तोपमाः स्थिताः ।

राजहंसाश्च सरसान्तरङ्गविभवाश्रिताः ॥१६॥

§ १७) यत्रेति—यत्र च अलकानगर्याम्, उत्सवकोलाहलेन उद्धवकलकलेन लक्ष्मीः श्रीः जागरूकेव जागरण-
शीलेव, आलक्ष्यते दृश्यते इति कर्तृक्रियासंबन्धः । अथोत्सवकोलाहलं वर्णयितुमाह—पूजेति—पूजाया उत्सव
एव मङ्गलं तस्मिन् तरङ्गिता वृद्धिगता ये दुन्दुभोनां पटहानां मन्द्रतमा अतिगम्भीरा निध्वानाः शब्दास्तै- १०
निर्भरेण संभूतेन, पिकेति—पिकनायकस्य कोकिलश्रेष्ठस्य यो मदो गर्वस्तस्य निर्मूलनं निराकरणं तस्य
निदानमाधिकारणं यत् ललनाजनस्य स्त्रीसमूहस्य कलगीतं मधुरगीतं तस्य कलाया वैदग्ध्याः कल्लोलैः
परम्पराभिः पल्लवितं वृद्धिगते यद् वल्लकोक्वणितं वीणाशब्दस्तेन कमनोयेन मनोहरेण, विद्याधरीति—
विद्याधरीजनेन खेचराङ्गनासमूहेन कलितं कृतं यत् लास्यं नृत्यं तस्य वेलायां समये चलितानि यानि रसना-
दाममञ्जुमञ्जोराणि मेखलादाममनोहरनूपुराणि तेषां रवः शब्दस्तेन मेदुरेण वृद्धिगतेन, तत्समाकर्णनेति—तस्य १५
रवस्य समाकर्णनवेलायां श्रवणसमये दोलायमानानि कम्प्यमानानि संगीतविद्यापारीणविद्याधराणां संगीतकला-
कुशलखेचराणां यानि मुकुटतटानि मौलितटानि तत्र घटितानि धृतानि यानि मालाजालानि स्रक्निकुरम्बाणि
तेभ्य उच्चलिता उत्पतिता ये चञ्चरीका भ्रमरास्तेषां संचयः समूहस्तेन संकल्पितः कृतो यो झङ्कारोऽव्यवतशब्द-
स्तेन मनोहरेण रम्येण । § १८) द्विविधा इति—यत्रालकायां स्थिताः कृतनिवासाः द्विविधा द्विप्रकाराः
सुदृशः सुष्ठु दृशो नयने यासां तथाभूताः सुलोचनाः स्त्रियः सुष्ठु दृग् सम्यग्दर्शनं येषां तथाभूताः सम्यग्दृष्टयः, २०
भान्ति शोभन्ते । उभयोः सादृश्यमाह—मुक्तोपमाः, सुलोचनापक्षे मुक्ता त्यक्ता उपमा याभिस्ता निरूपमा
इत्यर्थः, सम्यग्दृष्टिपक्षे मुक्तानां मुक्ताफलानां सिद्धानां वा उपमा येषां तथाभूताः । राजहंसाश्च राजहंसा अपि
द्विविधा द्विप्रकाराः कलहंसा नृपोत्तमश्च भान्ति 'राजहंसस्तु कादम्बे कलहंसे नृपोत्तमे' इति विश्वलोचनः ।
उभयोः सादृश्यमाह—सरसामिति तत्र कलहंसपक्षे सरसां कासारणां तरङ्गविभवं कल्लोलवैभवम् आश्रिताः

बिलुडुती नहीं थी ॥१५॥ § १७) यत्र चेति—पूजाके उत्सवरूप मंगलकार्योंमें बजते हुए २५
दुन्दुभियोंके अत्यन्त गम्भीर शब्दोंसे जो भरा हुआ था, श्रेष्ठ कोयलोंका गर्व दूर करनेवाली
स्त्रीजनोंकी मधुर गानकलासे वृद्धिगत वीणाके निनादसे जो मनोहर था, विद्याधरियोंके द्वारा
किये हुए नृत्यके समय चंचल मेखलादाम और मनोहर नूपुरोंके शब्दोंसे जो मिला हुआ
था, तथा उस संगीतके सुनते समय हिलते हुए संगीतविद्यामें निपुण विद्याधरोंके मुकुटतटों-
में स्थित मालाओंके समूहसे उड़े हुए भ्रमरोंके समूहसे कृत झंकारसे जो मनोहर था ऐसे ३०
उत्सव सम्बन्धी कोलाहलसे जिस अलका नगरीमें लक्ष्मी ऐसी जान पड़ती थी मानो जागृत
ही रहती है । § १८) द्विविधा इति—जिस नगरीमें रहनेवाले दो प्रकारके सुदृश—सुन्दर
नेत्रोंवाली स्त्रियाँ और सम्यग्दर्शनसे सहित मनुष्य सुशोभित होते हैं क्योंकि दोनों ही मुक्तो-
पमा हैं अर्थात् स्त्रियाँ तो उपमारहित—अनुपमा हैं और सम्यग्दृष्टि मुक्ताओं अथवा सिद्धोंकी
उपमाको धारण करनेवाले हैं । इसी प्रकार जिस अलकानगरीमें दो प्रकारके राजहंस—कल- ३५
हंस पक्षी और श्रेष्ठ राजा सुशोभित होते हैं क्योंकि जिस प्रकार कलहंसपक्षी 'सरसां तरङ्ग-

§ १९) या खलु घनश्रीसंपन्ना निभृतसामोदसुमनोऽभिरामा सकलमुद्गभिः शिरसा श्लाघ्यमानमहिममहिता विविधविचित्रविशोभितमालाढ्या अलकाभिधानमर्हति ।

§ २०) अलकाभिख्यया जुष्टा विकचाब्जसरोमुखी ।

निस्तमस्कापि या चित्रमुत्तमस्फुरणोज्ज्वला ॥१७॥

- ५ प्राप्ताः, नृपोत्तमपक्षे सरसं सस्नेहं यदन्तरङ्गं चित्तं तस्य विभवम् आश्रिताः प्राप्ताः । श्लिष्टोपमा ॥१६॥
- § १९) या खल्विति—खलु निश्चयेन या अलकानगरी अलकाभिधानम् अलका इति अभिधानं नामधेयमलका-भिधानम् अर्हति पक्षे अलकाश्चूर्णकुन्तला इति अभिधानम् अर्हति तद्योग्या वर्तते इति भावः । अथालकानगरी-चूर्णकुन्तलयोः सादृश्यमाह—घनश्रीसंपन्ना घना चासौ श्रीश्चेति घनश्रीः प्रभूतलक्ष्मीस्तया संपन्ना सहिता अलकानगरी पक्षे घनस्य मेघस्येव श्रीः शोभा आमलतेति यावत् तथा संपन्ना । निभृतेति—निभृताः स्थिताः
- १० सामोदाः सहर्षा ये सुमनसो विद्वांसस्तैरभिरामा मनोहरा अलकानगरी, पक्षे निभृताः स्थापिताः सामोदाः अति-निर्हार्तिगन्धयुक्ताः सुमनसः पुष्पाणि ताभिरभिरामाः । शिरसा उत्तमाङ्गेन श्लाघ्यमानमहिममहिता श्लाघ्यमानः प्रशस्यमानो यो महिमा तेन महिता अलकानगरी, पक्षे चूर्णकुन्तला अपि शिरसा प्रशस्यमानमहिमोपेताः । विविधेति—विविधा अनेकप्रकारा विचित्रा विचित्रवर्णाश्च ये वयः पक्षिणस्तैः शोभिनो ये तमालास्तमालवृक्षा-स्तैराढ्या सहिता अलकानगरी, पक्षे ‘विविधा अनेकप्रकारेण गुम्फिताः विचित्रा नानावर्णकुसुमकलिताः
- १५ विशोभिता नितरां शोभिताश्च या मालाः स्रजस्ताभिः आढ्याः सहिताः । श्लिष्टोपमा । § २०) अलकेति—अब्जसरोमुखी अब्जसरः कमलोपलक्षितसरोवर एव मुखं यस्यास्तथाभूता या नगरी अलकाभिख्यया अलकानां चूर्णकुन्तलानां केशानामभिख्यया शोभया जुष्टा सहितापि विकचा विगताः कचाः केशा यस्यास्तथाभूता अभूदिति विरोधः पक्षे अलकाभिख्यया अलकेति नाम्ना ‘अभिख्या नामशोभयोः’ इत्यमरः । सहितापि विकचाब्जसरोमुखी विकचानि विकसितानि यानि अब्जानि कमलानि तैरुपलक्षितं सरो विकचाब्जसरः तद् मुखं यस्यास्तथाभूता ।
- २० किंच, उज्ज्वला निर्मला या निस्तमस्कापि निर्गतं तमो यस्यास्तथाभूतापि नानामणिमरीचिनिरस्ततिमिरापि उत्तमस्फुरणा उद्गतं प्रकटितं तमस्फुरणं तिमिरसंचारो यस्यां तथाभूता वर्तते इति चित्रमाश्रयं ‘ध्वान्तं संतमसं तमम्’ इति घनजयोक्तेरकारान्तोऽपि तमशब्दः प्रयुज्यते अथवा ‘खर्परशरि विसर्गलोपो वा वक्तव्यः’ इति वार्तिकेन तमसो विसर्गस्य लोपः पक्षे उत्तमस्फुरणोज्ज्वलेत्येकं पदम्, उत्तमानां श्रेष्ठानां स्फुरणेन संचारेण उज्ज्वला

- विभवाश्रित’ होते हैं अर्थात् सरोवरोंके तरंगरूपी विभवको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ राजा
- २५ भी सरसान्तरंग विभवाश्रित होते हैं अर्थात् स्नेहयुक्त अन्तःकरणके विभवको प्राप्त होते हैं ॥१६॥ § १९) या खल्विति—जो नगरी निश्चय ही अलकाभिधान—अलका इस नामको अथवा चूर्णकुन्तल—केश इस नामको धारण करनेके योग्य है क्योंकि नगरी तो घन-श्रीसम्पन्ना—सातिशय लक्ष्मीसे सहित है और केश मेघोंके समान कालीकान्तिको धारण करते हैं, नगरी उसमें रहनेवाले प्रसन्नचित्त विद्वानोंसे मनोहर है और केश धारण किये हुए
- ३० सुगन्धित पुष्पोंसे मनोहर है, नगरी सिरसे प्रशंसनीय महिमासे युक्त है और केश भी सिर-पर शोभायमान महिमासे युक्त हैं, नगरी नाना प्रकारके रंग-बिरंगे पक्षियोंसे सुशोभित तमाल-वृक्षोंसे युक्त है और केश भी नाना प्रकारकी गुम्फित रंग-बिरंगी मालाओंसे सहित हैं । § २०) अलकेति—कमलोंका सरोवर ही जिसका मुख है ऐसी वह नगरी अलकाभिख्या—केशोंकी शोभासे सहित होकर भी विकचा—केशरहित है (पक्षमें अलका इस नामसे युक्त होकर
- ३५ भी विकचाब्जसरोमुखी है—खिले हुए कमलोंसे सुशोभित सरोवररूप मुखसे सहित है) तथा देदीप्यमान रहनेवाली वह अलका नगरी निस्तमस्का—अन्धकारसे रहित होकर भी उत्तमस्फुरणा—अन्धकारके संचारसे सहित है (पक्षमें नाना मणियोंके प्रकाशसे सहित होनेके कारण निस्तमस्का—अन्धकार रहित होकर उत्तमस्फुरणोज्ज्वला—उत्तम मनुष्योंके संचारसे

§ २१) शास्ता तस्याः सकलखचरक्षमापकोटीरकोटी-

खेलन्मालासदृशविलसच्छासनः संबभूव ।

धीरः श्रीमानतिबल इति ख्यातनामा खगेन्द्रः

प्रख्यातश्रीनिजकुलमहामेरुमन्दारशाखी ॥१८॥

§ २२) गङ्गीयन्ति सदा समस्तसरितो रौप्याचलन्त्यद्रयो

नीलाब्जानि सिताम्बुजन्ति गजता जम्भारिकुम्भीयति ।

चन्द्रत्यम्बुजबान्धवः पिककुलं लीलामरालायते

कर्पूरन्ति च कज्जलानि विलसद्यत्कीर्तिसंघट्टतः ॥१९॥

§ २३) यदीयकीर्तिकल्लोलैर्विश्वस्मिन्विशदीकृते ।

वैरिस्त्रोवदनाब्जानि मलिनानि वताभवन् ॥२०॥

५

१०

निर्मला । विरोधाभासः ॥१७॥ § २१) अथ नगरोवर्णनानन्तरं नृपतिं वर्णयितुमाह—शास्तेति—तस्या अलकायाः शास्ता रक्षको नृपतिरिति यावत् अतिबल इति ख्यातनामा प्रसिद्धाभिधानः, खगेन्द्रो विद्याधरेन्द्रः संबभूव । अथ तस्यैव विशेषणान्याह—सकलेति—सकला निखिला ये खचरक्षमापा विद्याधरराजास्तेषां कोटीर-कोटीषु मुकुटाग्रभागेषु खेलन्ती विलसन्ती या माला तस्याः सदृशं विलसच्छोभमानं शासनं यस्य सः, धीरो गभीरः श्रीमान् लक्ष्मीमान् प्रख्यातश्रीः प्रसिद्धलक्ष्मीकः, निजेति—निजकुलमेव स्ववंश एव महामेरुः सुमेरुस्तत्र मन्दार-शाखी कल्पवृक्षः । रूपकालंकारः, मन्दाक्रान्ताच्छन्दः ॥१८॥ § २२) अथातिबलनृपतेः कीर्तिं वर्णयितुमाह—गङ्गीयन्तीति—‘मालिन्यं व्योम्नि पापे यशसि धवलता वर्ण्यते हासकीर्त्योः’ इति कविसंप्रदायात्कीर्तिः शुक्ला वर्ण्यते तत्संसर्गादिशुक्ला अपि पदार्थाः शुक्ला वर्ण्यन्ते, तथाहि—विलसन्ती शोभमाना यत्कीर्तिः यदीयसमज्ञा तस्याः संघट्टतः संसर्गात् ‘यशः कीर्तिः समज्ञा च’ इत्यमरः । सदा शश्वत् समस्तसरितो निखिलनद्यः, गङ्गीयन्ति गङ्गेवाचरन्ति शुक्ला भवन्तीति भावः । अद्रयो गिरयः, रौप्याचलन्ति विजयार्धवदाचरन्ति, नीलाब्जानि नील-कमलानि सिताम्बुजन्ति शुक्लकमलवदाचरन्ति, गजता हस्तिसमूहः, जम्भारिकुम्भीयति ऐरावतवदाचरति, अम्बुजबान्धवः सूर्यः, चन्द्रति चन्द्रवदाचरति, पिककुलं कोकिलसमूहः लीलामरालायते क्रीडाहंसवदाचरति, कज्जलानि च कर्पूरन्ति घनेसारवदाचरन्ति । तद्गुणानुप्राणितोपमालंकारः, शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥१९॥ § २३) यदीयेति—यदीया चासौ कीर्तिश्च यदीयकीर्तिस्तस्याः कल्लोलैः परम्पराभिः विश्वस्मिन् जगति विशदीकृते घबलीकृते सति वैरिस्त्रीणां शत्रुसोमन्तिनीनां वदनाब्जानि मुखकमलानि मलिनानि कृष्णानि

१५

२०

२५

उज्ज्वल है) ॥१७॥ § २१) शास्तेति—समस्त विद्याधर राजाओंके मुकुटोंके अग्रभागपर सुशोभित होनेवाली मालाके समान जिसकी आज्ञा सुशोभित हो रही है, जो अत्यन्त धीर वीर लक्ष्मी-मान, प्रसिद्ध लक्ष्मीसे युक्त तथा अपने वंशरूपी महामेरु पर्वतपर कल्पवृक्ष स्वरूप था ऐसा अतिबल नामका विद्याधरेन्द्र उस अलका नगरीका शासक था ॥१८॥ § २२) गङ्गीयन्तीति—जिस अतिबल राजाकी कीर्तिके संसर्गसे समस्त नदियाँ सदा गंगानदीके समान आचरण करती हैं, पर्वत विजयार्धके समान आचरण करते हैं, नीलकमल सफेद कमलोंके समान जान पड़ते हैं, हाथियोंका समूह इन्द्रके हाथी—ऐरावतके समान हो जाता है, सूर्य चन्द्रमाके समान आचरण करता है, कोकिलोंका समूह क्रीडाहंसके समान हो जाता है और कज्जल कर्पूरके समान आचरण करते हैं ॥१९॥ § २३) यदीयेति—जिसकी कीर्तिकी परम्परासे समस्त संसारके सफेद हो जानेपर शत्रुस्त्रियोंके मुखकमल काले पड़ गये थे यह खेदकी बात थी

३०

३५

§ २४) यस्य प्रतापतपनेन विलीयमाने

लेखाचले रजतलिप्तधराधरे च ।

यत्कीर्तिशीतलसुपर्वनदीतरङ्गै—

रङ्गीकृतौ सपदि तौ स्थिरतामयाताम् ॥२१॥

५ § २५) रामा मनोहरा नाम बभूव वसुधापतेः ।

सौन्दर्यसिन्धुलहरी मदनिर्धूममञ्जरी ॥२२॥

§ २६) यस्याः किल मृदुलपदयुगलं गमनकलाविलासतिरस्कृतहंसकमपि विश्वस्तलालितहंसकं, विद्रुमशोभाञ्चितमपि पल्लविताशोकद्रुमशोभाञ्चितं, जङ्घायुगं जङ्घालताविरहितमपि जङ्घालता-

- अभवत्, वत खेदे ॥२०॥ § २४) यस्येति—यस्यातिबलखगेन्द्रस्य प्रताप एव तपनस्तेन प्रतापसूर्येण
- १० लेखाचले सुरगिरौ सुवर्णात्मकसुमेरुपर्वते, रजतलिप्तधराधरे च रौप्यात्मकविजयार्धपर्वते च विलीयमाने विद्रुते सति, यत्कीर्तिरेव यदीयसमञ्जैव शीतलसुपर्वनदी शीतलगङ्गासरित् तस्यास्तरङ्गैः, अङ्गीकृतौ स्वीकृतौ तौ सुमेरुविजयार्धपर्वतौ सपदि शीघ्रं स्थिरतां दृढताम् अयाताम् प्रापतुः । रूपकालंकारः, वसन्तति-लकावृत्तम् ॥२१॥ § २५) अथ राज्ञीं वर्णयितुमाह—रामेति—वसुधापतेः अतिबलनृपतेः मनोहरा नाम मनो-हरानाम्नी रामा बल्लभा बभूव । तस्या एव विशेषणान्याह—सौन्दर्येति—सौन्दर्यमेव सिन्धुः सौन्दर्यसिन्धुः
- १५ लावण्यसागरस्तस्य लहरी वीचिः, मदेति—मदस्य गर्वस्य निर्धूममञ्जरी प्रज्वलितज्वाला । रूपकालंकारः ॥२२॥ § २६) अथ विरोधाभासालंकारेण राज्ञीं वर्णयितुमाह—यस्या इति—यस्या मनोहरायाः किल मृदुलपद-युगलं कोमलचरणयुगं गमनकलाया विलासेन तिरस्कृताः पराभूता हंसा मराला येन तथाभूतमपि विश्वस्तं यथा स्यात्तथा लालिताः प्रसादिता हंसा येन तदिति विरोधः, परिहारपक्षे विश्वस्तं निश्चिन्तं यथा स्यात्तथा लालितो घृतो हंसकः पादकटको येन तत् 'हंसकः पादकटकः' इत्यमरः । विगतो द्रुमो विद्रुमो वृक्षाभावस्तस्य शोभयाञ्चितं
- २० सहितमपि पल्लवितः किसलययुक्तो योज्यशोकद्रुमः कङ्कलिवृक्षस्तस्य शोभयाञ्चितमिति विरोधः, यद् वृक्षशोभा-रहितं तद् वृक्षशोभासहितं कथं भवेदित्यर्थः, परिहारपक्षे विद्रुमः प्रवालं 'मूंगा' इति हिन्दीभाषायां तस्य शोभया-ञ्चितमपि पल्लविताशोकद्रुमशोभाञ्चितम् 'विद्रुमः पुंसि प्रवालं पुनपुसकम्' इत्यमरः । यस्याः मनोहराया जङ्घायुगं प्रस्तायुगं 'पिंडरी' इति हिन्दीभाषायाम्, जङ्घालता शीघ्रगामिता तया विरहितमपि जङ्घालता-विरुधात् शीघ्रगामिता प्रसिद्धमिति विरोधः 'जङ्घालोर्जितजवस्तुल्यौ' इत्यमरः । परिहारपक्षे शीघ्रगामितारहित-
- २५ ॥२०॥ § २४) यस्येति—जिस अतिबल राजाके प्रतापरूपी सूर्यके द्वारा सुमेरु और विजयार्ध पर्वत पिघल गये थे परन्तु उसी अतिबल राजाकी कीर्तिरूपी शीतल गंगानदीकी तरंगोंसे स्वीकृत होनेपर वे दोनों शीघ्र ही दृढताको प्राप्त हो गये थे ॥२१॥ § २५) रामेति—राजा अतिबलकी मनोहरा नामकी रानी थी । वह मनोहरा सौन्दर्यरूपी समुद्रकी लहर और गर्वरूपी अग्नि-की प्रज्वलित ज्वालाके समान जान पड़ती थी ॥२२॥ § २६) यस्या इति—जिस मनोहरा रानी-
- ३० के कोमल चरणयुगलने गमनकलाकी शोभासे यद्यपि हंसपक्षीको तिरस्कृत कर दिया था तो भी उसने विश्वास पूर्वक हंस पक्षियोंको प्रसन्न किया था, उनके साथ प्यार किया था तथा विद्रुमवृक्षोंकी शोभासे रहित होकर भी विद्रुमकी शोभासे युक्त थे (परिहार पक्षमें रानीके कोमल चरणयुगलने यद्यपि गमनकलाकी शोभासे हंसपक्षियोंको तिरस्कृत कर दिया था तो भी निश्चिन्तताके साथ उसने हंसक—पादकटक (तोड़र या पैजना) को धारण किया था
- ३५ और वे विद्रुम—वृक्षकी शोभासे रहित होनेपर भी विद्रुम—प्रवाल—मूंगाकी शोभासे सहित थे अर्थात् मूंगाके समान लालवर्ण थे । उसकी जंघाओं (पिंडरियों) का युगल जंघालता—शीघ्रगामितासे रहित होनेपर भी जंघालता—शीघ्रगामितासे प्रसिद्ध था (परिहार पक्षमें

विख्यातं, ऊरुद्वयं तु रम्भासमानमप्यरम्भासमानं, मध्यं पुनस्तनुसंगतमपि अतनुसंगतं, स्तनमण्डलं तु विवेकवार्तापरिहीनमपि क्षमाधरकलितविवेक्षमपि सुवृत्तशोभितं नमत्सरमपि कुम्भीन्द्रकुम्भयुग्मे समत्सरं कण्ठतलं च धूतदरमपि कान्तमहादरविराजितं कोमलाधरबिम्बं पुनर्बहुरागरञ्जितमपि तिरस्कृतपल्लवं, नवमुधारसोज्ज्वलमपि वसुधारसोज्ज्वलम्, विशालनयनद्वन्द्वं कर्णप्रणयपरीतमपि

मपि जङ्घा लतेवेति जङ्घालता तथा विख्यातम्, यस्या ऊरुद्वयं तु सक्थियुगलं तु रम्भासमानमपि कदलीसदृशमपि ५
अरम्भासमानं न कदलीसमानमिति विरोधः । परिहारपक्षे अरमत्यन्तं भासमानं शोभमानम्, यस्या मध्यम् अव-
लग्नं कटिप्रदेश इत्यर्थः, पुनः तनुसंगतमपि शरीरसंगतमपि अतनुसंगतं न शरीरसंगतमिति विरोधः, परिहारपक्षे
अतनुः कामस्तेन संगतं सहितं, यस्याः स्तनमण्डलं कुचमण्डलं तु विवेकस्य विचारस्य वार्तया परिहीनं रहितमपि
क्षमाधरैः शान्तपुरुषैः सह कलितः कृतो विद्वेषो येन तथाभूतमपि सुवृत्तशोभितं सदाचारशोभितमिति विरोधः
यत् सदसद्विवेकरहितं शान्तजनद्वेषि च भवति तत् कथं सदाचारशोभितं स्यादिति भावः, परिहारपक्षे विवेक- १०
वार्ता पीबत्वाद्भेदवार्ता तथा परिहीनमपि, कठिनत्वात् क्षमाधरैः पर्वतैः सह कलितविवेक्षं कृतविवेक्षमपि
सुवृत्तं वर्तुलाकारम् अतएव शोभितं 'वृत्तस्तु वर्तुलेऽतीते मृते ख्याते दृढे वृते । त्रिषु वृत्तं तु चरिते वृत्तं छन्दसि
वर्तते ॥' इति विश्वलोचनः । तदेव स्तनमण्डलं नमत्सरमपि मात्सर्यरहितमपि कुम्भीन्द्रकुम्भयुग्मे गजेन्द्रगण्ड-
युगले समत्सरं मात्सर्यसहितमिति विरोधः, परिहारपक्षे नमन् सरो हारो यस्मिन् तत् नमत्सरम् । यस्याः
कण्ठतलं च ग्रीवातलं च धूतस्तिरस्कृतो दरः शङ्खो येन तथाभूतमपि कान्तमहादरः सुन्दरमहाशङ्खस्तद्वद् १५
विराजितमिति विरोधः, परिहारपक्षे कान्तस्य बलभस्य महादरेण महाप्रीत्या विराजितं शोभितम् । यस्याः
कोमलाधरबिम्बं मृदुलदन्तच्छदबिम्बं पुनः बहुरागरञ्जितं प्रभूतालक्तकरागेण रञ्जितमपि तिरस्कृतः पल्लवो-
ऽलक्तकरागो येन तदिति विरोधः, परिहारपक्षे सौन्दर्यतिशयेन तिरस्कृतः पल्लवः किसलयो येन तत्, 'पल्लवो
विस्तरे खङ्गे शृङ्गारालक्तारागयोः । चलेऽप्यस्त्री तु किसले विटपेऽपि च पल्लवः ॥' इति विश्वलोचनः । तदेव
कोमलाधरबिम्बं वसुधारसेन यावकारसेनोज्ज्वलं न भवतीति न वसुधारसोज्ज्वलं तथाभूतमपि वसुधारसेन यावकर- २०
सेनोज्ज्वलमिति विरोधः, परिहारपक्षे नवमुधाया इव नव्यपीयूषस्येव रसस्तेनोज्ज्वलमपि वसुधारसेन यावकर-

शीघ्रगामितासे रहित होनेपर भी जंघारूपी लतासे प्रसिद्ध था) उसका ऊरुयुगल—जांघोंका २५
युगल रम्भा समान—केलाके स्तम्भके समान होकर भी अरंभा समान—केलाके स्तम्भके समान
नहीं था (परिहार पक्षमें केलाके स्तम्भके समान होकर भी अरं—अत्यन्त भासमान—शोभ-
मान था) । उसका मध्यभाग तनुसंगत—शरीरसे संगत—जुड़ा हुआ होनेपर अतनुसंगत २५
था—शरीरसे संगत नहीं था (परिहार पक्षमें तनुसंगत होनेपर भी अतनु—अनंग—काम-
से संगत था अर्थात् अपनी सुन्दरतासे कामको उत्पन्न करनेवाला था) । उसका स्तनमण्डल
यद्यपि विवेकवार्तासे हिताहितके ज्ञानकी चर्चासे रहित था तथा क्षमाधर—क्षमाशील मनुष्यों-
के साथ द्वेष करता था तो भी सुवृत्त—सदाचरणसे सुशोभित था, इसी प्रकार नमत्सर— ३०
ईर्ष्यासे रहित होनेपर भी गजेन्द्रके गण्डस्थलमें समत्सर—ईर्ष्यासे सहित था (परिहार पक्षमें
विवेकवार्ता—भेदवार्तासे रहित था अर्थात् अत्यन्त स्थूल होनेके कारण परस्पर सटा हुआ था
और कठोरताके कारण क्षमाधर—पर्वतसे भी द्वेष करता था अर्थात् पर्वतसे भी कहीं अधिक
कठोर था एवं सुवृत्त—गोलाकारसे सुशोभित था, तथा नमत्सर नम्रीभूत सर—हारसे सहित
होकर भी आकृतिकी अपेक्षा गजेन्द्रके गण्डस्थलके साथ समत्सर—ईर्ष्या करने वाला था) ।
उसका कण्ठतल धूतदर—शंखका तिरस्कार करने वाला होकर भी कान्तमहादरविराजित— ३५
सुन्दर एवं विशाल शंखके समान सुशोभित था (परिहारपक्षमें शंखका तिरस्कर्ता होनेपर
भी कान्तमहादर पतिके महान् आदरसे सुशोभित था) । उसका कोमल अधर बिम्ब
बहुराग—बहुत भारी यावक अर्थात् ओठोंमें लगाने योग्य लालरंगसे रंजित—रंगा हुआ

कृष्णार्जुनरुचिमेदुरं मुखकमलं पुनः कृतराजविद्वेषमपि राजोल्लासमादधानं भोगहितमपि नभोगहितं विरराज ।

§ २७) महाबलख्यातसुतस्तयोरभून्महोदयः सर्वकलासु कोविदः ।

सुतेषु भिन्नेष्वपि सत्सु यन्मयी प्रमोदवल्ली ववृधे महीपतेः ॥२३॥

§ २८) कलासरणिलासिकाविविधलास्यारङ्गस्थली-

निकाशरसनाञ्चलो निखिलकोविदोल्लासकः ।

- १० सेनोज्ज्वलं शोभमानम् । यस्या विशालनयनद्वन्द्वं दीर्घलोचनयुगलं कर्णस्य राधेयस्य प्रणयेन प्रीत्या परोतमपि व्याप्तमपि कृष्णार्जुनयोः वासुदेवपार्थयो रुच्या प्रीत्या मेदुरमिति विरोधः कर्णः कौरवपक्षपाती कृष्णार्जुनौ तु पाण्डवपक्षपातितौ तयोरेकत्र प्रीतिर्विरुद्धेति भावः । परिहारपक्षे कर्णयोः श्रोत्रयोः प्रणयः प्राप्तस्तेन परोतमपि श्रोत्रपर्यन्तदीर्घमिति भावः । कृष्णार्जुनरुचिभ्यां कृष्णशुक्लकान्तिभ्यां मेदुरं सहितम् । यस्या मुखं कमलं वदन-
वारिजं कृतो विहितो राजा चन्द्रेण विद्वेषो विरोधो येन तथाभूतमपि राजा उल्लासं राजोल्लासं चन्द्रोल्लासम् आदधानं कुर्वाणमिति विरोधः यच्चन्द्रद्वेषि तदेव चन्द्रोल्लासि कथं भवेदिति भावः, परिहारपक्षे राज्ञो नृपस्य पत्युल्लासमादधानम्, 'राजा प्रभी नृपे चन्द्रे यज्ञे क्षत्रियशत्रयोः' इति विश्वः । तदेव मुखकमलं भोगाय हितमपि भोगाय हितं न भवतीति नभोगहितमिति विरोधः, परिहारपक्षे नभसि गच्छतीति नभोगोऽतिबलविद्याधरस्तस्मै हितम्, विरराज शुशुभे ॥ सर्वत्र श्लेषानुप्राणितो विरोधाभासालंकारः । अथ तयोः पुत्रं वर्णयितुमाह—§ २७)
महाबलेति—सा च स चेति तौ तयोः मनोहरातिबलयोः महोदयो महावैभवशाली सर्वकलासु निखिलचानुरीषु कोविदो विद्वान् 'विद्वान् विपरिचयोधजः सन्मुखीः कोविदो बुधः' इत्यमरः । महाबलख्यातसुतो महाबलामि-
धानः पुत्रः अभूत् । भिन्नेषु अन्येषु सुतेषु सत्स्वपि यन्मयी यत्संबन्धिनी महीपते राज्ञः प्रमोदवल्ली हर्षलता ववृधे वृद्धिगता । वंशस्थवृत्तम् ॥२३॥ § २८) कलासरणीति—कलासरणिरेव वैदग्ध्योऽन्ततिरेव लासिका नर्तकी तस्या विविधलास्यानां नानानृत्यानां रङ्गस्थली रङ्गभूमिस्तस्या निकाशः सदृशो रसनाञ्चलो जिह्वाग्र-

- होने पर भी पल्लव—यावकको तिरस्कृत करनेवाला था (परिहार पक्षमें बहुतभारी यावकसे रंगा हुआ होकर भी पल्लव—वृक्षकी नवीन कोंपलको तिरस्कृत करनेवाला था अर्थात् उससे भी कहीं अधिक लाल था) । तथा नवसुधारसोज्ज्वल—वसुधारस—यावकरस—लालरंगसे उज्ज्वल न होकर भी वसुधारससे उज्ज्वल था (परिहार पक्षमें नवसुधारस—नूतन अमृतके समान रससे उज्ज्वल होकर भी वसुधारस—यावक—लालरंगसे उज्ज्वल था । उसके दीर्घनेत्रोंका युगल कर्ण प्रणय—राधाके पुत्र—अंगदेशके राजा कर्णके स्नेहसे सहित होकर भी कृष्णार्जुनरुचि—श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी प्रीतिसे सहित था (परिहार पक्षमें कर्णप्रणय कानोंकी प्राप्तिसे सहित थे अर्थात् कानों तक लम्बे थे और कृष्ण—काली तथा अर्जुन—सफेद रुचि—कान्तिसे सहित था) । तथा उसका मुखकमल कृतराजविद्वेष—राजा अर्थात् चन्द्रमाके साथ द्वेष करनेवाला होकर भी राजोल्लास—चन्द्रमाके उल्लासको धारण करनेवाला था (परिहार पक्षमें सौन्दर्यसे चन्द्रमाके साथ द्वेष करता हुआ भी राजा—पति अतिबल राजाके उल्लास—आनन्दको धारण करनेवाला था) और भोगहित—भोगके लिए हितकारक होकर भी नभोगहित—भोगके लिए हितकारक नहीं था (परिहार पक्षमें भोगके लिए हितकारक होकर भी नभोगहित—आकाशगामी राजा अतिबल विद्याधर-
के लिए हितकारी था) । § २७) महाबलेति—उन अतिबल और मनोहराके महावैभव-
शाली तथा समस्त कलाओंमें निपुण महाबल नामका पुत्र हुआ । अन्य पुत्रोंके रहने पर भी जिससे सम्बन्ध रखने वाली राजाकी हर्षरूपी लता ऋद्धिको प्राप्त हुई थी ॥२३॥ § २८) कलासरणीति—कलाओंकी सन्ततिरूपी नृत्यकारिणीके नाना प्रकारके नृत्योंकी रंग-
भूमिके समान जिसकी जिह्वाका अग्रभाग था, जो समस्त विद्वानोंको आनन्दित करनेवाला

यशःकुसुममाधुरीप्रमुदितामरीबम्भरी-

स्वरप्रसरपूरितत्रिभुवनः कुमारो बभौ ॥२४॥

§ २९) कलाविलाससदनं कान्तिकेलिनिकेतनम् ।

महाबल इति ख्यातं मूर्तं तेजो व्यजृम्भत ॥२५॥

§ ३०) नभश्चरधरापतिस्तदनु यौवराज्ये पदे

कुमारमिममादिशत्कमलबन्धुकल्पप्रभम् ।

नृपे नृपसुते तदा पृथगवस्थिता श्रीर्बभौ

हिमाद्रिकटके पयोनिधिजले च गङ्गा यथा ॥२६॥

§ ३१) अथ कदाचन व्योमचरवसुधाधिपतिः संसारविषयसंजातनिर्वेगः अनादिप्रस्थित-
कर्मबीजप्ररोहप्ररूढकाण्डां, जननादिकुसुमकोरकितां, व्यसनफलविलसितामसुभृत्कदम्बलोलम्ब- १०

भागो यस्य तथाभूतः, निखिलकोविदानां समग्रविदुषामुल्लासको हर्षको निखिलविद्वन्मोदक इत्यर्थः, यशःकुसु-
मस्य कीर्तिपुष्पस्य माधुर्या मधुरसेन प्रमुदिताः प्रसन्ना या अमर्यो देवाङ्गनास्ता एव बम्भर्यो भ्रमर्यस्तासां स्वर-
प्रसरेण स्वरसमूहेन पूरितं त्रिभुवनं येन सः, कुमारो महाबलः, बभौ शुशुभे । रूपकालंकारः । पृथिवीछन्दः ॥२४॥

§ २९) कलेति—कलानां हस्त्यश्वारोहणविज्ञानप्रभृतिनानाविधवैदग्धीनां विलाससदनं क्रीडाभवनं, कान्त्या
दीप्तेः केलिनिकेतनं क्रीडाभवनं, महाबल इति ख्यातं प्रसिद्धं मूर्तं सशरीरं तेजः प्रतापं व्यजृम्भत । रूपकालंकारः १५

॥२५॥ § ३०) नभश्चरेति—तदनु तत्पश्चात् नभश्चराणां विद्याधराणां धरापतिर्नभश्चरधरापतिः अतिबल-
नृपतिः कमलबन्धुकल्पप्रभं सूर्यसमतेजसम् इमं कुमारं महाबलं युवा चासौ राजा च युवराजस्तस्य भावः कर्म
वा यौवराज्यं तद्रूपे पदे, आदिशत् नियोजयामास । तदा नृपेतिबलमहाराजे नृपसुते महाबलयुवराजे च पृथग्

भिन्नरूपेण अवस्थिता विद्यमाना श्री राजलक्ष्मीः हिमाद्रिकटके हिमाचलकटके पयोनिधिजले च सागरसलिले च
अवस्थिता गङ्गा यथा भागीरथीव बभौ शुशुभे । उपमालंकारः । पृथिवीछन्दः ॥२६॥ § ३१) अथेति— २०

अथ महाबलाय युवराजपददानानन्तरं कदाचन जातुचित् व्योमचरवसुधाधिपतिः खगधराधीशितातिबलः,
संसारविषये संजातः समुत्पन्नो निर्वेगो वैराग्यं यस्य तथाभूतः सन्, अनादिप्रस्थितानि अनाद्यायातानि कर्माणि

ज्ञानावरणप्रभृतीन्येव बीजप्ररोहबीजाङ्कुरास्तेभ्यः प्ररूढः समुत्पन्नः काण्डः स्कन्धो यस्यास्तां 'काण्डः स्तम्बे
तस्स्कन्धे' इति मेदिनी । जननादीन्येव जन्ममरणादीन्येव कुसुमकोरकाणि पुष्पकुड्मलानि तानि संजातानि यस्यां
तां, व्यसनानि दुःखान्येव फलानि तैर्विलसितां शोभिताम्, असुभृत्कदम्बकानि प्राणिसमूहा एव लोलम्बा भ्रमरा- २५

था तथा यशरूपी पुष्पोंकी मिठाससे प्रसन्न देवीरूपी भ्रमरियोंके स्वरसमूहसे जिसने तीनों
लोकोंको व्याप्त कर दिया था ऐसा वह महाबलकुमार अतिशय शोभायमान होता था ॥२४॥

§ २९) कलाविलासेति—कलाओंका विलासभवन और कान्तिका क्रीडाभवन महाबल इस
नामसे प्रसिद्ध मूर्तिक तेज वृद्धिको प्राप्त होने लगा ॥२५॥ § ३०) नभश्चरेति—तदनन्तर

विद्याधरोंके राजा अतिबलने सूर्यके समान तेजस्वी इस महाबल कुमार को युवराज पद पर
नियुक्त कर दिया । उस समय राजा और राजपुत्रमें पृथग् पृथग् रूप से अवस्थित राजलक्ष्मी

हिमाचलके कटक और समुद्रके जलमें स्थित गंगा नदीके समान सुशोभित हो रही थी ॥२६॥

§ ३१) अथेति—तेदनन्तर किसी समय जिसे संसारके विषयमें वैराग्य उत्पन्न हो गया था
ऐसा विद्याधरराजा अतिबल, अनादिकालसे आये हुए कर्मरूपी बीजाङ्कुरोंसे जिसका स्कन्ध
उत्पन्न हुआ है, जो जन्ममरणादिरूप फूलोंकी बोंडियोंसे व्याप्त है, दुःखरूपी फलोंसे सुशोभित ३५

चुम्बितां संसारवल्लरीं ध्यानकुठारेण निर्मूलयितुकामः, कामपि चिन्तां मनसा गाहमानः, तत्क्षणमेव महामन्त्रिमण्डलसामन्तसन्दोहशुद्धान्तमुख्यजनेभ्यो निवेदितनिजोदन्तः समस्तदिगन्तविकसितललित-
यशोविलसितलतान्ताय प्रकृतिजनमनःकुमुदकुमुदिनीकान्ताय सकललोकलोचनानन्दाय महाबलाया-
भिषेकपुरःसरं प्रतिपादितराज्यभारो व्यपेतबन्धन इव गन्धसिन्धुरः क्रमेण निजमन्दिरान्निर्गत्य
५ विद्याधरवसुमतीवल्लभैरनुगम्यमानः संसारदुःखशमनदक्षां जैनीं दीक्षामासाद्य सुचिरं तपश्चचार ।

§ ३२) ततो धीरोदारः सकलखगभूमीशमकुटी—

तटीप्रोद्यद्भ्रतप्रतिफलितपादाम्बुजयुगः ।

दधे दोष्णा राज्यश्रियमतिबलस्यात्मजवरः

प्रजारक्षादक्षः सकलगुणसंकेतसदनम् ॥२७॥

- १० स्तैश्चुम्बितां संसारवल्लरीं भवतां ध्यानकुठारेण ध्यानपरशुना निर्मूलयितुकामः उत्पाटयितुमनाः 'तुं काम-
मनसोरपि' इति मकारलोपः, कामपि रचनागोचरां चिन्तां विचारसंततिं मनसा चेतसा गाहमानः प्रविशन्,
तत्क्षणमेव तत्कालमेव महामन्त्रिमण्डलं च सामन्तसंदोहश्च शुद्धान्तमुख्यजनाश्च तेभ्यः, निवेदितः सूचितो
निजोदन्तः स्ववृत्तान्तो येन तथाभूतः 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इत्यमरः, समस्तदिगन्तेषु निखिल-
काष्ठान्तेषु विकसितं प्रफुल्लं ललितयशः कमनीयकीर्तिरेव विलसितलतान्तं सुन्दरं पुष्पं यस्य तस्मै, प्रकृति-
१५ जनानाममात्यादीनां मनांस्येव कुमुदानि तेषां कुमुदिनीकान्तरचन्द्रस्तस्मै, सकललोकलोचनानन्दाय निखिलनर-
नयनानन्दाय महाबलाय तन्नामयुवराजाय अभिषेकपुरःसरं यथा स्यात्तथा प्रतिपादितो राज्यभारो येन तथाभूतः
सन् व्यपेतं बन्धनं यस्य तथाभूतो गन्धसिन्धुर इव मत्तमवज्ज्वल इव क्रमेण निजमन्दिरात् स्वभवनात्, निर्गत्य,
विद्याधरवसुमतीवल्लभैः खेचरराजैः अनुगम्यमानः, संसारदुःखस्य शमने दक्षा तां भवव्यसनशमोकरणसमर्थं
जैनीं दीक्षां प्रव्रज्यामासाद्य गृहीत्वा सुचिरं दीर्घकालपर्यन्तं तपश्चचार तपस्यां कृतवान् । § ३२) तत इति—
२० ततः पितुर्दीक्षाग्रहणानन्तरं धीरश्चासावुदारश्चेति धीरोदारो गभीरो दाता च, सकलाः समस्ता ये खगभूमीशा
विद्याधरधरावल्लभास्तेषां मकुटोतटीषु मौल्यप्रभागेषु प्रोवन्ति देदीप्यमानानि यानि रत्नानि तेषु प्रतिफलितं प्रति-
बिम्बितं पदाम्बुजयुगं चरणयुगलं यस्य तथाभूतः, प्रजाया रक्षायां दक्षो निपुणः प्रजारक्षादक्षः, सकलगुणानां
निखिलगुणानां संकेतसदनं संकेतभवनम्, अतिबलस्यात्मजवरो महाबलः, दोष्णा भुजेन 'दोर्दोषा च भुजो बाहुः'

- है तथा प्राणिसमूह रूप भ्रमरोंसे चुम्बित है ऐसी संसाररूपी लताको ध्यानरूपी कुठारके
२५ द्वारा निर्मूल करने की इच्छा करता हुआ मनसे किसी विचारसरणिमें मग्न हो गया । उसने
उसी समय महामन्त्रिमण्डल सामन्तोंका समूह तथा अन्तःपुरके मुख्य जनोंके लिए अपना
वृत्तान्त सूचित किया और समस्त दिशाओंके अन्त तक जिसका मनोहर यशरूपी कुसुम
सुशोभित हो रहा था, जो मन्त्री आदि प्रजाजनोके मनरूपी कुमुदोंको विकसित करनेके लिये
चन्द्रमाके समान था तथा समस्त मनुष्योंके नेत्रोंको आनन्द देने वाला था ऐसे महाबलके
३० लिए अभिषेकपूर्वक राज्यका भार समर्पित किया । तदनन्तर बन्धन रहित मत्तहाथीके समान
निज भवनसे निकलकर अनेक विद्याधर राजाओंके साथ उसने संसारका दुःख शमन
करनेमें समर्थ जिन दीक्षा प्राप्त कर दीर्घकाल तक तपश्चरण किया । § ३२ तत इति—
पिताके दीक्षा लेनेके बाद, जो अत्यन्त धैर्यशाली तथा उदार था, समस्त विद्याधर राजाओंके
मुकुट तटोंमें लगे हुए रत्नोंमें जिसके चरणकमलोंके युगल प्रतिबिम्बित हो रहे थे, जो प्रजा-
३५ की रक्षामें समर्थ था तथा जो समस्त गुणोंका संकेतभवन—एकत्र मिलनेका स्थान था ऐसे

§ ३३) यस्मिन्महोपाले महोलोकलोकोत्तरप्रासादशातकुम्भमयस्तम्भायमानेन निजभुजेन धरणीमङ्गलनिविशेषमाविभ्राणे, बन्धनस्थितिः कुसुमेषु चित्रकाव्येषु च, अलंकाराश्रयता महाकविकाव्येषु कामिनीजनेषु च, घनमलिनाम्बरता प्रावृषेण्यदिवसेषु कृष्णपक्षनिशासु च, परमोहप्रतिपादनं प्रमाणशास्त्रेषु युवतिजनमनोहराङ्गेषु च, शुभकरवालशून्यता कोदण्डधारिषु कच्छपेषु च परं व्यवतिष्ठत ।

इत्यमरः, राज्यश्रियं राज्यलक्ष्मीं दधे बभार । शिखरिणीच्छन्दः ॥२७॥ § ३३) यस्मिन्निति—यस्मिन्महोपाले यस्मिन् राजनि महोलोकः पृथिवीलोक एव लोकोत्तरप्रासादः सर्वश्रेष्ठभवनं तस्य शातकुम्भमयस्तम्भ इवाचरतीति शातकुम्भमयस्तम्भायमानस्तेन सौवर्णस्तम्भायमानेन निजभुजेन स्वबाहुना धरणीं वसुधराम् अङ्गदनिविशेषं केयूरतुल्यम् अनायासेनेति भावः आविभ्राणे धृतवति सति, बन्धनस्थितिः वृन्तस्थितिः मालादिरूपेण सूत्रबन्धनस्थितिश्च कुसुमेषु पुष्पेषु बन्धनस्थितिः चक्रहारादिबन्धनस्थितिश्च चित्रकाव्येषु च व्यवतिष्ठत न तु तत्रत्यमनुष्येषु रज्ज्वादिबन्धनं व्यवतिष्ठत, अलंकाराश्रयता रूपकोपमाद्यलंकाराणामाश्रयता महाकविकाव्येषु कटककुण्डलाद्यलंकाराणामाश्रयता कामिनीजनेषु वनितावृन्देषु च व्यवतिष्ठत, न तु तत्रत्यमनुष्येषु अलमत्यन्तं काराश्रयता बन्दीगृहाश्रयता व्यवतिष्ठत । घनमलिनाम्बरता घनैर्मलिनमम्बरं नभो येषु घनमलिनाम्बरास्तेषां भावो घनमलिनाम्बरता मेघमलीमसगगनता प्रावृषेण्यदिवसेषु वर्षाकालवासरेषु घनमत्यन्तं मलिनं तिमिराक्रान्तस्त्वेन कृष्णमम्बरं गगनं यासु तां घनमलिनाम्बरास्तासां भावः अतिकृष्णगमनता कृष्णपक्षनिशासु बहुलपक्षरजनीषु च व्यवतिष्ठत न तु तत्रत्यमनुष्येषु घनानि निविडानि मलिनानि मलदूषितानि अम्बराणि वस्त्राणि येषां तेषां भावस्तथाभूतता व्यवतिष्ठत, 'अम्बरं व्योम्नि वाससि' इत्यमरः । परमोहप्रतिपादनं परमश्चासावृहश्च परमोहः श्रेष्ठतर्कस्तस्य प्रतिपादनं निरूपणं प्रमाणशास्त्रेषु न्यायशास्त्रेषु, परेषां मोहः परमोहस्तस्य प्रतिपादनम् अन्यजनमनोविभ्रमकारिता युवतिजनमनोहराङ्गेषु ललनाजनललितकलेवरेषु च व्यवतिष्ठत न तु तत्रत्यमनुष्येषु परः सातिशयो यो मोहो वैचित्थं तस्य प्रतिपादनं व्यवतिष्ठत, शुभकरवालशून्यता शुभकरवालशुभकरवालः शुभकृपाणस्तस्य शून्यता रिक्तता कोदण्डधारिषु चापधारिषु शुभकरा श्रेयस्करा ये वालाः केशास्तेषां शून्यता कच्छपेषु कूर्मेषु च व्यवतिष्ठत न तु तत्रत्यमनुष्येषु शुभकराः कल्याणकरा ये वालाः श्लेषे वयोरभेदाद् वालाः शिशवस्तेषां शून्यता व्यवतिष्ठत । 'यमकादौ भवेदैक्यं डलोर्बवो रलोस्तथा' इत्या-

महाबलने अपनी मुजासे राज्यलक्ष्मीको धारण किया था ॥२७॥ § ३३) यस्मिन्निति—जिस राजा महाबलके पृथिवीलोक रूपी श्रेष्ठ भवनके सुवर्णमय स्तम्भके समान आचरण करनेवाली अपनी मुजासे पृथिवीको बाजूबन्दके समान किसी आयासके बिना ही धारण करनेपर बन्धनस्थिति—बोड़ी रूप बन्धनकी स्थिति फूलोंमें ही थी और चक्र तथा हार आदि बन्धोंकी स्थिति चित्रकाव्योंमें ही थी वहाँके मनुष्योंमें रस्सी आदिके बन्धनकी स्थिति नहीं थी अर्थात् वहाँके मनुष्य कभी किसी बन्धनमें नहीं पड़ते थे । अलंकाराश्रयता—उपमा रूपक आदि अलंकारोंकी आधारता महाकवियोंके काव्योंमें ही थी और कटक कुण्डल आदि आभूषणोंकी सत्ता स्त्रीजनोंमें ही थी वहाँके मनुष्योंमें अतिशय रूपसे बन्दीगृहोंकी आधारता नहीं थी अर्थात् वहाँके मनुष्योंको कभी बन्दीगृहोंमें निवास नहीं करना पड़ता था । घनमलिनाम्बरता—मेघोंसे मलिन आकाशकी सत्ता वर्षाऋतुके दिनोंमें ही थी और अत्यन्त मलिन आकाशकी स्थिति कृष्णपक्षकी रात्रियोंमें ही थी वहाँके मनुष्योंमें मोटे और मलिन वस्त्रोंकी सत्ता नहीं थी अर्थात् वहाँके मनुष्य सदा महीन और उज्ज्वल वस्त्र ही पहिनते थे । परमोहप्रतिपादन—परमा ऊह अर्थात् श्रेष्ठ तर्कका निरूपण न्यायशास्त्रोंमें ही था और अन्य तरुणजनोंको मोह—विभ्रम उत्पन्न करना तरुण स्त्रियोंके मनोहर अंगोंमें ही था वहाँके मनुष्योंमें पर—अत्यधिक मोहका प्रतिपादन नहीं था । और शुभकरवालशून्यता—उत्तम

§ ३४) येन पाणौ गृहीतापि समरे समरेखिका ।

परेषामादधे चित्रं कण्ठालिङ्गनमङ्गलम् ॥२८॥

§ ३५) नृत्यन्त्यां यस्य हस्ताब्दे समरे खङ्गविद्युति ।

शत्रुस्त्रीनयनान्तेषु चित्रं वृष्टिरजायत ॥२९॥

५

§ ३६) तदनु सकलदिक्सुन्दरीसंदोहमणिमुकुरायमाणप्रतापदिनकरोदयपूर्वशिखरिशिखरा-
यमाणभुजदण्डस्य बलोद्दण्डस्य महाबलमहीपालप्रकाण्डस्य पीयूषरस इव सागरस्य, चन्द्रोदय इव
प्रदोषस्य, वसन्तसमय इव कुसुमारामस्य, सुरचापोद्गम इव जलधरसमयस्य, कुसुमप्रसव इव
कल्पपादपस्य, सूर्योदय इव सारसवनस्य, कलाप इव कलापितरुणस्य, यौवनारम्भः प्रादुरास ।

- लंकारिकाणामुक्तिः । श्लेषानुप्राणितः परिसंख्यालंकारः । § ३४) येनेति—समरे युद्धे येन महाबलनृपेण
१० पाणौ गृहीतापि विवाहितापि पक्षे हस्ते धृतापि समरेखिका काचित् नायिका कृपाणिका च परेषामन्येषां
कण्ठालिङ्गनमङ्गलं कण्ठस्थालिङ्गनमेव मङ्गलं कण्ठालिङ्गनमङ्गलम् आदधे कृतवतीति इति चित्रं परिहारपक्षे येन
पाणौ धृता कृपाणिका परेषां शत्रूणां कण्ठालिङ्गनं कण्ठच्छेदनं चकार । विरोधः ॥२८॥ § ३५) नृत्यन्त्या-
मिति—समरे रणे यस्य महाबलस्य हस्ताब्दे पाणिपयोदे खङ्गविद्युति कृपाणसौदामन्यां नृत्यन्त्यां नटन्त्यां
सत्यां वृष्टिः शत्रुस्त्रीनयनान्तेषु वैरिबलितादृगन्तेषु अजायत, इति चित्रं यत्र विद्युत् विद्योतते तत्रैव वृष्टिरुचिता
१५ परिहारपक्षे शत्रवो मारितास्तेन तदीयवन्तितानयनोपान्तेषु वृष्टिरभूत् अश्रुवर्षणं बभूवेति भावः । रूपकोत्था-
पितासंगतिरलंकारः ॥२९॥ § ३६) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं सकलदिक्सुन्दरीणां निखिलकाष्ठाकामिनीनां
यः संदोहः समूहस्तस्य मणिमुकुरायमाणो रत्नदर्पणायमानो यः प्रतापदिनकरस्तेजस्तपनस्तस्योदयाय पूर्वशिखरिणः
पूर्वाचलस्य शिखरायमाणः शृङ्गोपमो भुजदण्डो बाहुदण्डो यस्य तस्य, बलेन पराक्रमेण सैन्येन वोद्दण्डस्तस्य,
महाबलमहीपालप्रकाण्डस्य महाबलश्रेष्ठनृपतेः यौवनारम्भस्तारुण्यारम्भः प्रादुरास प्रकटीबभूवेति कर्तृक्रिया-
२० संबन्धः । अयं तस्यैवोपमानमाह—सागरस्य सिन्धोः पीयूषरस इव सुधारस इव, प्रदोषस्य रजनीमुखस्य
चन्द्रोदय इव, कुसुमारामस्य पुष्पोद्यानस्य वसन्तसमय इव सुरभिकाल इव, जलधरसमयस्य वर्षर्तुः सुर-
चापोद्गम इव शक्रशरासनप्रादुर्भाव इव, कल्पपादपस्य सुरतरोः कुसुमप्रसव इव पुष्पोद्भूतिरिव, सारस-
वनस्य कमलकाननस्य सूर्योदय इव भानूद्भव इव, कलापितरुणस्य मयूरतरुणस्य कलाप इव बर्हमिव ।

- तलवारका अभाव धनुर्धारियोंमें ही था तथा उत्तम केशोंका अभाव कच्छपोंमें ही था वहाँके
२५ मनुष्योंमें कल्याणकारी बालकोंका अभाव नहीं था । § ३४) येनेति—युद्धमें जिस महाबलके
द्वारा विवाही हुई स्त्री दूसरे पुरुषोंका कण्ठालिङ्गन करती थी यह आश्चर्यकी बात थी
(परिहार पक्षमें युद्धमें जिसके द्वारा हाथमें धारण की हुई तलवार शत्रुओंका कण्ठालिङ्गन
करती थी अर्थात् शत्रुओंका कण्ठच्छेदन करती थी) ॥२८॥ § ३५ नृत्यन्त्यामिति—युद्धमें जिस
महाबलके हाथरूपी मेघमें तलवाररूपी बिजली नृत्य करती थी और वृष्टि शत्रुस्त्रियोंके
३० नयनान्तमें होती थी यह आश्चर्यकी बात थी (परिहार पक्षमें जब महाबल हाथमें तलवार
लेकर उसे लपलपाता था तब शत्रुस्त्रियोंके नयनान्तमें अश्रुवृष्टि होने लगती थी ।) ॥२९॥
§ ३६) तदन्विति—तदनन्तर समस्त दिशारूप सुन्दरियोंके समूह सम्बन्धी मणिमयदर्पणके
समान आचरण करने वाले प्रताप रूपी सूर्यके उदयके लिए जिसका भुजदण्ड पूर्वाचलके
शिखरके समान था तथा जो पराक्रम अथवा सेनासे अत्यन्त उद्दण्ड था ऐसे महाबल नामक
३५ श्रेष्ठराजाका यौवनारम्भ उस तरह प्रकट हुआ जिस तरह कि समुद्रके अमृतरस, रात्रिके प्रारम्भ
भागके चन्द्रोदय, पुष्पोपवनके वसन्तसमय, वर्षाकालके इन्द्रधनुष, कल्पवृक्षके पुष्पोत्पत्ति,

§ ३७) तदा तादृगरूपं प्रकटमभवत्खेचरपते-

यदालोक्य व्रीलैस्तनुमसमबाणोऽपि विजहौ ।

नभोगस्त्रीनेत्रभ्रमरनिकराकर्षणकला-

धुरीणं यत्प्रोद्यत्तरुणिमसुमामोदमुरभिः ॥३०॥

§ ३८) खेचरीचित्तलोहानामयस्कान्तशलालिका ।

तस्य प्रजाभागधेयं रूपधेयमजृम्भत ॥३१॥

§ ३९) तस्य च राज्ञो निखिलकलावगाहगम्भीरबुद्धयो, नीतिशास्त्रपारावारपारदृश्वानः, सकलभुवनराज्यभारार्णवकर्णधाराः, कृच्छ्रेष्वपि कार्यसंकटेषु प्रसन्नमतिविभवाः धामानि धैर्यस्य, स्थानानि स्थैर्यस्य, सेतवः सत्यस्य, प्रवाहाः कर्णारसस्य, विहारसदनानि राजभक्तेः, सागराः प्रजासंतोषामृतस्य, निर्भरमुपलब्धप्रेमरसा, महामति-संभिन्नमति-शतमति-स्वयंबुद्धनामानश्चत्वारः १० सचिवाः संबभूवुः ।

मालोपमालंकारः । § ३७) तदेति—तदा यौवनारम्भे खेचरपतेर्विद्याधरराजस्य महाबलस्य तादृक् तादृशं रूपं सौन्दर्यं प्रकटमभवत् । यद् रूपम् आलोक्य दृष्ट्वा असमबाणोऽपि कामोऽपि व्रीलन् लज्जितोभवन् तनुं शरीरं विजहौ तत्याज । यच्च रूपं नभोगस्त्रीणां विद्याधरीणां नेत्राण्येव भ्रमरा मिलिन्दास्तेषां निकरः समूह-स्तस्याकर्षणकलायां वशीकरणवैदग्ध्यं धुरीणं निपुणम्, यच्च रूपं प्रोद्यत्तरुणिमेव प्रकटीभवत्तादृश्यमेव सुमं पुष्पं १५ तस्यामोदेन गन्धेन सुरभि मनोज्ञं च बभूवेति शेषः । रूपकोट्येक्षालंकारः । शिखरिणीछन्दः ॥३०॥ § ३८) खेचरीति—खेचरीणां विद्याधरीणां चित्तान्येव लोहास्तेषाम् अयस्कान्तशलालिका चुम्बकमणिसूची, प्रजाभागधेयं प्रजाभाष्यं तस्य महाबलस्य रूपधेयं सौन्दर्यम् । अजृम्भत अहर्निशं वृद्धिगतमभूत् । रूपकालंकारः ॥३१॥ § ३९) तस्य चेति—तस्य च महाबलस्य राज्ञः महामति-संभिन्नमति-शतमति-स्वयंबुद्धनामानः चत्वारः सचिवा अमात्याः संबभूवुरिति कर्तृक्रियासंबन्धः । अथ तेषां विशेषणान्याह—निखिलकलासु सर्वविधवैदग्ध्येषु २० अवगाहेन प्रवेशेन गम्भीरा प्रगल्भा बुद्धियेषां ते, नीतिशास्त्रमेव पारावारः सागरस्तस्य पारं दृष्टवन्त इति नीतिशास्त्रपारावारपारदृश्वानः, सकलभुवनस्य निखिललोकस्य राज्यभार एवार्णवः सागरस्तत्र कर्णधाराः, कृच्छ्रेष्वपि कठिनेष्वपि कार्यसंकटेषु प्रसन्नो निर्मलो मतिविभवो बुद्धिसामर्थ्यं येषां तथाभूताः, धैर्यस्य धामानि, स्थैर्यस्य स्थानानि, सत्यस्य तथ्यस्य सेतवः पुलिनानि, कर्णारसस्य दयारसस्य प्रवाहा निर्भराः, राजभक्ते विहारसदनानि क्रीडाभवनानि, प्रजासंतोषामृतस्य प्रजासंतोष एवामृतं पीयूषं तस्य सागराः, निर्भरं यथा २५

कमलवनके सूर्योदय, और तरुणमयूरके पिच्छ प्रकट होता है । § ३७ तदेति—उस समय विद्याधरीके राजा महाबलका वैसा रूप प्रकट हुआ था कि जिसे देखकर लज्जित होते हुए कामदेवने भी शरीर छोड़ दिया था । जो रूप विद्याधरियोंके नेत्र रूपी भ्रमरसमूहको आकृष्ट करने की कलामें निपुण था, तथा प्रकट होते हुए तारुण्यरूपी पुष्पोंकी सुगन्धिसे मनोहर था ॥३०॥ § ३८) खेचरीति—जो विद्याधरियोंके चित्त रूपी लोहोंको खींचनेके लिए चुम्बकमणि ३० सलाईके समान था तथा प्रजाके भाग्य स्वरूप था ऐसा उसका वह रूप निरन्तर वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥३१॥ § ३९ तस्य चेति—उस राजा महाबलके महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध नामके चार मन्त्री थे । वे मन्त्री सकल कलाओंमें अवगाहन करनेसे गम्भीर बुद्धि वाले थे, नीतिशास्त्र रूपी समुद्रके पारदर्शी थे, समस्त संसारके राज्यभार रूपी समुद्रके खेवटिया थे, कठिनसे कठिन कार्यके संकटोंमें निर्मलबुद्धिके धारक थे, धैर्यके धाम ३५ थे, स्थिरताके स्थान थे, सत्यके सेतु थे, दयारसके प्रवाह थे, राजभक्तिके क्रीडाभवन थे,

§ ४०) समस्तशास्त्ररत्नानां निस्तुल्यनिकषोपलः ।

स्वयंबुद्धोऽभवत्तेषु सम्यग्दर्शनशुद्धोः ॥३२॥

§ ४१) खगानां राजापि प्रशमितविपक्षत्रजतया

गताशङ्कातङ्कः सकलखचरश्लाघ्यमहिमा ।

५

अमात्येषु न्यस्तक्षितिवलयभारोऽनुबुभुजे

निजस्त्रीभिः साकं खगसमुचितान्भोगविभवान् ॥३३॥

§ ४२) अबलाढ्योऽपि भूपालो दिक्षु ख्यातमहाबलः ।

न भोगोऽपि स्वयं भोगान्विविधान्बुभुजे चिरम् ॥३४॥

§ ४३) तथाहि कदाचिदसौ महाबलमहोपालो मन्देतरवनवाटीपर्यटनसुरभिलमन्दानिल-

- १० स्यात्तथा उपरुद्धो प्रेमरसो येषु तथाभूताः । § ४०) समस्तेति—तेषु सचिवेषु स्वयंबुद्ध एतन्नामधेयः सचिवः समस्तशास्त्राण्येव रत्नानि तेषां निखिलागमरत्नानां निस्तुल्यश्चासौ निकषोपलश्चेति निस्तुल्यनिकषोपलो निरुपमनिकषप्रस्तरः, सम्यग्दर्शनेन शुद्धा धीर्यस्य तथाभूतः सम्यक्त्वपूताधिषणः अभवत् । रूपकालं-कारः ॥३२॥ § ४१) खगानामिति—खगानां विद्याधराणां राजापि नृपतिरपि महाबलः प्रशमितविपक्षत्रजतया प्रशमितशत्रुसमूहतया गतो नष्ट आशङ्कातङ्को भयरोगो यस्य तथाभूतः, सकलखचरेषु निखिलविद्याधरेषु श्लाघ्यो महिमा यस्य तादृशः, अमात्येषु सचिवेषु, न्यस्तः स्थापितः क्षितिवलयभारो येन तथाभूतः सन् निजस्त्रीभिः साकं निजवनिताभिः सह खगसमुचितान् विद्याधरयोग्यान् भोगविभवान् भोगैश्वर्यान् अनुबुभुजे-ज्जुभुङ्क्ते स्म । अत्र महाबलमहोपालः खगानां पक्षिणां राजापि भूत्वा प्रशमितविपक्षत्रजतया प्रणाशितपक्षिपक्ष-समूहतया गताशङ्कातङ्कः प्रणष्टभयरोगोऽभूदिति विरोधो ध्वन्यते । शिखरिणोच्छन्दः ॥३३॥ § ४२) अबलेति—बलेन पराक्रमेण सैन्येन वा आढ्यः सहितो बलाढ्यः, न बलाढ्यः अबलाढ्यस्तथाभूतोऽपि सन् दिक्षु काष्ठासु
- २० ख्यातं महाबलं महापराक्रमी महासैन्यं वा यस्य स ख्यातमहाबल इति विरोधः, परिहारपक्षे अबलाभिः स्त्रीभिराढ्यः सहितोऽपि दिक्षु महाबलनाम्ना प्रसिद्धो भूपालः, नभोगोऽपि सन् भोगरहितोऽपि सन् स्वयं चिरं दीर्घकालपर्यन्तं विविधान् नैकविधान् भोगान् विलासान् स्वयं बुभुजे भुक्तवानिति विरोधः । परिहारपक्षे नभसि गगने गच्छतीति नभोगोऽपि खचरोऽपि सन् । विरोधाभासालंकारः ॥३४॥ § ४३) अथ तमेव भोगानुभवं वर्णयितुमाह—तथाहीति—असौ महाबलमहोपालः कदाचित् मन्देतरा विशाला या वनवाटी समुद्यानवीथी
- २५ प्रजाके सन्तोषरूपी अमृतके सागर थे तथा परस्पर अत्यन्त प्रेमरससे युक्त थे । § ४०) सम-स्तेति—उन मन्त्रियोंमें स्वयंबुद्धमन्त्री समस्त शास्त्ररूपी रत्नोंकी परीक्षा करनेके लिए अनुपम कसौटी था तथा सम्यग्दर्शनसे विशुद्ध बुद्धिका धारक था ॥३२॥ § ४१) खगाना-मिति—समस्त विद्याधरोंमें प्रशंसनीय महिमासे युक्त, विद्याधरोंका राजा महाबल भी शत्रुसमूहको नष्ट कर निःशंक हो मन्त्रियोंपर पृथिवीमण्डलका भार रख अपनी स्त्रियोंके
- ३० साथ विद्याधरोंके योग्य भोगोंके वैभवका उपभोग करने लगा ॥३३॥ § ४२ अबलाढ्योऽपि—वह राजा यद्यपि अबलाढ्य था—पराक्रम अथवा सेनासे सहित नहीं था तो भी दिशाओंमें महाबल—महान् पराक्रम अथवा बड़ी भारी सेनासे सहित प्रसिद्ध था (परिहार पक्षमें अबलाढ्य—अबलाओं—स्त्रियोंसे सहित था और दिशाओंमें महाबल नामसे प्रसिद्ध था) । तथा नभोग—भोगोंसे रहित होकर भी विविध भोगोंको चिरकाल तक भोग करता था
- ३५ (परिहार पक्षमें नभोग— आकाशगामी विद्याधर होकर भी चिरकाल तक विविध भोगोंको भोग करता था) ॥३४॥ § ४३ तथाहि—उन्हीं भोगोंका कुछ वर्णन इस प्रकार है—वह महाबल राजा, कभी तो कल्पवृक्षोंकी विशाल वनवीथियोंमें भ्रमण करनेसे सुगन्धित मन्द-मन्द वायु-

चलितस्तनशाटीनां वधूटीनां चन्दनरसच्छटाभिरिव स्मितसुधाकान्तिञ्जरीभिरभिषिच्यमानः, कर्ण-
पूरीकृतनीलोत्पलैरिव नयननिर्गलद्रोचिर्वीचिभिस्ताड्यमानः, कुङ्कुमवासधूलिभिरिव मणिभूषणगण-
कमनीयकान्तिकल्लोलैः पल्लविताङ्गः, कोमलकुसुमकुलैरिव नखमयूखजालकैरवकीर्यमाणः चम्पक-
दामभिरिव भुजलताभिराबध्यमानश्चिरं रजतमहीधरे महारजतमहीध्रे इवामर्त्यपतिविजहार ।

§ ४४) विचित्रनानावादित्रनादनादितद्विस्तटः ।

५

जातुचित्तस्य ववृधे वर्षवृद्धिमहोत्सवः ॥३५॥

§ ४५) तदानीं खलु निखिलगगनचरमणिमकुटमकरिकानिकषणरेखाविलसितपदकमल-
युगलं, अनेकरत्नाभरणकिरणजालकान्तरितावयवं, इन्द्रायुधसहस्रसंछादितमिव कनकशिखरिणं,

तस्यां पर्यटनेन परिभ्रमणेन सुरभिलः सुगन्धितो यो मन्दानिलो मन्थरसमीरस्तेन चलिता कम्पिता स्तनशाटी
यासां तासां वधूटीनां युवतीनां चन्दनरसच्छटाभिरिव मलयजरससंततिभिरिव स्मितमेव मन्दहसितमेव सुधा १०
पीयूषं तस्याः कान्तिञ्जरीभिः कान्तिप्रवाहैः अभिषिच्यमानोऽभिषवं प्राप्नुवानः, कर्णपूरीकृतानि कर्णाभरणत्वेन
धृतानि यानि नीलोत्पलानि नीलारविन्दानि तैरिव नयनेभ्यो निर्गलन्त्यो निष्पतन्त्यो या रोचिर्वीचयः कान्ति-
परम्परास्ताभिः ताड्यमानः, कुङ्कुमवासधूलिभिरिव काश्मीरमुगन्धिवूर्णैरिव मणिभूषणगणस्य रत्नालंकारराजेः
कान्तिकल्लोलैर्दीप्तिभङ्गैः पल्लविताङ्गः किसलयितकलेवरः, कोमलानि च तानि कुसुमकुलानि च तैरिव
मृदुललतान्तसमूहैः नखमयूखजालकैर्नखकिरणकलापैः अवकीर्यमाण आच्छाद्यमानः, चम्पकदामभिरिव १५
चाम्पेयस्रग्भिरिव भुजलताभिर्बाहुवल्लरीभिः आबध्यमान आलिङ्ग्यमानः चिरं चिरकालपर्यन्तं महारजतमहीध्रे
सुवर्णशैले सुमेरी अमर्त्यपतिरिव देवेन्द्र इव रजतमहीधरे विजयार्धगिरौ विजहार विहरति स्म चिक्रोडेत्यर्थः ।

§ ४४) विचित्रेति—जातुचित् कदाचित् तस्य महाबलमहीपालस्य विचित्राणां विविधानां वादित्राणां वाद्यानां
नादेन शब्देन नादितानि शब्दितानि दिक्कटादि यस्मिंस्तथाभूतो वर्षवृद्धिमहोत्सवो जन्मोत्सवो ववृधे वर्धते
स्म ॥३५॥ § ४५) तदानीमिति—तदानीं वर्षवृद्धिमहोत्सवे महाबलक्षितिपति महाबलभूपालम् अवलोक्य २०
स्वर्णबुद्धसचिवः प्रस्तावितः प्रारब्धो धर्मकथानां प्रस्तावोऽवसरो येन तथाभूतः सन् तस्य धर्मकथाप्रस्तावस्य
प्रतिष्ठापनाय दृढीकरणाय, दृष्टश्च श्रुतश्च अनुभूतश्चेति दृष्टश्रुतानुभूताः ते च तेऽर्थश्च तेषां संबन्धिनीम्
इमां वक्ष्यमाणां कथां व्याजहार कथयामासेति कर्तृक्रियासंबन्धः । अथ महाबलक्षितिपतेविशेषणान्याह—
निखिलेति—निखिलगगनचराणां समस्तविद्याधराणां मणिमकुटमकरिकासु रत्नमौल्यग्रपोष्ठेषु निकषणेन संघर्षणेन
या रेखा लेखास्ताभिविलसितं शोभितं पदकमलयुगलं चरणाब्जयुगं यस्य तम्, अनेकेति—अनेकानि विविधानि २५

से जिनके स्तनोंपरकी साड़ियाँ हिल रही थीं ऐसी तरुण स्त्रियोंकी चन्दनरसकी छटाओंके
समान मन्दमुसकान रूपी अमृतके कान्तिप्रवाहसे अभिषेकको प्राप्त होता था, कभी कानोंके
अलंकाररूपसे धारण किये हुए नील कमलोंके समान नेत्रोंसे निकलती हुई कान्तिकी परम्परा-
से ताड़ित होता था, कभी केशरके सुगन्धित चूर्णके समान मणिमय भूषण समूहकी सुन्दर
कान्तिकी तरंगोंसे पल्लवोंसे युक्त जैसा शरीरका धारक होता था, कभी कोमल फूलोंके ३०
समूहके समान नखोंकी किरणोंके समूहसे आच्छादित होता था, और कभी चम्पाकी
मालाओंके समान उन तरुणस्त्रियोंकी भुजरूपी लताओंसे बन्धनको प्राप्त होता था । इस
तरह वह सुमेरुपर्वतपर इन्द्रके समान, विजयार्धपर्वतपर चिरकाल तक विहार करता रहा ।
§ ४४) विचित्रेति—किसी समय नाना प्रकारके अनेक बाजोंके शब्दोंसे जिसमें दिशाओंके
तट शब्दायमान हो रहे थे ऐसा राजा महाबलका वर्षगांठका महोत्सव वृद्धिको प्राप्त हो ३५
रहा था ॥३५॥ § ४५) तदानीमिति—उस समय निश्चयसे समस्त विद्याधरोंके मणिमय
मुकुटोंकी कलंगीके संघर्षणकी रेखाओंसे जिसके चरणकमलके युगल सुशोभित हो रहे थे,

धैर्यगुणविजिते सेवार्थमागत इव हेमाचलशृङ्गे तुङ्गतममङ्गलसिंहासने समासीनं, निजवदनवारिज-
विजयपराभवप्रणत इव शशिविम्बं स्फटिकमणिपीठे विन्यस्तवामपादम्, अम्बरचराङ्गनाकर-
पल्लवेल्लासितहेमचामरपवनविलोलविमलदुकूलाञ्चलम्, अतिप्रचण्डमाण्डलिकमहासामन्तप्रधा-
चमन्त्रिपुरोहितान्तर्वेशिकादिपरिवारपरिवृतम्, आस्थानमण्डपगतं प्रीतं महाबलक्षितिपतिमवलोक्य
स्वयंबुद्धसचिवः प्रस्तावितधर्मकथाप्रस्तावस्तत्प्रतिष्ठापनाय दृष्टश्रुतानुभूतार्थसंबन्धिनोमिमां कथां
व्याजहार ।

४६ §) राजन् राजसमानवक्त्र भवतो वंशे विशाले पुरा

खेन्द्रोऽभूदरविन्दनामविदितः प्रत्यर्थादावानलः ।

शास्तैतस्य पुरस्य तस्य विजयादेवी बभूव प्रिया

कान्त्या कोमलया निराकृतरती राकेन्दुबिम्बानना ॥६६॥

१०

यानि रत्नाभरणानि मणिमयभूषणानि तेषां किरणजालकेन रश्मिसमूहेनान्तरितास्तिरोहिता अवयवा अङ्गानि
यस्य तं, अतएव इन्द्रायुधानां शक्रशरासनानां सहस्रेण संछादितं तथाभूतं कनकशिखरिणमिव सुवर्णशैलमिव,
धैर्यगुणविजिते धैर्यमेव गुणस्तेन विजिते पराजिते अतएव सेवार्थं शुश्रूणार्थमागते हेमाचलशृङ्ग इव सुमेरुशिखर
इव तुङ्गतममत्युन्नतं यन्मङ्गलसिंहासनं तस्मिन् समासीनमविष्टितम्, निजवदनेति—निजवदनवारिजस्य निजास्य-
सरोरुहस्य विजयस्तेन पराभवोऽजादरस्तेन प्रणत इव नम्रीभूते शशिविम्ब इव चन्द्रमण्डल इव स्फटिकमणिपीठे
स्फटिकोपलपीठे विन्यस्तवामपदं निक्षिप्तसव्यचरणम्, अम्बरेति—अम्बरचराणां विद्याधराणां या अङ्गनास्तासां
करपल्लवैः पाणिपल्लवैरुल्लासिताः समुन्नमिता ये हेमचामराः सुवर्णप्रकीर्णकास्तेषां पवनेन समीरेण विलो-
लञ्चलं विमलदुकूलाञ्चलं निर्मलझौमाञ्चलं यस्य तथाभूतं, अतिप्रचण्डेति—अतिप्रचण्डाः प्रभूतपराक्रमशालिनो
ये माण्डलिका मण्डलेश्वराः महासामन्ताः प्रधानमन्त्रिणः पुरोहिता अन्तर्वेशिकादयश्च तेषां परिवारेण समूहेन
परिवृतं वेष्टितम्, आस्थानमण्डपगतं सभामण्डपस्थितं, प्रीतं प्रसन्नम् । § ४६) रौद्रध्यानफलं निरूपयितुमाह—
राजक्षिति—राजसमानं चन्द्रतुल्यं वक्त्रं मुखं यस्य तत्संबुद्धौ हे राजसमानवक्त्र, राजन् महीपते, पुरा पूर्वं
भवतस्तव विशाले विपुले वंशेऽन्वये अरविन्दनाम्ना विदितः प्रख्यातः, प्रत्यर्थां शत्रूणां दावानलो वनाग्निः खेन्द्रो
विद्याधरः, एतस्य पुरस्यालकानगर्याः शास्ता रक्षकोऽभूत् । तस्य कोमलया मृदुलया कान्त्या दीप्त्या निराकृता
तिरस्कृता रतिः कामकामिनी यया सा, राकेन्दुबिम्बमिव पूर्णिमाशशिमण्डलमिवाननं मुखं यस्यास्तथाभूता

२०

अनेक रत्नोंके आभूषणों सम्बन्धी किरणोंके समूहसे जिसके अवयव आच्छादित हो रहे थे
और इस कारण जो हजारों इन्द्रधनुषोंसे आच्छादित सुमेरु पर्वतके समान जान पड़ता था,
जो धैर्यगुणसे पराजित होनेके कारण सेवाके लिए आये हुए सुमेरुपर्वतके शिखरके समान
अत्यन्त ऊँचे मंगलमय सिंहासनपर बैठा हुआ था, अपने मुखकमलकी जीतसे उत्पन्न
पराभवके कारण नम्रीभूत चन्द्रबिम्बके समान स्फटिक मणिकी चौकी पर जो बायाँ पैर रखे
हुआ था, विद्याधरियोंके करकिसलयोंसे ढोरे जाने वाले सुवर्णमय चामरोंकी वायुसे जिसके
निर्मल रेशमी वस्त्रोंका अंचल हिल रहा था, जो अत्यन्त शक्तिशाली मण्डलेश्वर महासामन्त,
प्रधानमन्त्री, पुरोहित तथा कुटुम्बके अन्य सदस्यों आदिके समूहसे घिरा हुआ था, और जो
सभामण्डपमें स्थित था ऐसे प्रसन्नचित्त महाबल राजाको देखकर स्वयंबुद्ध मन्त्रीने धर्म-
कथाओंका प्रसंग छोड़ा और उसके समर्थनके लिए देखे-सुने तथा अनुभवमें आये हुए पदार्थों-
से सम्बन्ध रखनेवाली यह कथा कही । § ४६) राजक्षिति—हे चन्द्रमाके समान मुखवाले
राजन् ! पहले आपके विशालवंशमें अरविन्द नामसे प्रसिद्ध तथा शत्रुरूपी वनको भस्म
करनेके लिए अग्निस्वरूप विद्याधर इस नगरका शासक था । उसकी विजया देवी नामकी

३५

§ ४७) तयोर्बभूवतुः पुत्रौ विद्यावेशद्यशोभितौ ।

आदिमो हरिचन्द्रश्च कुरुविन्दस्ततोऽपरः ॥३७॥

§ ४८) स खलु कदाचन खेचरकुम्भिनीपतिर्बह्वारम्भसंरम्भविजृम्भितरौद्रध्यानाभिसंधान-
संदानितनरकायुष्यः प्रत्यासन्नमृतिर्दावपावकज्वालानिकाशदाहज्वरबाधां सोढुमक्षमतया पुण्यक्षय-
परिणतनिजविद्यावैमुख्येन च दमितमद्रशक्तिर्दन्तावल इवातिदीनदशामापन्नः, सीतातरङ्गिणी- ५
तरङ्गालिङ्गितलतालतान्तसुरभितमन्दारतरुसंदोहस्पन्दमानमन्दपवमानसुखोत्तरकुरुवनोद्देशविह-
रणाय स्पृहयालुः, निजाज्ञापरिपालननिस्तन्द्रेण हरिचन्द्रेण तद्वनोद्देशप्रापणाय प्रेषितायां
गगनगामिनीविद्यायामपुण्यवशेनानुपकारिण्यां दुर्वारदुःसहसंतापसंपन्नदेहः, कदाचित्कलिविश्लिष्ट-

विजयादेवौ तन्नाम्नी प्रिया वल्लभा बभूव । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥३६॥ § ४७) तथोरिति—सा च स
चेति तौ तयोः, विद्याया वैशद्येन नैर्मल्येन शोभितौ पुत्रौ बभूवतुः । आदौ भव आदिम आद्यो हरिचन्द्रः, ततोऽपर- १०
स्तस्मादन्यः कुरुविन्दः ॥३७॥ § ४८) स खल्विति—कदाचन जातुचित् बहूनामारम्भाणां संरम्भेण समा-
योजनेन विजृम्भितं वृद्धिगतं यद् रौद्रध्यानं तस्याभिसंधानेन धारणेन संदानितं संबद्धं नरकायुष्यं येन तथाभूतः,
प्रत्यासन्ना निकटवर्तिनो मृतिर्मृत्युस्य सः खेचरकुम्भिनीपतिर्विधाधरधरावल्लभः, खलु निश्चयेन दावपावकस्य
वनाग्नेर्ज्वालाभिरर्चिर्भिनिकाशा सदृशी या दाहज्वरस्य बाधा पीडा तां सोढुमक्षमतयासामर्थ्येन पुण्यक्षयेन
सुकृतहान्या परिणतं प्राप्तं यन्निजविद्यायाः स्वाकाशगामिनीविद्याया वैमुख्यं पराङ्मुखत्वं तेन च दमिता नष्टा १५
मदशक्तिर्यस्य तथाभूतो दन्तावल इव करीव अतिदीनदशां प्रभूतहीनावस्थामापन्नः प्राप्तः, सीतातरङ्गिण्या
विदेहक्षेत्रस्थसीतानामकनद्यास्तरङ्गैर्भङ्गैरालिङ्गित आश्लिष्टः शीत इत्यर्थः, लतालतान्तैर्वल्लीकुसुमैः सुरभितः
सुगन्धितः, मन्दारतरुणां कल्पवृक्षाणां संदोहै समूहे स्पन्दमानश्चलश्च यो मन्दपवमानो मन्थरसमीरस्तेन सुखाः
सुखकरा ये उत्तरकुरुवनोद्देशा मेरुत्तरदिक्स्थितोत्तमभोगभूमिकाननप्रदेशास्तेषु विहरणाय भ्रमणाय स्पृहयालु-
रिच्छायुक्तः, निजाज्ञायाः परिपालने निस्तन्द्रेण निरलसेन हरिचन्द्रेण ज्येष्ठपुत्रेण तस्य वनस्योद्देशेषु प्रदेशेषु २०
प्रापणं प्राप्तिस्तस्मै प्रेषितायां गगनगामिनीविद्यायाम् अपुण्यवशेन पापाधीनत्वेन अनुपकारिण्यां सत्यां दुर्वारेण
दुःसहसंतापेन संपन्नो युक्तो देहो यस्य तथाभूतः सन्, कदाचित् कलिना कलहेन विश्लिष्टा ऋट्त्वा पतिता या

प्रिया थी । उस विजयाने कोमल कान्तिसे रतिको पराजित कर दिया था तथा पूर्णचन्द्र-
मण्डलके समान उसका मुख था ॥३६॥ § ४७) तथोरिति—उन दोनोंके विद्याकी निर्मलतासे
सुशोभित दो पुत्र हुए । पहला हरिचन्द्र और दूसरा कुरुविन्द ॥३७॥ § ४८) स खल्विति— २५
अनेक आरम्भोंके आयोजनसे बढ़े हुए रौद्रध्यानको धारण करनेके कारण जिसे नरकायुका
बन्ध पड़ चुका था तथा जिसकी मृत्यु अत्यन्त निकट थी ऐसा वह अरविन्द नामका विद्याधर
राजा किसी समय बीमार पड़ा सो दावानलकी ज्वालाओंके समान दाहज्वरकी पीड़ा सहन
करनेके लिए असमर्थ हो गया, उसी समय पुण्यका क्षय हो जानेसे उसकी विद्याएँ भी उससे
विमुख हो गयीं । इन सब कारणोंसे वह मदशक्तिसे रहित हाथीके समान अत्यन्त दीन ३०
दशाको प्राप्त हो गया । वह चाहता था कि मैं सीता नदीकी लहरोंसे आलिंगित, लताओंके
फूलोंसे सुगन्धित, तथा कल्पवृक्षोंके समूहमें विचरण करने वाली मन्दमन्द वायुसे सुखदायक
उत्तरकुरुके वनप्रदेशोंमें विहार करूँ । अपनी आज्ञाके पालन करनेमें सावधान हरिचन्द्र
नामक पुत्रने उत्तरकुरुके वनप्रदेशोंमें पहुँचानेके लिए अपनी आकाशगामिनी विद्याको भेजा
परन्तु पुण्य क्षीण हो जानेसे उसकी वह विद्या भी कुछ उपकार न कर सकी । इस दशामें ३५
उसका शरीर दुर्वार तथा दुःखसे सहन करने योग्य संतापसे संतप्त हो रहा था । किसी

‘गोधिकाबालधीविगलितशोणितबिन्दुसंदोहसंपर्कशान्तसंतापः, पापवशेन रुधिरवापीमज्जनमेव परमौषधं मन्यमानः, तद्वापीकरणाय समाज्जप्तेन कुरुविन्देन पापोद्विग्नस्वान्तेन कारितायां कृत्रिम-क्षतजवापिकायामतिसंतोषेण विहरमाणः, कृतगण्डूषो, विज्ञातरुधिरकृतकभावः, क्रोधेन कुरुविन्द-वधाय धावमानो वीतवेगस्तरसा मध्ये निपत्य निजासिधेनुकाविदीर्णहृदयो मृतिमाससाद ।

५ § ४९) एवं पापविपाकेन दुर्मृतिप्राप्तदुर्गतिः ।

एष इत्यधुनाप्यत्र कथेयं स्मर्यते जनैः ॥३८॥

§ ५०) तथा भवद्वंशाकाशचण्डभानुर्दण्डितारातिमण्डलः प्रचण्डतरभुजदण्डो दण्डो नाम व्योमचरपतिर्मणिमालिनामधेयं निजनन्दनं यौवराज्ये नियोज्य निरन्तरं विविधान्भोगाननुभुञ्जानो-

- १० गोधिकाया गृहमुसत्या ‘छिपकुली’ इति हिन्दीभाषायां प्रसिद्धाया बालधी पुच्छं तस्या विगलितानां पतितानां शोणितबिन्दूनां रुधिरपृषतां संदोहः समूहस्तस्य संपर्केण संबन्धेन शान्तः संतापो दाहो यस्य तथाभूतः, पापवशेन दुरिताधीन्येन रुधिरवाप्यां लोहितदीधिकायां मज्जनं समवगाहनमेव परमौषधमुत्कृष्टौषध्यं मन्यमानः, तद्वापीकरणाय रुधिरवापीनिर्माणाय समाज्जप्तेन निर्दिष्टेन पापादुद्विग्नं भूतं स्वान्तं चित्तं यस्य तेन कुरुविन्देन द्वितीयपुत्रेण कारितायां निर्मापितायां कृत्रिमक्षतजस्य कृत्रिमरुधिरस्य वापिकायाम् अतिसंतोषेण परमनिर्वृत्या विहरमाणः क्रोडन् कृतगण्डूषः कृतकुरलकः, विज्ञातो विदितो रुधिरस्य रक्तस्य कृतकभावः
- १५ कृत्रिमत्वं येन तथाभूतः सन्, क्रोधेन एषा कुरुविन्दवधाय कुरुविन्दहिंसनाय, धावमानो वेगेन गच्छन् वीतवेगो क्षीणत्वेन नष्टरयः, तरसा बलेन मध्ये निपत्य निजासिधेनुकया स्वक्षुरिकया विदीर्णं खण्डितं हृदयं यस्य तथाभूतः सन्मृतिं मृत्युम् आससाद प्राप । § ४९) एवमिति—अनेन प्रकारेण पापविपाकेन दुरितोदयेन दुर्मृत्या कुमरणेन प्राप्ता दुर्गतिर्नरकगतिर्येन तथाभूतः एषोऽरविन्दविद्याधरोऽभूद् । इतीत्यम्, इयं कथा अधुनापि साम्प्रतमपि जनैः स्मर्यते स्मृतिविषयीक्रियते ॥३८॥ § ५०) अयार्तव्याप्तस्य फलं निरूपयितुमाह—तथेति—
- २० भवद्वंश एवाकाशस्तस्मिन् चण्डभानुः सूर्यः, दण्डितं पराजितमरातिमण्डलं शत्रुसमूहो येन सः, प्रचण्डतरौ शक्ति-संपन्नौ भुजदण्डौ यस्य तथाभूतो दण्डो नाम व्योमचरपतिविद्याधरनरेन्द्रो मणिमालिनामधेयं निजनन्दनं स्वसुतं यौवराज्ये युवराजपदे नियोज्य नियुक्तं विधाय, निरन्तरं शश्वत् विविधान् नानाप्रकारान् भोगान् पञ्चेन्द्रिय-

- समय कलहसे दूटकर गिरी हुई छिपकुलीकी पूँछसे निकली हुई खूनकी बूँदोंके संयोगसे उसका संताप कुछ शान्त पड़ा । पापके कारण उसने समझा कि मेरे रोगकी सर्वोत्कृष्ट औषध
- २५ खूनकी वापिकामें अवगाहन करना ही है । फलस्वरूप खूनकी वापिका बनवानेके लिए उसने कुरुविन्द नामक द्वितीय पुत्रको आज्ञा दी । कुरुविन्दका चित्त पापसे भयभीत था इसलिए उसने कृत्रिम खूनकी वापिका बनवायी । उस वापिकामें वह विद्याधर राजा अत्यधिक सन्तोषसे क्रीडा करने लगा । क्रीडा करते-करते जब उसने कुरला किया तब उसे खूनकी कृत्रिमताका पता चल गया । वह क्रोधवश कुरुविन्दको मारनेके लिए दौड़ा परन्तु वेग
- ३० नष्ट हो जानेसे बीचमें ही गिर पड़ा और अपनी ही छुरीसे उसका हृदय विदीर्ण हो गया जिससे मृत्युको प्राप्त हुआ । § ४९) एवमिति—इस प्रकार पापके वशसे यह राजा अरविन्द कुमरणसे मरकर दुर्गतिको प्राप्त हुआ यह कथा आज भी लोगोंको याद है ॥३८॥ § ५०) तथेति—इसी प्रकार आपके वंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान, शत्रुओंके समूहको दण्डित करनेवाला तथा अत्यन्त शक्तिसम्पन्न भुजदण्डसे युक्त दण्ड नामका विद्याधर राजा
- ३५ हो गया है । वह मणिमाली नामक अपने पुत्रको युवराजपदपर नियुक्तकर निरन्तर नाना

ऽपि तृप्तिमलभमानः, तीव्रसंकलेशपरिणामसंकल्पिततिर्यगायुः, जीवितान्तकालिकदुर्ध्यानवैभवविजृम्भितदुर्मरणो निजभाण्डागारे समजायत महानजगरः ।

§ ५१) भवस्मरणसंभूतभाण्डागारमहादरः ।

सोऽनुमेने निजं सूनुं तत्प्रवेशे न चापरम् ॥३९॥

§ ५२) अन्येष्टुरसौ मणिमालिनामा लेखरपतिरवधिज्ञानलोचनान्मुनिविकर्तनाद्विज्ञाता- ५
जगरोदन्तः, पितृभक्त्या शयुं पुरोधाय 'भवान् विषयासङ्गदोषविशेषेण कुयोनिं प्राप्तस्तद्विषयामिष-
मिदं किपाकफलसंकाशं, ताम्बूलमिव संयोगाधीनरागसंपादकम्, अन्धकारमिव सन्मार्गनिरोधनं,

विषयान् अनुभुञ्जानोऽपि तृप्तिं संतोषम् अलभमानोऽप्राप्तुवन् तीव्रसंकलेशपरिणामेन संकल्पितं निश्चितं तिर्यगायुर्यस्य तथाभूतः, जीवितान्तकालिकं जीवान्तसमयसमुत्पन्नं यद् दुर्ध्यानमार्तध्यानं तस्य वैभवेन सामर्थ्येन विजृम्भितं प्राप्तं दुर्मरणं यस्य तथाभूतः सन्, निजभाण्डागारे स्वकीयभाण्डारगृहे महान् अजगरो १०
विशालकायः शयुः समजायत, समुदभूतः । § ५१) भवेति—भवस्य पूर्वपर्यायस्य स्मरणेन ध्यानेन संभूतः समुत्पन्नो भाण्डागारे महान् आदरः प्रीतिर्यस्य तथाभूतः स शयुः तस्मिन् भाण्डागारे प्रवेशस्तस्मिन्, निजं सूनुं स्वकीयं पुत्रं मणिमालिनम् अनुमेनेऽनुमन्यते स्म न चापरं तदितरं नानुमन्यते स्म ॥३९॥ § ५२) अन्येष्टुरिति—अन्यस्मिन् दिवसे, असौ मणिमालिनामा विद्याधरधरावल्लभः, अवधिज्ञानमेव लोचनं नेत्रं यस्य तस्मात् मुनिविकर्तनान्मुनिषु विकर्तन इव सूर्य इव तस्मान्मुनिश्रेष्ठात्, विज्ञातो विदितोऽजगरोदन्तः शयुवृत्तान्तो १५
येन तथाभूतः, सन् पितृभक्त्या जनकानुरागेण शयुमजगरं पुरोधयाग्रे स्थापयित्वा, इतीत्यं बोधयामासेति कर्तृक्रियासंबन्धः । किं बोधयामासेत्युच्यते भवान् विषयेष्वासङ्ग आसक्तिः स एव दोषविशेषस्तेन कुयोनिं कुतस्तत्पर्यायं प्राप्तः, तत्तस्मात्कारणात्, इदं विषयामिष विषय एवामिषं भोग्यवस्तु तत्, किपाकफलसंकाशं विषफलसदृशम्, ताम्बूलमिव नागवल्लीदलमिव संयोगाधीनस्य पुत्रकलत्रादिसंसर्गायत्तस्य पक्षे चूर्णखदिरक्रमु-
कादिसंयोगाधीनस्य रागस्य प्रेम्णः पक्षे लौहित्यस्य संपादकं कारकम्, अन्धकारमिव ध्वान्तमिव सन्मार्गस्य २०

प्रकारके भोग भोगने लगा फिर भी सन्तोषको प्राप्त नहीं हुआ । फलस्वरूप उसने तीव्र संकलेश परिणामोंके कारण तिर्यच आयुका बन्ध किया और जीवनके अन्तमें होने वाले छोटे ध्यान की सामर्थ्यसे कुमरण प्राप्तकर वह अपने ही भाण्डारमें बड़ा भारी अजगर हुआ । २५
§ ५१) भवेति—पूर्वभवके स्मरणसे जिसे भाण्डागारमें बहुत भारी आदर उत्पन्न हुआ था ऐसा वह अजगर उसमें प्रवेश करनेके लिए अपने पुत्रको ही आज्ञा देता था अन्य किसीको नहीं ॥३९॥ § ५२) अन्येष्टु—किसी अन्य दिन मणिमाली नामका विद्याधर राजा, अवधि-
ज्ञानी श्रेष्ठमुनिराजसे अजगरका वृत्तान्त जानकर पितृभक्तिसे उसे आगे कर इस प्रकार समझाने लगा—‘आप विषयासक्तिरूप दोषकी विशेषतासे खोटी योनिको प्राप्त हुए हो ३०
इसलिए यह विषयरूपी भोग्यवस्तु किपाक फलके समान है, पानके समान स्त्रीपुत्रादिके संयोगाधीन राग—प्रेमको उत्पन्न करनेवाला है (पक्षमें चूना खैर आदिके संयोगाधीन राग—
लालिमाको उत्पन्न करनेवाला है) अन्धकारके समान सन्मार्ग—भोक्षमार्गको रोकनेवाला है (पक्षमें कण्टकादिसे रहित मार्ग अथवा सन्मार्ग—नक्षत्रोंका मार्ग—आकाशको रोकनेवाला

१. गद्यमिदं महापुराणे जिनसेनाचार्योक्तिमिमामनुजीवति—ताम्बूलमिव संयोगादिदं रागविवर्धनम् । अन्धकार-
मिवोत्सर्पत्सन्मार्गस्य विरोधनम् ॥ जैनं मतमिव प्रायः परिभूतमतान्तरम् । तडिल्लसितवल्लीलं विचित्रं
सुरचापवत् ॥

स्याद्वादमतमिव . परिहृतमतान्तरं, तडिल्लताविलसितमिव चलाचलं, सुरशरासनमिव विचित्रं, दुस्त्याज्यमपि त्याज्यमेवेति' बोधयामास ।

§ ५३) ततस्तनयवाङ्मयप्रचुरशर्मधर्माभूतै-

निरस्तविषयस्पृहः स खलु जीवितान्ते पुनः ।

समाधिमरणं व्रजन् दिविजभूयमायातवान्

महद्भिपरिमण्डितो महितदिव्यदेहोज्ज्वलः ॥४०॥

§ ५४) अवधिज्ञानविज्ञातप्राग्भवः सुर आगतः ।

प्रादान्मणिमयीं मालां प्रपूज्य मणिमालिनम् ॥४१॥

§ ५५) सेयं माला मणिगणलसत्कान्तिकल्लोलजाल-

व्याप्तप्रान्ता विलसति भवद्वक्षसि श्रीनितान्ते ।

प्रालेयाद्रेः कटकनिकटे संपतन्तीव गङ्गा

लक्ष्म्या लीलाहसितरुचिवत्कीर्तिबीजालिवच्च ॥४२॥

- १५ भोक्षमार्गस्य पक्षे कण्टकादिरहितप्रशस्तपथस्य निरोधनं प्रतिबन्धकं, स्याद्वादमतमिवावेकान्तसिद्धान्तमिव परिहृतं त्यक्तं मतान्तरं सांख्यादिसिद्धान्तः पक्षे गुरुजनहितोपदेशो येन तत्, तडिल्लताविलसितमिव विद्युद्वल्लीस्फुरण-
मिव चलाचलमतिशयचपलं, सुरशरासनमिव इन्द्रधनुरिव विचित्रं विविधस्वरूपं पक्षे विविधवर्णं, दुस्त्याज्यमपि दुःखेन त्यक्तुमर्हमपि त्याज्यमेव त्यक्तुमर्हमेव । § ५३) तत इति—ततस्तदनन्तरं तनयस्य मणिमालिनो वाङ्मयेन व्रजन् जालेन प्रचुरशर्माणि प्रभूतसुखानि यानि धर्माभूतानि धर्मपीयूषाणि तैः निरस्ता दूरीकृता विषयस्पृहा भोगाकाङ्क्षा यस्य तथाभूतः सोऽजगरः खलु निश्चयेन पुनः जीवितान्ते जीवितान्ते समाधिमरणं सल्लेखनामरणं व्रजन् प्राप्नुवन् महद्भिर्बिपुलद्विभिः परिमण्डितः शोभितः महितेन प्रशस्तेन दिव्यदेहेन
२० वैक्रियिकशरीरेणोज्ज्वलो निर्मलः सन् दिविजभूयं देवत्वं देवपर्यायमित्यर्थः आयातवान् प्राप्तवान् । पृथिवी-
छन्दः ॥४०॥ § ५४) अवधिज्ञानेति—अवधिज्ञानेन विज्ञातो विदितः प्राग्भवः पूर्वपर्यायो येन सः तथाभूतः सुरो देव आगतः सन् मणिमालिनं तन्नामधेयं स्वमुतं प्रपूज्य सत्कृत्य मणोनां विकार इति मणिमयो तां मालां दाम प्रादात् ददातिस्म ॥४१॥ § ५५) सेयमिति—मणिगणस्य रत्नसमूहस्य लसता शोभमानेन कान्तिकल्लोलजालेन दीप्तिमयसमूहेन व्याप्तः प्रान्तः समीपप्रदेशो यया तथाभूता इयं सा माला श्रिया नितान्ते
२५ लक्ष्म्युत्कटे भवद्वक्षसि भवदुरसि प्रालेयाद्रेहिमगिरेः कटकनिकटे मध्यभागसमीपे संपतन्ती गङ्गेव भागीरथीव है), स्याद्वाद मतके समान अन्य मतोंका निराकरण करनेवाला है (पक्षमें गुरुजनोंके हितावह उपदेशको उपेक्षित करनेवाला है) विद्युल्लताकी कौंधके समान अत्यन्त चंचल है, इन्द्र-धनुषके समान विचित्र—विलक्षण है (पक्षमें अनेक रंगका है) और दुःखसे छोड़ने योग्य होनेपर भी छोड़ने योग्य ही है । § ५३) तत इति—तदनन्तर पुत्रके वचनसमूहसे उत्पन्न प्रभूत सुखदायक
३० धर्मरूप अमृतके द्वारा जिसकी विषयाकांक्षा नष्ट हो गयी थी ऐसा वह अजगर आयुके अन्तमें समाधिमरणको प्राप्त होता हुआ बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंसे युक्त तथा उत्तम वैक्रियिक शरीरसे देदीप्यमान होता हुआ देव पर्यायको प्राप्त हुआ ॥४०॥ § ५४) अवधिज्ञानेति—अवधिज्ञानसे जिसने पूर्व भव जान लिये ऐसे उस देवने आकर मणिमालीकी पूजा की तथा उसे मणिमयी माला प्रदान की ॥४१॥ § ५५) सेयमिति—मणिसमूहकी शोभायमान कान्ति सन्ततिके जालसे
३५ समीपवर्ती प्रदेशको व्याप्त करनेवाली यह वही माला, लक्ष्मीसे उत्कट आपके वक्षस्थल पर हिमालयके कटकके निकट पड़ती हुई गंगाके समान लक्ष्मीके क्रीडाहास्यकी कान्तिके समान

१. मणिमालिने क० ।

§ ५६) एवं पुरा भवदीयपितामहः शतबलो नाम विद्याधरक्षोणीवल्लभो राज्यलक्ष्मीं सुचिरमनुभवन्भवत्पितरि विन्यस्तसमस्तराज्यभारः सम्यग्दर्शनादिसंपन्नः सुध्यानेन त्यक्ततनु-महेन्द्रकल्पे सुराग्रणीः संजातः । स कदाचन काञ्चनशिखरिशिखरे नन्दनवने मया सह खेलन्तं भवन्तं समीक्ष्यापारस्नेहपूरितमानसो 'जैनधर्मं लोकोत्तराभ्युदयसाधनं कदापि न विस्मरेति' समादिदेश ।

§ ५७) तथा भवत्पितृपितामहोऽपि निखिलखेचरमुकुटराजिनीराजितचरणनीरेजः सहस्रबलः शतबले सुते निक्षिप्तराज्यभारो जैनीं दीक्षामासाद्य तपोऽंशुप्रकाशप्रकाशितमहीवलयः क्रमेणोत्पन्नकेवलज्ञानः समागतसुरासुरादिभिरभ्यर्चितः शाश्वतं पदमुपजगाम ।

लक्ष्म्याः श्रिया लीलाहसितस्य क्रीडाहासस्य रुचिवरकान्तिवत् कीर्तयैशसो बीजालिबच्च बीजपङ्क्तिरिव च विलसते शोभते । उपमालंकारः, मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥४२॥ § ५६) अथ धर्मध्यानस्य फलं निरूपयितुमाह—
एवमिति—एवं पुरा पूर्वं भवदीयश्चासौ पितामहश्चेति भवदीयपितामहो भवत्पितृपिता शतबलो नाम विद्याधर-क्षोणीवल्लभो गगनेचरराजः सुचिरं दीर्घकालपर्यन्तं राज्यलक्ष्मीं राज्यश्रियम् अनुभवन् भवत्पितरि भवदीयजन-केऽतिबलमहाराजे विन्यस्तो विनिक्षिप्तः समस्तो राज्यभारो येन तथाभूतः, सम्यग्दर्शनादिभिः सम्यक्त्वप्रभृतिभिः संपन्नः सहितः सुध्यानेन धर्म्याभिधानेन प्रशस्तध्यानेन त्यक्ततनुस्त्यकशरीरो मृतः सन् महेन्द्रकल्पे महेन्द्रस्वर्गे सुराग्रणीः प्रधानदेवः संजातः । स देवः कदाचन जातुचित् काञ्चनशिखरिणः सुवर्णशैलस्य शिखरे शृङ्गे नन्दनवने मेरुस्थितोद्यानविशेषे मया स्वयंबुद्धेन सह खेलन्तं क्रोडन्तं भवन्तं समीक्ष्य सम्यग्दृष्ट्वा अपारस्नेहेन प्रचुरप्रेम्णा पूरितं मानसं चित्तं यस्य तथाभूतः सन् लोकोत्तराश्च तेऽभ्युदयाश्चेति लोकोत्तराभ्युदयास्तेषां साधनं निमित्तं जैनधर्मं जिनमतं कदापि जात्वपि न विस्मर इति समादिदेश समादिष्टवान् । § ५७) अथ शुक्ल-ध्यानस्य फलं निरूपयितुमाह—तथेति—पितुः पिता पितामहः, भवत्पितुः पितामह इति भवत्पितृपितामहः सोऽपि निखिलखेचराणां समग्रविद्याधराणां मुकुटराजिभिर्मौलिपङ्क्तिभिर्नीराजिते कृतारार्तिके चरणनीरेजे यस्य सः, सहस्रबल एतन्नामा राजा शतबले सुते एतदभिधाने पुत्रे निक्षिप्तः स्थापितो राज्यभारो येन तादृशः सन् जैनीं दैगम्बरीं दीक्षां प्रव्रज्याम् आसाद्य प्राप्य तपोऽंशूनां तपःकिरणानां प्रकाशेन प्रकाशितं शोभितं महीवलयं भूमण्डलं येन तथाभूतः क्रमेण क्रमशः उत्पन्नं केवलज्ञानं यस्य तथाभूतः, सन्, समागता समायाता ये सुरासुरादयः देवधरणीन्द्राः ते आदौ येषां तैः, अभ्यर्चितः पूजितः सन् शाश्वतं पदं मोक्षम् उपजगाम प्राप ।

अथवा कीर्तिरूपी लताके बीजोंकी पंक्तिके समान सुशोभित हो रही है ॥४२॥ § ५६) एवमिति— इसी प्रकार पहले आपके पितामह शतबल नामके विद्याधर धरापति चिरकाल तक राज्य-लक्ष्मीका उपभोग करते हुए, आपके पितापर समस्त राज्यभार रख सम्यग्दर्शनादिसे युक्त हो धर्मध्यानसे शरीर छोड़कर महेन्द्र स्वर्गमें श्रेष्ठ देव हुए थे । किसी समय सुमेरुपर्वतके शिखरपर मेरे साथ खेलते हुए आपको देखकर उनका हृदय अपार स्नेहसे भर गया था । उस समय उन्होंने आपको आज्ञा दी थी कि सर्वश्रेष्ठ अभ्युदय—सांसारिक सुखोंके निमित्त-भूतं जैनधर्मको कभी नहीं भूलना । § ५७) तथेति—इसी तरह समस्त विद्याधरोंके मुकुटोंकी पंक्तियोंसे जिनके चरणकमलोंकी आरती की जाती थी ऐसे आपके पिताके पितामह सहस्रबल भी, शतबल नामक पुत्रपर राज्यका भार रख दैगम्बरी दीक्षाको प्राप्त हो तपकी किरणोंके प्रकाशसे भूमण्डलको प्रकाशित करते, क्रमसे केवलज्ञान प्राप्त करते तथा समस्त देव और

§ ५८) तथा भवत्पिता धीरस्त्वयि व्यस्तमहीभरः ।

प्रब्रज्यामाश्रितः श्रीमान्प्राप्तवैराग्यवैभवः ॥४३॥

§ ५९) भवानपि महाधीरो भवद्वंशनराधिपैः ।

साकं तपश्चरन्नेष मोक्षलक्ष्मीं जिघृक्षति ॥४४॥

५ § ६०) धरापते ! ध्यानचतुष्टयस्य फलं विनिर्दिष्टमवेहि तत्र ।

पूर्वद्वयं पापफलं प्रतीतं परद्वयं प्राप्तशुभप्रवाहम् ॥४५॥

§ ६१) इति जिनाधीशदशितधर्मदेशनाप्रकाशबद्धादरं प्रवादिमदकण्डूलवनशुण्डाल-
पञ्चाननं स्वयंबुद्धं तद्वचनमधुधारासमुद्रमधुकरायमाणसंप्रीतान्तःकरणेन धरारमणेन परिष्कृता परमा-
स्तिक्यमास्थिता सभा सभा सभाजयामास ।

१० § ६२) वाणीं श्रुत्वा खगाधीशो द्रोणीं संसारवारिधेः ।

स्वयं संपूजयामास स्वयंबुद्धं महाधियम् ॥४६॥

- § ५८) तथेति—तथा धीरो धियं बुद्धिमीरयति प्रेरयतीति धीरो विद्वान् गभीरो वा, त्वयि व्यस्तो निक्षिप्तो महीभरः पृथिवीभारो येन सः, श्रीमान् राज्यश्रीयुक्तः भवत्पिता त्वदीयजनकोऽतिबलमहाराजः प्राप्तं वैराग्यस्य वैभवं येन तथाभूतः प्राप्तनिर्वेदपरमावधिः सन् प्रब्रज्यां जिनदीक्षाम् आश्रितः प्राप्तः ॥४३॥ § ५९) भवान-
पीति—महाश्रासो धीरस्त्वेति महाधीरो महाबुद्धिमान् परमगभीरो वा, एष पुरोवर्तमानो भवानपि भवद्वंशस्य निजान्वयस्य नराधिपा राजानस्तैः साकं तपश्चरन् तपस्यां कुर्वन् मोक्षलक्ष्मीमपवर्गधियम्, जिघृक्षति ग्रहीतु-
मिच्छति ॥४४॥ § ६०) धरापते इति—हे धरापते ! हे भूवल्लभ ! इत्थं ध्यानचतुष्टयस्य रौद्रार्तधर्म-
शुक्लात्मकस्य फलं साध्यं विनिर्दिष्टं कथितम् अवेहि जानीहि । तत्र तेषु पूर्वद्वयं रौद्रार्तरूपं पापं फलं यस्य तथाभूतं परद्वयं धर्मशुक्लरूपं च प्राप्तो लब्धः शुभप्रवाहो पुण्यसंततिर्यस्य तथाभूतं प्रतीतं प्रसिद्धम् ॥४५॥
२० § ६१) इतीति—इतीत्यं जिनाधीशेन जिनेन्द्रेण दशितो दिव्यध्वनिना प्ररूपितो यो धर्मस्तस्य देशनाया उपदेशस्य प्रकाशे प्रकटने बद्ध आदरो येन तं, प्रवादिनो मिथ्यावादिन एव मदकण्डूला गर्वकण्डूयुक्ता वनशुण्डालाः काननकरिणस्तेषां पञ्चाननं सिंहं, स्वयंबुद्धमेतन्नामामात्यं तद्वचनं स्वयंबुद्धवचनमेव मधुधारा मकरन्दक्षरो तस्यां मधुकरायमाणं भृङ्गायमानं संप्रीतं प्रसन्नमन्तःकरणं मानसं यस्य तथाभूतेन धरारमणेन भूपतिना परिष्कृता शोभिता परमास्तिक्यमुत्कृष्टश्रद्धाभावम् आस्थिता प्राप्ता, भया कान्त्या सहिता सभा, सभा परिषत्, सभाज-
२५ यामास सच्चकार । § ६२) वाणीमिति—खगाधीशो विद्याधरधरावल्लभो महाबलः, संसारवारिधेर्भवार्ण-

- धरणेन्द्रोऽसे पूजित होते हुए मोक्षपदको प्राप्त हुए थे । § ५८) तथेति—तथा धीरवीर श्रीमान् आपके पिता अतिबल महाराज, वैराग्यकी परम सीमाको प्राप्त हो आपके ऊपर पृथिवीका भार रख जिनदीक्षाको प्राप्त हुए थे ॥४३॥ § ५९) भवानपीति—और अतिशय धीरवीर आप भी अपने वंशके राजाओंके साथ तपश्चरण करते हुए मोक्षलक्ष्मीको ग्रहण करना चाहते हैं ॥४४॥
३० § ६०) धरापते इति—हे राजन् ! इस तरह चार ध्यानोंका फल कहा गया है यह जानो । उनमें पहलेके दो ध्यान—रौद्र और आर्तध्यान पापरूप फलसे सहित हैं और आगेके दो ध्यान—धर्म्य और शुक्लध्यान पुण्यके प्रवाहको प्राप्त करानेवाले हैं ॥४५॥ § ६१) इतीति—इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा दिखलाये हुए धर्म सम्बन्धी उपदेशके प्रकट करनेमें जिसने आदर लगाया है तथा जो मिथ्यावादीरूपी अभिमानी जंगली हाथियोंको नष्ट करनेके लिए सिंह-
३५ के समान है ऐसे स्वयंबुद्ध मन्त्रीको, उसके वचनरूपी मधुकी धारापर भ्रमरके समान आचरण करनेवाले प्रसन्न अन्तःकरणसे युक्त राजाके द्वारा सुशोभित, परम श्रद्धाभावको प्राप्त तथा कान्तिसे सहित सभाने अच्छी तरह सम्मानित किया । § ६२) वाणीमिति—विद्याधरोंके राजा

§ ६३) स्वयंबुद्धः सोऽयं सकलगुणमालाविलसितः

कदाचित्सद्भक्त्या जिनपतिगृहान्वन्दितुमनाः ।

ययौ कल्याणाद्रिं कनकरुचिलीकपिशिता-

म्बराभोगं शृङ्गोल्लिखितसुरलोकं सुरचिरम् ॥४७॥

§ ६४) यः किल पिहिताम्बरोऽपि विलसदंशुकः मेरुरपि समाश्रितनमेरुः, सतामरसंपदं ५
दधानोऽपि नतामरसंपदं दधानः, बहुलतागहनोऽपि निरस्ततमोभरः, मरालीमहितनन्दनवनोऽपि

वस्य द्रोणीं नौकां वाणीं भारतीं श्रुत्वा महाधियं महाबुद्धिमन्तं स्वयंबुद्धं स्वयं स्वतः संपूजयामास सच्चकार ॥४६॥ § ६३) स्वयंबुद्ध इति—सकलगुणानां सम्यग्दर्शनादिनिखिलगुणानां मालया संतरया विलसितः शोभितः सोऽयं पूर्वोक्तमहिममहितः स्वयंबुद्धः कदाचित् सद्भक्त्या समीचीनभक्त्या जिनपतिगृहान् जिनेन्द्र-मन्दिराणि 'गृहाः पुंसि च भूम्येव' इत्यमरवचनाद् गृहशब्दस्य बहुवचन एव पुंसि प्रयोगः, वन्दितुमना १०
वन्दितुकामः 'तुं काममनसोरपि' इति वचनात्तुमनो मकारस्य लोपः, कनकरुचीनां सुवर्णकान्तीनां लीलया कपिशितः पिङ्गलीकृतोऽम्बराभोगो गगनविस्तारो येन तं, शृङ्गेण शिखरेणोल्लिखितः संपृष्टः सुरलोकः स्वर्गो येन तं, सुरचिरं मनोहरं कल्याणाद्रिं सुमेरुपर्वतं ययौ जगाम । § ६४ अथ सुमेरुं वर्णयितुमाह—यः किलेति—
यः किल कल्याणाद्रिः, पिहितमाच्छादितमम्बरं वस्त्रं येन तथाभूतोऽपि तिरोहितवस्त्रोऽपि विलसच्छोभमान-मंशुकं वस्त्रं यस्य तथेति विरोधः परिहारपक्षे पिहितमाच्छादितमम्बरं गगनं येन तथाभूतोऽपि सन् विलसन्तः १५
शोभमाना अंशवो रश्मयो यस्य तथाभूतः । मेरुरपि मेरुनामकोऽपि समाश्रितानां समागतजनानां मेरुर्न भवतीति नमेरुरिति विरोधः परिहारपक्षे मेरुरपि समाश्रिताः समधिष्ठिता नमेरवः छायावृक्षा यत्र तथाभूतः, तामरसैः कमलैः सहितं सतामरसं पदं स्थानं दधानोऽपि न विद्यन्ते तामरसानि कमलानि यत्र तत् एवभूतं पदं स्थानं दधान इति विरोधः परिहारपक्षे सतामरसपदं दधानोऽपि नतामराणां नम्रीभूतदेवानां संपदं संपत्तिं दधानः ।
बहुलतागहनोऽपि कृष्णपक्षगहनोऽपि निरस्तो दूरीकृतस्तमोभरस्तिमिरसमूहो येन तथाभूत इति विरोधः २०
परिहारपक्षे बहुलताभिः प्रभूतवल्लीभिरुपलक्षितानि गहनानि वनानि यस्मिन् सः । मरालीभिर्हंसपङ्क्तिभिर्म-

महाबलने संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाली नौकाके समान वाणी सुनकर महाबुद्धिमान् स्वयंबुद्धका स्वयं अच्छा सत्कार किया ॥४६॥ § ६३) स्वयंबुद्ध इति—समस्त गुणोंके समूहसे सुशोभित वह स्वयंबुद्ध, किसी समय समीचीन भक्तिसे जिनमन्दिरोंकी वन्दना करनेके लिए उत्सुक होता हुआ, सुवर्ण किरणोंकी लीलासे आकाशके विस्तारको पीला करनेवाले, शिखरसे २५
स्वर्गलोकको छूनेवाले तथा अतिशय सुन्दर सुमेरु पर्वत पर गया ॥४७॥ § ६४) यः किलेति—जो सुमेरु पर्वत पिहिताम्बर—वस्त्रोंको आच्छादित करनेवाला होकर भी विलसदंशुक—वस्त्रोंसे सुशोभित था यह विरुद्ध बात है (परिहार पक्षमें पिहिताम्बर—आकाशको आच्छादित करनेवाला होकर भी विलसदंशुक—शोभमान किरणोंसे सहित था) । मेरु होकर भी समाश्रितनमेरु—आये हुए मनुष्योंके लिए मेरु नहीं था यह विरुद्ध बात है (परिहार पक्षमें ३०
मेरु होकर भी नमेरु छायावृक्षोंसे सहित था) । सतामरसं पदं—कमलोंसे सहित पदको—सरोवरको धारण करनेवाला होकर भी नतामरसं पदं—कमलरहित पदको धारण करनेवाला था यह विरुद्ध बात है (परिहारपक्षमें कमलसहित सरोवरको धारण करनेवाला होकर भी नतामरसं पदं—नम्रीभूत देवोंकी सम्पत्तिको धारण करनेवाला था) । बहुलतागहन—कृष्णपक्षसे सान्द्र होनेपर भी निरस्ततमोभर—अन्धकारके समूहको दूर करनेवाला था यह ३५
विरुद्ध बात है (परिहारपक्षमें अनेक लताओंसे युक्त वनोंसे सहित होने पर भी अन्धकारके समूहको दूर करनेवाला था) । मरालीमहितनन्दनवन—हंसियोंसे सुशोभित नन्दनवनसे

अमरालीमहितनन्दनवनः, रजस्फुरणपरिशोभितोऽपि नीरजस्फुरणपरिशोभितः, संततमगमहितोऽपि नागमहितो विराजते ।

§ ६५) त्रिदशोपसेवितो यः प्राज्यविराजितरुचिर्महामेरुः ।

लक्ष्मीविलासगेहे जम्बूद्वीपे विभाति दीप इव ॥४८॥

५ § ६६) तत्र किल विचित्रचिरंतनरत्नखचिताननेकरसभङ्गीसंगतसुराङ्गनासंचरणसंचलत्कनककिङ्किणीमृदुनिनादमनोहरानित्यालोकानकृत्रिमचैत्यालयान्यथाक्रममासाद्यानम्य च प्रमोद-

हितं शोभितं नन्दनवनं यस्मिन् तथाभूतोऽपि अमरालीमहितनन्दनवनः, न मरालीभिर्महितं नन्दनवनं यस्मिन्निति विरोधः परिहारपक्षे अमराणां देवानामालयः पङ्क्तयस्ताभिर्महितं नन्दनवनं यस्मिन् सः । रजसः स्फुरणं रजस्फुरणं 'खपरे शरि विसर्गलोपो वा वक्तव्यः' इति वार्तिकेन विसर्गस्य लोपः । परागसंचारस्तेन परिशोभितो संमलंकृतोऽपि नीरजस्फुरणपरिशोभितः निर्गतं यद् रजःस्फुरणं तेन परिशोभित इति विरोधः परिहारपक्षे नीरजानां कमलानां स्फुरणेन परिशोभितः । संततं सर्वदा अगमहितोऽपि अग्रेषु पर्वतेषु महितः प्रशस्तोऽपि नागमहितः अगमहितो न भवतीति नागमहितः पर्वतप्रशस्तो न भवतीति विरोधः परिहारपक्षे नागैः सुरगजैः नागकुमारदेवैर्वा महितो मान्य इति । श्लेषानुप्राणितो विरोधाभासालंकारः ।

§ ६५) त्रिदशेति—यो महामेरुः लक्ष्म्याः श्रिया विलासगेहे क्रीडागारे जम्बूद्वीपे दीप इव विभाति शोभते ।

अयोभयोः सादृश्यमाह—त्रिदशेति—त्रिदशैर्देवैरुपसेवितः सहितो महामेरुः, दीपपक्षे तिस्रो दशा वस्तिका इति त्रिदशास्ताभिरुपसेवितः सहितः, प्राज्येति—प्राज्यं प्रकृष्टं यथा स्यात्तथा विराजिता शोभिता रुचिः कान्तिर्यस्य तथाभूतो महामेरुः, दीपपक्षे प्राज्यस्य प्रकृष्टधृतस्य विराजिता रुचिः कान्तिर्यस्मिस्तथाभूतः । रूपकोपमालंकारो आर्यावृत्तम् ॥४८॥ § ६६) तत्रेति—तत्र किल सुमेरुपर्वते विचित्राणि नानाप्रकाराणि चिरंतनानि शाश्वतानि यानि रत्नानि तैः खचितान् जटितान् अनेकरसभङ्गीभिर्नारससंततिभिः संगतानां सहितानां सुराङ्गनानां देवीनां संचरणेन परिभ्रमणेन संचलन्त्यो याः कनककिङ्किण्यः सुवर्णक्षुद्रघण्टिकास्तासां मृदुनिनादेन कोमलशब्देन मनोहरा अभिरामास्तान् नित्यालोकान् शाश्वतप्रकाशान् नित्यालोकनामधेयान्वा अकृत्रिमचैत्यालयाः

१५ त्रिदशेति—त्रिदशेति—त्रिदशैर्देवैरुपसेवितः सहितो महामेरुः, दीपपक्षे तिस्रो दशा वस्तिका इति त्रिदशास्ताभिरुपसेवितः सहितः, प्राज्येति—प्राज्यं प्रकृष्टं यथा स्यात्तथा विराजिता शोभिता रुचिः कान्तिर्यस्य तथाभूतो महामेरुः, दीपपक्षे प्राज्यस्य प्रकृष्टधृतस्य विराजिता रुचिः कान्तिर्यस्मिस्तथाभूतः । रूपकोपमालंकारो आर्यावृत्तम् ॥४८॥ § ६६) तत्रेति—तत्र किल सुमेरुपर्वते विचित्राणि नानाप्रकाराणि चिरंतनानि शाश्वतानि यानि रत्नानि तैः खचितान् जटितान् अनेकरसभङ्गीभिर्नारससंततिभिः संगतानां सहितानां सुराङ्गनानां देवीनां संचरणेन परिभ्रमणेन संचलन्त्यो याः कनककिङ्किण्यः सुवर्णक्षुद्रघण्टिकास्तासां मृदुनिनादेन कोमलशब्देन मनोहरा अभिरामास्तान् नित्यालोकान् शाश्वतप्रकाशान् नित्यालोकनामधेयान्वा अकृत्रिमचैत्यालयाः

२० क्रमशः आसाद्य प्राप्य आनम्य नमस्कृत्य च प्रमोदलहरीणामानन्दतरङ्गाणां

युक्त होकर भी अमरालीमहितनन्दनवन—हंसियोंसे रहित नन्दनवनसे युक्त था यह विरुद्ध बात है (परिहारपक्षमें हंसियोंसे सहित नन्दनवनसे युक्त होकर भी अमराली—देवोंकी पंक्तियोंसे सहित नन्दनवनसे युक्त था) । रज स्फुरण—परागके संचारसे सुशोभित होकर भी नीरजस्फुरण—कमलोंके विकाससे सुशोभित था) । और सदा अगमहित—पर्वतोंमें श्रेष्ठ होकर भी नागमहित—पर्वतोंमें श्रेष्ठ नहीं था यह विरुद्ध बात है (परिहारपक्षमें पर्वतोंमें श्रेष्ठ होकर भी नागमहित—हाथियों अथवा नागकुमार देवोंसे महित—श्रेष्ठ था) । § ६५ त्रिदशेति—जो महामेरु लक्ष्मीके विलासगृहस्वरूप जम्बूद्वीपमें

२५ दीपकके समान सुशोभित हो रहा था क्योंकि जिस प्रकार दीपक त्रिदशोपसेवित—तीन-वस्तियोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार महामेरु भी त्रिदशोपसेवित—देवोंसे सुशोभित था और जिस प्रकार दीपक प्राज्य विराजितरुचि—श्रेष्ठ घीसे सुशोभित कान्तिसे युक्त होता है उसी प्रकार महामेरु भी प्राज्य विराजितरुचि—अत्यन्त सुशोभित कान्तिसे युक्त था ॥४८॥ § ६६) तत्रेति—उस मेरु पर्वत पर, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे जड़े हुए थे, जो अनेकरत्नोंकी सन्ततिसे युक्त देवांगनाओंके संचार से हिलती हुई सुवर्णमय क्षुद्रघण्टिकाओंके कोमल शब्दसे मनोहर थे तथा जिनमें निरन्तर प्रकाश विद्यमान रहता था अथवा जो नित्यालोक नामको धारण करने वाले थे ऐसे अकृत्रिम चैत्यालयोंको क्रम-क्रमसे प्राप्तकर तथा नमस्कार कर

३०

६५

लहरी परोवाहप्लावितान्तःकरणः सौमनसवनपौरस्त्यदिग्भागभासमाने जिनभवने कृतभगवत्सपर्याचर्यः पर्याप्तभाग्यः क्षणं निषसाद ।

§ ६७) अथागतौ पूर्वविदेहरम्यकच्छाख्यदेशान्नगरादरिष्ठात् ।

ऐक्षिष्ट सोऽयं धुरि चारणौ द्वौ मुनीश्वरी मान्यगुणाभिरामौ ॥४९॥

§ ६८) तौ किल प्रवाहौ करुणारसस्य, सेतु संसाराम्बुधेः, महामन्त्रौ क्रोधभुजगस्य, दिवसकरो मोहान्धकारस्य, आलवालदेशौ जिनभक्तिवल्लयाः, राजहंसी युगंधरमहातीर्थसरस्याः, पूर्वाचलाववधिज्ञानदिनकरोदयस्य, मुनिपुङ्गवावादित्यगत्यरिजयनामधेयावभ्येत्याभ्यर्च्य च मुहुर्मुहुः प्रणम्य सुखासीनः स्वयंबुद्ध एवं पृच्छांचक्रे ।

§ ६९) महाबल इतीरितः सकलखेचराधीश्वरः

पुरे वसति नः प्रभुः स किल भव्य एवाथवा ।

परोवाहेण प्लावितं निमग्नं अन्तःकरणं मनो यस्य तथाभूतः स्वयंबुद्धः सौमनसवनस्य तन्नामसुमेरूद्यानस्य पौरस्त्यदिग्भागे पूर्वदिग्भागे भासमानं शोभमानं तस्मिन् जिनभवने जिनेन्द्रभवने कृता विहिता भगवतां जिनेन्द्राणां सपर्याचर्या पूजाविधियेन सः पर्याप्तं भाग्यं यस्य तथाभूतः स्वं पर्याप्तभाग्यशालिनं मन्यमान इत्यर्थः क्षणं निषसाद स्थितोऽभूत् । § ६७) अथेति—अथोपवेशनानन्तरम्, सोऽयं स्वयंबुद्धः पूर्वविदेहे पूर्व- विदेहक्षेत्रे रम्यो मनोहरो यः कच्छाख्यदेश एतन्नामदेशविशेषस्तस्मात्, अरिष्ठात् एतन्नामधेयात् नगरात् आगतौ आयातौ, चारणौ चारणद्विसहिता गगनगामिनावित्यर्थः, मान्यगुणैः प्रशस्यगुणैरभिरामौ मनोहरी द्वौ मुनीश्वरी मुनिराजौ धुरि अग्रे ऐक्षिष्ट ददर्श । उपजातिवृत्तम् ॥४९॥ § ६८) तौ किलेति—तौ किल मुनीश्वरी करुणारसस्य दयारसस्य प्रवाहौ निर्झरी, संसारसागरस्य पुलिनौ, क्रोधनागस्य महामन्त्रौ मोह एवान्ध- कारस्तस्य मिथ्यात्वतिमिरस्य दिवसकरो सूर्यौ, जिनभक्तिरेव वल्ली तस्या जिनभक्तिलताया आलवालदेशौ आवापदेशौ युगंधरो विदेहक्षेत्रस्य तीर्थकरस्तस्य महातीर्थमेव सरसी कासारस्तस्य राजहंसी हंसविशेषौ 'राजहंसास्तु ते चञ्चूचरणैर्लोहितैः सिताः' इत्यमरः, अवधिज्ञानमेव दिनकरः सूर्यस्तस्योदयस्य पूर्वाचला- बुदयाचलौ, आदित्यगतिश्च अरिजयश्चेत्यादित्यगत्यरिजयौ तौ नामधेये ययोस्तौ मुनिपुङ्गवौ मुनिश्रेष्ठौ, अभ्येत्य तयोः संमुखं गत्वा अभ्यर्च्य च पूजयित्वा च मुहुर्मुहुः भूयोभूयः प्रणम्य सुखासीनः सुखोपविष्टः स्वयंबुद्ध एवं पृच्छांचक्रे पप्रच्छ । रूपकालंकारः । § ६९) महाबल इति—क्षमागुण एव मणिस्तस्य खनो आकरो मुनियुगलस्य संबोधनम् । नोऽस्माकं पुरे नगरे प्रभुः स्वामी सकलखेचराणां निखिलविद्याधराणामधीश्वरः

हर्षकी तरंगोंके प्रवाहसे जिसका अन्तःकरण निमग्न हो रहा था, सौमनस वनकी पूर्व दिशा- में शोभायमान जिनमन्दिरमें जिसने भगवान्की पूजा की थी तथा इस क्रियासे जो अपने आपको पर्याप्त भाग्यशाली मानता था ऐसा स्वयंबुद्ध मन्त्री वहाँ क्षण भरके लिए बैठ गया । § ६७) अथेति—तदनन्तर स्वयंबुद्ध मन्त्रीने पूर्वविदेह क्षेत्रमें सुशोभित कच्छ नामक देशके अरिष्ट नगरसे आये हुए चरण अद्विके धारक तथा माननीय गुणोंसे मनोहर दो मुनिराजोंको अपने आगे देखा ॥४९॥ § ६८ तौ किलेति—वे मुनिराज करुणारसके प्रवाह थे, संसार- रूपी समुद्रके पुल थे, क्रोधरूपी सर्पके लिए महामन्त्र थे, मोहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्य थे, जिनभक्तिरूपी लताके लिए क्यारी थे, युगन्धर तीर्थकरके तीर्थरूपी सरोवरके राजहंस थे, अवधिज्ञानरूपी सूर्यके उदयके लिए उदयाचल थे तथा आदित्यगति और अरिजय उनके नाम थे । उनके सम्मुख जाकर, पूजा कर बार-बार प्रणाम कर सुखसे बैठे हुए स्वयंबुद्ध मन्त्रीने उनसे इस प्रकार पूछा । § ६९) महाबल इति—हे समस्त गुणरूपी मणियोंकी खान ! हमारे नगरमें हमारा स्वामी महाबल नामसे प्रसिद्ध समस्त विद्याधरोंका

अभव्य इति संशयो मम हृदालये खेलति

क्षमागुणमणेः खनी ! सह तदीयजिज्ञासया ॥५०॥

§ ७०) प्रश्नाभिधं मधु निगीर्य निरुक्तरौत्या

तस्याथ मीलदधरोष्ठदले मुखाब्जे ।

५

आदित्यगत्यभिध एष मुनिमुखाब्ज-

हर्षाय सूक्तकिरणान्प्रकटीचकार ॥५१॥

§ ७१) भो सचिवोत्तंस ! असौ भवत्स्वामी भव्यो, भव्य एव भवद्वचनशैलीं प्रत्येक्ष्यति, प्राप्स्यति च दशमजन्मन्यस्मिञ्जम्बूद्वीपस्यालङ्कारभूते भारतखण्डे युगारम्भे प्रचुरागण्यपुण्यवशेन तीर्थकराग्रगण्यतां सकलसंक्रन्दनप्रमुखवृन्दारक संदोहवन्दनीयतां च ।

१०

§ ७२) अतीतभवमेतस्य प्रतीतयशसः शृणु ।

धर्मबीजं हि यत्रोत्पन्नं शर्मभोगेच्छयामुना ॥५२॥

महाबल इतीरितः महाबल नाम्ना प्रसिद्धः वसति, स किल भव्य एव रत्नत्रयप्राप्तियोग्य एव अथवा अभव्यो रत्नत्रयप्राप्त्ययोग्य इतीत्यं संशयो विचिकित्सा मम स्वयंबुद्धस्य हृदालये मनोमन्दिरे तदीया चासी जिज्ञासा च ज्ञातुमिच्छा च तथा सह खेलति क्रीडति रूपकालंकारः पृथिवीवृत्तम् ॥५०॥ § ७०) प्रश्नाभिधमिति—

१५ अधानन्तरं तस्य स्वयंबुद्धस्य मुखमेवाब्जं तस्मिन् वदन्वारिजे निरुक्तरौत्या पूर्वोक्तप्रकारेण प्रश्नाभिधं प्रश्ननामधेयं मधु मकरन्दं विगीर्य प्रकटयित्वा मीलती अधरोष्ठदले यस्य तथाभूते निमोलदधरोष्ठपत्रे सति आदित्यगतिरभिधा यस्य तथाभूत आदित्यगतिनामधेयः सूर्यतुल्य इत्यर्थः, एषोऽयं मुनिः, मुखाब्जहर्षाय स्वयंबुद्धमुखकमलविकासाय सूक्तय एव किरणास्तान् सुभाषितरश्मीन् प्रकटीचकार प्रकटयामास । रूपकालंकारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥५१॥ § ७१) भो सचिवोत्तंसेति—हे अमात्यभूषण ! असौ भवत्स्वामी

२० भवत्प्रभुः भव्यो रत्नत्रयप्राप्त्यर्ह एवास्तीति शेषः, यतः भव्य एव भवद्वचनशैलीं भवदुपदेशप्रकारं प्रत्येक्ष्यति श्रद्धास्यति, दशमजन्मनि दशमभवे जम्बूद्वीपस्य प्रथमद्वीपस्यालंकारभूते भूषणस्वरूपेऽस्मिन् भारतखण्डे भरतक्षेत्रे युगारम्भेऽवसर्पिणीकालान्तर्गतकर्मभूमिप्रारम्भे प्रचुरं प्रभूतमगण्यमपरिमितं च यत्पुण्यं सुकृतं तस्य वशेन तीर्थकरेषु चतुर्विंशतिधर्मप्रवर्तकेषु अग्रगण्यतां प्रथमतां सकलाः समस्ताः संक्रन्दनप्रमुखा इन्द्रप्रधाना ये वृन्दारका देवास्तेषां संदोहेन समूहेन वन्दनीयतां नमस्करणीयतां च प्राप्स्यति लप्स्यते च । § ७२) प्रती-

२५ तेति—प्रतीतं प्रसिद्धं यशो यस्य तथाभूतस्य, एतस्य महाबलस्य अतीतभवं पूर्वपर्यायं शृणु समाकर्ण्य, यत्र यस्मिन्, अमुनानेन शर्मभोगेच्छया सुखानुभववाञ्छया धर्मबीजं उत्पन्नं निक्षिप्तं कृतवापमिति यावत् ॥५२॥

राजा रहता है सो वह भव्य ही है अथवा अभव्य, यह संशय हमारे मनरूपी मन्दिरमें उसकी जिज्ञासाके साथ क्रीड़ा किया करता है ॥५०॥ § ७०) प्रश्नाभिधमिति—तदनन्तर

३० जब स्वयंबुद्धका मुखकमल पूर्वोक्त प्रकारसे प्रश्ननामक मकरन्दको प्रकट कर अधरोष्ठरूपी दलोंको बन्द कर चुका तब आदित्यगति नामके मुनिराज इसके मुखकमलको विकसित करनेके लिए सूक्तिरूपी किरणोंको प्रकट करने लगे ॥५१॥ § ७१) भो सचिवोत्तंसेति—हे अमात्या-भरण ! यह आपका स्वामी भव्य है क्योंकि भव्य ही आपकी वचन शैलीपर प्रतीति करेगा और दशवें भवमें जम्बूद्वीपके अलंकारस्वरूप इस भरतक्षेत्रमें कर्मभूमि रूप युगका प्रारम्भ होनेपर बहुत भारी पुण्यके वशसे तीर्थकरोंमें अग्रगण्यता तथा इन्द्रादि समस्त देव समूहके द्वारा वन्दनीयताको प्राप्त करेगा ॥ § ७२) अतीतेति—प्रसिद्ध यशके धारकपूइसका वह भव सुनो

§ ७३) विख्यातपश्चिमविदेहविराजमान-

श्रीगन्धिल्लसितसिंहपुरे व्यराजत् ।

श्रीषेणनामधरणीरमणः प्रियास्य

श्रीसुन्दरीति विदिता भुवनैकरम्या ॥५३॥

§ ७४) जयवर्मेति विख्यातो ज्यायान्पुत्रस्तयोरभूत् ।

श्रीवर्मेति कनीयांश्च समस्तजनताप्रियः ॥५४॥

§ ७५) तदनु श्रीषेणभूपाले जनानुरागमुत्साहं च समीक्ष्य कनीयसि राज्यपट्टमातन्वाने, खर्वेतरनिर्वेदो जयवर्मा स्वयंप्रभगुरोः पार्श्वे गृहीतदीक्षो नवसंयत एव, अपरमिव सूर्यमधिनभः-स्थलमायान्तं महद्दिसमेतं व्योमचराधिपतिमुच्चक्षुर्वीक्षमाणस्तद्भोगप्राप्तिचिन्तादन्तुरितस्वान्तः, वल्मीकविलनिर्गतदंशूकनिर्दष्टतनुर्भोगचिन्तयैव संत्यक्तासुः संप्राप्तमहाबलभवः संततं भोगेष्वेव चिरतरमरज्यत । १०

§ ७३) विख्यातेति—विख्यातश्चासौ पश्चिमविदेहश्चेति विख्यातपश्चिमविदेहः प्रसिद्धपश्चिमविदेहक्षेत्रं तस्मिन् विराजमानं शोभमानं श्रीगन्धिल्लेत्युल्लसितं शोभितं यत् सिंहपुरं तन्नामधेयं नगरं तस्मिन् श्रीषेणनाम-धरणीरमणः श्रीषेणाभिधानभूपतिः व्यराजत् शुशुभे । अस्य श्रीषेणस्य भुवनैकरम्या जगदेकसुन्दरी श्रीसुन्दरी-ति एतन्नामधेया विदिता प्रसिद्धा प्रिया वल्लभा चासीदिति शेषः ॥५३॥ § ७४) जयवर्मेति—सा च स चेति तौ तयोः श्रीषेणश्रीसुन्दर्योः । जयवर्मेति विख्यातः प्रथितः ज्यायान् ज्येष्ठः श्रीवर्मेति विख्यातः कनीयान् लघुः पुत्रोऽभूत् तयोः कनीयान् पुत्रः समस्तजनताया निखिलजनसमूहस्य प्रियो वल्लभ आसीत् ॥५४॥ § ७५) तदन्विति—तदनन्तरं श्रीषेणभूपाले श्रीषेणमहाराजे जनानुरागं लोकप्रीतिम् उत्साहं प्रजापालनदक्षतां च श्रीवर्मण इति शेषः समीक्ष्य विचार्य कनीयसि लघुपुत्रे राज्यपट्टम् आतन्वाने बध्नति सति खर्वेतरो महान् निर्वेदो वैराग्यं यस्य तथाभूतो जयवर्मा स्वयंप्रभगुरोरेतन्नामधेयमुनेः पार्श्वे गृहीता दीक्षा येन स स्वीकृतप्रव्रज्यः, नवसंयत एवाभिनवदीक्षित एव नभःस्थल इत्यधिनभस्थलं गगने अपरं द्वितीयं सूर्यमिव आयान्तं महद्दिसमेतं विपुलद्विसंगतं व्योमचराधिपतिं कञ्चिद्विद्याधरराजम् उद्गते चक्षुषी यस्य तथाभूत उन्नमितनेत्रः वीक्षमाणो विलोकयन् तस्य व्योमचराधिपतेर्भोगानां प्राप्तेश्चिन्तया दन्तुरितं व्याप्तं स्वान्तं यस्य सः, वल्मीकस्य विलात् निर्गतेन दंशूकेन सर्पेण निर्दष्टा सातिशयं दष्टा तनुर्यस्य तथाभूतः, भोगचिन्तयैव भोगप्राप्तीच्छयैव संत्यक्ता २०

जिसमें कि इसने सुखभोगकी इच्छासे धर्मका बीज बोया था ॥५२॥ § ७३) विख्यातेति—अतिशय प्रसिद्ध पश्चिम विदेहक्षेत्रमें सुशोभित श्रीगन्धिला देशके सिंहपुर नगरमें श्रीषेण नामका राजा सुशोभित था । उस श्रीषेणकी श्रीसुन्दरी नामसे प्रसिद्ध अत्यन्त सुन्दर प्रिया थी ॥५३॥ § ७४) जयवर्मेति—उन दोनोंके जयवर्मा नामका बड़ा और श्रीवर्मा नामका छोटा पुत्र था । उनमें छोटा पुत्र समस्त जनताको प्यारा था ॥५४॥ § ७५) तदन्विति—तदनन्तर श्रीषेण राजाने जब जनताके अनुराग और श्रीवर्माकी सामर्थ्यको देखकर छोटे पुत्र (श्रीवर्मा) पर राज्यपट्ट बाँध दिया तब बहुत भारी वैराग्यसे युक्त हो जयवर्माने स्वयंप्रभ गुरुके पास दीक्षा ले ली । अभी वह नवीन दीक्षित ही था कि आकाशमें दूसरे सूर्यके समान बहुत भारी सम्पदासे सहित एक विद्याधर राजा आ रहा था उसे उसने ऊपरकी ओर आँख उठाकर देखा, देखते ही साथ उसके भोगोंकी प्राप्तिकी चिन्तासे उसका हृदय व्याप्त हो गया—उसे लगा कि ऐसा वैभव मुझे भी प्राप्त होता । उसी समय वामीके छिद्रसे निकले हुए साँपने उसके ३० ६५

१. कनीयसे क० ।

§ ७६) इदानीं खलु निशायां विशांपतिः स्वप्ने त्रिभिर्मन्त्रिभिर्दुष्पङ्के बलान्निमज्ज्यमान-
मात्मानं ततस्तवया दुष्टांस्तान्निर्भर्त्स्य पङ्कादुद्धृत्य, हरिविष्टरे विमलतरसलिलैरभिषिक्तं कांचन
काञ्चनसूत्रपिण्डसच्छवि सौदामिनीलतामिवातिलोलामनुक्षणं क्षीयमाणां दीपज्वालां च क्षणदाक्षये
विलोकयामास ।

५ § ७७) स्वप्नाविमी खेचरभूमिपालो दृष्ट्वा भवन्तं प्रतिपादयन् सः ।

आस्ते त्वमेवाशु समेत्य पूर्वं स्वप्नद्वयं बोधय साधुबुद्धे ॥५५॥

§ ७८) आद्यस्वप्नमवेहि त्वं साध्यपुण्यद्विसूचकम् ।

आह द्वितीयस्वप्नस्तदायुर्मासावशिष्टताम् ॥५६॥

§ ७९) 'एष किल मुक्तिमानिनोदूत्येव काललब्ध्या प्रबोधितः पृथ्वीपतिस्तृषितचातकोत्त

- १० असवः प्राणा येन सः, संप्राप्तो महाबलभवो येन तथाभूतः सन् भोगेष्वेव पञ्चेन्द्रियविषयेष्वेव चिरतरं दीर्घकाल-
पर्यन्तम् अरज्यत रक्तोऽभवत् । § ७६) इदानीमिति—इदानीं खलु सांप्रतं निशायां रज्यां विशांपतिर्महा-
बलमहीपतिः स्वप्ने त्रिभिर्मन्त्रिभिः दुष्पङ्के दुस्तरकर्ममे बलाद् हृत्वा निमज्ज्यत इति निमज्ज्यमानस्तं आत्मानं
स्वं ततस्तदनन्तरं तान् दुष्टान् त्रिमन्त्रिणो निर्भर्त्स्य तिरस्कृत्य पङ्कात् कर्दमात् उद्धृत्य निःसार्य हरिविष्टरे
सिंहासने विमलतराणि च तानि सलिलानि तैर्निर्मलतरवीरैः अभिषिक्तं प्राप्ताभिषेकं, कांचन कामपि, काञ्चन-
१५ सूत्रपिण्डस्य सुवर्णतन्तुसमूहस्य लविरिव लविर्यस्यास्तां सौदामिनीलतामिव विद्युद्वल्लीमिव अतिलोलां चपलतराम्
अनुक्षणं प्रतिक्षणं क्षीयमाणां नाशोन्मुखीं दीपज्वालां च प्रदीपज्योतिश्च क्षणदाक्षये रात्र्यन्तभागे विलोकयामास ।
§ ७७) स्वप्नाविति—स पूर्वोक्तः खेचरभूमिपालो विद्याधरनृपः, इमौ पूर्वोक्तौ स्वप्नौ दृष्ट्वा भवन्तं प्रति-
पादयन् निवेदयन् आस्ते भवन्तं प्रतीक्षमाणस्तिष्ठतीत्यर्थः । त्वमेव आशु शीघ्रं समेत्य गत्वा पूर्वं तत्प्रश्नात्प्रागेव
हे साधुबुद्धे हे सुधीः स्वप्नद्वयं बोधय ज्ञापय तत्फलं सूचय ॥५५॥ § ७८) आद्येति—स्वप्नम् ॥५६॥ § ७९)
२० एषेति—मुक्तिरेव मानिनी मनस्विनी महिला तस्या दूत्येव काललब्ध्या प्रबोधितः संबोधित एष पृथ्वीपतिः

शरीरको बहुत जोरसे डस लिया, जिससे भोगोंकी चिन्ता करते-करते उसका शरीर छूट गया
और फलस्वरूप महाबलकी पर्याय प्राप्त कर वह सदा भोगोंमें ही अनुरक्त रहने लगा ।

§ ७६) इदानीमिती—आज रात्रिके समय राजाने स्वप्नमें देखा है कि मुझे तीन मन्त्री बल-
पूर्वक भारी कीचड़में निमग्न कर रहे हैं तथा स्वयंबुद्ध मन्त्रीने उन सबको डाँटकर, कीचड़से

- २५ निकाल सिंहासनपर बैठा अत्यन्त निर्मल जलसे मेरा अभिषेक किया है । इसके सिवाय
सुवर्णकी लड़ीके समान समीचीन कान्तिसे युक्त तथा बिजलीरूपी लताके समान अत्यन्त
चंचल क्षण-क्षणमें हासको प्राप्त होती हुई दीपककी ज्वालाको भी देखा है । ये दोनों स्वप्न उसने
रात्रिके अन्तभागमें देखे हैं । § ७७) स्वप्नाविति—इन दोनों स्वप्नोंको देखकर वह विद्याधर
राजा आपको प्रकट करता हुआ बैठा है सो हे समीचीन बुद्धिके धारक ! तुम्हीं शीघ्र जाकर
३० उसके पूछनेके पहले दोनों स्वप्नोंको बतला दो ॥५५॥ § ७८) आद्येति—तुम पहले स्वप्नको
प्राप्त होने योग्य पुण्य ऋद्धियोंका सूचक जानो और दूसरा स्वप्न कह रहा है कि उसकी आयु
एक माहकी शेष रह गयी है ॥५६॥ § ७९) एषेति—मुक्तिरूपी मानिनीकी दूतीके समान
काललब्धिके द्वारा प्रबोधको प्राप्त हुआ यह राजा, आपके द्वारा उपदिष्ट समीचीन धर्ममें उस

१. गद्यमिदं महापुराणस्य निम्नाङ्कितं श्लोकद्वयमनुसरति—तृषितः पयसीवाग्दातपतिते चातकोऽधिकम् ।

- ३५ जनुषान्ध इवानन्धकरणे परमौषधे ॥ रुचिमेष्यति सद्धर्मे त्वत्तः सोऽह्य प्रबुद्धधीः । दूत्येव मुक्तिकामिन्याः
काललब्ध्या प्रबोधितः ॥

इव बलाहककुलविगलितजलबिन्दुसंदोहे, जात्यन्ध इवानन्धंकरणचणपरमौषधे, दुर्गंत इव निरवधिक-
निधिनिधाने भवतोपदिष्टे सद्धर्मे परमां श्रद्धां विधास्यति ।

§ ८०) इति निगद्य सुधामधुरां गिरं मुनियुगे गगनस्थलमुद्गते ।

सचिव एष जवेन महाबलं प्रति जगाम युगायतसद्भुजम् ॥५७॥

§ ८१) समासाद्य भूपं समाचष्ट सर्वं स्वयंबुद्ध एष स्वयं योगिवाक्यम् ।

५

जिनेन्द्रोक्तधर्मं मुनीन्द्रोपलाल्यं कुरु क्षेमवृद्धयै क्षितिशेति चाह ॥५८॥

§ ८२) तदनु स्वयंबुद्धवचनगुम्फविस्मभविजृम्भितस्वायुःक्षयनिश्चयो विपश्चिदग्रगण्यः
खचरपतिर्यथाविधितनुत्यागं विधातुर्मेनाः, मनागितरमनोहरनिजमन्दिरारामसुन्दरजिनचन्द्रि-
शुभमन्दिरकन्दलिताष्टाह्निकमहोत्सवः, सकलनयनसंतोषकल्पभुजाय निजतनूजाय प्रजाभागधेयाया-

महाबलोऽयं नृपः, बलाहककुलान्धेयमण्डलाद् विगलितानां पतितानां जलबिन्दूनां पयःपृषतां संदोहे समूहे तृषित- १०
चातकपोत इव पिपासातुरसारङ्गशावक इव, अनन्धकरणेन दृष्टिप्रदानेन वित्तमन्धकरणचणं तथाभूतं यत्परमौ-
षधं श्रेष्ठमैषज्यं तस्मिन्, जात्यन्ध इव जन्मान्ध इव, निरवधिकानां सीमातीतानां निधीनां निधानं भाण्डागारं
तस्मिन् दुर्गंत इव दरिद्र इव, भवता त्वया, उपदिष्टे प्रदर्शिते सद्धर्मे समीचीनधर्मे परमां श्रेष्ठां श्रद्धां प्रतीतिं
विधास्यति करिष्यति । § ८०) इतीति—इतीत्यं सुधेव मधुरा तां पीयूषमिष्टां गिरं भारतीं निगद्य समुच्चार्य
मुनियुगे यतियुगले गगनस्थलं नभस्थलम् उद्गते समुत्पतिते सति, एष सचिवोऽमात्यः, जवेन वेगेन युगवदायतौ १५
दीर्घौ सद्भुजौ यस्य तथाभूतं महाबलं प्रति विद्याधरधरावल्लभं प्रति जगाम । द्रुतविलम्बितं छन्दः ॥५७॥

§ ८१) समासाद्येति—एषोऽयं स्वयंबुद्धो भूपं समासाद्य प्राप्य सर्वं निखिलं योगिवाक्यं मुनीन्द्रवचनं स्वयं
स्वमुखेन समाचष्ट जगाद । हे क्षितिश ! हे राजन् ! क्षेमवृद्धयै कल्याणवृद्धयै मुनीन्द्रैर्मुनिराजैरुपलाल्यं
धारणीयं जिनेन्द्रोक्तधर्मं जिनराजप्रणीतधर्मं कुरु विधेहि । इति चाह कथयामास । भुजङ्गप्रयातं छन्दः ।

§ ८२) तदन्विति—तदनन्तरं स्वयंबुद्धस्य वचनगुम्फे वाग्नचनायां विस्मभेन विश्वासेन विजृम्भितो वधितः २०
स्वायुषः स्वजीवितस्य क्षयनिश्चयो विनाशनिर्णयो यस्य तथाभूतः विपश्चित्तु विद्वत्सु अग्रगण्यः प्रधानः,
खचरपतिविद्याधरराजो महाबलो यथाविधि विधिमनतिक्रम्य तनुत्यागं समाधिमरणं विधातुमेताः कर्तुंकामः,
मनागितरमनोहरमतिमुन्दरं निजमन्दिरारामसुन्दरं स्वभवनोद्यानविशोभितं यत् जितचन्द्रिरस्य जिनचन्द्रस्य
शुभमन्दिरं पुण्यमन्दिरं तस्मिन् कन्दलितः कृत आष्टाह्निकमहोत्सवो नन्दोश्वरपर्वमहोत्सवो येन तथाभूतः सन्,

तरह परम श्रद्धा करेगा जिस तरह कि मेघसमूहसे न्युत जलकी बूँदोंके समूहमें प्यासा २५
चातकका शिशु, दृष्टि प्रदान करनेवाली श्रेष्ठ औषधमें जन्मान्ध मनुष्य और असीमनिधियों-
के भण्डारमें दरिद्र पुरुष श्रद्धा करता है । § ८०) इतीति—इस प्रकार अमृतके समान मिष्ट
वाणी कहकर जब दोनों मुनिराज गगनतलमें उड़ गये तब यह मन्त्री वेगसे युगके समान
लम्बी तथा श्रेष्ठ भुजोंको धारण करनेवाले राजा महाबलकी ओर गया ॥५७॥

§ ८१) समासाद्येति—इस स्वयंबुद्धने राजा महाबलको प्राप्त कर मुनिराजके समस्त वचन ३०
स्वयं कहे और साथ ही यह भी कहा कि हे राजन् ! तुम कल्याणकी वृद्धिके लिए बड़े-बड़े
मुनियोंके द्वारा धारण करने योग्य जिन प्रणीत धर्मको धारण करो ॥५८॥ § ८२) तदन्विति—

तदनन्तर स्वयंबुद्ध मन्त्रीकी वचन रचनामें विश्वास होनेसे जिसे अपनी आयुके क्षयका ३५
निश्चय हो गया था ऐसे विद्वानोंमें अग्रसर महाबलने विधिपूर्वक शरीर त्याग करनेका मन
किया । प्रथम ही उसने अत्यन्त मनोहर अपने भवनके उद्यानमें सुशोभित जिनेन्द्र भगवान्के
शुभ मन्दिरमें आष्टाह्निक महोत्सव किया तत्पश्चात् समस्त मनुष्योंके नेत्रोंको सन्तोष उत्पन्न

तिबलनामधेयाय प्रतिपादितराज्यभारः, सिद्धकूटमुपेत्य सिद्धार्चनपुरःसरं द्वाविंशतिदिनानि सल्लेखनाविधिमुल्लासयामास ।

§ ८३) आराधनानावमुपेत्य भूपो भवाम्बुराशि सहसा तितोर्ध्वः ।

संत्यक्तवाह्यान्तरसंग्रहस्तन्निर्यापकं मन्त्रिवरं न्ययच्छत् ॥५९॥

५ § ८४) तपस्यतस्तस्य शरीरवल्ली यथायथेयं तनिमानमागात् ।

तथा तथावर्धत कान्तिभूमा प्रकाशिताशेषदिगन्तसीमा ॥६०॥

§ ८५) तदानीमुदारतपा महाबलः शारदनोरद इवारूढकाश्यंस्तादात्विकमरणारम्भव्रत-मालोक्य क्वापि लीनाभ्यां लोचनाभ्यां विराजमानः, क्षोणशोणितमांसचर्मभ्यामप्यपरित्यक्तकान्ति-कन्दलाभ्यां कपोलाभ्यां विलसितः, पूर्वं नितान्तपीवराभ्यां मणिकेयूरकिणकर्कशाभ्यामधुना तदोय-

- १० सकलनयनानां निखिलनरनेत्राणां संतोषस्तृप्तिस्तस्य कल्पभूजाय कल्पवृक्षाय निजतनूजाय स्वसुताय प्रजाया भागधेयं भाग्यं तस्मै, अतिबलो नामधेयं यस्य तस्मै, प्रतिपादितः प्रदत्तो राज्यभारो येन तथा भूतः सन्, सिद्धकूटं विजयार्थस्य कूटविशेषम् उपेत्य प्राप्य सिद्धार्चनपुरःसरं सिद्धपरमेष्ठिपूजासहितं द्वाविंशतिदिनानि यावत् 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया, सल्लेखनाया विधिस्तं समाधिमरणविधिम्, उल्लासयामास संपादयामास । § ८३) आराधनेति—आराधना सल्लेखनैव नौस्तरिस्ताम् उपेत्य प्राप्य सहसा जगिति भवाम्बुराशि संसारसागरं तितोर्ध्वस्तरितुमिच्छुः भूपो महाबलराजः संत्यक्तो सम्यक्प्रकारेण त्यक्तो बाह्यान्तर-संग्रही बाह्याभ्यन्तरपरिग्रही येन तथाभूतः सन् मन्त्रिवरं स्वयंबुद्धं तस्या आराधनानावो निर्यापकं कर्णधारं पक्षे आराधनाविधिविधातारं न्ययच्छत् नियुक्तवान् । उपजातिवृत्तम् ॥५९॥ § ८४) तपस्यत इति—तपस्यत-स्तपांसि कुर्वतस्तस्य विद्याधरराजस्य इयं शरीरवल्ली तनुलता यथा यथा येन येन प्रकारेण तनिमानं कृशताम् आगात् प्रापत् तथा तथा तेन तेन प्रकारेण प्रकाशिता अशेषदिगन्तसीमा येन तथाभूतः कान्तिभूमा
- १५ कान्तिबाहुल्यम् अवर्धत वर्धते स्म । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥६०॥ § ८५) तदानीमिति—तदानीं सल्लेखनाकाले, उदारतपा महातपा महाबलो विद्याधरधरापतिः, शारदनोरद इव शरदृतुवारिद इव आरूढकाश्यो धृतकृशत्वः, तादात्विकं तत्कालभवं यन्मरणारम्भव्रतं समाधिमरणव्रतं तत्, आलोक्य क्वापि कुत्रापि लीनाभ्यामन्तर्हिताभ्यां लोचनाभ्यां विराजमानः शोभमानः, क्षोणं हसितं शोणितमांसं रुधिरपलं यस्य तथाभूतं चर्म त्वक् ययोस्तथाभूताभ्यामपि अपरित्यक्तकान्तिकन्दलाभ्यामत्यक्तदीप्तिकन्दलाभ्यां कपोलाभ्यां
- २० गण्डाभ्यां विलसितः शोभितः पूर्वं सल्लेखनायाः प्राग् नितान्तपीवराभ्यामतिशयस्थूलाभ्यां मणिकेयूराणां

- करनेके लिए कल्पवृक्ष तथा प्रजाके भाग्यस्वरूप अतिबल नामक अपने पुत्रके लिए राज्यका भार सौंपा फिर सिद्धकूटमें जाकर सिद्धभगवान्की पूजाके साथ बाईस दिन तक सल्लेखना-की विधिको सम्पादित किया । § ८३) आराधनेति—आराधनारूपी नावको पाकर शीघ्र ही संसाररूपी समुद्रको पार करनेके इच्छुक राजा महाबलने बाह्य और अन्तरंग दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्याग किया और स्वयंबुद्ध मन्त्रीको उस सल्लेखनारूपी नावका कर्णधार (पक्षमें विधि करानेवाला) बनाया ॥५९॥ § ८४) तपस्यत इति—तपस्या करते हुए महाबल राजाकी यह शरीररूपी लता जैसे-जैसे कृशताको प्राप्त होती थी वैसे-वैसे ही समस्त दिशाओंको अन्तिम सीमाको प्रकाशित करती हुई कान्तिकी अधिकता बढ़ती जाती थी ॥६०॥ § ८५) तदानीमिति—उस समय महान् तपको धारण करनेवाला महाबल शरदृतुके मेघके
- ३० समान अत्यन्त कृश हो गया था । वह भीतर घुसे हुए नेत्रोंसे ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो वे नेत्र उस समय होनेवाले मरणारम्भके व्रतको देखकर कहीं छिप गये थे । वह जिन कपोलोंसे सुशोभित हो रहा था उनका खून और मांस नष्ट होकर यद्यपि चमड़ा ही शेष रह

मानसमार्दवमालोक्येव समाश्रितमार्दवाभ्यामंसाभ्यां संभावितः, त्रिवलीभङ्गसङ्गविरहितमाभुग्नं निर्वातनिस्तरङ्गसरोवरसंकाशमुदरप्रदेशमाबिभ्राणः, क्रमेण ललाटतटविन्यस्तकराम्बुजकुड्मलः मङ्गलानि नमस्कारपदान्यन्तर्जल्पेन जपन्नेव स्वयंबुद्धसमक्षं प्राणांस्तत्याज ।

§ ८६) आसाद्यैशानकल्पं तदनु स हि शुभे श्रीप्रभे व्योमयाने

राजद्रैम्योपपादामलशयनतलेऽजायतासौ सुराग्रयः ।

५

तत्र प्रत्यग्रशोभा सपदि तनुलता वैक्रियिक्याविरासीद्

व्योमाभोगे निरश्रे तडिदिव सुचिरादेकशुभ्राभ्रलग्ना ॥६१॥

§ ८७) तारुण्यलक्ष्मीकमनीयरूपस्तदा व्यलासीलललिताङ्गदेवः ।

सुप्तोत्थवद्विष्यदुकूलचेलःस्रग्वी लसद्भूषणभूषिताङ्गः ॥६२॥

रत्नाङ्गदानां किणेन चित्तविशेषेण कर्कशाभ्यां कठिनस्पर्शाभ्याम् अधुना सल्लेखनावसरे तदीयमानसमार्दवं १०
तदीयचेतःकोमलत्वम् आलोक्येव दृष्ट्वेव समाश्रितमार्दवाभ्यां प्राप्तकोमलत्वाभ्याम् अंसाभ्यां बाहुशिरोभ्यां
संभावितः शोभितः, त्रिवलीभङ्गस्य बलित्रयरचनायाः सङ्गः संबन्धस्तेन विरहितं शून्यम् आभुग्न-
मानम्रं वातस्याभावो निर्वातं तेन निस्तरङ्गः कल्लोलरहितो यः सरोवरः कासारस्तस्य संकाशं सदृशम्,
उदरप्रदेशं जठरप्रदेशम् आबिभ्राणो दधानः, क्रमेण ललाटतटे नितिलतटे विन्यस्तं स्थापितं कराम्बुजकुड्मलं
करकमलकुटुमलं येन तथाभूतः, मङ्गलानि श्रेयोरूपाणि, नमस्कारपदानि जपमो अरहंताण—इत्यादिमन्त्रपदाति, १५
अन्तर्जल्पेन जपन्नेव स्वयंबुद्धसमक्षं स्वयंबुद्धाग्रे प्राणानसून् तत्याज मुमोच । § ८६) आसाद्येति—तदनु प्राण-
त्यागानन्तरं स महाबलः, ऐशानकल्पं द्वितीयस्वर्गम् आसाद्य प्राप्य शुभे श्रेयोरूपे श्रीप्रभे एतन्नामधेये व्योमयाने
विमाने राजच्छुम्भद् रम्यं मनोहरं यदुपपादामलशयनतलं तस्मिन् उपपादाख्यविमलशय्यापृष्ठे, असी प्रसिद्धः सुराग्रयः
श्रेष्ठदेवः अजायत समुदपद्यत । तत्रोपपादशय्यातले सपदि शीघ्रं, प्रत्यग्राभिनवा शोभा श्रीर्यस्यास्तथाभूता
'प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः' इत्यमरः । निरश्रे निर्भेदे व्योमाभोगे गगनाङ्गणे सुचिराद्दीर्घकाल- २०
पर्यन्तम्, एकशुभ्राभ्रे एकधवलबलाहके लग्ना संसक्ता तडिदिव विद्युदिव 'तडित्सीदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला
अपि' इत्यमरः, वैक्रियिकी विक्रियाशक्तियुक्ता वैक्रियिकीनामधेया च तनुलता देहवल्ली, आविरासीत् प्रकटी-
बभूव । उपमालंकारः । स्रग्धरा छन्दः ॥६१॥ § ८७) तारुण्येति—तदा तस्मिन् काले तारुण्यलक्ष्म्या यौवन-
श्रिया कमनीयं रम्यं रूपं यस्य तथाभूतः, दिव्यं स्वर्ग्यं दुकूलचेलं क्षीमवस्त्रं यस्य तथा, स्रग्वी मालायुतः,

गया था फिर भी उन्होंने कान्तिकी सन्ततिको नहीं छोड़ा था । वह जिन कन्धोंसे सुशोभित २५
था वे यद्यपि सल्लेखना धारण करनेके पहले खूब मोटे थे और मणिमय बाजूबन्दोंसे उत्पन्न
भट्टोंसे कठोर थे तो भी उसके हृदयकी कोमलताको देखकर ही मानो कोमल हो गये थे । वह
जिस पेटको धारण कर रहा था वह त्रिवलिरचनाके संगसे रहित होकर एकदम झुक गया
था और वायुके अभावमें तरंगरहित तालाबके समान जान पड़ता था । उसने हस्तकमलरूपी
कुड्मल (कमलकी बोंड़ी) को ललाट तटपर लगा रखा था । इस तरह मंगलस्वरूप पंच ३०
नमस्कार मन्त्रका भीतर ही भीतर जाप करते हुए उसने स्वयंबुद्धके सामने प्राण छोड़े ।
§ ८६ आसाद्येति—तदनन्तर वह महाबल ऐशान स्वर्गको प्राप्तकर वहाँके श्रीप्रभनामक शुभ-
विमानमें सुशोभित होती हुई सुन्दर उपपाद शय्या नामक निमल शय्यापर श्रेष्ठदेव हुआ ।
वहाँ उसके शीघ्र ही मेघरहित आकाशमें चिरकाल तक एक सफेद मेघ खण्डमें लगी हुई
विजलीके समान नवीन शोभाको धारण करनेवाली वैक्रियिक शरीररूपी लता प्रकट हुई ॥६१॥ ३५
§ ८७) तारुण्येति—उस समय, जिसका रूप यौवन रूपी लक्ष्मीसे अत्यन्त सुन्दर था, जो

§ ८८) ललिताङ्ग एष ललिताङ्गसंपदा

तुलिताङ्गजोऽथ कलिताङ्गदोज्ज्वलः ।

अरुणाब्जशोभिचरणाञ्चितो बभौ

तरुणेन्दुकान्तिहरणोल्लसन्मुखः ॥६३॥

§ ८९) तद्वक्त्राब्जरुचिप्रवाहजलधौ श्रीकुन्तलालीमिल-

च्छेवाले भ्रुकुटीतरङ्गतरले बिम्बोष्ठसद्विद्रुमे ।

दन्तोदञ्चितमौक्तिके समतनोन्निष्कम्पमीनश्रियं

नेत्रद्वन्द्वमिदं निमेषरहितं निःसीमकान्त्युज्ज्वलम् ॥६४॥

§ ९०) मन्दस्मितप्रसरकुन्दसुमाभिलाषात्

कर्णवितंसगलितं किल भृङ्गयुग्मम् ।

नासाख्यचम्पकनिरिक्षणनष्टचेष्टं

नेत्रद्वयं सुरवरस्य तदा विरेजे ॥६५॥

१०

१५

२०

२५

३०

३५

लसद्भिः शोभमानैर्भूषणैर्भूषितं समलंकृतमङ्गं शरीरं यस्य तथाभूतो ललिताङ्गदेव एतन्नामामरः आदौ सुप्तः पश्चादुत्थः सुभोत्थस्तद्वत् व्यलासीत् शुशुभे । उपजातिवृत्तम् ॥६२॥ § ८८) ललिताङ्ग इति—अथानन्तरं ललिता मनोहरा याङ्गसंपदः शरीरसंपत्तिस्तया, तुलित उपमितोऽङ्गजो मदनो येन सः, कलितेन धृतेन अङ्ग-
देन केयूरेणोज्ज्वलो देदीप्यमानः, अरुणाब्जवद् रक्तारविन्दवत् शोभिनी यौ चरणौ पादौ ताम्यामञ्चितः शोभितः, तरुणेन्दोनिशोथनिशाकरस्य कान्त्या दीप्त्या हरणेनोल्लसच्छोभमानं मुखं वदनं यस्य तथाभूतः एषः ललिताङ्गो महाबलचरो देवविशेषः, बभौ शुशुभे । अनुप्रासोपमयोः संसृष्टिः । मञ्जुभाषिणी छन्दः 'सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी' इति लक्षणात् ॥६३॥ § ८९) तद्वक्त्राब्जेति—श्रीकुन्तलानां विलसच्छूर्णकुन्तलानामाली पङ्क्तिरेव मिलन् एकत्रीभवन् शैवालो जलनीलो यस्मिन् तस्मिन्, भ्रुकुटीचामेव तरङ्गौ भ्रूमङ्गौ ताम्यां तरले चपले, बिम्बोष्ठ एव सद्विद्रुमः सत्प्रवालो यस्मिन् तस्मिन्, दन्ता एव उदञ्चितानि प्रकटितानि मौक्तिकानि मुक्ताफलानि यस्मिन् तस्मिन्, तद्वक्त्राब्जस्य तदीयमुखकमलस्य रुचिप्रवाहः कान्तिप्रवाह एव जलधिस्तस्मिन्, निमेषरहितं पथपातरहितं, निःसीमकान्त्या निरवधिरुच्या उज्ज्वलं रुचिरम्, इदं नेत्रद्वन्द्वं नयनयुगं निष्कम्पमीनयोनिश्चलपाटीनयोः श्रियं शोभां समतनोत् विस्तारयामास । रूपकोषमालंकारी शाहूल-
विक्रीडितच्छन्दः ॥६४॥ § ९०) मन्देति—तदा तस्मिन् काले सुरवरस्य ललिताङ्गस्य नेत्रद्वयं नयनयुगलं, मन्दस्मितस्य मन्दहसितस्य प्रसरः समूह एव कुन्दसुमं माध्यकुसुमं तस्याभिलाषात् वाञ्छायाः, कर्णवितंसाम्यां

दिव्य वस्त्रांसे युक्त था, मालाओंसे सहित था और जिसका शरीर चमकते हुए आभूषणोंसे सुशोभित हो रहा था ऐसा ललितांगदेव सोयेसे उठे हुएके समान जान पड़ता था ॥६२॥ § ८८) ललिताङ्ग इति—सुन्दर शरीररूप सम्पत्तिके द्वारा जो कामदेवकी तुलना कर रहा था, धारण किये हुए बाजूबन्दोंसे जो सुशोभित था, लाल कमलोंके समान शोभायमान चरणोंसे युक्त था तथा जिसका मुख तरुण चन्द्रमाकी कान्तिका अपहरण करनेसे सुशोभित हो रहा था ऐसा वह ललितांगदेव बहुत भला जान पड़ता था ॥६३॥ § ८९) तद्वक्त्राब्जेति—जिसमें सुशोभित केश ही शैवाल थे, जो भौंहरूपी तरंगोंसे चंचल था, बिम्बीफलके समान लाल लाल ओठ ही जिसमें मूंगा थे, और दन्त ही जिसमें उत्कृष्ट मोती थे, ऐसे उस ललितांगदेव के मुखकमलकी कान्तिके प्रवाह रूप समुद्रमें टिमकारसे रहित तथा अपरिमित कान्तिके उज्ज्वल यह नेत्रोंका युगल निश्चल मछलियोंकी शोभाको बढ़ा रहा था ॥६४॥ § ९०) मन्दस्मितेति—उस समय उस श्रेष्ठदेव ललितांगका नेत्रयुगल ऐसा सुशोभित हो रहा था

§ ९१) तदनु, कल्पद्रुमवृष्टकुसुमकुलगलितमाध्वोकधारालोललोलम्बनिकुरम्बझङ्कार-
निर्भरेण, मन्दारवनमन्दमन्दस्पन्दमानसमीरकिशोरचलितस्तनशाटीविलसदमरवधूतनर्तन-
चलत्तुलाकोटीमधुररवपरिपाटीप्रचुरेण, सकलजनचित्तचलनावहमुरललनाजनकलनादगीतमनो-
हरेण, स्वयमेव विजृम्भितमन्देतरसुरदुन्दुभिस्तनितेन मुखरितदिगन्तरे विमानान्तरे ललिताङ्गदेवः
किञ्चिद्वलितं दृशं समन्तादानमदमरमुकुटतटघटितमणिघृणिकलितप्रकाशासु निखिलाशासु
व्यापारयन्नहो किमिदं, क्वायातः, कोऽहमित्यादि विस्मयविस्तारितचित्तस्तत्क्षणविलसितावधि-
विलोचनविलोकितपूर्वभवापरिचितस्वयंबुद्धादिवृत्तान्तः कल्पतरुपरिशोभमानं विमानमिदं, इमे
प्रणामतत्पराः सुराः, लास्यलीलाकरोऽयमप्सरःपरिवार इत्यादिक्रमेण सर्वमबुध्यत ।

श्रीवाभरणनीलोत्पलाभ्यां गलितं पतितं किन्तु नासाख्यस्य घ्राणाभिधानस्य चम्पकस्य चाम्पेयपुष्पस्य निरीक्ष-
णेनावलोकनेन नष्टा चेष्टा यस्य तथाभूतं भृङ्गयुग्मं भ्रमरयुगलं विरेजे बभौ किलेति प्रसिद्धिः । चाम्पेयस्य गन्धो
भ्रमरस्य नेष्ट इति संप्रदायः । रूपकोत्प्रेक्षा वसन्ततिलकाछन्दः ॥६५॥ § ९१) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं
कल्पद्रुमेभ्यः सुरतरुभ्यो वृष्टानि पतितानि यानि कुसुमकुलानि पुष्पप्रसरास्तेभ्यो गलिता निःसृता या माध्वोक-
धारा मधुररी तस्यां लोलन्तः सत्पृष्णीभवन्तो ये लोलम्बा भृङ्गास्तेषां निकुरम्बस्य समूहस्य यो झङ्कारो-
ऽव्यक्तध्वनिविशेषस्तेन निर्भरेण सातिशयं भूतेन, मन्दारवने पारिजातोपवने मन्दमन्दं शनैः शनैर्यथा स्यात्तथा
स्पन्दमानो वहमानो यः समीरकिशोरः पवनपोतो मन्दवायुरित्यर्थस्तेन चलिताभिः कम्पिताभिः स्तनशाटीभि-
र्वक्षोजशाटीभिर्विलसन्त्यः शोभमाना या अमरवधूटघः सुरयुवतयस्तासां नर्तनेन लास्येन चलन्त्यो यास्तुलाकोटयो
नूपुराणि तासां मधुररवस्य सुन्दरशब्दस्य परिपाट्या परम्परया प्रचुरेण व्याप्तेन, सकलजनस्य निखिललोकस्य
चित्तानि चेतांसि तेषां चलनावहं चपलतोत्पादकं यत् सुरललनाजनस्य देवीसमूहस्य कलनादगीतं मधुररवगानं
तेन मनोहरेण सुन्दरेण, स्वयमेव स्वत एव विजृम्भितं वृद्धिगतं यत् मन्देतरसुरदुन्दुभिस्तनितं विशालदेवानक-
शब्दस्तेन मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि काष्ठान्तराणि यस्मिन् तस्मिन् विमानान्तरे श्रीप्रभविमानमध्ये,
ललिताङ्गदेवो महाबलचरामरः किञ्चिद्वलितं मनां घृणितं दृशं दृष्टिं समन्तात् परित आनमतां प्रह्वीभवताम-
मरमुकुटानां निलिम्पमौलीनां तटेषु तीरेषु घटिताः खचिता ये मणयस्तेषां घृणिभिः किरणैः कलितः कृतः
प्रकाशो यासु तासु निखिलाशासु समस्तकाष्ठामु व्यापारयन् चलयन्, 'अहो किमिदं, वव कुवायातः, कोऽहम्'

मानो मन्द सुसकानके समूह रूपी कुन्दपुष्पकी अभिलाषासे कानोंके नीलोत्पल पर बैठा हुआ
भ्रमर युगल नीचेकी ओर आया परन्तु नासारूपी चम्पाका फूल देखनेसे उसकी चेष्टा बीचमें
ही नष्ट हो गयी ॥६५॥ § ९१) तदन्विति—तदनन्तरं कल्पवृक्षोंसे बरसे हुए फूलोंके समूहसे
पतित मकरन्दकी धारामें सत्पृष्ण भ्रमरोंकी झांकारसे भरे हुए, कल्पवृक्षोंके वनमें मन्दमन्द
चलती हुई मन्द वायुसे हिलते हुए स्तनवस्त्रोंसे सुशोभित देवांगनाओंके नृत्यके समय चंचल
नूपुरोंके मनोहर शब्दोंसे व्याप्त, और समस्त मनुष्योंके चित्तको चंचल करनेवाले देवांगनाओं-
के मधुर गीतोंसे मनोहर अपने आप बढ़ते हुए देवदुन्दुभियोंकी बहुत बड़ी गर्जनासे जिसके
दिगन्तराल शब्दायमान हो रहे थे ऐसे उस श्रीप्रभविमानके मध्यमें ललिताङ्गदेव कुछ मुड़ी
हुई अपनी दृष्टिको सब ओरसे नमस्कार करते हुए देवोंके मुकुटतटोंमें लगे रत्नोंकी किरणोंसे
प्रकाशित समस्त दिशाओंमें चलाता हुआ विचार करने लगा कि अहो यह क्या है ? मैं कहाँ
आ गया हूँ ? मैं कौन हूँ ? इस प्रकारके विस्मयसे उसका चित्त भर गया परन्तु उसी क्षण
उसे अवधिज्ञान रूपी नेत्रकी प्राप्ति हो गयी उससे उसने पूर्वभवके परिचित स्वयंबुद्ध आदिका
वृत्तान्त जान लिया । उसने क्रमक्रमसे सब समझ लिया कि यह कल्पवृक्षोंसे सुशोभित
विमान है, ये प्रणाम करनेमें तत्पर देव हैं, और यह नृत्यकी लीलाको करनेवाला

§ ९२) जयेश नन्देति गभीरवाचः सुरास्तदानीं नतमौलिमालाः ।

विज्ञापयामासुरिदं समेत्य प्रज्ञापयोधिं ललिताङ्गदेवम् ॥६६॥

§ ९३) आदौ मङ्गलमज्जनं विरचयन्पश्चाज्जिनेन्द्रार्चनां

भक्त्या कल्पय देव मोक्षपदवीप्रासादनिश्रेणिकाम् ।

५

श्रीमत्पुण्यबलार्जितं बलमिदं दृष्ट्या समालोकय

प्रेक्षस्वाथ मनोजननैककलां स्वर्लासिकोल्लासिताम् ॥६७॥

§ ९४) सौदामिनोसमानाङ्गीर्देवोस्तदनु लालय ।

पञ्चेषुपट्टकरणोः शृङ्गाररसघोरणीः ॥६८॥

§ ९५) इति तद्वचनात्सर्वं चकारामरवल्लभः ।

१०

निसर्गवस्त्राभरणो निष्टप्तकनकच्छविः ॥६९॥

- इत्यादिविस्मयेन विस्तारितं चित्तं यस्य तथाभूतः, तत्क्षणं तत्कालं विलसितेन अवधिविलोचनेनावधिज्ञाननेत्रेण विलोकितो दृष्टः पूर्वभवपरिचितानां स्वयंबुद्धादीनां वृत्तान्तो येन तथाभूतः सन्, कल्पतरुभिः कल्पवृक्षैः परिशोभमानम् इदं विमानम्, इमे प्रणामतत्परा नमस्काराभिमुक्ताः सुरा अमराः, अयमेष लास्यलीलाकरो नृत्य-क्रीडाकरः अप्सरःपरिवारः अप्सरसां समूहः, इत्यादिक्रमेण सर्वम् अबुध्यत ज्ञातवान् । § ९२) जयेशेति—
- १५ तदानीं तस्मिन् काले हे ईश जय सर्वोत्कर्षेण वर्तस्व, नन्द समृद्धिमान्भव, इति गभीरवाचः प्रगल्भभारतीकाः नता प्रह्ला माँलिमाला मुकुटसंततियेषां तथाभूताः सुरा देवाः समेत्यागत्य प्रज्ञापयोधिं प्रतिभाषायोधिं ललिताङ्गदेवम् इदं वक्ष्यमाणं विज्ञापयामासुनिवेदयामासुः । उपजातिछन्दः ॥६६॥ § ९३) आदाविति—हे देव ! आदौ सर्वतः प्राक् मङ्गलमज्जनं मङ्गलस्नानं विरचयन् कुर्वन् पश्चात्तदनु भक्त्यानुरागातिशयेन मोक्षपदवी मोक्षमार्गं एव प्रासादो भवनं तस्य निश्रेणिकां सोपानं जिनेन्द्रार्चनां जिनपूजां कल्पय कुरु, पुण्यबलेन सुकृत-
- २० महिम्नाजितं प्राप्तं श्रीमत् लक्ष्मीयुतम् इदं बलं देवसैन्यं दृष्ट्या समालोकय पश्य, अथ तदनन्तरं च स्वर्लासिकाभिस्त्रिदिवनर्तकीभिश्चल्लासितां कृतां मनोज्ञा चासौ नर्तनकला च तां ललितलास्यलीलां प्रेक्षस्वावलोकय ॥६७॥ § ९४) सौदामिनोति—तदनु तत्पश्चात् सौदामिन्या विद्युता समानमङ्गं यासां तास्तथाभूताः, पञ्चेषुपट्टकरणीर्मदनोत्तेजनकारिणीः, शृङ्गाररसघोरणीः शृङ्गाररसकृत्रिमनदीः, देवीः लालय प्रीणय ॥६८॥ § ९५) इतीति—इतीत्यं तद्वचनाद् देवकथनात् निसर्गवस्त्राभरणः स्वाभाविकाम्बरालंकारः, निष्टप्तं संतप्तं यत्कनकं स्वर्णं तस्य छविरिव छविर्यस्य सः, अमरवल्लभः सुरप्रियो ललिताङ्गः सर्वं बापीमज्जनजिनपूजनादिकं

- अप्सरारोंका परिवार है । § ९२) जयेशेति—उसी समय जो हे ईश ! जयवन्त होओ, समृद्धिमान् होओ इस प्रकारके गम्भीर वचन बोल रहे थे तथा जिनके मुकुटोंकी मालाएँ नम्रीभूत थीं ऐसे देवोंने आकर बुद्धिके सागर स्वरूप ललितांगदेवसे यह कहा ॥६६॥ § ९३) आदाविति—सबसे पहले मंगलस्नान कर पीछे मोक्षमार्ग रूपी भवनकी सीढ़ी
- ३० स्वरूप जिनपूजाको भक्तिपूर्वक करो, फिर पुण्यकी सामर्थ्यसे प्राप्त, लक्ष्मीसे युक्त इस देवोंकी सेनाको दृष्टिसे देखो और तदनन्तर स्वर्गकी नर्तकियोंके द्वारा की हुई सुन्दर नृत्यकलाका अवलोकन करो ॥६७॥ § ९४) सौदामिनोति—इसके पश्चात् बिजलीके समान देदीप्यमान शरीरसे युक्त, कामको उत्तेजित करनेवाली तथा शृंगाररसकी लहर स्वरूप देवियों को प्रसन्न करो—उनसे प्रेम करो ॥६८॥ § ९५) इतीति—इस प्रकार उन देवोंके कहनेसे
- ३५ स्वाभाविक वस्त्राभूषणोंसे सहित तथा अत्यन्त तप्त सुवर्णके समान कान्तिसे युक्त ललितांग-

§ ९६) ततश्चाणिमादिगुणमणिगणरोहणायमानः, समानः समासहस्रेण समासादित-
मानसाहारः, पक्षेणैकेन लक्षितसुगन्धबन्धुरनिश्वाससुरभितसविधप्रदेशः, शरत्काल इव विधृत-
विमलाम्बरः, महाकविवचनोल्लास इव सरसशोभाविभासितः, अङ्गदमनोज्ज्विलासोऽप्यनङ्ग-
मनोज्ज्विलासः, अयं ललिताङ्गदेवो देवीचतुःसहस्रपरिग्रहोऽनवरतोल्लासिताभिरपि नवरतोल्ला-
सिताभिः स्वयंप्रभा-कनकप्रभा-कनकलता-विद्युल्लता-नामधेयाभो रतिरूपसुभागधेयाभिर्विलास- ५
विजितरतिदेवोभिश्चतसृभिर्महादेवीभिर्विविधान्भोगाननुभुञ्जानः कालमनल्पमतिवाह्याचक्रे ।

सर्वं चकार कृतवान् ॥६९॥ § ९६) तत इति—ततश्च तदनन्तरं च, अणिमादिगुणा एव मणयस्तेषां गणस्य
समूहस्य रोहणायमानो रोहणगिरिवदाचरन् तथाभूतः, रोहणो नाम कश्चित्पर्वतः कविसंप्रदाये प्रसिद्धो यत्र
बाहुल्येन मणयो वर्तन्ते । मानेन सहितः समानः, समासहस्रेण वर्षसहस्रेण 'हायनोऽस्त्री शरत्समा' इत्यमरः,
समासादितः प्राप्तो मानसाहारो येन सः, एकेन पक्षेण पञ्चदशदिवसात्मकेन लक्षितः प्रकटितो यः सुगन्धबन्धुर- १०
निश्वासः सुगन्धितश्वासोच्छ्वासस्तेन सुरभितः सुगन्धितः सविधप्रदेशः समीपप्रदेशो येन सः, शरत्काल इव
जलदान्तकाल इव विधृतं विमलं निरभ्रत्वेन निर्मलमम्बरं गगनं येन सः पक्षे विधृतं विमलं स्वच्छमम्बरं वस्त्रं
येन सः, महाकविवचनोल्लास इव सरसा शृङ्गारादिरसैः सहिता या शोभा काव्यस्य विच्छित्तविशेषस्तथा
शोभितः पक्षे सरसा सानुरागा या शोभा सुषमा तथा विभासितः समलंकृतः, अङ्गं ददातीत्यङ्गदस्तथाभूतो
मनोज्ञो मनोहरो विलासो यस्य स एवंभूतोऽपि अङ्गं न ददातीत्यनङ्गदस्तथाभूतो मनोज्ञो विलासो यस्येति १५
विरोधः यस्य मनोज्ञविलासोऽङ्गदस्तस्य मनोज्ञविलासः कथमनङ्गदः स्यादिति भावः । परिहारपक्षे अङ्गदेन
केयूरेण मनोज्ञो विलासो लीला यस्य तथाभूतः सन्नपि अनङ्गदः कामप्रदो मनोज्ञो विलासो हावो यस्य सः
'विलासो हावलीलयोः' इति विश्वलोचनः, देवीनां चतुःसहस्राणि परिग्रहो यस्य सः चतुःसहस्रपरिमितदेवी-
सहितः, अयं ललिताङ्गदेवो महाबलजीवः, न नवरतेन नूतनसुरतेन उल्लासिताः प्रहर्षिता इति अनवरतोल्ला-
सितास्ताभिस्तथाभूताभिरपि नवरतेन नूतनसुरतेनोल्लासिताः प्रहर्षितास्ताभिरिति विरोधः । परिहारपक्षे अनवरतं २०
निरन्तरमुल्लासिताः प्रहर्षितास्ताभिः, स्वयंप्रभा कनकप्रभा कनकलता विद्युल्लतेति नामधेयं यासां ताभिः, रतेः

देवने यह सब किया ॥६९॥ § ९६) ततश्चेति—तदनन्तरं जो अणिमा आदि गुण रूपी
मणियोंके समूहके लिए रोहणगिरिके समान था, मानसे सहित था, एक हजार वर्षमें जो
मानसिक आहार प्राप्त करता था, एक पक्षमें प्रकट होनेवाली सुगन्धित श्वाससे जो समीपके
प्रदेशको सुगन्धित किया करता था, जो शरत्कालके समान विधृतविमलाम्बर—निर्मल आकाश- २५
को धारण करनेवाला (पक्षमें निर्मल वस्त्रोंको धारण करनेवाला) था, महाकवियोंकी वचन
रचनाके समान सरसशोभाविभासित—शृंगारादिरस सहित चमत्कारविशेषसे सुशोभित
(पक्षमें अनुरागसहित शोभासे सुशोभित) था, अंगदमनोज्ज्विलास—अंगको देनेवाले
मनोहर विलाससे सहित होकर भी अनंगदमनोज्ज्विलास—अंगको न देनेवाले मनोहर
विलाससे सहित था (परिहारपक्षमें बाजूबन्धोंसे मनोहर लीलाको धारण करनेवाला होकर ३०
भी अनंगद—कामको देनेवाले मनोज्ञ हावभावसे सहित था) और जो चार हजार देवियों-
के परिग्रहसे युक्त था ऐसा यह ललिताङ्गदेव; जो अनवरतोल्लासिता—नूतन रतसे प्रहर्षित
न होनेपर भी नवरतोल्लासिता—नूतनरससे प्रहर्षित थी (पक्षमें अनवरत—निरन्तर
प्रहर्षित होनेपर भी नवरत—नूतनरतसे प्रहर्षित) थी, रतिके समान जिनका रूप तथा भाग्य
था, और जिन्होंने अपने विलासोंसे रतिदेवीको जीत लिया था ऐसी स्वयंप्रभा, कनकप्रभा, ३५
कनकलता और विद्युल्लता नामकी चार महादेवियोंके साथ नाना प्रकारके भोग भोगता

१. नवरतोल्लासिताभिरप्यनवरतोल्लासिताभिः क० ।

§ ९७) तदायुर्जलधर्मध्ये तरला इव वीचयः ।

भूयो देवो व्यलीयन्त हतायुष्यतया तदा ॥७०॥

§ ९८) एवं पल्योपमपृथक्त्वावशिष्टे तस्यायुषि, मूर्तिमतीवामरसाम्राज्यलक्ष्मीः, संचरन्तीव कल्पलता, साकारेव शशिलेखा, स्थिरतामुपगतेव सौदामिनीलता, पुञ्जीभूतेव सकल-
५ सौन्दर्यलहरी, चित्रलेखेव संसारमहाभित्तेः, ललामवल्लिव त्रैलोक्यस्य, संकेतभूमिरिव लावण्यस्य, लास्यसदनमिव तारुण्यलक्ष्म्याः, उत्पत्तिस्थानमिव कान्तेः, आकर्षणमन्त्रसिद्धिरिव सकलनयनानां, महौषधसिद्धिरिव मदनमहेन्द्रजालिकस्य, निवासशालेव शृङ्गारस्य, नाट्यशालेव संगीतविद्यानां स्वयंप्रभानाम देवी समजायत । तस्याः किमिति वर्ण्यते सौन्दर्यगरिमा ।^१ तथाहि—

- कामकामिन्या इव रूपसुभागधेये सौन्दर्यभागे यासां ताभिः, विलासैर्हवैर्विजिता पराजिता रतिदेवो याभिस्ताभिः
१० चतसृभिर्महादेवीभिः प्रधानाङ्गनाभिः, विविधान् नानाविधान् भोगान् पञ्चेन्द्रियविषयान्, अनुभुञ्जानः सन् अनल्पं विपुलम् एकसागरप्रमितमित्यर्थः कालम् अतिवाह्यांवक्त्रे व्यपगमयामास । उपमाविरोधाभासयमकालं-काराः । § ९७) तदायुरिति—तदा तस्मिन् काले तस्यायुरेव जलधिः सागरस्तस्य मध्ये हृतं क्षिप्रं क्षिप्रं विनष्टमायुष्यं यासां तासां भावस्तया तरलाश्चञ्चला वीचयस्तरङ्गा इव भूयोदेव्यो बहुदेव्यः, व्यलीयन्त विलीना बभूवुः ॥७०॥ § ९८) एवमिति—एवमनेन प्रकारेण तस्य ललिताङ्गस्य, आयुषि पल्योपमानां पृथक्त्वं तेनाव-
१५ शिष्टे सति त्रिम्य उपरि नवम्यः प्राक् संख्या पृथक्त्वपदेनाख्यायते । स्वयंप्रभा नाम देवी अजायत समुदपद्मत । कथंभूता सा स्वयंप्रभा । इत्याह—मूर्तिमती शरीरधारिणी अमरसाम्राज्यलक्ष्मीरिव सुरसाम्राज्यश्रीरिव, संचरन्ती संचरणशीला कल्पलतेव, साकारा शशिलेखेव चन्द्रकलेव, स्थिरतामुपगता प्राप्ता सौदामिनीलतेव विद्युद्वल्लीव, पुञ्जीभूता राशीभूता सकलसौन्दर्यलहरी समग्रसौन्दर्यवीचिरिव, संसार एव महाभित्तिस्तस्या आजवंजवमहाकुड्यस्य चित्रलेखेव आलेख्यरेखेव, त्रैलोक्यस्य त्रिभुवनस्य ललामवल्लिव भूषणलतेव, लावण्यस्य
२० सौन्दर्यस्य संकेतभूमिरिव मेलनस्थानमिव, तारुण्यलक्ष्म्या यौवनश्रिया लास्यसदनमिव नृत्यभवनमिव, कान्तेर्दोषैः उत्पत्तिस्थानमिव, सकलनयनानां निखिलनेत्राणाम् आकर्षणमन्त्रसिद्धिरिव वशीकरणमन्त्र-सिद्धिरिव, मदन एव महेन्द्रजालिकस्तस्य काममहेन्द्रजालिकस्य महौषधसिद्धिरिव गुटिकासिद्धिरिव, शृङ्गारस्य निवासशालेव, संगीतविद्यानां नाट्यशालेव । तस्याः स्वयंप्रभायाः सौन्दर्यस्य गरिमा किञ्चित्

- हुआ बहुत भारी काल व्यतीत करने लगा । § ९७) तदायुरिति—उस समय उस ललितांग-
२५ देवकी आयुरुपों समुद्रके बीच आयु क्षीण हो जानेसे बहुत सी देवियाँ चंचल तरंगोंके समान उत्पन्न होकर विलीन हो गयीं ॥७०॥ § ९८) एवमिति—इस प्रकार उस ललितांगकी आयु जब पृथक्त्वपल्यप्रमाण (सात आठ पल्य प्रमाण) बाकी रह गयी तब उसकी स्वयंप्रभा नामकी देवी उत्पन्न हुई । वह स्वयंप्रभा क्या थी मानो शरीरधारिणी देवोंके साम्राज्यकी लक्ष्मी ही थी, चलती-फिरती कल्पलता थी, आकारसहित चन्द्रमाकी कला थी, स्थिरताको प्राप्त हुई
३० बिजलीरूपी लता थी, इकट्ठी हुई समस्त सौन्दर्यकी लहर थी, संसाररूपी लम्बी-चौड़ी दीवालकी चित्ररेखा थी, तीन लोकके आभूषणोंकी लता थी, लावण्यकी मिलनभूमि थी, यौवन-रूपी लक्ष्मीका नृत्यगृह थी, कान्तिका उत्पत्ति स्थान थी, समस्त नेत्रोंके आकर्षणमन्त्रकी सिद्धि थी, काम रूपी जादूगरकी महौषधकी सिद्धि थी, शृंगाररसकी निवासशाला थी और संगीतविद्याओंकी नाट्यशाला थी । उस स्वयंप्रभाके सौन्दर्यकी गरिमाका कुछ तो भी वर्णन

३५ १. क प्रती 'तथाहि' नास्ति ।

§ ९९) तस्या नेत्रं स्मितं चासीदुच्चकोरकसन्निभम् ।

अधरोच्चरणश्चापि प्रवालश्रीविशोभितः ॥७१॥

§ १००) अस्या ओष्ठतलं पयोधरयुगं चित्तं च नाकाधिप-

क्रीडोद्यानमिवाबभौ मृगदृशश्चञ्चत्सुरागोज्ज्वलम् ।

केशानां वलयं वचश्च सुमनोजातेन लाल्यं वयो

रूपं चेति तदङ्गवर्णनकला पारं गिरां गाहते ॥७२॥

वर्ण्यते । तथा हि § ९९) तस्या इति—तस्याः स्वयंप्रभाया नेत्रं नयनं स्मितं मन्दहास्यं च उच्चकोरकसन्निभम् आसीत् तत्र नेत्रपक्षे उत्कृष्टा ये चकोरकाश्चकोरपक्षिणस्तेषां सन्निभं सदृशं नेत्राणां चकोरोपमा दीयते कविभिः । चकोरा एव चकोरका इत्यत्र स्वार्थे कप्रत्ययः । स्मितपक्षे उच्चा उन्नता ये कोरकाः कुसुमकुड्मलास्तेषां सन्निभं सदृशम् । तस्याः स्वयंप्रभाया अधरो दशनच्छदः चरणश्चापि पादश्चापि प्रवालश्रीविशोभित आसीत् । तत्राधरपक्षे प्रवालः किसलयस्तस्येव श्रीः शोभा तथा विशोभितः समलंकृतः, चरणपक्षे प्रवालो विद्रुमः 'मूंगा' इति हिन्दीभाषायां तस्येव श्रीः शोभा तथा विशोभितः । श्लेषोपमा ॥७१॥ § १००) अस्या इति—अस्या मृगदृशः कुरङ्गलोचनायाः स्वयंप्रभायाः ओष्ठतलं पयोधरयुगं कुचयुगलं चित्तं हृदयं च नाकाधिपस्य पुरन्दरस्य क्रीडोद्यानमिव केल्युपवनमिव आबभौ । अथ तेषां सादृश्यमाह—सुरागोज्ज्वलम् अस्य चतुर्णां पक्षे व्याख्यानं तत्र ओष्ठतलस्य पक्षे सुष्ठु रागः सुरागः सुन्दरलौहित्यं तेनोज्ज्वलं देदीप्यमानम्, पयोधरयुगस्य पक्षे सुराणां देवानामगः पर्वतः सुमेरुरित्यर्थस्तद्वदुज्ज्वलम्, सुवर्णवर्णत्वेन कठिनत्वेन तुङ्गत्वेन वा सुमेरुसादृश्यम्, चित्तस्य पक्षे सुष्ठु रागः सुरागः सुप्रीतिस्तेनोज्ज्वलं शोभमानम्, नाकाधिपक्रीडोद्यानपक्षे सुराणां देवानामगा वृक्षाः कल्पवृक्षास्तैरुज्ज्वलं शोभितम् । केशानां कचानां वलयं समूहः वचो वचनं वयोऽवस्था रूपं च सौन्दर्यं च सुमनोजातेन लाल्यं प्रशस्तम् । अस्यापि चतुर्णां पक्षे व्याख्यानं तत्र केशानां वलयस्य पक्षे सुमनोजातेन सुमनसां पुष्पाणां जातेन समूहेन लाल्यं, वचसः पक्षे सुमनोजातेन विद्वत्समूहेन लाल्यं, वयसः पक्षे सुष्ठु मनोजातः सुमनोजातस्तेन सुकामेन लाल्यं, रूपस्य पक्षे सुमनोजातेन देवसमूहेन लाल्यं प्रशंसनीयम् आबभौ । इतीत्यं तदङ्गानां वर्णनकला तत्प्रतीकरूपणचातुरी गिरां वाचां पारमवसानं गाहते प्राप्नोति । तदङ्गवर्णनविधौ वाचः समाप्ता भवन्तीति भावः । श्लेषोपमालंकारः शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥७२॥

किया जाता है । § ९९) तस्या इति—उस स्वयंप्रभा देवीका नेत्र तथा मन्दहास्य उच्चकोरकसन्निभ था अर्थात् नेत्र उत्कृष्ट चकोर पक्षीके समान था और मन्दहास्य उत्कृष्टफूलोंकी बोंड़ियोंके समान था । इसी प्रकार अधरोष्ठ और चरणप्रवाल श्रीविशोभित था अर्थात् अधरोष्ठ प्रवाल—किसलयकी शोभासे सुशोभित था और चरणप्रवाल मूंगाकी शोभासे विभूषित था ॥७१॥ § १००) अस्या इति—इस मृगनयनी स्वयंप्रभाका ओष्ठतल, स्तनयुगल और चित्त इन्द्रके क्रीडोद्यानके समान सुशोभित हो रहा था क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रका क्रीडोद्यान चञ्चत्सुरागोज्ज्वल—शोभायमान कल्पवृक्षोंसे उज्ज्वल होता है उसी प्रकार इसका ओष्ठतल भी चञ्चत्सुरागोज्ज्वल—शोभायमान सुन्दर लालिमासे उज्ज्वल था । स्तनयुगल भी चञ्चत्सुरागोज्ज्वल—शोभायमान सुमेरुपर्वतके समान उज्ज्वल था, और चित्त भी चञ्चत्सुरागोज्ज्वल—शोभायमान सुन्दर प्रीतिसे उज्ज्वल था । इसका केशसमूह, वचन, अवस्था और सौन्दर्य सुमनोजातेन लाल्य था अर्थात् केशोंका समूह सुमनोजात—फूलोंके समूहसे सुशोभित था । वचन, सुमनोजात—विद्वानोंके समूहसे प्रशंसनीय था । अवस्था, सुमनोजात—सुन्दर कामदेवसे प्रशस्त थी, और सौन्दर्य, सुमनोजात—देव समूहके द्वारा प्रशंसनीय था । इस प्रकार उसके शरीरकी वर्णनकला वाणीके पारको प्राप्त थी—वाणीके द्वारा उसके शरीरकी सुन्दरताका वर्णन नहीं हो सकता था ॥७२॥

§ १०१) ततश्च निजमनोभृङ्गसंचरणोद्यानवाटिकया तथा वधूटिकया सह ललिताङ्गदेवो वशयेव वशावल्लभः, शचीदेव्येव पुरन्दरः, सुन्दरमन्दरोद्यानवीथिकासु कोकिलकुलकलरववाचालासु, युवतिष्विव सद्रूपशोभितासु, गणिकास्विव विटपालम्बिताम्बरासु, सुन्दरीजनवदनतटीष्विव सुपर्व-राजमनोहरासु, अन्येषु च नीलाचलखचराचलप्रभृतिवनोद्देशेषु चिरतरमरमत ।

५

§ १०२) स्वयंप्रभासङ्गमलाभसीख्यपयोनिधौ मज्जनमाचरन् सः ।

उदीतमात्मन्यनिमेषशब्दमन्वर्थतामेष निनाय देवः ॥७३॥

- § १०१) ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च निजमनोभृङ्गस्य स्वस्वान्तषट्पदस्य संचरणं भ्रमणं तस्योद्यानवा-टिकोपवनवीथिका तथाभूतया तथा पूर्वोक्तया वधूटिकया तरुण्या स्वयंप्रभदेव्या सह ललिताङ्गदेवो वशया करिण्या सह वशावल्लभः करीव 'करिणी धेनुका वशा' इत्यमरः । शचीदेव्या पुलोमजया 'पुलोमजा शचीन्द्राणी' इत्यमरः
- १० सह पुरन्दर इव इन्द्र इव, कोकिलकुलस्य पिकसमूहस्य कलरवेणाव्यक्तमधुरशब्देन वाचाला मुखरितास्तासु युवतिष्विव तरुणीष्विव सद्रूपशोभितासु सच्च तद्रूपं च सद्रूपं प्रशस्तसौन्दर्यं तेन शोभितास्तासु, पक्षे सन्तरश्च ते द्रवश्चेति सद्द्रवः प्रशस्तपादपास्तैः शोभिताः समलंकृतास्तासु, गणिकास्विव रूपाजीवास्विव विटपालम्बिताम्बरासु विटपैर्विटपुरुषैरालम्बितं संधृतमम्बरं वस्त्रं यासां तासु पक्षे विटपैः शाखाभिः पल्लवैर्वालम्बितं स्पृष्टमम्बरं याभिस्तासु, सुन्दरीजनवदनतटीष्विव ललनाजनलपनतटीष्विव सुपर्वराजमनोहरासु सुपर्वणः पूर्णमास्या
- १५ राजा चन्द्रः सुपर्वराजस्तद्वन्मनोहरासु रम्यासु पक्षे सुपर्वणां देवानां राजा सुपर्वराज इन्द्रस्तस्य मनोहरासु चित्ताकर्षिकासु सुन्दरमन्दरोद्यानानां सुभगसुमेरूपवनानां वीथिकास्तासु अन्येषु च नीलाचलखचराचली प्रभृती येषां तथाभूता ये वनोद्देशास्तेषु चिरतरं दीर्घकालपर्यन्तम् अरमताक्रीडत । § १०२) स्वयमिति—स एष देवो ललिताङ्गः स्वयंप्रभायाः संगमाल्लाभो यस्य तथाभूतं यत्सौख्यं तदेव पयोनिधिः सागरस्तस्मिन् मज्जनं समवगाहनम् आचरन् कुर्वन् आत्मनि स्वविषये उदीतं प्रकटितम् अनिमेषशब्दं अनिमेषो देवो मत्स्यश्च
- २० तच्छब्दम् अन्वर्थतां सार्थकतां निनाय यथानिमेषो मत्स्यः पयोनिधौ मज्जनं करोति तथायमपि ललिताङ्गो देवः स्वयंप्रभासंगमजनितसुखपयोनिधौ मज्जनं कुर्वन्ननिमेषशब्दं सार्थकं चकारेति भावः 'सुरे मत्स्येऽप्यनिमेषः सुरे

- § १०१) ततश्चेति—तदनन्तरं अपने मनरूपी भ्रमरके भ्रमणके लिए उपवनकी वीथीके समान उस प्रगाढ़युवति स्वयंप्रभाके साथ ललितांगदेव हस्तिनीके साथ हाथीके समान और इन्द्राणीके साथ इन्द्रके समान सुमेरुपर्वतके सुन्दर उपवनोंकी उन मनोहर गलियोंमें
- २५ जो कि कोयलोंके समूहके मनोहर शब्दोंसे मुखरित थीं, युवतियोंके समान सद्रूप-शोभिता—समीचीन रूपसे सुशोभित थीं । (पक्षमें उत्तम वृक्षोंसे सुशोभित थीं,) वेश्याओंके समान विटपालम्बिताम्बरा—विटपुरुषोंसे खींचे गये वस्त्रोंसे सहित थीं (पक्षमें शाखाओंसे आकाशको छूनेवाली थीं,) और सुन्दरी स्त्रियों की मुखतटीके समान—सुपर्वराजमनोहरा—पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर (पक्षमें इन्द्रके मनको हरनेवाली) थीं, तथा नीलगिरि एवं विजयार्धपर्वत आदिके वन प्रदेशोंमें चिरकाल तक्र क्रीडा करता रहा । § १०२) स्वयमिति—वह ललितांगदेव स्वयंप्रभाके संगमसे प्राप्त होनेवाले सुखरूपी सागरमें अवगाहन करता हुआ अपने आपके विषयमें प्राप्त अनिमेष शब्दको सार्थक कर रहा था । भावार्थ—अनिमेषका अर्थ देव और मत्स्य है जिस प्रकार मत्स्य समुद्रमें अवगाहन करता है उसी प्रकार ललितांग देव भी स्वयंप्रभाके संगमसे उत्पन्न सुखरूपी सागरमें अवगाहन करता था ॥ ७३ ॥

§ १०३) अर्हदासहृदालवालवलयाज्जातो बुधैः संनुतः

प्रोन्मीलत्स्तवकोल्लसन्नवरसैरानन्दमुद्वेलयन् ।

मान्यश्रीपुरुदेवचम्पुविदितः कल्पद्रुमोज्ज्वलपकं

नृणामाश्रयिणां फलं वितनुतामाचन्द्रतारावधि ॥७४॥

इति श्रीमर्हदासकृतौ पुरुदेवचम्पुप्रबन्धे प्रथमस्तवकः ।

५

मत्स्येऽनिमेषवत्' इति विश्वलोचनः । रूपकश्लेषौ । उपजातिच्छन्दः ॥७३॥ § १०३) अर्हदासेति—अर्हदासस्य हृदेव हृदयमेवालवालवलय आवापमण्डलं तस्मात् जातः समुत्पन्नः, बुधैर्विद्वद्भिः संनुतः संस्तुतः, प्रोन्मीलन्तो विकसन्तो ये स्तवका गुच्छका अध्यायाश्च तेषूल्लसन्तः शोभमाना ये नवरसाः शृङ्गारहास्यकरुणादि-नवरसाः पक्षे नूतनमकरन्दास्तैः, आनन्दं हर्षम्, उद्वेलयन् वर्धयन्, मान्यश्रीपुरुदेवचम्पुविदितः एतन्नामप्रसिद्धः, कल्पद्रुमः कल्पवृक्षः आश्रयिणामध्येतृणां विश्रामं कुर्वतां च नृणां पुंसाम् आचन्द्रतारावधि शशिनक्षत्रावस्थान-पर्यन्तं, अनल्पकं विपुलं फलं वितनुताद् विस्तारयतु । रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः । १०

इत्यर्हदासकृतेः पुरुदेवचम्पुप्रबन्धस्यवासन्ती समाख्यायां संस्कृत-

व्याख्यायां प्रथमः स्तवकः समाप्तः ।

§ १०३) अर्हदासेति—जो अर्हदास कविके हृदयरूपी क्यारीसे उत्पन्न हुआ है, विद्वानोंके द्वारा जिसकी अच्छी तरह स्तुति की जाती है तथा खिले हुए स्तवकों—पुष्पगुच्छोंसे सुशोभित नवीन रसोंसे (पक्षमें स्तवक नामक अध्यायोंमें सुशोभित शृंगारादि नवरसोंसे) जो आनन्दको बढ़ा रहा है, ऐसा यह पुरुदेवचम्पु नामसे प्रसिद्ध कल्पवृक्ष—आश्रय करने-वाले—इसका पठन पाठन करनेवाले मनुष्योंके लिए जब तक चन्द्रमा और नक्षत्र हैं तब तक बहुत भारी फल प्रदान करता रहे । १५

इस प्रकार श्रीमान् अर्हदास रचित पुरुदेवचम्पु प्रबन्धमें प्रथम स्तवक समाप्त हुआ ।

२०

द्वितीयः स्तवकः

५ § १) अथ कदाचिदस्य देवस्य भूषणमहितमसृणमणिगणेषु पूर्ववन्निशान्तदीपस्वरूपेषु, सहजविशालवक्षःस्थलसंगतमालायां विद्युतीव पूर्ववृत्तान्तायां, विशङ्कटवदनतटे पूर्ववत्प्रभाताब्ज-संकाशे, तत्कल्पवास्तव्यतत्परिचारकत्रिदशेषु पूर्ववद्दिनविजृम्भितखद्योतसदृशेषु तद्वियोगवातधूत इव कम्पमाने तदावाससंबन्धिकल्पपादपे, जन्मप्रभृत्यनुभूतसमस्तसुखेष्वपि पिण्डीभूय दुःखात्मता-मुपगतेष्विव दुःसहेषु, समागततत्सामानिकदेवसान्त्ववचनसमासादितधैर्यप्रकाशनसूर्यः सोऽयं ललिताङ्गसुरवर्यः सकलभुवनविलसितजिनभवनानि मासार्धेन संपूज्य, अच्युतकल्पावलम्बितरवि-

१० § १) अथेति—अथानन्तरं कदाचित् जातुचित् अस्य देवस्य ललिताङ्गाभिधानस्य भूषणेष्वभरणेषु महिताः शोभिता मसृणाः स्निग्धाश्चाकचक्येन समुपेता इत्यर्थः ये मणयो रत्नानि तेषां गणेषु समूहेषु पूर्ववत् तद्विमानोद्भूतान्यदेवसंबन्धिपुरावृत्तान्तवत् निशान्तदीप इव प्रभातदीप इव स्वरूपं येषां तथाभूतेषु निष्प्रभेषु सत्सु, सहजविशालं निसर्गविस्तृतं यद् वक्षःस्थलमुरःस्थलं तत्र संगता या माला तस्यां विद्युतीव तडितीव पूर्वं वृत्तान्तो यस्यास्तथाभूतायां निष्प्रभायां सत्याम्, विशङ्कटवदनतटे विशालास्यतटे पूर्ववत् प्रभाताब्जः प्रातश्चन्द्र-स्तस्य संकाशे सदृशे 'अब्जे धन्वन्तरौ चन्द्रे निचुले क्लोबमम्बुजे' इति विश्वलोचनः तत्कल्पवास्तव्यास्तत्स्वर्ग-निवासिनो ये तत्परिचारकत्रिदशास्तत्सेवकसुरास्तेषु पूर्ववत् दिने दिवसे विजृम्भिता वृद्धिगता ये खद्योता ज्योतिरिङ्गणास्तेषां सदृशेषु समानेषु प्रभारहितेषु सत्सु, तदावाससंबन्धो तत्स्वर्गसंबन्धो यः कल्पपादपस्त-स्मिन् तद्वियोगो ललिताङ्गमरविरह एव वातो वायुस्तेन धूत इव कम्पित इव कम्पमाने सति, जन्मप्रभृति १५ जनुरारभ्य अनुभूतानि भुक्तानि यानि समस्तसुखानि निखिलसातानि तेष्वपि पिण्डीभूय राशीभूय दुःखात्मतां दुःखस्वरूपतामुपगतेष्विव प्राप्तेष्विव दुःसहेषु दुःखेन सोढुं शक्येषु सत्सु, समागताः समायाता ये तस्य सामानिक-देवा मातृपितृस्थानीया देवविशेषास्तेषां सान्त्ववचनेन शान्तिकरोपदेशेन समासादितः प्रातो धैर्यमेव प्रकाशनसूर्यो यस्य तथाभूतः सोऽयं ललिताङ्गसुरवर्य एतन्नामनिलिम्पश्रेष्ठः, सकलभुवनेषु निखिललोकेषु विलसितानि

२० § १) अथेति—तदनन्तर किसी समय इस देवके आभूषणोंमें सुशोभित चमकीले मणियोंके समूह जब पूर्वमें उत्पन्न हुए अन्य देवोंके समान प्रातःकालके दीपकोंके समान निष्प्रभ पड़ गये, इसके स्वभावसे ही विशाल वक्षःस्थल पर पड़ी हुई माला जब बिजलीकी तरह बिलीन हो गयी, इसका विशालमुख तट जब पहलेकी तरह प्रातःकालके चन्द्रमाके समान हो गया, उस स्वर्गमें रहनेवाले जब उसके सेवकदेव पहलेके समान दिनमें प्रकट हुए पटबीजनाओंके समान कान्तिहीन हो गये, उस स्वर्गका कल्पवृक्ष जब उस देवके वियोग २५ रूपी पवनसे कम्पित होकर ही मानो काँपने लगा था, और जन्मसे लेकर जितने सुखोंका अनुभव किया था वे सभी सुख जब एकत्रित होकर दुःखस्वरूपताको प्राप्त हुऐके समान असह्य हो गये तब आये हुए उसके सामानिक जातिके देवोंके सान्त्वनामय वचनोंसे जिसे धैर्यरूपी प्रकाशमान सूर्य प्राप्त हुआ था ऐसा यह ललितांग नामका श्रेष्ठ देव एकपक्षमें समस्तलोकमें

१. समासाधित क० ।

बिम्बनिकाशजिनबिम्बानि पूजयन्संनिहितायुरन्तःसमाहितस्वान्तः, किरीटतटविन्यस्तकरकुड्मलः, नमस्कारपदान्युच्चैरनुध्यायन्, शारदसमयसमुदितनीरद इवादृश्यतामाससाद ।

§ २) जम्बूद्वीपे सुरशिखरिणः पूर्वदिक्स्थे विदेहे

रम्या भूमिर्विलसतितरां पुष्कलावत्यभिख्या ।

चित्रा तत्र त्रिदिवसदृशी सौधराजत्पताका-

वातानोतामरतरुसुमामोदिनी राजधानी ॥१॥

§ ३) एतामुत्पलखेटनामनगरीं तामावसद्भूपतिः

प्रख्यातो भुवि वज्रबाहुरिति यो वज्रीव सद्बैभवः ।

कान्ता तस्य वसुन्धरा शशिमुखी देवः स नाकाच्युतः

पुत्रस्तत्र तयोरभूत्प्रकटयन्स्वां वज्रजङ्घाभिधाम् ॥२॥

शोभितानि यानि जिनभवनानि जिनमन्दिराणि तानि मासाधेन पक्षेण संपूज्य समर्च्य, अच्युतकल्पावलम्बितानि षोडशस्वर्गस्थितानि रविबिम्बनिकाशानि सूर्यबिम्बसदृशानि यानि जिनबिम्बानि तानि पूजयन् समर्चयन् संनिहितं निकटस्थितमायुर्यस्य तथाभूतः, अन्तःसमाहितमन्तःस्थापितं स्वान्तं चेतो येन तथाभूतः, किरीटतटे मौलितटे विन्यस्तं स्थापितं करकुड्मलं पाणिकोरकं येन सः, नमस्कारपदानि णमो अरहंताणं—इत्यादि मन्त्रपदानि, उच्चैरुत्कृष्टतया अनुध्यायन् चिन्तयन् शारदसमये समुदितः समुद्भूतो यो नीरदो मेघस्तद्वत् अदृश्यतामन्तर्हिता-
वस्थाम् आससाद प्राप मृत इत्यर्थः । § २) जम्बूद्वीप इति—जम्बूद्वीपे प्रथमद्वीपे सुरशिखरिणः सुमेरुपर्वतस्य पूर्वस्यां दिशि तिष्ठतीति पूर्वदिक्स्थे तस्मिन् विदेहे विदेहक्षेत्रे पुष्कलावती अभिख्या यस्यास्तथाभूता पुष्कला-
वतीनामधेया रम्या मनोहारिणी भूमिर्देशो विलसतितराम् अतिशयेन शोभते । तत्र पुष्कलावतीदेशे चित्रा विस्मयकरी त्रिदिवसदृशी स्वर्गतुल्या सौधेषु भवनेषु राजन्त्यः शोभमाना याः पताका वैजयन्त्यस्तासां वातेन पवनेन आनीतः प्रापितोऽमरतरुसुमानां कल्पवृक्षकुसुमानां य आमोदः सुगन्धिः स विद्यते यस्यां तथाभूता
राजधानी राजवसतिः, अस्तीति शेषः । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥१॥ § ३) एतामिति—एतां तां प्रसिद्धाम्, उत्पलखेटनामनगरीं स भूपतिर्नृपतिः आवसत् न्यवात्सीत् यो भुवि पृथिव्यां वज्रबाहुरिति प्रख्यातः प्रसिद्धः,
यद्वं वज्रीव इन्द्र इव सद्बैभवः समीचीनवैभवसहित आसीत् । तस्य वज्रबाहोः शशिमुखी चन्द्रवदना वसुन्धरा नाम कान्ता प्रणयिनी अभूत् । तत्रोत्पलखेटनगरीम्, स ललिताङ्गो देवः नाकात् न विद्यतेऽकं दुःखं यस्मिन् स नाकस्तस्मात् स्वर्गात् च्युतः सन् तयोर्वज्रबाहुवसुन्धरयोः स्वां स्वकीयां वज्रजङ्घाभिधां वज्रजङ्घेति

सुशोभित जिनमन्दिरोंकी पूजा कर अच्युतस्वर्गमें स्थित सूर्यबिम्बके समान जिन प्रतिमाओं-
की अर्चा करता हुआ स्थित था । जब आयु अत्यन्त निकट रह गयी तब उसने अपना हृदय
अन्तरंगमें स्थापित किया अर्थात् मनके अन्य विकल्प समाप्त किये, हाथ जोड़कर मुकुटतटसे
लगाये । अन्तमें पंचनमस्कार मन्त्रके पदोंका उत्कृष्ट रूपसे ध्यान करता हुआ वह शरद्ऋतुके
मेघके समान अदृश्यताको प्राप्त हो गया । § २) जम्बूद्वीप इति—जम्बूद्वीपमें सुमेरुपर्वतकी
पूर्वदिशामें स्थित विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती नामकी भूमि अतिशय रूपसे सुशोभित है । उसमें
आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली, स्वर्गके तुल्य उत्पलखेट नामकी राजधानी है । यह राजधानी
भवनों पर फहराती हुई पताकाओंकी वायुसे लायी हुई कल्पवृक्षोंके फूलोंकी सुगन्धिसे सदा
महकती रहती है ॥१॥ § ३) एतामिति—इस उत्पलखेट नामकी नगरीमें वह राजा रहता
था जो पृथिवी पर वज्रबाहु इस नामसे प्रसिद्ध था तथा इन्द्रके समान समीचीन वैभवसे
युक्त था । वज्रबाहुकी वसुन्धरा नामकी चन्द्रमुखी स्त्री थी । वह ललितांगदेव स्वर्गसे च्युत
होकर उस उत्पलखेट नगरीमें राजा वज्रबाहु और रानी वसुन्धराके अपना वज्रजंघ नाम

§ ४) स्वजनकुमुदानन्दी संशोलयन्विधाः कलाः

सकलविमतान्पद्यान्संकोचयंश्च समन्ततः ।

स किल ववृधे श्रीमान्बालेन्दुरुज्ज्वलमण्डलः

कुसुमसुकुमाराङ्गः कुन्दोज्ज्वलस्मितचन्द्रिकः ॥३॥

५ § ५) तदनु राकाशशीव शरच्चन्द्रिकया तारुण्यलक्ष्म्या भासुरशरीरो वज्रजङ्घकुमारः सुधावदाताभिरपि निजगुणश्लाघाभिः समस्तजनान् रक्तानातन्वन्, पूर्वभवपरिशीलितस्वयं-प्रभानुरागेण लोलाक्षीषु निःस्पृहतामुपगतोऽपि सरस्वतीकीर्तिलक्ष्मीभिः सततं चिक्रीड ।

§ ६) ततः स्वयंप्रभादेवी च ललिताङ्गदेववियोगेन प्रियविप्रयुक्ता चक्राह्णोव बहुदीनदशा-

- १० नामधेयं प्रकटयन् पुत्रोऽभूत् । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥२॥ § ४) स्वजनेति—स्वजनाः कुटुम्बिजना एव कुमुदानि कैरवाणि तान्यानन्दयति विकासयतीत्येवंशोलः, विविधा अनेकाः कलाश्चातुरीः षोडशभागाश्च संशोलयन् लभमानः, सकलविमतान् निखिलशत्रून् पद्मान् कमलानि 'वा पुंसि पद्मं नलिनम्' इत्यमरोक्तेः पद्म-शब्दस्य पुंस्यपि प्रयोगः सिद्धः, समन्ततः परितः संकोचयन् निमीलयन्, श्रीमान् लक्ष्मीयुतः पक्षे शोभासहितश्च, उज्ज्वलं देदीप्यमानं मण्डलं देशो यस्य सः पक्षे उज्ज्वलं मण्डलं बिम्बं यस्य सः 'बिम्बेषु त्रिषु मण्डलम् । मण्डलं निरुरम्बेऽपि देशे द्वादशराजके' इति विश्वलोचनः, कुसुममिव सुकुमारं मृदुलमङ्गं शरीरं यस्य सः, १५ कुन्दं माध्यकुसुममिवोज्ज्वलं सितं यत् स्मितं मन्दहसितं तदेव चन्द्रिका ज्योत्स्ना यस्य तथाभूतः स बाल एवेन्दुर्बालेन्दुः वज्रजङ्घचन्द्रः ववृधे वृद्धिं जगाम किलेति वाक्यालंकारे । रूपकालंकारो हरिणीछन्दः ॥३॥ § ५) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं शरच्चन्द्रिकया जलदान्तकालज्योत्स्नया राकाशशीव पौर्णमासीन्दुरिव तारुण्यलक्ष्म्या यौवनश्रिया भासुरं शरीरं यस्य तथाभूतो देदीप्यमानदेहः, वज्रजङ्घकुमारः, सुधावत् चूर्णकवत् अवदाताभिर्धवलाभिरपि पक्षे निर्मलाभिः निजगुणश्लाघाभिः स्वकीयगुणप्रशंसाभिः समस्तजनान् निखिलनरान् २० रक्तान् लोहितवर्णान् आतन्वन् कुर्वन् शुक्लवर्णाभिर्गुणश्लाघाभिः समस्तजनानां रक्तीकरणं विरुद्धमनः परिहारपक्षे रक्तान् अनुरागयुक्तान् कुर्वन्ति योज्यम्, पूर्वभवे ललिताङ्गनिलम्पपर्याये परिशीलितः समनुभूतो यः स्वयंप्रभाया अनुरागस्तेन लोलाक्षीषु ललतासु निःस्पृहतामुदासीनतामुपगतोऽपि प्राप्तोऽपि सरस्वती च कीर्तिश्च लक्ष्मीश्चेति सरस्वतीकीर्तिलक्ष्म्यस्ताभिः शारदासमज्ञापद्याभिः सततं निरन्तरं चिक्रीड क्रीडति स्म । § ६) तत इति—ततो ललिताङ्गस्य नाकाच्चयवनानन्तरं स्वयंप्रभादेवी च ललिताङ्गदेवस्य वियोगो विप्रलम्भस्तेन प्रियविप्रयुक्ता

- २५ प्रकट करता हुआ पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२॥ § ४) स्वजनेति—जो कुटुम्बीजनरूपी कुमुदोंको विकसित कर रहा था, नाना प्रकारकी कलाओं—चतुराईयों (पक्षमें षोडशभागों) को प्राप्त कर रहा था, समस्त शत्रुरूपी कमलोंको सब ओरसे संकुचित कर रहा था, श्रीमान्—लक्ष्मीमान् (पक्षमें शोभासे सहित) था, देदीप्यमानमण्डल—देश (पक्षमें बिम्ब) से सहित था, फूल-के समान सुकोमल शरीरका धारक था तथा कुन्दके समान उज्ज्वल मुसक्यानरूपी चाँदनीसे ३० सहित था ऐसा वह बालकरूपी चन्द्रमा वृद्धिको प्राप्त हो रहा था ॥३॥ § ५) तदन्विति—तदनन्तर शरद् ऋतुकी चाँदनीसे पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान यौवनकी लक्ष्मीसे जिसका शरीर अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ऐसा वज्रजङ्घकुमार, चूनाके समान उज्ज्वल—सफेद (पक्षमें निर्मल) स्वकीय गुणोंकी प्रशंसासे सब लोगोंको रक्त—लालवर्ण (पक्षमें अनुरागसे युक्त) करता हुआ, पूर्वभवमें अनुभूत स्वयंप्रभाके अनुरागके कारण यद्यपि अन्य स्त्रियोंमें ३५ उदासीनताको प्राप्त था तो भी सरस्वती कीर्ति और लक्ष्मीके साथ निरन्तर क्रीड़ा करता रहता था । § ६) तत इति—तदनन्तर स्वयंप्रभादेवी भी ललिताङ्गदेवके वियोगसे पतिविरहित चकवीके समान अत्यन्त दीन दशाको प्राप्त हो गयी । वर्षाकालमें जिसने अधुर

मापन्ना, जलदकालसमुज्झितकलालापा कोकिलेव विविधसंतापसंतप्तस्वान्ता, तत्कालोचित-
सान्त्ववचनोद्यतेनान्तःपरिषद्गतेन दृढवर्मदेवेन प्रचोदितसन्मार्गान् षण्मासाब्जिनपूजां विधाय
सौमनसोद्यानशोभितचैत्यतरुमूले गुरुपञ्चकं मनसा ध्यायन्ती सहसा निशापगमे तारकेवादृश्य-
तामाटिटीके ।

§ ७) पूर्वोक्ते प्राग्विदेहेऽस्ति पुरी सा पुण्डरीकिणी ।

यत्र सौधास्तरुण्यश्च वियन्मध्यविराजिताः ॥४॥

§ ८) वज्रदन्त इति विश्रुतो नृपस्तां शशास तुलितामराधिपः ।

यो जिगाय परलोकमद्भुतं मार्गणानविजहद्गुणैः परम् ॥५॥

वस्त्रभविरहिता चक्राह्वीव रथाङ्गीव बहुदीनदशामतिदीनावस्थाम् आपन्ना प्राप्ता, जलदकाले वर्षाकाले
समुज्झितस्त्यक्तः कलालापो मधुरालापो यया तथाभूता कोकिलेव पिकीव विविधसंतापेन नानादुःखानलेन १०
संतप्तं स्वान्तं चित्तं यस्यास्तथाभूता, तत्कालोचितेषु तदवसराहंषु सान्त्ववचनेषु समाश्वासनोपदेशेषु उद्यत-
स्तत्परस्तेन, अन्तःपरिषद्गतेन अन्तरङ्गसमितिसदस्येन दृढवर्मदेवेन प्रचोदितः प्ररूपितः सन्मार्गो येषु तान्
षण्मासान् 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति द्वितीया, जिनपूजां जिनेन्द्रार्चां विधाय कृत्वा सौमनसोद्याने मेरुस्थित-
सौमनसवने शोभितो यश्चैत्यतरुश्चैत्यवृक्षस्तस्य मूले तले गुरुपञ्चकं पञ्चपरमेष्ठिनो मनसा हृदयेन ध्यायन्ती
चिन्तयन्ती सहसा निशापगमे रजन्यवसाने प्रातःकाल इत्यर्थः, तारकेव अदृश्यताम् आटिटीके प्राप 'टीकृ गतो' १५
इत्यस्य लिटि रूपम् । § ७) पूर्वोक्त इति—पूर्वोक्ते प्रागुदिते प्राग्विदेहे पूर्वविदेहक्षेत्रे पुण्डरीकिणीनामधेया सा
पुरी अस्ति यत्र सुधया चूर्णकेन निर्वृताः सौधाः प्रासादाः तरुण्यश्च युवतयश्च वियन्मध्यविराजिताः सौधपक्षे
वियतो गगनस्य मध्ये विराजिताः शोभिता उत्तुङ्गत्वादिति भावः, युवतिपक्षे वियदिव गगनमिव शून्यं
कृशतरं मध्यं कटिस्तेन विराजिताः शोभिताः । श्लेषोपमा ॥४॥ § ८) वज्रदन्त इति—वज्रदन्त इति २०
विश्रुतः प्रसिद्धः, तुलित उपमितोऽमराधिपः पुरंदरो येन तथाभूतः शक्रसदृशः स नृपः तां पुण्डरीकिणीपुरीं
शशास यो गुणैः प्रत्यञ्चाभिः मार्गणान् बाणान् अविजहद् अत्यजन् परलोकं शत्रुसमूहं जिगाय जितवान् इति
परमत्यन्तमद्भुतमाश्चर्यकरम् प्रभावेणैवानेन शत्रवः पराजिता इति भावः पक्षे गुणैः सम्यग्दर्शनादिभिः मार्गणान्
गतीन्द्रियादिवतुर्दशमार्गणान्, अत्यजन् तेषां श्रद्धां कुर्वन्त्यर्थः परलोकं नरकादिगतिं जिगाय । विरोधाभासा-

बोली छोड़ दी है ऐसी कोयलके समान उसका चित्त नाना प्रकारके सन्तापसे सन्तप्त रहने
लगा । उसकी अन्तःपरिषद्का सदस्य एक दृढवर्म नामका देव था वह उसे उस अवसरके २५
योग्य सान्त्वना वचन कहता रहता था । उस दृढवर्म देवके द्वारा जिनमें समीचीन
मार्गका उपदेश दिया जाता रहा ऐसे छह माह तक लगातार स्वयंप्रभा जिनेन्द्रभगवान्की
पूजा करती रही । अन्तमें सौमनसवनमें सुशोभित चैत्यवृक्षके नीचे हृदयसे पंचपरमेष्ठियोंका
ध्यान करती हुई वह स्वयंप्रभा प्रातःकालके समय तारकाके समान सहसा अदृश्यताको
प्राप्त हो गयी । § ७) पूर्वोक्त इति—पहले कहे हुए पूर्वविदेह क्षेत्रमें पुण्डरीकिणी नामकी ३०
वह नगरी है जिसमें भवन और तरुण स्त्रियाँ वियन्मध्यविराजित हैं—भवन तो आकाशके
मध्य तक सुशोभित हैं और तरुण स्त्रियाँ आकाशके समान अत्यन्त कृश कमरसे सुशोभित
हैं ॥४॥ § ८) वज्रदन्त इति—वज्रदन्त इस नामसे प्रसिद्ध तथा इन्द्रकी तुलना करनेवाला
वह राजा उस पुण्डरीकिणी नगरका पालन करता था जो डोरीसे बाणोंको छोड़े बिना ही
शत्रुओंके समूहको जीत लेता था यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात थी (पक्षमें जो सम्यग्दर्शनादि ३५
गुणोंसे गति आदि मार्गणाओंको छोड़े बिना अर्थात् उनकी श्रद्धा रखता हुआ नरकादि-

§ ९) लक्ष्मीरिवापरा तस्य लक्ष्मीमतिरभूत्प्रिया ।

कचस्फूर्तिश्च मूर्तिश्च यस्याः सज्जघनोज्ज्वला ॥६॥

§ १०) एषा किल सुरयोषा श्रीमती नाम्ना तयोः पुत्री संजाता, क्रमेण मञ्जुलतारुण्य-
मञ्जरीसुरभिततनुलता, संचारिणीव मदनराज्यस्य लक्ष्मीः, प्रत्यादेश इव रतिदेव्याः, प्रतिकृति-
रिव लक्ष्म्याः, प्रतिबिम्बमिव सरस्वत्याः, कलशप्रतिष्ठेव विधातृसृष्टेः, तरङ्गपरम्परेव शृङ्गार-
सागरस्य, पुनरुक्तिरिव सौभाग्यस्य, अधिदेवतेव कान्तिकल्लोलस्य, मीनकेतनमहीकमनभद्र-
पीठेनेव, मणिभूषणकान्तिनिम्नगारुचिरसैकतमण्डलेनेव, यौवनमदहस्तिमस्तकेनेव, पृथुलजघन-
वलयेन विलसिता, नाभितलालवालसमुद्गतरोमराजिलताफलाभ्यामिव, हृदयतटतटाककमल-

- लंकारः । रथोद्धताच्छन्दः ॥५॥ § ९) लक्ष्मीरिति—तस्य वज्रदन्तस्य अपरा लक्ष्मीरिव लक्ष्मीमतिः प्रिया
१० वल्लभा अभूत् । यस्या लक्ष्मीमत्याः कचानां केशानां स्फूर्तिः शोभा कचस्फूर्तिः मूर्तिश्च तनुश्च सज्जघनोज्ज्वला
वभूवेति शेषः । कचस्फूर्तिपक्षे सज्जाः सजला ये घना मेघास्तद्वदुज्ज्वला शोभमाना इयामवर्णंति भावः, मूर्तिपक्षे
सत् प्रशस्तं यत् जघनं नितम्बं तेनोज्ज्वला शोभमाना । श्लेषः ॥६॥ § १०) एषेति—एषा किल सुरयोषा
स्वयंप्रभा देवी तयोर्वज्रदन्तलक्ष्मीमत्याः नाम्ना नामधेयेन श्रीमती पुत्री संजाता समुद्भूता सती क्रमेण मञ्जुलं
मनोहरं यत्तारुण्यं यौवनं तदेव मञ्जरी पुष्पश्रेणिस्तया सुरभिता सुगन्धिता तनुलता शरीरवल्ली यस्याः सा,
१५ मदनराज्यस्य कामसाम्राज्यस्य संचारिणी संचरणशोला लक्ष्मीरिव, रतिदेव्याः कामकामिन्याः प्रत्यादेश इव
प्रतिनिधिरिव, लक्ष्म्याः श्रियाः प्रतिकृतिरिव प्रतिबिम्बमिव, सरस्वत्याः शारदायाः प्रतिबिम्बमिव प्रतियातनेव
'प्रतिमानं प्रतिबिम्बं प्रतिमा प्रतियातना प्रतिच्छाया । प्रतिकृतिरर्चा पुंसि प्रतिनिधिरूपमोपमानं स्यात् ॥'
इत्यमरः । विधातृसृष्टेः ब्रह्मसृष्टेः कलशप्रतिष्ठेव कलशारोपणमिव, शृङ्गारसागरस्य शृङ्गारसिन्धोः तरङ्गपरम्परेव
कल्लोलमालेव, सुभगाया भावः सौभाग्यं तस्य पतिप्रेम्णः पुनरुक्तिरिव द्विरुक्तिरिव, कान्तिकल्लोलस्य दीप्तिलह्याः
२० अधिदेवतेव अधिष्ठात्री देवीव, मीनकेतनो मदनः स एव महीकमनो भूपतिस्तस्य भद्रपीठेनेव प्रशस्तसिंहासनेनेव,
मणिभूषणानां रत्नाभरणानां कान्तिरेव निम्नगा नदी तस्या रुचिरं मनोहरं यत्सैकतमण्डलं पुलिनचक्रवालं तेनेव,
यौवनमेव मदहस्ती मत्तमातङ्गस्तस्य मस्तकेनेव कुम्भेनेव, पृथुलं पोवरं यज्जघनवलयं नितम्बमण्डलं तेन
विलसिता शोभिता, नाभितलमेवालवालमावापस्तस्मात्समुद्गता समुत्पन्ना या रोमराजिः सैव लता वल्ली

- गतियोंको जीतता था ॥५॥ § ९) लक्ष्मीरिति—उस राजा वज्रदन्तकी दूसरी लक्ष्मीके समान
२५ लक्ष्मीमति नामकी वह प्रिया थी जिसकी केशोंकी शोभा तथा मूर्ति (शरीर) सज्जघनोज्ज्वला
थी । अर्थात् केशोंकी शोभा सज्जघन-उज्ज्वला—सजल मेघोंके समान सुशोभित थी और
मूर्ति सत्-जघन-उज्ज्वला-उत्तम नितम्बसे सुशोभित थी ॥६॥ § १०) एषेति—यह स्वयंप्रभा
देवी उन वज्रदन्त और लक्ष्मीमतिकी श्रीमती नामसे प्रसिद्ध पुत्री हुई । क्रम-क्रमसे जब
इसकी शरीररूपी लता मनोहर यौवनरूपी पुष्पमंजरीसे सुगन्धित हो गयी तब वह ऐसी
३० जान पड़ने लगी मानो कामदेवके राज्यकी चलती-फिरती लक्ष्मी ही हो, रतिदेवीकी मानो
प्रतिनिधि ही हो, लक्ष्मीकी मानो प्रतिकृति ही हो, सरस्वतीका मानो प्रतिबिम्ब ही हो,
विधाताकी सृष्टिकी मानो कलशप्रतिष्ठा ही हो, शृंगाररूपी सागरकी मानो लहरोंकी सन्तति
ही हो, सौभाग्यकी मानो पुनरुक्ति ही हो, और कान्तिरूपी तरंगकी मानो अधिष्ठात्री देवी ही
हो । वह जिस स्थूल नितम्बमण्डलसे सुशोभित थी वह कामदेवरूपी राजाके सुन्दर
३५ सिंहासनके समान जान पड़ता था, मणिमय आभूषणोंकी कान्तिरूपी नदीके सुन्दर पुलिनके
समान प्रतिभासित होता था अथवा यौवनरूपी मदोन्मत्त हाथीके मस्तकके समान मालूम
पड़ता था । वह जिन स्तनोंसे सुशोभित थी वे नाभितलरूपी क्यारीसे उत्पन्न रोमराजिरूपी

मुकुलामिव, चूचुकमुद्रामुद्रिताभ्यामिव शृङ्गाररसपूर्णशातकुम्भकुम्भाभ्यामिव वक्षोरुहाभ्यां विराजमाना, शुभतरलाक्षेण अब्जमदनिर्मूलननिदानेन पदेन वदनेन च विराजमाना, भ्रमराजितेन कचनिचयेन नाभिपुटेन च लसमाना, जलदकाललक्ष्मीरिवोल्लसद्धारपयोधरा सज्जघनाभिरामा च, निद्रैव सकललोचनग्राहिणी चकासामास ।

§ ११) कदाचित्सीधाग्रे मृदुलतमहंसांसमृदुले

५

विराजत्पर्यङ्के विविधमणिकान्त्या कवचिते ।

तस्याः फलाभ्यामिव, हृदयतटमेव तटाकः सरोवरस्तस्य कमलमुकुलाभ्यामिव पद्मकोरकाभ्यामिव चूचुकमुद्रया स्तनाभ्यमुद्रया मुद्रिताभ्यां चिह्निताभ्यां शृङ्गाररसेन पूर्णौ संभृतौ यौ शातकुम्भकुम्भौ सुवर्णकलशौ ताभ्यामिव वक्षोरुहाभ्यां कुचाभ्यां विराजमाना शोभमाना, शुभतरा लाक्षाजतुरसोऽलक्तकरागो यस्मिन् तेन पदेन चरणेन, शुभे तरले च अक्षिणी यस्मिन् तेन वदनेन मुखेन, अब्जस्य कमलस्य यो मदः सौन्दर्यदर्पस्तस्य निर्मूलनं निराकरणं तस्य निदानेनादिकारणेन पदेन, अब्जस्य चन्द्रस्य यो मदस्तस्य निर्मूलनं तस्य निदानेन वदनेन च विराजमाना शोभमाना, भ्रमरैरलिभिरजितोऽपराजितस्तेन भ्रमरादप्यतिकृष्णेनेति यावत् कचनिचयेन केशसमूहेन भ्रम इवावर्त इव राजितेन शोभितेन नाभिपुटेन च तुन्दिपुटेन च लसमाना शोभमाना, जलदकाललक्ष्मीरिव प्रावृत्श्रीरिव उल्लसन्ती प्रकटीभवन्ती धारा येषां उल्लसद्धारस्तथाभूताः पयोधरा मेघा यस्यां सा जलदकाल-लक्ष्मीः उल्लसन् शोभमानो हारो मणियष्टिर्ययोस्तावुल्लसद्धारौ तथाभूतौ पयोधरौ स्तनौ यस्यास्तथाभूता श्रीमती, सज्जाः सजला ये घना मेघास्तैरभिरामा मनोहरा जलदकाललक्ष्मीः, सत् प्रशस्तं यत् जघनं नितम्बं तेन अभिरामा मनोहारिणी श्रीमती, निद्रैव सकललोचनग्राहिणी निखिलनयनवशीकारिणी श्रीमती निखिलजननयनस्थायिनी निद्रा च, चकासामास शुशुभे ॥ श्लेषोपमालंकारौ । § ११) कदाचिदिति—त्रिभुवन-वशी लोकत्रयवशीकारिणी, हेमलतिका काञ्चनवल्ली सुदृग् सुलोचना इयं श्रीमती, कदाचित् जातुचित् सीधाग्रे प्रासादपृष्ठे मृदुलतमेनातिकोमलेन हंसांसेन तूलेन मृदुले कोमले, विविधानां नानाप्रकाराणां मणीनां रत्नानां

१०

१५

२०

लताके फलोंके समान जान पड़ते थे, अथवा हृदयतटरूपी तालाबमें उत्पन्न हुए कमलकी बोंड़ियोंके समान मालूम होते थे अथवा चूचुकरूपी मुहरसे लालित शृङ्गाररससे भरे हुए सुवर्णमय कलशोंके समान प्रतिभासित होते थे । वह जिस चरण और मुखसे सुशोभित थी वे दोनों ही शुभतर लाक्ष और अब्जमदनिर्मूलन निदान थे (चरण अत्यन्त शुभ महावरसे युक्त और कमलके गर्वको दूर करनेके प्रमुख कारण थे तथा मुख, शुभ और चंचल नेत्रोंसे सहित तथा चन्द्रमाका मद दूर करनेका प्रमुख कारण था) वह जिस केशकलाप और नाभिपुटसे अलंकृत थी वे दोनों ही भ्रमराजित थे—केशकलाप भ्रमरोंसे अपराजित था अर्थात् भ्रमरोंसे भी कहीं अधिक काला था और नाभिपुट भ्रम-जलकी भँवरके समान सुशोभित था । वह श्रीमती वर्षाकालकी लक्ष्मीके समान थी क्योंकि जिस प्रकार वर्षाकालकी लक्ष्मी उल्लसद्धारपयोधरा—धारास्रावी मेघोंसे युक्त होती है उसी प्रकार वह श्रीमती भी उल्लसद्धारपयोधरा—हारसे सुशोभित स्तनोंसे युक्त थी और वर्षाकालकी लक्ष्मी जिस प्रकार सज्जघनाभिरामा—सजल मेघोंसे रमणीय होती है उसी प्रकार वह श्रीमती भी सज्जघनाभिरामा—समीचीन नितम्बमण्डलसे सुशोभित थी । वह श्रीमती निद्राके समान सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार निद्रा सकललोचनग्राहिणी—सबके नेत्रोंपर असर करने-वाली होती है उसी प्रकार वह श्रीमती भी सकललोचनग्राहिणी—अपनी सुन्दरतासे सबके नेत्रोंको वश करनेवाली थी । § ११) कदाचिदिति—त्रिभुवनको वश करनेवाली सुवर्णलता स्वरूप यह सुलोचना श्रीमती किसी समय महलकी छतपर अत्यन्त कोमल रुईसे मृदुल तथा

२५

३०

३५

मरालीवोन्मीलतिसितजलजषण्डे सुदृगियं

ययी निद्रामुद्रां त्रिभुवनवशी हेमलतिका ॥७॥

§ १२) तदानीं तत्पुरमनोहरोद्यानमध्यासीनमतिमानमहिमानमुत्पन्नकेवलज्ञानं विशाल-
तपसं यशोधरगुरुमर्चितुमधिनभःस्थलमुच्चलितानाममराणाममन्दसंमर्दसंवर्धितकलकलेन निशा-
५ करदृढालिङ्गितव्योमलक्ष्मीवक्षःस्थलवृटितविगलितमुक्तादाममणिपङ्क्त्येव, जिनराजदर्शनकुतू-
हलिन्या स्वर्गलक्ष्म्या प्रहितकटाक्षपरम्परयेव, सौरभ्यसंरुद्धदिशावकाशया पतन्त्या पुष्पवृष्ट्या
समाकृष्टमदतुङ्गभृङ्गसङ्घसङ्कारेण, सुरदुन्दुभिनिःसरदमन्दनिध्वानेन च प्रबुद्धा सा तन्वङ्गी,
चक्राङ्गीव पर्जन्यनिःस्वनेन संव्रस्ता, देवागमनिरोक्षणक्षणजनितपूर्वभवस्मृतिः, स्मृतिजात-
सुन्दराङ्गं ललिताङ्गं स्मृत्वा, हा रूपविचित्राङ्ग ! सुराङ्गनावदनाम्बुजभृङ्गकरणापाङ्ग ! देव

- १० कान्त्या दीप्त्या कवचित्ते व्याप्ते विराजत्पर्यङ्के शोभमानशयने उन्मीलतां विकसतां सितजलजानां पुण्डरीकाणां
षण्डे समूहे मरालीव हंसीव निद्रामुद्रां शयनावस्थां ययी प्राप । रूपकोपमा । शिखरिणीच्छन्दः ॥७॥ § १२)
तदानीमिति—तदानीं शयनकाले तत्पुरस्य पुण्डरीकिणीनगर्या यन्मनोहरोद्यानं मनोहरनामोपवनं तत् अध्या-
सीनम् अधिष्ठितम्, अतिमानो निरतिशयो महिमा यस्य तम्, उत्पन्नं प्रादुर्भूतं केवलज्ञानं यस्य तं, विशालतपसं
प्रकृष्टतपस्विनं यशोधरगुरुं यशोधरमुनिराजम्, अर्चितुं पूजयितुम् अधिनभःस्थलमधिगगनतलम्, उच्चलिताना-
१५ मुद्गतानाम् अमराणां देवानाम्, अमन्दसंमर्देन विपुलसंघट्टनेन संवर्धितो वृद्धि प्राप्नो यः कलकलोऽव्यक्तशब्दस्तेन,
निशाकरेण चन्द्रेण दृढं गाढं यथा स्यात्तथालिङ्गितं समाहितं यद् व्योमलक्ष्म्या गगनश्रिया वक्षःस्थलं तस्मा-
दादौ वृटिताः पश्चाद् विगलिता ये मुक्तादाममणयो मौक्तिकयष्टिमणयस्तेषां पङ्क्त्येव संतत्येव, जिनराज-
दर्शनस्य कुतूहलं जिनराजदर्शनकुतूहलं तद् विद्यते यस्यास्तथाभूतया स्वर्गलक्ष्म्या त्रिदिवश्रिया प्रहिता प्रेरिता
या कटाक्षाणां केकराणां परम्परा तयेव, सौरभ्येण सौगन्ध्येन संरुद्धो दिशानामवकाशो यथा तथा पतन्त्या
२० वर्षन्त्या पुष्पवृष्ट्या कुसुमवृष्ट्या समाकृष्टो बलादानीतो यो मदतुङ्गभृङ्गानां मदोन्मत्तभ्रमराणां सङ्घः समूह-
स्तस्य सङ्कारेणाव्यक्तशब्दविशेषेण, सुरदुन्दुभिभ्यो देवानकेभ्यो निःसरत् निर्गच्छन् योऽमन्दनिध्वानो विशाल-
शब्दस्तेन च प्रबुद्धा जागृता सा तन्वङ्गी कृशाङ्गी श्रीमती, पर्जन्यनिःस्वनेन मेघगर्जनेन संव्रस्ता संभीता
चक्राङ्गीव हंसीव, देवागमनिरोक्षणस्य सुरागमावलोकनस्य क्षणेऽवसरे जनिता समुत्पन्ना पूर्वभवस्य स्वयंप्रभा-
पर्यायस्य स्मृतिर्यस्याः सा, स्मृतावाध्याने जातं समुत्पन्नं सुन्दराङ्गं कमनीयकलेवरं यस्य तं, ललिताङ्गं तन्नामदेवं
- २५ नाना प्रकारके मणियोंकी कान्तिसे व्याप्त सुन्दर पलंगपर खिलते हुए सफेद कमलोंके समूहपर
हंसीके समान निद्रावस्थाको व्याप्त थी ॥७॥ § १२) तदानीमिति—उस समय उस पुण्डरी-
किणी पुरीके मनोहर उद्यानमें स्थित, अतिशय महिमाशाली तथा विशाल तपस्वी यशोधर
गुरुको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था अतः उनकी पूजाके लिए आकाशमें चलते हुए देवोंकी
बहुत भारी धक्का-धूमीसे वृद्धिको प्राप्त कल-कल शब्दसे, चन्द्रमारूपी नायकके द्वारा जोरसे
३० आलिङ्गित आकाशलक्ष्मीरूपी स्त्रीके वक्षःस्थलसे दृढ़कर गिरते हुए मुक्तामालाके मणियोंकी
पंक्तिके समान अथवा जिनेन्द्रदेवके दर्जनके कुतूहलसे युक्त स्वर्गलक्ष्मीके द्वारा छोड़े हुए
कटाक्षोंकी परम्पराके समान, तथा सुगन्धिसे दिशाओंके अवकाशको व्याप्त करनेवाली पुष्प-
वृष्टिके द्वारा खिंचे हुए मदोन्मत्त भ्रमर समूहकी झंकारसे और देवदुन्दुभिओंसे निकलते हुए
विशाल शब्दसे वह कृशाङ्गी श्रीमती उस तरह जाग गयी जिस तरह कि मेघोंकी गर्जनासे
३५ भयभीत हंसी जाग पड़ती है । देवोंके आगमनको देखते ही उसे पूर्वभवका स्मरण हो गया ।
स्मृतिमें जिसका सुन्दर शरीर उत्पन्न हो गया था ऐसे ललिताङ्गदेवका स्मरण कर वह
चिल्लाने लगी किःहे सौन्दर्यसे आश्चर्यकारी शरीरके धारक, हे देवाङ्गनाओंके मुखकमलोंपर

ललिताङ्ग ! क्वासि क्वासि, मनसि मे कीलित इव ते विलासो विलसतीति प्रलपन्तो श्रीमती मूर्च्छामुपाजगाम ।

§ १३) मलयजघनसारासारसेकैर्मृणाली-

मृदुलकुलनिधानैः पुष्पशय्याधिरोहैः ।

व्यजनपवनपोतैर्मन्दमाश्वस्य नीता

सुदृगियमथ संज्ञां सादराभिः सखीभिः ॥८॥

§ १४) चकोराक्षी सेयं मनसि खचितं तं सुरवरं

पुरः पश्चात्पार्श्वेऽप्युपरि किल पश्यन्त्यनुकलम् ।

सखीभिः साशङ्कं सपदि परिपृष्टापि बहुधा

पिकीव ग्रीष्मर्तौ समतनुत मौनव्रतकलाम् ॥९॥

§ १५) तदनु पर्याकुलाभिरालीभिर्निवेदितोदन्तौ लक्ष्मीमतोवज्रदन्तौ मातापितरौ

पूर्वभवपतिमित्यर्थः स्मृत्वा ध्यात्वा, हा रूपेण विचित्रं विस्मयकरमङ्गं शरीरं तत्सम्बुद्धौ, सुराङ्गनानां देवीनां वदनाम्बुजेषु भृङ्गकरणं भ्रमरायमाणमपाङ्गं कटाक्षो यस्य तत्सम्बुद्धौ, देव ललिताङ्ग ! क्वासि क्वासि वीप्सायां द्वित्वम्, ये मम मनसि चेतसि कीलित इवाङ्कित इव ते तव विलासो विभ्रमो विलसति शोभते इति प्रलपन्ती श्रीमती मूर्च्छा निःसंज्ञताम् उपाजगाम प्राप । § १३) मलयजेति—अथानन्तरं सादराभिः सखीभिः सहचरीभिः, इयं सुदृग् श्रीमती मलयश्च घनसारश्चेति मलयजघनसारा सौ चन्दनकर्पूरौ तेषामासारेण संपातेन सेकाः सेचनानि तैः, मृणालीनां विसानां मृदुलकुलस्य कोमलसमूहस्य निधानानि उपधानानि तैः, पुष्पशय्यासु कुसुमविष्टरेष्वधिरोहा अधिष्ठापनानि तैः, व्यजनानां तालवृत्तानां पवनपोतैर्मन्दमहद्भिः, मन्दं शनैर्यथा स्यात्तथा, आश्वस्य संबोध्य संज्ञां चेतनां नीता प्रापिता । मालिनीच्छन्दः ॥८॥ § १४) चकोराक्षीति—मनसि चेतसि खचितं निखातं तं पूर्वोक्तं सुरवरं ललिताङ्गं पुरोऽग्रे पश्चात्पृष्ठे पार्श्वे समीपे उपर्यपि ऊर्ध्वमपि अनुकलं प्रतिसमयं पश्यन्ती अवलोकयन्ती इयं सा चकोराक्षी चकोरलोचना श्रीमती सखीभिरालीभिः साशङ्कं यथा स्यात्तथा सपदि शीघ्रं बहुधा नानाप्रकारेण परिपृष्टापि अनुयुक्तापि ग्रीष्मर्तौ निदावे पिकीव कोकिलेव मौनव्रतकलां तूष्णीभावं समतनुत विस्तारयामास । उपमालंकारः । शिखरिणीच्छन्दः ॥९॥ § १५) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं पर्याकुलाभिव्यग्राभिः, आलीभिः सखीभिः निवेदितः कथित उदन्तो वृत्तान्तो ययोस्तौ, लक्ष्मीमति-वज्रदन्तौ तन्नामानौ मातापितरौ मातरपितरौ 'मातापितरौ पितरौ मातरपितरौ स्वसू जनयितारौ' इत्यमरः,

भ्रमरोंके समान कटाक्षोंको चलानेवाले, ललितांगदेव ! कहाँ हो, कहाँ हो, तुम्हारा हाव-भाव मेरे मनमें कीलित हुएकी तरह सुशोभित हो रहा है । इस तरह चिल्लाती हुई वह श्रीमती मूर्च्छाको प्राप्त हो गयी । § १३) मलयजेति—तदनन्तर आदर सहित सखियोंने इस सुलोचनाको धीरे-धीरे समझाते हुए चन्दन और कपूरके धाराबद्ध सेचनसे, मृणालोंके कोमल समूहसे बनी हुई तकियोंसे, फूलोंकी शय्यापर लेटानेसे तथा पंखोंकी मन्द-मन्द वायुसे चेतनाको प्राप्त कराया ॥८॥ § १४) चकोराक्षीति—मनमें खचित उस ललितांगदेवको आगे, पीछे, पासमें तथा ऊपरकी ओर प्रत्येक समय देखनेवाली इस चकोरलोचना श्रीमतीसे उसकी सखियोंने आशंकासहित शीघ्र ही अनेक बार पूछा परन्तु उसने ग्रीष्मऋतुमें कोयलके समान मौनव्रतकी कलाको ही विस्तृत किया अर्थात् कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥९॥ § १५) तदन्विति—तदनन्तर घबड़ायी हुई सखियोंने जिन्हें सब समाचार सुनाया था ऐसे लक्ष्मीमती वज्रदन्त

तूर्णमभ्यर्णमेत्य, बलवदस्वस्थां तनयां दृष्ट्वा, शोककोलितस्वान्तौ तन्वङ्गि ! प्रतिक्षणमुत्सङ्ग-
भुवमावयोरेहि विधेहि परिष्वङ्गमिति व्याहरन्तौ पुरो निषीदतुः ।

५ § १६) राजायमिङ्गितज्ञानामग्रगण्यो वरेण्यो वचनविदामुदारगम्भीरमतिर्मनसि तनुजा-
विकारबीजं प्राग्जन्मानुभवः कोऽपीति निश्चित्य, यथानिश्चयमग्रमहिषीं लक्ष्मीमतीं प्रतिपाद्य,
नियोज्य च कन्यासमाश्वासनसंनिधानाय मधुरतमकौशलविधात्रीं पण्डितानामधात्रीं, कान्तया सह
निर्जगाम ।

§ १७) करणीयं नरेन्द्रस्य कार्यद्वैतमभूत्तदा ।

कैवल्यं स्वगुरोश्चक्रसंभूतिश्चायुधालये ॥१०॥

§ १८) उपस्थिते कार्ययुगे नृपस्य चित्तप्रवृत्तिद्विविधा बभूव ।

१० महोधरे मार्गगते निरुद्धस्रोतःप्रवृत्तिद्विविधेव लोके ॥११॥

तूर्णं शीघ्रम्, अभ्यर्णं समीपम् एत्यागत्य, बलवदस्वस्थाम् अत्यन्तास्वस्थां तनयां पुत्रीं दृष्ट्वा, शोकेन विषादेन
कोलितं नियन्त्रितं स्वान्तं चित्तं ययोस्ती, तन्वङ्गि ! कृशाङ्गि ! प्रतिक्षणं प्रतिसमयम्, आवयोर्मातापित्रोः,
उत्सङ्गभुवं क्रोडभूमिम्, एहि आगच्छ, परिष्वङ्गमालिङ्गनं विधेहि कुह, इतीत्यं व्याहरन्तौ कथयन्तौ पुरोऽग्रे
निषीदतुः समुपविष्टौ । § १६) राजायमिति—इङ्गितज्ञानां हृन्वेष्टितज्ञानाम् अग्रगण्यः प्रधानः, वचनविदां
१५ वचनज्ञानां वरेण्यः श्रेष्ठः, उदारगम्भीरमतिर्महागम्भीरबुद्धिः, अयं राजा वज्रदन्तः, मनसि चेतसि तनुजायाः
पुत्र्या विकारस्य बीजं कारणं प्राग्जन्मानुभवः पूर्वभवोपभोगः कोऽपि कश्चिदस्तीति निश्चित्य निर्णीय,
यथानिश्चयं निश्चयानुसारम्, अग्रमहिषीं प्रधानराज्ञीं लक्ष्मीमतीं प्रतिपाद्य कथयित्वा, समाश्वासनाय
संनिधानं समाश्वासनसंनिधानं कन्यायाः समाश्वासनसंनिधानं तस्मै कन्यायाः समाश्वासनाय निकटेऽवस्थानुं
मधुरतमकौशलस्यातिप्रियचातुर्यस्य विधात्री निर्मात्री तां पण्डितानामधात्रीं नियोज्य च नियुक्तां कृत्वा
२० च कान्तया वल्लभया सह निर्जगाम बहिरगच्छत् । § १७) करणीयमिति—तदा तस्मिन् काले स्वगुरोर्-
शोधरमहाराजस्य कैवल्यं केवलज्ञानप्राप्त्युत्सवः, आयुधालये शस्त्रागारे चक्रसंभूतिश्च चक्ररत्नोत्पत्तिश्च,
इति कार्यद्वैतं कार्ययुगं करणीयं कर्तुं योग्यम् अभूत् ॥१०॥ § १८) उपस्थित इति—कार्ययुगं
युगलं तस्मिन् उपस्थिते सति नृपस्य राज्ञश्चित्तप्रवृत्तिः, लोके भुवने महोधरे गिरौ मार्गगते सति द्विविधा
द्विप्रकारेण विभक्ता निरुद्धस्रोतसः निरुद्धप्रवाहस्य प्रवृत्तिर्मनोप्रवृत्तिरिव द्विविधा द्विप्रकारा बभूव । उपमा ।

२५ माता-पिता शीघ्र ही पास आकर तथा पुत्रीको अत्यन्त अस्वस्थ देख शोक करने लगे । 'हे
तन्वङ्गि ! प्रति समय हमारी गोदमें आओ और हमारा आलिंगन करो' यह कहते हुए दोनों
पुत्रीके सामने बैठ गये । § १६) राजायमिति—यह राजा वज्रदन्त हृदयकी चेष्टा जानने-
वालोंमें अग्रगण्य थे, कब किस प्रकारके वचन बोलना चाहिए इस प्रकार वचनोंके प्रयोगको
जाननेवालोंमें श्रेष्ठ थे तथा अत्यन्त गम्भीर बुद्धिके धारक थे अतः उन्होंने मनमें निश्चय कर
३० लिया कि पुत्रीके विकारका कारण कोई पूर्वजन्मका अनुभव है । उन्होंने अपना निश्चय
प्रधानरानी लक्ष्मीमतीको बताया और कन्याको समझानेके अर्थ सदा निकट रहनेके लिए
अत्यन्त चतुराईको प्रकट करनेवाली पण्डिता नामकी धायको नियुक्त कर रानीके साथ चले
गये । § १७) करणीयमिति—उस समय राजा वज्रदन्तके लिए दो कार्य करने योग्य हुए ।
एक तो अपने पिता यशोधरगुरुको केवलज्ञान प्राप्त हुआ और दूसरा शस्त्रागारमें चक्ररत्न
३५ प्रकट हुआ ॥१०॥ § १८) उपस्थित इति—लोकमें जिस प्रकार पर्वतके मार्गमें आ जानेपर
नदी आदिके प्रवाहकी प्रवृत्ति रुककर दो भागोंमें विभक्त हो जाती है उसी प्रकार ऊपर कहे

§ १९) तदनु किमत्र प्रथमं कर्तव्यमिति क्षणं चिन्ताकुलो वसुधापतिर्धर्मार्थकार्ययोर्मध्ये धर्म-
कार्यमेव मुख्यमिति निश्चित्य, भगवतो यशोधरगुरोः पूजां विधातुं पृतनया सार्धमुपसृत्य जगद्गुरोः
सुराञ्चितमपि असुराञ्चितं, वनीपकजनमनीषितपूरकमपि अवनीपकजनमनीषितपूरकं, खरांशु-
कान्तमपि नखरांशुकान्तं पदैयुगलं पूजयामास ।

§ २०) तत्पादौ प्रणमन्नसौ नरपतिलब्धावधिः शुद्धधीः

स्वस्यैवाच्युतकल्पवासवपदं पुण्याजितं प्राग्भवे ।

उपजातिवृत्तम् ॥११॥ § १९) तदन्विति—तदनु तदनन्तरम् अत्र द्वयोः कार्ययोः प्रथमं किं कर्तव्यं
करणीयमिति क्षणमल्पकालपर्यन्तं चिन्ताकुलो विचारव्यग्रो वसुधापतिर्वज्रदन्तः धर्मार्थकार्ययोर्मध्ये धर्म-
कार्यमेव मुख्यं प्रथमं करणीयमिति निश्चित्य भगवतोऽष्टप्रातिहार्यरूपैश्वर्यसहितस्य यशोधरगुरोः पूजां
कैवल्यमहोत्सवसपर्यां विधातुं कर्तुं पृतनया सेनया सार्धं साकमुपसृत्य जगद्गुरोर्यशोधरमहाराजस्य पदैयुगलं
चरणयुगं पूजयामास । अथ पदैयुगं विशिनष्टि—सुराञ्चितमपि देवपूजितमपि असुराञ्चितं देवपूजितं न भवतीति
विरोधः परिहारस्तु सुराञ्चितमपि असुरैर्धरणेन्द्रादिभिरञ्चितं पूजितं, वनीपकजनानां याचकजनानां मनीषित-
स्याभिलषितस्य पूरकमपि वनीपकजनमनीषितपूरकं न भवतीति अवनीपकजनमनीषितपूरकमिति विरोधः
परिहारस्तु अवनीं पृथिवीं पान्ति रक्षन्तीति अवनीपा अवनीपा एव अवनीपका राजानः ते च ते जनाश्च तेषां
मनीषितस्य पूरकं, भूमिः भूमी, अवनि, अवनी, श्रेणि, श्रेणी इत्यादयः शब्दा इकारान्ता ईकारान्ताश्च
द्विरूपकोशे प्रयुक्ताः । 'वनीपको याचनको मार्गणो याचकारिणौ' इत्यमरः । खरास्तीक्ष्णा अंशवो रश्मयो यस्य
खरांशुः सूर्यस्तद्वत् कान्तमपि मनोहरमपि न खरांशुकान्तमिति नखरांशुकान्तमिति विरोधः परिहारस्तु नखराणां
नखानामंशुभिः किरणैः कान्तमिति विरोधाभासोऽलंकारः । § २०) तत्पादाविति—शुद्धा धीर्यस्य विशुद्धबुद्धिकः,
उद्बेलो मर्यादातीतः पुण्योदयो यस्य तथाभूतः, असौ नरपतिः तत्पादौ यशोधरगुरुचरणौ प्रणमन् नमस्कुर्वन्
लब्धावधिः प्राप्तावधिज्ञानः सन् प्राग्भवे पूर्वपर्याये, स्वस्यैवात्मन एव पुण्याजितं सुकृतोत्पादितम् अच्युतकल्पे

हुए दो कार्य उपस्थित होनेपर राजाकी मनोवृत्ति दो भागोंमें विभक्त हो गयी ॥११॥ § १९)
तदन्विति—तदनन्तर इन दोनों कार्यमें पहले क्या करना चाहिए ? इस प्रकारकी चिन्तासे
राजा क्षणभरके लिए व्याकुल हुए परन्तु थोड़ी ही देरमें उन्होंने निश्चय कर लिया कि धर्म-
कार्य और अर्थकार्यके मध्यमें धर्मकार्य ही मुख्य है । इस प्रकार निश्चय कर राजा वज्रदन्त
भगवान् यशोधरगुरुकी पूजा करनेके लिए सेनाके साथ उनके पास पहुँचे और वहाँ जाकर
उन्होंने यशोधरगुरुके उस चरणयुगलकी पूजा की जो सुरांचित—देवोंसे पूजित होनेपर भी
असुरांचित—देवोंसे पूजित नहीं था (परिहारपक्षमें असुरों—धरणेन्द्र आदि देवोंसे पूजित
था) वनीपकजनमनीषितपूरक—याचकजनोंकी अभिलाषाका पूरक होकर भी अवनीपकजन-
मनीषितपूरक—याचकजनोंकी अभिलाषाका पूरक नहीं था । (परिहारपक्षमें राजाओंकी
अभिलाषाका पूरक था) तथा खरांशुकान्त—सूर्यके समान सुन्दर होकर भी नखरांशुकान्त—
सूर्यके समान सुन्दर नहीं था (परिहारपक्षमें नाखूनोंकी कान्तिसे सुन्दर था) । § २०)
तत्पादाविति—जिसकी बुद्धि विशुद्ध थी तथा जिसको असीम पुण्यका उदय था ऐसे राजा
वज्रदन्तने यशोधरगुरुके चरणयुगलको प्रणाम करते ही अवधिज्ञान प्राप्त कर लिया उस
अवधिज्ञानके द्वारा उसने यह सब वृत्तान्त अत्यन्त स्पष्टरूपसे जान लिया कि पूर्वभवमें मैंने

श्रीमत्या ललिताङ्गदेवविलसत्कान्तार्थमन्यच्च तद्-

वृत्तं सर्वमतिस्फुटं विदितवानुद्वेलपुण्योदयः ॥१२॥

- ५ § २१) तदनु वन्दितभगवच्चरणे धरणीरमणे तदारामान्निर्गत्य स्वपुरमागत्य च, निर्वर्त्य चक्रपूजां तनूजां पण्डितावशे विधाय, षडङ्गबलेन बलेन दिग्जयाय प्रस्थितवति, पण्डितापि तमालमञ्जुलां कृतमालमञ्जुलां सालशोभितां रसालशोभितां, नीपविराजितां वनीपविराजितां शुकराजिरमणीयां किशुकराजिरमणीयां, नरवृन्दानन्दसंदायिनीं किन्नरवृन्दानन्दसंदायिनीं, नीरजातविलसितां वानीरजातविलसितां, सरस्थितिमनोरमां केसरस्थितिमनोरमां, पेयतरुमण्डितां चाम्पेयतरुमण्डलमण्डितां, तालबन्धुरां हिन्तालबन्धुरां, रसोज्ज्वलेन सारसोज्ज्वलेन, सकलचित्त-

- १० षोडशस्वर्गे वासवपदमिन्द्रपदं, श्रीमत्याः स्वपुत्र्याः ललिताङ्गदेवस्य विलसत्कान्तार्थं शोभमानस्त्रीत्वम् अन्यच्च तद्वत्तं तच्चरितं सर्वं निखिलम् अतिस्फुटं यथा स्यात्तथा विदितवान् ज्ञातवान् । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥१२॥
§ २१) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं वन्दितो भगवच्चरणौ येन तथाभूते धरणीरमणे नृपतौ तदारामात् यशोधरगुरुविशोभितमनोहरोद्यानात् निर्गत्य स्वपुरं पुण्डरीकिणीपुरम् आगत्य च चक्रपूजां चक्ररत्नार्चां निर्वर्त्य रचयित्वा तनूजां पुत्रीं श्रीमतीमिति यावत् पण्डितावशे पण्डिताधात्रीवशे विधाय कृत्वा, षडङ्गानां हस्त्यश्वादि- षडङ्गानां बलं पराक्रमो यस्मिन् तथाभूतेन बलेन सैन्येन दिग्जयाय दिशो जेतुं प्रस्थितवति प्रयातवति सति,
१५ पण्डितापि तन्नामघात्र्यपि, तमालमञ्जुलां तापिच्छवृक्षमनोहरां, कृतमालमञ्जुलां चिरविल्ववृक्षमनोहरां, सालशोभितां सर्जवृक्षविराजितां रसालशोभिताम् आम्रवृक्षशोभितां, नीपविराजितां कदम्बवृक्षशोभितां वनीप- विराजितां वेतसतरुशोभितां, शुकराजिरमणीयां कीरपत्रपङ्क्तिमनोहरां कुत्सिताः शुकाः किशुकास्तेषां राजिः पङ्क्तिस्तया रमणीयां पक्षे किशुकानां पलाशवृक्षाणां राजिः पङ्क्तिस्तया रमणीयाम्, नरवृन्दस्य श्रेष्ठनर- समूहस्यानन्दं हर्षं संददातीत्येवंशीला तां नरवृन्दानन्दसंदायिनी, कुत्सिता नराः किन्नरास्तेषां वृन्दस्य
२० समूहस्यानन्दं संददात्येवंशीला ताम्, पक्षे किन्नरा देवविशेषास्तेषां वृन्दस्यानन्दं संददात्येवंशीला, नीरजातैः कमलैर्विलसिता तां नीरजातविलसितां वानीरजातैर्वेतसतरुभिर्विलसितां, सरस्थितिमनोरमां तडागस्थिति- रमणीयां केसरस्थितिमनोरमां वकुलवृक्षस्थितिमनोहरां, पेयतरुमण्डितां नारिकेलवृक्षशोभितां चाम्पेयतरु-

- पुण्योदयस्वरूप अच्युतस्वर्गमें इन्द्रपद प्राप्त किया था, और ललिताङ्गदेव श्रीमतीका पति था । उसने श्रीमती और ललिताङ्गदेव सम्बन्धी और भी सब वृत्तान्त स्पष्ट जान लिया
२५ था ॥१२॥ § २१) तदन्विति—तदनन्तर राजा वज्रदन्त, भगवान्के चरणोंकी वन्दना कर उस उद्यानसे बाहर निकले तथा अपने नगरमें आकर चक्ररत्नकी पूजा कर तथा पुत्री श्रीमतीको पण्डिताधायके आधीन कर छह अंगोंकी शक्तिसे युक्त सेनाके साथ उन्होंने दिग्विजयके लिए प्रस्थान किया । उनके प्रस्थान कर चुकनेपर पण्डिताधाय शोकाकुलित बुद्धिवाली श्रीमतीके साथ उस अशोकवाटिकामें पहुँची जो तमाल वृक्षोंसे मनोहर थी, चिरोलके वृक्षोंसे मनोहर
३० थी, सागौनके वृक्षोंसे सुशोभित थी, आमोंके वृक्षोंसे सुशोभित थी, कदम्बके वृक्षोंसे विराजित थी, वेतके वृक्षोंसे विराजित थी, शुकोंकी पंक्तिसे सुशोभित थी, पलाशवृक्षोंकी पंक्तिसे सुशोभित थी, नरसमूहको आनन्द देनेवाली थी, किन्नरसमूहको आनन्द देनेवाली थी, कमलोंसे सुशोभित थी, वेतस वृक्षोंसे सुशोभित थी, सर—तालाबकी स्थितिसे मनोरम थी, केशर—वकुलके वृक्षोंकी स्थितिसे मनोरम थी, नारियलके वृक्षोंसे मण्डित थी, चम्पक
३५ वृक्षोंके समूहसे मण्डित थी, तालवृक्षोंसे सुन्दर थी, हिताल वृक्षोंसे सुन्दर थी और

हारिणा कलहंसचित्तहारिणा, पद्माकरेण विराजितामशोकवनिकां शोकाक्रान्तमत्या श्रीमत्या समं समासाद्य, तत्र किल विचित्रचन्द्रकान्तशिलातले निषण्णा, पाणिपल्लवेन सस्नेहं तदङ्गानि संस्पृशन्ती, दशनरुचिविसरविमलसलिलैस्तदङ्गसंतापं निर्वापयन्तीव मधुरतरमिमं व्याहारं विस्तारयामास ।

§ २२) अहं सुदति ! पण्डिता निखिलकार्यलाभे ध्रुवं
नवोत्पलदलेक्षणे ! ननु तवास्मि मात्रा समा ।
ततो वद पतिवरे ! सपदि मौनहेतुं स्फुटं
किमेष मदनोद्यमः किमथवा ग्रहप्रक्रमः ॥१३॥

§ २३) इति पृष्ठा विशालाक्षी निशायां नतपङ्कजा ।
पद्मिनीवानतमुखी ह्रिया वचनमादधे ॥१४॥

पण्डितां चम्पकवृक्षशोभितां, तालवन्धुरां ताडवृक्षमनोहरां हिन्तालवृक्षमनोहरां, रसोज्ज्वलेन जलोज्ज्वलेन सारसोज्ज्वलेन कमलोज्ज्वलेन, सकलचित्तहारिणा निखिलजनमनोहारिणा कलहंसचित्तहारिणा कादम्बपक्षि-मनोहारिणा पद्माकरेण तडागेन विराजितां शोभितां, अशोकवनिकाम् अशोकवाटिकाम्, शोकेनाक्रान्ता मतिर्बुद्धि-र्यस्यास्तया श्रीमत्या समं साकं समासाद्य प्राप्य, तत्राशोकवनिकायां किलेति वाक्यालंकारे विचित्रं विस्मयकरं यच्चन्द्रकान्तशिलातलं तस्मिन् निषण्णा समुपविष्टा, पाणिपल्लवेन करकिसलयेन तस्याः श्रीमत्या अङ्गानि तदङ्गानि संस्पृशन्ती, दशनानां दन्तानां रुचिविसराः कान्तिसमूहा एव विमलसलिलानि निर्मलनीराणि तैः, तदङ्गसंतापं श्रीमतोशरीरसंतापं निर्वापयन्तीव दूरीकुर्वन्तीव मधुरतरमतिमिष्टम् इमं वक्ष्यमाणं व्याहारं वचनं विस्तारयामास आततान ॥ § २२) अहमिति—शोभना दन्ता यस्याः सुदती 'वयसि दन्तस्थ दतु' इति दन्तस्य दन्तदेशस्तत्संबुद्धौ हे सुदशने ! हे नवोत्पलदले द्वेक्षणे यस्यास्तत्संबुद्धौ हे नवनीलोत्पलदललोचने ! ध्रुवं निश्चयेन, अहं पण्डितानामध्यात्री निखिलकार्यलाभे समस्तकार्यसिद्धौ पण्डिता विदुषी अस्मि, अथ च ननु निश्चयेन तव श्रीमत्या मात्रा समा जननीतुल्या अस्मि । ततस्तस्मात् हे पतिवरे कन्ये ! सपदि शीघ्रं स्फुटं स्पष्टतया मौनहेतुं मौनस्य कारणं वद कथय एषोऽयं किं मदनोद्यमः कामोद्योगः, अथवा पश्चान्तरे ग्रहणां पिशाचानां शनैश्चरादीनां वा प्रक्रम आक्रमणं वर्तत इति शेषः । पृथ्वी छन्दः ॥१३॥ § २३) इतीति—इतीत्यं पृष्ठा विशाले अक्षिणी यस्या सा विशालाक्षी दीर्घलोचना श्रीमती निशायां रात्रौ नतपङ्कजा नतकमला पद्मिनीव कमलिनीव ह्रिया त्रपया आनतमुखी नतवदना सती वचनमादधे उवाच । उपमा ॥१४॥

रस—जलसे उज्ज्वल, कमलोंसे उज्ज्वल, सबके चित्तको हरनेवाले तथा कलहंस पक्षियों से सुन्दर सरोवरसे सुशोभित थी । अशोकवाटिकामें जाकर वह आश्चर्य उत्पन्न करने वाले चन्द्रकान्तमणिके शिलातलपर बैठ गयी, तथा अपने करपल्लवोंसे स्नेहपूर्वक श्रीमती-के अंगोंका स्पर्श करती और दाँतोंकी किरणोंके समूहरूप जलके द्वारा उसके शरीरके सन्तापको दूर करती हुई की तरह निम्नलिखित अत्यन्त मधुर वचन विस्तृत करने लगी । § २२) अहमिति—हे सुन्दर दाँतोंवाली ! मैं निश्चित ही समस्त कार्योंकी सिद्धिमें निपुण पण्डिता हूँ तथा हे नवीन नील कमलके समान नेत्रोंवाली ! तुम्हारी माताके समान हूँ इसलिए हे कन्ये, शीघ्र ही साफ-साफ अपने मौनका कारण कहो, क्या यह कामका उद्यम है अथवा किसी ग्रहका आक्रमण है ? ॥१३॥ § २३) इतीति—इस प्रकार पूछी हुई दीर्घलोचना श्रीमती रात्रिमें जिसके कमल नीचेकी ओर झुक गये हैं ऐसी कमलिनीके

§ २४) कथा प्राग्जन्मकलिता स्मृता देवागमेक्षणात् ।

लज्जायवनिकान्तस्था पुरो नटति ते सखि ! ॥१५॥

§ २५) पुरा खलु धातकीखण्डमण्डनायमाननन्दनवनसुन्दरपूर्वमन्दरापरविदेहाश्रितगन्धिल-
विषयाभिरामं पाटलिग्राममधिवसतो नागदत्तवणिजः सुदतीविख्यातया कान्तया विराजमानस्य
नन्द-नन्दिमित्र-नन्दिषेण-वरसेन-जयसेननामानः सकलगुणसीमानः पञ्चपुत्राः पुत्रिके च मदनकान्ता
श्रीकान्तेत्यासन्, तयोरहं कनीयसी संजाता निर्नामिका नाम ।

§ २६) कदाचिच्चारणचरितविदितरम्यवनविलसदम्बरतिलकधराधरे विराजमानं पिहिता-
स्रवमुनिमानम्य, केन कर्मणास्मिन्दुर्गतकुले जातेत्यप्राक्षम् । इति मया पृष्टोऽसौ मुनिरिदमाचष्ट ।

§ २७) अत्र किल विषये पलालपर्वतग्रामे पूर्वं देवलाख्याद् ग्रामकूटात्सुमतेरदरे जाता

- १० § २४) कथेति—प्राग्जन्मकलिता पूर्वभवघटिता देवागमेक्षणात् सुरागमदर्शनात् स्मृता स्मृतिपथमायाता कथा
लज्जैव त्रपैव यवनिका नेपथ्यं तस्या अन्तस्था मध्यस्थिता सती हे सखि ! ते पुरोऽग्रे नटति नृत्यति ॥१५॥
§ २५) पुरेति—पुरा खलु पूर्वकाले धातकीखण्डस्य द्वितीयद्वीपस्य मण्डनायमान आभरणोपमानो नन्दनवन-
सुन्दरो नन्दनवनमनोहरो यः पूर्वमन्दरः पूर्वमेखस्तस्यापरविदेहाश्रितः पश्चिमविदेहस्थितोः यो गन्धिलविषयो
गन्धिलदेशस्तस्मिन्नाभिरामं मनोहरं, पाटलिग्रामं तन्नामनगरम्, अधिवसतो निवसतः सुदतीविख्यातया सुदतीति-
नामप्रसिद्धया कान्तया वल्लभया विराजमानस्य नागदत्तवणिजो नागदत्तवैश्यस्य सकलगुणसीमानो निखिलगुण-
प्रकृष्टावधयो नन्दादयः पञ्चपुत्राः मदनकान्ता श्रीकान्ता चेति द्वे पुत्र्यौ च आसन्, तयोः पुत्र्योरहं कनीयसी
लघुपुत्री संजाता, निर्नामिकेति मम प्रचलितं नामासीत् । § २६) कदाचिदिति—कदाचित् जातुचित्
चारणानां चारणद्विसंपन्नतपोधनानां चरितेन विदितं प्रसिद्धं चारणचरितनामधेयमिति यावत्, चारणचरित-
विदितं यद् रम्यवनं मनोहरकाननं तेन विलसन् शोभमानो योऽम्बरतिलकधराधर एतन्नामपर्वतस्तस्मिन्
२० विराजमानं शोभमानं पिहितास्रवमुनि तन्नाममुनिराजम्, आनम्य नमस्कृत्य, केन कर्मणा अहम् अस्मिन् दुर्गत-
कुले दरिद्रकुले जाता समुत्पन्ना, इतोत्थम् अप्राक्षम् पृष्टवती । इत्येवं मया निर्नामिकया पृष्टोऽन्युक्तोऽसौ
मुनिः पिहितास्रवः, इदं वक्ष्यमाणम् आचष्ट कथयामास । § २७) अत्रेति—अत्र किल विषये अस्मिन्नेव देशे
पलालपर्वतग्रामे तन्नामनिगमे पूर्वं पूर्वजन्मनि देवलाख्यात् देवलनामधेयात् ग्रामकूटाद् ग्रामस्वामिनः सुमतेः

- समान लज्जासे नम्रमुखी हो कहने लगी ॥१४॥ § २४) कथेति—हे सखि ! देवागमके देखनेसे
२५ स्मरणमें आयी हुई पूर्वजन्म सम्बन्धी कथा लज्जारूपी परदाके भीतर स्थिर होकर मेरे सामने
नृत्य कर रही है ॥१५॥ § २५) पुरेति—निश्चयसे पहले धातकीखण्ड द्वीपके आभरण स्वरूप
तथा नन्दनवनसे सुन्दर जो पूर्वमेरु है उससे पश्चिम दिशामें स्थित विदेह क्षेत्रमें एक
गन्धिल देश है उसमें सुशोभित पाटलिनामक ग्राममें एक नागदत्त नामका वैश्य रहता था ।
वह नागदत्त सुदतीनामसे प्रसिद्ध स्त्रीसे सुशोभित था । उसके नन्द, नन्दिमित्र, नन्दिषेण,
३० वरसेन और जयसेन नामके समस्तगुणोंकी सीमास्वरूप पाँच पुत्र और मदनकान्ता तथा
श्रीकान्ता नामकी दो पुत्रियाँ थीं । उन पुत्रियोंमें मैं छोटी पुत्री थी तथा मेरा निर्नामिका नाम
चालू था । § २६) कदाचिदिति—किसी समय चारणचरित नामसे प्रसिद्ध वनसे सुशोभित
अम्बरतिलक पर्वतपर विराजमान पिहितास्रव नामक मुनिराजको नमस्कार कर मैंने पूछा कि
मैं किस कर्मसे इस दरिद्र कुलमें उत्पन्न हुई हूँ । इस तरह मेरे द्वारा पूछे जानेपर उक्त मुनिराज
३५ यह कहने लगे । § २७) अत्रेति—इसी देशके पलाल पर्वत ग्राममें पहले तुम देवल नामक
ग्रामपतिकी सुमति नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुई थी । धनश्री तुम्हारा नाम था । किसी समय

धनश्रीरिति विश्रुता भवती कदाचित्परमागमपठनकर्मठस्य तावकविहारभूमिमाश्रितस्य समाधि-
गुप्तस्य मुनिवरस्य समीपे पूतिगन्धबन्धुरं कुक्कुरकलेवरं निधाय, तत्कर्मणा विमनायमानं प्रति-
पादितकलुषवचनं तमेनं भयभरेण प्रणम्य क्षमां ग्राहयामास ।

§ २८) तेनोपशमभावेन स्तोकपुण्यं समाश्रिता ।

जगत्यां दुर्गतेऽत्यन्तं जाता मनुष्यजन्मनि ॥१६॥

§ २९) ततः कल्याणि ! कल्याणं तपोऽनशनमाचर ।

जिनेन्द्रगुणसंपत्तिं श्रुतज्ञानमपि क्रमात् ॥१७॥

§ ३०) षोडशतीर्थकरभावनाश्चतुस्त्रिंशदतिशयानष्टमहाप्रतिहार्याणि पञ्चकल्याणकान्यु-
द्दिश्य त्रिषष्टिदिवसैः क्रियमाणमुपोषितव्रतं जिनगुणसंपत्तिरिति जोषुष्यते ।

§ ३१) अष्टाविंशतिमतिज्ञानभेदानेकादशाङ्गान्यष्टाशोतिसूत्राणि प्रथमानुयोगं परिकर्मद्वयं १०

सुमतिनाम्न्याः स्त्रिया उदरे जठरे जाता धनश्रीरिति धनश्रीनाम्ना विश्रुता प्रसिद्धा भवती, कदाचिज्जातुचित्
परमागमस्य जिनेन्द्रागमस्य पठनेऽध्ययने कर्मठो निपुणस्तस्य, तावकी चासौ विहारभूमिश्चेति तावकविहारभूमि-
स्तां त्वदोयोपवनस्थलीम् आश्रितस्याधिष्ठितस्य समाधिगुप्तस्य तन्नामकस्य मुनिवरस्य तपोधनस्य समीपे पार्श्वे
पूतिगन्धबन्धुरं दुर्गन्धयुतं कुक्कुरकलेवरं मृतकुक्कुरशरीरं निधाय स्थापयित्वा, तत्कर्मणा तेन कार्येण विमनाय-
मानं कुप्यन्तं प्रतिपादितानि कथितानि कलुषवचनानि येन तं कथिताक्रोशवचनं तमेनं साधुं भयभरेण भीत्या १५
प्रणम्य नमस्कृत्य क्षमां ग्राहयामास क्षमयांचकार । § २८) तेनेति—तेन कथितेन उपशमभावेन क्षमाभावेन
स्तोकपुण्यमल्पमुक्तं समाश्रिता प्राप्ता जगत्यां पृथिव्याम् अत्यन्तं दुर्गतेऽतिदरिद्रे मनुष्यजन्मनि नरपर्याये जाता
समुत्पन्ना ॥१६॥ § २९) तत इति—ततः हे कल्याणि ! त्वं जिनेन्द्रगुणसंपत्तिं तन्नामधेयं श्रुतज्ञानं
तन्नामधेयमपि अनशनतपः क्रमात् आचर कुरु । उभयोर्व्रतयोर्लक्षणं मूले विनिर्दिष्टम् ॥१७॥
§ ३०) षोडशेति—अथ जिनेन्द्रगुणसंपत्तिव्रतस्य स्वरूपमुच्यते—दर्शनविशुद्धिआदीः षोडशतीर्थकरभावनाः, दश २०
जन्मभवा दशकेवलज्ञानभवाश्चतुर्दशदेवकृताश्चेति चतुस्त्रिंशदतिशयान्, अशोकवृक्षप्रभृतान्यष्ट प्रतिहार्याणि,
गर्भादीनि पञ्चकल्याणानि चोद्दिश्य त्रिषष्टिदिवसैः क्रियमाणं विधीयमानमुपोषितव्रतमनशनतपो जिनगुण-
संपत्तिरिति नाम्ना जोषुष्यते कथ्यते । § ३१) अष्टाविंशतीति—अथ श्रुतज्ञानव्रतं कथ्यते—अष्टाविंशति-

परमागमके पाठ करनेमें समर्थ समाधिगुप्त नामक मुनिराज तुम्हारे उपवनकी भूमिमें आकर
विराजमान हो गये सो तुमने उनके समीप दुर्गन्धसे युक्त मृत कुत्तेका कलेवर डलवा दिया । २५
उस कार्यसे मुनिराजको रोष उत्पन्न हो गया तथा वे कलुषताके वचन कहने लगे । अन्तमें
भयसे तुमने प्रणाम कर उन्हें क्षमा ग्रहण करायी अर्थात् क्षमा माँगकर शान्त किया । § २८)
तेनेति—उस क्षमाभावसे तुम अत्यन्त अल्प पुण्यको प्राप्त हुई जिसके फलस्वरूप पृथिवीपर
अत्यन्त दरिद्र मनुष्य जन्ममें उत्पन्न हुई हो ॥१६॥ § २९) तत इति—इसलिए हे कल्याणि !
अब तुम क्रमसे जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति और श्रुतज्ञान नामके उपवास तपका आचरण ३०
करो ॥१७॥ § ३०) षोडशेति—दर्शन विशुद्धि आदि सोलह तीर्थकर भावनाएँ, चौतीस
अतिशय, आठ महाप्रतिहार्य और गर्भादिक पाँच कल्याणकोंको लक्ष्यकर त्रेसठ दिनोंके
द्वारा किया जानेवाला अनशनव्रत जिनेन्द्रगुणसम्पत्तिव्रत कहलाता है । § ३१) अष्टाविंश-
तीत्यादि—अट्ठाईस मतिज्ञानके भेद, ग्यारह अंग, अठासीसूत्र, प्रथमानुयोग, दो परिकर्म,

चतुर्दशपूर्वाणि पञ्चचूलिकाः षडवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानद्वयं केवलज्ञानमेकमुद्दिश्याष्टपञ्चाशदधिक-
दिनशतेन क्रियमाणमनशनव्रतं श्रुतज्ञानमिति श्रूयते ।

§ ३२) इति मुनिवरोद्दिष्टं धर्मं विधाय यथोचितं

सुदति ! ललिताङ्गस्य ख्यातामरस्य सती प्रिया ।

५ त्रिदशभुवने भूत्वा गत्वा मुनिं तमपूजयं
दिवि च सुभगान्भोगान्भुक्त्वेयमद्य बभूव च ॥१८॥

§ ३३) पुरः पश्चादूर्ध्वं दिशि दिशि च दिव्याम्बरधरं
स्फुरद्गन्धप्रोद्यन्मुकुटविलसन्मस्तकतलम् ।

तमेनं पश्यामि प्रकृतिकमनीयं सुरवरं

१० मनोगेहेऽप्येष स्फुरति सततं कीलित इव ॥१९॥

§ ३४) तदलाभे पुनर्मम तनुलता तदीयमध्यसाम्यं परिशीलयितुमिव क्षामतां न जहाति,

मतिज्ञानभेदान्, एकादशाङ्गानि, अष्टाशीतिसूत्राणि, प्रथमानुयोगं, परिकर्मद्वयं, चतुर्दशपूर्वाणि, पञ्चचूलिकाः,
अनुगाम्यादिभेदयुक्तं षडवधिज्ञानम्, ऋजुमतिविपुलमतिभेदयुक्तं द्विप्रकारं मनःपर्ययज्ञानं, एकं केवल-
ज्ञानं च उद्दिश्य अष्टपञ्चाशदुत्तरदिनशतेन क्रियमाणमनशनतपः श्रुतज्ञानमिति श्रूयते । § ३२) इतीति—

१५ इतीत्यं मुनिवरेण पिहितास्रवेणोद्दिष्टं कथितं धर्मं जिनेन्द्रगुणे संपत्ति-श्रुतज्ञानव्रताचरणरूपं यथोचितं
यथाविधि विधाय कृत्वा हे सुदति ! हे शोभनदन्ते पण्डिते ! त्रिदशभुवने स्वर्गे ललिताङ्गस्य
एतन्नामधेयस्य ख्यातामरस्य प्रसिद्धदेवस्य सती पतिव्रता प्रिया वल्लभा भूत्वा गत्वा तं मुनिं पिहितास्रवम्
अपूजयं पूजयामास दिवि स्वर्गे च सुभगान्मनोहरान् भोगान् भुक्त्वानुभूय अद्यास्मिन् भवे इयं श्रीमती बभूव ।
हरिणोच्छन्दः ॥१८॥ § ३३) पुर इति—दिव्याम्बरधरं दिव्यवस्त्रधारकं स्फुरद्गन्धप्रोद्यन्मणिभिः प्रोद्यद्
२० देदीप्यमानं यन्मुकुटं मौलिस्तेन विलसत् शोभमानं मस्तकतलं यस्य तथाभूतं प्रकृत्या स्वभावेन कमनीयो
मनोहरस्तथाभूतं एनं तं सुरवरं देवश्रेष्ठं ललिताङ्गं पुरोज्ये पश्चात्पृष्ठे ऊर्ध्वमुपरि, दिशि दिशि च प्रत्येकदिशासु
च पश्यामि संस्कारवशादवलोकयामि । एष देवो मनोगेहेऽपि हृदयमन्दिरेऽपि कीलित इव निखात इव सततं
स्फुरति विलसति । शिखरिणीच्छन्दः । § ३४) तदलाभ इति—तस्य ललिताङ्गस्यालाभेऽप्राप्तौ पुनर्मम
श्रीमत्याः स्वयंप्रभाचर्याः तनुलता शरीरवल्ली तदीयमध्यस्य ललिताङ्गावलम्बस्य साम्यं सादृश्यं परिशीलयितु-

२५ चौदहपूर्व, पाँच चूलिकाएँ, छह प्रकारका अवधिज्ञान, दो प्रकारका मनःपर्ययज्ञान और एक
प्रकारका केवलज्ञान इन सबको लक्ष्यकर एक सौ अट्ठावन दिनोंके द्वारा किया जानेवाला
अनशनव्रत श्रुतज्ञानव्रत प्रसिद्ध है ॥ § ३२) इतीति—हे सुदशने ! इस प्रकार पिहितास्रव
मुनिराजके द्वारा कहे हुए धर्मका विधिपूर्वक पालन कर मैं स्वर्गमें ललिताङ्ग नामक प्रसिद्ध
देवकी पतिव्रता भार्या हुई । मैंने जाकर उन पिहितास्रव मुनि की पूजा की और फिर स्वर्गमें
३० मनोहर भोग भोगकर अब यह श्रीमती हुई हूँ ॥१८॥ § ३३) पुर इति—जो दिव्यवस्त्रोंको
धारण कर रहा है, जिसका मस्तक चमकीले रत्नोंसे देदीप्यमान मुकुटसे सुशोभित हो रहा
है तथा जो स्वभावसे ही सुन्दर है ऐसे उस ललिताङ्गदेवको मैं आगे, पीछे, ऊपर तथा समस्त
दिशाओंमें देख रही हूँ । कीलित हुंके समान यह हमारे मनमन्दिरमें भी निरन्तर सुशोभित
हो रहा है ॥१९॥ § ३४) तदलाभ इति—उस ललिताङ्गकी प्राप्ति न होनेपर मेरी शरीरलता
३५ उसके मध्यभागकी सदृशताका अभ्यास करने के लिए ही मानो कुशताको नहीं छोड़ रही है

१. ललिताङ्गेति-क० ।

सततमश्रुबिन्दवो मामकीनदुःखं द्रष्टुमक्षमतया तमन्वेष्टुमुद्यता इव निर्यान्ति ।

§ ३५) नभःस्थलगतो नवानुलेपनगतश्च चन्द्रो न शीतलः । कण्ठगता क्रीडोद्यानगता च मल्लीमाला मां नानन्दयति । समीपसंजातः सरोरुहवनसंजातश्च प्रमदालिमधुरालापः परं दुःखयति । कविताविदग्धसखीजनकलृप्ता दासीजनकलृप्ता च कुसुममृदुलशय्या न हर्षमाददाति । हृद्गता कराङ्गुलिगता च समेधमानरुग्मिका कङ्कणं विजृम्भयितुमर्हति । स्मृतिपथगतः समीपदेशवहमानश्च दक्षिणमरुद्वरो ममाङ्गानि शोषयति ।

५

मिव समभ्यस्तुमिव क्षामतां कृशतां न जहाति न त्यजति । सततं सर्वदा अश्रुबिन्दवो नयनजलपूषता मामकीनदुःखं मदीयविरहवेदनां द्रष्टुमवलोकयितुम् अक्षमतयाऽसमर्थतया तं ललिताङ्गम् अन्वेष्टुं मार्गयितुम् उद्यतास्तत्परा इव निर्यान्ति निर्गच्छन्ति । उत्प्रेक्षालंकारः । § ३५) नभःस्थलेति—नभःस्थलगतो गगनतलस्थितो नवानुलेपनगतश्च नूतनविलेपनपतितश्च चन्द्रः सुधांशुः कर्पूरश्च न शीतलो न क्षिशिरः 'चन्द्रः सुधांशुकर्पूरस्वर्णकंपिल्लवारिषु' इति विश्वलोचनः । कण्ठगता ग्रीवास्थिता क्रीडोद्यानगता केल्युपवनस्थिता च मल्लीमाला मालतीस्रक् मां नानन्दयति नो हर्षयति । समीपसंजातः पार्श्वसमुत्पन्नः सरोरुहवनसंजातश्च कमलवनोत्पन्नश्च प्रमदालिमधुरालापः प्रमदेन हर्षेणोपलक्षिता आलयः सख्यः प्रमदालयस्तासां मधुरालापो मिष्टव्याहारः पक्षे प्रकृष्टः मदीयं दर्पो येषां तथाभूता येऽल्यो भ्रमरास्तेषां मधुरालापो मधुरगुञ्जनरवः 'अलिर्भृङ्गे मुरायां स्त्री स्यादालिः पिण्डले स्त्रियाम् । सख्यां पङ्क्तावपि ख्याता' इति विश्वलोचनः । परमत्यन्तं दुःखयति पीडयति । कवितायां काव्यरचनायां विदग्धाश्चतुरा ये सखीजनास्तैः कलृप्ता रचिता, दासीजनैः कलृप्ता रचिता च कुसुममृदुलशय्या कुसुमवन्मृदुला शय्या काव्यरचनाप्रकारविशेषः पक्षे कुसुमानां पुष्पाणां मृदुलशय्या कोमलशयनं हर्षं प्रमोदं न आददाति नो वितरति । हृद्गता हृदयस्थिता कराङ्गुलिगता च करकरशास्त्रास्थिता च समेधमानरुग्मिका समेधमाना वर्धमाना या रुक् 'रोगस्तस्या ऊर्मिका परम्परा पक्षे समेधमाना वर्धमाना रुक् कान्तिर्यस्यास्तथाभूता ऊर्मिका आङ्गुलीयकं कङ्कणं जलकणं विजृम्भयितुं वर्धयितुमर्हति योग्यास्ति हृद्गता वर्धमानरोगसंततिर्मारयित्वा जलाञ्जलिं दातुं तत्परा वर्तत इत्यर्थः, कराङ्गुलिगतं वर्धमानकास्तिर्युक्तमाङ्गुलीयकं मणिबन्धस्य दीर्घव्यात्करकटकं भवितुमर्हतीत्यर्थः । स्मृतिपथगतो ध्यानमार्गगतः समीपदेशवहमानश्च समीपे वहंश्च दक्षिणमरुद्वरो दक्षिणश्चासौ मरुद्वरश्चेति दक्षिणमरुद्वरः सरलप्रकृतिको ललिताङ्गो देवः पक्षे दक्षिणस्य मरुद्वरो दक्षिणमरुद्वरो दक्षिणदिगायातः पवनोत्तमो मलयसमीर इति यावत् । मम श्रीमत्या अङ्गानि शोषयति । 'मरुत्पुंसि सुरे वाते' इति

१०

१५

२०

और आँसुओंकी बूँदें मेरा दुःख देखनेके लिए असमर्थ होनेके कारण उसे खोजनेके लिए ही मानो निरन्तर निकलती रहती हैं । § ३५) नभःस्थलेति—आकाशतलमें स्थित और नवीन विलेपनमें पड़ा हुआ चन्द्र (चन्द्रमा और कपूर) शीतल नहीं है । कण्ठमें पहिनी हुई तथा क्रीड़ाके उपवनमें स्थित मालतीकी माला मुझे आनन्दित नहीं करती । समीपमें उत्पन्न और कमलवनमें समुद्भूत प्रमदालिमधुरालाप (हर्षित सखियोंका मधुरभाषण और गर्वीले भ्रमरोंका मधुर गुंजार) अत्यन्त दुःखी करता है । कवितामें निपुण सखीजनोंके द्वारा रचित तथा दासीजनोंके द्वारा निर्मित कुसुममृदुलशय्या (फूलोंके समान कोमल रचना और फूलोंकी कोमल सेज) हर्ष प्रदान नहीं करती । हृदयमें स्थित तथा हाथकी अंगुलीमें स्थित समेधमान रुग्मिका (बढ़ते हुए रोगोंकी परम्परा और बढ़ती हुई कान्तिसे युक्त अंगूठी) कंकण—जलकण बढ़ानेके योग्य है अर्थात् मरण कराकर जलाञ्जलि दिलानेके योग्य है—पक्षमें कलाई इतनी कृश हो गयी है कि हाथकी अंगूठी कंकण—हाथका कटक बन जानेके योग्य है । स्मृतिपथमें आया हुआ और समीप देशमें बहता हुआ दक्षिण मरुद्वर (सरल प्रकृतिसे युक्त ललितांग नामका उत्तमदेव और दक्षिण दिशासे आया हुआ मलयसमीर) मेरे अंगोंको सुखा रहा है ।

२५

३०

३५

§ ३६) शरान्वर्षति मारोऽयं क्षणकालश्च वर्षति ।

श्यामाद्य तत्र रक्तापि धवला च भवाम्यहम् ॥२०॥

§ ३७) इत्युक्त्वा पुनरप्युवाच मधुरं सा श्रीमती तां सखीं

सत्यां त्वय्यरविन्दनेत्रि ! मम किं दुःखस्य लेशो भवेत् ।

५ ज्योत्स्नायां कुमुदावलेरिव सखि ! त्वं पण्डिता मामके

कार्ये सत्यमरालकेशि ! सुगुणे ! मत्कार्यसिद्धिं कुरु ॥२१॥

§ ३८) इदं च मया विलिखितं पूर्वभवचरितपट्टकं महाकविकाव्यसंगतव्यङ्ग्यवैभवमिव
गूढागूढं, गणिकाजनवचनमिव धूर्तजनमनःसंमोहकारणमादाय, अत्रत्यगूढार्थसंकटे पतिब्रुवान्
धूर्ततरान्पराकृत्य, कविमतिरिव सुहृद्विष्टार्थं, लक्ष्मीरिधोद्योगशालिनं पुरुषं, तं सुरोत्तमं मार्गमाणा
१० प्रस्तुतकार्यं साधयेति ।

विश्वलोचनः । श्लेषालंकारः । § ३६) शरानीति—अयं मारो मदनः 'मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः'
इत्यमरः । शरान् वाणान् वर्षति, क्षणकालश्च वर्षति वर्षमिवाचरति, तद्विरहेऽल्पोऽपि समयो दीर्घकालायते ।
अद्येदानीम्, श्यामा श्यामवर्णा अहं श्रीमती रक्तापि रक्तवर्णापि धवला शुक्लवर्णा भवामि, या श्यामा रक्ता च
सा धवला कथं भवेदिति विरोधः परिहारस्तु श्यामा युवतिरहं तत्र ललिताङ्गे रक्तापि प्राप्तानुरागापि तदीयवि-
१५ रहात्पाण्डुवर्णा भवामीति । श्लेषो विरोधाभासश्च ॥२०॥ § ३७) इत्युक्त्वेति—इतीत्यम् उक्त्वा सा श्रीमती
तां सखीं पण्डितां प्रति पुनरपि भूयोऽपि मधुरं यथा स्यात्तथा उवाच जगाद । हे अरविन्दनेत्रि ! हे कमललोचने !
ज्योत्स्नायां कौमुद्यां सत्यां कुमुदावलेरिव कैरवपङ्केरिव, त्वयि सत्यां विद्यमानायां किं मम श्रीमत्या दुःखस्य
लेशो भवेत् । अपि तु न भवेत् । हे सखि ! त्वं मामके कार्ये सत्यं पण्डिता कुशला असि । हे अरालकेशि
हे कुटिलकेशि ! 'स्यादरालः पुमान्सर्जं मत्तेभे कुटिलेऽन्यवत्' इति विश्वलोचनः । हे सुगुणे हे शोभनगुण-
२० युक्ते ! मम कार्यस्य सिद्धिस्तां मत्कार्यसिद्धिं कुरु । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥२१॥ § ३८) इदमिति—
मया श्रीमत्या विलिखितं रचितं, महाकवीनां काव्येषु संगतं स्थितं यद् व्यङ्ग्यवैभवं ध्वनिवैभवं तदिव गूढागूढं
यथा व्यङ्ग्यवैभवं क्वचिद् गूढं प्रज्ञजनवेद्यं क्वचिद्गूढं सर्वजनवेद्यं भवति तथेदमपि गूढागूढं, गणिकाजन-
वचनमिव रूपाजीवावचनमिव धूर्तजनानां मनसः संमोहस्य कारणं तथाभूतं पूर्वभवचरितपट्टकं पूर्वभवोदन्त-
प्रख्यापकालेख्यपट्टकम् आदाय गृहीत्वा अत्रभवोऽत्रत्यः स चासौ गूढार्थसंकटश्च तस्मिन् अपतित्वेऽप्यात्मानं
२५ पतिं ब्रुवन्तीति पतिब्रुवास्तान् धूर्ततरान् अतिशयधूर्तान् पराकृत्य तिरस्कृत्य सुहृद्विष्टार्थं संगतमर्थं कविमतिरिव,

§ ३६) शरानिति—यह काम बाणोंकी वर्षा कर रहा है और क्षणकाल वर्षके समान जान
पड़ता है । मैं श्यामा—श्यामवर्ण हूँ, रक्तापि—लालवर्ण भी हूँ परन्तु आज धवला—सफेद
हो रही हूँ । (परिहार पक्षमें श्यामा—नवयौवनसे युक्त मैं उस ललितांगदेवमें रक्ता—
अनुरागसे सहित हूँ फिर भी उसके विरहके कारण आज सफेद-सफेद हो रही हूँ) ॥२०॥
३० § ३७) इत्युक्तेति—यह कहकर श्रीमतीने बड़ी मधुरताके साथ उस पण्डिता सखीसे यह
और कहा कि हे कमलनेत्रि ! चाँदनीके रहते हुए कुमुदावलीके समान तुम्हारे रहते हुए मुझे
क्या दुःखका लेश भी हो सकता है ? हे सखि ! तुम मेरे कार्यमें सचमुच ही पण्डिता-निपुण
हो । हे कुटिलकेशि ! हे सुगुणे ! मेरे कार्यकी सिद्धि करो ॥२१॥ § ३८) इदमिति—मैंने यह
पूर्वभवका चरितपट्ट लिखा है, यह महाकवियोंके काव्योंमें स्थित व्यंग्यके वैभवके समान
३५ कहीं गूढ और कहीं अगूढ है, तथा वेश्याओंके वचनके समान धूर्त मनुष्योंके मनमें मोह
उत्पन्न करनेवाला है । इसे लेकर तुम जाओ और अपनेआपको झूठ-भूठ ही पति कहनेवाले
अत्यन्त धूर्त मनुष्योंको इसके गूढ अर्थके संकटमें परास्त कर जिस प्रकार कविकी बुद्धि सुसं-

§ ३९) पण्डितापि तरलाक्षि तवेष्टं क्षिप्रमेव कलये तनुगात्रि ।

इत्युदीर्य सहसा निरगच्छत्पट्टकाञ्चितकरा दरकण्ठी ॥२२॥

§ ४०) गत्वा महापूतजिनालयं सा कृत्वा जिनेन्द्राङ्घ्रियुगप्रणामम् ।

तस्थौ ततः पट्टकशालिकायां परीक्षणार्थं लिखितं प्रसार्य ॥२३॥

§ ४१) यत्र च जिनभवने संध्यारागाख्या इव पद्मरागकुट्टिमेषु तरङ्गितनलिनपत्रसङ्गहरिता ५
इव मरकतमणिमयभूमिषु, गगनतलप्रसृता इवेन्द्रनीलभित्तिषु, तिमिरपटलविघटनोद्यता इव
कृष्णागुरुधूपधूमोद्गारिवातायनेषु प्रभातचन्द्रिकामध्यपतिता इव स्फटिकमणिभित्तिप्रभासु, गगन-
सिन्धुतरङ्गिण इव सितपताकांशुकेषु, राहुमुखकुहरप्रविष्टा इव जम्भारिमणिजृम्भितगवाक्षेषु,

उद्योगशालिनं पुरुषं लक्ष्मीरिव, तं पूर्वोक्तं सुरोत्तमं ललिताङ्गं मार्गमाणा अन्वेषयन्ती प्रस्तुतकार्यं प्रकृतकार्यं
साधय, इति तां सखीं प्रति पुनरप्युवाचेति संबन्धः । § ३९) पण्डितापीति—दरकण्ठी कम्बुकण्ठी पण्डितापि १०
हे तरलाक्षि हे चपललोचने ! हे तनुगात्रि हे कृशकलेवरे ! तव इष्टं ललिताङ्गदेवान्वेषणात्मकं क्षिप्रमेव शीघ्रमेव
कलये संपादयामीत्युदीर्य निगद्य पट्टकाञ्चितकरा चित्रफलकशोभितहस्ता सती सहसा झटिति निरगच्छत्
बहिर्जगाम । स्वागतावृत्तम् ॥२२॥ § ४०) गत्वेति—सा पण्डिता महापूतजिनालयं तन्नामजिनमन्दिरं गत्वा
जिनेन्द्राङ्घ्रियुगप्रणामं जिनचरणयुगलप्रणामं कृत्वा विधाय ततस्तदनन्तरं पट्टकशालिकायां चित्रशालायां लिखितं १५
चरितपट्टकं परीक्षणार्थं प्रसार्य विस्तार्य तस्थौ । उपजातिवृत्तम् ॥२३॥ § ४१) यत्र चेति—यत्र च महापूत-
ख्याते जिनभवने जिनमन्दिरे, रविगभस्तयः सूर्यरश्मयः पद्मरागाणां लोहितमणीनां कुट्टिमेषु तलेषु संध्यारागेण
संध्याकाललालिम्नाख्या रकास्तथाभूता इव, मरकतमणिमयभूमिषु हरितमणिनिर्मितावनिषु तरङ्गितनलिन-
पत्राणां स्पन्दितकमलपत्राणां संगेन हरिता हरिद्वर्णा इव, ते इन्द्रनीलभित्तिषु नीलमणिमयकुडचेषु गगनतल-
प्रसृता इव नभस्तलप्रसृता इव, कृष्णागुरुधूपस्य धूमोद्गारीणि यानि वातायनानि गवाक्षास्तेषु तिमिरपटलस्या- २०
न्धकारसमूहस्य विघटने दूरीकरणे उद्यता इव तत्परा इव, स्फटिकमणिभित्तिप्रभासु स्फटिकोपलकुडचकान्तिषु
प्रभातचन्द्रिकायाः प्रातर्ज्योत्स्नाया मध्ये पतिता इव, सितपताकांशुकेषु धवलवैजयन्तीवस्त्रेषु गगनसिन्धोर्नभः-
सागरस्य तरङ्गाः कल्लोला गगनसिन्धुतरङ्गास्ते सन्ति येषु तथाभूता इव जम्भारिमणिभिरिन्द्रनीलमणिभि-
जृम्भिता वृद्धिप्राप्ता ये गवाक्षा वातायनानि तेषु राहुमुखकुहरे विधुतुदवदनविवरे प्रविष्टा इव, सूर्यकान्तोपलेषु

गत अर्थको और लक्ष्मी उद्योगशाली पुरुषको खोजती है उसी प्रकार उस श्रेष्ठ देवको खोजती
हुई तुम प्रकृत कार्यको सिद्ध करो । § ३९) पण्डितापीति—शंखके समान कण्ठवाली पण्डिता २५
भी हे चपललोचने ! हे तन्वंगि ! मैं शीघ्र ही तुम्हारे मनोरथको सम्पन्न करती हूँ यह कहकर
तथा चित्रपट हाथमें लेकर बाहर चली गयी ॥२२॥ § ४०) गत्वेति—वह पण्डिता महापूत
जिनालयमें जाकर तथा जिनेन्द्र भगवान्के चरण युगलको प्रणाम कर उसके बाद वहाँकी
चित्रशालामें परीक्षाके लिए अपना चित्रपट फैलाकर बैठ गयी ॥२३॥ § ४१) यत्र चेति—जिस
महापूत जिनालयमें पद्मराग मणियोंके फर्शोंपर पड़ती हुई सूर्यकी किरणें ऐसी सुशोभित होती ३०
हैं मानो सन्ध्याकी लालिमासे लाल हो गयी हों, मरकतमणियोंकी भूमिपर ऐसी जान पड़ती
हैं मानो हिलते हुए कमलपत्रोंके संगसे हरितवर्ण हो गयी हों, इन्द्रनीलकी दीवारोंपर ऐसी
प्रतिभासित होती हैं मानो गगनतलमें फैली हों, कालागुरुकी धूपके धुएँको प्रकट करनेवाले
झरोखोंमें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो अन्धकारके पटलको नष्ट करनेके लिए उद्यत हों,
स्फटिक मणिकी दीवारोंकी प्रभापर ऐसी जान पड़ती हैं मानो प्रातःकालकी चाँदनीके बीचमें ३५
पड़ी हों, सफेद पताकाओंके वस्त्रोंपर ऐसी लगती हैं मानो आकाशरूपी समुद्रकी लहरोंसे
युक्त हों, इन्द्रनीलमणिसे बड़े हुए झरोखोंपर ऐसी सुशोभित होती हैं मानो राहुके मुखरूपी

पल्लविता इव सूर्यकान्तोपलेषु, निगीर्णा इव वन्दारुभयवृन्दारकसंदोहमणिमुकुटमणिप्रभासु विराजन्ते रविगभस्तयः ।

§ ४२) तत्रागतान्कुशलकोमलसूक्ष्मबुद्धीन्

सर्वान् किमेतदिति चित्रमवेक्षमाणान् ।

५

सा पण्डिता समुचितैर्वचनप्रचारै-

गूढस्थलेषु कुशलान्कलयांबभूव ॥२४॥

§ ४३) तदनु कृतदिग्जयश्चक्रधरो नरविद्याधरसुरकिरीटमणिकोणशाणकषणनिर्मली-
कृतचरणनखमणिः, कृतकृत्योऽपि जिननन्दिनीविवाहसंविधानचिन्तादन्तुरितस्वान्तः, केतुजाल-
विमलपटविगलितात्पां निजराजधानीं प्रविवेश ।

१०

§ ४४) चक्री ततः समाहूय चिरमाधियुतां सुताम् ।

स्मितांशुसलिलैः सिञ्चन्निव व्याहारमादधे ॥२५॥

सूर्यकान्तमणिषु पल्लविता इव पल्लवाः संजाता येषु तथाभूता इव, वन्दारूपां वन्दनशीलानां भयवृन्दारकाणां
श्रेष्ठभयानां ये संदोहाः समूहास्तेषां मणिमुकुटानां रत्नमौलीनां मणिप्रभासु रत्नदीपेषु निगीर्णा इव निलीना
इव विराजन्ते शोभन्ते । उत्प्रेक्षालंकारः । § ४२) तत्रेति—तत्र महापूतजिनालयचित्रशालायाम् आगतान्
१५ कुशला कोमला सूक्ष्मा च बुद्धिर्येषां तथाभूतान्, एतत् किम् ? इति चित्रं श्रीमतीनिर्मितचित्रपट्टकम् अवेक्षमाणान्
पश्यतः सर्वान् जनान् सा पण्डिता समुचितैर्योग्यैः वचनप्रचारैः वाग्विस्तारैः गूढस्थलेषु गुप्तस्थलेषु कुशलान्
विचारनिमग्नान् कलयांबभूव कारयामास । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२४॥ § ४३) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं
कृतो दिशां जयो येन कृतदिग्जयः, चक्रधरो वज्रदन्तः, नरविद्याधरसुराणां किरीटेषु मुकुटेषु ये मणयस्तेषां
कोणा एव शाणा निकषोपलास्तेषु कषणेन निर्मलीकृताश्चरणनखमणयो यस्य तथाभूतः, कृतकृत्योऽपि कृतार्थोऽपि
२० निजमन्दिन्याः स्वसुतायाः विवाहसंविधानस्य पाणिग्रहणसंस्कारकरणस्य या चिन्ता तथा दन्तुरितं व्याप्तं स्वान्तं
चित्तं यस्य तथाभूतः सन् केतुजालस्य पताकासमूहस्य विमलपटैः स्वच्छवस्त्रैर्विगलितो दूरीभूत आतपो यस्यां तां
निजराजधानीं प्रविवेश । § ४४) चक्रीति—ततः प्रवेशानन्तरं चक्री वज्रदन्तः चिरम् दीर्घकालेन आधियुतां
मानसव्यथासहितां सुतां श्रीमतीम् आहूय आकार्य स्मितस्य मन्दहसितस्यांशवो रश्मय एव सलिलानि जलानि

बिलमें घुस गयी हों, सूर्यकान्तमणियोंपर ऐसी प्रतिभासित होती हैं मानो पल्लवोंसे युक्त हों,
२५ और नमस्कार करनेवाले श्रेष्ठ भव्यसमूहके मणिनिर्मित मुकुटोंके मणियोंकी प्रभापर ऐसी
जान पड़ती हैं मानो उनमें निलीन ही हो गयी हों । § ४२) तत्रेति—वहाँ आये हुए, कुशल
कोमल और सूक्ष्मबुद्धिके धारक तथा 'यह क्या है ?' इस तरह चित्रको देखनेवाले सब
लोगोंको उस पण्डिताने योग्य वचनोंके प्रचारसे गूढ़ स्थलोंमें विचार निमग्न कर दिया था
॥२४॥ § ४३) तदन्विति—तदनन्तर जो दिग्जय कर चुके थे, मनुष्य विद्याधर और देवों-
३० के मुकुटोंमें लगे हुए मणियोंके अग्रभागरूपी मसाणपर घिसनेसे जिसके चरणोंके नखरूपी
मणि निर्मल हो गये हैं, तथा कृतकृत्य होनेपर भी अपनी पुत्रीके विवाह-सम्बन्धी चिन्तासे
जिनका चित्त व्याप्त हो रहा था ऐसे चक्रवर्ती वज्रदन्तने पताकासमूहके निर्मल वस्त्रोंसे
जिसका घाम दूर हो गया था ऐसी अपनी राजधानी पुण्डरीकिणी नगरीमें प्रवेश किया ।
§ ४४) चक्रीति—तत्पश्चात् चक्रवर्ती वज्रदन्तने चिरकालसे मानसिक व्यथासे युक्त पुत्रीको
३५ बुलाकर मन्दहास्यकी किरणरूपी जलसे उसे सींचते हुए की तरह निम्नलिखित वचन कहे

१. मुकुट क० ।

§ ४५) शोकं जहीहि शतपत्रविशालनेत्रे
स्नाहि प्रसाधनविधिं कुरु कोमलाङ्गि ।
मौनं च संत्यज तवेष्टसमागमोऽद्य
क्षिप्रं भविष्यति कुमारि ! तमालकेशि ॥२६॥

§ ४६) यशोधरमहायोगिकैवल्यकलितावधिः ।
सर्वं जानाति तेऽस्माकं त्वत्कान्तस्यापि वृत्तकम् ॥२७॥

§ ४७) शृणु वक्ष्यामि लोलाक्षि त्रयाणां वृत्तमुत्तमम् ।
पृथक्पयोजवदने भवान्तरविभावितम् ॥२८॥

§ ४८) पुरा खल्वितः पञ्चमे भवे विभवेन जितसुरनगर्यामिहैव पुण्डरीकिणीनगर्याम्, अर्ध-
चक्रिणस्तनूजश्चन्द्रकीर्तिनामधेयोऽहं क्रमागतां राज्यलक्ष्मीमासाद्य, जयकीर्तिनाम्ना वयस्येन चिरं १०
रममाणो, गृहमेधिगृहीतानुव्रतः कालान्ते चन्द्रसेनाख्यं गुरुमाश्रित्य त्यक्त्वाहारशरीरः संन्यासविधि-

तैः सिद्धन्निव व्याहारं वक्ष्यमाणवचनम् आदधे धृतवान् उवाचेत्यर्थः । § ४५) शोकमिति—शतपत्रवत्
कमलवद् विशाले नेत्रे यस्यास्तत्संबुद्धौ हे शतपत्रविशालनेत्रे ! शोकं मनोव्यथां जहीहि त्यज । हे कोमलाङ्गि
हे मृदुलशरीरे ! स्नाहि स्नानं कुरु प्रसाधनस्यालंकरणस्य विधिं प्रसाधनविधिं कुरु, मौनं तूष्णीभावं संत्यज,
हे कुमारि ! हे तमालकेशि श्यामलशिरोरुहे ! अद्य क्षिप्रं शीघ्रं तव इष्टेन समागम इष्टसमागम इष्टप्राप्तिः १५
भविष्यति । § ४६) यशोधरेति—यशोधरमहायोगिनो यशोधरभगवतः कैवल्ये केवलज्ञानमहोत्सवे कलितः
प्राप्तोऽवधिरवधिज्ञानं यस्य तथाभूतोऽहं ते तव, अस्माकं स्वस्य त्वत्कान्तस्यापि त्वद्वल्लभस्य ललिताङ्गामरस्यापि
सर्वं वृत्तकं निखिलं वृत्तान्तं जानामि वेदि ॥२७॥ § ४७) शृणु-इति—हे लोलाक्षि हे चपललोचने ! हे
पयोजवदने हे कमलमुखि ! अहं भवान्तरविभावितं जन्मान्तरानुभूतं त्रयाणां तव स्वस्य ललिताङ्गस्य च
उत्तमं श्रेष्ठं वृत्तमुदन्तं पृथक् असंकीर्णं यथा स्यात्तथा वक्ष्यामि कथयिष्यामि, शृणु निशामय ॥२८॥ २०
§ ४८) पुरेति—पुरा पूर्वकाले खलु निश्चयेन इतो वर्तमानभवात् पञ्चमे भवे विभवेन जिता पराभूता
सुरनगरी स्वर्गपुरी यया तथाभूतायाम्, इहैव अस्यामेव पुण्डरीकिणीनगर्याम् अर्धचक्रिणो नारायणस्य तनूजः पुत्रः
चन्द्रकीर्तिनामधेयः अहं क्रमागतां वंशपरम्पराप्राप्तां राज्यलक्ष्मीं राज्यश्रियम् आसाद्य प्राप्य जयकीर्तिनाम्ना
तन्नामधेयेन वयस्येन सख्या चिरं दीर्घकालपर्यन्तं रममाणः क्रीडन् गृहमेधिनां गृहस्थानां गृहीतानि प्राप्तानि
अणुव्रतानि येन तथाभूतोऽहं कालान्ते जीवितान्ते चन्द्रसेनाख्यं तन्नामधेयं गुरुं तपोधनम् आश्रित्य प्राप्य त्यक्त्वा- २५

॥२५॥ § ४५) शोकमिति—हे कमलके समान विशालनेत्रोंवाली पुत्रि ! शोक छोड़ो, हे
कोमलाङ्गि ! स्नान करो और अलंकार धारण करो, मौन छोड़ो, हे कुमारि ! हे तमालकेशि !
आज शीघ्र ही तुम्हारा इष्टके साथ समागम होगा ॥२६॥ § ४६) यशोधरेति—यशोधर
महाराजके केवलज्ञान महोत्सवके समय जिसे अवधिज्ञान हुआ है ऐसा मैं तुम्हारे पति
ललिताङ्गदेवका सब वृत्तान्त जानता हूँ ॥२७॥ § ४७) शृण्विति—हे चपललोचने हे कमल- ३०
वदने ! मैं भवान्तरमें अनुभूत तीनोंका उत्तम वृत्तान्त पृथक्-पृथक् कहता हूँ, सुनो ॥२८॥
§ ४८) पुरेति—पूर्वकालमें इस भवसे पाँचवें भवमें मैं, वैभवसे देवनगरीके वैभवको जीतने-
वाली इसी पुण्डरीकिणी नगरीमें अर्धचक्रवर्तीका चन्द्रकीर्ति नामका पुत्र था । क्रमसे प्राप्त
राज्यलक्ष्मीको पाकर मैं जयकीर्ति मित्रके साथ चिरकाल तक क्रीडा करता रहा । अन्तमें
गृहस्थके अणुव्रत स्वीकृत कर चन्द्रसेन नामक मुनिराजका आश्रय पा मैंने आहार और ३५

मालम्ब्य, माहेन्द्रकल्पे सप्तसागरायुःस्थितिः सामानिकः सुरोऽस्मत्समानद्विविभवेन जयकीर्तिना सह समभूवम् ।

५ § ४९) ततः कालान्ते प्रच्युतौ पुष्करद्वीपदीपायमानपूर्वमन्दरपौरस्त्यविदेहविशोभित-
मङ्गलावतीविषयसंगतरत्नसंचयनगरमधिवसतः श्रीधरमहोपालस्य मनोहरा मनोरमा इति
विख्यातयोर्द्वयोस्तनयौ नाम्ना श्रीवर्माविभीषणौ बलकेशवी जातौ परिणताविव परस्परसौहार्दरसौ
विलसमानौ, राज्यलक्ष्मीं मयि ज्येष्ठे निक्षिप्य, तपसे प्रयाते ताते सुधर्मगुरुप्रतिपादितदोक्षे
निरतिशयतपोदक्षे सिद्धपदमधितिष्ठमाने, मय्यतिमात्रवात्सल्येन स्थितायां मनोहरायां च, चिराय
सुधर्मगुरुनिर्दिष्टतपः समारचय्य ललिताङ्गपदं प्राप्तायाम्, आवां चिरं भोगाननुभवावः स्म ।

§ ५०) तदनु विभीषणवियोगेन खिद्यमानमानसोऽहं, पूर्ववात्सल्यप्रत्यासन्नेन मातृचर-

- १० हारशरीरस्त्यक्ता हारदेहः संन्यासविधिं सल्लेखनाविधिम् आलम्ब्य धृत्वा माहेन्द्रकल्पे चतुर्थस्वर्गे सप्तसागरायुः-
स्थितिः सप्तसागरप्रमितायुष्कः सामानिकः सामानिकजातिकः सुरो देवो, अस्मत्समानद्विविभवे मत्सदृशद्विविभवेन
जयकीर्तिना एतन्नामवयस्येन सह समभूवम् । § ४९) तत इति—कालान्ते जीवितान्ते ततो माहेन्द्रकल्पात्
प्रच्युतौ पुष्करद्वीपस्य तृतीयद्वीपस्य दीपायमानो दीप इवाचरन्त्यो पूर्वमन्दरः पूर्वमेरुस्तस्मात् पौरस्त्यः पूर्व-
दिक्स्थितो यो विदेहो विदेहक्षेत्रं तस्मिन् विशोभितो विभूषितो यो मङ्गलावतीविषयो मङ्गलावतीदेशस्तस्मिन्
१५ संगतं यत् रत्नसंचयनगरं तत् अधिवसतस्तत्र कृतनिवासस्य श्रीधरमहोपालस्य मनोहरामनोरमेति प्रसिद्धयो
राज्योः श्रीवर्माविभीषणनामधेयो तनयौ बलमदनारायणौ जातौ, अहं मनोहरायां बलो जातो जयकीर्तिजीवश्च
मनोरमायां केशवी जात इत्यर्थः । आवां परिपाकं प्राप्तौ मिथः सौहार्दरसाविव व्यलसाव । तातौ श्रीधरमहोपाले
ज्येष्ठे मयि राज्यलक्ष्मीं समर्थं तपसे प्रयाते, सुधर्मगुरुणा प्रतिपादिता दत्ता दीक्षा प्रव्रज्या यस्य तथाभूते
निरतिशयतपसि सर्वोत्कृष्टतपस्यायां दक्षो निपुणस्तस्मिन् सिद्धपदं मुक्तिं प्राप्ते सति । मयि सातिशयस्नेहेन
२० मदीया माता मनोहरा पूर्वं गृह एव स्थितासीत् पश्चात् सुधर्मगुरुणा निर्दिष्टं तपश्चिरं चरित्वा ललिताङ्गपदं
प्राप्ता । आवां बलकेशवी च चिरं भोगाननुभूव । § ५०) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं विभीषणस्य
तन्नामकेशवस्य वियोगेन मरणेन खिद्यमानं मानसं यस्य तथाभूतोऽहं पूर्ववात्सल्येन मनोहराभवसंभूतस्नेहेन

- शरीरका त्याग कर संन्यास मरण किया । उसके फलस्वरूप मैं माहेन्द्रस्वर्गमें सात सागरकी
आयुवाला सामानिक जातिका देव हुआ । मेरा मित्र जयकीर्ति भी वहीं मेरे ही समान
२५ ऋद्धि तथा विभवको धारण करनेवाला सामानिक देव हुआ । § ४९) तत इति—आयुके
अन्तमें हम दोनों माहेन्द्र स्वर्गसे च्युत होकर पुष्कर द्वीपके दीपके समान आचरण करने-
वाले पूर्वमेरुसे पूर्वकी ओर स्थित विदेह क्षेत्रमें सुशोभित मंगलावती देशके रत्नसंचय नगरमें
रहनेवाले श्रीधर राजाकी मनोहरा और मनोरमा नामसे प्रसिद्ध दो रानियोंके क्रमसे श्रीवर्मा
और विभीषण नामके पुत्र हुए । हम बलभद्र और नारायण पदके धारक हुए तथा दोनोंमें
३० इतना गाढ स्नेह था कि परिपाकको प्राप्त हुए परस्परके मैत्रीभावके समान सुशोभित होते थे ।
कुछ समय बाद पिता श्रीधर राजा मुझ ज्येष्ठ पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी देकर तपके लिए चले
गये । सुधर्मगुरुने उन्हें दीक्षा दी तथा सर्वोत्कृष्ट तपमें समर्थ होकर वे सिद्धपदको प्राप्त हो
गये । मेरी माता मनोहरा मुझमें अधिक स्नेह रखती थी इसलिए उसने गृहत्याग नहीं किया,
घरमें ही रहती रही परन्तु अन्तमें सुधर्मगुरुके द्वारा उपदिष्ट धर्मका चिरकाल तक आचरण-
३५ कर ललितांग पदको प्राप्त हो गयी । इस प्रकार पिता और माताके चले जानेपर हम दोनों
भाई चिरकाल तक भोगोंका उपभोग करते रहे । § ५०) तदन्विति—तदनन्तर विभीषणके
वियोगसे जिसका मन खेदखिन्न हो रहा था ऐसे मुझे पूर्वस्नेहके कारण निकट आये हुए

ललिताङ्गदेवेन बोधितस्त्यक्तशोकः प्रसन्नमतिर्युगंधरमहायोगिसमीपे जैनी दीक्षामासाद्य पञ्च-
सहस्रैः पृथ्वीपतीनां समं सिंहनिष्क्रीडितं नाम दुश्चरं तपस्तप्त्वा, महोदकं सर्वतोभद्रं च चरित्वा
समासादितविज्ञानत्रयविमलालोकः सुखैकतानेऽच्युतकल्पविमाने द्वाविंशतिसागरजीवितः सुरेन्द्रो
भूत्वा, तत्र दिव्यान्भोगाननुभुञ्जानो मातृवात्सल्येन ललिताङ्गदेवमागत्यारोप्य च मामकीनं
विमानमानीय चास्मत्कल्पमसकृत् सत्क्रियां विस्तारयामि स्म ।

५

§ ५१) अथ सोऽपि ललिताङ्गः सुचिरं भोगाननुभुञ्जानो मुहुर्मुहुर्मया पूजितः, कालान्ते
च्युतो जम्बूद्वीपपूर्वविदेहशोभितमङ्गलावतीविषयविराजितरजतमहीधरोदक्तेष्वटितगन्धर्वपुर-
नाथस्य वासवस्य विद्याधरेन्द्रस्य प्रभावतीदेव्यां महीधरो नाम सुतः संजातः । क्रमेण तस्मिन् वासवे
महीधराय राज्यं समर्प्यारविन्दनिकटे मुक्तावलिनामतपस्तप्त्वा मोक्षलक्ष्मीमाटीकमाने, प्रभावत्यां

प्रत्यासन्नेन निकटवतिना मातृचरललिताङ्गदेवेन मातृजीवललिताङ्गदेवेन बोधितो बोधं प्रापितः त्यक्तशोको १०
द्रोक्कृतखेदः प्रसन्नमतिः स्वच्छचेताः सन् युगंधरमहायोगिनस्तन्नामजिनेन्द्रस्य समीपे पार्श्वे जैनीं जिनप्रोक्तां
दीक्षां प्रव्रज्याम् आसाद्य प्राप्य पृथ्वीपतीनां राज्ञां पञ्चसहस्रैः समं सिंहनिष्क्रीडितं नाम तन्नामधेयं व्रतविशेषं
दुश्चरं कठिनं तपस्तप्त्वा महोदकं सर्वतोभद्रं च तन्नामव्रतविशेषं चरित्वा (व्रतानां लक्षणं परिशिष्टे द्रष्टव्यम्)
समासादितो लब्धो विज्ञानत्रयमेव मतिश्रुतावधिज्ञानत्रिकमेव विमलालोको निर्मलप्रकाशो येन तथाभूतः सन्,
मुखस्य सातस्य एकतानो मुख्यविस्तारो यस्मिन् तस्मिन् अच्युतकल्पविमाने षोडशस्वर्गं द्वाविंशतिसागरप्रमितं १५
जीवितं यस्य तथाभूतः सुरेन्द्रो देवेन्द्रो भूत्वा तत्राच्युतकल्पविमाने दिवि भवा दिव्यास्तान् भोगान् पञ्चेन्द्रिय-
विषयान् अनुभुञ्जानोजुभवन् मातृवात्सल्येन जननीस्नेहेन ललिताङ्गदेवम् आगत्य प्राप्य मामकीनं स्वकीयं
विमानं व्योमयानम् आरोप्य च अस्मत्कल्पं षोडशस्वर्गमानीय च असकृत् अनेकशः सत्क्रियां सत्कारं विस्तार-
यामि स्म । § ५१) अथेति—अथानन्तरं सोऽपि मनोहरा मातृजीवो ललिताङ्गो देवो दीर्घकालपर्यन्तं
भोगाननुभवन् भूयोभूयो मया पूजितो जीवितान्ते ततश्च्युतः सन् जम्बूद्वीपस्य पूर्वविदेहे विशोभितो यो २०
मङ्गलावतीदेशस्तस्मिन् विराजितस्य शोभितस्य रजतमहीधरस्य विजयार्धपर्वतस्य उदक्ते उत्तरश्रेण्यां
घटितं स्थितं यद् गन्धर्वपुरं तन्नाम नगरं तस्य नाथस्य वासवस्य तन्नामनुपतेः विद्याधरराजस्य प्रभावती
प्रभावतीदेव्यां महीधरो नाम सुतः समजायत । क्रमेण च तस्मिन् वासवे महीधराय पुत्राय राज्यं दत्त्वा
अरविन्दनामनिकटे मुक्तावलिनामतपस्तप्त्वा मोक्षलक्ष्मीम् आटीकमाने प्राप्तवति प्रभावत्यां वासवविद्याधरस्य

माताके जीव ललितांगने समझाया जिससे शोक छोड़कर प्रसन्नचित्तसे मैंने युगन्धर २५
जिनेन्द्रके समीप पाँच हजार राजाओंके साथ जिनदीक्षा ले ली । सिंहनिष्क्रीडित, महोदक
और सर्वतोभद्र नामके कठिन तप तप कर मैं मतिज्ञानादि तीन ज्ञानरूपी निर्मल प्रकाशको
पा लिया तथा एक सुखका ही जहाँ विस्तार है ऐसे अच्युतकल्पके विमानमें बाईस सागर
की आयुवाला इन्द्र हुआ । वहाँ दिव्य भोगोंको भोगता रहा । माताके स्नेहके कारण मैं
ललितांगदेवके पास आकर तथा उसे अपने विमानमें चढ़ाकर कई बार अपने स्वर्गमें लाता ३०
रहा तथा उसका सत्कार करता रहा । § ५१) अथेति—तदनन्तर वह ललितांग भी चिरकाल
तक भोगोंको भोगता और मेरे द्वारा पूजित होता हुआ आयुके अन्तमें च्युत हुआ तथा
जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें विशोभित मंगलावती देशमें स्थित विजयार्ध पर्वतकी उत्तर-
श्रेणिमें विद्यमान गन्धर्वपुरके राजा वासव विद्याधरेन्द्रकी प्रभावती देवीके महीधर नामका
पुत्र हुआ । जब वासव राजा क्रमसे महीधर पुत्रको राज्य देकर तथा अरविन्द मुनिके ३५

च रत्नावलिनामतपश्चिरं चरित्वाच्युतकल्पमासाद्य प्रतीन्द्रपदं भजमानायां, सोऽयं विद्याधरराज्यं परिपालयन् सिद्धविद्यः, पुनर्विद्यापूजोद्यतो मन्दराचलनन्दनवनपूर्वदिगाश्रितचैत्यालयमधिष्ठितमानः, पुष्करार्धद्वीपपश्चिमभागपूर्वविदेहविलसितवत्सकावतीविषयप्रभाकरीपुरीमण्डनायमानस्य विनय-धरयोगीन्द्रस्य निर्वाणपूजां निष्ठाप्य महामेरुमागतवता मया लोचनगोचरीकृत एवं बोधितो बभूव ।

§ ५२) मामच्युतेन्द्रमवगच्छ नभश्चरेन्द्र !

त्वं पूर्वमाविरभवो ललिताङ्गदेवः ।

स्नेहोऽस्ति ये भवति मातृचरे गरिष्ठ-

स्तद्भद्र संत्यज मुधा विषयाभिलाषम् ॥२९॥

§ ५३) इत्युक्तमात्र एव निर्विण्णो नभश्चरेन्द्रो महीकम्पे ज्येष्ठपुत्रे समर्पितराज्यभारः, बहुभिः

१० खेचरेन्द्रैः साकं जगन्नन्दनमुनिनिकटे कनकावलिनामतपस्तप्त्वा प्राणतेन्द्रपदं प्राप्तो, विंशतिसागर-स्थितिस्तत्रानुभूतविविधभोगस्ततश्चपुत्वा, धातकीखण्डद्वीपपूर्वाशाविशोभितपश्चिमविदेहगतगन्धिल-

राज्यां च रत्नावलिनामतपस्तप्त्वाच्युतस्वर्गं प्राप्य प्रतीन्द्रपदं प्राप्तायां, सोऽयं महीधरो विद्याधरराज्यं परि-पालयन् सिद्धा विद्या यस्य तथाभूतः सन्, पुनरपि विद्यानां पूजायामुद्यतस्तत्परः सन् मन्दराचलस्य सुमेरुपर्वतस्य नन्दनवने पूर्वदिगाश्रितं पूर्वकाष्ठास्थितं चैत्यालयं अधिष्ठितमानस्तत्र विद्यमानः, पुष्करार्धद्वीपस्य तृतीयद्वीपस्य पश्चिमभागे यः पूर्वविदेहस्तस्मिन् विलसितः शोभितो यो वत्सकावतीविषयस्तस्य प्रभाकरपुर्या मण्डनायमानस्य विनयधरयोगीन्द्रस्य तन्नामतीर्थकरस्य निर्वाणपूजां मोक्षकल्याणकपूजां निष्ठाप्य समाप्य महामेरुं जम्बूद्वीपमेरुं आगतवता मयाच्युतेन्द्रेण लोचनगोचरीकृतो दृष्ट एवमनेन प्रकारेण बोधितः समुपदिष्टो बभूव ।

§ ५२) मामिति—हे नभश्चरेन्द्र हे विद्याधरराज ! मां पुरोवर्तमानम् अच्युतेन्द्रं षोडशस्वर्गाधिपतिम् अवगच्छ जानीहि त्वं पूर्व पूर्वभवे ललिताङ्गदेवः आविरभवो भूतः, मातृचरे मनोहरामातृजीवे भवति त्वयि मे गरिष्ठो

२० गुरुतरः स्नेहो रागोऽस्ति, तत्तस्मात् हे भद्र हे भव्य ! मुधा व्यर्थं विषयाभिलाषं भोगेच्छां संत्यज सम्यक् प्रकारेण मुञ्च । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२९॥ § ५३) इतीति—इतीत्यम् उक्तमात्र एव कथितमात्र एव निर्विण्णः विरक्तो नभश्चरेन्द्रो महीधरो महीकम्पे नाम ज्येष्ठपुत्रे समर्पितो निक्षिप्तो राज्यभारो येन तथा सन् बहुभिरनेकैः खेचरेन्द्रैः खगराजैः साकं जगन्नन्दनमुनिनिकटे कनकावलिनामतपोजनशनव्रतविशेषं तप्त्वा प्राणतेन्द्रपदं द्वादशस्वर्गाधिपतित्वं प्राप्तः, विंशतिसागरप्रमिता स्थितिर्यस्येति विंशतिसागरस्थितिः तत्र प्राणतस्वर्गं अनुभूता

२५ निकट मुक्तावलि नामका तप तप मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त हो गये और प्रभावती रानी रत्नावलि नामका तप चिरकाल तक तप कर अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्रपदको प्राप्त हो गयी तक यह महीधर विद्याधर राज्यका परिपालन करने लगा, इसे विद्याधरोंके योग्य विद्याएँ सिद्ध हो गयीं । एक बार वह विद्याओंकी पुनः पूजा करनेके लिए उद्यत हुआ, मन्दरगिरिके नन्दनवनसम्बन्धी पूर्वदिशामें स्थित चैत्यालयमें स्थित था, उसी समय मैं पुष्कर द्वीपके पश्चिमार्ध सम्बन्धी

३० पूर्व विदेहक्षेत्रमें सुशोभित वत्सकावती देशकी प्रभाकरपुरीके अलंकार विनयन्धर तीर्थकरकी निर्वाणपूजा समाप्त कर जम्बूद्वीपके मेरुपर्वतकी ओर आ रहा था सो मैंने उसे देखकर इस प्रकार समझाया था । § ५२) मामिति—हे विद्याधरराज ! तुम मुझे अच्युतेन्द्र समझो, तुम पहले भवमें ललिताङ्गदेव थे, तुम मेरी माता मनोहराके जीव हो अतः तुममें मेरा प्रगाढ़ स्नेह है इसलिए हे भद्र ! व्यर्थ ही विषयोंकी अभिलाषा छोड़ो ॥२९॥ § ५३) इतीति—इस

३५ प्रकार कहते ही विद्याधरोंका राजा महीधर विरक्त हो गया, उसने महीकम्प नामक बड़े पुत्र-के लिए राज्यका भार सौंपा और स्वयं बहुतसे विद्याधरराजाओंके साथ जगन्नन्दन नामक मुनिके निकट कनकावलि नामका तप तप कर प्राणतस्वर्गके इन्द्रपदको प्राप्त हुआ । वहाँ

विषयायोध्यानगराधिपतेर्जयवर्मणः सुप्रभायामजितंजयनामपुत्रः समजायत ।

§ ५४) ततश्च जयवर्मजगतीपाले राज्यलक्ष्मीं निजनन्दने समर्प्याभिनन्दनपार्श्वे चिर-
माचाम्लवर्धनं नाम तपस्तप्त्वा शाश्वतं पदमुपगते, सुप्रभायां च सुदर्शनां गणिनीमासाद्य रत्नावलि-
मुपोष्याच्युताधिपतिपदं प्राप्तायां, सोऽयमजितंजयोऽप्युदितचक्ररत्नोऽभिनन्दनजिनपदारविन्दं
वन्दमानः, पापास्रवद्वारपिधानेन पिहितास्रव इत्यन्वर्थनामधेयं दधानाश्चिरकालं राज्यसुखमनु- ५
भुञ्जानो मदीयधर्मबोधनविजृम्भितवैराग्यभारो विंशतिसहस्रैर्नृपकुमाराणां सह मन्दरस्थविरमुनि-
समीपे दीक्षामुपादाय, संजातावधिज्ञानसंपन्नचारणद्विरम्बरतिलकमहोदरे भवत्यै जिनगुणसंपत्ति-
श्रुतज्ञानाख्यमनशनन्नतं स्वर्गसुखसाधनं प्रतिपादयामास ।

उपभुक्ता विविधभोगा नैकविधविषया येन तथाभूतः सन् ततः प्राणतस्वर्गात् च्युत्वा धातकीखण्डद्वीपस्य द्वितीय-
द्वीपस्य पूर्वाशायां पूर्वदिशायां विशोभितो विराजितो यः पश्चिमविदेहस्तत्र गतो यो गन्धिलविषयस्तस्यायोध्या- १०
नगरस्याधिपतेः स्वामिनो जयवर्मणः सुप्रभायां पत्न्याम् अजितंजयनाम पुत्रः समजायत समुत्पन्नः ।
§ ५४) ततश्चेति—तदनन्तरश्च जयवर्मा चासौ जगतीपालश्च जयवर्मजगतीपालस्तस्मिन् निजनन्दने
स्वसुते अजितंजये राज्यलक्ष्मीं राज्यश्रियं समर्प्य अभिनन्दनस्य तन्नामजिनेन्द्रस्य पार्श्वे समीपे चिरं दीर्घकाल-
पर्यन्तम् आचाम्लवर्धनं नाम तपः तन्नामानशनन्नतविशेषं तप्त्वा शाश्वतं पदं मोक्षम् उपगते प्राप्ते सति,
सुप्रभायां च तत्पत्न्यां च सुदर्शनां तन्नामधेयां गणिनीं प्रधानार्थिकाम् आसाद्य प्राप्य रत्नावलिम् उपोष्य १५
तन्नामोपवासन्नतं कृत्वा अच्युताधिपतिपदं षोडशस्वर्गेन्द्रपदं प्राप्तायां सत्यां सोऽयम् अजितंजयोऽपि उदितं
प्रकटितं चक्ररत्नं यस्य तथाभूतः सन् अभिनन्दनजिनस्य तन्नामतीर्थकरस्य पदारविन्दं चरणकमलं वन्दमानो
नमस्कारं कुर्वन् पापास्रवद्वारस्य पिधानेनाच्छादनेन पिहित आस्रवो येन स पिहितास्रव इतीत्यम् अन्वर्थनामधेयं
दधानः, अजितंजयचक्रधरस्यैव पिहितास्रव इति द्वितीयं सार्थकं नाम । चिरकालं राज्यसुखमनुभवन् मदीयधर्म-
बोधनेन मत्कृतधर्मोपदेशेन विजृम्भितो वर्धितो वैराग्यभारो यस्य तथाभूतः सन् नृपकुमाराणां विंशतिसहस्रैः २०
सह मन्दरस्थविरमुनिसमीपे प्रव्रज्याम् उपादाय, संजाता समुत्पन्नावधिज्ञानसंपन्नाचारणद्विर्यस्य तथाभूतः
सन् अम्बरतिलकमहोदरे भवत्यै श्रीमतीपूर्वभवजोवाय जिनगुणसंपत्तिश्रुतज्ञाननामधेयं स्वर्गसुखस्य साधनम्

उसकी बीस सागरकी स्थिति थी । नानाप्रकारके भोगोंको भोगकर वह वहाँसे च्युत हुआ
और धातकीखण्डद्वीपकी पूर्वदिशामें सुशोभित पश्चिमविदेह क्षेत्र सम्बन्धी गन्धिल देशके
अयोध्यानगरके राजा जयवर्माकी सुप्रभा नामक स्त्रीसे अजितंजय नामका पुत्र हुआ । २५
§ ५४) ततश्चेति—तदनन्तर जब जयवर्मा राजा अपने अजितंजय नामक पुत्रके लिए राज्य-
लक्ष्मी सौंपकर अभिनन्दन जिनेन्द्रके समीप चिरकाल तक आचाम्लवर्धन नामका तप तप
कर मोक्ष चले गये और सुप्रभा सुदर्शना नामक गणिनीके पास जाकर तथा रत्नावलि नामका
उपवास कर अच्युत स्वर्गमें इन्द्र पदको प्राप्त हो गयी तब यह अजितंजय भी चक्ररत्नके
प्रकट होनेसे चक्रवर्ती हुआ । अजितंजयचक्रवर्ती अभिनन्दन जिनेन्द्रके चरणकमलोंकी ३०
वन्दना करता था तथा उसने पापास्रवके द्वार बन्द कर दिये थे इसलिए वह 'पिहितास्रव'
इस सार्थक नामको धारण करता था अर्थात् उसका दूसरा नाम पिहितास्रव प्रचलित हो
गया था । यह पिहितास्रव चिरकाल तक राज्यसुखका उपभोग करता रहा अन्तमें मेरे धर्मो-
पदेशसे उसके वैराग्यकी वृद्धि हुई और बीस हजार राजकुमारोंके साथ उसने मन्दरस्थविर
मुनिके पास दीक्षा ले ली । उसे अवधिज्ञान तथा चारण ऋद्धिकी प्राप्ति हुई । इन्हीं पिहितास्रव ३५
मुनिने निर्नामिकाके भवमें तुम्हें अम्बरतिलक नामक पर्वतपर स्वर्गसुखके साधनभूत जिन-

§ ५५) मालतीसुकुमाराङ्गि ! माननीयगुणे सुते !

ततोऽस्मद्गुरुरेवासीत्तवाप्यभ्यर्हितो गुरुः ॥३०॥

§ ५६) एवं गुरुस्नेहेन मया पूजितेषु द्वाविंशतिललिताङ्गेषु चरमस्तव भर्ता प्राग्भवे महाबलः स्वयंबुद्धोपदेशविलसितदेवभूयो ललिताङ्गस्त्रिदिवाच्युतः सोऽयमिदानीमस्माकं

५ प्रत्यासन्नतमो बन्धुः संजातस्तव च भर्ता भविष्यति ।

§ ५७) अन्यद्वक्ष्याम्यभिज्ञानं कन्ये ! धन्यगुणे शृणु ।

यस्याः कचाः कटाक्षाश्च शिलीमुखमदापहाः ॥३१॥

§ ५८) पुरा किल युवाभ्यां दम्पतोभ्यां समन्वितोऽहं युगंधरतीर्थलब्धसम्यग्दर्शनाभ्यां ब्रह्मेन्द्रलान्तवाभ्यां तच्चरितं पृष्ठ एवमवोचम् ।

- १० अनशनव्रतं प्रतिपादयामास कथयामास । § ५५) मालतीति—मालतीवत् सुकुमारं मृदुलमङ्गं यस्यास्तत्संबुद्धो हे मालतीसुकुमाराङ्गि ! माननीया आदरणीया गुणा यस्यास्तत्संबुद्धो हे माननीयगुणे सुते ! पुत्रि ! ततस्तस्मात् कारणात्, अस्मद्गुरुरेव तवापि अभ्यर्हितः पूजितो गुरुरासीद् बभूव । § ५६) एवमिति—एवमनेन प्रकारेण गुरुस्नेहेन गुरुजन्मस्नेहेन मयाच्युतेन्द्रेण पूजितेषु सत्कृतेषु द्वाविंशतिललिताङ्गेषु, अच्युतेन्द्रस्य स्थिति-द्वाविंशतिसागरप्रमिता बभूव ततस्तस्येन्द्रत्वे ऐशानस्वर्गे द्वाविंशतिललिताङ्गा अभूवन् सर्वेषां चाच्युतेन्द्रेण
- १५ समानः सत्कारः कृत इत्यर्थः । तेषु द्वाविंशतिललिताङ्गेषु चरमो ललिताङ्गो देवस्तव बल्लभ आसीत् । सोऽयं प्राग्भवे महाबलोऽभूत् स्वयंबुद्धस्य तन्नामामात्यस्योपदेशेन विलसितं प्राप्तं देवभूयं देवत्वं यस्य तथाभूतो ललिताङ्गः त्रिदिवात् स्वर्गात् च्युतः सन् इदानीं सांप्रतम् अस्माकमतिशयेन प्रत्यासन्नो निकट इति प्रत्यासन्न-तमो बन्धुः पितृष्वसृसुतः संजातः तव च भर्ता भविष्यति । § ५७) अन्यदिति—यस्यास्तव कचाः केशाः कटाक्षा अपाङ्गाश्च शिलीमुखानां भ्रमराणां बाणानां च मदापहा गर्वापहारकाः सन्ति, एवंभूते धन्यगुणे
- २० प्रशस्तगुणयुक्ते कन्ये ! अन्यदपि अभिज्ञानं परिचायकचित्तं वक्ष्यामि कथयिष्यामि शृणु समाकर्णय । 'शिली-मुखो भवेद्भृङ्गे मार्गणे च शिलीमुखः' इति विश्वलोचनः ॥३१॥ § ५८) पुरेति—पुरा किल पूर्वस्मिन्काले युवाभ्यां स्वयंप्रभाकलिङ्गाभ्यां जाया च पतिश्चेति दम्पती ताम्यां 'जायाया जम्भावो दम्भावश्च वा निपात्यते' इति वार्तिकेन जायास्थाने दम्भावो निपातितः, समन्वितः सहितोऽहमच्युतेन्द्रे युगंधरस्य तीर्थे लब्धं सम्यग्दर्शनं याभ्यां ताम्यां ब्रह्मेन्द्रलान्तवाभ्यां ब्रह्मेन्द्रलान्तवेन्द्राभ्यां तच्चरितं युगंधरजिनेन्द्रचरितं पृष्ठः सन् एवमनेन
- २५ गुणसम्पत्ति और श्रुतज्ञान नामके अनशनव्रत दिये थे । § ५५) मालतीति—मालतीके समान कोमल शरीर वाली ! तथा माननीयगुणोंसे युक्त हे पुत्रि ! इस तरह जो हमारे गुरु थे वही तुम्हारे भी पूजनीय गुरु हुए ॥३०॥ § ५६) एवमिति—इस प्रकार गुरुके स्नेहसे मेरे द्वारा सम्मानको प्राप्त हुए बाईस ललितांग देवोंमें अन्तिम ललितांग तुम्हारा पति था । यह पूर्वभवमें महाबल था, स्वयंबुद्ध मन्त्रीके उपदेशसे उसे देवपर्याय मिली थी । वह ललितांग
- ३० स्वर्गसे च्युत होकर इस समय हमारा अत्यन्त निकटका भाई हुआ है वही तुम्हारा पति होगा । § ५७) अन्यदिति—हे प्रशंसनीयगुणोंसे युक्त बेटी ! सुन, एक दूसरी पहचान और कहता हूँ । तेरे केश और कटाक्ष दोनों ही शिलीमुखोंका गर्व नष्ट करने वाले हैं अर्थात् केश तो शिलीमुख-भ्रमरका मद नष्ट करने वाले हैं अर्थात् उससे भी अधिक काले हैं और कटाक्ष शिलीमुख-बाणका गर्व नष्ट करनेवाले हैं अर्थात् बाणसे भी अधिक गहरा आघात करनेवाले हैं ॥३१॥ § ५८) पुरेति—पहले कभी मैं आप दोनों दम्पतियों (ललितांग और स्वयंप्रभा) के साथ था उस समय युगन्धर महाराजके तीर्थमें जिन्हें सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ था ऐसे ब्रह्मेन्द्रलान्तवेन्द्रने मुझसे युगन्धर महाराजका चरित-पूछा था, तब उनका चरित मैंने इस

§ ५९) जम्बूद्वीपपूर्वविदेहविलसितवत्सकावतीमण्डलमण्डनायमानसुसीमानगराधिपतेरजित-
जयनामधेयस्य सचिववरिष्ठादमृतमतिनाम्नः सत्यभामायां जातः प्रहसितस्तत्सखश्च विकसितः ।
तावेतौ सदा सहचारिणौ तर्कपारावारतलस्पर्शिधिषणौ वादकलाप्रवीणौ कदाचिन्मतिसागरनाम-
मुनिवरमुपागतेन नरपतिना सह समागतौ सकलनिजशङ्काकलङ्कनिकारगभीरया गिरा जीवतत्त्व-
निरूपणं कुर्वाणं मुनिपूषणमानम्य गृहीतसंयमौ सुदर्शनमाचाम्लवर्धनं चोपोष्य, विधाय च निदानं ५
बलदेववासुदेवयोः कालान्ते महाशुके षोडशसागरोपमस्थितिसहिताविन्द्रप्रतीन्द्रौ संजातौ,
चिरममरसंपदमनुभूय स्वायुरन्ते च्युतौ, धातकीखण्डसुन्दरपश्चिममन्दरपूर्वविदेहविराजितपुष्कला-
वतीविषयमण्डितपुण्डरीकिणीपुरीं पालयतो धनंजयभूपालस्य जयन्तायशस्वतीदेव्योस्तनयौ
महाबलातिबलनामधेयौ बलकेशवावजायेताम् ।

प्रकारेण अत्रोचं जगाद । § ५९) जम्बूद्वीपेति—जम्बूद्वीपस्य प्रथमद्वीपस्य पूर्वविदेहे विलसितं शोभितं यद् १०
वत्सकावतीमण्डलं वत्सकावतीदेशस्तस्य मण्डनायमानं यत् सुसीमानगरं तस्याधिपतेः स्वामिनः अजितंजय-
नामधेयस्य सचिववरिष्ठात् मन्त्रिश्रेष्ठत् अमृतमतिनाम्नः सत्यभामायां भासायां जातः समुत्पन्नः प्रहसितः तस्य
सखा तत्सखस्तदीयसुहृद् विकसितश्च । तावेतौ प्रहसितविकसितौ सदा निरन्तरं सहचारिणौ सहगामिनौ
तर्कपारावारस्य न्यायशास्त्राम्बुधेस्तलस्पर्शिणी धिषणा बुद्धिर्ययोस्तौ तथाभूतौ वादकलायां शास्त्रार्थवैदग्ध्यां
प्रवीणौ निपुणौ कदाचित् मतिसागरनाममुनिवरम् उपागतेन वन्दितुं प्राप्तेन नरपतिनाजितंजयेन राज्ञा सह १५
समागतौ समायातौ, सकलाः समस्ता या निजशङ्काः स्वकीयारेकास्ता एव कलङ्कस्तस्य निकारे तिरस्कारे
दूरीकरण इत्यर्थः गभीरया निपुण्या गिरा वाण्या जीवतत्त्वस्य निरूपणं प्रतिपादनं कुर्वाणं मुनिः पूषा इव तं
मुनिसूर्यम् आनम्य नमस्कृत्य गृहीतसंयमौ धृतचारित्र्यौ सुदर्शनं तन्नामधेयम् आचाम्लवर्धनं च तन्नामधेयं व्रतं च
उपोष्य उपवासं कृत्वा, बलदेववासुदेवयोर्बलभद्रनारायणयोर्निदानं च निदानबन्धं च विधाय कृत्वा कालान्ते
आयुरन्ते महाशुके दशमस्वर्गे षोडशसागरोपमस्थितिसहितौ इन्द्रश्च प्रतीन्द्रश्चेति इन्द्रप्रतीन्द्रौ संजातौ संभूतौ २०
चिरं षोडशसागरपर्यन्तम् अमरसंपदम् देवसंपत्तिम् अनुभूय समुपभूज्य स्वायुषो स्वजीवितस्यान्ते च्युतौ, धातकी-
खण्डे द्वितीयद्वीपे सुन्दरः शोभमानो यः पश्चिममन्दरः पश्चिमदिक्स्थितमेरुस्तस्य पूर्वविदेहे विराजितो
विशोभितो यः पुष्कलावतीविषयस्तस्मिन् मण्डिता शोभिता या पुण्डरीकिणीपुरी तां पालयतो रक्षतो धनंजय-

प्रकार कहा था । § ५९) जम्बूद्वीपेति—जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें सुशोभित वत्सकावती-
देशके आभरणस्वरूप सुसीमा नगरके राजा अजितंजयके प्रधानमन्त्री अमृतमतिसे उनकी २५
सत्यभामा नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुआ एक प्रहसित नामका पुत्र था तथा प्रहसितका विकसित
नामका एक मित्र था । ये दोनों सदा साथ रहते थे, इनकी बुद्धि न्यायशास्त्ररूपी समुद्रके
तलका स्पर्श करनेवाली थी तथा शास्त्रार्थकी कलामें दोनों चतुर थे । किसी समय ये दोनों,
मतिसागर नामक मुनिराजके पास गये हुए राजाके साथ आये थे, वहाँ अपनी समस्त-
शंकाओंरूपी कलंकको दूर करनेमें निपुण वाणीके द्वारा जीवतत्त्वका निरूपण करनेवाले ३०
श्रेष्ठ मुनिराजरूपी सूर्यको नमस्कार कर दोनोंने संयम ग्रहण कर लिया अर्थात् मुनिदीक्षा
ले ली तथा सुदर्शन और आचाम्लवर्धन नामक व्रतके उपवास किये एवं हम बलभद्र और
नारायण बनें ऐसा निदानबन्ध किया । आयुके अन्तमें दोनों महाशुक्र नामक दशवें स्वर्गमें
सोलहसागरकी आयुवाले इन्द्र और प्रतीन्द्र हुए । वहाँ चिरकाल तक देवोंकी सम्पदाका
उपभोग कर आयुके अन्तमें वहाँसे च्युत हुए और धातकीखण्डमें सुशोभित पश्चिममेरु ३५
पर्वतके पूर्वविदेह क्षेत्रमें सुशोभित पुष्कलावती देशकी शोभायमान पुण्डरीकिणीपुरीकी रक्षा

- § ६०) तदनु, राज्यं परिपालयन्महाबलः केशवस्यातिबलस्य वियोगेन संजातवैराग्यः समाधिगुप्तमहामुनिपाश्वे तपस्तप्त्वा प्राणतेन्द्रपदं प्राप्तस्तत्र विंशतिसागरोपमस्थितिरमरलक्ष्मीमनुभूय, धातकोखण्डपश्चिममन्दरपूर्वविदेहवत्सकावतीविषयप्रभाकरीपुरीनाथस्य महासेनमहीपालस्य वसुंधरादेव्यां जयसेनाह्वयः पुत्रः संजातः, क्रमेणोद्भूतचक्ररत्नः सुचिरं पालितमहीबलयः सीमंधर-
 ५ जिनपादपयोजमूले जैनीं दीक्षामासाद्य भावितषोडशभावनः कलितनिरतिशयतपसा ग्रैवेयकेपूर्व-
 मध्यमे प्राप्याहमिन्द्रपदं, तत्र विंशत्सागरोपमस्थितिर्दिव्यान् भोगाननुभूय ततोऽवतीर्य, पुष्करार्ध-
 द्वीपपूर्वमन्दरपूर्वविदेहसंगतमङ्गलावतीविषयविशोभितरत्नसंचयराजधानीमधिवसतोऽजितंजयभूपा-
 लस्य वसुमतीनामदेव्यां युगंधरः समजायत ।

- भूपालस्य जयन्तायशस्वतीदेव्योर्जयन्तायशस्वतीनामराज्योस्तनयौ महाबलातिबलनामधेयौ बलकेशवौ बलभद्र-
 १० नारायणौ अजायेतां संभूतौ । § ६०) तदन्विति—तदनन्तरं राज्यं परिपालयन् महाबलो बलभद्रः केश-
 वस्य नारायणस्यातिबलस्य वियोगेन मृत्युना संजातं समुत्पन्नं वैराग्यं यस्य तथाभूतः सन् समाधिगुप्तमहामुनि-
 महामुनिश्च समाधिगुप्तमहामुनिस्तस्य पाश्वे तपस्तप्त्वा प्राणतेन्द्रपदं चतुर्दशस्वर्गाधिपतिपदं प्राप्तः, तत्र विंशति-
 सागरोपमा स्थितिर्यस्य तथाभूतः सन् अमरलक्ष्मीं देवश्रियम् अनुभूय समुपभुज्य धातकोखण्डे द्वितीयद्वीपे
 पश्चिममन्दरात् पश्चिमदिक्स्थमेरोः पूर्वविदेहे यो वत्सकावतीविषयस्तस्य प्रभाकरीपुर्या नाथः परिवृष्टस्तस्य,
 १५ महासेनमहीपालस्य वसुंधरादेव्यां तन्नामराज्यां जयसेनाह्वो जयसेननामधेयः पुत्रः संजातः, क्रमेण उद्भूतं प्रकटितं
 चक्ररत्नं यस्य तथाभूतः सुचिरं दीर्घकालपर्यन्तं पालितमहीबलयो रक्षितभूचक्रवालः सीमंधरजिनस्य पादपयोज-
 मूले चरणकमलमूले जैनीं जिनोक्तां दीक्षां प्रव्रज्याम् आसाद्य प्राप्य भाविता अनुचिन्तिताः षोडशभावना दर्शन-
 विशुद्ध्यादयो येन तथाभूतः सन् कलितं कृतं यत् निरतिशयतपः सर्वोत्कृष्टतपश्चरणं तेन ग्रैवेयकेषु ऊर्ध्वमध्यमे-
 ऽष्टमग्रैवेयक इत्यर्थः अहमिन्द्रपदं प्राप्य तत्र विंशत्सागरोपमा स्थितिर्यस्य तादृशः दिव्यान् मनोहरान् स्वर्ग-
 २० संबन्धिनो भोगान् पञ्चेन्द्रियविषयान् अनुभूय ततोऽष्टमग्रैवेयकात् अवतीर्य च्युत्वा पुष्करार्धद्वीपस्य पूर्वमन्दरात्
 पूर्वविदेहे संगतः स्थितो यो मङ्गलावतीविषयस्तस्मिन् विशोभिता विराजिता या रत्नसंचयराजधानी ताम्
 अधिवसतः तत्र कृतनिवासस्य अजितंजयभूपालस्य तन्नामनृपतेः वसुमतीनामदेव्यां युगंधरः समजायत संभूतः ।

- करनेवाले धनंजय राजाकी जयन्ता और यशस्वती नामकी रानियोंके महाबल तथा अति-
 बल नामसे सहित बलभद्र और नारायण पदके धारक पुत्र हुए । § ६०) तदन्विति—
 २५ तदनन्तर राज्यका पालन करता हुआ महाबल, अतिबल नारायणके मरणसे विरक्त हो गया ।
 फलस्वरूप समाधिगुप्त नामक महामुनिके पास तप तपकर उसने प्राणत स्वर्गमें इन्द्रका पद
 प्राप्त किया । वहाँ बीस सागरकी उसकी स्थिति थी । उतने समय तक देवोंकी लक्ष्मीका
 उपभोग कर धातकोखण्डके पश्चिम मेरुसे पूर्व विदेहक्षेत्रमें स्थित वत्सकावती देशकी
 प्रभाकरी नगरीके स्वामी महासेन राजाकी वसुन्धरा रानीमें जयसेन नामका पुत्र हुआ ।
 ३० क्रमसे उसके चक्ररत्न प्रकट हुआ, चक्रवर्ती होकर वह दीर्घकाल तक पृथिवीमण्डलकी रक्षा
 करता रहा । अन्तमें सीमन्धर तीर्थकरके चरणकमलोंके मूलमें जिनदीक्षा प्राप्तकर उसने सोलह
 कारण भावनाओंका चिन्तन किया तथा किये हुए सर्वोत्कृष्ट तपके द्वारा आठवें ग्रैवेयकमें
 अहमिन्द्र पदको प्राप्त किया । वहाँ तीस सागरकी स्थिति प्राप्तकर दिव्यभोगोंका उपभोग
 करता रहा । अन्तमें वहाँसे च्युत हो पुष्करार्ध द्वीप सम्बन्धी पूर्वमेरुके पूर्वविदेह क्षेत्रमें
 ३५ स्थित मंगलावती देशमें सुशोभित रत्नसंचय नामकी राजधानीमें रहनेवाले अजितंजय

§ ६१) सोऽयं युगंधरजिनः सुरमौलिराजी-

नीराजिताङ्घ्रियुगलः सकलाभिवन्द्यः ।

केवल्यसंपदमुपेत्य महोयतेऽद्य

भव्याम्बुजातवनमण्डलचण्डभानुः ॥३२॥

§ ६२) तदेति मद्बचः श्रुत्वा बहवो दर्शनं श्रिताः ।

युवां च धर्मसंवेगौ परमं समुपागती ॥३३॥

§ ६३) हरिणाङ्कगर्वहरणाननाम्बुजे

पिहितास्रवस्य महितामराञ्चितम् ।

अयि केवलोदयमहं महागुणे !

सममागता वयमपि स्मरस्यदः ॥३४॥

§ ६४) सुते स्मरसि किं भद्रे स्वयंभूरमणोदधिम् ।

क्रीडाहेतोर्ब्रजिष्यामो गिरिं चाञ्जनसंज्ञकम् ॥३५॥

§ ६१) सोऽयमिति—सुराणां या मौलिराजी मुकुटपङ्क्तिस्तथा नीराजितं कृतारातिकम् अङ्घ्रियुगलं चरण-
कमलं यस्य तथाभूतः, सकलैर्निखिलसुरासुरलोकैरभिनन्द्यः स्तवनीयः, भव्या भव्यजीवा एवाम्बुजातवनमण्डलं
कमलवनसमूहस्तस्य चण्डभानुः सूर्यः सोऽयं युगंधरजिनोऽजितं जयवसुमत्योरङ्गजः अद्य केवल्यसंपदं केवल- १५
ज्ञानसंपत्तिम् उपेत्य लब्ध्वा महोयते पूज्यते । रूपकालंकारः । वसन्ततिलकाच्छन्दः ॥३२॥ § ६२) तदे-
तीति—तदा तस्मिन् काले इति पूर्वोक्तप्रकारं मद्बचोऽस्मद्वाणीं श्रुत्वा समाकर्ण्य बहवो भूयांसो जनाः दर्शनं
सम्यक्त्वं श्रिताः प्राप्ताः । युवां च स्वयंप्रभाललिताङ्गी परमं समुत्कृष्टं यथा स्यात्तथा धर्मश्च संवेगश्चेति धर्मसंवेगौ
धर्मनिर्वेदौ समुपागती प्राप्ता ॥३३॥ § ६३) हरिणाङ्केति—हरिणाङ्कश्चन्द्रस्तस्य गर्वहरणं दपिहारक- २०
माननाम्बुजं मुखकमलं यस्यास्तत्संबुद्धौ, महान्तो गुणा यस्यास्तत्संबुद्धौ एवंभूते अयि पुत्रि ! पिहितास्रवस्या-
जितं जयापरनाम्नस्तपोधनस्य, महितामरैः पूजितदेवैरञ्चितं पूजितं केवलोदयमहं केवलज्ञानप्राप्तिमहोत्सवम्, वय-
मपि अच्युतेन्द्रस्वयंप्रभाललिताङ्गादयः समं सार्धम् आगताः समायाताः अद एतत् स्मरसि । मञ्जुभाषिणीच्छन्दः
॥३४॥ § ६४) सुत इति—हे भद्रे कल्याणि ! सुते पुत्रि !, वयं क्रीडाहेतोः केलिनिमित्तात् स्वयंभूरमणोदधिं
स्वयंभूरमणनामानमन्तिमजलनिधिम्, अञ्जनसंज्ञकं तन्नामधेयं गिरिं च पर्वतं च ब्रजिष्यामोऽगच्छन् अभिज्ञावचने

राजाकी वसुमती रानीसे युगन्धर नामका पुत्र हुआ । § ६१) सोऽयमिति—देवोंकी मुकुट- २५
पङ्क्तिके द्वारा जिनके चरणयुगलकी आरती की गयी है, जो सबके द्वारा स्तुत्य है तथा भव्य-
जीवरूपी कमलवनके समूहको विकसित करनेके लिए सूर्य हैं ऐसे यह युगन्धर जिनराज
आज केवलज्ञानरूपी सम्पदाको पाकर पूजित हो रहे हैं ॥३२॥ § ६२) तदेति—उस समय
इस प्रकारके मेरे वचन सुनकर अनेक जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हुए तथा तुम दोनों—स्वयंप्रभा
और ललितांग उत्कृष्ट रूपसे धर्म तथा संवेगको प्राप्त हुए थे ॥३३॥ § ६३) हरिणाङ्केति— ३०
जिसका मुखकमल चन्द्रमाके गर्वको हरनेवाला है तथा जो बहुत भारी गुणोंसे सहित है
ऐसी हे बेटी ! तुझे स्मरण होगा कि हमलोग पिहितास्रव मुनिराजके उत्तमदेवोंसे पूजित
केवलज्ञान प्राप्तिके महोत्सवमें साथ-साथ ही आये थे ॥३४॥ § ६४) सुत इति—हे कल्याण-
वती पुत्री ! तुझे यह भी स्मरण होगा कि हमलोग क्रीडाके लिए स्वयंभूरमण समुद्र और

§ ६५) इति कर्णरसायनं पितृवचनमाकर्ण्य युष्मत्प्रसादविभवेनैतत्सर्वं जानामि किन्तु शिरीषकोमलाङ्गो ललिताङ्गः क्व जातो न ज्ञायते इति प्रतिपादितवतीं श्रीमतीं पुनश्चक्रधरः प्रत्युवाच । भद्रे ! युवयोः स्वर्गस्थयोरेवाच्युतकल्पात्प्राक् प्रच्युतोऽहं यशोधरमहीपतेर्वसुंधरायां देव्यां वज्रदन्तः संजातः । युवां च स्वर्गाच्युतो यथायोग्यं राजपुत्री जातौ ।

५ § ६६) ललिताङ्ग ! तृतीयेऽह्नि ललिताङ्गचरेण ते ।
संगमो भविताद्यैव तद्द्वार्तां वक्ति पण्डिता ॥३६॥

§ ६७) पैतृष्वस्त्रीय एवायं तव भर्ता भविष्यति ।
अपाङ्गसुन्दरो यस्त्वन्नेत्रान्त इव भासते ॥३७॥

§ ६८) इति प्रतिपाद्य समागच्छन्तीं तव मातुलानीं वयं प्रत्युदगच्छाम इति 'चक्रधरे

- १० लृट्' इत्यभिज्ञायां भूतानद्यतने लृटलकारः । इति किं स्मरसि ध्यायसि ॥३५॥ § ६५) इतीति—इतीत्यं कर्णरसायनं श्रोत्रानन्ददायकं पितृवचनं जनकवच आकर्ण्य निशम्य युष्मत्प्रसादविभवेन भवत्प्रसादैश्वर्येण एतत्सर्वं जानामि किन्तु शिरीषवत्कोमलं सुकुमारमङ्गं शरीरं यस्य तथाभूतो ललिताङ्गः पूर्वभवपतिः क्व जातः कुत्रोत्पन्न इति न ज्ञायते । इतीत्यं प्रतिपादितवतीं निगदितवतीं श्रीमतीं चक्रधरो वज्रदन्तः पुनरपि प्रत्युवाच प्रतिजगाद । भद्रे ! कल्याणि ! युवयोः स्वयंप्रभाललिताङ्गयोः स्वर्गस्थयोस्त्रिदिवस्थितयोरेव सतोः अच्युतकल्पात् षोडशस्वर्गात् प्राक्प्रच्युतोऽवतीर्णोऽहमच्युतेन्द्रः यशोधरमहीपतेर्वसुंधरादेव्यां वज्रदन्त इति नामा संजातः समुत्पन्नः । युवां च स्वयंप्रभाललिताङ्गौ यथायोग्यं स्वकृतपुण्यानुसारं पुत्रश्च पुत्री चेति पुत्रो 'पुमान् स्त्रिया' इति पुंशेषः राज्ञोः पुत्रो राजपुत्री जातौ समुत्पन्नौ । § ६६) ललिताङ्गीति—हे सुन्दराङ्ग ! तृतीये दिवसे ते तव भूतपूर्वो ललिताङ्ग इति ललिताङ्गचरस्तेन ललिताङ्गजीवेन सह संगमो भविता भविष्यति, तद्द्वार्तां ललिताङ्गचरसमाचारम् अद्यैव पण्डिता तन्नामधारी वक्ति कथयिष्यति वच् परिभाषणे
- १५ 'वर्तमानसामोप्ये वर्तमानवद्वा' इति लट् ॥३६॥ § ६७) पैतृष्वस्त्रीय—पितृष्वसुरपत्यं पुमान् पैतृष्वस्त्रीयो मम भगिनोपुत्र एवायं तव भर्ता पतिर्भविष्यति यो भर्ता त्वन्नेत्रान्त इव त्वदीयनेत्रकोण इव अपाङ्गसुन्दरः अपाङ्गः कटाक्षः सुन्दरः पक्षे अपाङ्ग इवानङ्ग इव सुन्दरो मनोहरः भासते शोभते । श्लेषोपमा ॥३७॥ § ६८) इतीति—इतीत्यं प्रतिपाद्य कथयित्वा, तव भवत्या मातुलानीं प्रियाम्बिकां 'मातुलानी प्रियाम्बिका' इति

- अञ्जनगिरि पर्वत पर गये थे ॥३५॥ § ६५) इतीति—इस प्रकार कानोंके लिए आनन्ददायक
- २५ पिताके वचन सुनकर आपके प्रसादसे यह सब जानती हूँ । किन्तु शिरीषके समान सुकुमार शरीरवाला ललितांग कहाँ उत्पन्न हुआ है यह नहीं ज्ञात हो रहा है इस प्रकार कहनेवाली श्रीमतीसे चक्रवर्ती वज्रदन्तने फिर कहा । हे भद्रे ! जब तुम दोनों स्वर्गमें ही स्थित थे तब मैं अच्युतस्वर्गसे पहले च्युत होकर यशोधर महाराजकी वसुन्धरादेवीसे वज्रदन्त हुआ हूँ और तुम दोनों भी स्वर्गसे च्युत होकर यथायोग्य राजपुत्री तथा राजपुत्र हुए हो ।
- ३० § ६६) ललितांगीति—हे मनोहरांगि ! तीसरे दिन तुम्हारा ललितांगके जीवके साथ समागम हो जावेगा यह बात आज ही पण्डिता कहेगी ॥३६॥ § ६७) पैतृष्वस्त्रीय—यह तेरी बुआका पुत्र ही तेरा भर्ता होगा जो कि तेरे नेत्रके कोणके समान अपांग सुन्दर है—कटाक्षोंसे मनोहर है (पक्षमें कामके समान सुन्दर है) ॥३७॥ § ६८) इतीति—इस प्रकार प्रतिपादन कर चक्रवर्ती वज्रदन्त तो यह कहकर चले गये कि हम तुम्हारी आती हुई मामीको लेनेके लिए

गतिधरे, तत्क्षणमखण्डितमतिः पण्डितापि समागत्य कार्यसिद्धिसंतुष्टहृदयालवालसंजातप्रीतिलता-
पुष्पायमाणमन्दस्मितसुन्दरवदनारविन्दा प्रियतमोदन्तश्रवणकौतुकविलासवती श्रीमती प्रीतिमधुर-
मेवं कथयामास ।

§ ६९) कोमलाङ्गि ! कुसुमास्त्रपताके ! त्वन्मनोरथतरुः फलितोऽभूत् ।

सप्रपञ्चमरुणाधरबिम्बे ! व्याहरामि तदिदं शृणु कन्ये ! ॥३८॥

§ ७०) इतः किल पट्टकमादाय महापूतजिनालयमासाद्य, तत्र विचित्रपट्टकशालायां पट्टकं
प्रसार्य, बहून्समागतान्पण्डितमानिनः पतिब्रुवान् गूढार्थसंकटे प्रकटितमोहान्विदधानायां मयि
स्थितवत्यां, बिम्बाधरि ! तव कचवद् भ्रमरहितः, भालवत्सुपर्वराजसुन्दरः, कुचमण्डलवत् सर-

धनंजयः । वर्यं प्रत्युद्गच्छामः, तां सत्कृत्यानेतुं गच्छामः इतीत्यं कथयित्वा चक्रधरे वज्रदन्ते गतिधरे गते सति,
तत्क्षणं तत्कालम्, अखण्डिता मतिर्यस्यास्तथाभूता पूर्णप्रतिभाशालिनी कार्यस्य ललिताङ्गान्वेषरूपस्य सिद्ध्या
संतुष्टं प्रीतं हृदयमेवालवाल आवापस्तस्मिन् संजाता समुत्पन्ना या प्रीतिलता प्रीतिवल्ली तस्याः पुष्पायमाणेन
कुसुमवदाचरता मन्दस्मितेन मन्दहास्येन सुन्दरं मनोहरं वदनारविन्दं मुखकमलं यस्यास्तथाभूता पण्डितापि
तन्नामधात्र्यपि प्रियतमस्य ललिताङ्गस्य य उदन्तः समाचारस्तस्य श्रवणकौतुकेन समाकर्णनकुतूहलेन विलास-
वती विभ्रमशालिनी श्रीमती प्रीतिमधुरं यथा स्यात्तथा एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण कथयांभव जगद । § ६९)
कोमलाङ्गीति—हे कोमलाङ्गि ! हे मृदुलशरीरे ! कुसुमास्त्रः कामस्तस्य पताका वैजयन्ती तत्संबुद्धी हे
कुसुमास्त्रपताके ! अरुणो रक्तोऽधरबिम्बो यस्यास्तत्संबुद्धी हे अरुणाधरबिम्बे ! तव मनोरथ एव तद्वत्स्वन्मनो-
रथतद्वत्स्वदीयाभिलाषपादपः फलानि संजातानि यस्मिन् स फलितः फलयुक्तः, अभूत् । हे कन्ये ! तदिदं
सप्रपञ्चं सविस्तरं व्याहरामि कथयामि शृणु समाकर्णय । स्वागताच्छन्दः ॥३८॥ § ७०) इत इति—इतः
किल त्वदीयपार्श्वत् पट्टकं त्वदचितं चित्रफलकम् आदाय गृहीत्वा महापूतजिनालयं तन्नामजिनेन्द्रमन्दिरम्
आसाद्य प्राप्य, तत्र जिनालये विचित्रा चासी पट्टकशाला चेति विचित्रपट्टकशाला तस्यां विस्मयोत्पादकचित्र-
शालायां पट्टकं चित्रफलकं प्रसार्य, समागतान् समायातान् आत्मानं पण्डितं मन्यन्त इति पण्डितमानिनस्तान्
अपतित्वेऽपि आत्मानं पति ब्रुवन्तीति पतिब्रुवास्तान् बहून् भूयसो जनान् गूढश्चासावर्थसंकटश्च तस्मिन् गभोरार्थ-
संकटस्थले प्रकटितो मोहो विभ्रमो येषां तथाभूतान् विदधानायां कुर्वाणायां मयि स्थितवत्यां सत्यां, निम्नमिवा-
धरो दशनच्छदो यस्यास्तत्संबुद्धी हे बिम्बाधरि ! तत्र महापूतजिनालये तव श्वसुरस्यापत्यं पुमान् श्वशुर्यो वल्लभो

जाते हैं और उसी क्षण अखण्ड प्रतिभाको धारण करनेवाली पण्डिता कार्यसिद्धिसे सन्तुष्ट
हृदयरूपी क्यारीमें उत्पन्न प्रीतिरूपी लताके पुष्पके समान आचरण करनेवाली मन्द मुसकान-
से सुन्दर मुखकमलसे सुशोभित होती हुई आ पहुँची और प्रियतम सम्बन्धी समाचारोंके
सुननेके कौतुकसे प्रकट होनेवाली विलासोंसे युक्त श्रीमतीसे प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहने
लगी । § ६९) कोमलाङ्गीति—हे कोमलाङ्गि ! हे सुकुमारशरीरे ! हे कामपताके ! हे लोहिता-
धरबिम्बे ! हे कन्ये ! तुम्हारा मनोरथरूपी वृक्ष फलीभूत हो गया है । यह सब समाचार मैं
विस्तारसे कहती हूँ सुन ॥३८॥ § ७०) इतः किलेति—यहाँसे चित्रपट लेकर मैं महापूत
जिनालय गयी और वहाँकी विचित्र चित्रशालामें चित्रपट फैलाकर बैठ गयी । वहाँ ऐसे
बहुतसे मनुष्य आये जो अपने आपको पण्डित मानते थे तथा अपने आपको झूठ-झूठ ही
तुम्हारा पति कहते थे । ऐसे लोगोंको मैं गूढ़ अर्थके संकटमें मोहयुक्त कर देती थी । हे
बिम्बके समान लाल-लाल ओठों वाली ! इस प्रकार वहाँ बैठे-बैठे मुझे जब कुछ समय हो
गया तब तुम्हारे श्वशुरका पुत्र वज्रजंघ जिनालयमें आया और भगवान् अर्हन्त देवकी
पूजा कर चित्रशालामें पहुँचा । उसकी सुन्दरताके विषयमें क्या कहूँ ? वह तुम्हारे केशोंके

सहितवृत्तिः, भ्रूयुगलवद्धर्मोल्लसद्गुणः, आदिकन्दः शृङ्गारपादपस्य, रोहणगिरिः सकलगुणमणि-
गणस्य, प्रभवशैलः कंदर्पकथाकल्लोलिनीनां, वसन्तसमयो वैदग्ध्यसहकारस्य, आदर्शतलं सौजन्य-
मुखस्य, आलवालतलं विद्यालतानां, स्वयंवरपतिः सरस्वत्याः, संकेतसदनं कीर्तिलक्ष्म्याः, कुलभवनं
शीलसंपदां, कोशगृहं सौन्दर्यधनस्य त्रिभुवनरमणीयाकृतिस्तव इवसुर्यो वज्रजङ्घस्तत्र समागत्य
५ भगवन्तमर्हन्तमभ्यर्च्य पट्टकशालामाससाद ।

§ ७१) निर्वर्ण्य पट्टकमिदं निरवद्यरूप-

स्तत्पट्टके विलिखितं स्फुटमाह सोऽयम् ।

वज्रजङ्घस्तन्नामधेयः समागत्य भगवन्तं प्रातिहार्योपेतम् अर्हन्तं जिनेन्द्रम् अभ्यर्च्य पूजयित्वा पट्टकशालाम्
आससाद प्राप । अथ वज्रजङ्घस्य विशेषणान्याह—तव श्रीमत्याः कचवत् केशवत् भ्रमरहितः भ्रमेण भ्रान्त्या
१० रहितः कचपक्षे भ्रमरस्यो हितः, भालवत् ललाटवत् सुपर्वराजसुन्दरः सुपर्वणां देवानां राजा सुपर्वराज इन्द्र-
स्तद्वत्सुन्दरः पक्षे सुपर्वणः पौर्णमास्या राजा चन्द्रस्तद्वत्सुन्दरः, कुचमण्डलवत् स्तनमण्डलवत् सरसहितवृत्तिः
सरसेभ्यः सस्नेहेभ्यो हिता हितरूपा वृत्तिश्चेष्टा यस्य सः पक्षे सरेण हारेण सहिता वृत्तिरवस्थानं यस्य,
भ्रूयुगलवत् भ्रुकुटियुग्ममिव धर्मोल्लसद्गुणः धर्मेण रत्नत्रयरूपेण उल्लसन्तः शोभमाना गुणा दयादाक्षिण्यादयो
यस्य सः पक्षे धर्म इव धनुरिव उल्लसद्गुणः शोभमानसौन्दर्यं यस्य, शृङ्गारपादपस्य शृङ्गारमहोरुहस्य आदि-
१५ कन्दः मूलकन्दः, सकलगुणमणिगणस्य सकला निखिला ये गुणमणयस्तेषां गणस्य समूहस्य रोहणगिरिर्विदूयो
गिरिः, कंदर्पकथाः कामकथा एव कल्लोलिन्यो नद्यस्तासां प्रभवशैल उत्पत्तिगिरिः, वैदग्ध्यं चातुर्यमेव सहकारो-
ऽतिसौरभाम्रस्तस्य वसन्तसमयो मधुमासः, सौजन्यमेव मुखं तस्य सज्जनतावदनस्य आदर्शतलं मुकुरतलम्,
विद्या एव लता वल्लर्यस्तासाम् आलवालतलम् आवापप्रवेशः, सरस्वत्याः शारदायाः स्वयंवरपतिः स्वयंस्वीकृतो
वल्लभः, कीर्तिलक्ष्म्या यशःश्रियाः संकेतसदनं मेलनस्थानं, शीलसंपदां साधुत्वसंपत्तीनां कुलभवनं, सौन्दर्यमेव
२० धनं तस्य कोशगृहं कोषालयः, त्रिभुवनात् त्रिलोक्या रमणीया मनोहरा आकृतितर्यस्य तथाभूतः । श्लिष्टोपमारूप-
कालंकारः । § ७१) निर्वर्ण्येति—यस्य मुखं वदनं राजानं चन्द्रमसं, प्रतापस्तेजो हंसं सूर्यं हंसः पक्ष्यात्म-

समान था क्योंकि जिस प्रकार तुम्हारे केश भ्रमर-हित—भ्रमरोंके लिए हितकर हैं उसी प्रकार
वह भी भ्रमरहित—भ्रान्तिसे रहित था । अथवा तुम्हारे ललाटके समान था क्योंकि जिस
प्रकार तुम्हारा ललाट सुपर्वराजसुन्दर—पौर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुन्दर है उसी प्रकार
२५ वह भी सुपर्वराजसुन्दर—इन्द्रके समान सुन्दर था । अथवा तुम्हारे कुचमण्डल—स्तनबिम्ब-
के समान था क्योंकि जिस प्रकार कुचमण्डल सरसहितवृत्ति हारसे सहित वृत्तिवाला है उसी
प्रकार वह भी सरसहितवृत्ति—सस्नेह जीवोंके लिए हितकारी वृत्तिसे युक्त था । अथवा
तुम्हारी भौंहोंके युगलके समान था क्योंकि जिस प्रकार भौंहोंका युगल धर्मोल्लसद्गुण—
धनुषके समान शोभायमान सौन्दर्यसे युक्त है उसी प्रकार वह भी रत्नत्रय रूप धर्मसे
३० शोभायमान दया दाक्षिण्य आदि गुणोंसे युक्त था । वह शृंगाररूपी वृक्षका मूलकन्द था,
समस्त गुणरूपी मणियोंके समूहके लिए रोहणगिरि था, कामकथारूपी नदियोंकी उत्पत्तिका
पर्वत था, चातुर्यरूपी आम्रवृक्षके लिए वसन्तऋतु था, सज्जनतारूपी मुखके लिए दर्पणका
तल था, विद्यारूपी लताओंकी क्यारी था, सरस्वतीका स्वयं स्वीकृत किथा हुआ पति था,
कीर्तिरूपी लक्ष्मीका संकेतभवन—मिलनेका गुप्तस्थान था, शीलरूप सम्पत्तियोंका कुलभवन
३५ था, सौन्दर्यरूपी धनका खजाना था तथा उसकी आकृति तीनों लोकोंसे रमणीय थी ।
§ ७१) निर्वर्ण्येति—जिसका मुख चन्द्रमाको, प्रताप सूर्यको और निर्मल यश राजहंस पक्षी-

१. आदिकन्दं क० ।

राजानमुज्जयति यस्य मुखं प्रतापो

हंसं यशश्च विमलं किल राजहंसम् ॥३९॥

§ ७२) यस्य चन्द्रनिभा कीर्तिर्हासहृद्यं मुखाम्बुजम् ।

करश्च समरारम्भे चन्द्रहासमनोरमः ॥४०॥

§ ७३) सुमार्भं यस्य हसितं भ्रूयुगं चापसन्निभम् ।

राजते यः शरीरेण सुमचापमनोहरः ॥४१॥

§ ७४) यः काञ्चनश्रियं धत्ते यशो यस्याचलं भुवि ।

यो धैर्येण महिम्ना च काञ्चनाचलसन्निभः ॥४२॥

§ ७५) यस्याम्बरोज्ज्वलो देहो मणिभिश्च विराजितः ।

यश्चकास्ति प्रतापेन जिताम्बरमणिः सदा ॥४३॥

§ ७६) प्रभया तुल्यत्येष स्वर्णमञ्जं करेण च ।

प्रभाकरेण तुलयन्प्रतापं यो विराजते ॥४४॥

सूर्येषु' इत्यमरः । विमलं निर्मलं यशः कीर्तिः राजहंसं मरालविशेषम् उज्जयति पराजयते, निरवद्यं निर्दुष्टं रूपं सौन्दर्यं यस्य तथाभूतः सोऽयं वज्रजङ्घः इदं पट्टकं चित्रफलकं त्वन्निमित्तं निर्वर्ण्य दृष्ट्वा तत्पट्टके विलिखितं समङ्कितं स्फुटं यथा स्यात्तथा आह जगाद । उपमा । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥३९॥ १५

§ ७२) यस्येति—यस्य वज्रजङ्घस्य कीर्तिः समन्ता चन्द्रविभा शशिसदृशी, मुखाम्बुजं वदनारविन्दं हासेन मन्दस्मितेन हृद्यं मनोहरम्, करश्च हस्तश्च समरारम्भे युद्धारम्भे चन्द्रहासेन खड्गेन मनोरमो रमणीयः आसीदिति शेषः ॥४०॥ § ७३) सुमाममिति—यस्य वज्रजङ्घस्य हसितं हास्यं सुमार्भं पुष्पसदृशं, भ्रूयुगं भ्रुकुटियुगलं चापसन्निभं धनुःसदृशं, यः स्वयं च शरीरेण देहेन सुमचाप इव काम इव मनोहरः कमनीय आसीत् ॥४१॥ § ७४) य इति—यो वज्रजङ्घः काञ्चनश्रियं सुवर्णशोभां धत्ते दधाति, यस्य वज्रजङ्घस्य यशःकीर्तिः भुवि अचलं स्थायि वर्तत इति शेषः । यो वज्रजङ्घो धैर्येण स्वैर्येण महिम्ना च माहात्म्येन च काञ्चनाचलसन्निभः सुवर्णशैलसदृशः अस्तीति योज्यम् ॥४२॥ § ७५) यस्येति—यस्य वज्रजङ्घस्य देहः कायः अम्बरैर्वस्त्रैरुज्ज्वलः शोभमानः, मणिभिः रत्नैः विराजितश्च शोभितश्च अस्तीति शेषः । यश्च प्रतापेन तेजसा जितोऽम्बरमणिः सूर्यो येन तथाभूतः सन् सदा चकास्ति शोभते ॥४३॥ § ७६) प्रभयेति—एष वज्रजङ्घः प्रभया कान्त्या स्वर्णं हेम तुलयति उपमितोति करेण पाणिना अञ्जं कमलं च तुलयति । यश्च प्रतापं तेजः २५

को जीतता है तथा जो निर्दोषरूपका धारक है ऐसा वह वज्रजङ्घ इस चित्रपटको देखकर उसमें लिखी हुई बातोंको स्पष्ट रूपसे कहने लगा ॥३९॥ § ७२) यस्येति—जिसकी कीर्ति चन्द्रमाके समान है, मुख मन्दहास्यसे सुन्दर है और जिसका हाथ युद्धके प्रारम्भमें चन्द्रहास—तलवारसे सुन्दर है ॥४०॥ § ७३) सुमाममिति—जिसका हास्य फूलके समान है, भौहोंका युगल धनुषके समान है और जो स्वयं शरीरसे कामदेवके समान मनोहर है ॥४१॥ ३०

§ ७४) य इति—जो वज्रजङ्घ सुवर्णकी शोभाको धारण करता है, जिसका यश पृथिवीपर स्थायी है तथा जो धैर्य और महिमाके द्वारा सुमेरुके समान है ॥४२॥ § ७५) यस्येति—जिसका शरीर वस्त्रोंसे देदीप्यमान है तथा मणियोंसे सुशोभित है और स्वयं प्रतापसे सूर्यको जीतता हुआ सुशोभित रहता है ॥४३॥ § ७६) प्रभयेति—यह प्रभासे स्वर्णकी तथा हाथसे कमलकी तुलना करता है और जो प्रतापको सूर्यसे उपमित करता हुआ सुशोभित है ॥४४॥ ३५

§ ७७) इदं किल श्रीप्रभविमानम्, अयं च श्रीप्रभाधिपतिरहं ललिताङ्गः । इयं च तत्पार्श्वे सौन्दर्यसीमाभूमिः स्वयंप्रभा । अयमेशानकल्पः, इयमिन्दिरचुम्बितकुसुमसंदोहतुन्दिल-मन्दरवीथी, इदं पद्मसरः, अयं कृतकाचलः, अत्र मन्दारवाटिकायां प्रणयकोपपराङ्मुखी राकाशशि-मुखी स्वयंप्रभा समीरसमाहृतकल्पलतेव विलिखिता । इयं चावयोः कनकाचलतटक्रीडा दर्शिता, इतः
५ किल देदीप्यमानमणिप्रकाण्डमण्डलमण्डितकाण्डपटावृते शय्यागेहे निगूढप्रेमबन्धबन्धुरेष्ट्याविशेन मणिनूपुराङ्गारमनोहरेण चरणेन मां बलात्ताडयन्ती, किङ्किणीकलकलवाचालेन काञ्चीकलापेन सान्त्ववचनपरेण सखीजनेनेव संरुद्धा, प्रणयकोपपरीतस्य मम पादे पतन्ती स्वयंप्रभा दर्शिता । अत्राच्युतेन्द्रसमायोगगुरुपूजादिकं विस्तरेण लिखितम् । अत्र किल चित्रमण्डपे प्रणयकोपकलित-

प्रभाकरेण सूर्येण तुल्यत् विराजते शोभते ॥४४॥ § ७७) इदमिति—अथ वज्रजङ्घश्चित्रफलकरहस्यं प्रकट-
१० यति । इदमेतत् किल श्रीप्रभविमानम्, अयं च श्रीप्रभविमानाधिपतिः अहं ललिताङ्गः, इयं च तत्समीपे सौन्दर्यस्य सीमाभूमिरिति सौन्दर्यसीमाभूमिः सौन्दर्यस्य पराकाष्ठा स्वयंप्रभा ललिताङ्गारस्य वल्लभा । अयम् ऐशानकल्पो द्वितीयस्वर्गः, इयमेषा इन्दिरैरलिभिश्चुम्बितेन कुसुमसंदोहेन पुष्पप्रचयेन तुन्दिला वृद्धिगता मन्दारवीची कल्पवृक्षवाटिका । इदं पद्मसरः कमलकासारः, अयं कृतकाचलः कृत्रिमशीलः अत्र मन्दारवाटिकायां कल्पवृक्षवत्यां प्रणयकोपेन कृत्रिमक्रोधेन पराङ्मुखी विमुखा, राकाशशीव पीर्णमासोन्दुरिव मुखं वक्त्रं यस्या-
१५ स्तथाभूता स्वयंप्रभा ललिताङ्गप्रिया समीरेण प्रभञ्जनेन समाहता ताडिता या कल्पवल्ली कल्पलता तद्वत् विलि-
खिता चित्रिता इयं च आवयोः स्वयंप्रभाललिताङ्गयोः कनकाचलतटक्रीडा सुमेरुतटकेलिः दर्शिता प्रकटिता । इतः किल देदीप्यमाना अतिशयेन पुनःपुनश्च दीप्यन्त इति देदीप्यमाना ये मणिप्रकाण्डा रत्नश्रेष्ठास्तेषां मण्डलेन समूहेन मण्डितः शोभितो यः काण्डपटो यवनिकावस्त्रं तेन आवृते विहिते शय्यागेहे मदनोत्सवागारे निगूढप्रेम-
२० बन्धेन गुप्तप्रीतिबन्धेन बन्धुरा सहिता, ईर्ष्याविशेन मत्सराधोनत्वेन मणिनूपुराणां रत्नतुलाकोटीनां झङ्कारेण मनोहरस्तेन चरणेन पादेन मां ललिताङ्गं बलात् हठात् ताडयन्ती, किङ्किणीनां क्षुद्रघण्टिकानां कलकलेनाव्यक्त-
शब्देन वाचालो मुखरस्तेन काञ्चीकलापेन कटिसूत्रसमूहेन सान्त्ववचनतत्परेण । प्रशमनवचनोद्यतेन सखीजने-
नेव वयस्या समूहेन संरुद्धा निषिद्धा, प्रणयकोपेन कृत्रिमक्रोधेन परीतस्य व्यासस्य मम ललिताङ्गस्य पादे चरणे
पतन्ती स्वयंप्रभा दर्शिता प्रकटिता । अत्र अच्युतेन्द्रस्य समायोगे संमेलने गुरुपूजादिकं गुरुसपर्याप्रभृति कार्यं

§ ७७) इदमिति—वज्रजंघ श्रीमती द्वारा रचित चित्रपटका रहस्य प्रकट करता हुआ कहता
२५ है कि यह श्रीप्रभविमान है और यह श्रीप्रभविमानका स्वामी मैं ललितांगदेव हूँ । यह उसके पासमें स्थित परम सुन्दरी स्वयंप्रभा है । यह ऐशान स्वर्ग है, यह भ्रमरोसे चुम्बित फूलोंके समूहसे वृद्धिको प्राप्त हुई कल्पवृक्षोंकी वीथी है । यह कमलसरोवर है, यह कृत्रिम पर्वत है, इस कल्पवृक्षोंकी बगियामें बनावटी क्रोधसे मुख फेरकर बैठी हुई पूर्ण चन्द्रमुखी स्वयंप्रभा वायुसे ताड़ित कल्पवेलके समान लिखी गयी है । यह हम दोनोंकी सुमेरुपर्वतके
३० तटपर होनेवाली क्रीडा दिखलायी गयी है । इधर चमकते हुए श्रेष्ठ मणियोंके समूहसे सुशो-
भित परदोंसे आच्छादित शयनागारमें अत्यन्त गूढप्रेमके बन्धसे सहित स्वयंप्रभा दिखलायी गयी है । यह ईर्ष्याके वशसे मणिमय नूपुरोंकी झनकारसे मनोहर चरणसे मुझे हठपूर्वक ताड़ित कर रही है । ताड़ित करते समय छोटी-छोटी घंटियोंके कल-कल शब्दसे शब्दायमान करधनीकी कड़ियाँ इसके पाँवमें लग गयी हैं उनसे ऐसी जान पड़ती है मानो शान्तिके वचन
३५ कहनेमें तत्पर सखियाँ इसे रोक ही रही हों । इधर जब मैं भी बनावटी क्रोधसे युक्त हो गया तब यह मेरे चरणोंमें पड़ने लगी । इधर अच्युतेन्द्रके साथ मिलाप होनेपर गुरुपूजा आदिके कार्य विस्तारसे लिखे गये हैं । इधर इस चित्रमण्डपमें दिखाया गया है—प्रणयकोपसे जिसका

स्वान्तायाः कान्तायाः पादयोः पतन् कर्णोत्पलेन ताड्यमानोऽहं प्रदर्शितः । इतश्च तरुणकिसलय-
मनोरमचरणकलितलाक्षामुद्रया मदुरःस्थले विरचितं लाञ्छनं न प्रकटितम् । इह च कान्ताकपोल-
फलकयोर्विचित्रपत्राणि विलिखन् न प्रकाशितः । इदं स्वयंप्रभादेवैव विलिखितं स्यादथवा-
स्मत्क्रीडासाक्षीभूतया रतिदेव्या, यद्वा तद्वृत्तान्तं सर्वमनुभूतवत्या स्वर्गश्रियेति वितर्कयन्
वज्रजङ्घः क्षणं पर्याकुलो मूर्च्छामुपजगाम ।

§ ७८) परिवारजनैः कृतोपचारस्तरुणस्तत्र चिरेण लब्धसंज्ञः ।

कलशस्तनि ! केन चित्रमेतल्लिखितं स्यादिति मामपृच्छदेषः ॥४५॥

§ ७९) एवं पृष्टाहमिदमवोचम् ।

§ ८०) त्वन्मातुलान्यास्तनया तव स्त्री तडित्सवर्णा तरलायताक्षो ।

सा श्रीमती यन्मुखमेव जातो नभोगतां त्यक्तुमिवोदुराजः ॥४६॥

विस्तरेण लिखितं दर्शितम् । अत्र किल चित्रमण्डपे प्रणयकोपेन कृत्रिमकोपेन कलितं युक्तं स्वान्तं चित्तं यस्या-
स्तस्याः कान्तायाः स्वयंप्रभायाः पादयोः पतन् कर्णोत्पलेन श्रवणावतसेन ताड्यमानोऽहं प्रदर्शितः प्रकाशितः ।
इतश्च तरुणकिसलयवत् बालपल्लववत् मनोरमो मनोहरौ यौ चरणौ तयोः कलिता धृता या लाक्षामुद्रा जनु-
रसमुद्रा तथा मदुरःस्थले मदीयवक्षःस्थले विरचितं कृतं लाञ्छनं चिह्नं न प्रकटितं न दर्शितम् । इह च कान्ता-
कपोलफलकयोः वल्लभागल्लपट्टकयोः विचित्रपत्राणि नानापत्राणि विलिखन् केशरकस्तूर्यादिद्रवेण रचयन् अहं
ललिताङ्गो न प्रकाशितः । इदं चित्रं स्वयंप्रभादेवैव विलिखितं रचितं स्यात् अथवा आवयोः क्रीडायां साक्षीभूत-
तया रतिदेव्या, यद्वा सर्वं निखिलं तद्वृत्तान्तं तत्समाचारम् अनुभूतवत्या स्वर्गश्रिया त्रिदिवलक्ष्म्या विलिखितं
स्यात् इति वितर्कयन् विचारयन् वज्रजङ्घः क्षणं पर्याकुलो व्यग्रः सन् मूर्च्छाम् उपजगाम प्राप मूर्च्छितोऽभव-
दिति भावः । § ७८) परिवारेति—तत्र चित्रशालायां परिवारजनैः कुटुम्बजनैः कृतोपचारो विहितशिशिरोपचारः
चिरेण लब्धा प्राप्ता संज्ञा चेतना येन तथाभूत एष तरुणो युवा वज्रजङ्घः हे कलशस्तनि ! कलशाविव स्तनी
यस्यास्तत्संबुद्धौ हे घटकुचे ! एतत् चित्रं केन लिखितं स्यात् इति माम् अपृच्छत् ॥४५॥ § ७९) एवमिति—
एवमनेन प्रकारेण पृष्ठानुयुक्ता अहं श्रीमती इदं वक्ष्यमाणम् अवोचम् जगाद । § ८०) त्वदिति—यया एतत्
चित्रं लिखितं सा त्वन्मातुलान्याः त्वदीयप्रियाम्बिकायाः तनया पुत्री तव भवतः स्त्रीभूतपूर्वा वल्लभा भविष्यन्ती

चित्र व्याप्त है ऐसी वल्लभा-स्वयंप्रभाके चरणोंमें मैं नम्रीभूत हो रहा हूँ और यह कानोंके
उत्पलसे मुझे ताड़ित कर रही है । इस ओर बाल-पल्लवोंके समान सुन्दर चरणोंमें लगे हुए
लाखके महावरके रंगसे मेरे वक्षःस्थलमें एक चिह्न इसने बनाया था जो नहीं दिखाया
गया है । इधर कान्ताके गालोंपर नाना प्रकारकी पत्ररचना करता हुआ मैं नहीं दिखाया गया
हूँ । यह चित्रपट स्वयंप्रभा देवीके द्वारा ही रचा हुआ होना चाहिए अथवा हम दोनोंकी
क्रीडाकी साक्षीभूत रतिदेवीके द्वारा अथवा उस समस्त वृत्तान्तका अनुभव करनेवाली स्वर्ग-
की लक्ष्मीके द्वारा रचा गया है । इस प्रकार विचार करता हुआ वज्रजंघ क्षण एक व्याकु-
लताका अनुभव करता हुआ मूर्च्छाको प्राप्त हो गया । § ७८) परिवारेति—वहाँ परिवारके
लोगोंके द्वारा जिसका उपचार किया गया था ऐसा यह युवा बहुत देर बाद सचेत होकर
मुझसे पूछने लगा कि घटस्तनि ! यह चित्र किसने लिखा है ? ॥४५॥ § ७९) एवमिति—
इस प्रकार पूछनेपर मैंने यह कहा । § ८०) त्वदिति—जिसने यह चित्र लिखा है वह तुम्हारी
मामीकी पुत्री है, तुम्हारी स्त्री है, विजलीके समान वर्णवाली है, चंचल तथा विशाल नेत्रों

§ ८१) कुटिलभ्रूयुगं तस्या धनुश्चेद्रमणीमणेः ।

न तिष्ठेत तदा कन्या मुखभागे मनोहरे ॥४७॥

§ ८२) आहोस्विद्युक्तमेवेदं सा कन्यापि ग्रहोज्ज्वला ।

तुलां त्यजति लोलाक्षी कुसुमेषुपताकिका ॥४८॥

५ § ८३) रोमराजिर्हरिनिभा तालहृद्यं स्तनद्वयम् ।

तनुकान्तिश्च तन्वङ्ग्या हरितालमनोहरा ॥४९॥

§ ८४) तस्याः किल कुम्भोन्द्रकुम्भसंनिभः कुचकुम्भबिम्बो, बिम्बसहोदरोऽधरो, धरतुलितं नितम्बवल्यं, वलयाञ्चितं करकिसलयं, सलयमधुरा गानकला, कलानिधिमदहरं स्मितकुमुमं, कुसुमचापतूणीरसकाशं जङ्घायुगं, युगायता भुजलता, लतान्तसुकुमारा तनुसंपदिति ।

- १० च, तडित्सवर्णा विद्युदाभा तरले आयते अक्षिणी नयने यस्यास्तथाभूता सा श्रीमती अस्ति । उडूनां नक्षत्राणां राजा उडुराजश्चन्द्रः न विद्यन्ते भोगा यस्य नभोगस्तस्य भावस्तां भोगराहित्यं पक्षे नभसि विहायसि गच्छतीति नभोगस्तस्य भावस्तां त्यक्तुमिव यस्या मुखं यन्मुखं यद्वक्त्रमेव जातः, समुत्पन्नः । श्लेषोत्प्रेक्षा । उपजातिवृत्तम् ।
- १५ § ८१) कुटिलेति—तस्याः पूर्वोक्ताया रमणीमणेरनितारत्नस्य मनोहरे सुन्दरे मुखभागे वक्त्रप्रदेशे ललाट-इत्यर्थः, कुटिलभ्रूयुगं वक्रभ्रूकुटियुगलं धनुः कोदण्डः पक्षे ज्योतिषशास्त्रे प्रसिद्धा धनुराशिः चेदस्ति तर्हि सा कन्याल्पवयस्का न तिष्ठेत पक्षे कन्याराशिः न तिष्ठेत तरुण्या एव मुखे भ्रूयुगं कुटिलं भवति न तु बालाया इत्यर्थः । श्लेषः ॥४७॥ § ८२) आहोस्विदिति—आहोस्वित् अथवा इदं युक्तमेवोचितमेव यत् ग्रहवत् सूर्यादिवत् उज्ज्वला देदीप्यमाना, लोले अक्षिणी यस्यास्तथाभूता चपललोचना कुसुमेषोः कामस्य पताकिका वैजयन्ती सा श्रीमती कन्यापि कन्याराशिरपि पक्षे बालरूपापि तुलां तुलाराशि पक्षे उपमां त्यजति । श्लेषः ॥४८॥ § ८३) रोमेति—तन्वङ्ग्याः कृशाङ्ग्याः रोमराजिः लोमलेखा हरिनिभा सर्पसदृशी 'हरिर्गोविन्द-वारोन्द्रचन्द्रवातेन्द्रभानुषु । यमाहिकपिभेकाश्वशुकेऽशोकान्तरे त्विषि' इति विश्वलोचनः । स्तनद्वयं कुचयुगलं तालहृद्यं तालफलमिव सुन्दरं, तनुकान्तिश्च देहसौन्दर्यं हरितालमनोहरा हरितालवन्मनोहरा पीतवर्णः ॥४९॥ § ८४) तस्या इति—तस्याः श्रीमत्याः किल कुचकुम्भबिम्बः स्तनकलशमण्डलं कुम्भोन्द्रकुम्भसंनिभः गजराजगण्डस्थलसदृशः अधरो दशनच्छदः बिम्बसहोदरो रुचकसदृशः रक्तवर्ण इत्यर्थः, नितम्बवल्यं नितम्बमण्डलं धरतुलितं पर्वतोपमितं, करकिसलयं पाणिपल्लवः वलयाञ्चितं कटकशोभितम्, गानकला गीतवैदग्ध्यं सलयमधुरा
- २५ से युक्त है, श्रीमती उसका नाम है । चन्द्रमा नभोगता—भोगोंके अभाव (पक्षमें आकाश-गामित्व) को छोड़नेके लिए ही मानो जिसका मुख हो गया है अर्थात् वह चन्द्रमुखी है ॥४६॥ § ८१ कुटिलेति—स्त्रियोंमें रत्नस्वरूप उस श्रीमतीके मनोहर मुखभाग—ललाटपर कुटिल भौंहोंका युगल यदि धनुष है (पक्षमें धनुष राशि है) तो वह कन्या नहीं रह सकती—अल्पवयस्का नहीं हो सकती अर्थात् तरुणी है (पक्षमें कन्याराशि नहीं हो सकती क्योंकि
- ३० ज्योतिषमें धनुष और कन्या राशि पृथक्-पृथक् हैं) ॥४७॥ § ८२) आहोस्विदिति—अथवा यह उचित ही है कि ग्रहके समान देदीप्यमान, चंचल नेत्रोंवाली तथा कामदेवकी पताका स्वरूप वह श्रीमती कन्या—अल्पवयस्का (पक्षमें कन्याराशि) होकर भी तुला—उपमा (पक्षमें तुलाराशि) को छोड़ती है ॥४८॥ § ८३) रोमराजोति—कृश शरीरवाली उस श्रीमतीकी रोमपंक्ति हरि—सर्पके समान है, दोनों स्तन तालके समान सुन्दर हैं और शरीरकी कान्ति हरितालके समान मनोहर है—पीतवर्ण है ॥४९॥ § ८४) तस्या इति—उस श्रीमतीके स्तन-कलशका मण्डल गजराजके गण्डस्थलके समान है, अधरोष्ठ रुचक फलके समान है, नितम्ब-मण्डल पर्वतके समान है, हस्तपल्लव कटकसे सुशोभित है, उसकी गानकला लयसे सहित

§ ८५) सा किल तरुणीमणिर्भवदीयवियोगहुतवहतान्ता कान्ता किञ्चिदप्यन्धो न पश्यतीति जले विषबुद्धिं करोति, मदने मारमतिं तनुते, मन्दानिलेऽप्याशुगमनीषां वहति, मृदुल-नलिनेषु विषजातधियं विधत्ते, मलयजरसे शुचिमतिं कुरुते, शीतकरं सागरजातं तनुते, परिवाद-ध्वनिं न शृणोति, अलंकाराभियोगः शत्रोरस्त्विति जल्पति, कुसुमकुलं परिशोभितरुजं जानाति, लीलामराले हंसबुद्धिमादधाति, उपवनमयूरेषु शिखिमतिमारचयति, क्रीडाशुके पतङ्गमनीषां विशेषयति । ५

लयसहितत्वेन मधुरा मनोहारिणी, स्मितकुसुमं मन्दहसितपुष्पं कलानिधिमदहरं चन्द्रदर्पहरं, जङ्गायुगं प्रसृता-युगलं कुसुमचापतूणीरसंकाशं कामेषुधिसदृशं, भुजलता बाहुवल्ली युगायता युगवद्दोर्घा, तनुसंपत् शरीरसंपत्तिः लतान्तसुकुमारा पुष्पवत्सुकुमला । शृङ्खलायमकः । § ८५) सा किलेति—तरुणीषु मणिरिति तरुणीमणिः युवतिश्रेष्ठा, भवदीयवियोगो भवदीयविरह एव हुतवहो वह्निस्तेन तान्ता कलान्ता, कान्ता मनोहारिणी सा श्रीमती, अन्धो जनः किञ्चिदपि न पश्यतीति हेतोः जले सलिले विषबुद्धिं गरलबुद्धिं पक्षे जलबुद्धिं करोति विदधाति 'विषं तु गरले जले' इति विश्वलोचनः, मदने स्मरे मारमतिं मृत्युबुद्धिं पक्षे स्मरबुद्धिं तनुते विस्तारयति 'अक्षिभागेऽप्यथो मारो विध्ने मृत्यौ स्मरे वृषे' इति विश्वलोचनः । मन्दानिलेऽपि मन्दपवनेऽपि आशु शीघ्रं गच्छतीति आशुगः शीघ्रगामी तस्य मनीषां बुद्धिं पक्षे आशुगस्य बाणस्य मनीषां वहति दधाति 'आशुगो बाण-वातयोः' इति विश्वलोचनः । मृदुलनलिनेषु कोमलकमलेषु विषाज्जातं विषजातं गरलोत्पन्नं तस्य धियं बुद्धिं पक्षे विपात् जलात् जातं कमलं तस्य धियं विधत्ते कुरुते । मलयजरसे चन्दनरसे शुचिमतिं अग्निमतिं ग्रीष्म-ऋतुबुद्धिं वा शीतलेऽपि दाहकबुद्धिमित्यर्थः कुरुते पक्षे शुचिरिति मतिः शुचिमतिः पवित्रबुद्धिं 'शुचिर्ग्रीष्माग्नि-शृङ्गारैश्चापाढे शुद्धमन्त्रिणि । ज्येष्ठे च पुंसि धवले शुद्धेऽनुपहते त्रिषु ॥' इति मेदिनी । शीतकरं चन्द्रं सागर-जातं सा इति पृथक्पदं श्रीमत्या विशेषणं गरजातं विषोत्पन्नं तनुते विस्तारयति पक्षे सागरात् समुद्राज्जातम् । परिवादध्वनिं वीणाशब्दं परिवादध्वनिं निन्दाशब्दमिव मत्वा न शृणोति । अलंकाराभियोगो भूषणसंबन्धः शत्रोररातेरस्त्विति जल्पति कथयति पक्षे अलगत्यन्तं काराभियोगो बन्दीगृहसंबन्धः शत्रोरस्तु इति जल्पति । कुसुमकुलं परिशोभिता रुजा रोगो यस्मात् तथाभूतं जानाति पक्षे परिशोभितश्च ते तरवश्चेति परिशोभितरवः शोभमानवृक्षास्तेभ्यो जायते स्मेति परिशोभितरुजम् । लीलामराले क्रीडाहंसे हंसबुद्धिं सूर्यबुद्धिं पक्षे मरालबुद्धिम् १० १५ २०

होनेके कारण मधुर है, मन्दमुसकानरूपी पुष्प चन्द्रमाके गर्वको हरनेवाला है, जंघाओंकी जोड़ी कामदेवके तरकशके समान है, भुजाओंका युगल युगके समान लम्बा है और शरीर-रूपी सम्पत्ति फूलके समान सुकुमार है । § ८५) सा किलेति—आपके वियोगरूपी अग्निसे झुलसी हुई वह युवतिश्रेष्ठा श्रीमती अन्धा मनुष्य कुछ भी नहीं देखता है यह सिद्ध करती हुई ही मानो जलमें विषबुद्धि (पक्षमें जलबुद्धि) करती है । काममें मारमति—हिंसक-बुद्धि (पक्षमें काम-बुद्धि) विस्तृत करती है । मन्दवायुमें भी आशुगमनीषा—शीघ्र चलने-वाली इस प्रकारकी बुद्धि (पक्षमें बाणबुद्धि) धारण करती है । कोमल कमलोंमें विषजात—गरलसे उत्पन्न है ऐसी बुद्धि करती है (पक्षमें जलसे उत्पन्न है ऐसी बुद्धि करती है) चन्दन-रसमें शुचि—अग्नि अथवा ग्रीष्मऋतुकी बुद्धि (पक्षमें पवित्र इस बुद्धि) को करती है । वह चन्द्रमाको गरजात—विषसे उत्पन्न (पक्षमें समुद्रसे उत्पन्न) जानती है । परिवाद—वीणाके शब्दको परिवाद—निन्दाका शब्द समझकर ही मानो नहीं सुनती है । अलंकाराभियोग—आभूषणोंका सम्बन्ध (पक्षमें अत्यधिक बन्दीगृहका सम्बन्ध शत्रुको हो ऐसा कहती है) फूलोंके समूहको परिशोभितरुज—रोग बढ़ानेवाला (पक्षमें शोभायमान वृक्षोंसे उत्पन्न) जानती है । क्रीडाहंसमें हंस बुद्धि—सूर्य बुद्धि (पक्षमें हंस पक्षीकी बुद्धि) धारण करती है २५ ३० ३५

§ ८६) अनङ्गरागं हृदयं मृगाक्ष्या अनङ्गदं बाहुयुगं विभाति ।

तारुण्यतस्त्वद्विरहाच्च भद्र ! विहारहृद्यं कुचकुम्भयुग्मम् ॥४९॥

§ ८७) इत्युक्तोऽयं वज्रजङ्घो मृगाक्ष्या मञ्जन्मोदाम्भोधिमध्ये चिराय ।

पाणौ कृत्वा पट्टकं तावकीनं प्रादादन्यत्पट्टकं ते विचित्रम् ॥५०॥

५ § ८८) तदनु, पण्डितया समर्पितं पट्टकमादाय सा कुरङ्गशावलोचना निर्वर्ण्य चिरं, संतापसंतप्ता चातकीव जलदकालं, मरालीव शरन्नदीपुलिनं, भव्यावलीवाध्यात्मशास्त्रं, कल-कण्ठिकेव कुसुमितसहकारवनं, निर्जरपरिषदिव नन्दीश्वरद्वीपं प्रीतेः परां काष्ठामाटिटीके ।

आदधाति 'हंसः पक्ष्यात्मसूर्येषु' इत्यमरः । उपवनमयूरेषु उद्यानकेलिषु शिखिमतिम् अग्निबुद्धिं पक्षे मयूरबुद्धिम् आदधाति 'शिखी केतुग्रहे बह्वी मयूरे कुक्कुटे शरे' इति विश्वलोचनः । क्रीडाशुकं केलिकीरे पतङ्गमनीषां सूर्यबुद्धिं पक्षे पक्षिबुद्धिं विशेषयति । श्लेषोत्थापितो विरोधाभासोऽलंकारः । § ८६) अनङ्गरागमिति—हे भद्र ! हे भव्य ! तारुण्यतो यौवनात् त्वद्विरहाच्च त्वदीयवियोगाच्च मृगाक्ष्याः कुरङ्गलोचनायाः श्रीमत्याः हृदयं मनो वक्ष्यन् अनङ्गरागं विभाति, तारुण्यपक्षे अनङ्गस्य कामस्य गणः प्रीतिर्यस्मिन् तत्, त्वद्विरहपक्षे न विद्यतेऽङ्गरागो विलेपनं यस्मिन् तत् । बाहुयुगं भुजयुगलम् अनङ्गदं विभाति । तारुण्यपक्षे अनङ्गं कामं ददातीति अनङ्गदं सौन्दर्येण कामोत्तेजकमित्यर्थः, त्वद्विरहपक्षे न विद्यतेऽङ्गदः केयूरं यस्मिन् तत् । कुचकुम्भयुग्मं स्तनकलशयुगलं विहारहृद्यं विभाति । तारुण्यपक्षे विहारेण क्रीडया हृद्यं सुन्दरं त्वद्विरहपक्षे हारेण हृद्यं न भवतीति विहारहृद्यं हाररहितम् । श्लेषः । उपजातिछन्दः ॥४९॥ § ८७) इतीति—मृगाक्ष्या मृगलोचनायाः तव विषये इतीत्यम् उक्तः कथितः अयं वज्रजङ्घो ललिताङ्गचरः मोदाम्भोधिमध्ये हर्षपारावारमध्ये चिराय दीर्घकालपर्यन्तं मञ्जन् समवगाहमानः सन् तावकीनं त्वदीयं पट्टकं चित्रफलकं पाणौ कृत्वा हस्ते धृत्वा समादायेत्यर्थः, ते तुभ्यम् विचित्रं विस्मयोत्पादकम् अन्यत् पट्टकं प्रादात् दत्तवान् । शालिनी छन्दः ॥५०॥ § ८८) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं पण्डितया तन्नामवाच्या समर्पितं दत्तं पट्टकं चित्रफलकम् आदाय गृहीत्वा सा कुरङ्ग-शावस्य हरिणशिशोर्लोचने इव लोचने यस्यास्तथाभूता श्रीमती, चिरं दीर्घकालपर्यन्तं संतापेन ग्रीष्मर्तुजन्मेन संतप्ता चातकी सारङ्गी जलदकालं प्रावृट्कालमिव, मराली हंसी शरन्नद्याः पुलिनं तटमिव, भव्यावली भव्य-पङ्क्तिः अव्यात्मशास्त्रमिव शुद्धात्मस्वरूपप्रतिपादकग्रन्थमिव, कलकण्ठिका पिकी कुसुमितसहकारवनमिव

अर्थात् हंसको सूर्यके समान सन्तापकारक मानती है । उपवनके मयूरोंमें शिखिमति—अग्निकी बुद्धि (पक्षमें मयूर बुद्धि) रचती है और क्रीडाशुकमें पतंगमनीषा—सूर्य बुद्धि (पक्षमें पक्षिबुद्धि) को विशिष्ट करती है । § ८६) अनङ्गरागमिति—हे भव्य ! यौवनसे तथा तुम्हारे विरहसे उस मृगनयनीका हृदय अनङ्गराग—कामके रागसे सहित (पक्षमें विलेपनसे रहित) हो रहा है । उसकी भुजाओंका युगल अनङ्गद—कामको देनेवाला (पक्षमें बाजूबन्दसे रहित) हो रहा है और स्तनकलशोंका युगल विहारहृद्य—क्रीडासे मनोहर (पक्षमें हारसे रहित) हो रहा है ॥४९॥ § ८७) इतीति—तुझ मृगनयनीके विषयमें इस प्रकार कहा हुआ यह वज्रजङ्घ चिरकाल तक हर्षरूपी समुद्रमें गोता लगाता रहा । अन्तमें तेरा चित्रपट तो उसने अपने हाथमें ले लिया और तुझे दूसरा विचित्र चित्रपट दिया है ॥५०॥ § ८८) तदन्विति—तदनन्तर पण्डिताके द्वारा दिये हुए चित्रपटको लेकर वह बालमृगलोचना श्रीमती उसे चिरकाल तक इस तरह देखती रही जिस तरह कि सन्तापसे सन्तप्त चातकी वर्षाकालको, हंसी शरद् ऋतुकी नदीके तटको, भव्यपङ्क्ति अध्यात्मशास्त्रको, कोयल फूले हुए आम्रवनको और देवोंकी पङ्क्ति नन्दीश्वर द्वीपको देखती है । उसे देखकर वह प्रीति

१. तद्विरहाच्च क० ।

§ ८९) चक्रधरोऽपि षडङ्गबलतरङ्गितसविधप्रदेशः समासाद्यार्धपथं, समागतं भगिनीपतिं वज्रबाहुं, भगिनीं वसुंधरां, भगिनेयं वज्रजङ्घं च विलोकयातिमात्रप्रोतः, सदनमानीय सत्कृत्य च, कदाचिदतिसंतोषवशादिमां गिरमुदाजहार ।

§ ९०) उदारपुत्रोऽपि भवान्गृहं मे यतः समागादनुदारपुत्रः ।

ततो नृप ! प्रीतिनटी तनोति लास्यं मनोरङ्गतले मदीये ॥५१॥

§ ९१) ममालये यदिष्टं ते महीरमण वर्तते ।

तद्गृहाण मयि प्रीतिर्यदि तेऽस्त्यनियन्त्रणा ॥५२॥

§ ९२) इति वज्रदन्तचक्रधरेणोक्ते वज्रबाहुनृपे 'देव ! तव प्रसादात् सर्वं ममास्त्येव किन्तु कन्यारत्नं वज्रजङ्घाय प्रतिपादनीयम्' इति बहुधा प्रार्थितवति, तत्प्रार्थनामङ्गीकुर्वाणो वसुंधारमणस्तदानीमेव विवाहमण्डपारम्भाय महास्थपतिमादिदेश ।

पुष्पिताम्रवनमिव, निर्जरपरिषद् देवसमितिः नन्दीश्वरद्वीपमिव द्वापञ्चाशज्जिनालयविराजिताष्टमद्वीपमिव निर्वर्ण्य पृष्ट्वा प्रीतेः प्रसन्नतायाः परां काष्ठां चरमावधिम् आटिटीके प्राप । § ८९) चक्रधरोऽपीति—चक्रधरो वज्रदन्तो चक्रवर्त्यपि षडङ्गबलेन षडङ्गसैन्येन तरङ्गितः कल्लोलितः सविधप्रदेशो येन तथाविधः सन् अर्धपथं मार्गार्धं समासाद्य, समागतं समायातं भगिनीपतिमानुत्तं वज्रबाहुम् उत्पलखेटनगरीनरेन्द्रम्, भगिनीं स्वसारं वसुंधरां, भगिन्या अपत्यं पुमान् भगिनेयस्तं भगिनीजं वज्रजङ्घं च विलोक्य दृष्ट्वा अतिमात्रप्रोतः प्रीततरः सदनं भवनम् आनीय सत्कृत्य च कदाचित् अतिसंतोषवशादिमां वक्ष्यमाणां गिरं वाणीम् उदाजहार कथयामास । § ९०) उदारेति—उदारो महान् पुत्रो यस्य तथाभूतोऽपि अनुदारः पुत्रो यस्य तथाभूतो उदारपुत्ररहित इति विरोधः परिहारपक्षे दाराश्च पुत्रश्चेति दारपुत्रा अनुगता दारपुत्राः स्त्रीसुता यमित्यनुदारपुत्रः, भवान् यतः कारणात् मे गृहं समागतः प्राप्तः ततस्त्वस्मात् कारणात् हे नृप ! हे राजन् ! मदीये मामके मन एव रङ्गतलं रङ्गभूमिस्तस्मिन् प्रीतिरेव नटी लासिका प्रीतिनटी लास्यं नृत्यं तनोति विस्तारयति । रूपकविरोधाभासो । उपजातिछन्दः ॥५१॥ § ९१) ममालय इति—हे महीरमण ! हे राजन् ! यदि ते मयि अनियन्त्रणा निर्वन्धरहिता प्रीतिः अस्ति तर्हि मम वज्रदन्तस्य आलये गृहे ते तव इष्टं प्रियं वर्तते तद् गृहाण स्वीकुरु ॥५२॥ § ९२) इतीति—इतीत्यं वज्रदन्तचक्रधरेण उक्तेऽभिहिते वज्रबाहुनृपे 'हे देव ! हे राजेन्द्र ! तव भवतः प्रसादात् सर्वं वस्तु ममास्त्येव किन्तु कन्यैव रत्नं कन्यारत्नं वज्रजङ्घाय प्रतिपादनीयं दातव्यम्' इति बहुधा-

की परम सीमाको प्राप्त हुई । § ८९) चक्रधरोऽपीति—इधर चक्रवर्ती वज्रदन्त भी षडङ्ग-सेनाके द्वारा समीपवर्ती प्रदेशको तरंगित करते हुए अर्धमार्गमें जा पहुँचे और आये हुए बहनोंई वज्रबाहुको, बहन वसुंधराको और भानेज वज्रजङ्घको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । वे उन्हें घर लाये तथा उनका सत्कार कर किसी समय अत्यन्त सन्तोषके वश निम्न-लिखित वचन बोले । § ९०) उदारेति—हे राजन् ! जो उदारपुत्र होकर भी अनुदार पुत्र है (पक्षमें स्त्री और पुत्रसे सहित है) ऐसे आप चूँकि हमारे घर आये हुए हैं इसलिए मेरे मनरूपी रंगभूमिमें प्रीतिरूपी नटी नृत्य कर रही हैं—मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है ॥५१॥ § ९१) ममालय इति—हे राजन् ! यदि आपकी मुझमें रुकावट रहित प्रीति है तो मेरे घरमें जो वस्तु आपको इष्ट हो उसे ग्रहण कीजिए ॥५२॥ § ९२) इतीति—इस प्रकार वज्रदन्त चक्रवर्तीके द्वारा कहे हुए वज्रबाहु राजाने जब 'हे देव ! आपके प्रसादसे मेरे सब कुछ है ही किन्तु वज्रजङ्घके लिए कन्यारत्न दिया जावे' इस प्रकार अनेक बार प्रार्थना की तब

§ ९३) महास्थपतिरातेने मङ्गलं मणिमण्डपम् ।

मत्संपदं विलोक्येव क्वापि लोनं त्रिविष्टपम् ॥५३॥

§ ९४) सुमनोवृन्दवासिततया, निर्जरमनोहर्षकतया, सहस्रनेत्रानन्दसंदायकतया, सदा-
खण्डलसद्वनिताननमनोरमतया च त्रिविष्टपमिदं मण्डपं च तुल्यम् । किंतु तत्सर्वमनोज्ञम् इदं
५ त्रिदशजनमनोज्ञं, तत्सौधालयख्यातम् इदं सुरालयख्यातं तदिति न दृष्टान्तमर्हति ।

§ ९५) यत्किल पुरविराजितं, गोपुरविराजितं, रत्नशोभाश्चितं, चिरत्नशोभाञ्चितम्,

नैकधा प्राथितवति सति, तत्प्राथनामङ्गोर्वाणः स्वीकुर्वाणो वसुधारमणो वज्रदन्तः तदानोमेव तत्क्षणमेव
विवाहमण्डपारम्भाय महास्थपतिं प्रधानतश्चकम् आदिदेश आज्ञातवान् । § ९३) महास्थपतिरिति—महास्थ-
पतिः स्थपतिरन्तं प्रधानतश्चक इत्यर्थः, मङ्गलं मङ्गलकरं तत् मणिमण्डपं रत्नमण्डपम् आतेने रचयामास यत्संपदं
१० यत्संपत्तिं विलोक्येव दृष्ट्वेव त्रिविष्टपं स्वर्गः क्वापि लोनं तिरोहितम् । उत्प्रेक्षा ॥५३॥ § ९४) सुमनो-
वृन्देति—त्रिविष्टपं स्वर्गः इदं मण्डपं च तुल्यं सदृशम् । केन तुल्यमिति चेदुच्यते—सुमनोवृन्दवासिततया-त्रिविष्टप-
पक्षे सुमनसां देवानां वृन्देन समूहेन वासिततया कृतनिवासतया मण्डपपक्षे सुमनसां विदुषां वृन्देन समूहेन
वासिततया, निर्जरमनोहर्षकतया निर्जरा देवास्तेषां मनोहर्षकतया पक्षे निर्जरास्तरुणास्तेषां मनोहर्षकतया,
सहस्रनेत्रानन्दसंदायकतया—सहस्रनेत्र इन्द्रस्तस्यानन्दस्य हर्षस्य संदायकतया पक्षे सहस्रस्य नेतृणां नायकाना-
१५ मानन्दस्य संदायकतया, सदाखण्डलसद्वनिताननमनोरमतया च सदा सर्वदा अखण्डं यथा स्यात्तथा लसन्तः शोभमाना ये
वनिताननाः स्त्रीजनान्तेषां मनोरमतया पक्षे सदा सर्वदा अखण्डं यथा स्यात्तथा लसन्तः शोभमाना ये
वनिताननाः स्त्रीजनान्तेषां मनोरमतया च । इत्थं तयोस्तुल्यत्वं प्रदर्श्य व्यतिरेकं निरूपयति किंतु तत् मण्डपं
सर्वजनमनोज्ञं निखिलजनमनोहरम् इदं त्रिविष्टपं त्रिदशजनमनोज्ञं त्रिगुणिता दश त्रिदशास्ते च ते जनास्त्रिदश-
जनाः त्रिशज्जनास्तेषां मनोज्ञं पक्षे त्रिदश देवास्तेषां मनोज्ञम्, तत् मण्डपं सौधालयख्यातं सुधाया अयं सौधः
२० अमृतसंबन्धो, सौधश्चासावालयश्चेति सौधालयस्तेन ख्यातं पीयूषागारत्वेन प्रसिद्धं, इदं त्रिविष्टपं सुरालयख्यातं
सुराया मदिराया आलयो गृहं तेन ख्यातं प्रसिद्धं पक्षे सुराणां देवानामालयो धाम तेन ख्यातम्, इतीत्थं तत्
त्रिविष्टपं न दृष्टान्तम् अर्हति मण्डपस्य सादृश्यं प्राप्तुं योग्यमस्ति । श्लेषव्यतिरेको । § ९५) यत्किलेति—
यत् किल मण्डपं पुरविराजितं पुरे नगरे विराजितं शोभितं, गोपुरविराजितं गोपुरैः प्रधानद्वारैर्विराजितं,

उनकी प्राथनाको स्वीकृत करते हुए चक्रवर्ती वज्रदन्तने उसी समय विवाह मण्डप बनानेके
२५ लिए प्रधान स्थपतिको आदेश दिया । § ९३) महास्थपतिरिति—प्रधान स्थपतिने मंगलमय
वह रत्नमय मण्डप बनाया कि जिसकी सम्पदाको देखकर ही मानो स्वर्ग कहीं जा छिपा था
॥५३॥ § ९४) सुमनोवृन्देति—स्वर्ग और मण्डप दोनों ही तुल्य थे क्योंकि जिस प्रकार स्वर्ग
सुमनोवृन्दवासित है—देवोंके समूहसे वासित है उसी प्रकार मण्डप भी सुमनोवृन्दवासित
था—विद्वानोंके समूहसे वासित था । जिस प्रकार स्वर्ग सहस्रानन्दसंदायक है—इन्द्रको
३० आनन्द देनेवाला है उसी प्रकार मण्डप भी सहस्रानन्द संदायक—हजारों नेताओंको आनन्द
देनेवाला था और जिस प्रकार स्वर्ग सदाखण्डलसद्वनिताननमनोरम है—सर्वदा इन्द्रकी
समीचीन स्त्रियोंसे मनोरम है उसी प्रकार मण्डप भी सदाखण्डलसद्वनिताननमनोरम—
सदा अखण्ड रूपसे शोभायमान स्त्रियोंसे मनोरम था । किन्तु वह मण्डप सब लोगोंके लिए
मनोज्ञ था और स्वर्ग मात्र तीस लोगोंको मनोज्ञ था (पक्षमें देवोंको मनोज्ञ था) वह
३५ मण्डप सौधालयख्यात—अमृतगृहके नामसे प्रसिद्ध था और स्वर्ग सुरालय ख्यात—मदिरा-
लयके नामसे विख्यात था (पक्षमें देवधामसे विख्यात था) इसलिए स्वर्ग मण्डपका
दृष्टान्त बननेके योग्य नहीं है । § ९५) यत्किलेति—जो मण्डप नगरमें सुशोभित था, बड़े-
बड़े दरवाजोंसे सुशोभित था, रत्नोंकी शोभासे सहित था, प्राचीन सजावटसे विभूषित था,

आननोल्लासकं जनतोल्लासकं च । यच्च मणोद्धं, रमणोद्धं, नरमणोद्धं, किन्नरमणोद्धम् । अत्यु-
ज्ज्वलं, महास्थपतेर्मत्युज्ज्वलं समत्युज्ज्वलं, वसुमत्युज्ज्वलं च ॥

§ ९६) महापूतख्याते जिनभवनवर्ये नरपति-

महापूजां कृत्वा विमलशुभलग्ने शुभदिने ।

सुतायाः स्वलोयस्य च विधिवदानन्तभरितः

शुभस्नानं चक्रे मणिगणलसन्मण्डपवरे ॥५४॥

§ ९७) ततो दिव्याम्बरधरं तद्वधूवरमादरात् ।

प्रसाधनगृहे रम्ये प्राङ्मुखे विनिवेशितम् ॥५५॥

§ ९८) तदा लक्ष्मीमतिनिजमुतायाः श्रीमत्या नेपथ्यकल्पनाय प्रवृत्ता कचभरोऽयं
सुदृग्मौलिलालितोऽपि मलिनस्वभावतया कुटिलस्वभावतया च सदा जडभृद्वृत्तिं वहति, मधुपमैत्री १०

रत्नशोभाञ्जितं रत्नानां मणीनां शोभया अञ्जितं सहितम्, चिरत्नशोभाञ्जितं चिरत्ना प्राचीना या शोभा तथा
अञ्जितम् आनतोल्लासकं आनतानां नम्राणामुल्लासकं हर्षदायकं, जनतोल्लासकं च जनताया जनसमूहस्योल्ला-
सकं च । यच्च मण्डपं मणोद्धं मणिभी रत्नैरिद्धं दीप्तं, रमणोद्धं रमणीभिः स्त्रीभिरिद्धं दीप्तं, नरमणोद्धं नरमणयो
नरश्रेष्ठांस्तैरिद्धं दीप्तं, किन्नरमणोद्धं किन्नरश्रेष्ठैरिद्धं शोभितम् । अत्युज्ज्वलमतिशयेन निर्मलम्, महास्थपतेः
प्रधानतक्षकस्य मत्युज्ज्वलं मतिरिवोज्ज्वलं, सुमत्युज्ज्वलं सुष्ठु मतयो येषां ते सुमतयः सुधियस्तैरुज्ज्वलं, वसुम- १५
त्युज्ज्वलं च वसुमत्या भूम्या उज्ज्वलं च । § ९६) महापूतेति—आनन्देनाभोष्टवरप्राप्तिजनिताल्लादेन भरितो
युक्तो नरपतिर्वज्रदन्तोः महापूतख्याते महापूतनाम्ना प्रसिद्धे जिनभवनवर्ये जिनभवनोत्तमे महापूजां बृहतीं पूजां
कृत्वा विमलशुभलग्ने निर्दोषोत्तमलग्ने शुभदिने श्रेयस्करदिवसे मणिगणं रत्नसमूहैल्लसन् शोभमानो यो मण्डपवरो
मण्डपोत्तमस्तस्मिन् विधिवत् यथाविधि सुतायाः श्रीमत्याः स्वलोयस्य वज्रजङ्घस्य च शुभस्नानं मङ्गलस्नानं
चक्रे विदधे । शिखरिणीच्छन्दः ॥५४॥ § ९७) तत इति—ततश्च मङ्गलस्नानानन्तरं च दिव्याम्बरधरं दिव्य- २०
वस्त्रधारकं तत् प्रसिद्धं पूर्वोक्तमित्यर्थः वधूश्च वरश्चानयोः समाहारो वधूवरम् आदरात् प्राङ्मुखे पूर्वाभिमुखे
रम्ये रमणीये प्रसाधनगृहेऽलंकारधारणगृहे विनिवेशितम् स्थापितम् ॥५५॥ § ९८) तदेति—तदा तस्मिन्काले
लक्ष्मीमतिः, निजमुतायाः स्वपुत्र्याः श्रीमत्याः नेपथ्यकल्पनाय प्रसाधनविरचनाय प्रवृत्ता तत्परा सती, अयं
कचभरः केशसमूहः सुदृग्मौलिलालितोऽपि सम्यग्दृष्टिमस्तकलालितोऽपि मलिनस्वभावतया दुष्टस्वभावतया
कुटिलस्वभावतया च वक्रनिसर्गतया च सदा सततं जडभृत्सु मूर्खजनपालकेषु रूचिं प्रीतिं वहति दधाति, मधुपमैत्री २५

नम्र मनुष्योंके लिए आनन्ददायक था, जनसमूहके हर्षको बढ़ानेवाला था, तथा जो
मण्डप मणियोंसे जगमगा रहा था, श्रेष्ठ मनुष्योंसे शोभायमान था, उच्चकोटिके भवैयोंसे
युक्त था, अत्यन्त स्वच्छ था, प्रधान स्थपतिकी बुद्धिके समान उज्ज्वल था, सुधीजनोंसे
सुशोभित था और भूमिसे उज्ज्वल था । § ९६) महापूतेति—आनन्दसे भरे हुए राजा वज्र-
दन्तने महापूत नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ जिनमन्दिरमें महापूजा करके निर्दोष शुभलग्नसे युक्त ३०
शुभ दिनमें मणिसमूहसे शोभायमान श्रेष्ठ मण्डपमें विधिपूर्वक पुत्री—श्रीमती और भानेज—
वज्रजङ्घका मंगल स्नान किया ॥५४॥ § ९७) तत इति—स्नानके अनन्तर दिव्यवस्त्रोंको
धारण करनेवाले पूर्वोक्त वधू-वरको आदरपूर्वक पूर्वाभिमुख सुन्दर प्रसाधन गृहमें बैठाया
गया ॥५५॥ § ९८) तदेति—उस समय अपनी पुत्री श्रीमतीकी वेपरचनाके लिए प्रवृत्त हुई ३५
लक्ष्मीमतिने यह विचारकर ही मानो सबसे पहले उसके केशोंका जूटा बाँधा था कि यह
केशसमूह सुदृग्मौलिलालित—सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा मस्तकसे सम्मानित होनेपर भी
अपने मलिन और कुटिल स्वभावके कारण सदा जडभृद्वृत्ति—मूर्खराजोंमें प्रीतिको धारण

करोति तथा चामरव्रजं धिक्करोति बन्धोऽस्य युक्त इतीव बन्धं विदधाना, परिशोभितमालोत्कर्षा-
सहमपि तत्कचनिचयं परिशोभितमालोत्कर्षेण भूषयन्ती, निर्मलसरोवरे नीलोत्पलमिव, सिताम्बुजे
लोलम्बमिव, सुधाकरे कलङ्कमिव, तन्मुखे मृगमदतिलकं परिकल्पयन्ती, नासातिलकुसुमाञ्जलो-
दञ्चित्तुषारविन्दुसुन्दरं मौक्तिकं नासाग्रभागे विदधाना, विवेकवातानभिज्ञस्य क्षमाधरकलित-
५ विद्वेषस्य सूर्यादिराञ्चितं साधुचक्रं निन्दतः सततमूर्ध्वमेव पश्यतः कुचमण्डलस्य विमुक्ताहारता

मद्यपायिमित्रतां करोति, तथा च अमरव्रजं देवसमूहं धिक्करोति निन्दति अस्य कचभरस्य बन्धो बन्धनं युक्त
उचित इतीव हेतोर्वन्धं विदधाना कुर्वाणा अपराधिनी बन्धनं न्यायसिद्धमिति भावः । पक्षे अयं कचभरः सुदृग्मौलि-
लालितोऽपि सुलोचनामस्तकधृतोऽपि मलिनस्वभावतया श्यामलस्वभावतया कुटिलस्वभावतया भङ्गुरनिसर्गतया
च सदा जडभृद्वृचि श्लेषे डलयोरभेदात् जलभृद्वृचि मेघकान्तिं वहति, मधुपमैत्रीं भ्रमरमैत्रीं करोति तथा चामर-
१० व्रजं बालव्यजनसमूहं धिक्करोति तिरस्करोतीति अस्य कचभरस्य बन्धश्चूडाकरणं युक्तो योग्य इतीव हेतोर्वन्धं
विदधाना, परिशोभितमालोत्कर्षसहमपि परिशोभिताः समलंकृता या मालाः सजस्तासामुत्कर्षस्यासहस्तं
तथाभूतमपि तस्याः कचनिचयस्तं तत्केशकलापं परिशोभितमालोत्कर्षेण परिशोभितानां मालानामुत्कर्षेण
भूषयन्ती सज्जयन्तीति विरोधः परिहारपक्षे परिशोभो समन्तात् शोभमानो यस्तमालस्तापिच्छवृक्षस्तस्योत्कर्ष-
स्यासहमपि तत्कचनिचयं परिशोभितानां मालानां सजामुत्कर्षेण भूषयन्ती अलंकुर्वन्ती, निर्मलसरोवरे स्वच्छ-
१५ कासारे नीलोत्पलं नीलारविन्दमिव, सिताम्बुजे श्वेतकमले लोलम्बं भ्रमरमिव, सुधाकरे चन्द्रमसि कलङ्कमिव
लाञ्छनमिव, तन्मुखे श्रीमतीवदने मृगमदतिलकं कस्तूरीस्थासकं परिकल्पयन्ती रचयन्ती, नासाघ्राणमेव तिल-
कुसुमं क्षुरप्रपुष्पं तस्याञ्जले उदञ्चितो यस्तुषारविन्दुहिमकणस्तद्वत् सुन्दरं मौक्तिकं मुक्ताफलं नासाग्रभागे
घ्राणाग्रभागे विदधाना कुर्वाणा, विवेकवातया सदसज्जानचर्चायामनभिज्ञमपरिचितं तस्य, क्षमाधरैः क्षान्ति-
धारकैः सह कलितो विद्वेषो वैरं येन तस्य, सूर्यादिराञ्चितं सूरिषु आचार्येषु आदरः सूर्यादरस्तेनाञ्चितं शोभितं
२० साधुचक्रं साधूनां यतीनां चक्रं समूहं निन्दतः परिवदतः सततं सदा ऊर्ध्वमेव पश्यतो गर्वेणोन्नतस्येत्यर्थः, कुच-
मण्डलस्य स्तनमण्डलस्य विमुक्ताहारता मुक्तस्त्यक्त आहारो येन तन्मुक्ताहारं, न मुक्ताहारं विमुक्ताहारं
गृहीताहारं तस्य भावो विमुक्ताहारता आहारग्राहिता न युक्ता नोचिता इतीत्यं मत्वा किल तत्र कुचमण्डले

करता है, मधुपमैत्री—मद्यपायी लोगोंके साथ मित्रता करता है तथा अमरव्रज—देवसमूह-
की निन्दा करता है इसलिए इस विपरीत प्रवृत्ति करनेवालेका बन्धन ही उचित है । (पक्ष-
२५ में यह केशोंका समूह सुदृग्मौलिलालित—सुलोचना स्त्रियोंके द्वारा अपने मस्तकपर धारण
किये जानेपर भी स्वभावसे काले तथा घुँघराले होनेसे जलभृद्वृचि—मेघ जैसी कान्तिको
धारण करता है, मधुपमैत्री—श्यामरंगकी अपेक्षा भ्रमरोंके साथ मित्रता करता है तथा
सुकुमल और सूक्ष्मताकी अपेक्षा चामर व्रज-चमरोंके समूहका तिरस्कार करता है इसलिए
ऐसे सुन्दर केशभारको सर्वप्रथम बाँधकर सजाना योग्य है यह विचार कर ही मानो उसने
श्रीमतीके केशसमूहको बाँधा था) । यद्यपि उसका वह केशसमूह परिशोभितमालोत्कर्षा-
३० सह—शोभायमान मालाओंके उत्कर्षको सहन करनेवाला नहीं था तो भी लक्ष्मीमतिने उसे
परिशोभितमालाओंके उत्कर्षसे विभूषित किया था (पक्षमें उसका वह केशसमूह परिशोभित-
मालोत्कर्षासह—अत्यन्त शोभायमान तमालवृक्षके उत्कर्षको सहन करनेवाला नहीं था
अर्थात् तमालवृक्षसे भी कहीं अधिक श्यामवर्ण था फिर भी वह उसे परिशोभितमालोत्कर्ष—
३५ सब ओरसे सुशोभित होनेवाली पुष्पमालाओंके उत्कर्षसे विभूषित किया था) । लक्ष्मीमति
ने श्रीमतीके मुखपर कस्तूरीका तिलक लगाया था जो ऐसा जान पड़ता था मानो स्वच्छ
सरोवरमें नीलकमल ही हो, सफेद कमलपर भ्रमर ही बैठा हो, अथवा चन्द्रमामें काला-
काला कलंक ही हो । नाकके अग्रभागमें मोती पहनाया था जो ऐसा जान पड़ता था मानो

न युक्तेति मत्वा किल तत्र मुक्ताहारं घटयन्ती, रतितन्त्ररहस्यप्रतिपादकमनोहरारावशोभिततया कामस्य रसनैवेयं लेखनप्रमादेन 'रशना' जातेति कविजनैस्तप्रेक्ष्यमाणां रशनां मध्यदेशे तन्वाना, कुसुमशरसरः कलहंसकौ हंसकौ पदयुगले परिकल्पयन्ती चिराय तां मण्डयामास ।

§ ९९) महनीयप्रभापूरैर्महार्धमणिभूषणैः ।

पुत्रं सा भूषयामास वज्रजङ्घं वसुंधरा ॥५६॥

५

मुक्ताहारं त्यक्ताहारं भोजनाभावमित्यर्थः घटयन्ती कुर्वन्ती । पक्षे विवेकवार्तानभिज्ञस्य पीवरत्वाद्भेदचर्चा-परिचितस्य, क्षमाधरकलितविद्वेषस्य काठिन्येन क्षमाधरेण पर्वतेन सह कलितो विद्वेषो येन तस्य, सूर्ये आदरः सूर्यादरस्तेनाञ्चितं सूर्यसन्मानसहितं साधुचक्रं प्रशस्तचक्रवाकं निन्दतः स्वसौन्दर्येण तिरस्कुर्वतः, सततं शश्वत् उत्तुङ्गत्वेन ऊर्ध्वमेव पश्यतः अपतितस्येति भावः, कुचमण्डलस्य विगतो मुक्ताहारो मौक्तिकसरो यस्य तस्य भावो विमुक्ताहारता मौक्तिकहाराभाव इत्यर्थः न युक्ता नोचितेति मत्वा किल तत्र कुचमण्डले मुक्ताहारं १०
मौक्तिकसरं घटयन्ती स्थापयन्ती, रतितन्त्रस्य सुरतशास्त्रस्य यद् रहस्यं गूढग्रन्थिस्तस्य प्रतिपादको निरूपको यो मनोहरारावः सुन्दरशब्दस्तेन शोभिततया कामस्य मदनस्य रसनैवेयं जिह्वैवेयं लेखनप्रमादेन लेखनस्यानवधान-तया 'रशना' जातेति कविजनैः कविसमूहैः उत्प्रेक्ष्यमाणां कल्प्यमानां रशनां मेखलां मध्यदेशे कटिप्रदेशे तन्वाना विस्तारयन्ती धारयन्तीत्यर्थः, कुसुमशरस्य कामस्य सरसः कासारस्य कलहंसकौ कादम्बौ हंसकौ नूपुरी पाद-कटौ वा पदयुगले चरणयुगे परिकल्पयन्ती धारयन्ती चिराय दीर्घकालपर्यन्तं तां श्रीमतीं मण्डयामास भूषया- १५
मास । श्लेषविरोधाभासोपमारूपकोत्प्रेक्षादयोऽलंकाराः । § ९९) महनीयेति—वसुंधरा वज्रजङ्घजननी पुत्रं वज्रजङ्घं महनीयः श्लाघनीयः प्रभापूरो येषां तैः महार्घाणि महामूल्यानि यानि मणिभूषणानि रत्नालंकर-

नाकरूपी तिलपुष्पके अंचलमें सुशोभित ओसकी एक बूँद ही हो । उसने उसके स्तनमण्डल-पर मुक्ताहार—आहारका परित्याग यह विचारकर ही किया था कि यह स्तनमण्डल विवेक-वार्तानभिज्ञ—अच्छे-बुरेके विवेकसे अपरिचित है, क्षमाधरकलितविद्वेष—शान्त मनुष्योंके २०
साथ द्वेष करता है, सूर्यादराञ्चित—आचार्योंमें आदरसे युक्त साधुचक्र—साधुसमूहकी निन्दा करता है और गर्वसे सदा ऊपरको ही देखता है इसलिए इसकी विमुक्ताहारता—भोजनसे सहितता ठीक नहीं है (पक्ष में—यह स्तनमण्डल विवेकवार्तानभिज्ञ—स्थूलताके कारण भेद सम्बन्धी चर्चासे अपरिचित है अर्थात् दोनों स्तन एक-दूसरेसे सटे हुए हैं, कठोरताके कारण क्षमाधरकलितविद्वेष—पर्वतके साथ बैर करनेवाला है, अर्थात् पर्वतसे २५
भी कहीं अधिक कड़ा है, सूर्यादराञ्चित—सूर्यमें प्रेम रखनेवाले साधुचक्र—उत्तम चक्रवाकी निन्दा करता है अर्थात् चक्रवासे भी कहीं अधिक सुन्दर है, और उत्तुंगताके कारण सदा ऊपरको ही देखता है अर्थात् अभी इसमें पतन प्रारम्भ नहीं हुआ है इसलिए इस सुन्दर स्तनमण्डलकी विमुक्ताहारता—मोतियोंके हारसे रहितता ठीक नहीं है यह विचारकर ही मानो उसने उसके स्तनमण्डलपर मुक्ताहार—मोतियोंके हारकी योजना ३०
की थी) । संभोगशास्त्रके रहस्य—गूढ़ अभिप्रायको प्रकट करनेवाले मनोहर शब्दसे सुशोभित यह कामदेवकी रसना—जिह्वा ही है लिखनेके प्रमादसे 'रशना' हो गयी है इस तरह कवि लोग जिसकी उत्प्रेक्षा कर रहे थे ऐसी रशना—करभनी उसके मध्य-देशमें पहिनायी थी, और कामदेवके सरोवरके कलहंस पक्षीके समान नूपुर अथवा पाद कटक दोनों पैरोंमें पहिनाये थे । इस तरह लक्ष्मीमतिने चिरकाल तक श्रीमतीको ३५
अलंकृत किया था । § ९९) महनीयेति—उधर वसुन्धराने अपने पुत्र वज्रजङ्घको प्रशंसनीय

§ १००) एवं मण्डितविग्रहौ परिलसद्वाराङ्गनानर्तन-

व्यालोलन्मणिनूपुरारववरेः संपूरिते मण्डपे ।

नानावाद्यरवप्रकारमुखरे पृथ्वीश्वरैर्वेष्टिते

वेद्यां तत्र निवेशितौ सपदि तौ मोदं दृशां तेनतुः ॥५७॥

- ५ § १०१) तदनु सरभसमितस्ततः प्रधावितस्य प्रतीहारजनस्य पादघट्टनजनितकुट्टिमध्वनि-
बन्धुरेण, वाराङ्गनाचरणैरण्मणिनूपुररवमेदुरेण, प्रचलितान्तःपुरजनमणिमेखलाकलापमनोरम-
कलकलकमनीयेन, तत्पुरःसरकञ्चुकोजनकलितसंमर्दनिवारणपरवचननिर्भरेण, मन्त्रविन्मुखकमल-
निरर्गलनिर्गलद्गम्भीरशब्दपावनेन, विचित्रनानाविधवादित्ररवविराजितेन, विविधबन्धिसंदोह-
पापठ्यमानविरुदप्रपञ्चकलितेन, पौरवधूकलगानमनोहरेणोत्सवकोलाहलेन मुखरितदिगन्तरे
- १० गानि तैः भूषयामास समलंचकार ॥५६॥ § १००) एवमिति—एवमनेन प्रकारेण मण्डितः शोभितो विग्रहः
शरीरं ययोस्तौ 'शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः तौ वधूवरो, परिलसत् समन्ताच्छोभमानं यद् वाराङ्गनानां
वेश्यानां नर्तनं नृत्यं तेन व्यालोलन्तश्चलन्तो ये मणिनूपुरा मणिमञ्जरिकाणि तेषामारववराः श्रेष्ठशिञ्जान-
शब्दास्तैः संपूरिते संभूते, नानावाद्यानां नैकविधवादित्राणां रवप्रकाराः शब्दभेदास्तैर्मुखरे वाचाले, पृथ्वीश्वरै-
र्भूपतिभिः वेष्टिते परिवृते तत्र मण्डपे वेद्यां परिष्कृतभूमौ निवेशितौ उपवेशितौ सन्तौ सपदि शीघ्रं दृशां
- १५ दृष्टीनां मोदं हर्षं तेनतुर्विस्तारयामासुः ॥५७॥ § १०१) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं सरभसं सवेगं यथा स्या-
त्तथा इतस्ततः प्रधावितस्य वेगेनाक्राम्यतः प्रतिहारजनस्य द्वारपालसमूहस्य पादघट्टनेन चरणाघातेन जनितः
समुत्पन्नो यः कुट्टिमध्वनिस्तेन बन्धुरेण मनोहरेण, वाराङ्गनाचरणेषु वेश्याङ्घ्रिषु रणन्तः शब्दं कुर्वाणा ये
मणिनूपुरास्तेषां रवेण शिञ्जानेन मेदुरो मिलितस्तेन, प्रचलितानामन्तःपुरजनानां ये मेखला मणिकलापा
रशना रत्नसमूहास्तेषां मनोरमकलकलेन सुन्दरशब्देन कमनीयः सुन्दरस्तेन, तस्यान्तःपुरजनस्य पुरःसरा
- २० अग्रसरा ये कञ्चुकोजनाः सौविदल्लास्तैः कलितानि कृतानि संमर्दनिवारणपराणि समूहसंपातदूरकरणतत्पराणि
वचनानि तैर्निर्भरस्तेन, मन्त्रविदां मन्त्रज्ञानां मुखकमलेभ्यो वदनारविन्देभ्यो निरर्गलं निष्प्रतिबन्धं यथा स्यात्तथा
निर्गलन्तो निःसरन्तो ये गम्भीरशब्दास्तैः पावनः पवित्रस्तेन, विचित्राणि विस्मयकराणि नानाविधानि नैक-
प्रकाराणि यानि वादित्राणि वाद्यानि तेषां रवेण शब्देन विराजितः शोभितस्तेन, विविधा नानाप्रकारा ये बन्धि-
- कान्तिसे युक्त महामूल्यमणियोंके भूषणोंसे विभूषित किया था ॥५६॥ § १००) एवमिति—
२५ इस प्रकार जिनका शरीर सुशोभित था तथा जो सब ओर सुशोभित होनेवाले वेश्याओंके
नृत्यसे चंचल मणिमय नूपुरोंकी श्रेष्ठ झंकारसे भरे, नानाप्रकारके बाजोंके विविध शब्दोंसे
शब्दायमान तथा राजाओंसे घिरे हुए मण्डपमें वेदीपर बैठाये गये थे ऐसे वधू और वर
शीघ्र ही दर्शकोंके नेत्रोंको हर्ष उत्पन्न करने लगे ॥५७॥ § १०१) तदन्विति—तदनन्तर
३० वेगसहित इधर-उधर दौड़ते हुए द्वारपालोंके पैरोंके आघातसे उत्पन्न मणिमय फसोंके शब्दसे
जो व्याप्त था, वेश्याओंके चरणोंमें रुणझुण शब्द करनेवाले मणिमय नूपुरोंके शब्दोंसे
जो मिला हुआ था, चलती हुई अन्तःपुरकी स्त्रियोंकी मणिमय मेखलाओंके समूहके मनोहर
कलकलसे जो सुन्दर था, उन स्त्रियोंके आगे-आगे चलनेवाले कंचुकियोंके द्वारा किये हुए
भीड़को दूर करनेवाले वचनोंसे जो भरा हुआ था, मन्त्रज्ञ मनुष्योंके मुखकमलसे धारा
प्रवाह निकलते हुए गम्भीर शब्दोंसे जो पवित्र था, आश्चर्यकारी नाना प्रकारके बाजोंके
३५ शब्दोंसे जो सुशोभित हो रहा था, नाना स्तुतिपाठकोंके समूह द्वारा बार-बार जोर-जोरसे

तन्मण्डपान्तरे सिद्धस्नानाम्बुपूतमस्तकं वधूवरं नवरत्नखचितचामीकरपट्टके विधाय चक्रधरः शुभे मूर्हते कङ्क्रेलिपल्लववेष्टितमुखभागं कनककरकं करेण बभार ।

§ १०२) ततो न्यपाति क्षितिपेन तस्य कराम्बुजाते करकाम्बुधारा ।

दीर्घं भवन्ती मुखजीविनी स्तामिति ब्रुवाणैव सुदूरदीर्घा ॥५८॥

§ १०३) जग्राह पाणी नरपालपुत्रीं कुरङ्गशावामललोलेनाम् ।

तस्याः करस्पर्शनसौख्यभारमोलदृग्गजः स हि वज्रजङ्घः ॥५९॥

§ १०४) श्रीमती तत्करस्पर्शास्वेदबिन्दून्धारयत् ।

चन्द्रकान्तशिलापुत्री चन्द्रांशुस्पर्शनादिव ॥६०॥

§ १०५) अपरेद्युरसी वज्रजङ्घः करदीपिकासहस्रदिवसायमाने प्रदोषे श्रीमत्यानुगम्यमानः

संदोहाः स्तुतिपाठकसमूहास्तैः पापठयमाना अतिशयेन भृशं पठयमाना ये विरुद्धप्रपञ्चाः स्तवनसमूहास्तेषां १०
प्रपञ्चेन विस्तारेण कलितस्तेन पौराणां नागरिकाणां वध्वः स्त्रियस्तासां कलगानेन मधुरगीतेन मनोहरस्तेन
उत्सवकोलाहलेन उद्धवकलकलरवेण मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि काष्ठान्तरालानि यस्मिन्
तन्मण्डपान्तरे पूर्वोक्तमण्डपमध्ये सिद्धस्नानेन जिनेन्द्राभिषेकजलेन पूतं पवित्रं मस्तकं शिरो यस्य तथाभूतं
वधूवरं नवरत्नरत्नवमणिभिः खचितं जटितं यत् चामीकरपट्टकं सुवर्णपीठस्तस्मिन् विधाय कृत्वा निवेशयेत्यर्थः,
चक्रधरो वज्रदन्तः शुभे प्रशस्ते मूर्हते कङ्क्रेलिपल्लवैरशोककिसलयैर्वेष्टितो मुखभागो यस्य तं कनककरकं सुवर्ण- १५
भृङ्गारकं करेण हस्तेन बभार दधार । § १०२) तत इति—ततस्तदनन्तरं क्षितिपेन राजा वज्रदन्तेन तस्य
वज्रजङ्घस्य कराम्बुजाते करकमले भवती च भवांश्चेति भवन्ती युवां दीर्घं दीर्घकालपर्यन्तं सुखेन जीवत
इत्येवंशीली मुखजीविनी स्तां भवतामिति ब्रुवाणैव कथयन्तीव करकाम्बुधारा कलशसलिलधारा न्यपाति
निपातिता । कर्मणि प्रयोगः । उत्प्रेक्षा । उपजातिछन्दः ॥५८॥ § १०३ जग्राहेति—तस्याः श्रीमत्याः कर- २०
स्पर्शनसौख्यभारेण मोलती दृग्गजे नयनकमले यस्य तथाभूतः स हि वज्रजङ्घः कुरङ्गशावस्य हरिणशिशोरि-
वामललोले निर्मलचञ्चले नेत्रे यस्यास्तां नरपालपुत्रीं श्रीमतीं पाणी हस्ते जग्राह स्वीचकार । उपजातिवृत्तम्
॥५९॥ § १०४) श्रीमतीति—चन्द्रांशुस्पर्शनात् चन्द्रकिरणस्पर्शात् चन्द्रकान्तशिलापुत्रीव चन्द्रकान्तमणि-
निर्मितपुत्तलिकेव तत्करस्पर्शाद् वज्रजङ्घहस्ताभिमर्शात् स्वेदबिन्दून् स्वेदकणान् अधारयत् । उपमा । अत्र स्वेदो
नाम सात्त्विकभावविशेषः । तथाहि 'स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरमङ्गोऽथ वेपथुः । वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ
सात्त्विकाः स्मृताः' ॥६०॥ § १०५ अपरेद्युरिति—अपरेद्युरन्यस्मिन् दिवसे असी वज्रजङ्घः करदीपिकाणां २५

पदे जानेवाली विरुदावलीसे जो युक्त था, और नागरिकजनोंकी स्त्रियोंके मधुर गीतोंसे जो मनोहर था ऐसे उत्सव सम्बन्धी कोलाहलसे जिसमें दिशाएँ गूँज रही थीं ऐसे उस मण्डपके बीच जिनेन्द्रदेवके अभिषेक जलसे पवित्र मस्तकोंवाले वधू और वरको नवीन रत्नोंसे जड़े हुए सुवर्णपीठपर बैठाकर चक्रवर्ती वज्रदन्तने शुभ मूर्हतेमें अशोक दलसे वेष्टित मुखवाले सुवर्णमय कलशको हाथसे उठाया । § १०२) तत इति—तदनन्तर राजा १०
वज्रदन्तने आप दोनों दीर्घकाल तक सुखसे जीवित रहिए यह कहती हुई की तरह अत्यन्त लम्बी सुवर्णकलशकी जलधारा वज्रजङ्घके हाथ पर छोड़ी ॥५८॥ § १०३) जग्राह—श्रीमतीके हस्तस्पर्शसम्बन्धी सुखके समूहसे जिसके नेत्र निमीलित हो रहे थे ऐसे वज्रजङ्घने बालमृगके समान निर्मल तथा चंचल नेत्रोंवाली राजपुत्रीका पाणिग्रहण किया ॥५९॥ § १०४) श्रीमती- ३५
जिस प्रकार चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे चन्द्रकान्तमणिसे निर्मित पुतली जलकी बूँदोंको धारण करने लगती है उसी प्रकार श्रीमतीने वज्रजङ्घके हस्तस्पर्शसे पसीनाके बूँदोंको धारण किया ॥६०॥ § १०५) अपरेद्युरिति—दूसरे दिन वह वज्रजङ्घ, हजारों लालटेनोंके द्वारा दिन-

प्रभयेव पद्मबन्धुरागत्य मेरुमिव जिनालयं प्रदक्षिणीकृत्य कृतेर्याशुद्धिजिनभवनं प्रविश्य, तत्र गन्धकुटीमध्ये विलसन्तं भगवन्तमभिषेकपुरःसरं पूजयित्वा कृतार्चनस्तस्तोत्रं प्रारम्भे ।

§ १०६) भवभयनिशारम्भे निद्राजुषां निखिलात्मनां

जिनवर ! भवान् धत्ते स्वापाङ्गमुज्ज्वलमौषधम् ।

वयमिह ततश्चित्रं निर्णिद्रमीश भजामहे

परिहृतमहादुःखास्पृष्टाः प्रबोधमहो चिरम् ॥६१॥

§ १०७) पदं तव जिनाधिप ! प्रथितबोधवारानिधे !

भजन् भजति जातुचिन्न विपदं नरः सांप्रतम् ।

इदं तु परमाद्भुतं शिरसि तत्परागं सदा

सुबिभ्रदपरागतां व्रजति भव्यवर्गो भुवि ॥६२॥

१०

१५

२०

सहस्राणि तैः दिवसायमाने दिनवदाचरति प्रदोषे रजनीमुखे श्रीमत्या अनुगम्यमानः सन् प्रभयानुगम्यमानः पद्मबन्धुः सूर्यः आगत्य मेरुमिव महापूतजिनालयं तन्नामजिनमन्दिरम् आगत्य प्रदक्षिणीकृत्य परिक्रम्य, कृता विहिता ईर्याशुद्धिर्मार्गशुद्धिर्येन तथाभूतः सन् जिनभवनं जिनालयं प्रविश्य तत्र जिनभवने गन्धकुटीमध्ये विलसन्तं शोभमानं भगवन्तं जिनेन्द्रम् अभिषेकपुरःसरं स्नपनसहितं पूजयित्वा कृतार्चनः कृतपूजः सन् तस्तोत्रं तत्स्तवनं प्रारम्भे । § १०६) भवेति—हे जिनवर ! हे ईश ! भवान् भवभयं संसारभीतिरेव निशा रजनी तस्या आरम्भे निद्राजुषां प्राप्तनिद्राणां निखिलात्मनां सकलजीवानां स्वापाङ्गं स्वकीयकृपाकटाक्षरूपम् उज्ज्वलं विमलम् औषधं भैषज्यं धत्ते ततः कारणात् वयम् इहास्मिन् लोके निर्णिद्रं निद्रारहितं भवन्तं चित्रं यथा स्यात् भजामहे उपास्महे तेन परिहृतं दूरीभूतं यन्महादुःखं तेनास्पृष्टाः सन्तः चिरं प्रबोधं जागृतिं प्रकृष्टबोधं च भजामहे । रूपकालंकारः । हरिणीच्छन्दः । § १०७) पदमिति—हे जिनाधिप ! हे जिनेन्द्र ! हे प्रथितबोध-वारां निधे ! हे प्रसिद्धज्ञानसागर ! तव भवतः पदं चरणं भजन् सेवमानो नरो जातुचित् विपदं पदाभावं पक्षे विपत्तिं न भजति, इति सांप्रतं युक्तम् । इदं वक्ष्यमाणं तु परमत्यन्तम् अद्भुतमाश्चर्यकरं यत् शिरसि मूर्ध्नि सदा सर्वदा तत्परागं पदरजः सुबिभ्रद् सुदधत् भव्यवर्गो भव्यजनो भुवि पृथिव्याम् अपरागतां परागाभावतां व्रजति प्राप्नोति पक्षे अपगतो रागो यस्यापरागस्तस्य भावस्तां वीतरागतां प्राप्नोति । विरोधाभासः । पृथ्वीछन्दः

२५

३०

३५

के समान आचरण करनेवाले रात्रिके प्रारम्भ भागमें जिस तरह प्रभासे अनुगम्यमान होता हुआ सूर्य सुमेरु पर्वतको प्राप्त कर उसकी प्रदक्षिणा करता है उसी प्रकार श्रीमतीसे अनुगम्यमान होता हुआ महापूत जिनालयको प्राप्त हुआ । उसकी प्रदक्षिणा दी, मार्गशुद्धिकी तदनन्तर जिनालयमें प्रवेश कर वहाँ गन्धकुटीके बीचमें शोभित हुए भगवान् जिनेन्द्र की उसने अभिषेकपूर्वक पूजा की और पूजा कर चुकनेपर भगवान्का स्तवन प्रारम्भ किया । § १०६) भवेति—हे जिनेन्द्र ! हे ईश ! आप संसारके भय रूपी रात्रिके प्रारम्भमें निद्रानिमग्न समस्त जन्तुओंके लिए अपने कटाक्षरूप उज्ज्वल औषधको धारण करते हैं इसलिए हम लोग इस संसारमें निद्रारहित आपकी उपासना करते हैं और उसके फलस्वरूप परित्यक्त दुःखोंसे अलूते रहते हुए हम चिरकाल तक प्रबोध—जागरण—प्रकृष्ट ज्ञानको प्राप्त होते हैं । § १०७) पदमिति—हे जिनेन्द्र ! हे प्रसिद्ध ज्ञानके सागर ! जो मनुष्य आपके पद—चरणकी सेवा करता है वह कभी विपद—पदके अभाव (पक्षमें विपत्ति) को प्राप्त नहीं होता यह तो ठीक है किन्तु यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि जो भव्य समूह सदा उस पदकी पराग—रज-को सिरपर धारण करता है वह पृथिवीपर अपरागता—परागके अभावको (पक्षमें वीत-

§ १०८) इति स्तुत्वा देवं विमलमुनिवृन्दं च विनमन्

अयं राजीवाक्षया सह पुरमगात्पुण्यचरितः ।

पुरे द्वात्रिंशच्छ्रीमुकुटधरसाहस्रकलितं

महं विन्दन् भोगान्सुचिरमनुभुङ्क्ते स्म विविधान् ॥६३॥

§ १०९) कदाचिदयं वज्रजङ्घः कंदर्पबोधितकनकनाराचधाराभिरिव श्रीमतीशयकुशेशय- ५
निर्गलिताभिः कुङ्कुमजलधाराभिः पिञ्जरीक्रियमाणदेहो लाक्षारसच्छटाप्रहारपाटलितदुकूलो
मृगमदजलविन्दुशवलचन्दनस्थासकः कनकयन्त्रधरश्चिक्रीड ।

§ ११०) कदाचन पुरंदर इव सुमनोमण्डितः सोऽयं श्रीमत्या सह ललिताप्सरः-
कुलमसेवत ।

§ १११) पश्यतो मे हठान्नेत्रं जहार मृगलोचना ।

इति मत्वेव सुरते जहार सुदृशोऽम्बरम् ॥६४॥

१०

॥६२॥ § १०८) इतीति—इतीत्यं देवं जितेन्द्रं स्तुत्वा विमलमुनिवृन्दं निर्दोषमुनिसमूहं च विनमन्
नमस्कुर्वन् पुण्यचरितः पवित्राचारः, अयं वज्रजङ्घो राजीवाक्षया कमललोचनया श्रीमत्या सह पुरं नगरम्
अगात् प्रापत् । 'इण् गतो' इत्यस्य लुङि रूपम् । पुरे नगरे द्वात्रिंशच्छ्रीमुकुटधरसाहस्रकलितं द्वात्रिंशत्सहस्र-
प्रमितमुकुटद्वाराजरचितं महमुद्धवं विन्दन् प्राप्तुवन् सुचिरं सुदीर्घकालं यावत् विविधान् नैकविधान् भोगान् १५
पञ्चेन्द्रियविषयान् अनुभुङ्क्ते स्म अन्वभवत् । शिखरिणीछन्दः ॥६३॥ § १०९) कदाचिदिति—कदाचित्
जातुचित् अयं वज्रजङ्घः, कंदर्पस्य कामस्य बोधिताः प्रदीपिता या कनकनाराचधाराः सुवर्णबाणपङ्क्तयस्ता-
भिरिव, श्रीमत्याः शयकुशेशयाम्यां करकमलाम्यां पाणिपद्याम्यां निर्गलिताः निःसृतास्ताभिः कुङ्कुमजलधाराभिः
केशरसलिलधाराभिः पिञ्जरीक्रियमाणः पिञ्जलीक्रियमाणो देहः शरीरं यस्य तथाभूतः, लाक्षारसस्य जतुरसस्य
छटानां प्रहारेण पाटलितं श्वेतरक्तं दुकूलं वस्त्रं यस्य तादृशः, मृगमदस्य कस्तूर्या जलविन्दुभिः शवलं मिश्रितं २०
यच्चन्दनं तस्य स्थासकस्तिलको यस्य तथाभूतः, कनकयन्त्रधरः सन् चिक्रीड क्रीडति स्म । § ११०) कदा-
चनेति—कदाचन जातुचित् पुरन्दर इव सुमनोमण्डितः सुमनोभिर्देवैर्मण्डितः वज्रजङ्घपक्षे सुमनोभिः पुष्पै-
र्मण्डितः सोऽयं वज्रजङ्घः श्रीमत्या सह ललिताप्सरःकुलं ललितानां मनोहराणामप्सरसां स्वर्वेश्यानां कुलं समूहं
पक्षे ललितानि मनोहराणि यानि अप्सरांसि जलकासारास्तेषां कुलं समूहमसेवत भजति स्म । § १११)
पश्यत इति—कविरत्र संभोगशृङ्गारं वर्णयति—मृगस्येव लोचने यस्याः सा मृगलोचना हरिणाक्षी श्रीमती २५

रागताको) प्राप्त होता है ॥६२॥ § १०८) इतीति—इस प्रकार जितेन्द्रदेवकी स्तुतिकर निर्दोष
मुनि समूहको नमस्कार करता हुआ पवित्र आचारका धारक यह वज्रजंघ कमललोचना
श्रीमतीके साथ नगरको वापस आया और वहाँ बत्तीस हजार मुकुटवद्ध राजाओंके द्वारा
किये हुए उत्सवको प्राप्त होता हुआ चिर काल तक नाना प्रकारके भोग भोगता रहा ॥६३॥
§ १०९) कदाचिदिति—किसी समय कामदेवके प्रदीप्त स्वर्णमय बाणोंकी सन्ततिके समान ३०
श्रीमतीके हस्तकमलसे छोड़ी हुई केशरके जलकी धाराओंसे जिसका शरीर पीला किया जा
रहा है, लाखके रंगकी छटाओंके प्रहारसे जिसका वस्त्र पाटलवर्णका हो गया है तथा कस्तूरी
के जल बूँदोंसे मिश्रित चन्दनका जिसने तिलक लगा रखा है ऐसा यह वज्रजंघ सुवर्णकी
पिचकारी लेकर क्रीडा करता था । § ११०) कदाचनेति—और कभी इन्द्रके समान सुमनो-
मण्डित—फूलोंसे सुशोभित (पक्षमें देवोंसे अलंकृत) यह वज्रजंघ श्रीमतीके साथ ललिता- ३५
प्सरःकुल—सुन्दरजलवाले तालाबोंके समूहका—(पक्षमें सुन्दर अप्सराओंके समूह का)
सेवन करता था । § १११) पश्यत इति—इस मृगाक्षीने इसकी ओर देखनेवाले मेरे नेत्र

§ ११२) अपूर्वपाणिग्रहणे प्रवृत्ते नृपेण देव्याः किल केलिगेहे ।

लाजायितं मन्मथहव्यवाहे मर्दादगलन्मौक्तिकहारकेण ॥६५॥

§ ११३) जायापत्योर्मेलने केलिगेहे शम्पावल्लीमेघयोर्द्वन्द्वे ।

आसीत्तत्रामेघसंपातवृष्टिस्तस्या जज्ञे मानसस्य प्रहर्षः ॥६६॥

५ § ११४) अरुणविलसद्विम्बं ग्रस्तं तदा सहसा बला-

दहह पतितं मेरोः शृङ्गाच्च तारगणैस्ततः ।

तिमिरनिकरव्याप्तश्चन्द्रो बभूव नवोत्पल-

द्वितयमभवल्लीलालोलं तयोः स्मरसङ्गरे ॥६७॥

- पश्यतो विलोकयतो मे मम नेत्रं हठाद् बलाद् जहार इति, मत्वेव स सुरते संभोगे सुष्ठु दृष्टौ यस्यास्तस्याः
- १० सुनयनाया श्रीमत्या अम्बरं वस्त्रं जहार हरति स्म । उत्प्रेक्षा ॥६४॥ § ११२) अपूर्वेति—केलिगेहे क्रीडा-
गारे देव्याः श्रीमत्याः नृपेण वज्रजङ्घनेन अपूर्वपाणिग्रहणेऽभिनवविवाहे सर्वप्रथमकरग्रहणे च क्लृप्ते रचिते
सति मर्दात् आलिङ्गनजन्यसंमर्दात् गलन्मौक्तिकहारकेण नृपघत्पतन्मुक्तसरेण मन्मथहव्यवाहे कामाग्नी
लाजा इवाचरितमिति लाजायितं लाजवर्षणमिवाचरितम् ॥ उपजातिछन्दः ॥६५॥ § ११३) जायेति—अत्रे
वियति शम्पावल्लीमेघयोर्द्वत् तडितडित्वतोरिव जायापत्योर्दम्पत्योर्मेलने संयोगे सति तत्र केलिगेहे न विद्यते
१५ मेघो बलाहको यस्यां सा अमेघा, अमेघा चासी संपातवृष्टिश्च धारावृष्टिश्चेत्यमेघसंपातवृष्टिः आसीत् तस्या
वृष्टेश्च हेत्वर्थे पञ्चमी, मानसस्य चेतसः तपोरिति शेषः मानससरोवरस्य च प्रहर्षः प्रमोदो वृद्धिश्च जज्ञे जायते
स्म स्वेदवृष्ट्या दम्पत्योश्चेतःप्रसस्तिरभूदिति भावः । उपमाश्लेषौ शालिनीछन्दः ॥६६॥ § ११४) अरुणेति—
तदा संभोगवेलायां तयोः श्रीमतीवज्रजङ्घयोः स्मरसंगरे कामयुद्धे सहसा झटिति बलात् हठात् अरुणस्याकस्य
२० विलसद्विम्बं शोभमानमण्डलं ग्रस्तम् आक्रान्तं ततस्तदनन्तरं मेरोः सुमेरोः शृङ्गात् शिखरात् तारगणैः नक्षत्रगणैः
पतितं भ्रष्टम् अहह इत्याश्चर्यं । चन्द्रः शशी तिमिरनिकरेण ध्वान्तसमूहेन व्याप्तः समान्छन्नो बभूव, नवोत्पल-
द्वितयं च नूतननीलारविन्दयुगलं च लीलालोलं क्रीडाचपलम् अभवत् । अत्रातिशयोक्तिमहिम्नोपमेयो निर्गोणं

- हठपूर्वक हर लिये हैं यह मान कर ही मानों वज्रजङ्घने सुरत कालमें उस सुलोचनाका वस्त्र
छीन लिया था ॥६४॥ § ११२) अपूर्व—क्रीडागृहमें राजाने जब देवीका अपूर्वपाणिग्रहण
किया—अपूर्वविवाह किया अर्थात् सर्वप्रथम हस्तग्रहण कर आलिङ्गनके लिए जब उसे
२५ अपनी ओर खींचा तब एक ही झटकेमें हारके मोती टूट कर बिखर गये और उन बिखरे
हुए मोतियोंने उस अपूर्वविवाहके समय कामरूप अग्निमें लाजवर्षाका काम किया ॥६५॥
§ ११३) जायते—जिस प्रकार आकाशमें बिजली और मेघका संयोग होनेपर वर्षा होती
है उसी प्रकार क्रीडागृहमें दम्पतियोंका संयोग होने पर बिना मेघकी धाराबद्ध वृष्टि होने
लगी अर्थात् उनके शरीरसे स्वेदकणोंकी वर्षा होने लगी और उस वर्षासे उनके मनमें बहुत
३० भारी हर्ष उत्पन्न हुआ ॥६६॥ § ११४) अरुणेति—उन दोनोंके कामयुद्धमें आश्चर्यजनक
घटनाएँ हुईं जैसे सूर्यका लालविम्ब बलपूर्वक शीघ्र ही ग्रस्त हो गया, मेरुके शिखरसे
ताराओंके समूह टूटकर नीचे गिरे, चन्द्रमा अन्धकारके समूहसे व्याप्त हो गया और नवीन
नीलोत्पलोंका युगल लीलासे चंचल हो उठा । (द्वितीय अर्थ संस्कृत टीकासे देखें) ॥६७॥

१. ६५-६६ श्लोकयोर्मध्ये क प्रती निम्नश्लोकोऽधिकोऽस्ति—क्रीडायुद्धे चकोराक्ष्या तथा धूतायुधोऽप्यसौ ।
- २५ बभूव सहसा चित्रं घनचापलतान्वितः ।

§ ११५) निरंजनत्वं नयनाञ्चलेऽभूद्विरागताभून्नयने मृगाक्ष्याः ।
नीव्यां कवयामपि बन्धमुक्तिः पत्या समं दर्पककेलिकाले ॥६८॥

§ ११६) एवं जिनेन्द्रमहिमोत्सवपात्रदान-
पुत्रोद्भवादिबिभवैः सरसस्य तस्य ।
कान्तासखस्य कमनीयविशालकीर्तेः
कालो महानविदितो निरगाच्च तत्र ॥६९॥

§ ११७) वज्रबाहुरदात्कन्यां वज्रजङ्घसहोदरीम् ।
अनुन्दरीं चक्रवर्तिसुतायामिततेजसे ॥७०॥

उपमानमेवावशिष्टं, श्रीमत्या अधरोष्ठं प्रातः सूर्यस्य बिम्बमिव लोहितमासीत् तच्च वज्रजङ्घेन बलात् पीतं, श्रीमत्याः स्तनयुगलं सुमेरोः शृङ्गमिवोन्नतं बभूव तत्र च शोभमाना हारमणयस्तारागणा इवासन् प्रगाढा- १०
लिङ्गनवेलायां हारमणयस्त्रुटित्वा पतिताः । श्रीमत्या मुखं चन्द्र इव भास्वरमासीत् केशसमूहश्च तिमिरसमूह
इव कृष्णोऽभवत् विपरीतरत्यां पुंसायितक्रियायामिति यावत् श्रीमत्या मुखं विकीर्णं केशसमूहेन व्याप्तमभूत् ।
श्रीमत्या नेत्रद्वयं भवोत्पलमिव बभूव तच्च तदा लीलया क्षपलमभवत् 'अरुणोऽव्यक्तरागेऽर्के संध्यारामेऽर्कसारथी'
इति मेदिनी । हरिणीछन्दः ॥७६॥ § ११५) निरंजनत्वमिति— मृगाक्ष्याः कुरङ्गनेत्र्याः पत्या समं दर्पक- १५
केलिकाले कामक्रीडासमये नयनाञ्चले नयनान्ते निरंजनत्वं पापरहितत्वमभूत्, विरागता वीतरागता च नयने
लोचनेऽभूत् बन्धमुक्तिश्च बन्धान्मोक्षश्च नीव्यामधोवस्त्रग्रन्थ्यां कवयामपि केशपाशेऽपि बभूवेति चित्रं यत्र
पापाभावस्तत्रैव विरागता यत्र च विरागता तत्रैव बन्धमुक्तिरिति संगतिः अत्र तु निष्पापत्वमन्यत्र, विरागता-
न्यत्र, बन्धमुक्तिश्चान्यत्रेत्यसंगतिः । परिहारपक्षे चुम्बनान्नयनकोणे निरञ्जनत्वं निःकज्जलत्वमभवत्, विरागता
कोपाभावात्तज्जनिताख्यस्याभावो नयनेऽभूत्, वस्त्रापहरणार्थग्रन्थिमोचनं नीव्यां करव्यापाराद् बन्धनमुक्तिश्च २०
चूडायामभवदिति भावः । असंगतिश्लेषौ । उपजातिवृत्तम् ॥६८॥ § ११६) एवमिति—एवमनेन प्रकारेण २५
जिनेन्द्रस्य महिम्नां कल्याणानामुत्सवः पात्रदानं पुत्रोद्भवश्च ते आदौ येषां तथाभूता ये विभवास्तैः सरसस्य
रसोपेतस्य, कान्ताया सखा तस्य कान्तासखस्य स्त्रीसहितस्य कमनीया मनोहरा विशाला विपुला च
कीर्तियस्य तथाभूतस्य तस्य वज्रजङ्घस्य महान् दीर्घः कालस्तत्र वज्रदन्तनगर्याम् अविदित एवाज्ञात
एव निरगात् निर्जंगाम । वसन्ततिलकाछन्दः ॥६९॥ § ११७) वज्रेति—वज्रबाहुः वज्रजङ्घस्य २५
सहोदरीं सगर्भाम् अनुन्दरीं तन्नाम्नीं कन्यां चक्रवर्तिसुताय वज्रदन्तपुत्राय अमिततेजसे अदात् ॥७०॥

§ ११५) निरंजनत्वमिति—पतिके साथ कामक्रीडाके समय मृगनयनी श्रीमतीके नयन
कोणमें निरंजनत्व—पापका अभाव हुआ था, वीतरागता नेत्रमें हुई थी और बन्धसे मुक्ति
नीवी तथा चोटीमें हुई थी (दूसरा अर्थ संस्कृत टीकासे देखें) ॥६८॥ § ११६) एवमिति—
इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्के कल्याणकोंका उत्सव, पात्रदान तथा पुत्रोत्पत्ति आदि ३०
विभवसे सरस, स्त्रीसहित तथा मनोहर एवं विशाल यशके धारक वज्रजङ्घका बहुत
भारी समय वहाँ बिना जाने ही निकल गया ॥६९॥ § ११७) वज्रबाहुरिति—वज्रबाहुने
चक्रवर्तीके पुत्र अमिततेजके लिए वज्रजङ्घकी बहन अनुन्दरी नामकी कन्या दी ॥७०॥

§ ११८) चारुलक्षणसंपन्नश्चक्रिसूनुस्तया बभौ ।

ज्योत्स्नयेव सुधासूतिः प्रभयेव च भास्करः ॥७१॥

इति श्रीमदहंदासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे द्वितीयस्तवकः ।

§ ११८) चार्विति—चारुलक्षणैः प्रशस्तचित्तैः संपन्नः सहितः चक्रिसूनुः वज्रदन्तपुत्रः तया अनुन्दर्या ज्योत्स्नया चन्द्रिकया सुधासूतिश्चन्द्र इव प्रभया दीप्त्या च भास्कर इव सूर्य इव बभौ शुशुभे । उपमा ॥७१॥

इत्यहंदासकृतेः पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य वासन्तीसमाख्यायां संस्कृतभ्याख्यायां द्वितीयः स्तवकः ।

§ ११८) चार्विति—सुन्दर लक्षणोंसे सहित चक्रवर्तीका पुत्र उस अनुन्दरीसे ऐसा सुशो-
भित हुआ जैसा कि चाँदनीसे चन्द्रमा और प्रभासे सूर्य सुशोभित होता है ॥७१॥

इस प्रकार अहंदासकी कृति पुरुदेवचम्पूप्रबन्धमें दूसरा स्तवक समाप्त हुआ ।

तृतीयः स्तवकः

§ १) अथ कदाचिच्चक्रधरकलितपूजासत्कारपूजितश्चक्रिप्रतिपादितां महतीं सेनां कोश-
देशादिकं च प्रतिगृह्णानया श्रीमत्या पुरस्कृतः पित्रादिपरिवृतः, प्रस्थानसंसूचकभेरीभाङ्कारपूरित-
भुवनतलो वज्रजङ्घोऽनुव्रजितुमायातान्मन्त्रिपुरोहितपौरवर्गान्नातिदूरे विसृज्य पुरस्तरङ्गितचतुरङ्ग-
बलेन सह स्वपुरं प्रति निर्जगाम ।

§ २) महीतलं तदा व्योमतलं चोच्चकरेणुभिः ।

पुपुरे वज्रजङ्घस्य प्रयाणे परिजृम्भते ॥१॥

§ ३) शङ्खास्तदानीं पृतनाधिराजैरापूर्यमाणा द्वितयं निभेदुः ।

शं तद्वियोगासहसज्जनानां वयस्ययूनां रभसेन खं च ॥२॥

§ १) अथेति—अथानन्तरं कदाचित् चक्रधरेण वज्रदन्तेन कलितः कृतो यः पूजासत्कारस्तेन पूजितः,
चक्रिणा पित्रा प्रतिपादिता दत्ता तां महतीं विशालां सेनां पृतनां कोशदेशादिकं च निधिजनपदादिकं च १०
प्रतिगृह्णानया स्वीकुर्वाणया श्रीमत्या भार्यया पुरस्कृतोऽप्येकृतः, पित्रादिभिः तातप्रभृतिस्वपक्षीयजनैः परिवृतः
परिवेष्टितः प्रस्थानस्य प्रयाणस्य संसूचकः प्रख्यापको यो भेरीभाङ्कारो बुन्दुभिनादस्तेन पूरितं संभरितं भुवनतलं
येन तथाभूतो वज्रजङ्घः, अनुव्रजितुमनुगन्तुम् आयातान् आगतान् मन्त्री च पुरोहितश्च पौरवर्गश्चेति
द्वन्द्वस्तान् नातिदूरे किञ्चिद्दूरे विसृज्य प्रत्यावर्त्य पुरोऽग्रे तरङ्गितं वृद्धिगतं यत् चतुरङ्गबलं चतुरङ्गसैन्यं
हस्त्यश्वरथपदातिरूपं तेन सह स्वपुरं प्रति स्वकीयनगरमुत्पलखेदनगरीं प्रति निर्जगाम निश्चक्राम । १५

§ २) महीतलमिति—तदा तस्मिन् काले वज्रजङ्घस्य प्रयाणे प्रस्थाने परिजृम्भते वृद्धिगते सति महीतलं
पृथिवीतलं व्योमतलं नभस्तलं च उच्चकरेणुभिः पुपुरे । महीतलं उच्चा उत्तुङ्गाः करेणवो हस्तिन्यस्ताभिः
पुपुरे व्योमतलम् उच्चका उत्थिता रेणवो धूलयस्तैः पुपुरे । श्लेषः ॥१॥ § ३) शङ्खा इति—तदानीं प्रयाण-
काले पृतनाधिराजैः सेनापतिभिः आपूर्यमाणा आध्मायमानाः शङ्खाः कम्बवो द्वितयं वस्तुद्वयं निभेदुः खण्डयामासुः ।
किं तत् । तयोः श्रीमतीवज्रजङ्घयोर्वियोगस्य विरहस्यासहाः सोढुमसमर्था ये सज्जनास्तेषां वयस्ययूनां २०

§ १) अथेति—तदनन्तरं किसी समय जो चक्रवर्तीके द्वारा किये हुए सम्मान सत्कार-
से पूजित था, चक्रवर्तीके द्वारा दी हुई विशाल सेना और खजाना तथा देश आदिको स्वीकृत
करनेवाली श्रीमतीने जिसे आगे किया था, पिता आदि परिवारके लोगोंसे जो घिरा हुआ
था और प्रस्थानको सूचित करनेवाली भेरियोंकी जोरदार ध्वनिसे जिसने भुवनतलको
व्याप्त कर दिया था ऐसा वज्रजंघ पहुँचानेके लिए आये हुए मन्त्री पुरोहित तथा नागरिकोंके २५
समूहको थोड़ी दूरीपर छोड़कर सामने लहराती हुई चतुरंग सेनाके साथ अपने उत्पलखेट
नगरकी ओर चल पड़ा । § २) महीतलमिति—उस समय जब वज्रजंघका प्रस्थान वृद्धिको
प्राप्त हो रहा था तब पृथिवीतल और आकाशतल दोनों ही उच्च करेणुओंसे व्याप्त हो गये
ये अर्थात् पृथिवीतल तो ऊँची-ऊँची हस्तिनियोंसे व्याप्त हो गया था और आकाश ऊँची
उठी हुई धूलिसे भर गया था ॥१॥ § ३) शंखा इति—उस समय सेनापतियों द्वारा फूँके गये ३०
शंखोंने दो वस्तुओंको खण्डित किया था । एक तो श्रीमती और वज्रजंघके वियोगको सहन

§ ४) एवं प्रयाणपटुतरबलेन सह तोरणकेतुजालादिभिरलंकृतमुत्पलखेटकं पुरं समासाद्य तत्र गगनतलचुम्बिसौधसमाश्रितनितम्बिनीजनकरोन्मुक्तकुसुमलाजोपहारसुरभितसविधप्रदेशोनर-पतिभवनमाससाद ।

§ ५) श्रीमतीं रमयामास वज्रजङ्घो विशालधोः ।

५ मातापितृवियोगेन खिन्नां कोशधनस्तनीम् ॥३॥

§ ६) सापि कुरङ्गलोचना सखीनामग्रगण्यया पण्डितया नृत्यगीतादिविनोदमनुभवन्ती क्रमेण पञ्चाशतं यमान्पुत्रान्प्राप्तोष्ट ।

§ ७) अथ कदाचिन्मणिसौधगविराजमानो वज्रबाहुमहीपतिः सुरापगाडिण्डोरखण्डमिव, व्योमलक्ष्मीहसितमिव, कंचन शारदनीरदं तत्क्षणविलीनं विलोकमानो वैराग्यायत्तचित्तस्तनय-

- १० तरुणमित्राणां शं सुखं, रमसेन वेगेन खं च गगनं च । उपजातिछन्दः ॥२॥ § ४) एवमिति— एवमित्थं प्रयाणे प्रगमने पटुतरं दक्षतरं यत् बलं सैन्यं तेन सह तोरणकेतुजालादिभिर्बहिर्द्वारपताकासमूहप्रभृतिभिः अलंकृतं शोभितम् उत्पलखेटकं पुरं समासाद्य प्राप्य तत्र नगरे गगनतलचुम्बिसौधेषु समुत्तुङ्गप्रासादेषु समाश्रितानां समधिष्ठितानां नितम्बिनीजनानां वनिताजनानां कराम्यां हस्ताभ्यामुन्मुक्ता वषिता ये कुसुमलाजोपहाराः पुष्पभर्जितधान्यलाजोपायनानि तैः सुरभितः सुगन्धितः संविधप्रदेशो निकटप्रदेशो येन तथाभूतः सन् नरपति-
१५ भवनं राजप्रासादम् आससाद प्राप । § ५) श्रीमतीमिति—विशाला प्रत्येककार्ये दक्षा धीर्यस्य विशालधोः वज्रजङ्घुः माता च पिता चेति मातापितरौ तयोर्वियोगेन विरहेण खिन्नां दुःखितां कोशाविव कुड्मलाविव धनी स्तनी यस्यास्तां कठिनकुचां श्रीमतीं रमयामास क्रीडयामास ॥३॥ § ६) सापीति—कुरङ्गस्य लोचने इव लोचने यस्यास्तथाभूता सापि श्रोमत्यपि सखीनामालीनाम् अग्रगण्यया प्रधानया पण्डितया तन्नामसख्या नृत्यगी-
२० त्तादिविनोदं लास्यसंगीतप्रभृतिमनोरञ्जनम् अनुभवन्ती क्रमेण पञ्चाशतं यमान् युगलरूपेण समुत्पन्नान् पुत्रान् प्राप्तोष्ट जनयामास । § ७) अथेति—अथानन्तरं कदाचित् मणिसौधस्य रत्ननिमित्तप्रासादस्याग्रे विराजमानः शोभमानस्तथाभूतो वज्रबाहुमहीपतिः वज्रजङ्घस्य पिता, सुरापगाया आकाशगङ्गाया डिण्डीरखण्डमिव फेन-
शकलमिव, व्योमलक्ष्म्या गगनश्रिया हसितमिव, नभस्तरोराकाशमहोरहस्य कुसुमपुञ्जमिव पुष्पसमूहमिव, गगन-
कानने नभोरण्ये विहरमाणः परिभ्रमन् स्तम्बेरमः एरावणस्तमिव, कंचन कमपि शारदनीरदं शरद्वृक्षनाघनं

- न करनेवाले सज्जनों तथा तरुण मित्रोंके सुखको और दूसरी, वेगसे आकाशको खण्डित किया
२५ था ॥२॥ § ४) एवमिति—इस प्रकार प्रयाण करनेमें अत्यन्त चतुर सेनाके साथ वज्रजङ्घ, तोरण तथा पताका समूह आदिसे अलंकृत उत्पलखेटनगर जा पहुँचे वहाँ गगनचुम्बी भवनो-
पर स्थित स्त्रियोंके हाथोंसे वर्षाये गये फूल तथा लाईके उपहारसे समीपवर्ती प्रदेशको सुगन्धित करते हुए राजमहलको प्राप्त हुए । § ५) श्रीमतीमिति—विशालबुद्धिके धारक वज्रजङ्घ माता-पिताके वियोगसे दुःखी तथा कठिन स्तनोंसे युक्त श्रीमतीको रमण कराने
३० लगे ॥३॥ § ६) सापीति—सखियोंमें अग्रगण्य पण्डिताके साथ नृत्य-गीत आदि विनोदका अनुभव करती हुई उस मृगनयनी श्रीमतीने भी क्रमसे पचास युगल पुत्रोंको उत्पन्न किया ।
§ ७) अथेति—तदनन्तर किसी समय महाराज वज्रबाहु मणिमय महलके अग्रभागपर विराज-
मान थे । वहाँ उन्होंने आकाशगंगाके फेनके खण्डके समान, आकाशलक्ष्मीके हास्यके समान, आकाशरूपी वृक्षके पुष्पसमूहके समान अथवा आकाश रूपी वनमें घूमते हुए ऐरावत हाथीके
३५ समान किसी शरद्वृक्षके बादलको तत्काल विलीन होता हुआ देखा । देखते ही के साथ

समर्पितराज्यभारः पञ्चशतपृथ्वीपतिभिर्वीरप्रभृतिभिः श्रीमतीतनयैश्च साकं जैनी दीक्षामुपादाय क्रमेण कैवल्यमुत्पाद्य परं धाममाससाद ।

§ ८) पैतृकीं संपदं प्राप्य प्रकृतीरनुरञ्जयन् ।

वज्रजङ्घोऽपि वसुधां पालयामास सादरम् ॥४॥

§ ९) अथ वज्रदन्तचक्रधरोऽपि स्वमिव सुरसभावं अतिदक्षं सभासंनिवेशमासाद्य सद्बृत्त-
रत्नमण्डितं सिंहासनमलंकुर्वाणस्तत्र समागतेन वनपालेन समर्पितं सामोदं भ्रमरहितं पद्ममजि-
घ्रंस्तद्गन्धमुग्धमधुकरं निशि तत्र संरुद्धं मृतं निरीक्ष्य भृशं निर्विण्णो, विरतविषयाभिलाषस्तनयाय
विदितनयायामिततेजोऽभिधानाय राजलक्ष्मीं प्रतिपादयितुकामस्तस्मिन् सानुजे तपःसाम्राज्यमेव

तत्क्षणं तत्कालं विलीनं नष्टं विलोकमानः पश्यन् वैराग्यायत्तं चित्तं यस्य तथाभूतो विरक्तमनाः, तनयाय पुत्राय
समर्पितो राज्यभारो येन तादृशः सन् पञ्चशतपृथ्वीपतिभिः पञ्चशतप्रमितमहीपालैः वीरप्रभृतिभिः श्रीमती-
पुत्रैः साकं जैनी जैनेन्द्री दीक्षां प्रव्रज्याम् उपादाय गृहीत्वा क्रमेण कैवल्यं केवलज्ञानम् उत्पाद्य परं धाम मोक्षम्
आससाद प्राप । § ८) पैतृकीमिति—पैतृकीं पितृसंबन्धिनीं संपदं प्राप्य प्रकृतीः प्रजा अनुरञ्जयन् अनुरक्ता
कुर्वन् वज्रजङ्घोऽपि सादरं यथा स्यात्तथा वसुधां पृथिवीं पालयामास ररक्ष ॥४॥ § ९) अथेति—अथानन्तरं
वज्रदन्तचक्रधरोऽपि श्रीमतीजनकोऽपि स्वमिव स्वसदृशं सुरसभावं सुष्ठु रसः सुरसस्तस्य भावः सत्त्वं यस्मिन्
तं सुरसभावं पक्षे सुरसभां देवसभाम् अवति प्राप्नोतीति सुरसभावस्तं, अतिदक्षम् अतिशयेन दक्षो विदग्धोऽति-
दक्षस्तं पक्षे अत्यधिका दक्षाश्चतुरनरा यस्मिस्तं सभासंनिवेशं सभामण्डलम् आसाद्य, स्वमिव स्वसदृशमिति १०
पुनरपि योज्यं सद्बृत्तरत्नमण्डितं सद्बृत्तं सदाचार एव रत्नं तेन मण्डितस्तं पक्षे सन्ति प्रशस्तानि वृत्तानि
वर्तुलानि यानि रत्नानि तैर्मण्डितं शोभितं सिंहासनम् अलंकुर्वाणः, तत्र सभासंनिवेशे समागतेन समायतेन
वनपालेन समर्पितं प्रदत्तं स्वमिव स्वसदृशमिति पुनरपि योज्यं सामोदं सहर्षं पक्षे सगन्धं भ्रमरहितं सदेहरहितं
पक्षे षट्पदहितं पक्षं कमलम् आजिघ्रन् घ्राणविषयोकुर्वन् तस्य पद्मस्य गन्धे सुरभौ मुग्धो मूढो यो मधुकरो २०
भ्रमरस्तं, निशि रजन्यां तत्र पद्मे संरुद्धं मृतं निष्प्राणं निरीक्ष्य भृशमत्यन्तं निर्विण्णो विरक्तः, विरतो दूरीभूतो
विषयाभिलाषो भोगस्पृहा यस्य तथाभूतः सन् विदितो नयो येन तस्मै राजनीतिज्ञाय अमिततेजोऽभिधानाय

उनका चित्त वैराग्यसे भर गया जिससे उन्होंने पुत्रके लिए राज्यभार सौंप कर पाँच सौ
राजाओं तथा वीर आदि श्रीमतीके पुत्रोंके साथ जैनीदीक्षा धारण कर ली और क्रमसे
केवलज्ञान उत्पन्न कर मोक्षको प्राप्त किया । § ८) पैतृकीमिति—पिताकी सम्पत्तिको २५
पाकर प्रजाको प्रसन्न करते हुए वज्रजङ्घ भी आदरके साथ पृथिवीका पालन करने लगे ॥४॥
§ ९) अथेति—तदनन्तर वज्रदन्त चक्रवर्ती भी अपने समान सुरसभाव—उत्तमरसके
सद्भावसे सहित (पक्षमें देवसभाके तुल्य) तथा अतिदक्ष—अत्यन्त चतुर (पक्षमें अत्य-
धिक चतुर मनुष्योंसे सहित) सभामण्डपको प्राप्तकर, अपने ही समान सद्बृत्तमण्डित—
सदाचार रूपी रत्नसे सुशोभित (पक्षमें उत्तम तथा गोल रत्नोंसे सुशोभित) सिंहासनको ३०
अलंकृत कर, वहाँ आये हुए वनपालके द्वारा प्रदत्त अपने ही समान सामोद—हर्षसे सहित
(पक्षमें सुगन्धसे सहित) तथा भ्रमरहित—सन्देहरहित (पक्षमें भ्रमरोंके लिए हितकारी)
कमलको सूँघने लगे । वहाँ कमलके लोभी भ्रमरको रात्रिमें उसी कमलमें रुककर मरा हुआ
देख अत्यन्त खिन्न हुए तथा विषयाभिलाषसे विरत हो गये । वे राजनीतिके ज्ञाता अमिततेज
नामक पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी देना चाहते थे परन्तु उसने और उसके छोटे भाई—दोनोंने ३५
तपके साम्राज्यको ही बहुत माना अर्थात् राज्यलक्ष्मीको लेना अस्वीकृत कर दिया । तब मुखसे

बहुमन्वाने, तत्सुताय पुण्डरीकाय वदनजितपुण्डरीकाय बालाय राज्यमर्पयित्वा षष्टिसहस्रैर्देवीनां त्रिशत्सहस्रैर्नरपालानां सहस्रेण सुतैः पण्डितया च परिवृतो यशोधरयोगीन्द्रशिष्यं गुणधरनामानं मुनिवरमासाद्य सत्वरमदीक्षिष्ट ।

§ १०) ततश्चक्रधरापायाल्लक्ष्मीमतिरगाच्छुचम् ।

५ अनुन्दर्या सहोष्णांशुवियोगान्नलनी यथा ॥५॥

§ ११) बाले राज्यभरोऽर्पितः कथमयं बालो मया रक्ष्यते

पुण्यत्पक्षबलादृते किमधुना कर्तव्यमित्युत्कटम् ।

चिन्ताक्रान्तमतिः खगाधिपसुतो लक्ष्मीमतिः प्राहिणोत्

पत्रप्रोतकरण्डकौ कुशलनी श्रोवज्जङ्घं प्रति ॥६॥

१० § १२) तदनु करण्डकस्थितपत्रार्थज्ञानेन निश्चितसकलोदन्तः किञ्चिच्चिन्ताक्रान्तस्वान्तः

तनयाय पुत्राय राजलक्ष्मीं राजश्रियं प्रतिपादयितुकामः प्रदानुमताः, सानुजे लघुसहोदरसहिते तस्मिन् अमित-
तेजसि तपसः साम्राज्यं तपःसाम्राज्यं तदेव बहुमन्वाने राज्यमस्वीकुर्वाणे सति तत्सुताय अमिततेजःपुत्राय वदनेन
मुखेन जितं पुण्डरीकं श्वेतसरोरुहं येन तस्मै वदनजितपुण्डरीकाय बालायात्पवयस्काय पुण्डरीकाय पुण्डरीक-
नाम्ने राज्यम् अर्पयित्वा प्रदाय देवीनां राज्ञीनां षष्टिसहस्रैः, नरपालानां राज्ञां त्रिशत्सहस्रैः सहस्रेण सुतैः पुत्रैः
१५ पण्डितया श्रीमतीसख्या च परिवृतः परीतः यशोधरयोगीन्द्रस्य यशोधरजिनराजस्य शिष्यं गुणधरनामानं मुनि-
वरं यतिश्रेष्ठम् आश्रित्य प्राप्य सत्वरं शीघ्रम् अदीक्षिष्ट दीक्षितो बभूव । § १०) तत इति—ततस्तदनन्तरं
चक्रधरस्य वज्रदन्तस्य अपयात् निर्गमनात् लक्ष्मीमतिश्चक्रवर्तिभार्या अनुन्दर्या पुत्रवध्वा सह उष्णांशुवियोगात्
सूर्यविप्रलम्भात् नलनी यथा कमलनीव शुचं शोकम् अगात् प्रापत् ॥५॥ § ११) बाल इति—राज्यभरो
बालेऽल्पवयस्कपुण्डरीके अर्पितो निक्षिप्तः, पुण्यत्पक्षस्य सबलसहायस्य बलं समाश्रयस्तस्मात् ऋते विना मया
२० स्त्रिया अयं बालः पुण्डरीकः कथं रक्ष्यते त्रायते । अधुना सांप्रतं किं कर्तव्यं करणीयम् इतीत्यम् उत्कटमत्य-
धिकं चिन्तया विचारसंतत्या आक्रान्ता मतिर्यस्या तथाभूता लक्ष्मीमतिश्चक्रवर्तीपत्नी पत्रप्रोतं पत्रसहितं
करण्डकं ययोस्ती कुशलनी चतुरो खगाधिपसुतो विद्याधरराजपुत्री श्रोवज्जङ्घं प्रति जामातरं प्रति प्राहिणोत्
प्रेषयामास । शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥६॥ § १२) तदन्विति—तदनन्तरं करण्डके पेटके स्थितं निहितं यत्
पत्रं तस्यार्थस्य ज्ञानेन निश्चितो निर्णीतः सकलोदन्तो निखिलसमाचारो येन तथाभूतः, किञ्चिन्मना चिन्तया-

२५ कमलको जीतनेवाले, अमिततेजके पुत्र पुण्डरीकके लिए जो कि अत्यन्त बालक ही था राज्य
देकर साठ हजार रानियों, तीस हजार राजाओं, एक हजार पुत्र और पण्डिता नामक
श्रीमतीकी सखीसे परिवृत हो यशोधर जिनेन्द्रके शिष्य गुणधर नामक मुनिराजके पास
जाकर शीघ्र ही दीक्षा ले ली । § १०) तत इति—तदनन्तर चक्रवर्तिके चले जानेसे लक्ष्मीमति
अनुन्दरीके साथ, सूर्यके वियोगसे कमलनीके समान शोकको प्राप्त हुई ॥५॥ § ११) बाल
३० इति—राज्यका भार बालके ऊपर अर्पित किया गया है सो सबल सहायकके बलके बिना
यह बालक मुझ अबलाके द्वारा किस प्रकार रक्षित किया जा सकता है । इस समय क्या
करना चाहिए ? इस प्रकारकी चिन्तासे जिसकी बुद्धि आक्रान्त हो रही थी ऐसी लक्ष्मीमतिने
पत्र सहित पिटारोंसे युक्त अतिशय चतुर विद्याधर राजाके दो पुत्रोंको भी वज्रजंघके प्रति
भेजा ॥६॥ § १२) तदन्विति—तदनन्तर पिटारेमें स्थित पत्रके अर्थका ज्ञान होनेसे जिन्होंने
३५ सब वृत्तान्तका निश्चय कर लिया था तथा जिनका चित्त कुछ चिन्तासे व्याप्त हो रहा था

काश्यपीकान्तः कान्तायै श्रीमत्यै यथानिश्चयं वृत्तमिदं निवेद्य, समाश्वास्य च समाकुलमानसां तां, कृतप्रमाणोद्यमः पुरतो विसृज्य चिन्तागतिमनोगतिविख्यातौ दूतमुख्यौ, मतिवरानन्दधनमित्राकम्पननामधेयैर्महामन्त्रिपुरोहितश्रेष्ठिचमूपतिभिः परिवृतश्चलन्तमपरमिव जलधि बलं पुरोधाय प्रस्थानभेरीरवपूरितभुवनोदरः प्रतस्थे ।

§ १३) रङ्गत्तुरङ्गमतरङ्गवती करीन्द्र —

यादःकुला बहुललोलकृपाणमत्स्या ।

श्वेतातपत्रघनफेनविराजमाना

सा बाहिनी नरपतेः प्रजवं चचाल ॥७॥

§ १४) घोटाटोपस्फुटितवसुधाधूलिकापालिकाभिः

शोषं याते दिवि भुवि लसत्सिन्धुयुग्मे क्षणेन ।

क्रान्तं स्वान्तं चित्तं यस्य तादृशः काश्यपीकान्तो महोपतिर्वज्रजङ्घः कान्तायै वल्लभायै श्रीमत्यै यथानिश्चयं निश्चयानुसारम् इदं वृत्तं समाचारमेतं निवेद्य कथयित्वा, समाकुलमानसां व्यग्रचेतसं तां समाश्वास्य च संबोध्य च, कृतः प्रयाणे उद्यमो येन तथाभूतः सन् पुरतोऽग्रे चिन्तागतिमनोगतिविख्यातौ दूतमुख्यौ प्रधानदूतौ विसृज्य मुक्त्वा प्रेष्येत्यर्थः । मतिवरानन्दधनमित्राकम्पननामधेयैः महामन्त्रिपुरोहितश्रेष्ठिचमूपतिभिः यथाक्रमेणान्वयः, परिवृतः परितः चलन्तम् अपरं जलधि सागरमिव बलं सैन्यं पुरोधाय अग्रे कृत्वा प्रस्थानभेरीणां प्रयाणदुन्दुभीनां रवेण शब्देन पूरितः संभरितो भुवनोदरो लोकमध्यो येन तथाभूतः सन् प्रतस्थे प्रययौ । § १३) रङ्गदिति—नरपतेर्वज्रजङ्घस्य सा प्रसिद्धा बाहिनी सेना पक्षे नदी च प्रकृष्टवेगं यथा स्यात्तथा चचाल । अथ रूपकेणोभयोः सादृश्यमाह—रङ्गन्त उच्चलन्तस्तुरङ्गमा अश्वा एव तरङ्गाः कल्लोला इति रङ्गत्तुरङ्गम-तरङ्गाः, ते विद्यन्ते यस्यां तथाभूताः, करीन्द्रा गजेन्द्रा एव यादःकुलानि जलजन्तुसमूहा यस्यां सा, बहुललोलो अतिशयचपलाः कृपाणाः खङ्गा एव मत्स्यास्तिस्रयो यस्यां सा, श्वेतातपत्राणि शुभ्रच्छत्राण्येव घनफेनाः सान्द्र-डिण्डीरास्तेन विराजमाना शोभमाना । रूपकालंकारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥७॥ § १४) घोटाटोपेति—दिवि गगने भुवि पृथिव्यां च लसत् शोभमानं यत् सिन्धुयुग्मं नदीयुगलं तस्मिन् घोटाटानामश्वानां टोपैः खुरैः स्फुटिता विदारिता या वसुधा भूमिस्तस्या धूलिका रेणवस्तासां पालिकाः पङ्क्तयस्ताभिः क्षणेन अल्पेनैव कालेन शोषं याते सति शुष्के सति, तदिदमुभयं स्वर्णदीमहीनदीयुग्मम् अन्वर्थाख्यैः सार्थकनामधेयैः सिन्धुरन्ध्रैः सिन्धुं

ऐसे राजा वज्रजंघने निश्चयानुसार सब समाचार अपनी प्रिया श्रीमतीके लिए सुनाये और खिन्न चित्तवाली उस श्रीमतीको समझाकर प्रयाण के लिए उद्यत हुए । सबसे आगे उन्होंने चिन्तागति और मनोगति नामसे प्रसिद्ध दो मुख्य दूतोंको भेजा । मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन नामवाले महामन्त्री, पुरोहित, श्रेष्ठी और सेनापतिसे परिवृत हो चलते हुए दूसरे समुद्रके समान सेनाको आगे कर प्रस्थान कालमें बजनेवाली भेरियोंके शब्दसे संसारके मध्यको व्याप्त करते हुए उन्होंने प्रस्थान किया । § १३) रङ्गत्तुरङ्गमेति—जो उछलते हुए घोड़ेरूपी तरङ्गोंसे सहित थी, गजेन्द्र ही जिसमें जलजन्तु थे, अत्यन्त चञ्चल तलवारें ही मच्छ थे, तथा जो सकृद छत्ररूपी सचन फेनसे सुशोभित थी ऐसी राजा वज्रजंघकी सेनारूपी नदी बड़ी वेगसे चल रही थी ॥७॥ § १४) घोटाटोपेति—उस समय घोड़ोंकी टापोंसे खुदी हुई पृथिवी सम्बन्धी धूलिकी पङ्क्तियोंके द्वारा आकाश तथा भूमिपर शोभायमान—दोनों नदियोंके युगल क्षणभरमें सुखा दिये गये थे परन्तु सार्थक नामवाले सिन्धुरन्ध्र—हाथियोंने

शुण्डोद्गच्छजलकणभरैर्दानपूरैश्च वेगा-

दन्वर्थख्यैस्तदिदमुभयं पूरितं सिन्धुरन्ध्रेः ॥८॥

§ १५) ततश्च विकचकं सुमनिकरमत्युच्चतया तारागणमिव शिखरदेशलग्नमुद्वहद्भिः पादपैरुपशोभितां निजसेनामिव महिषीसमधिष्ठितां कञ्चुकोपरिवृतां चमरजातविराजितां च वन-
५ वीथिमासाद्य, तत्र कस्यचित्सरसः समीपदेशे शीतलसुरभिलमन्दगन्धवहमधुरसलिलसंनिवेशे नरपालः सेनां परितो विधाय शिविरमाससाद ।

§ १६) कान्तारचर्या संगीर्यं पर्यटन्ती मुनोश्चरी ।

ददर्श धरणीपालः स तत्राम्बरचारिणी ॥९॥

१० रन्धयन्ति साधयन्ति—पूरयन्ति—इति सिन्धुरन्ध्राः तैर्गजैः, शुण्डाम्यो हस्तेभ्य उद्गच्छन्त उत्पतन्तो ये जलकण-
भरा वारिपृषतासमूहास्तैः, दानपूरैश्च मदप्रवाहैश्च वेगात् झटिति पूरितं संभरितं शुण्डोद्गच्छजलकणभरैः
स्वर्णदीपूरितादानपूरैश्च महीनदीपूरितेति भावः । अतिशयोक्तिः । मन्दाक्रान्ताच्छन्दः ॥८॥ § १५) तत-
श्चेति—ततश्च तदनन्तरं च, अत्युच्चतया अतितुङ्गतया शिखरदेशलग्नं शृङ्गप्रदेशसक्तं तारागणमिव नक्षत्र-
समूहमिव विकचकं प्रफुल्लं सुमनिकरं पुष्पसमूहम् उद्वहद्भिर्दधद्भिः पादपैस्तहभिः उपशोभितां समलंकृताम्,
निजसेनामिव स्वकीयपूतनामिव महिषीसमधिष्ठितां सेनापक्षे महिष्यो राज्यस्ताभिः समधिष्ठितां वनवीथिपक्षे
१५ महिष्यो देहिकाः महिषस्त्रिय इत्यर्थः 'महिषी नाम देहिका' इति धनञ्जयः ताभिः समधिष्ठितां, कञ्चुकोपरि-
वृतां सेनापक्षे कञ्चुक्यः अन्तःपुरवृद्धप्रतीहारास्तैः परिवृतां परीतां वनवीथिपक्षे कञ्चुक्यः सर्पास्तैः समधि-
ष्ठितां, चमरजातविराजितां सेनापक्षे चमराणां बालव्यजनानां जातेन समूहेन विराजितां शोभितां वनवीथिपक्षे
चमराणां मृगविशेषाणां जातेन समूहेन विराजितां च वनवीथि काननसरणिम् आसाद्य प्राप्य तत्र वनवीथ्यां
कस्यचित् सरसः कासारस्य समीपदेशे निकटप्रदेशे, कथंभूते निकटप्रदेशे । शीतलः शिशिरः सुरभिलः सुगन्धितः
२० मन्दो मन्थरश्च यो गन्धवहः पवनस्तेन मधुरो मनोहरसलिलसंनिवेशो यस्मिन् तस्मिन् परितः समन्तात् सेनां
ध्वजिनीं विधाय निवेश्य शिविरं सेनानिवेशस्थानम् आससाद प्राप । § १६) कान्तारेति—स धरणीपालो
वज्रजङ्घः तत्र कान्तारचर्या कान्तारे वन एव चर्यामाहारार्थं भ्रमणं कान्तारचर्या संगीर्यं प्रतिजाय यदि कान्तार-
मध्ये आहारं प्राप्स्यामि तर्हि ग्रहोष्यामि नान्यथेति नियमं कृत्वा पर्यटन्ती भ्रमन्ती अम्बरचारिणी चारणद्धि-

२५ सूडोंसे उछलते हुए जलकणोंके समूहसे आकाश गङ्गाको और मदके प्रवाहसे भूमिकी नदीको
भर दिया था ॥८॥ § १५) ततश्चेति—तदनन्तर जो अत्यन्त ऊँचाईके कारण शिखर देशमें
लगे हुए तारागणके समान विकसित फूलोंके समूहको धारण करनेवाले वृक्षोंसे सुशोभित थी,
तथा जो अपनी सेनाके समान महिषी समधिष्ठित—मैंसोंसे सहित (पक्षमें रानियोंसे
सहित), कंचुकी परिवृत—साँपोंसे घिरी हुई (पक्षमें अन्तःपुरके वृद्ध पहरेदारोंसे परिवृत)
और चमरजातविराजित—चमरीमृगोंके समूहसे सुशोभित (पक्षमें चौरोंके समूहसे
३० सुशोभित) थी ऐसी वनवीथि—वनमार्गको प्राप्त कर वहाँ किसी सरोवरके उस समीपवर्ती
प्रदेशमें जहाँ शीतल, सुगन्धित और मन्द वायुसे मधुर जलका समावेश था, सेनाको सब
ओर ठहराकर राजा वज्रजंघ अपने शिविरमें पहुँचे । § १६) कान्तारेति—वहाँ राजाने यदि
वनमें आहार मिलेगा तो लेंगे अन्यथा नहीं इस प्रकार कान्तारचर्या—वनचर्याका नियम

§ १७) उत्थाय वेगेन धराधिराजः कृताञ्जलिर्भक्तिसमर्पितार्घः ।

प्रणम्य कान्तासहितो मुनीन्द्रो प्रवेशयामास निजं निकाय्यम् ॥१०॥

§ १८) तत्र विशुद्धमतिरसौ नरपतिर्दमधरसागरसेननाम्ने प्रथितमहिम्ने शिथिलितभव-
निगलाय मुनियुगलाय तस्मै विधिवदाहारं दत्त्वा, रत्नवृष्टिपुष्पवृष्टिगगनतरङ्गिणीतरङ्गवाहि-
मन्दमारुतदुन्दुभिध्वनिजयघोषणारूपाणि पञ्चाश्रयाणि विलोकमानः, प्रणम्य संपूज्य मुनिपुङ्गवौ ५
विसृज्य विबुध्य च काञ्चुकीयात्कथनादिमौ चरमात्मतनुजौ, ससंभ्रमं श्रोमत्या सह संप्रीतः पुनस्त-
न्निकटमासाद्य, प्रथमं गृहस्थधर्मं स्वस्य श्रोमत्याश्च भवावलिं च श्रुत्वा सादरमेवं पप्रच्छ ।

§ १९) स्वबन्धुनिविशेषा मे स्निग्धा मतिवरादयः ।

मुनीश्वर ! भवानेषां मह्यं ब्रूहि दयानिधे ! ॥११॥

संपन्नो मुनीश्वरो यतिराजो ददर्श ॥९॥ § १७) उत्थायेति—कान्तासहितः सभार्यः धराधिराजो वज्रजङ्घः १०
वेगेन रभसा उत्थाय कृताञ्जलिविहितकरसंपुटः, भक्त्या समर्पितोऽर्घो येन तथाभूतः सन् प्रणम्य नमस्कृत्य
मुनीन्द्रो यतिराजो निजं स्वकीयं निकाय्यं पटागारं प्रवेशयामास । उपजातिछन्दः ॥१०॥ § १८) तत्रेति—
तत्र निजशिविरे विशुद्धा समोचीनश्रद्धोपेता मतिर्यस्य तथाभूतो नरपतिर्वज्रजङ्घः दमधरश्च सागरसेनश्चेति
दमधरसागरसेनो तौ नाम यस्य तस्मै, प्रथितः प्रसिद्धो महिमा यस्य तस्मै, शिथिलितं निर्बलीकृतं भवनिगलं
संसारबन्धनं यस्य तस्मै मुनियुगलाय तस्मै पूर्वोक्ताय, यथाविधि चरणानुयोगप्रतिपादितविध्यनुसारम् आहारं १५
दत्त्वा, रत्नवृष्टिश्च पुष्पवृष्टिश्च गगनतरङ्गिणीतरङ्गवाहिमन्दमारुतश्च दुन्दुभिध्वनिश्च जयघोषणा चेति द्वन्द्वः,
ता रूपं येषां तानि पञ्चविशिष्टकार्याणि विलोकमानः पश्यन्, प्रणम्य नमस्कृत्य संपूज्य समन्थं मुनिपुङ्गवौ
दमधरसागरसेननामानौ विसृज्य विसृष्टौ कृत्वा काञ्चुकीयात् कञ्चुकीसंबन्धिनः कथनात् इमौ मुनीश्वरौ
चरमौ च तावात्मतनुजाविति चरमात्मतनुजौ अन्तिमलघुपुत्रौ विबुध्य ज्ञात्वा च, ससंभ्रमं शीघ्रं श्रोमत्या
स्ववत्सलभया सह संप्रीतः संप्रसन्नः पुनर्भूयः तन्निकटं मुनियुगलाभ्यर्णम् आसाद्य, प्रथमं प्राक् गृहस्थधर्मं गृहि- २०
धर्मस्वरूपं स्वस्य श्रोमत्याश्च भवावलिं पूर्वभवसमूहं श्रुत्वा सादरं सविनयम् एवं पप्रच्छ पृष्ठवान् । § १९)
स्वेति—हे मुनीश्वर ! हे यतिराज ! स्निग्धाः स्नेहभाजो मतिवरादयः महामन्त्रिपुरोहितश्रेष्ठिचमूपतयः, मे मम
स्वबन्धुनिविशेषाः स्वसहोदरसदृशाः सन्ति । हे दयानिधे ! एषां मतिवरादीनां भवान् पूर्वपर्यायान् मह्यं ब्रूहि

लेकर भ्रमण करते हुए गगनविहारी दो मुनिराजोंको देखा ॥९॥ § १७) उत्थायेति—राजाने २५
स्त्रीसहित वेगसे उठकर हाथ जोड़े, भक्तिपूर्वक अर्घ्य चढ़ाया और नमस्कार कर उन्हें अपने
डेरेमें प्रविष्ट कराया ॥१०॥ § १८) तत्रेति—वहाँ विशुद्ध बुद्धिके धारक राजाने प्रसिद्ध
महिमासे युक्त तथा संसारकी बेड़ियोंको शिथिल करनेवाले दमधर और सागरसेन नामक
युगल मुनियोंको विधिपूर्वक आहार देकर रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि, आकाशगङ्गाकी तरङ्गोंको
धारण करनेवाली मन्द वायु, दुन्दुभिनाद और जयघोषणा रूप पाँच आश्चर्योंको देखा,
तदनन्तर दोनों मुनियोंको प्रणामकर पूजा करनेके बाद विदा किया । विदा करनेके बाद ३०
कञ्चुकीके कहनेसे यह जानकर कि ये हमारे ही अन्तिम दो पुत्र हैं राजाकी प्रसन्नताका
पार नहीं रहा । वे शीघ्र ही पुनः उनके निकट गये । वहाँ जाकर उन्होंने पहले गृहस्थ धर्म,
अपने और श्रीमतीके पूर्वभव सुने और उसके बाद आदरसहित इस प्रकार पूछा । § १९)
स्वेति—हे मुनिराज ! स्नेहसे युक्त ये मतिवर आदिक मेरे अपने भाईके समान हैं इसलिए

§ २०) इति पृष्ठो नरेन्द्रेण मुनीन्द्रस्तुष्टमानसः ।

अवधिस्पष्टनयन इदमाचष्ट सादरम् ॥१२॥

§ २१) अयं मतिवरो जम्बूद्वीपपूर्वविदेहवत्सकावतोविषयप्रभाकरीपुर्यामतिगृद्धो नाम नरपालो जातस्तत्र बह्मरम्भपरिग्रहवैभवविजृम्भितनरकायुष्यः पङ्कप्रभानाम्नि नरके संजात-
५ नारकभावो दशसागरोपमस्थितिस्ततो निष्पत्य पूर्वोक्तनगरसमीपविलसिते निजधननिक्षेपपर्वते शार्दूलः समजायत ।

§ २२) कदाचिद्विजिगीषयाप्युत्थितं निजानुजं निवर्त्य तन्महीधरमधिवसन्तं सानुजं प्रीति-
वर्धनं नाम महीरमणं, पुरोधाय पुरोधा मेधावतामग्रणीरत्र मुनीश्वराहारदानेन तव महान् लाभो
भवितेति प्रतिपाद्य मुनीश्वरसमागमोपायमप्येवं कथयांबभूव ।

१० § २३) प्रकीर्यन्तां पुष्पैरलिकुलकलारावमुखरैः

पयोभिः सिच्यन्तां घुसृणुरसमिश्रैः सुरभिलैः ।

कथय ॥११॥ § २०) इतीति—इतीत्यं नरेन्द्रेण वज्रजङ्घेन सादरं सविनयं पृष्ठोऽनुयुक्तः, तुष्टमानसः
संप्रीतहृदयः अवधिरेव स्पष्टनयनं यस्य तथाभूतोऽविज्ञाननेत्रविलसितो मुनीन्द्रः इदम् आचष्ट कथयामास
॥१२॥ § २१) अयमिति—अयं पुरोवर्तमानो मतिवरो महामन्त्री जम्बूद्वीपपूर्वविदेहस्य वत्सकावतोविषये
१५ विद्यमाना या प्रभाकरपुरी तस्याम् अतिगृद्धो नाम नरपालो राजा जातः । तत्रातिगृद्धभवे बह्मरम्भपरि-
ग्रहस्य वैभवेन सामर्थ्येन विजृम्भितं बद्धं नरकायुष्यं यस्य तथाभूतः सन् पङ्कप्रभानाम्नि नरके चतुर्थनरके
संजातः समुत्पन्नो नारकभावो नारकपर्यायो यस्य तादृशः, दशसागरोपमा स्थितिर्यस्य तथाभूतः ततो नरकात्
निष्पत्य निर्गत्य पूर्वोक्तनगरस्य प्रभाकरीपुर्याः समीपे विलसिते शोभिते निजधनस्य स्वकीयवित्तस्य निक्षेपो
निधानं यस्मिन् तथाभूते पर्वते शार्दूलो व्याघ्रः समजायत समुद्भूतः । § २२) कदाचिदिति—कदाचित्
२० जातुचित् विजेतुमिच्छा विजिगीषा तथापि उत्थितं स्वविरोधे कृतोत्थानं निजानुजं स्वकनिष्ठसहोदरं निवर्त्य
प्रत्यावर्त्य तन्महीधरं पूर्वोक्तपर्वतम् अधिवसन्तं प्रीतिवर्धनं नाम महीरमणं राजानं पुरोधायान्ने कृत्वा मेधावतां
बुद्धिमताम् अग्रणीः प्रधानः पुरोधाः पुरोहितः, अत्र पर्वते मुनीश्वराय आहारदानं तेन तव भवतो महान् लाभो
भविता भविष्यतीति प्रतिपाद्य कथयित्वा मुनीश्वरस्य समागमः प्राप्तिस्तस्योपायमपि एवं कथयामास जगाद ।
§ २३) प्रकीर्यन्तामिति—भो पौराः ! अयं पृथ्वीपतिर्भूपालः इतोऽस्मात्स्थानात् यास्यति गमिष्यति अतः मुदा
२५ हर्षेण पुरीरथ्या नगरीमार्गाः अलिकुलस्य भ्रमरसमूहस्य कलारावेण मधुरशब्देन मुखराणि शब्दायमानानि तैः

हे दयाके भाण्डार ! आप मेरे लिए इनके भव कहिए ॥११॥ § २०) इतीति—इस प्रकार
आदरसहित राजाके द्वारा पूछे गये संतुष्ट चित्त अवधिज्ञानी मुनिराज यह कहने लगे ॥१२॥
§ २१) अयमिति—यह मतिवर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी वत्सकावतो देशकी प्रभाकरी
नगरीमें पहले अतिगृद्ध नामका राजा था वहाँ बहुत आरम्भ और परिग्रहकी सामर्थ्यसे
३० नरकायुका बन्ध कर यह पंकप्रभा नामके चौथे नरकमें दशसागरकी आयुवाला नारकी
हुआ । वहाँसे निकलकर उसी प्रभाकरी नगरीके समीपमें शोभित उस पर्वतपर जिसमें कि
इसका धन गड़ा हुआ था व्याघ्र हुआ । § २२) कदाचिदिति—किसी समय जीतनेकी इच्छासे
भी उठे हुए अपने छोटे भाईको लौटाकर उस पर्वतपर ठहरे हुए छोटे भाईसहित प्रीतिवर्धन
नामके राजाको आगेकर बुद्धिमानोंमें शिरोमणि पुरोहित बोला कि इस पर्वतपर मुनिराजको
३५ आहार दान देनेसे तुम्हें महान् लाभ होगा, यह कहकर उसने मुनीश्वरके समागमका
उपाय भी इस प्रकार कहा । § २३) प्रकीर्यन्तामिति—हे पुरवासियो ! यहाँसे राजा जावेगा
इसलिए हर्षसे नगरीकी सड़के भ्रमरसमूहके अव्यक्तमधुर शब्दोंसे शब्दायमान फलोंसे

पुरोरथ्याः पृथ्वीपतिरयमितो यास्यति मुदा

ध्वजान्बद्ध्वा सौधेष्वपि तनुत भोस्तोरणगणान् ॥१३॥

§ २४) इति पुरे घोषणायां दत्तायां तथालङ्कृतं नगरमप्रासुकत्वेनात्मनो विहारायोग्यं मत्वा कान्तारचर्या संगीर्यं मुनिवरो यास्यति ।

§ २५) एवं पुरोधोवचनमङ्गीकृत्य धरारमणस्तथा कुर्वाणस्ततः क्रमेण समागताय ५
पिहितास्रवनाममुनिवराय विधिवदाहारं दत्त्वा निलिम्पनिपातितां वसुधारां विलोकमानस्तदानीमये
धरारमण ! अस्मिन् महीधरे भवदीयदानवैर्भवविजृम्भितरत्नवृष्टिनिरोक्षणक्षणजनितजातिस्मृतिः
संत्यक्तशरीराहारः कोऽपि शार्दूलः शिलातले निविष्टः सोऽयं त्वयोपचर्यताम् । अयं किल पुरुनन्दनो
भूत्वा चक्रवर्तितामेत्य परं धाम व्रजिष्यति, इति मुनिवरव्यवहारविस्तृतविस्मयो मुनिना समं
गत्वा शार्दूलस्य सपर्यां विस्तारयामास ।

१०

पुष्पैः प्रसूतैः प्रकीर्यन्तां प्रक्षिप्यन्ताम्, घुसृणरसमिश्रैः कुङ्कुमरसमिलितैः सुगन्धिभिः पयोभिर्जलैः सिच्यन्ताम्,
सौधेष्वपि प्रासादेष्वपि ध्वजान् पताका बद्ध्वा तोरणगणान् बहिर्द्वारसमूहान् तनुत विस्तारयत । शिखरिणी-
छन्दः ॥१३॥ § २४) इतीति—इतीत्यं पुरे नगरे घोषणायां दत्तायां तथा सुगन्धिसलिलपुष्पादिभिरलङ्कृतं
शोभितं नगरम् अप्रासुकत्वे सचित्तत्वेन आत्मनः स्वस्य विहारायोग्यं विहारस्यायोग्यमनर्हं मत्वा कान्तारचर्या
कान्तारे वने यदि आहारं प्राप्स्यामि तर्हि गृहीष्यामि अन्यथा नेति प्रतिज्ञा कान्तारचर्या कथ्यते । तां संगीर्य १५
प्रतिज्ञाय मुनिवरो यास्यति नगराद् बहिर्गमिष्यति । § २५) एवमिति—एवमित्यं पुरोधसो वचनं पुरोधो-
वचनं पुरोहितोक्तिम् अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य धरारमणः प्रीतिवर्धनो राजा तथा कुर्वाणः पुरोहितोक्तविधिना
नगरोरथ्या अलङ्कारयन् क्रमेण समागताय संप्राप्ताय पिहितास्रवनाममुनिवराय विधिवत् चरणानुयोगविहित-
विध्यनुसारम् आहारं दत्त्वा निलिम्पदैर्नैनिपातितां निलिम्पनिपातितां वसुधारां मणिधारां 'वसु तोये धने मणौ'
इत्यमरः विलोकमानः पश्यन् इदानीं तस्मिन् काले, अये धरारमण ! भो राजन् ! अस्मिन्महीधरे पर्वते भव- २०
दीयदानस्य वैभवेन सामर्थ्येन विजृम्भिता वृद्धि प्राप्ता या रत्नवृष्टिस्तस्या निरोक्षणक्षणेऽवलोकनावसरे जनिता
समुत्पन्ना जातिस्मृतिः पूर्वजन्मस्मरणं यस्य तथाभूतः, संत्यक्तो शरीराहारो येन तथाभूतः कोऽपि शार्दूलो व्याघ्रः
शिलातले दृप्ततले निविष्टः स्थितः, सोऽयं शार्दूलस्त्वया राजा उपचर्यतां सेव्यताम् । अयं किल शार्दूलः पुरो-
र्भवतो वृषभदेवस्य नन्दनः पुत्रो भूत्वा चक्रवर्तितां चक्रधरतामेत्य प्राप्य परं धाम मोक्षं व्रजिष्यति गमिष्यति ।
इतीत्यं मुनिवरस्य पिहितास्रवमुनिराजस्य व्याहारेण वचनेन विस्तृतो विस्मयो यस्य तथाभूतः पृथ्वीपतिः प्रीति- २५

आच्छादित की जावें, केशरके रससे मिले हुए सुगन्धित जलसे सींची जावें तथा महलों-
पर ध्वजाएँ बाँधकर तोरणोंके समूहको विस्तृत करो अर्थात् तोरण द्वार बनाओ ॥१३॥
§ २४) इतीति—नगरमें इस प्रकारकी घोषणाके किये जानेपर उस प्रकार अलङ्कृत किये हुए
नगरको अप्रासुक होनेसे अपने विहारके अयोग्य मानकर कान्तारचर्याका नियम धारण कर
मुनिराज प्राप्त होंगे । § २५) एवमिति—इस प्रकार पुरोहितके वचन स्वीकृत कर राजाने ३०
वैसा ही किया । तदनन्तर क्रमसे आये हुए पिहितास्रव नामक मुनिराजके लिए विधि-
पूर्वक आहार देकर देवोंके द्वारा गिरायी हुई रत्नोंकी धाराको देखने लगा । उस समय मुनि-
राजने कहा—हे राजन् ! इस पर्वतपर आपके दानकी सामर्थ्यसे होनेवाली रत्नवृष्टिको
देखनेके समय जिसे जातिस्मरण हो गया है ऐसा कोई व्याघ्र शरीर और आहार का त्याग-
कर शिलातलपर बैठा है सो तुम इसकी सेवा करो । यह भगवान् आदिनाथका पुत्र होकर ३५
चक्रवर्तीपदको प्राप्त होता हुआ मोक्ष जावेगा । मुनिराजके इन वचनोंसे जिसका आश्चर्य

§ २६) तदनु तेन मुनिशार्दूलेन स्वर्गी भवेति कलितकर्णजापः शार्दूलोऽयमष्टादशदिवसै-
स्त्यक्ताहारपरिग्रहो दिवाकरप्रभविख्यातविमाने श्रीमदैशानकल्पे दिवाकरप्रभो नाम देवो बभूव ।

§ २७) तदानीमुदारमिममाश्चर्यं दृष्ट्वा तस्य नरपालस्य चमूपतिसचिवपुरोधसः परामुप-
शान्तिमुपागता नृपदानानुमोदेन कुरुष्वार्याः संजाताः कालान्तेन गत्वैशानकल्पं प्रभाकाञ्चनरूपि-
५ ताख्येषु विमानेषु प्रभाकरकनकाभप्रभञ्जननामधेयाः सुराः समजायन्त ।

§ २८) ललिताङ्गभवे युष्मत्परिवारामरानिमान् ।

चतुरश्चतुरान्धोरान्धुरीणानवधारय ॥१४॥

§ २९) ततः प्रच्युत्य शार्दूलचरः सुरः श्रीमतीसागरयोः सुतस्तव मन्त्री मतिवरः समजा-
यत । प्रभाकरश्च नाकात्प्रच्युत्य आजीवापराजितसेनान्योर्वन्दनोऽयमकम्पनो बभूव । कनकप्रभस्तु
१० तस्मात्प्रच्युतोऽनन्तमतिश्रुतकीर्त्योः सुतोऽयमानन्दस्तव पुरोधा बभूव । प्रभञ्जनस्ततः प्रच्युत्य
धनदत्ताधनदत्तयोस्तनूजो धनमिश्रस्तव श्रेष्ठो समजायत ।

वर्धनो मुनिना पिहितास्रवयतिना समं सार्धं गत्वा शार्दूलस्य सपर्यां परिचर्यां विस्तारयामास । § २६) तदन्विति—
तदनन्तरं तेन मुनिशार्दूलेन यतिश्रेष्ठेन 'स्वर्गी भव देवो भव' इतीत्थं कलितः कृतः कर्णं जापो यस्य तथाभूतोऽयं
शार्दूलो व्याघ्रः अष्टादशदिवसैः त्यक्त आहारस्य परिग्रहः स्वीकारो येन तथाभूतः सन् श्रीमदैशानकल्पे द्वितीयस्वर्गे
१५ दिवाकरप्रभेति विख्यातं विमानं तस्मिन् दिवाकरप्रभो नाम देवोऽमरो बभूव । § २७) तदानीमिति—तदा-
नीम् इमं पूर्वोक्तमाश्चर्यं दृष्ट्वा तस्य प्रीतिवर्धनस्य नरपालस्य चमूपतिसचिवपुरोधसः सेनापतिमन्त्रिपुरोहिताः
परां सातिशयां शान्तिमुपागताः प्राप्ताः नृपेण दत्तं दानं नृपदानं तस्यानुमोदेन समर्थनेन कुरुषु उत्तमभोगभूमिषु
आर्याः संजाताः भोगभूमिजा नरा आर्यशब्देनोच्यन्ते नार्यश्चार्याशब्देन कालान्तेन मृत्युना ऐशानकल्पं द्वितीयस्वर्गं
गत्वा प्राप्य प्रभा-काञ्चन-रूपिताख्येषु तन्नामधेयेषु विमानेषु वैमानिकदेवानां निवासस्थानानि विमानशब्देनो-
२० च्यन्ते प्रभाकर-कनकाभ-प्रभञ्जननामधेया एतदभिधानाः सुरा देवाः समजायन्त । § २८) ललिताङ्गेति—
चतुरान् विदग्धान् धीरान् गभीरान् धुरीणान् निपुणान्, इमान् पूर्वोक्तान् चतुरः चतुःसंख्याकान् देवान् ललि-
ताङ्गभवे यदा त्वमैशानकल्पे ललिताङ्गोऽभवस्तदा तव परिवारामरा इति युष्मत्परिवारामरास्तान् स्वकीय-
परिवारानिलिम्पान् अवधारय निश्चिनु ॥१४॥ § २९) तत इति—शार्दूलचरः भूतपूर्वः शार्दूल इति शार्दूल-

बद्ध रहा था ऐसे राजा प्रीतिवर्धनने मुनिराजके साथ उस स्थानपर जाकर व्याघ्रकी परिचर्या
२५ की । § २६) तदन्विति—तदनन्तर उन श्रेष्ठ मुनिराजने 'देव होओ' इस तरह जिसके कानमें
जाप किया था तथा अठारह दिन तक जिसने लगातार आहार ग्रहणका त्याग किया था
ऐसा वह व्याघ्र शोभासंपन्न ऐशान स्वर्गके दिवाकरप्रभ नामसे प्रसिद्ध विमानमें दिवाकरप्रभ
नामका देव हुआ । § २७) तदानीमिति—उस समय इस उत्कृष्ट आश्चर्यको देखकर उस
राजाके सेनापति, मंत्री और पुरोहित परमशान्तिको प्राप्त हुए तथा राजाके द्वारा दिये हुए
३० दानकी अनुमोदना करनेसे उत्तम भोगभूमिमें आर्य हुए । आयुके अन्तमें ऐशानस्वर्गको प्राप्त
हो वहाँसे प्रभा, काञ्चन और रूपित नामक विमानोंमें क्रमसे प्रभाकर, कनकाभ, और
प्रभञ्जन नामक देव हुए । § २८) ललिताङ्गेति—चतुर, धीर तथा निपुण इन चारों देवोंको
तुम ललिताङ्ग भवमें अपने परिवारका देव समझो ॥१४॥ § २९) तत इति—वहाँसे च्युत
होकर व्याघ्रका जीव दिवाकरप्रभ देव, श्रीमती और सागरका पुत्र तथा तुम्हारा मतिवर
३५ नामका मन्त्री हुआ है । प्रभाकरदेव स्वर्गसे च्युत होकर आजीवा और अपराजित सेनानी-
का पुत्र यह अकम्पन हुआ है । कनकप्रभ वहाँसे च्युत होकर अनन्तमति और श्रुतकीर्तिका

§ ३०) इमां मुनीन्द्रस्य गिरं निशम्य तौ दम्पती धर्मरतावभूताम् ।

पप्रच्छ भूयोऽपि मुनीन्द्रमेनं धरापतिर्विस्मयदत्तचित्तः ॥१५॥

§ ३१) अमी नकुलशार्दूलगोलाङ्गूलाः ससूकराः ।

कस्मादत्रैव तिष्ठन्ति त्वन्मुखापितदृष्टयः ॥१६॥

§ ३२) इति राजानुयुक्तोऽसौ चारणर्षिरुवाच तम् ।

वचश्च यस्य तेजश्च भास्वद्वर्णं विराजसे ॥१७॥

§ ३३) अयं किल व्याघ्रो भवान्तरे एतद्देशविशोभितहस्तिनानगरे धनवतीसागरदत्तयोर्वै-
श्यदम्पत्योरुग्रसेननाम्ना सूनुर्भूत्वा वसुधाभेदसन्निभादप्रत्याख्यानक्रोधात्संजनिततिर्यगायुष्यः,
पृथ्वीपतिकोष्ठागारे नियुक्तान् पुरुषान्निर्भर्त्स्य घृततण्डुलादिकं वेश्याजनेभ्यो ददानस्तद्वृत्तान्तज्ञेन
राज्ञा बन्धितश्चपेटचरणाघातादिभिर्मृत्वेह व्याघ्रो बभूव ।

चरः 'भूतपूर्वं चरद्' इति चरदप्रत्ययः । शेषः स्पष्टः । § ३०) इमामिति—मुनीन्द्रस्य यतिराजस्य इमां
पूर्वोक्तां गिरं वाणीं निशम्य श्रुत्वा तौ दम्पती जायापती श्रीमतीवज्रजङ्घावित्यर्थः, धर्मरता धर्मासक्ती
अभूताम् । विस्मयायाश्चर्याय दत्तं चित्तं हृदयं येन तथाभूतो धरापतिर्वज्रजङ्घो भूयोऽपि पुनरपि एवं मुनीन्द्रं

मुनिराजं पप्रच्छ पृष्टवान् । उपजातिवृत्तम् ॥१५॥ § ३१) अमीति—ससूकराः सूकरेण बराहेण सहिता अमी
नकुलोऽहिर्वैरो शार्दूलो व्याघ्रः गोलाङ्गूलो वानर एषां द्वन्द्वः, तव मुखेऽपिता दत्ता दृष्टियैस्तथाभूताः सन्तः
अत्रैव कस्मात् कारणात् तिष्ठन्ति ॥१६॥ § ३२) इतीति—इतीत्यं राजा वज्रजङ्घेन अनुयुक्तः पृष्टः असौ
चारणर्षिर्गणविहारी मुनीन्द्रस्तं राजानम् उवाच जगाद, यस्य चारणर्षेः वचो वचनं तेजः प्रतापश्च भास्वद्वर्णं
वचःपक्षे भास्वन्तः स्पष्टा वर्णा अक्षराणि यस्मिंस्तत् तेजःपक्षे भास्वतः सूर्यस्येव वर्णो दीप्तिर्यस्य तत् । श्लेषः
॥१७॥ § ३३) अयमिति—अयं किल पुरो वर्तमानो व्याघ्रश्चमूहः अन्यो भवो भवान्तरस्तस्मिन् पूर्वजन्मनि

एतद्देशे एतज्जनपदे विशोभितं यद्हस्तिनानगरं तस्मिन् धनवतीसागरदत्तयोः एतन्नाम्नोः वैश्यदम्पत्योः
वणिजयापत्योः उग्रसेनाभिधानः सूनुः पुत्रो भूत्वा वसुधाभेदसन्निभाद् पृथ्वीभेदसदृशात् अप्रत्याख्यानक्रोधात्
संजनितं बद्धं तिर्यगायुष्यं येन तथाभूतः, पृथ्वीपतिकोष्ठागारे राजभाण्डागारे नियुक्तान् पुरुषान् निर्भर्त्स्य संतर्ज्य
वेश्याजनेभ्यो बिलासिनीजनेभ्यो घृततण्डुलादिकमाज्यशालेयादिकं ददानः, तद्वृत्तान्तज्ञेन तदुदन्तविदा राजा
बन्धितो निगडितः चपेटो हस्ततलाघातः चरणाघातः पादतलाघातश्च तदादिभिः तत्प्रभृतिभिर्मृत्वा इहस्थाने

पुत्र होता हुआ तुम्हारा आनन्द नामका पुरोहित हुआ है तथा प्रभञ्जन वहाँसे च्युत होकर
धनदत्ता और धनदत्तका पुत्र होता हुआ तुम्हारा धनमित्र नामका सेठ हुआ है । § ३०)

इमामिति—मुनिराजकी यह वाणी सुनकर वे दोनों दम्पती श्रीमती और वज्रजंघ धर्ममें लीन
हुए । तदनन्तर आश्चर्ययुक्त होते हुए राजा वज्रजंघने इन मुनिराजसे पुनः पूछा ॥१५॥

§ ३१) अमीति—ये नकुल, शार्दूल, वानर और सूकर आपके मुखपर दृष्टि लगाकर यहीं क्यों
स्थित हो रहे हैं ? ॥१६॥ § ३२) इतीति—इस प्रकार राजा वज्रजंघके द्वारा पूछे गये वे चारण

ऋद्धिधारी मुनिराज जिनके कि वचन और तेज भास्वद्वर्ण—स्पष्ट अक्षरोंसे सहित (पक्षमें
सूर्यके समान दीप्तिसे युक्त) सुशोभित होता है, कहने लगे ॥१७॥ § ३३) अयमिति—यह

व्याघ्र पूर्वभवमें इसी देशमें सुशोभित हस्तिनानगरके वैश्य दम्पती धनवती और सागरदत्तके
उग्रसेन नामका पुत्र था । वहाँ वसुधा भेदके समान अप्रत्याख्यान क्रोधसे इसने तिर्यङ्गच

आयुका बन्ध किया । राजाके भाण्डारमें जो पुरुष नियुक्त थे उन्हें डाँटकर यह वेश्याओंके
लिए घी तथा चावल आदि देता रहता था । जब राजाको इस वृत्तान्तका ज्ञान हुआ तब उसे
बाँधकर थप्पड़ों और लातोंके आघातसे इतना पिटाया कि वह मरकर यहाँ व्याघ्र हुआ ।

§ ३४) एष किल वराहः पूर्वभवे विजयनामपुरे वसन्तसेनामहानन्दयो राजदम्पत्योर्हरि-
वाहननामा पुत्रो भूत्वा अप्रत्याख्यानमानमस्थिसमं बिभ्राणः पित्रनुशासनमसहमानः शिलास्तम्भ-
जर्जरितमस्तक आर्तो मृत्वा वराहोऽजायत ।

§ ३५) अयं खलु वानरः पूर्वभवे धान्यनाम्नि नगरे सुदत्ताकुबेरयोर्वैश्यदम्पत्योर्नागदत्त-
नामा नन्दनः संजातो मेषशृङ्गसमामप्रत्याख्यानमायामाश्रितः कदाचिन्निजानुजाविवाहार्थमेव
स्वापणे विलसितस्वापतेयमम्बायामाददानायां तद्वज्जनोपायमाजानानस्तिर्यगायुर्वशेन गोला-
ङ्गूलो बभूव ।

§ ३६) अयं किल नकुलो भवान्तरे सुप्रतिष्ठितपुरे धनलोलुपः कांदविको नाम्ना लोलुपो
भूत्वा, चैत्यालयनिर्मापणोद्यतस्य नरपालस्येष्टिकाविष्टिपुरुषान्वशीकृत्य तेषामपूपादिप्रदानेन घने-
१० ष्टिकासंचयं संगृह्णानस्तत्र कासुचित्सुवर्णशलाकाविलोकनेन विवर्धितलोभः, कदाचित् पुत्रमिष्टिका-
संग्रहणाय नियोज्य स्वसुताग्रामं गत्वा ततः प्रतिनिवृत्तस्तथानाचरितवतः पुत्रस्य शिरस्तटं

व्याघ्रः शार्दूलः 'व्याघ्रश्चमूरुः शार्दूलः' इति घनंजयः । बभूव । § ३४) एष किलेति—एषोऽयं वराहः
सूकरः पूर्वभवे पूर्वपर्याये विजयनामपुरे वसन्तसेनामहानन्दयो राजदम्पत्योर्हरिवाहननामा पुत्रो भूत्वा, अस्थि-
समानम् अप्रत्याख्यानमानं बिभ्राणो दधानः पितुरनुशासनं पित्रनुशासनम् असहमानः शिलास्तम्भेन पाषाण-
१५ स्तम्भेन जर्जरितं स्फोटितं मस्तकं शिरो येन तथाभूतः, आर्त आर्तध्यानेन दुःखितः सन् मृत्वा वराहो जातः ।
§ ३५) अयं खल्विति—स्वष्टम् । § ३६) अयमिति—अयं किल नकुलः पन्नगारिः भवान्तरे अन्यस्मिन् भवे
सुप्रतिष्ठितपुरे तन्नाम नगरे धनस्य लोलुपो धनलोलुपो वित्तलोभी लोलुपो नाम कान्दविकः कान्दवं अपूपादि
भक्ष्यं तत्पण्यमस्येति कांदविकः 'हलवाई' इति हिन्दीभाषायाम्, भूत्वा, चैत्यालयस्य जिनमन्दिरस्य निर्मापणे
उद्यतस्तत्परस्तस्य नरपालस्य राज्ञः इष्टिकानां विष्टिपुरुषा वेतनपुरुषास्तान् इष्टिकानयननियुक्तकर्मकरानित्यर्थः
२० वशीकृत्य स्वायत्तीकृत्य तेषां कर्मकराणाम् अपूपादयो भक्ष्यपदार्थास्तेषां प्रदानेन घनेष्टिकासंचयं प्रभूतेष्टिकासमूहं
संगृह्णानः संचिन्वन् तत्रेष्टिकाचये कासुचित् इष्टिकासु सुवर्णशलाकानां विलोकनेन विवर्धितो वृद्धिगतो लोभो
यस्य तथाभूतः, कदाचित् पुत्रं सूनुं इष्टिकानां संग्रहणं तस्मै नियोज्य नियुक्तं कृत्वा स्वसुताग्रामे स्वपुत्रीनिगमं

§ ३४) एष किलेति—यह सूकर पूर्वभवमें विजयनगरके राजदम्पती वसन्तसेना और
महानन्दके हरिवाहन नामका पुत्र होकर हड्डीके समान अप्रत्याख्यान मानको धारण करता
२५ हुआ पिताके भी अनुशासनको सहन नहीं करता था । पिताके अनुशासनको सहन न करते हुए
इसने एक बार पत्थरके खम्भासे अपना सिर फोड़ लिया और आर्तध्यानसे मरकर सूकर हुआ
है § ३५) अयमिति—यह वानर पूर्वभवमें धन्य नामक नगरके वैश्य दम्पती सुदत्ता और
कुबेरके नागदत्त नामका पुत्र था तथा मेढाके सींगके समान अप्रत्याख्यान मायाको धारण
करता था । किसी समय अपनी छोटी बहिनके विवाहके लिए ही बचाकर दुकानमें रखे
३० हुए धनको माताने ले लिया । यह उस माताको ठगनेका उपाय नहीं जानता हुआ तिर्यङ्च
आयुका बन्धकर वानर हुआ है । § ३६) अयमिति—यह नकुल पूर्वभवमें सुप्रतिष्ठित नामक
नगरमें धनका लोभी लोलुप नामका हलवाई था । वहाँका राजा जिनमन्दिर बनवानेके लिए
उद्यत था सो यह लोलुप ईंटें लानेवाले मजदूरोंको पुआ आदि देकर अपने वशमें रखता था
तथा उनसे बहुत सारी ईंटोंका संचय करता रहता था । जो ईंटें उसने अपने यहाँ डलवायो
३५ थीं उनमें से कुछमें सुवर्णकी शलाकाओंके देखनेसे इसका लोभ बढ़ गया था । किसी समय
यह ईंटोंके संग्रहके लिए पुत्रको नियुक्त कर अपनी लड़कीके गाँव गया था जब वहाँसे वापिस

लगुडताडनादिभिः स्वचरणाभ्यां समं निभिद्य राज्ञा च घातितो नकुलत्वमप्रत्याख्यानलोभेन समुपाजगाम ।

§ ३७) युष्मद्दानसमीक्षणेन परमं मोदं गतास्तत्क्षणं

प्राप्ताः पूर्वभवस्मृतिं प्रतिगता निर्वेदमुर्वीपते !

त्वद्दानानुमतेः कुरुष्वतितरां बद्धायुषोऽमी मृगा

निःशङ्काः पुरतः स्थिताः कुतुकिता धर्ममृतास्वादने ॥१८॥

§ ३८) अमी किल भवदीयाष्टभवपर्यन्तं भवतैव समं दिव्यमानुषगोचरान्भोगाननुभूय ततः सेत्स्यन्ति । इयं च श्रीमती भवतीर्थे दानतीर्थप्रवर्तकः श्रेयान् कुमारो भूत्वा शाश्वतं पदमवाप्स्यति ।

§ ३९) इति सुवचनमाध्वी कर्णपात्रेण पोत्वा

मुनिवरमभिवन्धावासमागान्महोशः ।

गत्वा ततः स्वमुताग्रामात् प्रतिनिवृत्तः प्रत्यागतस्तथापूपादिदानेन इष्टिकानां संग्रहे अनाचारितवतः अकृतवतः पुत्रस्य शिरस्तटं मस्तकं लगुडताडनादिभिर्दण्डघातादिभिः स्वचरणाभ्यां स्वकीयपादाभ्यां समं निभिद्य खण्डयित्वा, न पादो भवेतां नाहं स्वमुताग्रामं गच्छेयं न चेष्टिकासंग्रहे हानिर्भवेदिति विचारेण तेन लोलुपेन स्वचरणावधि खण्डितो । अथ च राज्ञा घातितो दण्डिनोऽप्रत्याख्यानलोभेन नकुलत्वं पन्नगारिपर्यायं समुपाजगाम प्राप । § ३७) युष्मद्दानेति—हे उर्वीपते ! हे महीपते ! अमी पुरो वर्तमानाः मृगा वन्यपशवः सूकरशार्दूल-गोलाङ्गूलमकुलाः युष्मद्दानस्य भवत्प्रदत्तदानस्य समीक्षणेन समवलोकनेन परमं प्रकृष्टं मोदं हर्षं गताः प्राप्ताः, तत्क्षणं दानावसरे पूर्वभवस्मृतिं पूर्वपर्यायस्मरणं प्राप्ताः सन्तो निर्वेदं वैराग्यं प्रतिगता आसादिताः । त्वद्दानस्यानुमतेः समर्थनात् कुरुषूतमभोगभूमिषु अतितरां सातिशयं बद्धमायुर्वेस्तथाभूताः धर्म एवामृतं धर्ममृतं धर्मपीयूषं तस्यास्वादानेऽनुभवने कुतुकिताः कौतुकसहिताः, निःशङ्का निर्भयाः सन्तः पुरतोऽग्रे स्थिता विद्यमानाः सन्तीति शेषः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥१८॥ § ३८) अमीति—अमी किल एते खलु सूकरादयो भवदीयाष्टभवपर्यन्तं भवतैव समं सार्धं दिव्यमानुषगोचरानमरमर्त्यसंनिविनो भोगान् पञ्चेन्द्रियविषयान् अनुभूय ततोऽनन्तरं सेत्स्यन्ति सिद्धा भविष्यन्ति । इयं च भवद्वल्लभा श्रीमती भवतीर्थे यदा भवान् वृषभदेवो भविष्यति तदा दानतीर्थस्य दानधर्मप्रवर्तकः श्रेयान् कुमारो हस्तिनागपुराधिपसोमप्रभमहाराजस्यानुजो भूत्वा शाश्वतं पदं मोक्षम् अवाप्स्यति लप्सते । § ३९) इतीति—इतीत्यं महोशो वज्रजङ्घः सुवचनमाध्वीं चारणपिमुखारविन्दप्रकटितवचोमकरन्दं कर्णपात्रेण श्रवणभाजनेन पोत्वा मुनिवरं चारणपिराजम् अभिवन्द्य नमस्कृत्य आवासं शिविरम्

लौटा तब वैसा न करनेवाले पुत्रसे बहुत बिगड़ा । डंडे आदिसे पीटकर उसका सिर फोड़ दिया था और यदि ये पैर न होते तो मैं लड़कीके गाँव न जाता यह सोचकर अपने पैर भी काट लिये । अन्तमें राजाके द्वारा मारा जाकर अप्रत्याख्यान सम्बन्धी लोभसे इस नेवलाकी पर्यायको प्राप्त हुआ है । § ३७) युष्मद्दानेति—हे राजन् ! तुम्हारे द्वारा दिये हुए दानको देखकर ये सब परम हर्षको प्राप्त हुए हैं तथा दान देनेके समय ही पूर्वभवकी स्मृतिको प्राप्त होकर वैराग्यको प्राप्त हो रहे हैं । तुम्हारे द्वारा प्रदत्त दानकी अनुमोदना करनेसे इन्होंने उत्तम भोगभूमिकी आयुका बन्ध किया है । इसीलिए ये वन्यपशु धर्मरूपी अमृतके रसास्वादमें कौतुकसे युक्त होते हुए निर्भयरूपसे सामने बैठे हैं ॥१८॥ § ३८) अमीति—ये सब आपके आठ भवतक आपके ही साथ देव और मनुष्य सम्बन्धी भोगोंको भोगकर पश्चात् सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होंगे । और यह श्रीमती आपके तीर्थमें दानधर्मका प्रवर्तक श्रेयान्सकुमार होकर निर्वाणको प्राप्त करेगा । § ३९) इतीति—इस प्रकार राजा वज्रजंघ कर्णरूपी पात्रके द्वारा उत्तम वचनरूपी अमृतको पीकर तथा मुनिराजको नमस्कारकर अपने डेरेमें चले गये ।

तदनु च मुनिवर्यो मेरुसंकाशधैर्यो

विदधतुरुक्षोभौ वातमार्गप्रवृत्तिम् ॥१९॥

§ ४०) भूपतिश्च तद्गुणाध्यानसमुत्कण्ठितचेतास्तद्दिनं तत्रैवातिवाह्यापरेद्युर्बलेन सह प्रस्थाय प्रविश्य च पुण्डरीकिणीं पुरीं शोकाक्रान्तमति लक्ष्मीमतिमनुन्दरीं च समाश्वास्य निरुपप्लवं
५ च राज्यं मन्त्रिमण्डलमण्डिते पुण्डरीके नरपुण्डरीके निवेश्य यथापुरं निजपुरमभिजगाम ।

§ ४१) किमेष सुरनायकः किमु सुमोल्लसत्सायकः

किमाहिततनुर्मधुः किमुत भूमिमाप्तो विधुः ।

इति क्षितिपतिः पुरीसुकुचकुम्भबिम्बाधरो-

गणेन परिशङ्कितो गृहमगादगजैर्मण्डितः ॥२०॥

१० § ४२) स किल तत्र विचित्रप्रतीकशोभाभिरामया रामया सह समस्तऋतुविस्तारित-

वागात् आगच्छत् । तदनु च तदनन्तरं च मेरुणा संकाशं धैर्यं ययोस्ती मेरुसदृशधैर्यसहिती, उर्वी शोभा ययोस्ती विशालशोभायुक्ती मुनिवर्यी, यतिश्रेष्ठो वातमार्गं गगने प्रवृत्तिं गमनं वातमार्गप्रवृत्तिं विदधतुरुक्षक्रतुः । मालिनीछन्दः ॥१९॥ § ४०) भूपतिश्चेति—तयोर्मुनिवर्ययोर्गुणानामाध्याने चिन्तने समुत्कण्ठितं चेतो यस्य तथाभूतोऽयं भूपतिर्वज्रजङ्घः तद्दिनं तद्दिवसं तत्रैव सरःसमीपे अतिवाह्यातिगमय्य अमरेद्युरन्यस्मिन्
१५ दिवसे बलेन सेनया सह प्रस्थाय प्रस्थानं कृत्वा पुण्डरीकिणीं पुरीं वज्रदन्तराजधानीं च प्रविश्य शोकेन पतिपुत्रविरहजनितसंतापेनाक्रान्ता व्याप्ता मतिर्यस्यास्तां लक्ष्मीमति स्वश्वश्रूम् अनुन्दरीं स्वभगिनीं च समाश्वास्य सान्त्वयित्वा निरुपप्लवं निरुपप्लवं राज्यं मन्त्रिमण्डलमण्डिते सचिवसमूहशोभिते नरपुण्डरीके पुरुषश्रेष्ठे पुण्डरीके अमिततेजःसूनौ निवेश्य स्थापयित्वा यथापुरं यथापूर्वं निजपुरं स्वकीयमुत्पलखेटनगरम् अभिजगाम प्रत्यागच्छत् । § ४१) किमेष इति—एष दृश्यमानः किं सुरनायकः पुरन्दरः, उ इति वितर्कं
२० किं सुमैः पुष्पैरुल्लसन्तः शोभमानाः सायका बाणा यस्य सः पुष्पबाणो मदनः, किम् आहिततनुर्धृतशरीरो मधुर्वसन्तः, उत आहोस्वित् किं भूमिमाप्तो पृथिव्यामवतीर्णो विधुश्चन्द्रः, इतोत्थं शोभनो कुचकुम्भौ यासां ताः सुकुचकुम्भाः ताश्च ता बिम्बाधर्यश्चेति सुकुचकुम्भबिम्बाधर्यः, पुर्याः सुकुचकुम्भबिम्बाधर्य इति पुरीसुकुचकुम्भबिम्बाधर्यस्तासां गणः समूहस्तेन परिशङ्कितः सदेहविषयोक्तो गजैर्द्विरदैः मण्डितः शोभितः क्षितिपतिर्वज्रजङ्घो महीपालो गृहं भवनम् अगात् प्राप । संशयालंकारः पृथ्वीछन्दः ॥२०॥ § ४२) स किलेति—स
२५ किल वज्रजङ्घः तत्रोत्पलखेटनगरे विचित्रा विस्मयावहा या प्रतीकस्याङ्गस्य शोभा तयाभिरामया मनो-

तदनन्तरं मेरुके समान धैर्यके धारक तथा विशाल शोभासे सहित दोनों मुनिराज आकाश-मार्गसे विहार कर गये ॥१९॥ § ४०) भूपतिश्चेति—उन्हीं मुनिराजोंके गुणस्मरणमें जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे राजा वज्रजंघने वह दिन वहीं व्यतीत किया । दूसरे दिन सेनाके साथ प्रस्थान कर पुण्डरीकिणी नगरीमें प्रवेश किया । वहाँ शोकनिमग्न लक्ष्मीमति
३० और अनुन्दरीको सान्त्वना देकर उपद्रवरहित राज्यको मन्त्रिमण्डलसे सुशोभित नरश्रेष्ठ पुण्डरीकपर स्थिर किया, तदनन्तर पहलेके समान अपनी नगरीकी ओर वापिसीका प्रयाण किया । § ४१) किमेष इति—क्या यह इन्द्र है, या कामदेव है, या शरीरको धारण करनेवाला वसन्त है, अथवा पृथिवीपर आया हुआ चन्द्रमा है इस प्रकार नगरकी स्त्रियाँ जिसके विषयमें शङ्का कर रही थीं तथा जो हाथियोंसे सुशोभित था ऐसा वज्रजंघ अपने भवनको
३५ प्राप्त हुआ ॥२०॥ § ४२) स किलेति—वह वज्रजङ्घ उस उत्पलखेट नगरमें शरीरकी विचित्र शोभासे सुन्दर हृदयवल्लभा—श्रीमतीके साथ समस्त ऋतुओंमें विस्तारित अनुपम भोगोंको

निस्तुलभोगाननुबोध्यमानः कदाचन मदनसहकारसहकारपल्लवतल्लजसमुल्लसन्मधुरसमये वसन्तसमये, मधुमासलक्ष्मीमिव तिलकशोभितसुरुचिरसालकाननां सद्यस्तनस्तवकविराजितां कलकण्ठालापमनोहरां तां नितम्बिनीं रमयन्, मल्लिकामतल्लिकाविकासमूले निदाघकाले धारागृहेषु चन्दनद्रवसिक्ताङ्गीं तां तन्वङ्गीमालिङ्गन्, प्रावृषेण्यदिवसेषु वर्षालक्ष्मीमिवाम्बरोल्लसितपीनपयोधरामभ्रमितां सज्जघनां तडिद्वत्कान्तिविराजितां च तामविरलं परिरम्भमाणः, ५ शरदि च शारदलक्ष्मीमिव राजहंसमनोरमां तां रमयन्नयमनल्पसमयं गमयामास ।

हरया रामया प्रियया श्रीमत्या सह समस्तऋतुषु निखिलवसन्तग्रीष्मप्रावृट्शरद्वेगन्तशिशिराभिधानऋतुषु विस्तारिता विस्तारं प्रापिता येऽस्तुलभोगास्तान् अनुबोध्यत इत्यनुबोध्यमानः पुनः पुनरतिशयेन बानुभवन्, कदाचन जातुचित् मदनसहकाराः कामसहायका ये सहकाराणामतिसौरभाभ्राणां पल्लवतल्लजाः किसलय- १० श्रेष्ठास्तेषु समुल्लसन् शोभमानो यो मधुरसस्तन्मये वसन्तसमये वसन्तकाले मधुमासलक्ष्मीमिव सुरभिमास- १० थ्रियमिव तां नितम्बिनीं श्रीमतीं रमयन्, अथोभयोः सादृश्यमाह—तिलकशोभितसुरुचिरसालकाननां तिल- विशेषकेण शोभितं सुरुचिरं सुन्दरं सालकं चूर्णकुन्तलसहितम् आननं मुखं यस्यास्तां नितम्बिनीं पक्षे तिलकै- स्तिलकवृक्षैः शोभितं समलंकृतं सुरुचि सुकान्तियुक्तं रसालकाननमाभ्रवनं यस्यां तथाभूतां मधुमासलक्ष्मीं, सद्यस्तनस्तवकविराजितां सद्यो जटिति स्तनो स्तवकाविव स्तनस्तवको स्तनपुष्पगुच्छको ताम्नां विराजितां शोभितां नितम्बिनीं पक्षे सद्योभवाः सद्यस्तनास्तकालविकसिता ये स्तवकाः गुच्छकास्तैर्विराजितां मधुमास- १५ लक्ष्मीं, कलकण्ठालापमनोहरां कलकण्ठानां कोकिलानामिवालापः शब्दस्तेन मनोहरां नितम्बिनीं पक्षे कल- कण्ठानां कोकिलानामालापेन मधुररवेण मनोहरां मधुमासलक्ष्मीम्, प्रशस्ता मल्लिका मल्लिकामतल्लिकास्तेषां विकासस्य मूले कारणे निदाघकाले ग्रीष्मर्तौ धारागृहेषु जलयन्त्रागारेषु चन्दनद्रवेण मलयजरसेन सिक्तमङ्गं यस्यास्तां चन्दनद्रवसिक्ताङ्गीं तां पूर्वोक्तां तन्वङ्गीं कृशाङ्गीं श्रीमतीम् आलिङ्गन्, प्रावृषेण्यदिवसेषु जलद- २० कालदिनेषु वर्षालक्ष्मीमिव प्रावृट्श्रियमिव तां श्रीमतीम् अविरलं निरन्तरं यथा स्यात्तथा परिरम्भमाण आलि- २० ङ्गन्, अथोभयोः सादृश्यमाह—अम्बरोल्लसितपीनपयोधराम् अम्बरे वस्त्रस्य मध्ये उल्लसितो शोभितो पीन- पयोधरो पीवरकुचो यस्यास्तां श्रीमतीं पक्षे अम्बरे गगने उल्लसिताः शोभिताः पीनपयोधराः स्थूलमेघा यस्यां तां वर्षालक्ष्मीम्, अभ्रमितां न भ्रमिता प्रासभ्रमा अभ्रमिता तां श्रीमतीं पक्षेऽभ्रं मेघम् इतां प्राप्तां वर्षा- लक्ष्मीं, सज्जघनां सत् प्रशस्तं जघनं यस्यास्तां श्रीमतीं पक्षे सज्जाः सज्जला घना मेघा यस्यां तां वर्षालक्ष्मीं,

बार-बार भोगता हुआ कभी कामके सहायक सुगन्धित आमके श्रेष्ठ किसलयोंमें सुशोभित २५ मधुरससे युक्त वसन्तऋतुमें मधुमास (चैत्र मास) की लक्ष्मीके समान तिलक शोभित सुरुचिर सालकाननां—तिलकसे सुशोभित सुन्दर तथा चूर्णकुन्तलोंसे सहित मुखसे युक्त (पक्षमें तिलक वृक्षोंसे शोभित उत्तम कान्तिसे युक्त आमके वनोंसे सहित) सद्यस्तनस्तवक- विराजितां—नवीन उठते हुए गुच्छोंके सदृश स्तनोंसे सुशोभित (पक्षमें तत्काल विकसित पुष्पगुच्छकोंसे सुशोभित), कलकण्ठालापमनोहरां—कोयलके समान मधुर भाषणसे मनोहर ३० (पक्षमें कोयलोंकी मधुर बोलीसे मनाहर) उस श्रीमतीको रमण कराता था । कभी श्रेष्ठ मालतीके विकासके मूल कारण ग्रीष्म कालमें फव्वारोंके घरोंमें चन्दन रससे सिक्त शरीर वाली उस श्रीमतीका आलिङ्गन करता था । कभी वर्षाऋतुके दिनोंमें वर्षा लक्ष्मीके समान अम्बरोल्लासितपीनपयोधरां—वस्त्रके भीतर सुशोभित स्थूल स्तनोंसे सहित (पक्षमें आकाशमें सुशोभित स्थूल मेघोंसे युक्त), अभ्रमितां—भ्रमसे रहित (पक्षमें मेघको प्राप्त), ३५ सज्जघनां—प्रशस्त नितम्बसे सहित (पक्षमें सज्जल मेघोंसे सहित) और तडिद्वत्कान्ति- विराजितां—विजलीके समान कान्तिसे सुशोभित (पक्षमें मेघोंकी कान्तिसे सुशोभित)

§ ४३) कदाचन मणिप्रभातरलहेममञ्चाञ्छिते

तया सह धरापतिः पिहितरत्नवातायने ।

स वै शयनमन्दिरे सुरभिधूपधूमावृते

सुषुप्तिमुखमन्वभूस्तनतटाग्रजाग्रत्करः ॥२१॥

५ § ४४) तत्रागुरुलसद्धूमनिरुद्धस्वासनिर्गमौ ।

दम्पती तौ निशामध्ये दीर्घनिद्रामुपेयतुः ॥२२॥

§ ४५) अथ जम्बूद्वीपसुपर्वपर्वतोत्तरदिशासमाश्रितेषु मधुमैरेयादिरसभेदप्रदानप्रवणैर्मद्याङ्गैः, पटहमर्दलतालकाहलल्ललरीशङ्खप्रमुखनानावादित्रिविधानैरातोद्याङ्गैः, मञ्जोरकेयूरहार-

- तद्विद्वत्कान्तिविराजितां तद्विद्वत् विद्युत्सदृशी या कान्तिर्दीप्तिस्तया विराजितां श्रीमतीं पक्षे तद्वित्वन्तो मेघा-
 १० स्तेषां कान्त्या विराजिताम्, शरदि च जलदान्तऋतौ च शारदलक्ष्मीमिव शारदश्रियमिव तां श्रीमतीं रमयन् क्रीडयन्, अथोभयोः सादृश्यमाह—राजहंसमनोरमां राजसु हंसो राजहंसो राजश्रेष्ठो वज्रजङ्घस्तस्य मनो हृदयं रमयति क्रीडयतीति राजहंसमनोरमा तां श्रीमतीं पक्षे राजहंसहंसविशेषमनोरमां मनोहरां शारदलक्ष्मीम्, अनल्पसमयं प्रभूतकालं गमयामास व्यजीगमत् । § ४३) कदाचनेति—कदाचन जातुचित् वै निश्चयेन स धरापतिर्वज्रजङ्घः मणिप्रभाभी रत्नरश्मिभिस्तरलेन हेममञ्चेन स्वर्णपर्यङ्केनाञ्छिते शोभिते, पिहितानि समा-
 १५ वृतानि रत्नवातायनानि मणिगवाक्षा यस्य तस्मिन्, सुरभिधूपस्य सुगन्धितचूर्णस्थ धूमेनावृते व्याप्ते शयनमन्दिरे शय्यागारे तथा श्रीमत्या सह स्तनयोर्वल्लोजयोस्तटाग्रे जाग्रन् करो यस्य तथाभूतः सन् सुषुप्तिमुखं शयनसातम् अन्वभूत् भुङ्क्तेस्म । पृथ्वीछन्दः ॥२१॥ § ४३) तत्रेति—तत्र शयनमन्दिरे अगुरोश्चन्दनविशेषस्योल्लसता धूमेन धूम्रेण निरुद्धः स्थगितः स्वासनिर्गम उच्छ्वासो यद्योस्तौ दम्पती जायापती निशामध्ये रजनोमव्ये दीर्घनिद्रां मृत्युम् उपेयतुः प्रापतुः ॥२२॥ § ४५) अथेति—तौ कुत्रोत्पन्नाविति वर्णयितुमाह—अथ
 २० दीर्घनिद्राप्राप्त्यनन्तरं, तौ श्रीमतीवज्रजङ्घौ पात्रदानप्रभावेण मुनिदानमाहात्म्येन उत्तरकुरुषु उत्तमभोगभूमिषु जम्पतितां जायापतितां संपादयामासतुः प्रापतुरिति कर्तृक्रियासंबन्धः । अथोत्तरकुरुषु वर्णयति—जम्बूद्वीपस्याद्यद्वीपस्य सुपर्वपर्वतात् सुमेरोत्तरदिशाभुदीचीं समाश्रितास्तेषु, 'मधुमैरेयादिरसभेदानां विविधपेयद्रव्याणां प्रदाने प्रवणा निपुणास्तैस्तथाभूतैर्मद्याङ्गैर्मद्याङ्गजातिकल्पवृक्षैः, पटहमर्दलतालकाहलल्ललरीशङ्खप्रमुखानि

- उस श्रीमतीका निरन्तर आलिङ्गन करता था और कभी शरद् ऋतुमें शारद लक्ष्मीके समान
 २५ राजहंसमनोरमां—राजश्रेष्ठ-वज्रजङ्घके मनको रमण करानेवाली (पक्षमें राजहंस पक्षियोंसे मनोहर) उस श्रीमतीको रमण कराता हुआ बहुत समय व्यतीत करता रहा । § ४३) कदाचनेति—किसी समय वह राजा वज्रजंघ, जो मणियोंकी प्रभासे चमकते हुए सुवर्णमय पलंगोंसे सुशोभित था, जिसके रत्नमय झरोखे बन्द थे तथा जो सुगन्धित धूपके धुएँसे व्याप्त था ऐसे शय्यागृहमें उस श्रीमतीके साथ स्तनतटके अग्रभागपर हाथ चलाता हुआ शयन
 ३० सुखका अनुभव कर रहा था ॥२१॥ § ४४) तत्रेति—वहाँ अगुरुचन्दनसे निकलनेवाले धूमसे जिनके उच्छ्वास रुक गये थे ऐसे दोनों दम्पति रात्रिके मध्यमें मृत्युको प्राप्त हो गये ॥२२॥ § ४५) अथेति—तदनन्तर श्रीमती और वज्रजंघ पात्रदानके प्रभावसे उन उत्तर कुरुओंमें दम्पतिभावको प्राप्त हुए जो कि जम्बूद्वीप सम्बन्धी सुमेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें स्थित हैं जो मधु मैरेय आदि विविध रसोंके प्रदान करनेमें निपुण मद्यांगजातिके वृक्षों; पटह, मर्दल,

- ३५ १. कामोद्दोषनसाधर्म्यान्मिच्छामित्युपचर्यते । तारवो रसभेदोऽयं यः सेव्यो भोगभूमिर्जः ॥३८॥

मदस्य कारणं मद्यं पानशीणैर्द्वैदादृतम् । तद्वर्जनोयमार्याणामन्तःकरणमोहदम् ॥३९॥ —आदिपुराण पर्व ९

रुक्मकुटाङ्गदादिभूषणवितरणप्रवीणैर्भूषणाङ्गैः, नानाविधमाल्यकर्णपूरादिदानशौण्डैर्माल्याङ्गैः, निजतेजोविजृम्भितमन्दाक्षवशेनेव तत्र प्रवेष्टुमक्षमान् सूर्याचन्द्रादीन्विदधानैर्मणिप्रदीपदानैर्दीपाङ्गैः, दिवाकरनिशाकरधिवकारधोरैर्योतिरङ्गैः, तुङ्गतमहर्म्यमण्डपसभागृहाटकमयशाटकशालास्थूल-
लक्ष्यैर्गृहाङ्गैः, सुधामपि सुधां शर्करामपि शर्करां विदधानान् वीर्यवृद्धिकारानाहारान्ददानैर्भोजनाङ्गैः, स्थालत्रयकभृङ्गारकरकादिवितरणोदारैर्भोजनाङ्गैः, चोनपट्टुकूलप्रावारपरिधानप्रदानचतुरैर्वस्त्रा-
ङ्गैश्चेति दशप्रकारः केवलमवनीसारैः कल्पपादपवारैः परिशोभितेषु, चतुरङ्गुलसंमितया धरणी-
रमणीविधृतहरितांशुकशङ्कासंपादिकया तृणया विराजितेषु, सुरभिसंचारसमीरकिशोरसमानोत-

यानि नानावादित्राणि विविधवाद्यानि तेषां विधानं धारणं येषां तथाभूतैः आतोद्याङ्गवाद्याङ्गकल्पतरुभिः, मञ्जीरवेयूरहाररुक्मकुटाङ्गदादीनि यानि भूषणानि तेषां वितरणे प्रवीणैर्दक्षैः भूषणाङ्गैर्भूषणाङ्गसुरतरुभिः, नानाविधा विविधप्रकारा ये माल्यकर्णपूरादयः रुक्मकर्णाभरणप्रभृतयस्तेषां दाने शौण्डैः समर्थैर्माल्याङ्गैर्माल्याङ्ग-
कल्पवृक्षैः, निजतेजसा स्वदीप्त्या विजृम्भितं वक्षितं यन्मन्दाक्षं लज्जा तस्या वशेनेव सूर्याचन्द्रादीन् रविशशि-
प्रभृतीन् तत्रोत्तरकुक्षेत्रे प्रवेष्टुं प्रवेशं कर्तुमक्षमानसमर्थान् विदधानैः कुर्वाणैः मणिप्रदीपदाने रत्नप्रदीपवितरण-
शीलैर्दीपाङ्गैर्दीपाङ्गकल्पपादपैः, दिवाकरनिशाकरयोः सूर्याचन्द्रमसोर्विवकारे तिरस्कारे धोरैः समर्थैः ज्योतिरङ्गै-
र्योतिरङ्गवृक्षैः, तुङ्गतमानि उच्चतमानि हर्म्याणि भवनानि, मण्डपाः सभागृहाणि, हाटकमय्यः सुवर्णमय्यो
नाटकशाला नृत्यगृहाणि, स्थूलानि पटकुटयः एतानि लक्ष्माणि देयानि येषां तथाभूतैः गृहाङ्गैर्गृहाङ्गवृक्षैः सुधा-
मपि पीयूषमपि सुधां चूर्णं शर्करामपि सितामपि शर्करां धूलिं विदधानान् कुर्वाणान् वीर्यस्य वृद्धिं कुर्वन्तीति
वीर्यवृद्धिकरास्तान् शक्तिवर्धकान् आहारान् भोज्यपदार्थान् ददानैः भोजनाङ्गैः भोजनाङ्गकल्पतरुभिः, स्थाल-
मुखा त्रयकः पानपात्रं भृङ्गारः क्षारीति प्रसिद्धः करको जलपात्रं तदादीनां वितरणे प्रदाने उदारैर्दानशीलैः
भाजनाङ्गैर्भोजनाङ्गकल्पानोकहैः, चोनपट्टं कौशेयवस्त्रं दुकूलं क्षौमवस्त्रं प्रावार आच्छादनवस्त्रं परिधानं
शाटिकाप्रभृतिकं तेषां प्रदाने चतुरैर्दक्षैर्वस्त्राङ्गैर्वस्त्राङ्गजातिकल्पतरुभिः, इतीत्यं दशप्रकारैर्दशविधैः केवलं
मात्रम् अवनीसारैः पृथिवीकायिकैः कल्पपादपवारैः कल्पवृक्षसमूहैः परिशोभितेषु समलंकृतेषु, चतुरङ्गुलसंमितया
चतुरङ्गुलप्रमाणया धरणीरमण्या पृथ्वीपुरन्धया विधृतं परिहितं यद् हरितांशुकं हरितवर्णवस्त्रं तस्य शङ्कायाः

ताल, काहल, झल्लरी और शंख आदि नाना प्रकारके वादित्रोंको धारण करनेवाले आतोद्यांग जातिके वृक्षों, मंजीर, केयूर, हार, रुक्म, मुकुट तथा अंगद आदि आभूषणोंके वितरण करनेमें प्रवीण भूषणाङ्ग जातिके वृक्षों, नाना प्रकारकी मालाएँ तथा कर्णपूर आदिके देनेमें निपुण
माल्यांग जातिके वृक्षों, अपने तेजसे बढ़ी हुई लज्जाके वशसे ही मानो सूर्य-चन्द्रमा आदिको
वहाँ प्रवेश करनेमें असमर्थ करनेवाले तथा मणिमय दीपोंके दाता दीपांग जातिके वृक्षों, सूर्य
और चन्द्रमाके तिरस्कार करनेमें धीर ज्योतिरंग जातिके वृक्षों, अत्यन्त ऊँचे भवन मण्डप
सभागृह सुवर्णमय नाट्यशालाएँ तथा कपड़ेकी चाँदनी आदिको प्रदान करनेवाले गृहांग
जातिके वृक्षों, सुधा—अमृतको सुधा—चूना तथा शर्करा—शक्करको भी शर्करा—धूलि करने-
वाले बालवर्धक आहारके दाता भोजनांग जातिके वृक्षों, थाली, पानपात्र, क्षारी तथा लोटा
आदिके प्रदान करनेमें उदार भाजनांग जातिके वृक्षों और कोशा—रेशम ओढ़नी तथा साड़ी

१. मुकुटा—क० ।

२. न वनस्पतयोऽप्येते नैव दिव्यैरधिष्ठिताः । केवलं पृथिवीसारास्तन्मयत्वमुपागताः ॥४९॥

अनादिनिधनाश्चेते निसर्गात्फलदायिनः । नहि भावस्वभावानामुपालम्भः सुसंगतः ॥५०॥

नृणां दानफलादेते फलन्ति विपुलं फलम् । यन्मान्यपादपाः काले प्राणिनामुपकारकाः ॥५१॥ आदिपु० पर्व ९

कुसुमरजःपुञ्जपिञ्जरितनभोभागतया संतानितवितानेष्विव विलसमानेषूत्तरकुरुषु श्रीमतीवज्रजङ्घा पात्रदानप्रभावेण जम्पतितां संपादयामासतु ।

§ ४६) प्रागुक्ताश्च मृगा जन्म प्रापुस्तत्रैव भद्रकाः ।

पात्रदानानुमोदेन परमं पुण्यमाश्रिताः ॥२३॥

५ § ४७) तत्र च मतिवरादयस्तद्वियोगविजृम्भितशोकास्तदानीमेव दृढधर्मनाम्नो मुनिवर्यस्य समीपे जैनी दीक्षामाश्रित्य दुश्चरं तपस्तप्त्वाधोग्रैवेयकस्याधोविमानेऽहमिन्द्रपदमासेदुः ।

§ ४८) छायासु कल्पकतरोः कमनीयमूर्ती

तौ दम्पती ललितकामकलाविलासैः ।

चिक्रीडतुर्महितकल्पकपादपस्य

१०

लक्ष्म्यां प्रदत्तनयनौ नयनाभिरामौ ॥२४॥

संदेहस्य संपादिका कर्त्री तथा तृणानां समूहस्तृण्या तथा विराजितेषु शोभितेषु, सुरभिर्मनोजः संचारो भ्रमणं यस्य तथाभूतः अथवा सुरभेः सौगन्ध्यस्य संचारो यस्मिन् तथाभूतो यः समीरकिशोरो मन्दवायुस्तेन समानीतानि यानि कुसुमरजांसि पुष्पपरागास्तेषां पुञ्जेन समूहेन पिञ्जरितः पीतवर्णो नभोभागो गगनप्रदेशो येषु तेषां भावस्तथा संतानितवितानेष्विव विस्तारितचन्द्रोपकेष्विव विलसमानेषु शोभमानेषु उत्तरकुरुषु उत्तरकुरुसंजितोत्तम-
१५ भोगभूमिक्षेत्रेषु । § ४६) प्रागुक्ता इति—भद्रकाः भद्रपरिणामाः पात्रदानानुमोदेन श्रीमतीवज्रजङ्घाम्यां चारणवियुगलाय दीयमानस्याहारदानस्यानुमोदेन परमं सातिशयं पुण्यं पुण्यबन्धम् आश्रिताः प्राप्ताः प्रागुक्ताः पूर्वोक्ताः मृगाः शार्दूलसूकरवानरनकुलाः तत्रैवोत्तरकुरुष्वेव जन्म प्रापुस्तत्रैव इत्यर्थः । § ४७) तत्र चेति—तयोः श्रीमतीवज्रजङ्घयोर्वियोगेन विजृम्भितो बधितः शोको येषां तथाभूता मतिवरादयो मतिवरानन्दधनमित्रा-
२० कम्पनाः । षोडशस्वर्गादुपरि क्रमशः एकैकस्योपरि नवग्रैवेयकविमानाः सरित् तेषु नीचैस्तनास्त्रयो विमाना अधो-
ग्रैवेयकपदाभिधेयाः सन्ति, अधोग्रैवेयकस्याधोविमाने प्रथमग्रैवेयक इत्यर्थः । शेषं स्पष्टम् । § ४८) छाया-
स्विति—महितश्चासौ कल्पकपादपश्चेति महितकल्पकपादपः प्रशस्तकल्पवृक्षस्य लक्ष्म्यां शोभायां प्रदत्ते नयने याम्यां तौ, नयनाभिरामौ लोचनवल्लभौ, कमनीया मनोहरा मूर्तिः शरीरं ययोस्तौ दम्पती श्रीमतीवज्रजङ्घा-
चरी कल्पकतरोः कल्पवृक्षस्य छायास्वनातपेषु ललिता मनोहराश्च ते कामकलाविलासाश्चेति ललितकामकला-

आदिके प्रदान करनेमें चतुर वस्त्रांग जातिके वृक्षों इस प्रकार मात्र पृथिवीकायिक दश
२५ प्रकारके कल्पवृक्षोंसे शोभित हैं, चार अंगुल प्रमाण तथा पृथिवीरूपी स्त्रीके द्वारा धारण किये हुए हरे वस्त्रकी शंकाको उत्पन्न करनेवाले तृणके समूहसे शोभित हैं, तथा मन्द सुगन्धित वायुके द्वारा लाये हुए फूलोंकी परागके समूहसे आकाशके पीला हो जानेसे जहाँ चंदोवा-सा तना रहता है । § ४६) प्रागुक्ता इति—भद्रपरिणामी तथा पात्रदानकी अनुमोदनासे सातिशय पुण्यको प्राप्त करनेवाले पूर्वोक्त शार्दूल आदि वनपशुओंने भी उसी उत्तरकुरुमें जन्म प्राप्त
३० किया ॥२३॥ § ४७) तत्र चेति—वहाँ जो मतिवरादिक थे वे श्रीमती और वज्रजङ्घके वियोगसे अत्यन्त शोकको प्राप्त हुए । उन्होंने उसी समय दृढधर्म नामक मुनिराजके पास जैनी दीक्षा लेकर कठिन तपश्चरण किया और अधोग्रैवेयकके नीचेके विमानमें अर्थात् पहले प्रवेयकमें अहमिन्द्र पदको प्राप्त हुए । § ४८) छायास्विति—उत्तम कल्पवृक्षकी शोभामें जिन्होंने अपने नेत्र लगा रखे थे तथा जो नेत्रोंको अत्यन्त प्रिय थे ऐसे सुन्दर शरीरके धारक
३५ दोनों दम्पती कल्पवृक्षकी छायामें मनोहर कामकलाके विलासों द्वारा क्रीड़ा करते थे ॥२४॥

§ ४९) कदाचिदयं व्योमपथप्रकाशमानं सूर्यप्रभदेवविमानं दृष्ट्वा जातिस्मरतामासाद्य प्रबुद्धः प्रियया सह दूरादागच्छन्ती चारणमुनीन्द्रो समीक्ष्य नलिन्या समं दिवस इव सूर्यप्रतिसूर्यौ प्रत्युद्गच्छन्नानन्दबाष्पबिन्दुसंदोहैस्तत्पादौ क्षालयन्निव प्रणम्य सुखोऽविष्टौ तावेवं पप्रच्छ ।

§ ५०) अहो मुनीन्द्रावरविन्दबन्धू युवां ध्रुवं यन्मम चित्तपद्मम् ।

भावत्कपादागमजातबोधं प्रसादमाध्वीकरसं प्रसूते ॥२५॥

§ ५१) भगवन्तौ ! युवां क्वत्यौ कुतस्त्यौ किं नु कारणम् ।

युष्मदागमने ब्रूतमिदमेतत्तथाद्य मे ॥२६॥

§ ५२) इति प्रश्नं समाकर्ण्य मुनिर्ज्यायानभाषत ।

दन्तांशुमञ्जरीपुञ्जैर्दिशः सुरभयन्निव ॥२७॥

§ ५३) अहं किल पुरा भवदीयमहाबलभवे भवत्सचिवाग्रणोः स्वयंबुद्धः कर्मनिवर्हणस्य १०
जैनधर्मस्योपदेष्टा त्वद्वियोगाज्जातनिर्वदो दीक्षित्वा सौधर्मकल्पविलसमाने स्वयंप्रभविमाने मणिचूल-
नामा सुरः संजातः सागरोपमायुष्कः । ततः प्रच्युतो जम्बूद्वीपपूर्वविदेहपुष्कलावतीविषयपरिशो-
भितपुण्डरीकिणीनगर्यां सुन्दरीप्रियसेनाह्वययो राजदम्पत्योः प्रीतिकराख्यातो ज्येष्ठः सुतः समभवम् ।

विलासास्तैः चिक्रीडतुः केलिं चक्रतुः ॥ वसन्ततिलकाच्छन्दः ॥२४॥ § ४९) कदाचिदिति—स्पष्टम् । § ५०)
अहो इति—अहो मुनीन्द्रो मुनिराजो युवां ध्रुवं निश्चयेन अरविन्दबन्धू सूर्यौ स्थः, यत् यस्मात् कारणात् मम १५
चित्तपद्मं हृदयारविन्दं भावत्कपादागमने भवच्चरणागमनेन पक्षे भवत्किरणागमनेन जातबोधं समुद्भूतज्ञानं
पक्षे समुद्भूतविकासं सत् प्रसाद एव माध्वीकरसस्तं परमाह्लादमकरन्दं प्रसूते प्रकटयति । रूपकालंकारः,
उपजातिच्छन्दः ॥२५॥ § ५१) भगवन्ताविति—क्वत्यौ क्वभवौ, कुत आगता कुतस्त्यौ 'अव्ययात्त्यप्'
इति त्यप् प्रत्ययः । शेषं स्पष्टम् ॥२६॥ § ५२) इतीति—इतीत्यं प्रश्नं समाकर्ण्य ज्यायान् ज्येष्ठो मुनिः
दन्तांशुमञ्जरीणां पुञ्जास्तै दन्तदीप्तिमञ्जरीसमूहैः दिशः ककुभः सुरभयन्निव सुगन्धयन्निव अभाषत जगद २०
॥२७॥ § ५३) अहं किलेति—कर्मनिवर्हणस्य कर्माणि ज्ञानावरणादीनि तेषां निवर्हणस्य निवर्तकस्य ।

§ ४९) कदाचिदिति—किसी समय यह वज्रजंघका जीव, आकाशमार्गमें प्रकाशमान
सूर्यप्रभदेवके विमानको देखकर जातिस्मरणको प्राप्त होता हुआ प्रबोधको प्राप्त हुआ ।
उसी समय दूरसे आते हुए दो चारणञ्चद्विधारक मुनिराजोंको उसने प्रियाके साथ देखा ।
जिस प्रकार दिवस कमलिनीके साथ सूर्य और उसके प्रतिविम्बकी अगवानीके लिए जाता २५
है उसी प्रकार वह आर्य भी अपनी प्रियाके साथ उन मुनिराजोंकी अगवानीके लिए आगे
गया । हर्षजनित अश्रुबिन्दुओंके समूहसे उनके चरणोंको धोते हुए की तरह प्रणाम किया
तथा सुखसे बैठे हुए उन मुनिराजोंसे इस प्रकार पूछा । § ५०) अहो इति—अहो मुनिराजो !
आप निश्चित ही सूर्य हैं क्योंकि हमारा यह हृदयरूपी कमल आपके पाद—चरण (पक्षमें
किरण) के आगमनसे विकासको प्राप्त होता हुआ प्रसन्नतारूपी मकरन्दको उत्पन्न कर रहा ३०
है ॥२५॥ § ५१) भगवन्ताविति—हे भगवन् ! आप दोनों कहाँ के हैं तथा कहाँसे आ रहे हैं ?
आपके आगमनमें कारण क्या है ? यह सब आप मेरे लिए कहिए ॥२६॥ § ५२) इतीति—
इस प्रकारके प्रश्नको सुनकर ज्येष्ठ मुनिराज दाँतोंकी किरणरूपी मंजरीके समूहसे दिशाओं-
को सुगन्धित करते हुए की तरह बोले ॥२७॥ § ५३) अहं किलेति—मैं पूर्वभवमें जब कि आप
महाबल पर्यायमें थे आपका प्रधानमन्त्री स्वयंबुद्ध था । मैंने आपको कर्मोंके नाशक जैनधर्मका ३५

§ ५४) ततश्च प्रीतिदेवनाम्ना मम कनीयसानुजेन सह स्वयंप्रभजिनसमीपे जैनों दीक्षा-
मासाद्यास्थाय च तपोबलेन चारणपदं पात्रदानप्रभावेण भवन्तमिह संजातमवधिविलोचनेन विज्ञाय
प्रबोधयितुमागतौ स्वः ।

§ ५५) महाबलभवे भवान्मम सुबोधनादर्शने

न शुद्धिमुपसेदिवान्प्रबलभोगकाङ्क्षावशात् ।

ततो विमलदर्शनं विदितनिर्वृत्तेः साधनं

गृहाण गुणवारिधे ! तव तु लब्धकालोऽधुना ॥२८॥

§ ५६) शमादर्शनमोहस्य सम्यक्त्वादानमादितः ।

जन्तोरनादिमिथ्यात्वकलङ्ककलितात्मनः ॥२९॥

§ ५७) निर्भिद्य मिथ्यात्वमहान्वकारमुदेति सदर्शनतिग्मरश्मिः ।

तेन प्रबोधं विमलं चरित्रमाराधयन् राजति भव्यजीवः ॥३०॥

शेषं स्पष्टम् § ५४) ततश्चेति—कनीयसा कनिष्ठेन 'युवाल्पयोः कन्यतरस्याम्' इत्यल्पस्थाने कनादेशः ।

शेषं स्पष्टम् । § ५५) महाबलेति—महाबलभवे महाबलविद्याधरपर्यायि भवान् प्रबला चासी भोगकाङ्क्षा च
प्रबलभोगकाङ्क्षा तस्या वशात् सातिशयभोगाभिलाषात् मम स्वयंबुद्धस्य सुबोधनात् संबोधनात् दर्शनं

१५ सम्यक्त्वे शुद्धिर्नैर्मल्यं नोपसेदिवान् न प्राप्तवान् ततस्तस्मात् कारणात् विदितनिर्वृत्तेः विज्ञातभोगस्य साधनं
निमित्तं विमलसदर्शनं निर्मलसम्यग्दर्शनं गृहाण स्वीकुरु । हे गुणवारिधे ! हे गुणसागर ! अधुना
संप्रतं तव लब्धकालः समयः प्राप्तः सम्यग्दर्शनप्राप्तेः काललब्धिः समयातेत्यर्थः । तु पादपूर्ती । पृथ्वीछन्दः
॥२८॥ § ५६) शमादिति—आदितः सर्वतः प्राक् अनादिमिथ्यात्वमेव कलङ्कः कालुष्यं तन कलितो युक्त आत्मा

यस्य तथाभूतस्य जन्तोः संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकत्वविशिष्टजीवस्य दर्शनमोहस्य मिथ्यात्वस्य अनन्तानुबन्धि-

२० चतुष्कस्यापि शमादुपशमनात् सम्यक्त्वादानं सम्यक्त्वग्रहणं जायत इति शेषः ॥२९॥ § ५७) निर्भिद्येति—
मिथ्यात्वमेव महान्वकार इति मिथ्यात्वमहान्वकारस्तं मिथ्यादर्शनप्रगाढघ्वान्तं निर्भिद्य निरस्य सदर्शनमेव

उपदेश दिया था । तुम्हारे वियोगसे विरक्त होकर मैंने दीक्षा ले ली थी जिसके प्रभावसे

सौधर्म स्वर्गमें सुशोभित स्वयंप्रभविमानमें मणिचूल नामका कुछ अधिक एक सागरकी

२५ पुष्कलावती देशमें सुशोभित पुण्डरीकिणी नगरीमें सुन्दरी और प्रियसेन नामक राजलक्ष्मीके

प्रीतिकर नामसे प्रसिद्ध ज्येष्ठ पुत्र हुआ है । § ५४) ततश्चेति—तदनन्तर प्रीतिदेव नामक

अपने छोटे भाईके साथ स्वयंप्रभ जिनेन्द्रके समीप जैनी दीक्षा लेकर तथा तपके बलसे चारण

ऋद्धिधारीका पद प्राप्तकर, पात्रदानके प्रभावसे आप यहाँ उत्पन्न हुए हैं यह अवधिज्ञानरूपी

नेत्रसे जानकर सम्बोधनेके लिए हम दोनों आये हैं । § ५५) महाबलेति—महाबल भवमें

३० भोगोंकी प्रबल इच्छाके कारण आप मेरे समझानेसे सम्यग्दर्शनमें विशुद्धताको प्राप्त नहीं हुए

थे इसलिए प्रसिद्ध निर्वाणका साधन जो निर्मल सम्यग्दर्शन है उसे ग्रहण करो । हे

गुणसागर ! यह तुम्हारा सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका काल प्राप्त हुआ है ॥२८॥ § ५६) शमादिति—अनादिकालीन मिथ्यात्वरूपी कलंकसे जिसकी आत्मा कलुषित हो रही है ऐसे

संज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवको सर्वप्रथम दर्शन मोहके उपशमसे सम्यग्दर्शन होता है ।

३५ भावार्थ—अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको सबसे पहले मिथ्यात्व प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध,

मान, माया, लोभके उपशमसे सम्यग्दर्शन होता है ॥२९॥ § ५७) निर्भिद्येति—मिथ्यात्व-

रूपी अन्धकारको नष्ट कर सम्यग्दर्शनरूपी सूर्य उदित होता है उससे भव्यजीव सम्यग्ज्ञान

§ ५८) जीवादिमोक्षपर्यन्ततत्त्वश्रद्धानमैञ्जसा ।

त्रिभिर्मूढैरनालीढमष्टाङ्गं विद्धि दर्शनम् ॥३१॥

§ ५९) तस्य प्रशमसंवेगावास्तिक्यं चानुकम्पनम् ।

गुणाः श्रद्धारुचिस्पर्शप्रत्ययाश्चेति पर्ययाः ॥३२॥

§ ६०) तथा जिनेन्द्रसंदिशितमोक्षमार्गादिषु शङ्कापनयनं, भोगाकाङ्क्षासु विमुखता, मुनि- ५
जनतनुषु विचिकित्साविरहः, त्रिमूढतापायः, उपगूहनं, सद्धर्मपदच्युतभव्यसंहतिस्थापनं, विमलगुण-
वत्सलता, श्रीमज्जैनशासनप्रभावना चेत्यष्टौ गुणाः सम्यक्त्वावयवाः प्रतिपादिताः ।

§ ६१) मुक्तिश्रीहाररत्नं महितमहिम सदर्शनं धत्स्व चित्ते

यद्धत्वा भव्यजीवो हृदि सपदि चिरं सौख्यमुद्वेलेति ।

तिग्मरश्मिः सद्दर्शनतिग्मरश्मिः सम्यग्दर्शनसूर्य उदेति तेन तत्प्रभावेण प्रबोधं सम्यग्ज्ञानं विमलं निरतिचारं १०
चारित्र्यम् आराधयन् सेवमानो भव्यजीवो राजति शोभते । रूपकालंकारः । उपजातिछन्दः ॥३०॥ § ५८)
जीवादीति—अञ्जसा सम्यक्प्रकारेण जीवादिमोक्षपर्यन्तानां तत्त्वानां श्रद्धानं प्रत्ययनं दर्शनं सम्यक्त्वं विद्धि
जानीहि । ‘जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरांमोक्षास्तत्त्वम्’ इति भगवद्भिस्मत्स्वामिभिः सप्त तत्त्वानि निर्दिष्टानि ।
तच्च दर्शनं त्रिभिर्मूढैः लोकमूढता-देवतामूढता-गुरुमूढताभेदेन त्रिसंख्याकाभिर्मूढताभिरनालीढं रहितम्, अष्टौ
निःशङ्कित-निःकाङ्क्षितनिर्विकारितामूढदृष्ट्युपगूहनस्थितिकरणवात्सत्यप्रभावनामधेयानि अक्षानि यस्य १५
तथाभूतं विद्धि । तत्त्वानां विवेचनं मोक्षशास्त्रे मूढतानामञ्जानां च विवेचनं रत्नकरण्डश्रावकाचारे द्रष्टव्यम् ।
॥३१॥ § ५९) तस्येति—तस्य सम्यग्दर्शनस्य गुणाः प्रशमसंवेगौ प्रशमो लोकोत्तरशान्तिः, संवेगः संसारा-
द्भीतिः अनयोर्द्वन्द्वः आस्तिक्यं लोकपरलोकादिश्रद्धानम् अनुकम्पनं च दुःखनिवृत्तिकरः कर्षणापरिणामश्च
सन्ति । प्रशमादीनां विवेचनं पञ्चाव्याख्यां द्रष्टव्यम् । श्रद्धा च रुचिश्च स्पर्शश्च प्रत्ययश्चेति श्रद्धारुचिस्पर्श-
प्रत्यया इत्येते पर्ययाः सम्यग्दर्शनस्य पर्यया इत्यर्थः ॥३२॥ § ६०) तथेति—प्रकारान्तरेण सम्यग्दर्शनस्य २०
निःशङ्कितत्वप्रभृतयोऽष्टौ गुणाः सन्ति । एत एव सम्यक्त्वस्यावयवा अङ्गानि प्रतिपाद्यन्ते । § ६१) मुक्तिश्रीति—
मुक्तिश्रिया मुक्तिलक्ष्म्या हारस्य रत्नं मुक्तिश्रीहाररत्नं, महितो महिमा माहात्म्यं यस्य तत् महितमहिम सदर्शनं
सम्यग्दर्शनं चित्ते हृदये धत्स्व धर, यद् सदर्शनं हृदि धृत्वा भव्यजीवः सपदि शीघ्रं चिरं चिरकालस्थायि

और निर्मल सम्यक् चारित्र्यकी आराधना करता हुआ सुशोभित होता है ॥३०॥ § ५८)
जीवादीति—जीवको आदि लेकर मोक्षपर्यन्त सात तत्त्वोंका वास्तविक श्रद्धान करना सम्य- २५
ग्दर्शन है । यह सम्यग्दर्शन तीन मूढताओंसे रहित और आठ अंगोंसे सहित होता है ॥३१॥
§ ५९) तस्येति—प्रशम संवेग आस्तिक्य और अनुकम्पा ये सम्यग्दर्शनके गुण हैं और
श्रद्धा, रुचि, स्पर्श तथा प्रत्यय उसके पर्यय हैं ॥३२॥ § ६०) तथेति—तथा जिनेन्द्र भगवान्के
द्वारा दिखलाये हुए मोक्षमार्गादिकके विषयमें शंकाको दूर करना, भोगाभिलाषासे विमुख
होना, मुनियोंके शरीरमें ग्लानिका अभाव होना, तीन मूढताओंका न होना, दोष छिपाना, ३०
समीचीन धर्मसे च्युत हुए भव्यजीवोंके समूहको फिरसे धर्ममें स्थित करना, निर्मल गुणोंमें
स्नेह करना, और श्रीमान् जैन शासनकी प्रभावना करना ये भी सम्यग्दर्शनके आठ गुण कहे
गये हैं ये सम्यग्दर्शनके अवयव अर्थात् अंग भी कहे जाते हैं । § ६१) मुक्तिश्रीति—जो
मुक्तिरूपी लक्ष्मीके हारका रत्न है तथा जिसकी महिमा अतिशय प्रशस्त है ऐसे सम्यग्दर्शनको
हृदयमें धारण करो । जिस सम्यग्दर्शनको हृदयमें धारण कर भव्यजीव चिरकालके लिए ३५

अम्ब ! त्वं चाविलम्बं भज भवजलधेर्दुस्तरस्यापि नावं

सद्दृष्टिं स्त्रैणहेतोः किमिति हृदि सदा खिद्यसे चारुनेत्रे ॥३३॥

६२) इति मुनिवचनेन प्राप्तुः पुण्यवन्तो

सपदि विमलसम्यग्दर्शनं दंपती तौ ।

५

दधुरधिहृदयं ते व्याघ्रमुख्यार्यवर्या

नतमुनिपदपद्मा दर्शनं काललब्ध्या ॥३४॥

§ ६३) एवं बोधयित्वान्तर्हिते चारणयुगले किंचिदुत्कण्ठमानसौ सम्यक्त्वभावनापरि-
शीलनलालसौ सुचिरं भोगाननुभूय जीवितान्ते सुखोज्झितप्राणौ तौ जायारमणौ पुण्यवशेन गृहाद्-
गृहान्तरमिवैशानकल्पभासाद्य देवभूयमुपजग्मतुः ।

१०

§ ६४) तत्र किल विचित्रसुखैकताने श्रीप्रभविमाने वज्रजङ्घार्यः श्रीधरनामा सुरवर्यः,
श्रीमत्यार्या च स्वयंप्रभविमाने तत्समाननामधेयो देवः, शार्दूलार्यश्च तत्कल्पविलसिते चित्राङ्गद-

उद्वेलं सोमातीतं सौख्यं परमाह्लादम् एति प्राप्नोति । हे अम्ब ! हे मातः ! दुस्तरस्यापि दुःखेन तर्तुं शक्यस्यापि
भवजलधेः संसारसागरस्य नावं नौकां सद्दृष्टिं सम्यग्दर्शनं अविलम्बं शीघ्रं यथा स्यात्तथा भज सेवस्व, स्त्रैण-
हेतोः स्त्रीत्वनिमित्तात् हे चारुनेत्रे ! सुलोचने ! हृदि मनसि, इतीत्थं किं खिद्यसे खेदमनुभवसि । स्त्रीपर्यायिः
१५ सम्यग्दर्शनप्राप्तौ बाह्यको नास्तीत्यर्थः । लग्नराछन्दः ॥३३॥ § ६२) इतीति—इतीत्थं मुनिवचनेन स्वयंबुद्ध-
चरतपोधनसंबोधनेन पुण्यवती च पुण्यवांश्चेति पुण्यवन्तो सुकृतशालिनौ तौ दम्पती सपदि शीघ्रं विमलसम्य-
ग्दर्शनं निर्मलसम्यक्त्वं प्राप्तुः । व्याघ्रो मुख्यो येषु ते व्याघ्रमुख्यास्ते च ते आर्यवर्याश्चेति व्याघ्रमुख्यार्यवर्याः
शार्दूलचराः आर्याः अपि तत्ते नमस्कृते मुनिपदपद्मे यैस्तथाभूता वन्दितमुनिचरणकमलाः सन्तः काललब्ध्या
सम्यक्त्वप्राप्तियोग्यसमयलब्ध्या अधिहृदयं हृदयेषु दर्शनं सम्यक्त्वं दधुर्धृतवन्तः ॥ मालिनीछन्दः ॥३४॥ § ६३)

२० एवमिति—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण बोधयित्वा संबोध्य चारणयोर्युगलं तस्मिन् चारणाद्विसंपन्नतपोधनयुगे अन्तर्हिते
तिरोहिते सति, किञ्चित् मत्ताम् उत्कण्ठितं मानसं ययोस्ती, सम्यक्त्वभावनाया परिशीलनेऽभ्यसने लालसा
वाञ्छा ययोस्ती सुचिरं पत्यव्रतपर्यन्तं भोगान् पञ्चेन्द्रियविषयान् अनुभूय जीवितान्ते आयुरन्ते सुखेनावलेशेनो-
ज्झितास्त्यक्ताः प्राणा याम्यां तौ जायारमणौ जम्पती पुण्यवशेन गृहाद् गृहान्तरमिव ऐशानकल्पं द्वितीय-

निःसीम सुखको प्राप्त होता है । हे मातः ! तुम भी दुस्तर संसार सागरकी नौका स्वरूप
२५ सम्यग्दर्शनको शीघ्र ही प्राप्त होओ । हे सुलोचने ! स्त्री पर्यायके कारण इस तरह हृदयमें
सदा खेदखिन्न क्यों होती हो ? ॥३३॥ § ६२) इतीति—इस प्रकार मुनिराजके कहनेसे उस
पुण्यशाली दम्पतीने शीघ्र ही निर्मल सम्यग्दर्शन प्राप्त किया तथा व्याघ्र आदि लेकर जो
वहाँ आये हुए थे उन्होंने भी मुनिराजके चरण कमलोंको नमस्कार कर काललब्धिके द्वारा
हृदयमें सम्यग्दर्शन धारण किया ॥३४॥ § ६३) एवमिति—इस प्रकार चारणशृङ्गिके धारक
३० दोनों मुनिराज उपदेश देकर जब अन्तर्हित हो गये—विहार कर गये तब जिनके चित्त कुछ
कुछ उत्कण्ठित हो रहे थे तथा सम्यक्त्वकी भावनाके ही अभ्यासमें जिनकी लालसा लगी
रहती थी ऐसे दोनों दम्पती चिरकाल तक भोग भोगकर आयुके अन्तमें सुखपूर्वक प्राण छोड़
पुण्यके वश एक घरसे दूसरे घरके समान ऐशान स्वर्गको प्राप्त होकर देव पदको प्राप्त हुए ।
§ ६४) तत्रेति—वहाँ विचित्र सुखका जहाँ विस्तार था ऐसे श्रीप्रभ विमानमें वज्रजंघ आर्य-
३५ का जीव श्रीधर नामका देव, श्रीमती आर्याका जीव स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ नामका देव,

विमाने चित्राङ्गदामरः, सूकरार्यश्च नन्दाख्यविमाने मणिकुण्डलीत्रिदशः, कीशार्यश्च नन्द्यावर्त-
विमाने मनोहरसुमनाः, नकुलार्यश्च प्रभाकरविमाने मनोहरनिलम्पः समजायत ॥

§ ६५) पुण्योदयेन कलितं सुरलोकसौख्य-

मासेदुषामतितरां द्युसदाममीषाम् ।

श्रीमत्सरस्थितिरुो भुवि कल्पकद्रु-

क्रीडावने च समभूद्वत नैव चाभूत् ॥३५॥

§ ६६) नाकनारीमुखाम्भोजभ्रमरः श्रीधरः सुरः ।

बुभुजे सुचिरं भोगान्कन्दर्पसदृशकृतिः ॥३६॥

स्वर्गम् आसाद्य देवभूयं देवपर्यायम् उपजगमतुः । § ६४) तत्रेति—स्पष्टम् । § ६५) पुण्योदयेनेति—पुण्यो-
दयेन सुकृतोदयेन फलितं प्राप्तं सुरलोकसौख्यं स्वर्गसात्तम् अतितरामतिशयेन आसेदुषां प्राप्तवताम् अभीषां १०
पूर्वोक्तानां दिवि स्वर्गे सीदन्तीति द्युसदस्तेषां देवानाम् उरोभुवि वक्षःस्थले कल्पकद्रुक्रीडावने च कल्पानोकह-
केलिकानने च श्रीमत्सरस्थितिः अभूत् । उरोभुवि श्रीमान् शोभावान् यः सरो हारस्तस्य स्थितिरभूत्, कल्प-
कद्रुक्रीडावने च श्रीमत् शोभासंपन्नं यत्सरः कासारस्तस्य स्थितिः अभूत् । नैव च अभूत् उरोभुवि कल्पकद्रु-
क्रीडावने च श्रीमत्सरस्थितिर्नैवाभूदिति वत्—अद्भुतम् प्राक् सत्तां निवेद्य पश्चात्तन्निषेधेऽद्भुतम् 'वत् खेदे कृपा-
निन्दासंतोषामन्त्रणाद्भुते' इति विश्वलोचनः । उरोभुवि धिया लक्ष्म्या मत्सरस्थितिः ईर्ष्यास्थितिर्नैवाभूत् । १५
कल्पकद्रुक्रीडावने च धियाः शोभाया मत्सरस्थितिर्नैवाभूत् 'श्रीलक्ष्मीभारतीशोभाप्रभासु सरलद्रुमे' इति विश्व-
लोचनः । वसन्ततिलकाच्छन्दः । श्लेषालंकारः ॥३५॥ § ६६) नाकेति—नाकनारीणां देवीनां मुखाम्भोजेषु
भ्रमरः षट्पदः कन्दर्पसदृशकृतिः कामकल्पकलेवरः श्रीधरः सुरो वज्रजङ्घचरः श्रीधरदेवः सुचिरं दीर्घकाल-
पर्यन्तं भोगान् बुभुजे भुङ्क्तेस्म । रूपकालंकारः ॥३६॥ § ६७) यद्देव्य इति—यद्देव्यो यस्य देव्यो यद्देव्यः
यदीयदेवाङ्गनाः यश्च श्रीधरामरश्च सन्मुख्यः, सुमनोजनितान्तभाः, श्रीसारसदृशः, पुण्यद्विलासगमनाः अभूवन् २०
अभूच्चेति वचनश्लेषः । देवीपक्षे बहवचने देवपक्षे चैकवचने व्याख्या कार्या । तत्र देवी पक्षे सत् समीचीनं मुखं
यासां ता सन्मुख्यः प्रशस्तवदनाः, देवपक्षे सत्सु साधुषु मुख्यः प्रधानः, देवीपक्षे सुमनोजनितान्तभाः सुमनोभिः
पुष्पैर्जायते स्मेति सुमनोजा तथाभूता नितान्तभा अतिशयकान्तिर्यासां तथाभूताः, देवपक्षे सुमनोजः शोभन-
मदनस्तस्येव नितान्तभा अतिशयकान्तिर्यस्य सः देवीपक्षे आकारान्तो भाशब्दो देवपक्षे सवागान्तो भाशब्दः,

शार्दूल आर्यका जीव उसी ऐशान स्वर्गमें सुशोभित चित्रांगद विमानमें चित्रांगद देव, सूकर २५
आर्यका जीव नन्द विमानमें मणिकुण्डली नामका देव, वानर आर्यका जीव नन्द्यावर्त
विमानमें मनोहर नामका देव और नकुल आर्यका जीव प्रभाकर विमानमें मनोरथ नामका
देव हुआ ॥ § ६५) पुण्योदयेनेति—पुण्यके उदयसे प्राप्त होने वाले स्वर्गके उत्कृष्ट सुखको प्राप्त
हुए इन देवोंके वक्षःस्थलपर तथा कल्पवृक्षोंके क्रीडावनमें श्रीमत्सरस्थिति थी अर्थात् वक्षः-
स्थलपर शोभासम्पन्न हारकी स्थिति थी और कल्पवृक्षोंके क्रीडावनमें शोभासम्पन्न सरोवरकी ३०
स्थिति थी अथवा उक्त दोनों ही स्थानोंमें श्रीमत्सरस्थिति नहीं थी यह बड़ी अद्भुत बात थी
अर्थात् वक्षःस्थलपर लक्ष्मीकी मात्सर्य पूर्ण स्थिति नहीं थी और कल्पवृक्षोंके क्रीडावनमें
शोभाकी मात्सर्य पूर्ण स्थिति नहीं थी ॥३५॥ § ६६) नाकनारीति—जो देवांगनाओंके मुख-
कमलका भौरा था तथा जिसकी आकृति कामदेवके समान थी ऐसा वह श्रीधर देव दीर्घकाल
तक भोगोंको भोगता रहा ॥३६॥ § ६७) यद्देव्य इति—जिस श्रीधरदेवकी देवियाँ सन्मुख्यः ३५
—समीचीन मुखवाली थीं, सुमनोजनितान्तभा—फूलोंसे उत्पन्न होनेवाली विशिष्ट कान्तिसे
युक्त थीं, श्रीसारसदृशः—कमलके समान नेत्रोंसे सहित थीं और पुण्यद्विलासगमनाः—

§ ६७) यद्देव्यो यश्च सन्मुख्यः सुमनोजनितान्तभाः ।

श्रीसारसदृशः पुष्यद्विलासगमना अहो ॥३७॥

§ ६८) यश्च यत्परिवाराश्च सुशोभनमनाः सुराः ।

सामोदा सुमनोमाला यस्य पार्श्वेऽप्युरःस्थले ॥३८॥

§ ६९) उच्चोरःस्थलमाश्रिता मम हठान्नेत्रं मनोज्ञस्मितो-

ल्लासैर्हारसितांशुकं च हरते नित्यं कलानां निधेः ।

भूषाभिः किल लोकबान्धववसून्मुष्णाति तृष्णाकुले-

त्यालोच्यैव जहार वस्त्रममरो देव्या रते श्रीधरः ॥३९॥

- देवीपक्षे श्रीसारसमिव शोभोपलक्षितकमलमिव दृशी नेत्रे यासां ताः देवपक्षे श्रियाः सारः श्रीसारो लक्ष्मा-
 १० सारस्तेन सदृशस्तुल्यः, देवीपक्षे पुष्यन्तो विलासा विभ्रमा यस्मिन् तत् पुष्यद्विलासं तथाभूतं गमनं यासां ताः
 देवपक्षे पुष्यन्तश्च ते विलासाश्चेति पुष्यद्विलासाः तान् गच्छतीति पुष्यद्विलासं तथाभूतं मनो यस्य तथाभूतः ।
 इलेषालंकारः ॥३७॥ § ६८) यश्चेति—यश्च श्रीधरामरः यत्परिवाराश्च सुरा देवाः सुशोभनमना अभूत्
 अभूवंश्चेति वचनश्लेषः । यः श्रीधरदेवः सुशोभनं मनश्चित्तं यस्य तथाभूतः अभूत् । यत्परिवाराः सुराश्च
 सुशोभं नमनं येषां तथाभूताः । यस्य देवस्य पार्श्वेऽपि निकटेऽपि उरःस्थले वक्षःस्थलेऽपि सामोदा सहर्षा
 १५ सुमनसां माला सुमनोमाला देवपङ्क्तिः निकटे अभूत्, सामोदा सुगन्धिसहिता सुमनोमाला पुष्पस्रक् अभूत् ॥
 इलेषः ॥३८॥ § ६९) उच्चोरःस्थलेति—चोराणां स्थलं चोरस्थलम् उच्चं च तत् चोरस्थलं चेत्युच्चोरस्थलम्
 उत्कृष्टचोरस्थानम् आश्रिता प्राप्ता, इयं देवी हठाद् बलाद् मम नेत्रं हरते, किं च मनोज्ञस्मितोल्लासैः सुन्दर-
 हसितशोभाभिः हठात् कलानिधेश्चन्द्रमसो हारवत् सितं शुक्लमंशुकं वस्त्रमिति हारसितांशुकम् नित्यं सततम्
 २० जनहितकरस्तस्य वसून् धनानि मुष्णाति चोरयति । चुराशोलेयमिति भावः । इति आलोच्यैव विचार्यैव चोरस्य
 चोरणमुचितमेवेति विचारविधायैव रते सुरतकाले श्रीधरोऽमरो देव्या वस्त्रं जहार हरति स्म । पक्षे उच्चं
 स्तनाभ्यामुत्तुङ्गम् उरःस्थलं वक्षःस्थलम् आश्रिता प्राप्ता एषा हठात् मम नेत्रं नयनं, मनोज्ञस्मितोल्लासैश्च
 सुन्दरमन्दहसितप्रमाभिः कलानिधेश्चन्द्रस्य हारवत् सितांशुकं शुक्लकिरणं स्वार्थे कप्रत्ययः नित्यं हरते ।

- विलासयुक्त चालसे सहित थीं । देवी ही नहीं वह देव भी स्वयं सन्मुख्यः—सत्पुरुषोंमें
 २५ मुख्य था । सुमनोजनितान्तभाः—सुन्दर कामदेवके समान अतिशय कान्तिसे युक्त था,
 श्रीसारसदृशः—लक्ष्मीके सारके समान था तथा पुष्यद्विलासगमनाः—परिपुष्ट विलासको
 प्राप्त मनसे सहित था यह आश्चर्यकी बात थी ॥३७॥ § ६८) यश्चेति—जो श्रीधरदेव स्वयं
 सुशोभनमना—अत्यन्त सुन्दर मनसे सहित था तथा उसके परिवारके देव भी सुशोभनमनाः
 —सुन्दर शोभासे युक्त नमस्कारसे सहित थे । जिस श्रीधरदेवके पासमें सामोदा—हर्षसे
 ३० भरी सुमनोमाला देवीकी पंक्ति विद्यमान रहती थी तथा वक्षःस्थलमें भी सामोदा—सुगन्धिसे
 सहित सुमनोमाला—फूलोंकी माला विद्यमान रहती थी ॥३८॥ § ६९) उच्चोरःस्थलेति—
 चोरोंके उच्च अङ्गुली प्राप्त हुई यह देवी जबर्दस्ती मेरे नेत्र—वस्त्रको हर लेती है तथा सुन्दर
 मुसक्यानकी शोभाके द्वारा चन्द्रमाके हारके समान सफेद अंशुक—वस्त्रका निरन्तर अपहरण
 ३५ करती है । साथ ही तृष्णासे आकुल होकर आभूषणोंके द्वारा लोककल्याणकारी मनुष्यके
 धनको चुराती है ऐसा विचार कर ही मानो श्रीधरदेवने सुरतकालमें देवीका वस्त्र छीन लिया
 था (पक्षमें उन्नत वक्षःस्थलको प्राप्त हुई यह देवी जबर्दस्ती मेरे नेत्रको हरती है अर्थात्
 मेरे नेत्रको जबर्दस्ती अपनी ओर आकृष्ट करती है, मन्दमुसक्यानकी शोभासे चन्द्रमाके

§ ७०) अथ श्रीप्रभाद्रिविलसमानमुत्पन्नकेवलज्ञानमहिमानं जगत्प्रीतिकरं प्रीतिकरं निज-
गुरुमासाद्याभ्यर्च्य च तं सर्वज्ञं महाबलभवेऽस्मन्मन्त्रिणस्त्रयः कुदृष्टयः कीदृशीं गतिं प्राप्ता इति
पप्रच्छ ।

§ ७१) इति पृष्ठः समाचष्ट सर्वज्ञः सुरवन्दितः ।

अस्यान्तर्ध्वान्तसंतानमपाकुर्वन्वचोऽशुभिः ॥४०॥

§ ७२) पुरा खलु भवति स्वर्गं गते लब्धबोधेषु चास्मासु दुर्मतिं प्राप्तौ संभिन्नमहामती
गाढान्धतमसपदं निगोदास्पदमुपजग्मतुः । शतमतिश्च मिथ्याज्ञानप्रभावेण द्वितीयनरके वाचामगो-
चरदुःखमनुभुङ्क्ते ।

§ ७३) इति वचनमुदारं कर्णदेशे वितन्वन्

शिरसि चरणयुग्मं तस्य भक्तिं च चित्ते ।

शतमतिमतिखिन्नं धर्मनिष्ठं विधातुं

सपदि नरकमागात्तद्वितीयं सुरोऽयम् ॥४१॥

अस्या उत्तुङ्गं वक्षःस्थलं दृष्ट्वा मम नेत्रं बलात्तदुपरि पततीति भावः । एवं तस्या मन्दहसितोल्लासैः हारादपि
सितांशुकादपि च चन्द्रादपि च शुक्ल आसीदिति भावः । तृष्णाकुला सती भूषामिदं लोकबान्धवः सूर्यस्तस्य
वसून् किरणान्मुष्णातीति विचार्य सुरताय देव्या वस्त्रं जहार । 'नेत्रं विलोचने वृक्षमूले वस्त्रे गुणे मयि' इति
विश्वलोचनः । उच्चोरस्थलमित्यत्र 'खर्परो शरि विसर्गलोपो वा वक्तव्यः' इति वार्तिकेण वैकल्पिको विसर्ग-
लोपः ॥ श्लेष उत्प्रेक्षा च ॥३९॥ § ७०) अथेति—अथानन्तरं श्रीप्रभश्चासावद्विश्चेति श्रीप्रभाद्रिस्तस्मिन्
विलसमानः शोभमानस्तम्, उत्पन्नः केवलज्ञानमहिमा यस्य तं जगतां प्रीतिकरस्तं प्रीतिकरमेतन्नामधेयं निज-
गुरुम् आसाद्य प्राप्य अभ्यर्च्य पूजयित्वा च तं पूर्वोक्तं सर्वज्ञं प्रीतिकरस्वामिनम् महाबलभवे मम येऽन्ये त्रयो
मन्त्रिणोऽभूवन् मिथ्यादृष्टयस्ते कुशोत्पन्ना इति पप्रच्छ । § ७१) इतीति—इतीत्यं पृष्ठः सुरवन्दितो देववन्दितः
सर्वज्ञः प्रीतिकरः स्वयंबुद्धजीवः अस्य श्रीधरस्य अन्तर्ध्वान्तसंतानम् अन्तरज्ञानतिमिरसंततिम्, वचोऽशुभिः
वचनकिरणैः अपाकुर्वन् दूरीकुर्वन् समाचष्ट समवाच ॥४०॥ § ७२) पुरा खल्विति—स्पष्टम् । § ७३) इतीति—
इतीत्यं तस्य प्रीतिकरमहाराजस्य उदारमुत्कृष्टं वचनं कर्णदेशे श्रीधरप्रदेशे, चरणयुग्मं पादयुगलं शिरसि मूर्ध्नि,
भक्तिं च चित्ते हृदये वितन्वन् कुर्वन् अयं पूर्वोक्तः सुरः श्रीधरदेवः अतिखिन्नमतिदुःखितं शतमतिमेतन्नामानं

हारके समान सफेद अंशुक—किरणको निरन्तर हरती है और आभूषणोंके द्वारा सूर्यकी
किरणोंको जोतती है ऐसा विचार कर ही मानो उसने सुरतकालमें देवीका वस्त्र छीन लिया
था ॥३९॥ § ७०) अथेति—तदनन्तर श्रीप्रभ पर्वतपर शोभायमान, केवलज्ञानकी महिमासे
युक्त, जगत्को प्रीति उत्पन्न करनेवाले अपने गुरु प्रीतिकरके पास जाकर तथा उनकी पूजा कर
उन सर्वज्ञसे श्रीधरदेवने पूछा कि महाबलभवमें हमारे जो तीन मिथ्यादृष्टि मन्त्री थे वे किस
गतिको प्राप्त हुए हैं । § ७१) इतीति—इस प्रकार पूछे गये देव वन्दित सर्वज्ञ भगवान्
वचनरूपी किरणोंके द्वारा इसके भीतरी अज्ञानान्धकारकी संततिको नष्ट करते हुए बोले ॥४०॥
§ ७२) पुरेति—पहले जब आप स्वर्ग चले गये और हमलोग सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हो दीक्षित
हो गये तब कुमरणको प्राप्त होकर सम्भिन्नमति और महामति तो गाढ़ अन्धकारके स्थानभूत
निगोद स्थानको प्राप्त हुए हैं और शतमति मिथ्याज्ञानके प्रभावसे दूसरे नरकमें वचनोंके
अगोचर दुःखको भोग रहा है । § ७३) इतीति—इस प्रकार उन प्रीतिकर स्वामीके उत्कृष्ट
वचनके कर्णप्रदेशमें, चरणयुगलको शिरपर और भक्तिको हृदयमें धारण करता हुआ यह

§ ७४) या किल शर्कराप्रभा नाम्ना भूमिर्जज्वल्यमानज्वलनशिखाप्रतप्तभूमिभागा, दुःसहदुःस्पर्शस्फुलिङ्गकणसंगतवातपरीताम्बरतलचुम्बिविगलदम्बुधरनिपतिततप्तशुवृष्टिदुरवगाहा, विततविषवल्लीसंललितासिपत्रवनपातितप्रहरणमयपत्रविदोर्णप्रतीकनारकजनाक्रोशमुखरितदिगन्तरा, संतप्तायोमयपुत्रिकासमालिङ्गितनारकतरङ्गितदुःखाक्रन्दनघोरा, भस्त्राग्निदीपितनवायस-
 ५ कण्टकपरिमेदुरशाल्मलीवृक्षेषु क्रोधाकरैः परैः समारोप्यमाणानामूर्ध्वाधःकृष्यमाणानां च पुरुषाणां क्षतजपरीवाहपरीतमहाभागा, नानटद्यमाननारककरकलितशूलाग्रकीलिताभ्रभागबन्ध्रम्यमाणानां शोणितारुणविग्रहाणां केषांचिद्गात्रखण्डैर्विकीर्णा विराजते ।

मन्त्रिजीवं धर्मे निष्ठास्थाबुद्धिर्यस्य तं तथाभूतं विधातुं कर्तुं सपदि शीघ्रं द्वितीयं नरकं शर्कराप्रभानामधेयम् अगात् जगाम । मालिनीछन्दः ॥४१॥ § ७४) या किलेति—या किल नाम्ना शर्कराप्रभा भूमिः वंशाभिधाना भूमिः विराजते विशोभते इति क्रियासंबन्धः । अथ तामेव भूमिं विशिनष्टि—जाज्वल्यमानाभिरत्यर्थं पुनःपुनर्वा ज्वलन्तीभिर्ज्वलनशिखाभिरग्निशिखाभिः प्रतप्ता भूमिभागो यस्यां सा, दुःसहा दुःखेन सोढुं शक्या दुःस्पर्शा दुःखेन स्पर्ष्टुं शक्याश्च ये स्फुलिङ्गकणास्तैः संगतः सहितो यो वातः पवनस्तेन परीतं व्याप्तं यदम्बरतलं गगनतलं तस्य चुम्बिनो विगलन्तः क्षरन्तो येऽम्बुधरा मेघास्तेभ्यो निपतिता या तप्तांशुवृष्टस्तडिद्वृष्टस्तया दुरवगाहा दुःप्रवेशा, वितताभिर्विस्तृताभिविषवल्लीभिर्गललताभिः संललितानि वेष्टितानि यान्सिपत्रवनानि तेभ्यः पातितानि यानि प्रहरणमयानि शस्त्ररूपाणि पत्राणि तैर्विदोर्णप्रतीकाः खण्डितशरीरा ये नारकजनास्तेषामाक्रोशेन पूत्काररवेण मुखरितानि वाचालानि दिगन्तराणि काष्ठान्तराणि यस्यां तथाभूता, संतप्ताभिः अयोमयपुत्रिकाभिर्लोहमयपुत्तलिकाभिः समालिङ्गिताः समाश्लिष्टा ये नारका नरकनिवासिनस्तेषां तरङ्गित-
 १५ दुःखाक्रन्दनेन वृद्धिगतदुःखशब्देन घोरा भयावहा, भस्त्राग्निना दीपितास्तीक्ष्णीकृता ये नवायसकण्टका नवीन-लोहकण्टकास्तैर्मेदुरा मिलिता ये शाल्मलीवृक्षास्तेषु क्रोधाकरैः कोपखनिभिः परैरभ्यैः सबलैर्नारकैः समारोप्यमाणामुच्चटद्यमानानाम् ऊर्ध्वादिपरितनप्रदेशादधो नीचैः कृष्यमाणानां च पुरुषाणां नारकाणां क्षतजस्य रुधिरस्य परीवाहेण प्रवाहेण परीता व्याप्ता महाभागा महाप्रदेशा यस्यां सा, नानटद्यमानानां पुनःपुनरतिशयेन वा नटतां नारकाणां करकलितैर्हस्तधृतैः शूलाग्रैः कीलितेऽभ्रभागो गगनप्रदेशस्तस्मिन् बन्ध्रम्यमाणानां कुटिलं भ्रमतां शोणितेन रुधिरेणारुणो रक्तो विग्रहः शरीरं येषां तेषां केषांचित् गात्रखण्डैः शरीरशकलैः विकीर्णा व्याप्ता ।
 २०

श्रीधरदेव अतिशय दुखी शतमतिको धर्ममें श्रद्धा रखनेवाला बनानेके लिए शीघ्र ही दूसरे
 २५ नरक आया ॥४१॥ § ७४) या किलेति—अत्यन्त जलती हुई अग्निकी ज्वालाओंसे जहाँका भूमिभाग अत्यधिक सन्तप्त हो रहा था, असहनीय तथा दुःखदायक स्पर्शवाले अग्निकणोंसे युक्त वायुसे व्याप्त आकाशतलको चुम्बित करनेवाले बरसते हुए मेघोंसे पतित बिजलीकी वर्षासे जहाँ प्रवेश करना कठिन था, विस्तृत विषलताओंसे वेष्टित असिपत्रवनसे गिराये हुए शस्त्रमय पत्रोंसे खण्डित शरीरवाले नारकियोंकी चिल्लाहटसे जहाँके दिग्दिगन्त शब्दायमान
 ३० हो रहे थे, तपायी हुई लोहकी पुतलियोंसे आलिंगित नारकियोंके वृद्धिगत दुःखपूर्ण रौनेके शब्दसे जो भयंकर थी, धौंकनीकी अग्निसे तीक्ष्ण किये हुए नवीन लोहेके काँटोंसे युक्त सेंमरके वृक्षोंपर क्रोधकी खान स्वरूप अन्य नारकियोंके द्वारा ऊपर चढ़ाये तथा ऊपरसे नीचेकी ओर खींचे जानेवाले नारकियोंके रक्तके प्रवाहसे जहाँके बड़े-बड़े प्रदेश व्याप्त हो रहे थे तथा बार-बार अत्यधिकरूपसे नृत्य करनेवाले नारकियोंके हाथमें लिये हुए शूलके अग्र-
 ३५ भागोंसे कीलित आकाशमें बार-बार घुमाये जानेवाले तथा रुधिरसे लाल शरीरवाले किन्हीं नारकियोंके शरीरके टुकड़ोंसे जो व्याप्त थी ऐसी वह शर्कराप्रभा नामकी दूसरी भूमि

§ ७५) तत्रावलोक्य शतबुद्धिमसौ सुराग्र्यः

किं भद्र वेत्ति खचरेन्द्रमहाबलं माम् ।

मिथ्यात्वदुर्णयवशात्तव दुःखमेतत्

प्राप्तं विधेहि हृदि दर्शनमित्युवाच ॥४२॥

§ ७६) इति बोधितोऽयं गृहीतसम्यक्त्वधृतिः शतमतिः कालान्ते निरयान्निर्गत्य, पुष्करार्ध- ५
द्वीपपूर्वार्धपरिशोभितप्राग्विदेहप्रकाशमानमङ्गलावतीविषयसंगतरत्नसंचयनगरमधितिष्ठतोः सुन्दरी-
मनोहरनामधेययो राजदम्पत्योस्तनयो जयसेनाभिधानः संजातः । पाणिग्रहणप्रारम्भे करुणाकरेण
श्रीधरामरेण नारकीं वेदनां बोधितो निरस्तविषयाभिलाषस्तत्क्षणमेव यमधरं नाम गुरुवरं समा-
श्रित्य, दुश्चरणतपश्चरणदक्षः कालान्ते ब्रह्मेन्द्रो भूत्वा सुस्पष्टावधिलोचनस्तस्माल्लोकादागत्य
कल्याणमित्रं श्रीधरमतिमात्रं पूजयामास ॥

§ ७७) तदनु श्रीधरोऽपि स्वर्गाच्च्युत्वा जम्बूद्वीपप्राग्विदेहमहितमहावत्सकावतीविषय-

§ ७५) तत्रेति—तत्र शर्कराप्रभायां भूमौ असौ सुराग्र्यः श्रीधरदेवः शतबुद्धिं तन्नाममन्त्रिणम् अवलोक्य दृष्ट्वा
इतीत्यम् उवाच जगाद । इतीति किम् । हे भद्र ! किं खचरेन्द्रश्चासौ महाबलश्चेति खचरेन्द्रमहाबलस्तं मां
वेत्ति जानासि । मिथ्यात्वेन मिथ्यादर्शनेन युक्ता ये दुर्ण्या दुष्टनयास्तेषां वशेन तव भवतः एतदनुभूयमानं दुःखं
प्राप्तम् अतो हृदि दर्शनं सम्यग्दर्शनं विधेहि कुरु इति । वसन्ततिलका छन्दः ॥४२॥ § ७६) इतीति—इत्येवं १५
बोधितो बोधं प्रापितः गृहीता सम्यक्त्वे धृतिर्येन तथाभूतो गृहीतसम्यग्दर्शनः शतमतिः शतमतिमन्त्रिजीवः
कालान्ते जीवितान्ते निरयान्नरकाद् निर्गत्य पुष्करार्धद्वीपस्य पूर्वार्धे परिशोभितो यः प्राग्विदेहः पूर्वविदेहस्तस्मिन्
प्रकाशमानो यो मङ्गलावतीविषयस्तस्मिन् संगतं स्थितं यत् रत्नसंचयनगरं तत् अवितिष्ठतोस्तत्र निवसतोः
सुन्दरीमनोहरनामधेययो राजदम्पत्योः जयसेनाभिधानस्तनयः पुत्रः संजातः समुत्पन्नः । पाणिग्रहणप्रारम्भे
विवाहसंस्कारस्य प्रारम्भ एव करुणाकरेण कृपाखनिरूपेण श्रीधरामरेण महाबलचरेण नारकीं वेदनां यातनां २०
बोधितः स्मारितो निरस्तविषयाभिलाषो दूरीकृतभोगाकाङ्क्षः तत्क्षणमेव यमधरं नाम तन्नामानं गुरुवरं समा-
श्रित्य समाराध्य दुश्चरणतपश्चरणे कठिनतपस्यायां दक्षः समर्थः सन् कालान्ते जीवितान्ते ब्रह्मेन्द्रो ब्रह्मस्वर्ग-
पुरन्दरो भूत्वा सुस्पष्टं सुव्यक्तमवधिलोचनं यस्य तथाभूतः सन् तस्माल्लोकाद् ब्रह्मलोकात् पञ्चमस्वर्गाद् आगत्य
कल्याणमित्रं कल्याणकरमित्रं श्रीधरं श्रीधरदेवम् अतिमात्रमतिशयेन पूजयामास आनर्चं सच्चकारेत्यर्थः ।
§ ७७) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं श्रीधरोऽपि स्वर्गात् च्युत्वा जम्बूद्वीपस्य प्राग्विदेहे पूर्वविदेहे महितः २५

सुशोभित हो रही थी । § ७५) तत्रेति—वह श्रीधरदेव वहाँ शतबुद्धिको देखकर बोला कि
हे भद्र ! विद्याधरोंके राजा मुझ महाबलको क्या जानते हो ? मिथ्यात्वपूर्ण मिथ्यानयोंके
वशीभूत होनेसे तुम्हें यह दुःख प्राप्त हुआ है अतएव हृदयमें सम्यग्दर्शन धारण करो ॥४२॥
§ ७६) इतीति—इस प्रकार समझाया हुआ शतमतिका जीव सम्यग्दर्शन धारण कर नरकसे
निकला और पुष्करार्ध द्वीपके पूर्वार्धमें सुशोभित पूर्वविदेह क्षेत्रमें प्रकाशमान मंगलावती ३०
देशमें स्थित रत्नसंचय नामक नगरमें रहनेवाले सुन्दरी और मनोहर नामक राजदम्पतिके
जयसेन नामका पुत्र हुआ । विवाहके प्रारम्भमें ही दयाकी खान स्वरूप श्रीधरदेवने उसे
नरककी वेदनाका स्मरण करा दिया जिससे विषयोंकी अभिलाषाको छोड़कर उसने उसी क्षण
यमधर नामक गुरुके पास जाकर कठिन तपश्चरण किया । तपश्चरणके फलस्वरूप वह ब्रह्म
स्वर्गका इन्द्र हुआ । अवधिज्ञानरूपी नेत्रके प्रकट होनेपर उसने ब्रह्मलोकसे आकर कल्याण- ३५
कारी मित्र श्रीधरदेवकी बहुत पूजा की । § ७७) तदन्विति—तदनन्तर श्रीधरदेव भी स्वर्गसे

विराजमानसुसीमानगरपतेः सुदृष्टिनरपतेः सुन्दरनन्दायाः सुविधिर्नाम सूनुरजायत ।

§ ७८) सोऽयं कलानिधिरिति प्रथितोऽपि भास्वान्
सौम्योऽपि मङ्गलतनुः सुमना नरोऽपि ।

बाल्ये रराज सुविधिर्मदवर्जितोऽपि
श्रीसुप्रतीकविदितोऽपि च सार्वभौमः ॥४३॥

§ ७९) प्राणोऽपि जगतां सोऽयं प्रचेता राजनन्दनः ।
नरसार्थहिता यस्य सरसार्थहितापि गीः ॥४४॥

- शोभितो यो महावत्सकावतीविषयो महावत्सकावतीदेशस्तस्मिन् विराजमानं शोभमानं यत् सुसीमानगरं तस्य पतिः स्वामी तस्य सुदृष्टिनरपतेः सुदृष्टिनामभूपालस्य सुन्दरनन्दायास्तन्नामपत्न्याः सुविधिर्नाम सूनुः सुवि-
- १० धिनामा पुत्रः अजायत उदपद्यत । § ७८) सोऽयमिति—सोऽयं सुविधिः बाल्ये शैशवकाले कलानिधिरिति चन्द्र इति प्रथितोऽपि प्रसिद्धोऽपि भास्वान् सूर्य इति विरुद्धं, तत्परिहारः—कलानां चतुःषष्टिसंख्यानां निधि-
- १५ रिति कलानिधिः इत्येवं प्रथितोऽपि भास्वान् देदीप्यमानः । सोमस्य चन्द्रस्यापत्यं पुमान् सौम्यो बुधग्रहोऽपि मङ्गलतनुः मङ्गलग्रह इति विरुद्धं तत्परिहारः—सौम्योऽपि शान्ताकारोऽपि मङ्गलतनुः शोभनशरीरः । सुमना देवोऽपि नरो मनुष्य इति विरुद्धः, तत्परिहारः—सुष्ठु मनो यस्य तथाभूतः शोभनचित्तोऽपि नरो मनुष्यः, मद-
- २० वर्जितोऽपि दानरहितोऽपि श्रीसुप्रतीको दिग्गजविशेष इति विदितोऽपि सार्वभौम इति प्रसिद्धो दिग्गजविशेषः इति विरुद्धं तत्परिहारः मदेन गर्वेण वर्जितोऽपि रहितोऽपि श्रीसुप्रतीकेन शोभोपलक्षितसुन्दरशरीरेण विदि-
- २५ तोऽपि प्रसिद्धोऽपि सर्वस्या भूमेरधिपः सार्वभौमः चक्रवर्ती, सन् रराज शुशुभे । विरोधाभासालंकारः । वसन्त-
- ३० तिलकाञ्छन्दः ॥४३॥ § ७९) प्राणोऽपीति—सोऽयं राजनन्दनो राजपुत्रः सुविधिः जगतां प्राणोऽपि वायुरपि प्रचेताः वरुण इति विरोधः परिहारस्तु जगतां प्राणश्चेतन्यमिव सन् प्रकृष्टं चेतो यस्य तथाभूतः प्रचेता अभ-
- ३५ वत् । यस्य सुविधेः शोभिरती नरसार्थहिता रसस्वार्थश्च रसार्थो तान्मां हिता रसार्थहिता न रसार्थहिता नरसार्थहिता, सत्यपि सरसार्थहिता इति विरोधः परिहारस्तु नराणां मनुष्याणां सार्थः समूहस्तस्य हितापि

- न्युत होकर जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्वविदेहमें सुशोभित महावत्सकावती देशमें विराजमान सुसीमा नगरके स्वामी सुदृष्टि राजाकी सुन्दरनन्दा नामक स्त्रीसे सुविधि नामका पुत्र हुआ ।
- २५ § ७८) सोऽयमिति—वह सुविधि बाल्य अवस्थामें कलानिधि—चन्द्रमा इस तरह प्रसिद्ध होकर भी भास्वान्—सूर्य था (परिहार पक्षमें चौंसठ कलाओंका भाण्डार होकर भी देदीप्यमान था) सौम्य—बुधग्रह होकर भी मंगलतनु—मंगलग्रहरूप था (परिहार पक्षमें शान्ताकार होकर मंगलमय शरीरसे युक्त था) सुमना—देव होकर भी नर—मनुष्य था (परिहार पक्षमें सुन्दर हृदयवाला होकर मनुष्य था) मदवर्जित—दानसे रहित होकर तथा श्रीसुप्रतीक विदित—सुप्रतीक नामक दिग्गज होकर भी सार्वभौम—सार्वभौम नामक दिग्गज
- ३० रूपसे सुशोभित था (परिहार पक्षमें गर्वसे रहित) शोभासम्पन्न शरीरसे युक्त होकर भी समस्त भूमिका अधिपति चक्रवर्ती रूपसे सुशोभित था ॥४३॥ § ७९) प्राणोऽपीति—वह राजपुत्र सुविधि जगत्का प्राण—वायु होकर भी प्रचेताः—पश्चिम दिशाका दिक्पाल वरुण था (पक्षमें जगत्के प्राणस्वरूप होकर भी प्रकृष्ट—श्रेष्ठतम चित्तसे सहित था) तथा उसकी वाणी रस और अर्थके द्वारा हितकारी न होकर भी रस और अर्थसे हितकारी थी (पक्षमें
- ३५ नरसमूहको हितकारी होकर भी सरस—शृंगारादि रससहित अर्थसे हितकारी थी ।) ॥४४॥

§ ८०) स किल यथाकालं परिगृहीतसत्कलत्रः पितुरूपरोधेन प्राप्तराज्यभारश्चक्रधरस्या-
भयघोषाह्वयस्य स्वस्त्रियोऽयं चक्रिमुतां मनोरमामुद्वाह्य तया सह रममाणो राज्यमनुशशास ।

§ ८१) यस्य च पुरं रङ्गोज्ज्वलं तुरङ्गोज्ज्वलं चतुरङ्गोज्ज्वलं च, नीपहृद्या वनीपहृद्या
अवनीपहृद्याचाराणां ।

§ ८२) आर्याधिकानन्ददो भार्याधिकानन्ददः सभार्याधिकानन्ददश्च पृथ्वीपतिः । मार- ५
विलसितं कुमारविलसितं सुकुमारविलसितं च यस्यान्तःपुरम् । वरतोल्लासिता नवरतोल्लासिता
अनवरतोल्लासिता च वनिताजनता । यस्य च यशोमाला राजमनोरमा सुरराजमनोरमा च ।

§ ८३) यस्मिन् शासति महीवल्यं सुवृत्तस्य कुचस्य कठिन इति पीडा, अपापस्य कूपस्य

सरसार्थे हिता सरसेन शृङ्गारादिरससहितेन अर्थेन हिता श्रेयस्करी । विरोधाभासः ॥४४॥ § ८०) स किलेति—
यथाकालं यौवने प्राप्ते सतीत्यर्थः परिगृहीतानि परिणीतानि सत्कलत्राणि येन तथाभूतः सन् पितुस्तातस्य उप- १०
रोधेनाग्रहेण गृहीतराज्यभारः स्वीकृतराज्यभारः । स्वसुरपत्यं पुमान् स्वस्त्रियो भगिनीमुतः । शेषं स्पष्टम् ।

§ ८१) यस्य चेति—यस्य च सुविधेः पुरं नगरं रङ्गोज्ज्वलं रङ्गैर्नृत्यभूमिभिरुज्ज्वलं देदीप्यमानम्, तुरङ्गो-
ज्ज्वलं—तुरङ्गैरश्वैरुज्ज्वलं शोभमानं, चतुरङ्गैर्हस्त्यश्वरथपादातैश्चतुर्विधसेनाङ्गैरुज्ज्वलं शोभमानं बभूव ।
यस्य च सुविधेः आरामा उद्यानानि नीपहृद्याः कदम्बवृक्षमनोज्ञाः, वनीं पान्ति रक्षन्तीति वनीषा वनपाला-
स्तैर्हृद्या मनोहराः, अवनीं पृथ्वीं पान्ति रक्षन्तीति अपनीषा राजानस्तैर्हृद्या मनोहराः । आसन्निति शेषः । १५

§ ८२) आर्येति—यः पृथ्वीपतिः कथंभूतोऽभवत् । आर्याणामधिकानन्दं ददातीत्यार्याधिकानन्दद आर्यजन-
प्रभूतहर्षदायकः, भार्याणां स्त्रीणामधिकानन्दं ददातीति तथाभूतः, सभाया आर्येभ्यः सदस्येभ्योऽधिकानन्दं
ददातीति तथाभूतः । यस्य सुविधेरन्तःपुरं निशान्तं मारविलसितं कामशोभितं, कुमारविलसितं बालविभूषितं,
सुकुमारविलसितं च सुकुमारं कोमलं च तद् विलसितं चेति सुकुमारविलसितं बभूव । यस्य वनिताजनता
स्त्रीसमूहः वरतोल्लासिता वरता उत्कृष्टता तया उल्लासिता शोभिता, नवरतेन नूतनसंभोगेन उल्लासिता २०
प्रहृषिता, अनवरतोल्लासिता च अनवरतं निरन्तरम् उल्लासिता प्रसन्नचित्ता च अभवत् । यस्य च यशो-
माला राजमनोरमा नृपतिमनोहारिणी सुरराजमनोरमा च पुरन्दरचेतोहरा च बभूव । § ८३) यस्मिन्निति—
यस्मिन् सुविधो महीवल्यं भूमण्डलं शासति सति सुवृत्तस्य वर्तुलाकारस्य कुचस्य वक्षोजस्य कठिनः कठोर-

§ ८०) स किलेति—उस सुविधिने यथा समय उत्तम स्त्रियोसे विवाह कर, पिताके आग्रहसे २५
राज्यभार स्वीकृत किया । साथ ही वह अभयघोष नामक चक्रवर्तीका भानेज था अतः उसने
चक्रवर्तीकी पुत्री मनोरमाके साथ विवाह किया । इस तरह मनोरमाके साथ रमण करता
हुआ वह राज्याका पालन करने लगा । § ८१) यस्य चेति—जिस सुविधि राजाका नगर रंगो-
ज्ज्वल—रंगभूमियोंसे उज्ज्वल था, तुरंगोज्ज्वल—घोड़ोंसे सुशोभित था, और चतुरंगोज्ज्वल—
चतुरंगिणी सेनासे सुशोभित था तथा जिसके बगीचे नीपहृद्य—कदम्बके वृक्षोंसे सुन्दर थे,
वनीपहृद्य—वनपालोंसे मनोहर थे और अवनीपहृद्य—राजाओंको प्रिय थे । § ८२) ३०
आर्येति—जो राजा आर्य पुरुषोंको अधिक आनन्द देनेवाला था, भार्या—स्त्रियोंको अधिक
आनन्द देनेवाला था तथा सभाके आर्य मनुष्योंको अधिक आनन्द देनेवाला था । जिसका
अन्तःपुर कामसे सुशोभित था, बच्चोंसे सुशोभित था और सुकुमार तथा शोभायमान था ।
जिसकी स्त्रियोंका समूह उत्कृष्टतासे सुशोभित था, नये-नये संभोगोंसे सुशोभित था और
निरन्तर प्रसन्न चित्त रहता था । तथा जिसके यशकी सन्तति राजाओंके मनको रमण करने ३५
वाली थी और इन्द्रके चित्तको हरनेवाली थी । § ८३) यस्मिन्निति—जिस सुविधि राजाके
भूमण्डलका पालन करनेपर सुवृत्त—गोल स्तनोंका कठिन होनेके कारण पीड़न होता था

विरस इति खननं, सुगुणस्य मुक्ताहारस्य अन्तश्छिद्र इति भङ्गः, महातपस्थितिमहितस्य सरोजस्य सपङ्क इति मीलनं, सुमनोभूषितानां कुन्तलानां वक्रा इत्याकर्षणं, सुरक्तस्य वनितोष्ठस्य अधर इति खण्डनम् ।

§ ८४) एवं शासितराज्यस्य रममाणस्य कान्तया ।

५ स्वयंप्रभो दिवश्चपुत्वा केशवाख्यः सुतोऽजनि ॥४५॥

§ ८५) वज्रजङ्घभवे यासौ श्रीमती तस्य वल्लभा ।

तस्मिञ्जाते सुते राज्ञः प्रीतिरासीद्गरीयसी ॥४६॥

- स्पर्श इति हेतोः पीडामर्दनं, अन्यस्य कस्यचित् सुवृत्तस्य सदाचारवतः कठिनो निर्दय इति हेतोः पीडाकथनं न । अपां समूह आपं अपगतं आपं यस्मात् तस्य अपापस्य जलसमूहरहितस्य कूपस्य प्रह्वैर्विरसो निर्जल इति
- १० हेतोः खननमवदारणं, अन्यस्य कस्यचित् अपापस्य पापरहितस्य विरसो निःस्नेह इति हेतोः खननं न विदारणं । सुगुणस्य शोभनतन्तुसहितस्य मुक्ताहारस्य मौक्तिकयष्टेः अन्तश्छिद्रो मध्ये सविवर इति हेतोर्भङ्गः अन्यस्य कस्यचित् सुगुणस्य शोभनगुणसहितस्य अन्तश्छिद्रो मध्ये सदोष इति हेतोर्भङ्गो विनाशो न, महातपे महाधर्मे स्थितिरवस्थानं तेन महितस्य प्रशस्तस्य सरोजस्य कमलस्य सपङ्कः सकर्दम इति हेतोर्मीलनं संकोचनं कस्यविदन्यस्य महातपसि महातपश्चरणे स्थित्या महितस्य सपङ्कः सपाप इति हेतोर्मीलनं न ।
- १५ सुमनोभूषितानां पुष्पालंकृतानां कुन्तलानां केशानां वक्रा भङ्गुरा इति हेतोराकर्षणं, अन्येषां सुमनोभूषितानां सुहृदयशोभितानां वक्राः कुटिला इति हेतोः आकर्षणं न । सुरक्तस्य सुलोहितस्य वनितोष्ठस्य स्त्रीदशनच्छदस्य अधर इति हेतोः खण्डनं, पतिदन्तैर्दशनं, अन्यस्य कस्यचित् सुरक्तस्य शोभनरागसहितस्य अधरो नीच इति हेतोः खण्डनं अङ्गच्छेदनं न । परिसंख्पालंकारः । § ८४) एवमिति—एवमित्थं शासितं राज्यं येन तस्य तथाभूतस्य कान्तया वल्लभया रममाणस्य तस्य सुविधेः स्वयंप्रभो देवः श्रीमत्या जीवो दिवस्त्रिदशात्
- २० च्युत्वा केशवाख्याः केशवतामा सुतः सूनूः अजनि बभूव ॥४५॥ § ८५) वज्रजङ्घेति—वज्रजङ्घभवे तस्य सुविधेः यासौ प्रसिद्धा श्रीमती नाम वल्लभासीत् तस्मिन् सुते केशवाख्ये सुते जाते सति राज्ञो गरीयसी गुह्यतरा

- अन्य किसी सुवृत्त—सदाचारी मनुष्यका कठिन—दुष्टहृदय होनेके कारण पीड़न नहीं होता था । अपापस्य—जलके समूहसे रहित कूपका विरस—निर्जल होनेके कारण खनन होता था । अन्य किसी अपाप—निष्पाप मनुष्यका विरस—स्नेह रहित होनेके कारण खनन नहीं होता था । सुगुण—उत्तम तन्तुसे सहित मोतियोंके हारका अन्तश्छिद्र—मध्यमें छिद्र होनेके कारण भंग—विनाश होता था । अन्य किसी सुगुण—अच्छे गुणोंसे सहित मनुष्यका अन्तश्छिद्र—मध्यमें सदोष होनेसे भंग नहीं होता था । महातपस्थितिमहित—बहुत भारी धाममें स्थितिसे शोभित कमलका सपंक—कीचड़से सहित होनेके कारण मलिन—संकोच होता था—अन्य किसी महान् तपमें स्थितिसे शोभित मनुष्यका सपंक—पापसे सहित होनेके कारण मलिन नहीं होता था । सुमनोभूषित—फूलोंसे सुशोभित केशोंका वक्र—घुँघुराले होनेके कारण आकर्षण—खींचना होता था । अन्य किन्हीं सुमनोभूषित—अच्छे हृदयसे भूषित मनुष्योंका वक्र—कुटिल—मायावी होनेके कारण आकर्षण नहीं होता था । सुरक्त—अत्यन्त लाल स्त्रीके ओठका अधर इस नामसे सहित होनेके कारण खण्डन होता था—पतिके दाँतोंसे उसका दशन होता था । अन्य किसी सुरक्त—उत्तम रागसे सहित मनुष्यका अधर—नीच होनेके कारण खण्डन—अंगभंग नहीं होता था । § ८४) एवमिति—इस प्रकार राज्यका शासन और कान्ताके साथ रमण करते हुए सुविधिराजाके स्वयंप्रभदेव स्वर्गसे च्युत होकर केशव नामका पुत्र हुआ ॥४५॥ § ८५) वज्रजङ्घेति—वज्रजङ्घभवमें उसकी जो श्रीमती नामकी

§ ८६) इहैव किल सुरलोकनिकाशे देशे शार्दूलचरश्चित्राङ्गददेवः स्वर्गात् प्रच्युत्य विभीषणनृपालस्य प्रियदत्तायां वरदत्तनामसूनुरजायत । मणिकुण्डली चानन्तमतिनन्दिषेणयो राजदम्पत्योर्वरसेनसमाह्वयः पुत्रो बभूव । मनोहरश्चन्द्रमतिरतिषेणनाम्नो राजजायापत्योश्चित्राङ्गदः पुत्रो बभूव । मनोरथोऽपि चित्रमालिनीप्रभञ्जनयोः क्षत्रियभार्यापत्योः प्रशान्तमदनो नाम नन्दनोऽजायत ।

§ ८७) तदनु चक्रधरेणाष्टादशसहस्रनृपपरिवृतपार्श्वभागेन सममेतेषु विमलवाहाख्यं जिनमाश्रित्य प्रव्रज्यामास्थितेषु, सुविधिभूपालस्तु पुत्रस्नेहेन गार्हस्थ्यं त्यक्तुमक्षमस्तत्क्षणमुत्कृष्टोपासकस्थाने दुश्चरं तपस्तप्त्वा, प्राणान्ते जैनीं दीक्षामासाद्य सम्यगाराधितमोक्षमार्गः समाधिना त्यक्ततनुरच्युतेन्द्रो बभूव ।

§ ८८) केशवश्च परित्यक्तकृत्स्नबाह्येतरोपधिः ।

प्राप्तो जैनेश्वरीं दीक्षां प्रतीन्द्रोऽभवदच्युते ॥४७॥

§ ८९) पूर्वोक्ता वरदत्ताद्याः पुण्यात्पार्थिवनन्दनः ।

तदानीं समजायन्त तत्र सामानिकाः सुराः ॥४८॥

प्रीतिः प्रेम आसीत् ॥४६॥ § ८६) इहैवेति—मणिकुण्डली सूकरार्यचरः, मनोहरः वानरार्यचरः, मनोरथो नकुलार्यचरः । शेषं सुगमम् । § ८७) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं अष्टादशसहस्रं नृपा इत्यष्टादशसहस्रनृपास्तैः परिवृतः पार्श्वभागे यस्य तेन चक्रधरेण अभयघोषेण समं सार्धम् एतेषु पूर्वोक्तेषु सर्वेषु विमलवाहाख्यं विमलवाहनामधेयं जिनं तीर्थंकरम् आश्रित्य प्रव्रज्यां दीक्षाम् आस्थितेषु सत्सु, सुविधिभूपालस्तु श्रीधरामरजीवस्तु पुत्रस्नेहेन केशवमुतप्रीत्या गार्हस्थ्यं गृहस्थभावं त्यक्तुम् अक्षमोऽसमर्थः सन्, तत्क्षणं तत्कालम् उत्कृष्टोपासकस्थाने एकादशप्रतिमायां दुश्चरं कठिनं तपोऽनशनादिकं तप्त्वा प्राणान्ते जीवितान्ते जैनीं दैगम्बरीं दीक्षां प्रव्रज्याम् आसाद्य प्राप्य सम्यग् यथा स्यात्तथा आराधितो मोक्षमार्गो येन सः, समाधिना संन्यासमरणेन त्यक्ततनुस्त्यक्तशरीरः सन् अच्युतेन्द्रः षोडशस्वर्गाधिपतिः बभूव । § ८८) केशवश्चेति—केशवश्च सुविधिपुत्रश्च परित्यक्ता निर्मुक्ताः कृत्स्नाः संपूर्णा बाह्येतरोपधयो बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहा येन तथाभूतः जैनेश्वरी जैनेन्द्रीं दीक्षां प्रव्रज्यां प्राप्तः सन् अच्युते षोडशस्वर्गे प्रतीन्द्रो बभूव ॥४७॥ § ८९) पूर्वोक्ता इति—पूर्वोक्ताः पूर्वकथिताः वरदत्ताद्याः वरदत्तप्रभृतयः पार्थिवनन्दनाः राजपुत्राः पुण्यात् तदानीं तस्मिन्काले सामानिकाः सामा-

वल्लभा थी उसके पुत्र होने पर राजाकी उसपर बहुत भारी प्रीति हुई ॥४६॥ § ८६) इहैवेति—स्वर्गकी तुलना करनेवाले इसी देशमें शार्दूलका जीव चित्रांगददेव स्वर्गसे च्युत होकर विभीषण राजाकी प्रियदत्ता नामक स्त्रीमें वरदत्त नामका पुत्र हुआ । सूकरार्यका जीव मणिकुण्डली देव अनन्तमति और नन्दिषेण राजदम्पतिके वरसेन नामका पुत्र हुआ । वानरार्यका जीव मनोहरदेव चन्द्रमति और रतिषेण राजदम्पतिके चित्रांगद नामका पुत्र हुआ । और नकुलार्यका जीव मनोरथ भी चित्रमालिनी तथा प्रभञ्जन राजदम्पतिके प्रशान्त मदन नामका पुत्र हुआ । § ८७) तदन्विति—तदनन्तर अठारह हजार राजाओंसे जिनका समीपवर्ती प्रदेश घिरा हुआ था ऐसे अभयघोष चक्रवर्तीके साथ इन सबने विमलवाह नामक जिनराजके पास जाकर दीक्षा ले ली परन्तु सुविधिराजा पुत्रके स्नेहसे गृहस्थ दशाका त्याग करनेमें असमर्थ रहा अतः उस समय उत्कृष्ट श्रावकके पदमें रह कर कठिन तपश्चरण करता रहा । अन्तमें जैनी दीक्षा प्राप्तकर अच्छी तरह मोक्षमार्गकी आराधना करता हुआ मरकर अच्युतेन्द्र हुआ । § ८८) केशवश्चेति—जिसने समस्त बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका परि-

§ ९०) राकाकोकरिपुप्रतीतवदनो राजीवसल्लोचनः

श्रीमानच्युतवासवः सुरभिलं मन्दारमाल्यं वहन् ।

रेजे भूषणरत्नकान्तितटिनीखेलन्मरालस्फुर-

देहः काञ्चनशैलशृङ्गतुलितावंसौ दधत्सुन्दरः ॥४९॥

५ § ९१) यस्य च समदया गजघटया तुलिता चित्रवृत्तिः । सदाभया तनुलतया सदृशी सामानिकपरिषत् । अतिशोभनया संपदा समाना देवोसंततिः । अतिमृदुलया वचोधारया संमिता सुरसुन्दरीजनगानकला । शोभितमुवर्णसरोरुहया करकान्त्या तुल्या सप्तानीकपद्धतिः । कलित-

निकपदभाजः सुरा देवाः समजायन्त बभूवुः ॥४८॥ § ९०) राकेति—राकायाः पौर्णमास्याः कोकरिपुश्चन्द्र-

१० स्तद्वत्प्रतीतं प्रसिद्धं वदनं मुखं यस्य तथाभूतः, राजीवे कमले इव सल्लोचने यस्य तथाभूतः, श्रीमान् लक्ष्मीमान् सुरभिलं सुगन्धिमन्दारमाल्यं कल्पवृक्षकुसुमस्रजं वहन् दधत्, भूषणरत्नानामाभरणमणीनां कान्तिरेव तटिनी तरङ्गिणी तस्यां खेलन्मराल इव क्रोडद्वंस इव स्फुरन् शोभमानो देहो यस्य तथाभूतः, काञ्चनशैलशृङ्गतुलितो सुमेरुगिरिकूटसंनिभो अंसौ भुजशिरसौ दधत् सुन्दरो रमणीयः अच्युतवासवोऽच्युतेन्द्रो रेजे शुशुभे । उभालंकारः । शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥४९॥ § ९१) यस्येति—यस्याच्युतेन्द्रस्य चित्तवृत्तिर्मनोवृत्तिः गजघटया करिपङ्क्त्या तुलिता सदृशी, उभयोः सादृश्यमाह—समदयेति—समा दया यस्यां तथाभूता समदया समकृपा

१५ चित्तवृत्तिः गजघटापक्षे मदेन सहिता समदा तथा दानसहितया । यस्य सामानिकपरिषद् सामानिकदेवसभा तनुलतया शरीरवल्गुया सदृशी संनिभा, उभयोः सादृश्यमाह—सदाभयेति सदा सर्वदा अभया निर्भया सामानिकपरिषद् तनुलतापक्षे सती प्रसस्ता आभा कान्तियस्याः सा सदाभा तथा । यस्य देवोसंततिः संपदा संपत्त्या समाना सदृशी, उभयोः सादृश्यमाह—अतिशोभनयेति—अतिशोभो नयो नीतिर्यस्याः सा देवोसंततिः संपत्पक्षे अतिशयं शोभनं यस्याः सा अतिशोभना तथा । यस्य सुरसुन्दरीजनगानकला सुरसुन्दरीजनानां देवीनां गानकला सगीतवैदग्धी वचोधारया वचनपङ्क्त्या संमिता संनिभा उभयोः सादृश्यमाह—अतिमृदुलया अतिशयेन मृदुः कोमलो लयो यस्यां तथाभूता गानकला वचोधारापक्षेऽतिशयेन मृदुला तथा । यस्य सप्तानीकपद्धतिः

त्याग कर दिया था ऐसा केशव भी दैगम्बरी दीक्षाको धारण कर अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ ॥४८॥ § ८९) पूर्वोक्ता इति—पहले कहे हुए वरदत्त आदि राजपुत्र पुण्यके प्रभावसे उस समय उसी अच्युत स्वर्गमें सामानिक देव हुए ॥४८॥ § ९०) राकेति—जिनका मुख पूर्णिमा-

२५ के चन्द्रमाके समान था, उत्तम नेत्र कमलके समान थे, जो लक्ष्मीसे युक्त था तथा सुगन्धित कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाको धारण करता था, जिसका शरीर आभूषण सम्बन्धी रत्नोंकी कान्तिरूपी नदीमें खेलते हुए हंसके समान शोभायमान था, जो सुमेरुपर्वतके शिखरके समान ऊँचे कन्धोंको धारण कर रहा था तथा स्वयं अत्यन्त सुन्दर था ऐसा अच्युतेन्द्र सुशोभित हो रहा था ॥४९॥ § ९१) यस्येति—जिस अच्युतेन्द्रकी चित्तवृत्ति, गजघटा—हाथियोंकी पंक्तिके

३० समान थी क्योंकि जिसप्रकार चित्तवृत्ति समदया—अनुरूपदयासे सहित थी उसी प्रकार गजघटा भी समदया—मदसे सहित थी । जिसकी सामानिक जातिके देवोंकी सभा तनुलता—शरीररूपी लताके समान थी क्योंकि जिसप्रकार सामानिक देवोंकी सभा सदाभया—सदा निर्भय रहती थी उसीप्रकार तनुलता भी सदाभया—समीचीन आभासे सहित थी । जिसकी देवोसन्तति—देवियोंकी श्रेणी संपदाके समान थी क्योंकि जिसप्रकार देवोसन्तति

३५ अतिशोभनया—अत्यन्त शोभायमान नयोंसे सहित थी उसीप्रकार संपदा भी अतिशोभनया—अत्यन्त शोभायमान थी जिसके सुरसुन्दरीजनोंकी गानकला वचनधाराके समान थी क्योंकि जिसप्रकार सुरसुन्दरीजनोंकी गानकला अतिमृदुलया—अत्यन्त कोमल लयसे सहित थी

मनोजया तारुण्यलक्ष्म्या निकाशा धैर्यवृत्तिः । सुगन्धिवायुविशोभितरया कल्पकवनवीथिकया सगन्धा सैन्धवपरम्परा ।

§ ९२) किंच यद्देवीकुचमण्डलेषु मकरीगणश्चक्रभासुरता सरसता चेति युक्तमेव यतोऽत्र सरश्चकासामास किंतु कुचभरो नोरसहितो नासोदित्यद्भुतमेव ।

सप्तविधसैन्यसंततिः करकान्त्या हस्तदोप्त्या तुल्या सदृशी, उभयोः सादृश्यमाह—शोभितसुवर्णसरोरुहयेति—
शोभिताः सुवर्णसरा सुवर्णहारा येषां तथाभूताः उरुहया उत्तुङ्गास्वा यस्यां तथाभूता सप्तानीकपद्धतिः कर-
कान्तिपक्षे शोभितं सुवर्णसरोरुहं स्वर्णकमलं यस्यां तथा । यस्य धैर्यवृत्तिः गाम्भीर्यप्रकृतिः तारुण्यलक्ष्म्या
द्यौवनश्रिया निकाशा सदृशी उभयोः सादृश्यमाह—कलितमनोजयेति—कलितः कृतो मनसो मानसस्य जयो
वशीकारो यया तथाभूता धैर्यवृत्तिः तारुण्यलक्ष्मीपक्षे कलितो धृतो मनोजः कामो यया तथा । यस्य सैन्धव-
परम्परा हयश्रेणिः कल्पकवनवीथिकया कल्पतरुवनपङ्क्त्या सगन्धा सदृशी, उभयोः सादृश्यमाह—सुगन्धि-
वायुविशोभितरयेति—सुगन्धिर्यो वायुस्तद्वत् विशोभितो रयो वेगो यस्यास्तथाभूता सैन्धवपरम्परा कल्पकवन-
वीथिकापक्षे सुगन्धिगन्धवायुना अतिशयेन विशोभिनीति सुगन्धिगन्धवायुविशोभितरा तथा । विभक्तिश्लेषोत्था-
पितोपमालंकारः । § ९२) किंचेति—तस्याच्युतेन्द्रस्यान्यदपि किंचिद्वर्ण्यते—यद्देवीनां यदीयसुरोणां
कुचमण्डलेषु स्तनमण्डलेषु मकरीगणो मकरस्त्रीसमूहः, चक्रभासुरता चक्रैश्चक्रवाकपक्षिभिर्भासुरता शोभा
सरसता-सजलता चासोदिति युक्तमेव यतो यस्मात् कारणात् अत्र देवीकुचमण्डलेषु सरः कासारः चकासामास
शुशुभे यत्र जलाशयस्तत्र जलजन्तूनां जलपक्षिणां जलानां च सद्भाव उचित एव किं तु कुचभरः स्तनसमूहो
नोरसहितो जलसहितो नासोद् इत्यद्भुतमेव विस्मयोपेतमेव । पक्षे व्याख्यानम्—यद्देवीकुचमण्डलेषु मकरीगणः
काश्मीरद्रवेण रचितरचनाविशेषसमूहः, चक्रभासुरता—चक्र इव चक्रवाकपक्षिवत् भासुरता शोभमानता,
सरसता शृङ्गारादिरसयुक्ता चासोदिति युक्तमेव यतोऽत्र सरो हारः चकासामास । किं तु कुचभरो नोर-

और वचनधारा अतिमृदुलया—अत्यन्त कोमल थी । जिसकी सात प्रकारकी सेनाकी सन्तति
करकान्ति—हाथकी कान्तिके समान थी क्योंकि जिस प्रकार सात प्रकारकी सेनाकी सन्तति
शोभितसुवर्णसरोरुहया—शोभायमान सुवर्णके हारोंसे युक्त बड़े-बड़े घोड़ोंसे सहित थी उसी
प्रकार करकान्ति भी शोभितसुवर्णसरोरुहया—शोभायमान स्वर्णकमलोंसे सहित थी । जिसकी
धैर्यवृत्ति—धीरता तारुण्यलक्ष्मीके समान थी क्योंकि जिस प्रकार धैर्यवृत्ति कलितमनोजया—
मनकी विजयसे सहित थी उसी प्रकार तारुण्यलक्ष्मी कलितमनोजया—कामसे सहित थी ।
जिसके घोड़ोंकी परम्परा कल्पवृक्षोंकी वनवीथीके समान थी क्योंकि जिसप्रकार घोड़ोंकी
परम्परा सुगन्धिवायुविशोभितरया—सुगन्धित वायुके समान शोभित वेगसे सहित थी
उसी प्रकार कल्पक वृक्षोंकी वनवीथी भी सुगन्धिवायुविशोभितरया—सुगन्धित वायुसे
अत्यन्त विशोभित थी । § ९२) किंचेति—जिस अच्युतेन्द्रकी देवांगनाओंके स्तनोंपर मकरी-
गण—मगरकी स्त्रियोंका समूह, चक्रभासुरता—चक्रवाकपक्षियोंकी शोभा, और सरसता—
सजलता थी यह उचित ही था क्योंकि यहाँ सरः—सरोवर शोभायमान था; जहाँ सरोवर
रहता है वहाँ मगर आदि जल जन्तुओंके समूह, चक्रवाकी शोभा तथा जलका सद्भाव रहता
ही है किन्तु स्तनोंका समूह नीरसहित—जलसे सहित नहीं था यह आश्चर्यकी ही बात थी ।
जहाँ सरोवर हो वहाँ जल न हो यह विरुद्ध बात है (परिहार पक्षमें जिस अच्युतेन्द्रकी
देवियोंके स्तनोंपर मकरीगण—केशर, कस्तूरी आदिके द्रवसे लिखी हुई विशिष्ट रचना चक्र-
भासुरता—चक्रवाक पक्षीके समान शोभा तथा सरसता—शृङ्गारादि रससे सहितपना था
यह योग्य ही था क्योंकि उनपर सर—हार शोभायमान था । जहाँ हार शोभा दे रहा था
वहाँ मकरीकी रचना, चक्रवाक जैसी गोल आकृति तथा सरसता—कामोत्तेजक होनेसे शृङ्गा-

§ ९३) अरत्तिप्रमितोत्सेधदिव्यदेहेन राजतः ।

मानसोऽस्य प्रवीचारो विष्वाणोऽपि तथाभवत् ॥५०॥

§ ९४) द्वाविंशतिसहस्रैश्च समानां सकृदाहरेत् ।

तथैकादशभिर्मासैः सकृदुच्छ्वसितं भजेत् ॥५१॥

§ ९५) संचारिणीभिरिव हेमलताभिराभि-

देवीभिरेष ललिताकृतिरच्युतेन्द्रः ।

चिक्रीड दिव्यसरसीषु कुमुद्वतीषु

मन्दारमुन्दरवनेषु च मन्दरेषु ॥५२॥

§ ९६) ततश्च तस्य स्वर्गप्रच्युतिलिङ्गेषु देवीजनशोकाग्निविस्फुलिङ्गेष्विव प्रकटीभवत्सु,

१० धीरधीरमनाः सोऽयमच्युतेन्द्रः षण्मासान्हंतपरमेष्ठिसपर्यामित्याश्चर्या विधाय त्रिदिवात्प्रच्युत्य,

सहितः रसान्निष्क्रान्तो नीरसो जरन्नैयायिक इव नीरसस्तस्य हितो हितकरो नासीदिति न किमप्यद्भुतम् । श्लेषविरोधाभासो । § ९३) अरत्तीति—अरत्तिप्रमितो हस्तत्रयप्रमित उत्सेध उच्छ्वायो यस्य तथाभूतो यो दिव्यदेहो वैक्रियिककायस्तेन 'सरत्तिः स्यादरत्तिश्च निष्कनिष्ठेन मुष्टिना' इति 'नगराद्यारोह उच्छ्वाय उत्सेधश्चोच्छ्वयश्च सः' इति चामरः । राजतः शोभमानस्य अस्याच्युतेन्द्रस्य प्रवीचारो मैथुनं मानसो मनोविषयो

१५ विष्वाण आहारोऽपि तथा मानस इत्यर्थः अभवत् । प्रवीचारविषये देवानां नियमोऽयम् 'कायप्रवीचारा आ-
ऐशानात्' 'शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः' 'परेऽप्रवीचाराः' इति तत्त्वार्थसूत्रे । आहारविषयेऽप्येवं नियमोऽस्ति—येषां देवानां यावत्सागरप्रमितमायुर्भवति तेषां तावत्सहस्रवर्षान्तरमाहारस्येच्छा भवति सा च कण्ठे क्षरतामृतेन निवर्त्यते । यावत्सागरप्रमितमायुर्भवति तावत्स्पर्शश्च देवानां श्वासोच्छ्वासो भवति ॥५०॥

§ ९४ द्वाविंशतीति—समानां वर्षाणां द्वाविंशतिसहस्रैश्च सकृदेकवारम् आहरेत् आहारग्रहणं कुर्यात् । तथा

२० एकादशभिर्मासैः सकृदेकवारम् उच्छ्वसितं श्वासग्रहणं भजेत् प्राप्नुयात् पूर्वोक्तोऽसावच्युतेन्द्र इति कर्तृसंबन्धो योज्यः ॥५१॥ § ९५) संचारिणीभिरिति—ललिता मनोहारिणी आकृतिर्यस्य तथाभूतः, एषोऽयम् अच्युतेन्द्रः संचारिणीभिः संचरणशीलाभिः हेमलताभिरिव सुवर्णवल्लीभिरिव आभिर्देवीभिः सह कुमुद्वतीषु कुमुदयुक्तासु दिव्यसरसीषु कमनीयकासारेषु मन्दाराणां कल्पवृक्षाणां सुन्दराणि वनानि येषु तथाभूतेषु मन्दरेषु च सुमेरु-
पर्वतेषु च चिक्रीड क्रीडति स्म । वसन्ततिलकाच्छन्दः ॥५२॥ § ९६) ततश्चेति—देवीजनस्य शोकानेविरह-

२५ जनिष्यमाणशोकानलस्य विस्फुलिङ्गेषु कणेष्विव तस्याच्युतेन्द्रस्य स्वर्गात्त्रिदिवात्प्रच्युतेः प्रच्यवनस्य लिङ्गेषु चिह्नेषु प्रकटीभवत्सु सत्सु धीरधीरमतिशयधीरं मनो यस्य तथाभूतः सोऽयं पूर्वोक्तः अच्युतेन्द्रः षण्मासान् अत्यन्तसंयोगे द्वितीया अनवरतं षण्मासपर्यन्तमित्यर्थः अत्याश्चर्या सातिशयां सपर्यां पूजां विधाय त्रिदिवात्

रादिरसका सद्भाव उचित ही था परन्तु स्तनोंका समूह नीरसहित—नीरस मनुष्योंके लिए हितकारी नहीं था) § ९३) अरत्तीति—तीन हाथ प्रमाण ऊँचे वैक्रियिक शरीरसे सुशोभित

३० इस अच्युतेन्द्रका मैथुन मानसिक था तथा आहार भी मैथुनके समान मानसिक था अर्थात् मनमें इच्छा होते ही वृप्ति हो जाती थी ॥५०॥ ९४) § द्वाविंशतीति—वह अच्युतेन्द्र बाईस हजार वर्षोंमें एक बार आहार करता था तथा ग्यारह माहमें एक बार श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था ॥५१॥ § ९५) संचारिणीभिरिति—सुन्दर शरीरका धारक यह अच्युतेन्द्र चलती फिरती स्वर्णलताओंके समान इन देवियोंके साथ कुमुदोंसे युक्त सुन्दर सरोवरोंमें तथा कल्प-

३५ वृक्षोंके सुन्दर वनोंसे सहित सुमेरु पर्वतों पर क्रीड़ा करता था ॥५२॥ § ९६) ततश्चेति—तद-
नन्तर देवीजनोंके शोकरूपी अग्निके तिलगोंके समान स्वर्गसे च्युत होनेके चिह्न प्रकट होने पर अत्यन्त धीर मनका धारक वह अच्युतेन्द्र छह माह तक अर्हन्तपरमेष्ठीकी अतिशय

जम्बूद्वीपप्राग्विदेहविशोभितपुष्कलावतीविषयमण्डितपुण्डरीकिणीनगर्यां श्रीकान्तावज्रसेनयो राज-
दम्पत्योर्वज्रनाभिनामा पुत्रः समजायत ।

§ ९७) तयोरेव सुता जाता वरदत्तादयः क्रमात् ।

विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽप्यपराजितः ॥५३॥

§ ९८) अथ वज्रजङ्घभवे तस्य ये मन्त्रिपुरोहितसेनाधिपश्रेष्ठिनो मतिवरानन्दाकम्पनधन- ९
मित्रनामधेया अधोग्रैवेयकेष्वहमिन्द्रा जातास्ते किल ततः प्रच्युत्य सुबाहुमहाबाहुपीठमहापीठाह्व-
यास्तयोरेव तनयाः समजायन्त ।

§ ९९) नगर्यां केशवोऽत्रैव धनदेवाह्वयोऽभवत् ।

कुबेरदत्तवणिजोऽनन्तमत्याश्च नन्दनः ॥५४॥

§ १००) निसर्गसौन्दर्यनिधेरमुष्य तारुण्यमासीत्पुनरुक्तिपात्रम् ।

१०

विद्याविहारालयवज्रनाभेर्हेम्नो यथा वर्णविशेषकृत्पितः ॥५५॥

§ १०१) लक्ष्म्या साकं विपुलमभवत्तस्य वक्षस्तदानीं

सत्रा शत्रुक्षितिपविभवैर्मध्यदेशः कृशोऽभूत् ।

कीर्त्या सार्धं जघनवलयं विस्तृतत्वं प्रपेदे

तेजोलक्ष्म्या सह गुणनिधेरुदगता रोमराजिः ॥५६॥

१५

स्वर्गात् प्रच्युत्य जम्बूद्वीपस्य प्राग्विदेहे विशोभितो यः पुष्कलावतीविषयः पुष्कलावतीदेशस्तस्मिन् मण्डिता
शोभिता या पुण्डरीकिणीनगरी तस्यां श्रीकान्तावज्रसेनयोस्तन्नाम्नो राजदम्पत्योः वज्रनाभिनामा पुत्रः
समजायत समुत्पन्नः । § ९७) तयोरिति—वरदत्तः शार्दूलार्थचरः, वरसेनः सूकरार्थचरः, चित्राङ्गदो वान-
रार्थचरः प्रशान्तमदनो नकुलार्थचरः एते क्रमात् तयोरेव श्रीकान्तावज्रसेनयोरेव विजयो वैजयन्तो जयन्तोऽप-
राजितश्चेतिनामानः पुत्रा अजायन्त ॥५३॥ § ९८) अथेति—स्पष्टम् । § ९९) नगर्यामिति—स्पष्टम् ॥५४॥ २०
§ १००) निसर्गेति—स्पष्टम् ॥५५॥ § १०१) लक्ष्म्येति—तदानीं तारुण्यकाले गुणनिधेः गुणभाण्डारस्य
तस्य वज्रनाभेः वक्ष उरःस्थलं लक्ष्म्या श्रिया साकं सह विपुलं विस्तीर्णम् अभवत्, मध्यदेशः कटिप्रदेशः शत्रु-
क्षितिपानां प्रत्यर्थापायिवानां विभवैरेवैवर्त्यैः सत्रा सह कृशः क्षीणोऽभूद् बभूव, जघनवलयं नितम्बमण्डलं

आश्चर्यपूर्ण पूजा करता रहा । तत्पश्चात् स्वर्गसे च्युत होकर जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहमें २५
सुशोभित पुष्कलावती देश सम्बन्धी पुण्डरीकिणी नगरीमें श्रीकान्ता और वज्रसेन नामक
राजदम्पतीके वज्रनाभि नामका पुत्र हुआ । § ९७ तयोरिति—वरदत्त आदिक क्रमसे उन्हीं
राजदम्पतिके विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित नामक पुत्र हुए ॥५३॥ § ९८ अथेति—
तदनन्तर वज्रजङ्घभवमें उसके जो मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन नामके मन्त्री,
पुरोहित, सेनापति और राजश्रेष्ठी थे तथा अधोग्रैवेयकोमें अहमिन्द्र हुए थे वे वहाँसे च्युत
होकर उन्हीं राजदम्पतिके सुबाहु, महाबाहु, पीठ और महापीठ नामके पुत्र हुए । § ९९) ३०
नगर्यामिति—केशव, इसी नगरीमें कुबेरदत्त वणिक् और उसकी अनन्तमति स्त्रीसे धनदेव
नामका पुत्र हुआ ॥५४॥ § १००) निसर्गेति—स्वाभाविक सौन्दर्य की निधि तथा विद्याओंके
क्रीडाभवन स्वरूप इस वज्रनाभिका यौवन सुवर्णके ऊपर रंग विशेषकी रचनाके समान
पुनरुक्तिका पात्र था ॥५५॥ § १०१) लक्ष्मीति—उस यौवनके समय गुणोंके भाण्डार स्वरूप
उस वज्रनाभिका वक्षःस्थल लक्ष्मीके साथ विस्तृत हो गया, मध्यभाग शत्रुराजाओंके वैभवोंके ३५
साथ कृश हो गया, नितम्बमण्डल कीर्तिके साथ विस्तारको प्राप्त हो गया और रोमराजि

§ १०२) तदनु वज्रसेनमहाराजोऽपि तस्मिन्नेव तनये राज्यलक्ष्मीं नियोज्य लौकान्तिकामरैः प्रबोधितो विहितनिष्क्रमणमतिः कलितसुरवरापचितिः सहस्रप्रमितैर्नराधिपतिभिः सह परिनिष्क्रम्य तपोलक्ष्म्या समालिङ्गितदेहोऽपि मुक्तिलक्ष्मीं प्रमोदिनीं चक्रे ।

§ १०३) जयागारे चक्रे विजितरविबिम्बे रुचिभरैः

समुद्भूते पुण्यात् क्षितिपतिरसौ कौतुकवशात् ।

विधायैतत्पूजां विलसितषडङ्गेन महता

बलेनाथ श्रीमान् स निखिलदिगन्तानि जितवान् ॥५७॥

§ १०४) धनदेवोऽपि तस्यासीद्धरणीशस्य चक्रिणः ।

रत्नं तद्गृहपत्याख्यं निधौ रत्ने च योजितम् ॥५८॥

१० § १०५) यस्य च महीरमणस्यारिचक्रं पाणिलालितं खण्डितं च । सुमनोमाला कण्ठे पार्श्वे

कीर्त्या यशसा सार्वं विस्तृतत्वं विपुलत्वं प्रपेदे लेभे, रोमराजिलोमपङ्क्तिः तेजोलक्ष्म्या तेजःश्रिया सह उद्गता प्रकटिता । सहोक्तिरलंकारः । मन्दाक्रान्ताछन्दः ॥५६॥ § १०२) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं वज्रसेन-महाराजोऽपि वज्रनाभिजनकोऽपि तस्मिन्नेव तनये वज्रनाभौ पुत्रे राज्यलक्ष्मीं राज्यश्रियं नियोज्य स्थापयित्वा लौकान्तिकामरैर्ब्रह्मलोकान्तनिवासिभिर्देवभिः प्रबोधितः प्रबोधं प्रापितः विहिता कृता निष्क्रमणे प्रव्रजने

१५ मतिर्येन सः, कलिता कृता सुरवरैः शक्रैरपचितिः पूजा यस्य तथाभूतः सन् सहस्रप्रमितैर्नराधिपतिभिः सह परिनिष्क्रम्य परिव्रज्य तपोलक्ष्म्या तपःश्रिया समालिङ्गितदेहोऽपि समाश्लिष्टशरीरोऽपि सन् मुक्तिलक्ष्मीं प्रमोदिनीं प्रहर्षिणीं चक्रे विदधे । § १०३) जयागार इति—असौ क्षितिपतिर्वज्रनाभिः पुण्यात् सुकृतात् रुचिभरैः किरणकलापैः विजितं पराभूतं-रविबिम्बं सूर्यमण्डलं येन तथाभूते चक्रे चक्ररत्ने जयागारे शस्त्रशालायां समुद्भूते प्रकटिते सति स श्रीमान् वज्रनाभिः कौतुकवशात् कुतूहलवशात् एतत्पूजां चक्ररत्नापचितिं विधाय

२० कृत्वा विलसितानि शोभितानि षडङ्गानि यस्य तेन महता विशालेन बलेन सैन्येन निखिलदिगन्तानि सकल-काष्ठागन्तानि जितवान् जिगाय । शिखरिणीछन्दः ॥५७॥ § १०४) धनदेवोऽपीति—धनदेवोऽपि केशवजीवो-ऽपि तस्य पूर्वोक्तस्य धरणीशस्य पृथिवीपतेः चक्रिणश्चक्रवर्तिनो वज्रनाभेः तत् प्रसिद्धं गृहपत्याख्यं गृहपतिनाम रत्नम् अभवत् 'जातो जातो यदुत्कृष्टं तद्वर्तनमिहोच्यते' इति रत्नलक्षणम् । यत् निधौ रत्ने च योजितं संमेलितं बभूव ॥५८॥ § १०५) यस्येति—यस्य महीरमणस्य वज्रनाभेः अरिचक्रं पाणिलालितं खण्डितं च पूर्वपक्षे

२५ अराश्चक्रदण्डा विद्यन्ते यस्मिन् तत् अरि तच्च तत् चक्रं चेति अरिचक्रं अरयुक्तं चक्ररत्नं करलालितं परत्र पक्षे अरीणां शत्रूणां चक्रं समूह इत्यरिचक्रं खण्डितं नष्टं च । सुमनोमाला यस्य कण्ठे पार्श्वे च कण्ठपक्षे सुमनसां

तेजश्रीके साथ प्रकट हो गयी ॥५६॥ § १०२) तदन्विति—तदनन्तर उसी वज्रनाभिपुत्रपर राज्य-लक्ष्मीको नियुक्त कर लौकान्तिक देवोंके द्वारा प्रबोधको प्राप्त होते हुए जिन्होंने दीक्षा लेनेकी बुद्धि की थी तथा इन्द्रने जितकी पूजा की थी ऐसे वज्रसेन महाराजने भी एक हजार राजाओं-

३० के साथ दीक्षा ले ली और तपोलक्ष्मीके द्वारा आलिंगित शरीर होनेपर भी मुक्तिरूपी लक्ष्मी-को हर्षित किया ॥ § १०३) जयागार इति—राजा वज्रनाभिने पुण्योदयसे आयुधशालामें किरणोंके समूहसे सूर्यबिम्बको जीतनेवाले चक्ररत्नके प्रकट होनेपर कुतूहलवश उसकी पूजा की । तदनन्तर विशिष्ट लक्ष्मीसे युक्त हो छह अंगोंसे सुशोभित बड़ी भारी सेनाके द्वारा उसने समस्त दिशाओंके अन्तको जीता ॥५७॥ § १०४) धनदेवोऽपीति—धनदेव भी उसी चक्रवर्ती-

३५ का गृहपति नामका वह रत्न हुआ जो कि निधि और रत्न दोनोंमें शामिल था ॥५८॥ § १०५) यस्य चेति—अरिचक्र जिस राजाके हाथमें धारण किया गया था तथा खण्डित भी किया गया था (हाथमें अरोंसे युक्त चक्ररत्न धारण किया गया था और शत्रुओंका समूह

च । यस्य सुराः पौरवर्गो विधेयाश्च । यस्य वचनक्रम इव सत्यो, भुज इव सालसदृशो वनिताः । यस्य मनोजवन्ति तुरङ्गसमूहा देवोमण्डलानि च । वनराजीवन्ति वनितादृशः क्रीडास्थानानि च । स्त्रीणां भ्रमन्ति नाभयो न बुधाः । उत्सर्पन्ति रोमराजयो न शत्रवः । दरन्ति कण्ठा न पीराः । गदन्ति वियोगा न दुर्भाषां जनाः । हरन्ति हासा न धनानि चौराः ।

§ १०६) आलोक्य दिग्जये यं शात्रवसैन्ये निषादियूथस्य ।

५

अङ्कुशमगलद्वस्तात्कुशमक्ष्णोः शं तथैव मनसोऽपि ॥५९॥

पुष्पाणां माला सुमनोमाला पार्श्वपक्षे सुमनसां विदुषां माला सुमनोमाला विद्वत्समूहः । यस्य पौरवर्गो नागरिक-समूहो विधेयाश्च सेवकाश्च सुराः पौरवर्गपक्षे सुष्ठु रा घनं यस्य स सुराः, विधेयपक्षे सुरा देवाः इति वचनश्लेषः । यस्य वनिताः स्त्रियो वचनक्रम इव सत्यः प्रतिव्रताः सतीशब्दस्य प्रथमाबहुवचने रूपं वचनक्रमपक्षे सत्यस्तथ्यः सत्यशब्दस्य प्रथमैकवचने रूपं, भुज इव बाहुनिव सालसदृशः सालसे सत्तन्द्रे दृशी नयने यासां ताः १० भुजपक्षे दीर्घत्वात् सालेन सर्जवृक्षेण सदृशः संनिभः । यस्य च वज्रनाभेः तुरगसमूहा अश्वसमूहा देवोमण्डलानि च वनितानि कुरम्बाणि च मनोजवन्ति मनसो जवो वेगो मनोजवः स इवाचरन्तीति मनोजवन्ति देवोमण्डल-पक्षे मनोजो मदनोऽस्ति येषां तानि मनोजवन्ति । वनितादृशः स्त्रीनयनानि क्रीडास्थानानि च केलिस्थानानि च वनराजीवन्ति, वनितादृक्पक्षे वनराजीवानीव जलस्थितकमलानीवाचरन्तीति वनराजीवन्ति क्रीडास्थान-पक्षे वनराज्यो वनपङ्क्तयो विद्यन्ते येषु तानि । श्लेषः । यस्य स्त्रीणां नाभयः तुन्दयो भ्रमन्ति न बुधा विद्वांसः १५ नाभपक्षे भ्रमा आवर्ता इवाचरन्ति भ्रमन्ति बुधपक्षे भ्रमन्ति भ्रमयुक्ता भवन्ति । रोमराजयो लोमपङ्क्तय उत्सर्पन्ति न शत्रवोऽरयः, रोमराजपक्षे उत्कृष्टाः सर्पा उत्सर्पास्तद्वदाचरन्ति उत्सर्पन्ति शत्रुपक्षे उत्सर्पन्ति अभिद्रवन्ति । कण्ठा धमनीधमा दरन्ति न पीराः पुरे भवाः पीरा नागरा दरन्ति, कण्ठपक्षे दराः शङ्खा इवा-चरन्तीति दरन्ति, पौरपक्षे दरन्ति भययुक्ता भवन्ति । वियोगा विरहा । गदन्ति गदा रोगा इवाचरन्तीति गदन्ति न जना लोका दुर्भाषां गदन्ति कथयन्ति । हासा हसितानि हरन्ति न धनानि चौराः हासपक्षे हराः २० शिवा इवाचरन्ति हरस्यादृहासः प्रसिद्धोऽस्ति चौरास्तस्करा न हरन्ति न मुष्णन्ति । परिसंख्यालंकारः श्लेषोत्थापितः । § १०६) आलोक्येति—दिग्जये काष्ठाविजयवेलायां यं वज्रनाभिम् आलोक्य दृष्ट्वा

खण्डित किया गया था) सुमनोमाला जिसके कण्ठमें थी और पासमें भी थी (कण्ठमें फूलोंकी माला थी और पासमें विद्वानोंका समूह था) जिसके पौरवर्ग—नगर निवासी लोग सुराः—उत्तम धनसे सहित थे और विधेय—सेवक लोग भी सुराः—देव थे । जिसकी २५ स्त्रियाँ वचनक्रमके समान सत्यः—पतिव्रताएँ (पक्षमें सत्य) थीं और भुजाके समान साल-सदृश (अलसाये हुए) नेत्रोंसे सहित थीं (पक्षमें सागौनके वृक्षके समान लम्बी थीं) जिसके घोड़ोंके समूह मनोजवन्ति—मनके वेगके समान आचरण करते थे और देवियोंके मण्डल मनोजवन्ति—कामसे सहित थे । जिसकी स्त्रियोंके नेत्र वनराजीवन्ति—जलमें स्थित कमलके समान आचरण करते थे और जिसकी क्रीड़ाके स्थान वनराजीवन्ति—वनपंक्तियोंसे सहित थे । ३० जिसकी स्त्रियोंकी नाभियाँ भ्रमन्ति—जलकी भँवरके समान आचरण करती थीं परन्तु विद्वान् लोग न भ्रमन्ति भ्रममें नहीं पड़ते थे । जिसकी रोमपंक्तियाँ उत्सर्पन्ति—उत्कृष्ट साँपके समान आचरण करती थीं परन्तु शत्रु न उत्सर्पन्ति—आगे नहीं बढ़ते थे । जिसके कण्ठ दरन्ति—शंखके समान आचरण करते थे परन्तु पुरवासी लोग न दरन्ति—भयभीत नहीं होते थे । जिसके वियोग गदन्ति—रोगके समान आचरण करते थे परन्तु मनुष्य दुष्टभाषा न गदन्ति—नहीं बोलते थे । ३५ जिसके हास्य हरन्ति—शिवजीके अदृहासके समान आचरण करते थे परन्तु चौर धनको न हरन्ति—न हरण करते थे । § १०६) आलोक्येति—दिग्विजयके समय जिस राजाको देखकर

§ १०७) आलक्ष्य यस्य वीर्यं युद्धारम्भे धुरि द्विषां हस्तात् ।

गलति स्म चन्द्रहासो हासोऽपि च तत्सतीमुखाम्भोजात् ॥६०॥

§ १०८) जयश्रिया यत्र वृते रणाग्रे विवाहशोभामरिभूमिपालः ।

लेभे तदानीं रिपुसैन्यवर्गाश्चित्रं चिरं नन्दनसौख्यमापुः ॥६१॥

५

§ १०९) असौजन्यनिपुणोऽपि सौजन्यनिपुणः । अपि च मर्त्येन्द्रदशायामप्यच्युतामर्त्येन्द्रो बभूवेति चित्रम् ।

- शात्रवसैन्ये प्रत्यक्षिपूतनायां निषादिनां हस्त्यारोहिणां यूयस्य समूहस्य हस्तात्करात् अङ्कुशं सृणिः अगलत् पपात, अक्षणेर्नयनयोः कुशं जलम् अश्वनोरमिति यावत् अगलत् तथैव तेनैव प्रकारेण मनसो हृदयादपि शं सुखम् अगलत् पपात । आर्याछन्दः ॥५९॥ § १०७) आलक्ष्येति—युद्धारम्भे समरारम्भे सति धुरि अग्रे यस्य वज्रनाभेः वीर्यं पराक्रमम् आलक्ष्य दृष्ट्वा द्विषां शत्रूणां हस्तात् चन्द्रहासः कृपाणं गलति स्म पतितोऽभूत् तेषां सतीनां पतिव्रतानारीणां मुखाम्भोजं मुखकमलं तस्मात् हासोऽपि च हसितमपि गलति स्म । शत्रवो हतास्तेन च तत्सतीनारीणां वैधव्याद् हास्यमपि विनष्टमिति भावः । आर्याछन्दः ॥६०॥ § १०८) जयश्रियेति—तदानीं तस्मिन्काले रणाग्रे युद्धाग्रे यत्र यस्मिन् वज्रनाभौ जयश्रिया विजयलक्ष्म्या वृते स्वीकृते सति अरिभूमिपालः शत्रुनरेन्द्रो विवाहशोभां पाणिग्रहणश्रियं लेभे रिपुसैन्यवर्गाः शत्रुसैनिकसमूहाः १० चिरं चिरकालपर्यन्तं नन्दनसौख्यं पुत्रसौख्यम् आपुर्लेभिरे इति चित्रं, वरणं कस्यचित् पाणिग्रहणमन्यस्य नन्दनोत्पत्तिश्चेतरस्येति चित्रतामूलं, परिहारस्तु रणाग्रे यस्मिन् जयलक्ष्म्या वृते सति शत्रुराजो विगता विनष्टा या वाहशोभा वाहनश्रोस्तां विवाहशोभां लेभे वाहनरहितोऽभूदित्यर्थः । रिपुसैन्यवर्गाश्च मृत्वा स्वर्गं प्राप्य नन्दने स्वर्गस्य नन्दनवने सौख्यं नन्दनसौख्यम् आपुर्लेभिरे इति । विरोवाभासः । उपजातिछन्दः । § १०९) असौजन्येति—सुजनस्य भावः सौजन्यं न सौजन्यम् असौजन्यं तस्मिन् निपुणोऽपि चतुरोऽपि दीर्जन्यदक्षोऽपि २० सौजन्यनिपुणः सज्जनतानिपुण इति विरोधः यः दीर्जन्यनिपुणः स सौजन्यनिपुणः कथं भवेदिति भावः । परिहारस्तु असौ एष वज्रनाभिः जन्यनिपुणोऽपि युद्धप्रवोणोऽपि सौजन्यनिपुणो बभूव । अपि च किं च, मर्त्येन्द्रदशायामपि मनुजेन्द्रावस्थायामपि अच्युतामर्त्येन्द्रः अच्युतस्वर्गदेवेन्द्रो बभूवेति चित्रं यो मर्त्येन्द्रः सोऽच्युतामर्त्येन्द्रः कथं भवेदिति भावः । परिहारस्तु मर्त्येन्द्रदशायामपि अकारेण च्युतोऽमर्त्येन्द्र इत्यच्युतामर्त्येन्द्रः

- शत्रुओंकी सेनामें महावतोंके हाथसे अङ्कुश गिर गया था, नेत्रोंसे अश्रुजल गिरने लगा था २५ और मनसे सुख निकल गया था ॥५९॥ § १०७) आलक्ष्येति—युद्धके आरम्भमें आगे जिसके पराक्रमको देखकर शत्रुओंके हाथसे तलवार छूट जाती थी और उनकी पतिव्रता स्त्रियोंके मुख-कमलसे हास भी छूट जाता था ॥६०॥ § १०८) जयश्रियेति—रणके अग्रभागमें विजयलक्ष्मीके द्वारा जिस वज्रनाभिके बारे जानेपर विवाहकी शोभा शत्रुराजाने प्राप्त की थी और चिरकाल तक नन्दनका सुख—पुत्रोत्पत्तिका आनन्द शत्रुके सैनिकोंने प्राप्त किया था यह आश्चर्यकी बात ३० थी (परिहार पक्षमें वज्रनाभिकी जीत होनेपर शत्रुराजा वाहनरहित हो गये थे और उनके सैनिकोंके समूह युद्धमें मरकर स्वर्गके नन्दन वनमें सुखको प्राप्त हुए थे) ॥६१॥ § १०९) असाविति—वह वज्रनाभि असौजन्यनिपुणः—दुर्जनतामें निपुण होकर भी सौजन्यनिपुणः—सज्जनतामें निपुण था (परिहार पक्षमें युद्धमें निपुण होकर भी सज्जनतामें निपुण था) और मर्त्येन्द्रदशा—मनुजेन्द्र अवस्थामें भी अच्युतामर्त्येन्द्र अच्युतस्वर्गका अमर्त्येन्द्र—देवेन्द्र था ३५ यह आश्चर्यकी बात थी (परिहार पक्षमें अ-अकारसे रहित अच्युतामर्त्येन्द्र अर्थात् मर्त्येन्द्र—

§ ११०) यस्य च सपक्षा विपक्षाश्च सकलभयशस्यगमनाः सुमहितां मुक्तापांसुलभवनपालि-
मधिवसन्ति ।

§ १११) कुन्दसुन्दरयशोविशोभितः पाकशासनसमानवैभवः ।

सोऽयमुज्ज्वलगुणो निधीश्वरः शासति स्म सुचिराय मेदिनीम् ॥६२॥

§ ११२) तदनु कदाचन विषयाभिलाषविरतस्वान्तो मेदिनीकान्तो वज्रदन्तसमाह्वये पुत्रे ५
विन्यस्तसमस्तराज्यभारः षोडशसहस्रपरिमितपृथ्वीपतिभिः सहस्रेण नन्दनैः, अष्टाभिः सोदरैर्धन-
देवेन च परिवृतः स्वगुरोस्तीर्थंकरस्योपकण्ठे जैनी दीक्षामासाद्य, तीर्थंकरत्वाङ्गानि षोडश-
भावनाः सुचिरं भावयन् अतिदुश्चरमाचर्यावहं तपश्चचार ।

§ ११३) ततोऽसौ कालान्ते प्रथितसुतपाः पुण्यचरितो

महोक्तान्तः शान्तोऽविशत शिखरे श्रीप्रभगिरेः ।

१०

मत्येन्द्र इत्यर्थः मनुष्याणामिन्द्रोऽभूदिति भावः । विरोधाभासः । § ११०) यस्य चेति—यस्य च वज्रनाभेः
सपक्षाः सुहृदो विपक्षाः शत्रवश्च सकलभयशस्यगमनाः सकलभं करिष्यावकसहितं यशस्यं कीर्तिसहितं गमनं
येषां तथाभूताः सपक्षाः सकलभयैर्निखिलभयैः शस्यं सहितं गमनं येषां तथाभूता विपक्षाः सन्तः सुमहितां
अतिशयेन महिता सुमहिता तां प्रशस्तुतमाम्, विपक्षपक्षे सुमैः पुष्पैर्हितां युक्तां, मुक्ताभिः मोक्तिकैः पांसुला
धूलियुक्ता या भवनपालिः सौषपङ्क्तिस्तां विपक्षपक्षे मुक्तापां त्यक्तजलसमूहां निर्जलामित्यर्थः सुलभवनपालि १५
सुलभा चासौ वनपालिश्च वनपङ्क्तिश्चेति सुलभवनपालिस्ताम् अधिवसन्ति । श्लेषः ॥ § १११) कुन्देति—
कुन्दमिव माध्यमिव सुन्दरं मनोहरं यद् यशः कीर्तिस्तेन विशोभितः समलंकृतः 'माध्यं कुन्दम्' इत्यमरः,
पाकशासनसमानं शक्रसदृशं वैभवमैश्वर्यं यस्य सः, उज्ज्वला निर्मला गुणाः शौर्यादयो यस्य तथाभूतः सोऽयं
पूर्वोक्तो निधीश्वरश्चक्रवर्ती वज्रनाभिः सुचिराय सुदोर्घकालपर्यन्तं मेदिनीं पृथिवीं शासति स्म पालयामास ।
रशोद्धताछन्दः ॥६२॥ § ११२) तदन्विति—स्वगुरोः स्वपितुर्वज्रसेनस्य तीर्थंकरस्य । षोडशभावनाः २०
दर्शनविशुद्ध्यादीः । शेषं सुगमम् । § ११३) ततोऽसाविति—ततस्तदनन्तरं प्रथितं सुतपो यस्य स प्रसिद्ध-
सुतपश्चरणः, पुण्यचरितः पवित्रचरित्रः शान्तो जितरागद्वेषः असौ महोक्तान्तः पृथिवीपतिर्वज्रनाभिमुनीश्वरः

मनुष्योंका राजा था) । § ११०) यस्य चेति—जिसके मित्र और शत्रु दोनों ही सकलभय-
शस्यगमन थे अर्थात् मित्र हाथियोंसे सहित प्रशंसनीय गमनसे युक्त थे और शत्रु समस्त २५
प्रकारके भयोंसे युक्त गमनसे सहित थे । तथा मित्र और शत्रु दोनों ही सुमहिता
(मित्रपक्षमें अत्यन्त प्रशस्त शत्रुपक्षमें फूलोंसे सहित) मुक्तापांसुलभवनपालि—(मित्र पक्षमें
मोतियोंकी धूलिसे धूसरित महलोंकी पंक्तिमें—शत्रुपक्षमें निर्जल-सुलभ वनपंक्तिमें) निवास
करते थे । § १११) कुन्देति—कुन्दकुसुमके समान सुन्दर यशसे सुशोभित, इन्द्रके समान
वैभवका धारक तथा उज्ज्वलगुणोंसे सहित वह चक्रवर्ती चिरकाल तक पृथिवीका शासन
करता रहा ॥६२॥ § ११२) तदन्विति—तदनन्तर किसी समय जिसका चित्त विषयोंकी ३०
इच्छासे चिरत हो गया था ऐसा राजा वज्रनाभि, वज्रसेन नामक पुत्रपर समस्त राज्यका
भार रख सोलह हजार राजाओं, एक हजार पुत्रों, आठ भाइयों तथा धनदेवसे परिवृत हो
अपने पिता वज्रसेन तीर्थंकरके निकट जैनी दीक्षा लेकर तीर्थंकरप्रकृतिके अंगभूत दर्शन-
विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका बहुत समय तक चिन्तन करता हुआ आश्चर्य करनेवाला
अत्यन्त कठिन तप करता रहा । § ११३) ततोऽसाविति—तदनन्तर प्रसिद्ध तपस्वी एवं ३५
पवित्र आचारके धारक राजा वज्रनाभि मुनिराजने आयुके अन्तमें शान्त चित्त होकर श्रीप्रभ

परित्यक्ताहारः प्रकटितसमाधिगुणनिधिः

सुखात्यक्त्वा प्राणानगमदहमिन्द्रत्वपदवीम् ॥६३॥

§ ११४) सर्वार्थसिद्धावहमिन्द्रदेवः स्वकान्तिदुग्धाम्बुधिमध्यमग्नः ।

राकासुधासूतिरिवाकलङ्कः पुञ्जीकृतो वा सुषमैकसारः ॥६४॥

५ § ११५) अथवा राकाकोकारिः सकलकलावल्लभतया सन्मार्गनिविष्टतया चानेन समानोऽपि सोऽयं दोषाकरोऽपि कलङ्कमलिनोऽपि सत्पतिरिति, सप्तविंशतितारापतिरपि शततारापतिरिति,

कालान्ते जीवितान्ते श्रीप्रभगिरेस्तन्नामपर्वतस्य शिखरे शृङ्गे अविशत प्रविष्टोऽभूत् । तत्र परित्यक्ताहारः कृतभोजनपरित्यागः प्रकटितः समाधिर्येन तथाभूतः प्रकटितसमाधिमरणः गुणनिधिगुणानां दयादाक्षिण्यादीनां निधिर्भाण्डारः स सुखात् अक्लेशेन प्राणान् असून् त्यक्त्वा अहमिन्द्रत्वपदवीम् अगमद् अलभत । षोडशस्वर्गा-
१० दुपरितना देवा अहमिन्द्राः कथ्यन्ते । शिखरिणी छन्दः ॥६३॥ ११४) सर्वार्थेति—सर्वार्थसिद्धौ तन्ना-
मानुत्तरविमाने सोऽहमिन्द्रदेवः स्वकान्तिरेव दुग्धाम्बुधिः क्षीरसागरस्तस्य मध्ये मग्नो ब्रुडितः, अकलङ्कः कलङ्करहितः राकासुधासूतिरिव पूर्णिमाचन्द्र इव, वा अथवा पुञ्जीकृतो राखीकृतः सुषमायाः परमशोभाया एकसारः प्रधानसार इव बभाविषि शेषः । उत्प्रेक्षा । उपजातिछन्दः ॥६४॥ ११५) अथवेति—पूर्वं चन्द्रेण सादृश्यं प्रदर्श्य पश्चात्ततो व्यतिरेकं प्रदर्शयति । अथवा पक्षान्तरे राकायाः कोकारिरिति राकाकोकारिः
१५ पूर्णिमाचन्द्रः सकलकलानां षोडशकलानां वल्लभतया स्वामित्वेन पक्षे सकलकलानां चतुःषष्टिकलानां वल्लभ-
तया स्वामित्वेन सतां नक्षत्राणां मार्गः सन्मार्गो गगनं तस्मिन् निविष्टतया स्थिरतया पक्षे संश्वासी मार्गश्चेति सन्मार्गः समीचीनमार्गस्तस्मिन् निविष्टतया च अनेनाहमिन्द्रेण समानोऽपि सदृशोऽपि इति प्रकारेण परस्परं विरुद्धार्थं विपरीतार्थं प्रकटयति इति हेतोरुपमानभावमुपमानतां नार्हति । इतीति कथं । तदेव दर्शयति । सोऽयं पूर्णिमाचन्द्रो दोषाणामवगुणानामाकरः खनिरिति दोषाकरस्तथाभूतोऽपि कलङ्केन पापेन मलिनो मलीमसः
२० कलङ्कमलिनस्तादृशः सन्नपि सतां सज्जनानां पतिरिति विरुद्धं पक्षे दोषाया निशायाः कर इति दोषाकरोऽपि कलङ्केन लाञ्छनेन मलिनोऽपि सतां नक्षत्राणां पतिरिति । सप्तविंशतिताराणां पतिरपि शतस्य ताराणां नक्षत्राणां पतिरिति विरुद्धं पक्षेऽश्विन्यादीनां सप्तविंशतिताराणां पतिः स्वाम्यपि शतभिषातारायाः पतिरिति । हि निश्चयेन भकरोऽपि जलजन्तुविशेषोऽपि परिशोभितश्चासौ मोनश्च पाठोनश्चेति परिशोभितमोन इति

पर्वतके शिखरपर प्रवेश किया । वहाँ गुणोंके भाण्डार स्वरूप उन मुनिराजने आचारका परि-
२५ त्याग कर समाधि धारण की और सुखसे प्राण छोड़कर अहमिन्द्रपदको प्राप्त किया ॥६३॥
§ ११४) सर्वार्थेति—जो अपनी कान्तिरूपी क्षीरसागरके मध्यमें निमग्न था ऐसा वह अह-
मिन्द्र सर्वार्थसिद्धिमें ऐसा जान पड़ता था मानो कलंकरहित पूर्णिमाका चन्द्रमा ही हो
अथवा इकट्ठा किया हुआ उत्कृष्ट शोभाका मुख्य सार ही हो ॥६४॥ § ११५) अथवेति—
अथवा पूर्णिमाका चन्द्रमा समस्त कलाओंका वल्लभ—सोलह कलाओंका स्वामी होनेसे
३० (पक्षमें चौसठ कलाओंका वल्लभ होनेसे) और सन्मार्ग—आकाशमें स्थित होनेसे (पक्षमें समीचीन मार्गमें स्थित होनेसे) इस अहमिन्द्रके यद्यपि समान था तथापि वह पूर्णिमाका चन्द्रमा परस्पर अनेक विरुद्ध अर्थोंको प्रकट करता है इसलिए अहमिन्द्रके उपमान भावको प्राप्त नहीं हो सकता । पूर्णचन्द्रके परस्पर विरुद्ध अर्थ इस प्रकार हैं—वह चन्द्रमा दोषा-
कर—दोषोंकी खान तथा कलंक—पापसे मलिन होकर भी सत्पति—सज्जनोंका पति बनता
३५ है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें चन्द्रमा दोषाकर—रात्रिको करनेवाला और कलंक—चिह्नसे मलिन होकर भी सत्पति—नक्षत्रोंका स्वामी है) चन्द्रमा सप्तविंशतितारापति—सत्ताईस नक्षत्रोंका पति होकर भी शततारापति—सौ नक्षत्रोंका पति है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें

हिमकरोऽपि परिशोभितमीन इति, मृगकृत्तिकावशेषोऽपि परिलसितसितांशुक इति, नक्षत्राधिपोऽपि राजेति, जडस्वभावोऽपि जडध्युत्पन्नोऽपि कलानिधिरिति, भश्रीकरोऽपि नभःश्रीकर इति, स पुनर्वसुवर्गशोभितोऽपि स्वातिसमृद्धिविराजितोऽपि पूर्वाशावशेन शुभोदयभूभृत्सेवां दिने दिने करोतीति परस्परविरुद्धार्थं प्रकटयतीति नोपमानभावमर्हति ।

विरुद्धं पक्षे हिमरूपाः कराः किरणा यस्य तथाभूतोऽपि परिशोभितो मीनो मीनराशिर्यस्य तथाभूतः अथवा ५
परिशोभिनी या तमी रात्रिस्तस्या इनः स्वामी । मृगकृत्तिका मृगचर्मैव अवशेषो यस्य तथाभूतोऽपि परि-
लसितं शोभितं सितांशुकं इवेतवस्त्रं यस्य तथाभूत इति विरुद्धं पक्षे मृगो मृगशिरा नक्षत्रं कृत्तिका कृत्तिकानक्षत्रं
मृगश्च कृत्तिका चेति मृगकृत्तिके ते अवशेषो यस्य तादृशोऽपि परिलसिताः परितो विभ्राजमानाः सिताः शुक्ला
अंशवः किरणा यस्य तथाभूत इति । क्षत्राणामधिपो न भवतीति नक्षत्राधिपस्तथाभूतोऽपि राजा नृपतिरिति
विरुद्धं पक्षे नक्षत्राणां ताराणामधिपो नक्षत्राधिपस्तादृशोऽपि सन् राजा चन्द्रः 'राजा प्रभी नृपे चन्द्रे यक्षे १०
क्षत्रियशक्रयोः' इति शब्दार्णवः । जडो मूर्खः स्वभावो यस्य तथाभूतोऽपि जडधीमूर्खस्तस्मादुत्पन्नोऽपि कलानां
चातुरीणां निधिः कलानिधिरिति विरुद्धं पक्षे जलयोरभेदात् जलस्य स्वभाव इव स्वभावो यस्य तथाभूतो
जलस्वभावः शीतलोऽपि जलधिः समुद्रस्तस्मादुत्पन्नोऽपि कलानां षोडशकलानां निधिरिति कलानिधिश्चन्द्रः ।
भानां नक्षत्राणां श्रियं करोतीति भश्रीकरस्तथाभूतोऽपि भश्रीकरो न भवतीति नभःश्रीकर इति विरुद्धं पक्षे १५
भश्रीकरोऽपि नक्षत्रश्रीकरोऽपि नभसो गगनस्य श्रियं करोतीति नभःश्रीकर इति । स पुनः पूर्णचन्द्रो १५
वसुवर्गशोभितो धनतमूहशोभितोऽपि स्वस्य धनस्य अतिसमृद्धिः प्रभूतवृद्धिस्तया विराजितोऽपि पूर्वा
प्राक्तनी या आशा तृष्णा तस्या वशेन निध्नतया शुभः प्रशस्त उदयो भाग्यं यस्येति शुभोदयः शुभोदयश्चासी
भूभृच्चेति राजा चेति शुभोदयभूभृत् तस्य सेवां शुश्रूषां दिने दिने प्रतिदिनं करोति इति विरुद्धं पक्षे
पुनर्वसुवर्गं पुनर्वसुनक्षत्राभ्यां शोभितोऽपि स्वातेः स्वातिनक्षत्रस्य अतिसमृद्ध्या प्रचुरशोभया विराजितोऽपि
पूर्वाशया पूर्वदिशया वशेन शुभश्चासी उदयभूभृच्चेति शुभोदयभूभृत् प्रशस्तोदयाचलस्तस्य सेवां दिने दिने २०

अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंका पति होकर भी शत—शतभिषा नक्षत्रका पति है) हि-
मकरोऽपि—मगर होकर भी शोभायमान मीन—मत्स्य है अथवा मकर राशिसे युक्त होकर भी
मीन राशिसे सहित है यह विरुद्ध बात है । (पक्षमें हिमकर—शीतल किरणोंवाला होकर भी
मीनराशिसे सुशोभित है अथवा शोभायमान तमी—रात्रिका इन स्वामी है) । मृग-कृत्तिका
विशेष—मृगचर्ममात्रसे युक्त होकर भी शोभायमान सफेद वस्त्रसे सहित है, यह विरुद्ध बात है २५
(पक्षमें मृगशिरा और कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त होकर भी शोभायमान सफेद किरणोंवाला है) ।
क्षत्रों-क्षत्रियोंका अधिपति न होकर भी राजा है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें नक्षत्रोंका अधि-
पति होकर भी राजा—चन्द्रमा है) जडस्वभाव—मूर्ख स्वभाववाला तथा जडधी—मूर्खसे
उत्पन्न होकर भी कलानिधि चातुराईयोंका निधि है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें जल स्वभाव—
जलके समान शीतल स्वभाववाला और जलधि—समुद्रसे उत्पन्न होकर भी सोलह कलाओं- ३०
का निधि है) । भश्रीकर—नक्षत्रोंकी शोभाको करनेवाला होकर भी नभश्रीकर—नक्षत्रोंकी
शोभाको करनेवाला नहीं है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें नक्षत्रोंकी शोभाको करनेवाला होकर
भी नभःश्रीकर—आकाशकी शोभाको करनेवाला है) । फिर वह चन्द्रमा वसुवर्गशोभि-
तोऽपि—धनके समूहसे शोभित तथा स्वातिसमृद्धिविराजित—धनकी अतिशय समृद्धिसे
विराजित होकर भी पहलेकी आशाके वशसे शुभ उदयसे युक्त-पुण्यशाली भूभृत्—राजाकी सेवा ३५
करता है यह विरुद्ध बात है (पक्षमें पुनर्वसु नक्षत्रोंसे शोभित तथा स्वातिनक्षत्रकी समृद्धिसे
विराजित होकर भी पूर्व दिशाके वशसे शुभोदयभूभृत्—उत्तम उदयाचलकी सेवा प्रतिदिन

§ ११६) सुमनोधर्मतया तयास्य समानोऽपि पञ्चशरः सुदृशामपि बाधां विदधाति, मार्ग-
णानां पञ्चतामपि सहते इति न दृष्टान्ततामनुभवितुमीष्टे । वसन्तस्तु सकलसुमनो गरिष्ठोऽपि जाति-
भ्रष्ट इति स्मरणार्होऽपि न भवति । इति कटकाञ्चिततया न तुलां भजति इति न चित्रमेतत् ।

§ ११७) तेऽप्यष्टौ भ्रातरस्तस्य धनदेवोऽप्यनल्पधीः ।

५ जातास्तत्सदृशा एव देवाः पुण्यानुभावतः ॥६५॥

§ ११८) स किलायमहमिन्द्रस्त्रयस्त्रिशत्पारावारपरिमितस्थितिर्हस्तमात्रोच्छ्रितदेहः स्वक्षेत्र
एव नवरत्नप्रभामनोहरे विहरमाणः संकल्पमात्रकृतसंनिधानैः कुसुमगन्धाक्षतादिभिर्जिनेन्द्रसपर्यां

- करोतीति । ११९) सुमनोधर्मतयेति—तया प्रसिद्धया सुमनसां पुष्पाणां धर्मो धनुर्यस्य सुमनोधर्मस्तस्य
भावस्तया पक्षे सुमनसां देवानां धर्मतया स्वभावतया पञ्चशरः कामोऽस्याहमिन्द्रस्य समानोऽपि सदृशोऽपि सुदृश-
१० मपि सम्यग्दृष्टोनामपि पक्षे सुलोचनानामपि बाधां पीडां विदधाति करोति, मार्गणानां गत्यादिचतुर्दशमार्ग-
णानामपि पञ्चतां विनाशमपि पक्षे मार्गणानां बाणानां पञ्चतामपि पञ्चसंख्यावत्त्वमपि सहते इति हेतोः
दृष्टान्ततामुपमाम् अनुभवितुं न ईष्टे न समर्थोऽस्ति । वसन्तस्तु वसन्तर्तुस्तु सकलसुमनोगरिष्ठोऽपि सकलसुमनो-
भिर्निखिलपुष्पैर्गरिष्ठो गरीयानपि पक्षे सकलसुमनःसु निखिलदेवेषु गरिष्ठोऽपि जात्या भ्रष्टो जातिभ्रष्टो
नीचजातियुक्तः पक्षे 'चमेली' इति प्रसिद्धपुष्परहितः 'न स्याज्जातिर्वसन्ते' इति कविसमासः इति स्मरणार्होऽपि
१५ स्मर्तुं योग्योऽपि न भवति । इतोत्थं कटकाञ्चिततया कर्कराशियुक्ततया तुलां तुलाराशि न भजति इति एतत्
न चित्रं नाश्चर्यं पक्षे कटकाञ्चिततया करबलयसुशोभिततया तुलामुपमां न भजति । श्लेषो व्यतिरेकश्च ।
§ ११७) तेऽप्यष्टौचिति—ते पूर्वोक्ता अष्टावपि भ्रातरो विजयो वैजयन्तो जयन्तोऽपराजितः सुबाहुर्महाबाहुः
पीठो महापीठश्चेति यावत् अनल्पधर्महामतिः धनदेवोऽपि पुण्यानुभावतः पुण्यप्रभावात् तत्सदृशा अहमिन्द्र-
सदृशा एव देवा जाताः समुत्पन्नाः ॥६५॥ § ११८) स किलेति—स किल पूर्वोक्तोऽहमिन्द्रः त्रयस्त्रिशत्पारावार-
२० परिमिता त्रयस्त्रिशत्सागरप्रमाणा स्थितिर्यस्य तथाभूतः हस्तमात्रोच्छ्रितोऽरतिमात्रोन्नतो देहो यस्य तादृशः,

- करता है) । § ११६) सुमनोधर्मतयेति—कामदेव सुमनोधर्मता—फूलोंके धनुषसे सहित होने
(पक्षमें देवोंके धर्मसे युक्त होने) के कारण यद्यपि अहमिन्द्रके समान है तथापि वह सुदृशां
—सम्यग्दृष्टि जीवोंको भी बाधा पहुँचाता है इसके विपरीत अहमिन्द्र सम्यग्दृष्टि जीवोंको
कभी बाधा नहीं पहुँचाता तथाका मदेव मार्गणाओंकी पंचता—मृत्युको सहन कर लेता है इसके
२५ विपरीत अहमिन्द्र मार्गणाओंकी पंचताको सहन नहीं करता इसलिए दृष्टान्तपनेको प्राप्त
करनेके योग्य नहीं है (पक्षमें कामदेव सुदृशां—स्त्रियोंको भी बाधा करता है तथा अपने
मार्गण—बाणोंकी पंच संख्याको सहन कर लेता है) । वसन्त ऋतु सकलसुमनोगरिष्ठ—
समस्त फूलोंसे श्रेष्ठ होनेपर भी जातिभ्रष्ट—जातिसे भ्रष्ट है—नीच जातिका है जब कि
अहमिन्द्र सकलसुमनोगरिष्ठ—समस्त देवोंमें श्रेष्ठ होकर भी जातिभ्रष्ट नहीं है इसलिए वह तो
३० स्मरण करनेके भी योग्य नहीं है (पक्षमें वसन्तऋतु जाती—चमेलीसे रहित है) यथार्थमें वह
अहमिन्द्र कटकाञ्चित—कर्कराशिसे युक्त होनेके कारण तुलां—तुला राशिको प्राप्त नहीं है यह
कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है (पक्षमें कटक—हाथके बलयसे सुशोभित होनेके कारण वह
अहमिन्द्र तुला—उपमाको प्राप्त नहीं होता यह आश्चर्यकी बात नहीं है) । § ११७)
तेऽप्यष्टौचिति—वे विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित सुबाहु महाबाहु पीठ और महापीठ
३५ नामके आठों भाई तथा महाबुद्धिमान् धनदेव भी पुण्यके प्रभावसे उस अहमिन्द्रके समान
ही देव हुए ॥६५॥ § ११८) स किलेति—वह अहमिन्द्र तेतीस सागरकी आयुवाला था, तीन
हाथ ऊँचे शरीरसे सहित था, नवरत्नोंकी प्रभासे मनोहर अपने क्षेत्रमें ही विहार करता था,

कुर्वाणः क्वचिदनाहूतमिलितैः स्वसमानवैभवैरहमिन्द्रैर्धर्मगोष्ठीषु संभाषमाणः, त्रिसहस्राधिकत्रिंशत्सहस्रवर्षातिक्रमे मानसं दिव्यमाहारमङ्गो कुर्वाणः पञ्चदशदिनाधिकषोडशमासावसाने प्रोच्छ्वासं प्रकटीकुर्वाणः सुखमासामास ।

इति श्रीमदहंदासकृतो पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे तृतीयस्तवकः ॥३॥

नवरत्नप्रभाभिर्नवरत्नकाङ्क्षिभिर्मनोहरे रमणीये स्वक्षेत्रे स्वकीयत्रिमानप्रदेश एव विहरमाणो विहारं कुर्वाणः ५
संकल्पमात्रेण कृतं संनिधानं येषां तैः संकल्पकालोपस्थितैरित्यर्थः कुसुमगन्धाक्षतादिभिः पुष्पचन्दनशालेयादिभिः
जिनेन्द्रसपर्यां जिनपूजां कुर्वाणो विदधानः क्वचित् कुत्रापि स्थाने अनाहूता मिलिता इत्यनाहूतमिलितास्तैरना-
कारितोपस्थितैः स्वसमानवैभवैः स्वसदृशैश्चर्यैः अहमिन्द्रैः सह धर्मगोष्ठीषु धर्मसभासु संभाषमाणो वार्तालापं
कुर्वन्, त्रिसहस्राधिकत्रिंशत्सहस्रवर्षातिक्रमे त्रयस्त्रिंशत्सहस्रवर्षव्यपगमे सति मानसं दिव्यं स्वर्ग्यम् आहारं
विष्वाणम् अङ्गो कुर्वाणः स्वीकुर्वन् पञ्चदशदिनाधिकषोडशमासावसाने त्रयस्त्रिंशत्सहस्रान्ते प्रोच्छ्वासं श्वासो- १०
च्छ्वासं प्रकटीकुर्वाणः सुखं यथा स्यात्तथा आसामास आस्ते स्म ।

इति श्रीमदहंदासकृतेः पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य वासन्तीसमाख्यायां संस्कृतव्याख्यायां

तृतीयः स्तवकः ॥३॥

संकल्प मात्रसे उपस्थित होनेवाले पुष्प गन्ध तथा अक्षत आदिसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता १५
था, कहीं बिना बुलाये मिले हुए अपने ही समान वैभवसे युक्त अहमिन्द्रोंके साथ धर्म-
गोष्ठियोंमें संभाषण करता था, तेतीस हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर मानसिक दिव्य आहार
करता था, और साढ़े सोलह माहके अन्तमें श्वासोच्छ्वास प्रकट करता था इस तरह वह
सुखसे निवास करता था ।

इस प्रकार श्रीमदहंदासकी कृति पुरुदेवचम्पू नामक प्रबन्धमें

तीसरा स्तवक समाप्त हुआ ॥३॥

२०

चतुर्थः स्तवकः

§ १) प्राज्यप्रभावप्रभवः प्रशस्तधर्मस्य पादानतदेवराजः ।

विध्वस्तमिथ्यात्वतमा जिनेश आद्योऽथवान्ये ददतां शुभानि ॥१॥

§ २) इह खलु जम्बूद्वीपसंभावितभारतवर्षविशेषकायमाणराजतशिखरि दक्षिणभागे तुलित-
स्वर्गकखण्डे मध्यखण्डे कालसन्धी मुखे मनोहरां गां, भुजे ज्यां, हृदि क्षमां, भूदेव्या विरहमसहमान
५ इव बिभ्राणः, कीर्तिकौमविलसितानां दिग्ज्जनानां घुसृणरसपरिक्लृप्तव्यात्युक्षिकासंदेहदायकेन

अथ चतुर्थस्तवकस्यादौ मङ्गलार्थं जिनस्तुतिमाह—

§ १) प्राज्येति—आदौ भव आद्यः प्रथमो वृषभः, अथवा अन्येऽजितनाथादयस्त्रयोविंशतिसंख्याकाः
जिनेशः जिनातामीशः जिनेशः पक्षे ईश इति शकारान्तः शब्दः । शुभानि श्रेयांसि ददतां ददातु 'दद दाने'
इत्यस्य लोटलकारस्य प्रथमपुरुषैकवचने रूपं पक्षे ददतां ददतु 'दुदाञ् दाने' इत्यस्यात्मनेपदे प्रथमपुरुष-
१० बहुवचने रूपम् । अत्र वचनश्लेषेण विशेषणानामेकबहुवचनयोर्व्याख्यानं कार्यम् । तत्राद्यो जिनेशः प्रशस्तधर्मस्य
श्रेष्ठधर्मस्य प्राज्यप्रभावप्रभवः प्राज्यप्रभावस्य प्रकृष्टमाहात्म्यस्य प्रभवः कारणं, अन्ये जिनेशः प्राज्यप्रभावेण
प्रभवः स्वामिनः । पादानतदेवराजः देवानां राजा देवराजः पादयोरानतो देवराजो यस्य स पादानतदेवराजः
चरणानतपुरन्दरः पक्षे पादयोरानतो देवराज् येषां ते पादानतदेवराजः । विध्वस्तमिथ्यात्वतमाः विध्वस्तं
१५ मिथ्यात्वतमं यैस्ते, अथवाकारान्तोऽपि तमशब्दोऽस्ति 'ध्वान्तं संतमसं तमम्' इति धनञ्जयः, तेन विध्वस्तं
मिथ्यात्वतमं मिथ्यात्वतिमिरं यैस्ते मिथ्यात्वतमाः । वचनश्लेषः । इन्द्रवज्राच्छन्दः ॥१॥ § २) इहेति—इह
खलु मर्त्यलोके जम्बूद्वीपे प्रथमद्वीपे संभावितस्य शोभितस्य भारतवर्षस्य भरतक्षेत्रस्य विशेषकायमाणस्तिलका-
यमानो यो राजतशिखरी विजयार्धपर्वतस्तस्य दक्षिणभागेऽवाच्यां तुलितं स्वर्गकखण्डं येन तस्मिन् उपमित-
त्रिदिवैकशकले मध्यमखण्डे मध्यस्थितार्यखण्डे कालसन्धी भोगभूमिकर्मभूमिकालयोः सन्धिर्मेलनं तस्मिन् मुखे
२० वदने मनोहरां चेतःप्रियां गां वाणीं पक्षे पृथिवीं, भुजे बाहौ ज्यां मौर्वीं पक्षे भूमिं, हृदि हृदये क्षमां क्षान्तिं पक्षे
परित्रीं भूदेव्या महोदेव्या विरहं वियोगम् असहमानः सोढुमशक्नुवन्निव बिभ्राणो दधानः, कीर्तिरेव क्षौमं

§ १) प्राज्येति—जो श्रेष्ठधर्मके उत्कृष्ट प्रभावके कारण थे, जिनके चरणोंमें देवराज
नम्रीभूत था और जिन्होंने मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको नष्ट कर दिया था ऐसे प्रथम जिनेन्द्र
वृषभनाथ भगवान्, अथवा जो श्रेष्ठधर्म सम्बन्धी उत्कृष्ट प्रभावके प्रभु—स्वामी थे, जिनके
२५ चरणोंमें देवराज—इन्द्र नम्रीभूत रहता था और जिन्होंने तीव्र मिथ्यात्व अथवा मिथ्यात्व
रूपी तिमिरको नष्ट कर दिया था ऐसे अन्य तेईस जिनेन्द्र कल्याण प्रदान करें ॥१॥ § २)
इहेति—निश्चयसे इस मध्यम लोकमें जम्बूद्वीपमें सुशोभित भरतक्षेत्रके तिलकके समान
आचरण करनेवाले विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण दिशामें स्वर्गके एक खण्डकी तुलना करनेवाले
मध्यमआर्यखण्डमें भोगभूमि और कर्मभूमिके कालके मिलापके समय नाभिनामका राजा
३० हुआ । वह नाभिराजा मुखमें मनोहर वाणीको, भुजामें प्रत्यंचाको और हृदयमें क्षमाको
(पक्षमें गो, ज्या, और क्षमा नाम धारक पृथिवीकी) धारण कर रहा था उससे ऐसा जान
पड़ता था मानो वह पृथिवीदेवीके विरहको सहन नहीं कर सकता । कीर्तिरूपी रेशमी वस्त्रसे

प्रतापेन विभ्राजमानः, कुलकृतामन्त्यः, निखिलभाविमहोपालानां नाभिर्नाभिनामधेयो राजा बभूव ।

§ ३) तस्यासीन्मरुदेवीति देवी देवीव सा शची ।

चरन्ती हेमवल्लीव साकारेवैन्दवी कला ॥२॥

§ ४) सा खलु बिम्बोष्ठी, चन्द्रलेखेव गगनतलस्य, वसन्तलक्ष्मीरिव सहकारवनस्य, चन्द्रिकेव चन्द्रस्य, प्रभेव प्रभाकरस्य, मदलेखेव दिग्गजस्य, कल्पवल्लीव कल्पपादपस्य, कुसुम- ५
श्रीरिव वसन्तस्य, कमलिनीव सरोवरस्य, तारापङ्क्तिरिव प्रदोषसमयस्य, हंसमालेव मानस-
सरोवरस्य, चन्दनवनराजिरिव मलयाचलस्य, फणामणिपरम्परेव फणिपतेः, त्रिभुवनविस्मयजननी,
जननी वनिताविभ्रमाणां, खनी गुणरत्नानां, वनी कान्तिलतानां, धुनी शृङ्गाररसस्य, महीपाल-
भूषणं बभूव ।

दुकूलं तेन विलसितानां शोभितानां दिग्गङ्गानां काण्ठाकामिनीनां घुसृणरसेन काश्मीरद्रवेण परिवृतृषा कृता १०
या व्यात्युक्षिका रङ्गकेलिस्तस्याः सन्देहस्य दायकस्तेन तथाभूतेन प्रतापेन विभ्राजमानो देदीप्यमानः, कुलकृतां
कुलकराणां मनूनामिति यावत् अन्त्यश्चरमः, निखिलाश्च ते भाविमहोपालाश्चेति निखिलभाविमहोपालास्तेषां
सकलभविष्यद्भूमिपालानां नाभिः प्रवर्तकः नाभिनामधेयो नाभिनामा राजा बभूव । § ३) तस्येति—तस्य
नाभेः मरुदेवीति प्रसिद्धा मरुदेवनाम्नी सा देवी राज्ञी आसीद् या शचीदेवीव इन्द्राणीव, चरन्ती चलन्ती हेम-
वल्लीव स्वर्णलतेव साकारा सशरीरा ऐन्दवी चान्द्रमसी कलेव बभूव । मालोपमा ॥२॥ § ४) सेति—सा १५
खलु बिम्बोष्ठी रक्तदशनच्छदा मरुदेवी, गगनतलस्य नभस्तलस्य चन्द्रलेखेव शशिकलेव, सहकारवनस्य
रसालोपवनस्य वसन्तलक्ष्मीरिव मधुश्रीरिव, चन्द्रस्य शशिनः चन्द्रिकेव कौमुदीव, प्रभाकरस्य सूर्यस्य प्रभेव
दीप्तिरिव, दिग्गजस्य दिग्धारणस्य मदलेखेव दानरेखेव, कल्पपादपस्य कल्पतरोः कल्पवल्लीव कल्पलतेव,
वसन्तस्य सुरभेः कुसुमश्रीः पुष्पलक्ष्मीरिव, सरोवरस्य कासारस्य कमलिनीव पद्मिनीव, प्रदोषसमयस्य रजनी-
मुखस्य तारापङ्क्तिरिव नक्षत्रसततिरिव, मानससरोवरस्य हंसमालेव मरालपङ्क्तिरिव, मलयाचलस्य मलय- २०
गिरेः चन्दनवनराजिरिव, मलयजवनश्रेणिरिव, फणिपतेः शेषनागस्य फणामणिपरम्परेव, त्रिभुवनस्य लोकत्रयस्य
विस्मयजननी आश्चर्योत्पादिका, वनिताविभ्रमाणां स्त्रीविलासानां जननी समुत्पादिका, गुणरत्नानां गुणमणीनां
खनी आकरभूता, कान्तिलतानां दीप्तिवल्लीनां वनी, शृङ्गाररसस्य धुनी नदी, महीपालस्य नाभिराजस्य

सुशोभित दिशारूपी स्त्रियोंपर केशरके रंगसे की हुई फागके सन्देहको देनेवाले प्रतापसे २५
वह शोभायमान था, अन्तिम कुलकर था तथा आगे होनेवाले समस्त राजाओंका आदि-
प्रवर्तक था । § ३) तस्येति—उस राजा नाभिकी मरुदेवी नामकी राज्ञी थी जो इन्द्रकी
इन्द्राणीके समान, चलती फिरती स्वर्णलताके समान और आकार सहित चन्द्रमाकी कलाके
समान जान पड़ती थी ॥२॥ § ४) सेति—बिम्बके समान लाल ओठोंसे सुशोभित वह
मरुदेवी, गगनतलकी चन्द्रकलाके समान, आस्रवनकी वसन्त लक्ष्मीके समान, चन्द्रमाकी
चाँदनीके समान, सूर्यकी प्रभाके समान, दिग्गजकी मदरेखाके समान, कल्पवृक्षकी कल्प- ३०
लताके समान, मधुमासकी पुष्पलक्ष्मीके समान, सरोवरकी कमलिनीके समान, सायंकाल-
की तारापङ्क्तिके समान, मानसरोवरकी हंसमालाके समान, मलयगिरिकी चन्दनवनकी
पङ्क्तिके समान, और शेषनागकी फणाओंपर स्थित मणियोंकी परम्पराके समान राजा
नाभिराजकी भूषण थी । वह मरुदेवी तीनों लोकोंको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली थी,
स्त्रियोंके हावभावोंको उत्पन्न करनेवाली थी, गुणरूपी रत्नोंकी खान थी, कान्तिरूपी ३५

§ ५) भानि भ्राजितकान्तिसारलहरीं रात्रिदिवं सेवितुं

प्रोद्युक्तानि विहाय तानि खतलं तस्याः कुरङ्गीदृशः ।

पादाम्भोजयुगे समाविरभवन्नूनं नखानिच्छलात्

तस्मात्खलं च नभःस्थलं समभवद्रूढयैव तारापथम् ॥३॥

५ § ६) स्वर्णस्थितिं प्राप्तमपि प्रभूतां सरोजमस्याः पदवारिजस्य ।

वसुप्रपञ्चानपहृत्य राज्ञो भयाद्वनान्ते वसति विधत्ते ॥४॥

§ ७) मनोजतूणीयुगलं मृगाक्ष्या जङ्घायुगं नूनमिति प्रतीमः ।

यतस्तदग्रे पदकैतवेन तद्बाणभूतं जलजं चकास्ति ॥५॥

- १० भूषणं बभूव । मालोपमा रूपकं च । § ५) भानीति—रात्रिदिवमहर्निशम्, भ्राजिता शोभिता या कान्ति-
सारलहरी श्रेष्ठकान्तिसंततिस्तां सेवितुमाराधयितुं प्रोद्युक्तानि तत्पराणि तानि प्रसिद्धानि भानि नक्षत्राणि
खतलं नभस्तलं विहाय त्यक्त्वा छलाद् व्याजेन तस्याः कुरङ्गीदृशो मृगाक्ष्याः पादाम्भोजयुगे चरणकमलयुगले
नखानि नखराणि समभवन् अभूवन् नूनमित्युत्प्रेक्षायाम् । तस्मात्कारणात् खं गगनं नभानां नक्षत्राणां स्थलमिति
नभस्थलं पक्षे नभःस्थलं गगनस्थलं सत् रूढयैव प्रसिद्धयैव तारापथं नक्षत्रपथम् अभवत् । नभस्थलमित्यत्र
'खर्परे शरि विसर्गलोपो वा वक्तव्यः' इति वार्तिकेन वैकल्पिको विसर्गलोपो बोध्यः । उत्प्रेक्षालंकारः, शार्दूल-
विक्रीडितछन्दः ॥३॥ § ६) स्वर्णेति—सरोजं कमलं प्रभूतां प्रचुरां स्वर्णस्य काञ्चनस्य स्थितिस्तां प्रभूत-
सुवर्णसत्तामित्यर्थः, प्राप्तमपि अस्या मरुदेव्याः पदवारिजस्य चरणकमलस्य वसुप्रपञ्चान् धनसमूहान् 'वसु तोये
धने मणौ' इति वैजयन्ती । अपहृत्य चोरयित्वा राज्ञो नृपतेर्भयात् त्रासात् वनान्ते वनमध्ये वसति विधत्ते कुरुते ।
यथा कश्चित्स्वभावेन संपन्नोऽपि कस्यचिद्धनं चोरयित्वा राजबन्धनभयाद् वनेऽन्तर्हितो निवसति तद्वदिति भावः ।
प्रकृतपक्षे सरोजं कमलं प्रभूतामधिकां सुष्ठु अर्णः स्वर्णः सुजलं तस्मिन् स्थितिस्तां प्राप्तमपि अस्या मरुदेव्याः
२० पदवारिजस्य वसुप्रपञ्चान् किरणसमूहान् 'वसुर्मयूखाग्निधनाधिपेषु' इति विश्वः । अपहृत्य राजश्चन्द्रमसो
भयात् वनान्ते जलमध्ये 'वार्वारिकं, पयोऽम्भोऽम्बुः पायोऽर्णः सलिलं जलम्', 'शरं वनं कुशं नीरं तोयं जीवन-
मन्विषम्' इति धनञ्जयः । वसति विधत्ते कुरुते । श्लेषः । उपजातिवृत्तम् ॥४॥ § ७) मनोजेति—नूनं निश्चयेन
मृगाक्ष्या मरुदेव्या जङ्घायुगं प्रसूतायुगलं मनोजतूणीयुगलं कामेषुधियुगम् अस्ति, इति प्रतीमः प्रतीति कुर्महे
यतो यस्मात्कारणात् तदग्रे जङ्घायुगाग्रे पदकैतवेन चरणच्छलेन तस्य मनोजस्य बाणभूतं शरभूतं जलजं कमलं
२५ चकास्ति शोभते 'अरविन्दमशोकं च चूतं च तवमल्लिका । नीलोत्पलं च पञ्चैत पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः ।'

लताओंकी वाटिका थी और शृंगाररसकी नदी थी । § ५) भानीति—रातदिन देदीप्यमान
रहनेवाली श्रेष्ठ कान्तिकी परम्पराको प्राप्त करनेके लिए उद्यत हुए नक्षत्र आकाशको छोड़कर
उस मृगनयनीके चरणकमलयुगलमें छलसे नाखून बन गये थे ऐसा जान पड़ता है ।
इसीलिए आकाश नभस्थल हो गया (पक्षमें ताराओंका स्थल नहीं रहा) रूढ़िसे ही तारापथ

- ३० कहा जाता है ॥३॥ § ६) स्वर्णेति—कमल यद्यपि बहुत भारी स्वर्णकी स्थितिको प्राप्त था
तथापि मरुदेवीके पद कमलके धन समूहका उसने अपहरण कर लिया इसीलिए वह राजाके
भयसे वनके मध्यमें निवास करता है । (पक्षमें कमल बहुत भारी स्वर्णस्थिति—सुन्दरजलमें
स्थितिको प्राप्त था तो भी उसने मरुदेवीके चरणकमलोंकी किरणोंके समूहको हर लिया इस-
लिए वह चन्द्रमाके भयसे पानीके मध्यमें निवास करता है ।) ॥४॥ § ७) मनोजेति—मृगनयनी
३५ मरुदेवीकी जंघाओंका युगल निश्चित ही कामदेवके तरकशोंका युगल था ऐसा हम समझते
हैं क्योंकि उसके अग्रभागमें चरणोंके छलसे कामदेवका बाणभूत कमल सुशोभित हो रहा है

§ ८) तद्वृत्तान्ति स्वकरे चिकीर्षुर्मत्तद्विपोऽसौ यतनं विधत्ते ।

तत्कान्तिचौर्याय सदा प्रवृत्तां रम्भां विमथ्नाति कुतोऽन्यथासौ ॥६॥

§ ९) कटीमण्डलमेतस्याः काञ्चीसालपरिष्कृतम् ।

मन्ये दुर्गमनङ्गस्य जगद्गुणरकारिणः ॥७॥

§ १०) स्वयमम्बरमपि मध्यं तस्याः सूक्ष्माम्बरोपेतम् ।

तदपि च नेत्राविषयं बभूव चित्रं सुमध्यायाः ॥८॥

§ ११) परिवेष्ट्य मध्ययाष्टिं नाभिविलान्तं कुरङ्गलोलक्ष्याः ।

मणिखचितसर्वदेहश्चित्रं काञ्चीप्रदाकुरधिशिष्ये ॥९॥

§ १२) रोमश्रेणी कुसुमधनुषा यौवनारामवृद्धये

नाभोवापी निकटघटितं^१ किं घटीयन्त्रदारुः ।

५

१०

इत्यमरवचनाज्जलस्य मनोजवाणत्वं प्रसिद्धम् । हेतुप्रेक्षा । उपजातिछन्दः ॥५॥ § ८) तद्विवृति—तस्या मरुदेव्या ऊर्वोः सक्थनोः कान्तिस्तां तद्वृत्तान्ति स्वकरे स्वकीयशुण्डादण्डे चिकीर्षुः कर्तुमिच्छुः असौ प्रसिद्धो मत्तद्विपो मत्तगजराजो यतनं प्रयासं विधत्ते कुरुते । अन्यथा असौ मत्तद्विपः तत्कान्तिचौर्याय तद्वृत्तान्तिपहरणाय प्रवृत्तां रम्भां कदलीं सदा शश्वत् कुतः कस्माद्धेतोः विमथ्नाति हिंसति । रम्भासदृशं तद्वृत्तान्तिमिति भावः । हेतुप्रेक्षा । उपजाति छन्दः ॥६॥ § ९) कटीति—काञ्चीसालपरिष्कृतं रशनाप्राकारवेष्टितम् एतस्या मरुदेव्याः १५ कटीमण्डलम् अवलम्बनप्रदेशः जगद्गुणरकारिणो जगद्विजयकारिणः अनङ्गस्य मदनस्य दुर्गं 'किला' इति प्रसिद्धं वर्तते इति मन्ये जाने ॥७॥ § १०) स्वयमिति—सुमध्यायाः शोभनावलम्बनायाः तस्या मरुदेव्या मध्यं स्वयम् अम्बरमपि वस्त्रमपि सूक्ष्माम्बरोपेतं सूक्ष्मवस्त्रसहितं तदपि च तथाभूतमपि नेत्रस्य वस्त्रस्य अविषयमगोचरं बभूव इति चित्रमद्भुतम् । यत् स्वयं वस्त्ररूपं सूक्ष्मवस्त्रसहितं च तद् वस्त्ररहितं कथं भवेदिति भावः । परिहारपक्षे तस्या मध्यं स्वयं स्वतः अम्बरमपि गगनमिव शून्यमपि कृशतरमित्यर्थः सूक्ष्माम्बरोपेतं सूक्ष्मवस्त्र- २० परिहितं तदपि च नेत्राविषयं नयनागोचरं बभूव ॥ विरोधाभासः । आर्यावृत्तम् ॥८॥ § ११) परिवेष्टयेति—मणिभिः खचितः सर्वदेहो यस्य तथाभूतः काञ्चीप्रदाकुरः मेखलासर्पः कुरङ्गस्येव लोले अक्षिणी यस्यास्तस्या हरिणचञ्चललोचनाः या मरुदेव्या इति यावत् मध्ययाष्टिं कटीं परिवेष्ट्य परीत्य नाभिरिव विलं विवरं तस्यान्त-स्तम् अधिशिष्ये अधिशोते स्म इति चित्रम् । अन्यसर्पस्य फणामात्रं रत्नखचितं भवति काञ्चीसर्पस्य तु सर्वदेहो रत्नखचितो बभूवेति चित्रम् । रूपकालंकारः । आर्याछन्दः ॥९॥ § १२) रोमेति—तस्याः, रोमश्रेणी २५ रोमराजिः कुसुमधनुषा कामदेवेन यौवनारामवृद्धये तारुण्योपवनवर्धनाय नाभोवाप्यानिकटे घटितं स्थापितं

॥५॥ § ८) तद्विवृति—वह मदनमत्त हाथी मरुदेवीकी जाँघोंकी कान्तिको अपनी सूँड़में लाने-की इच्छा करता हुआ प्रयास करता है यदि ऐसा न होता तो वह जाँघोंकी कान्तिकी चोरी-के लिए प्रवृत्त कदलीको सदा क्यों नष्ट करता ? ॥६॥ § ९) कटीति—मेखलारूपी प्राकारसे घिरा हुआ इसका मध्यभाग जगद्विजयी कामदेवका गढ़ था ऐसा मैं मानता हूँ ॥७॥ § १०) ३० स्वयमिति—सुन्दर कमरवाली मरुदेवीका मध्यभाग यद्यपि स्वयं अम्बर—वस्त्ररूप था (पक्ष-में आकाशके समान शून्यरूप था) और सूक्ष्म अम्बर—महीन वस्त्रसे सहित था तथापि वह नेत्र—वस्त्रका विषय नहीं था (पक्षमें नयनगोचर नहीं था) यह आश्चर्यकी बात थी ॥८॥ § ११)) परिवेष्टयेति—आश्चर्य है कि जिसका सर्व शरीर मणियोंसे खचित था ऐसा मेखलारूपी सर्प, मृगके समान चंचल नेत्रोंवाली मरुदेवीके मध्यभागको घेरकर नाभिरूपी ३५ बिलके पास सो रहा था ॥९॥ § १२) रोमेति—मरुदेवीकी रोमराजि ऐसी जान पड़ती थी

१. कुसुमधनुषा (?) क० । २. घटिता क० ।

तस्याधस्तात् त्रिवलिकपटात्कल्पितं तद्विरेजे
सोपानानां त्रितयमतनोः पादविन्यासहेतोः ॥१०॥

§ १३) हस्तोज्ज्वलोऽसौ नखशीतरश्मि-

स्तस्यास्तुलां नाञ्चति युक्तमेतत् ।

तथापि चित्राधिककान्तिशोभी

स्वातिप्रकाशं च चकार चित्रम् ॥११॥

§ १४) तस्याः कुचौ मारमदेभकुम्भौ ध्रुवं तयोर्यत्परिमौक्तिकश्रीः ।

रोमावलीवल्लिमिषेण रेजे शुण्डाप्रकाण्डश्च चिरादधस्तात् ॥१२॥

- १० किं घटीयन्त्रस्य दाह काष्ठविशेषः । तस्य घटीयन्त्रदारुणः अधस्तात् नीचैः त्रिवलिकपटात् रेखात्रितयव्याजात्
अतनोः कामस्य पादविन्यासहेतोश्चरणन्यासनिमित्तात् कल्पितं रचितं तत् प्रसिद्धं सोपानानां निश्चेणीनां त्रितयं
त्रयं विरेजे । रूपकोत्प्रेक्षे । मन्दाकान्ता छन्दः ॥१०॥ § १३) हस्तेति—तस्या मरुदेव्या हस्तेन हस्तनक्षत्रे-
णोज्ज्वलः शोभमानः असौ नखशीतरश्मिर्नखरचन्द्रः तुलां तुलाराशि नाञ्चति न प्राप्नोति, एतद् युक्तमुचितम्
पक्षे हस्ते करे उज्ज्वलः शोभमानो हस्तोज्ज्वलः नखः शीतरश्मिरिव नखशीतरश्मिः नखचन्द्रस्तुलामुपमां
नाञ्चति न लभते सौन्दर्यातिशयादिति यावत् एतत् युक्तम् । तथापि चित्राया चित्रानक्षत्रस्याधिककान्त्या
१५ शोभत इत्येवंशीलः चित्राधिककान्तिशोभी सन्नपि स्वातिप्रकाशं स्वातेः स्वातिनक्षत्रस्य प्रकाशस्तं चकारेति
चित्रमाश्चर्यम् चन्द्रस्य चित्रानक्षत्रगतत्वे स्वातिनक्षत्रप्रकाशोऽसंगत इति भावः । पक्षे चित्राद्भुता याधिक-
कान्तिस्तया शोभत इत्येवंशीलोऽपि सन् स्वस्यात्मनोऽतिप्रकाशस्तं चकार । श्लेषविरोधाभासौ । उपजाति-
वृत्तम् ॥११॥ § १४) तस्या इति—ध्रुवमित्युत्प्रेक्षायाम् । तस्या मरुदेव्याः कुचौ स्तनौ मारमदेभस्य मदन-
मत्तमत्तङ्गजस्य कुम्भौ कटौ आस्तामिति शेषः । यत् यस्मात्कारणात् तयोः कुचयोः परिमौक्तिकश्रीः परितः
२० मुक्ताफलश्रीः आसीत् । रोमावलीवल्लिमिषेण रोमराजिलताव्याजेन अधस्तात् कुचयोरधः शुण्डाप्रकाण्डश्च
श्रेष्ठशुण्डादण्डश्च रेजे शुशुभे । स्तनयोरुपरि मौक्तिकहारश्रीः गजगण्डयोश्च मुक्ताफलश्रीरासीदिति भावः ।

- मानो कामदेवके द्वारा यौवनरूपी उद्यानकी वृद्धिके लिए नाभी रूपी नायिकाके पास लगाये
हुए घटीयन्त्र—रेंहटकी क्या लकड़ी ही थी ? और उसके नीचे त्रिवलिके कपटसे कामदेवके
पैर रखनेके लिए निर्मित तीन सीढ़ियाँ ही क्या थीं ? ॥१०॥ § १३) हस्तेति—हस्त नक्षत्रपर
२५ देदीप्यमान मरुदेवीका नखरूपी चन्द्रमा तुला राशिको प्राप्त नहीं था यह यद्यपि उचित था
तथापि चित्रा नक्षत्रकी अधिक कान्तिसे सुशोभित होता हुआ भी स्वाति नक्षत्रके प्रकाशको
करता था यह आश्चर्यकी बात थी । (पक्षमें हाथमें शोभा देनेवाला मरुदेवीका चन्द्रतुल्य
नख तुला—उपमाको प्राप्त नहीं होता था यह यद्यपि उचित था तथापि नाना प्रकारकी अधिक
कान्तिसे सुशोभित होता हुआ वह अपने अत्यधिक प्रकाशको करता था ।) ॥११॥ § १४)
३० तस्या इति—मरुदेवीके स्तन निश्चित ही कामदेव रूपी मदनोन्मत्त हाथीके गण्डस्थल थे
क्योंकि उनपर सब ओरसे मोतियोंकी शोभा विद्यमान थी (स्तनोंपर मोतियोंका हार
पड़ा हुआ था और हाथीके गण्डस्थलमें गजमोती विद्यमान थे) और उसके नीचे रोमराजि
रूपी लताके बहाने उस कामदेव रूपी हाथीकी श्रेष्ठ सूँड़ सुशोभित हो रही थी ॥१२॥

§ १५) चिरमुपगतामेतां त्यक्तुं नभोगसरोगतां

कुवलयदृशस्त्वासीदब्जद्वयं नयनाननम् ।

अहमपि भवाम्यस्याः कण्ठस्तथाब्जसमाह्वय

इति किल दरस्तस्याः कण्ठात्मतां समगच्छत ॥१३॥

§ १६) वचनाधरो मृगाक्ष्या मधुरो तत्राद्यसंगतो वर्णः ।

शुकलाल्यश्चरमगतः किशुकलाल्यस्त्वयान्भेदः ॥१४॥

§ १७) नासाकैतवदोर्ध्वशंकलितस्तम्भे कुरङ्गीदृशो

भ्रूवल्लीद्वयरज्जुबद्धशिखरे द्राङ्नाट्यजीविस्मरः ।

उत्प्रेक्षा । उपजातिः ॥१२॥ § १५) चिरमिति—अब्जद्वयम्—अब्जं च अब्जश्चेत्यब्जो तयोर्द्वयं जलजद्वयं कमलं चन्द्रश्चेत्यर्थः, चिरं चिरकालेन उपगतां प्राप्ताम् एतां प्रसिद्धां नभोगसरोगतां न विद्यते भोगो यस्य स नभोगः, रोगेण सहितमिति सरोगं, नभोगश्च सरोगं चेति नभोगसरोगे तयोर्भावो नभोगसरोगता तां भोगराहित्यं रोगसाहित्यं च पक्षे नभसि गच्छतीति नभोगश्चन्द्रः सरसि गच्छतीति सरोगं कमलं तयोर्भावस्तां नभोगामितां सरोगामितां च त्यक्तुं हातुं कुवलयदृश उत्पलाक्ष्या मरुदेव्या नयनाननं नयनं चाननं चेति नयनाननं प्राप्यङ्गत्वादेकवद्भावः आसीत् । अब्जसमाह्वयः अब्जमिति समाह्वयं नाम यस्य तथाभूतोऽहमपि अस्या मरुदेव्याः कण्ठो ग्रीवा भवामि, इति किल विचार्य दरः कम्बुः तस्या मरुदेव्याः कण्ठात्मतां कण्ठस्वरूपतां समगच्छत् प्राप्त । तस्या नयनं कमलसदृशं आननं चन्द्रतुल्यं कण्ठश्च शङ्खसंनिभो बभूवेति भावः । 'अब्जो घन्वन्तरो चन्द्रे निचुले षलीबमम्बुजे । अस्त्री कम्बुनि—' इति विश्वलोचनः । उत्प्रेक्षा । हरिणीच्छन्दः ॥१३॥ § १६) वचनेति—मृगाक्ष्या मरुदेव्याः वचनं चाधरश्चेति वचनाधरो वचोदशनच्छदो मधुरो मधुररसयुक्तावास्ताम् । किं तु तत्र द्वयोः आद्ये संगतः आद्यसंगतो वचनसंगत इत्यर्थः वर्णोऽक्षरसमूहः शुकलाल्यः शुकवत्लाल्यः शुकवचनमिव लालनीयः चरमगतोऽधरगतो वर्णो रङ्गः किशुकलाल्यः लालस्य भावो लाल्यं किशुकमिव पलाशपुष्पमिव लाल्यं रवतत्वं यस्य तथाभूत इयान् एतावान् भेदो विशेषः । व्यतिरेकः । भार्याछन्दः ॥१४॥ § १७) नासेति—नाट्येन जीवतीत्येवंशीलो नाट्यजीवी स चासी स्मरश्चेति नाट्यजीविस्मरः नर्तकवृत्ति-युक्तो मदनः भ्रूवल्लीद्वयं भ्रुकुटोलतायुगलमेव रज्जु रश्मी ताम्बां बद्धं शिखरमग्रभागो यस्य तथाभूते कुरङ्गीदृशो हरिणाक्ष्याः नासाया घ्राणस्य कैतवं कपटं यस्य तथाभूतो यो दोर्ध्वशं उन्नतवेणुस्तेन कलितः

§ १५) चिरमिति—अब्जके तीन अर्थ हैं चन्द्रमा, कमल और शंख । इन तीनमें चन्द्रमा और कमल चिरकालसे प्राप्त हुई नभोगता—भोगराहित्य (पक्षमें आकाशगामित्व) सरोगता—रोगसाहित्य (पक्षमें सरोगामित्व) को छोड़नेके लिए कुवलयके समान नेत्रोंवाली मरुदेवीके नेत्र और मुख बन गये अर्थात् कमल नेत्र बन गया और चन्द्रमा मुख बन गया । अब शंख विचार करता है कि मैं भी अब्ज नाम वाला हूँ अतः मैं भी इसका कण्ठ हुआ जाता हूँ यह विचार कर ही मानो शंख उसकी कण्ठरूपताको प्राप्त हो गया था ॥१३॥ § १६) वचनेति—मृगनयनी मरुदेवीके वचन और ओठ दोनों ही मधुर थे । उनमें वचनसे संगत वर्ण—अक्षर समूह शुकलाल्य था अर्थात् शुकके वचनके समान लालनीय था और ओष्ठ संगत वर्ण—रंग, पलाश पुष्पके समान लालिमासे युक्त था इतना ही दोनोंमें भेद था ॥१४॥ § १७) नासेति—नाटक द्वारा आजीविका करनेवाले कामदेवने, भ्रुकुटी लताओंके युगलरूपी रस्सियोंसे जिसका अग्रभाग बँधा हुआ था ऐसे उस मृगनयनी

राजस्तद्रुचिराननस्य पुरतस्तत्ताण्डवाडम्बरं

चक्रे चित्रतरं समस्तजनताचेतोहरं सादरम् ॥१५॥

- § १८) अस्याः किल शुभदलसत्कान्तिविराजितं राजहंससंतोषनिदानमब्जाभिख्याञ्चितं सकलमनोहरामोदकारणं सुमनःश्लाघ्यं वदनं नलिनं च समानं तथापि प्रथमं सकचं विकलङ्कं सरसत्वमुपगतं कर्णभिरणादिभिर्मुक्तामयम्, अपरं च विकचं सपङ्कं नीरसत्वमुपसेवते तथापि पूर्णचन्द्रोदये सरोगमिति न दृष्टान्ताहम् ।

- कृतः यो स्तम्भस्तस्मिन्, तस्या रुचिराननं तद्रुचिराननं तदीयसुन्दरमुखं तस्य राज्ञो भूपालस्य चन्द्रस्य च पुरतोऽग्रे तत् प्रसिद्धं चित्रतरमत्यद्भुतं समस्तजनतायाश्चेतोहरं निखिलजनसमूहचित्ताह्लादकं ताण्डवाडम्बरं ताण्डवनृत्यविस्तारं सादरं ससम्मानं यथा स्यात्तथा द्राग् जटिति चक्रे कृतवान् । रूपकश्लेषी । शार्दूल-
 १० विक्रीडितच्छन्दः ॥१५॥ § १८) अस्या इति—अस्या मरुदेव्याः किल वदनं मुखं नलिनं कमलं च समानं सदृशम् । अथोभयोः सादृश्यमाह—शुभदलसत्कान्तिविराजितं शुभदा श्रेयःप्रदा लसन्ती शोभमाना च या कान्तिस्तया विराजितं वदनं, शुभानि श्रेष्ठानि यानि दलानि पत्राणि तेषां या सत्कान्तिः समीचीनरुचिस्तया विराजितं नलिनं । राजहंससंतोषनिदानं—राजहंसी नृपश्रेष्ठो नाभिराजस्तस्य संतोषस्य निदानं कारणं वदनं, राजहंसा मरालविशेषास्तेषां संतोषस्य निदानं कारणं 'राजहंसस्तु कादम्बे कलहंसे नृपोत्तमे' इति विश्वलोचनः ।
 १५ अब्जाभिख्याञ्चितं अब्जश्चन्द्रस्तस्येवाभिख्या शोभा तयाञ्चितं शोभितं वदनं, अब्जं कमलं इत्यभिख्या नाम तयाञ्चितं नलिनं 'अभिख्या तु यशःकीर्तिशोभाविख्यातिनामसु' इति विश्वलोचनः । सकलमनोहरामोदकारणं—सकलानां सर्वेषां मनोहरश्चेतोहरो य आमोदो हर्षस्तस्य कारणं वदनं, सकलमनोहरो निखिलप्रियो य आमोदोऽतिनिहारी गन्धस्तस्य कारणं नलिनं । सुमनःश्लाघ्यं सुमनःसु विद्वत्सु श्लाघ्यं प्रशंसनीयं वदनं, सुमनःसु पुष्पेषु श्लाघ्यं प्रशंसनीयं नलिनम् । अथोभयोर्व्यतिरेकमाह—तथापि पूर्वोक्तप्रकारेण सादृश्ये सत्यपि
 २० प्रथमं वदनं सकचं कचैः केशैः सहितं सकचं, विकलङ्कं कलङ्करहितं, सरसत्वं सरसतामुपगतं प्राप्तं, कर्णभिरणादिभिः अवतंसदिभिः मुक्तामयं मौक्तिकप्रचुरं पक्षे सकचं अप्रफुल्लं विकलङ्कं निष्पङ्कं सरसत्वं सजलत्वं

- मरुदेवीके नासावंश रूपी विशाल बाँससे बनाये हुए खम्भेपर उसके सुन्दर मुखरूपी राजाके सामने अत्यन्त आश्चर्यसे युक्त तथा समस्त जनसमूहके चित्तको हरनेवाला वह प्रसिद्ध ताण्डव नृत्यका विस्तार बड़े सन्मानके साथ किया था ॥१५॥ § १८) अस्या इति—
 २५ मरुदेवीका मुख और कमल समान थे क्योंकि जिस प्रकार मुख शुभदलसत्कान्तिविराजित—कल्याणको देनेवाली श्रेष्ठ कान्तिसे सुशोभित था उसी प्रकार कमल भी शुभदलसत्कान्तिविराजित—उत्तम पत्रोंकी श्रेष्ठ कान्तिसे सुशोभित था । जिस प्रकार मुख राजहंससंतोषनिदान—नृपोत्तम राजा-नाभिराजके सन्तोषका कारण था उसी प्रकार कमल भी राजहंससन्तोषनिदान—राजहंस पक्षियोंके सन्तोषका कारण था, जिस प्रकार मुख अब्जाभिख्या-
 ३० ञ्चित—चन्द्रमा जैसी शोभासे सहित था उसी प्रकार कमल भी अब्जाभिख्याञ्चित—अब्ज नामसे सहित था, जिस प्रकार मुख सकलमनोहरामोदकारण—सबके मनको हरनेवाले हर्षका कारण था उसी प्रकार कमल भी सकलमनोहरामोदकारण—सबके मनको हरनेवाली विशिष्ट सुगन्धिका कारण था और जिस प्रकार मुख सुमनःश्लाघ्यं—विद्वानोंमें प्रशंसनीय था उसी प्रकार कमल भी सुमनःश्लाघ्यं—फूलोंमें प्रशंसनीय था । इस प्रकार दोनोंमें समानता होनेपर भी कमल मुखकी दृष्टान्तताके योग्य नहीं है क्योंकि मुख सकच है—केशोंसे सहित है (पक्षमें अप्रफुल्ल है), विकलङ्क—कलङ्क रहित है (पक्षमें पङ्क रहित है, सरसताको प्राप्त होता है (पक्षमें सजलताको प्राप्त है), और कानोंके आभरण आदिसे मुक्तामय मोतियों-

§ १९) कचतिमिरे लोलदृशो निबिडे मारजनिभावितोत्कर्षे ।

कुसुमस्रजो विचित्राश्चक्रुर्हा हन्त सौरभानुगतिम् ॥१६॥

§ २०) स तया कल्पवल्लयेव लसदंशुकभूषया ।

समाश्लिष्टतनुर्भूयः कल्पाङ्घ्रिप इवाद्युतत् ॥१७॥

§ २१) अथ ताभ्यां दम्पतीभ्यामलंकृते सुरलोकनिकाशे तस्मिन् देशे कल्पपादपात्यये ५
भावितीर्थकृतपुण्यसमाहृतः पुरुहूतस्तत्क्षणमेव विस्मयकरविचित्रसंनिवेशविशेषां कवलीकृतसुर-
पुरगर्वा नगरीं कांचिदयोध्यां नाम कल्पयामास ।

मुक्तामयं नीरोगमिति वदनपक्षे योज्यम् । अपरं च द्वितीयं च नलिनमित्यर्थः विकचं कचरहितं पक्षे प्रफुल्लं, सपङ्कं कलङ्कसहितं पक्षे सकदम्बं, नीरसत्वं रसराहित्यं पक्षे नीरे सत्त्वं नीरसत्वं सजलत्वम् उपसेवते समाश्रयति, तथापि पूर्णचन्द्रोदये पूर्णचन्द्रोदये सति सरोगं रोगसहितं पक्षे सरसि गच्छतीति सरोगं तडागस्थितमित्यर्थः । १०
इतीत्थं न दृष्टान्तार्हं नोपमायोग्यम् । श्लेषव्यतिरेकोपमाः । § १९) कचेति—लोलदृशश्चपलाक्षया मरुदेव्या निबिडे सघने मारजनिभावितोत्कर्षे मारस्य मदनस्य जनिस्तपस्तिस्तया भावित उत्कर्षो यस्य तस्मिन् पक्षे मा लक्ष्मीः शोभा वा तया उपलक्षिता या रजनिः रात्रिस्तया भावितोत्कर्षे वर्धितोत्कर्षे कचतिमिरे केशान्धकारे विचित्रा विविधाः कुसुमस्रजः पुष्पमालाः सौरभानुगतिः सुरभेः सौगन्ध्यस्य भावः सौरभं तस्यानुगतिमनुसरणं पक्षे सूरस्य सूर्यस्य इमे सौराः ते च ते भानवश्चेति सौरभानवः सूर्यकिरणास्तेषां गतिं कार्यं तिमिरापहति- १५
मित्यर्थः चक्रुर्विदधुः हा हन्तेति शोकार्थेऽव्ययी । रूपकश्लेषो । आर्याछन्दः ॥१६॥ § २०) स तयेति—लसन्त्यः शोभमाना अंशुकभूषा वस्त्रालंकृतयो यस्यां तथाभूतया कल्पवल्लयेव कल्पलतयेव तया मरुदेव्या समाश्लिष्टा समालिङ्गिता तनुः शरीरं यस्य तादृशोऽयं भूपो नाभिराजः कल्पाङ्घ्रिप इव कल्पवृक्ष इव अद्युतत् शुशुभे । उपमा ॥१७॥ § २१) अथेति—अथानन्तरं ताभ्यां मरुदेवीनाभिराजाभ्याम् अलंकृते सुशोभिते सुरलोकनिकाशे स्वर्गसंनिभे तस्मिन् देशे कल्पपादपात्यये कल्पवृक्षाभावे सति भावितीर्थकृतो भविष्यत्तीर्थकरस्य २०
पुण्येन सुकृतेन समाहृतः समाकारित इति भावितीर्थकृतं पुण्यसमाहृतः पुरुहूतः तत्क्षणमेव तत्कालमेव विस्मयकरा आश्चर्यात्पादका विचित्रा विविधाः संनिवेशविशेषा भवनविशेषा यस्यां तथाभूतां कवलीकृतो ग्रस्तः सुरपुरगर्वः स्वर्गलोकाहंकारो यया तां अयोध्यां नाम कांचित् नगरीं कल्पयामास रचयामास ।

से युक्त है (पक्षमें नीरोग है) इसके विपरीत कमल विकच है—खिला हुआ है (पक्षमें केशोंसे सहित है), सपङ्क है—कीचड़से सहित है (पक्षमें सपाप है), नीरसत्त्व—जलमें २५
सद्भावको प्राप्त है (पक्षमें रसराहित्यको प्राप्त है और इतना होनेपर भी पूर्णचन्द्रका उदय होनेपर सरोग है—रोगोंसे सहित है (पक्षमें सरोवरमें स्थित है) । § १९) कचेति—सान्द्र तथा कामकी उत्पत्तिसे जिसका उत्कर्ष बढ़ रहा था (पक्षमें शोभायमान रात्रिमें जिसकी प्रचुरता बढ़ रही थी) ऐसे मरुदेवीके केशरूपी अन्धकारमें नाना प्रकारकी पुष्पमालाओंने—
खेदका विषय था सौरभानुगति—सूर्यकिरणोंका काम किया था (पक्षमें सुगन्धताकी वृद्धि ३०
की थी) ॥१६॥ § २०) स तयेति—जिसमें वस्त्र और आभूषण सुशोभित हो रहे थे ऐसी कल्पलताके समान उस मरुदेवीसे आलिङ्गित देह राजा नाभिराज कल्प वृक्षके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥१७॥ § २१) अथेति—तदनन्तर उन दोनों दम्पतियोंसे सुशोभित स्वर्गके समान उस देशमें कल्प वृक्षोंका अभाव होनेपर भावी तीर्थकरके पुण्यसे खुलाये हुए इन्द्रने उसी क्षण आश्चर्यको उत्पन्न करनेवाले नाना प्रकारके विशिष्ट भवनोंसे सहित तथा स्वर्गके ३५

§ २२) सुत्रामा सूत्रधारोऽभूच्छिल्पिनः कल्पजाः सुराः ।

यत्र तत्पुरसौन्दर्यं को वा वर्णयितुं क्षमः ॥१८॥

§ २३) यत्र पण्यवीथिकासु सकलभवनानीव सकल-भवनानि मदनागमोचितरसालसाल-
पनसहितविटपालिताभिर्मृदुलवल्लीभिरञ्जितानि व्यशोभन्ते । यत्र च सुरसालावलीव
५ सुरसालावली सदाखण्डलसद्विचाररमणीया तथापीयं च मरालीगतिहृद्या, सा पुनरमराली-

- § २२) सुत्रामेति—यत्र पुरे सुत्रामा वज्जी इन्द्र इत्यर्थः सूत्रधारो निर्देशकः कल्पजाः स्वर्गोत्पन्नाः सुरा
अमराः शिल्पिनः कार्यकरा अभवन् तस्य पुरस्य सौन्दर्यमिति तत्पुरसौन्दर्यं तन्नगरसुन्दरतां वर्णयितुं समाख्यातुं
को वा क्षमः को वा समर्थः । न कोऽप्येत्यर्थः ॥१८॥ § २३) यत्रेति—यत्रायोष्यापुर्ण्यम् पण्यवीथिकासु
आपणरण्यासु सकलभवनानि निखिलनिकेतानि सकलभानि करिशावकसहितानि च तानि वनानि चेति सकल-
१० भवनानि तद्वत् व्यशोभन्त शुशुभिरे । अयोभयोः सादृश्यमाह—पूर्वं सकल-भवनपक्षे—मदनागमस्य कामशास्त्र-
स्य उचितानि योग्यानि रसालसानि शृङ्गारादिरसभरमन्थराणि यानि आलपनानि आभाषणानि तैः सहिता
ये विटपाः प्रधानविटास्तेषामालिः पङ्क्तिस्तया पालिताभिः रक्षिताभिः मृदुलवल्लीभिः मृदुलाश्च ताः वल्ल्यश्च
ताभिः कोमलकायकामिनोभिरञ्जितानि शोभितानि । अथ सकलभ-वनपक्षे—मदनागो मदनवृक्षः मोचा
कदली, तयोर्द्वन्द्वः, मदनागमोचे संजाते येषां ते मदनागमोचिताः रसालश्च सालश्च पनसश्चेति रसालसाल-
१५ पनसा आम्रसर्जपनसाः मदनागमोचिताश्च ते रसालसालपनसा इति मदनागमोचितरसालसालपनसास्तेषां
विटपानां शाखानां या आलिः पङ्क्तिस्तया पालिताभिः रक्षिताभिः मृदुलवल्लीभिः मृदवश्च ता लवल्ल्यश्चेति
मृदु-लवल्ल्यः ताभिः कोमलताभिः 'वल्ली स्यादजमोदायां व्रतत्यामपि योषिति' इति मेदिनी । अञ्जि-
तानि शोभितानि । यत्र चायोष्यायां सुरसालावली शोभना रसाला आम्रवृक्षा इति सुरसालास्तेषामावली
पङ्क्तिः सुरसालावलीव सुराणां देवानां सालवृक्षाः सुरसालाः कल्पवृक्षास्तेषामावलीव पङ्क्तिरिव । उभयोः
२० सादृश्यमाह—सदाखण्डलसद्विचाररमणीया तत्र पूर्वं आम्रवृक्षपङ्क्तिपक्षे—सदा सर्वदा अखण्डं निरन्तरायं यथा
स्यात्तथा लसन् शोभमानो यो वीनां कोकिलादिपक्षिणां चारः संचारस्तेन रमणीयो, कल्पवृक्षपङ्क्तिपक्षे—सदा
सर्वदा अखण्डलस्य सहस्राक्षस्य सद्विचारेण समोचोतविहारेण रमणीया मनोहरा । इत्थं सादृश्यं निरूप्य
व्यतिरेकं निरूपयति—तथापि—उक्तप्रकारेण सादृश्ये सत्यपि इयं च शोभनाम्रवृक्षपङ्क्तिश्च मरालीगतिहृद्या
मरालीनां हंसीनां गत्या हृद्या मनोहरा सा पुनः कल्पवृक्षपङ्क्तिः अमरालीगतिहृद्या मरालीनां गत्या हृद्या न
- २५ गर्वको नष्ट करनेवाली अयोध्या नामकी कोई नगरी बनायी । § २२) सुत्रामेति—जहाँ इन्द्र
निर्देशक था और स्वर्गके देव कारीगर थे उस नगरकी सुन्दरताका वर्णन करनेके लिए कौन
समर्थ है ॥१८॥ § २३) यत्रेति—जहाँ बाजारकी गलियोंमें सकलभवन—सम्पूर्ण भवन सक-
लभ-वन—हाथियोंके बन्चोंसे सहित वनोंके समान सुशोभित होते थे क्योंकि जिस प्रकार
३० सकलभवन, कामशास्त्रके योग्य रससे अलस आभाषणसे सहित विट मनुष्योंकी पंक्तिसे
पालित कोमलांगी स्त्रियोंसे सुशोभित थे उसी प्रकार वन भी मदन वृक्ष और केलाके वृक्षोंसे
युक्त आम सागौन तथा कटहल वृक्षोंकी शाखाओंकी पंक्तिसे पालित कोमल रताओंसे सुशो-
भित थे । जिस अयोध्यामें सुर-सालावली—उत्तम आम्र वृक्षोंकी पंक्ति सुरसालावली—कल्प
वृक्षोंकी पंक्ति समान थी क्योंकि जिस प्रकार आम्र वृक्षोंकी पंक्ति सदा अखण्डरूपसे शोभाय-
मान पक्षियोंके संचारसे रमणीय थी उसी प्रकार कल्पवृक्षोंकी पंक्ति भी सदा अखण्डल—
३५ इन्द्रके उत्तम संचारसे रमणीय थी किन्तु आम्र वृक्षोंकी पंक्ति मराली गतिहृद्य—हंसीकी गति-
से सुन्दर थी और कल्पवृक्षोंकी पंक्ति अमराली गतिहृद्य—हंसीकी गतिसे सुन्दर नहीं थी

गतिहृद्या । सुमनःसमूहाः सुमनःसमूहा इव सामोदभ्रमरहिताः किंतु वनाहंसमुन्मेषा न वनाहंसमुन्मेषाश्च । राजहंसा इव राजहंसाः सरसां तरङ्गविभवमाश्रिताः किंतु भोगमनोहरोचितोल्लासा न भोगमनोहरोचितोल्लासाश्च । निर्जरजना इव निर्जरजनाः सुरतानन्दबन्धुराः किंतु वनीविहारसक्ता अवनीविहारसक्ताश्च । ललिताप्सरःकुलानीव ललिताप्सरःकुलानि स्वर्णस्थितिकलितानि

भवति अमरालीगतिहृद्या पक्षे अमराणां देवानामाली पङ्क्तिस्तस्या गत्या हृद्या मनोहारिणी । यत्राद्योव्यायां ५
सुमनःसमूहा विद्वत्समूहाः सुमनःसमूहा इव पुष्पसमूहा इव व्यशोभन्त । अथोभयोः सादृश्यमाह—सामोदभ्रमरहिताः तत्र विद्वत्समूहपक्षे—आमोदेन हर्षेण सहिताः सामोदाः भ्रमेण रहिता भ्रमरहिताः संदेहरहिताः सामोदाश्च ते भ्रमरहिताश्चेति सामोदभ्रमरहिताः पुष्पसमूहपक्षे आमोदेन अतिनिर्हारीगन्धेन सहिता इति सामोदाः भ्रगरेभ्यः षट्पदेभ्यो हिता इति भ्रमरहिताः सामोदाश्च ते भ्रमरहिताश्चेति सामोदभ्रमरहिताः । इत्थं सादृश्यं निरूप्य व्यतिरेकं निरूपयति—किंतु वनाहंसमुन्मेषाः न वनाहंसमुन्मेषाश्च पुष्पसमूहाः वनाहंस- १०
काननयोग्यः समुन्मेषो विकासो येषां ते तथाभूताः, विद्वत्समूहास्तु वनाहंसमुन्मेषा न भवन्तीत्यवनाहंसमुन्मेषाः पक्षे नवनस्य स्तवनस्य अहो योग्यः समुन्मेषो येषां तथाभूताः । यत्राद्योव्यायां राजहंसा मरालविशेषाः 'राजहंसास्तु चञ्चुचरणलोहितैः सिताः' इत्यमरः, राजहंसा इव नृपोत्तमा इव व्यशोभन्त । उभयोः सादृश्यमाह—सरसान्तरङ्गविभवमाश्रिताः तत्र पूर्वं मरालविशेषपक्षे—सरसां तडागानां तरङ्गविभवं कल्लोलैर्द्वयम् आश्रिताः प्राप्ताः, नृपोत्तमपक्षे सरसः सस्नेहः शृङ्गारादिरससहितो वा योऽन्तरङ्गविभवो हृदयैश्वर्यं १५
आश्रिताः प्राप्ताः । एवं सादृश्यं निरूप्य व्यतिरेकं निरूपयति—किंतु भोगमनोहरोचितोल्लासाः नृपोत्तमपक्षे—भोगैः पञ्चेन्द्रियविषयैर्मनोहरा रमणीया उचितोल्लासा योग्यहर्षा येषां तथाभूताः मरालविशेषपक्षे—भोगमनोहरोचितोल्लासा न भवन्तीति न भोगमनोहरोचितोल्लासाः पक्षे न भवति गच्छन्तीति न भोगाः पक्षिणस्तेषु मनोहरो मनोज्ञं उचितोल्लासो येषां तथाभूताः । यत्र निर्जरजनाः तरुणजनाः निर्जरजना इव देवा इव व्यशोभन्त । उभयोः सादृश्यमाह—सुरतानन्दबन्धुराः तरुणजनाः सुरतस्य संभोगस्यानन्देन सुखेन बन्धुराः २०
सहिताः देवाश्च सुराणां भावः सुरता देवत्वं तस्या आनन्देन बन्धुराः सहिताः । एवं सादृश्यं निरूप्य व्यतिरेकं

पक्षमें देवोंकी पंक्तिकी गतिसे सुन्दर थी । जहाँ सुमनःसमूह—विद्वानोंके समूह सुमनःसमूह— ५
फूलोंके समूहके समान थे क्योंकि जिस प्रकार विद्वानोंके समूह सामोदभ्रमरहित—हर्ष-
सहित तथा भ्रमरहित थे उसी प्रकार फूलोंके समूह भी सामोदभ्रमरहित—सुगन्धसे सहित २५
तथा भ्रमरोंके लिए हितकारी थे किन्तु दोनोंमें विशेषता थी—फूलोंके समूह तो वनाहंस-
समुन्मेष—वनके योग्य विकाससे सहित थे और विद्वानोंके समूह नवनाहंसमुन्मेष—वनके ३०
योग्य विकाससे सहित नहीं थे (पक्षमें नवन—स्तवनके योग्य विकाससे सहित थे) । जहाँ
राजहंस—श्रेष्ठराजा राजहंस—राजहंस पक्षियोंके समान थे क्योंकि जिस प्रकार श्रेष्ठ राजा
सरसान्तरङ्गविभवमाश्रिता—स्नेहसहित अन्तरंगके विभवको प्राप्त थे उसी प्रकार राजहंसपक्षी ३५
भी सरसान्तरङ्गविभवमाश्रिताः—तालाबोंकी लहरोंके विभवको प्राप्त थे । किन्तु दोनोंमें परस्पर
भेद था श्रेष्ठ राजा भोगमनोहरोचितोल्लास—भोगोंके मनोहर तथा योग्य उल्लाससे सहित
थे परन्तु राजहंस पक्षी नभोगमनोहरोचितोल्लास—भोगोंके मनोहर तथा योग्य उल्लाससे ४०
सहित नहीं थे (पक्षमें नभोग—पक्षियोंके मनोहर तथा योग्य उल्लाससे सहित थे) । जहाँ
निर्जरजन—तरुणपुरुष निर्जरजन—देवसमूहके समान थे क्योंकि जिस प्रकार तरुण पुरुष
सुरतानन्दबन्धुर—संभोगके आनन्दसे सहित थे उसी प्रकार देवसमूह भी सुरतानन्द- ४५
बन्धुर—देवपनाके आनन्दसे सहित थे । किन्तु दोनोंमें परस्पर भेद था क्योंकि देवसमूह
वनीविहारासक्त—अटवियोंमें विहार करनेमें लीन थे और तरुण पुरुष अवनीविहारा-
सक्त—अटवियोंमें विहार करनेमें लीन नहीं थे (पक्षमें अवनी—पृथिवीपर विहार

मञ्जुगुञ्जन्मनोज्ञहंसकानि विलोलोर्मिकोज्ज्वलानि सर्वतोमुखकान्तिमधुराणि कमलाधिकशोभाञ्चितानि, किंतु विकचपद्मवदनानि सकचपद्मवदनानि । सुपर्वसुन्दरास्तेजनास्तेजनाश्च तथापि कुशानु-

दर्शयति—किंतु देवा वनीविहारसक्ता वनीष्वटकोषु विहारे विहरणे सक्ताः तद्वज्रनास्तु वनीषु विहारे सक्ता न भवन्तीति अवनीविहारसक्ताः पक्षे अवन्यां पृथिव्यां विहारे सक्ता इति अवनीविहारसक्ताः । यत्र ललिता-

५ पसरसां शोभनजलतडागानां कुलानि समूहाः ललितापसरःकुलानीव सुन्दरदेवाङ्गनासमूहा इव व्यशोभन्त । उभयोः सादृश्यं यथा स्वर्णस्थितिकलितानि तत्र तडागसमूहपक्षे सुष्ठु अर्णो जलं स्वर्णः तस्य स्थित्या कलितानि सहितानि, सुन्दरदेवाङ्गनासमूहपक्षे—स्वर्णस्य काञ्चनस्य स्थित्या कलितानि सहितानि । मञ्जुगुञ्जन्मनोज्ञहंसकानि तत्र तडागसमूहपक्षे—मञ्जु मनोहरं यथा स्यात्तथा गुञ्जन्तः शब्दं कुर्वन्तो मनोज्ञा मनोहरा हंसा मराला येषु तानि, देवाङ्गनासमूहपक्षे मञ्जु मनोहरं गुञ्जन्ति शब्दं कुर्वणानि मनोज्ञहंसकानि मनोहर-

१० नूपुराणि येषां तानि, विलोलोर्मिकोज्ज्वलानि तत्र तडागसमूहपक्षे विलोला अतिचपला ऊर्मयस्तरङ्गा यस्मिन्-स्तथाभूतं यत् कं जलं तेनोज्ज्वलानि, अथवा विलोला अतिचपला या ऊर्मिकास्तरङ्गास्ताभिर्लज्ज्वलानि 'ऊर्मिका त्वङ्गुलीये स्यात्तरङ्गे मधुपध्वनी' इति विश्वलोचनः । देवाङ्गनासमूहपक्षे—विलोलाभिश्चपलाभि-रूर्मिकाभिरङ्गुलीयैर्लज्ज्वलानि शोभितानि, सर्वतोमुखकान्तिमधुराणि तत्र तडागसमूहपक्षे—सर्वतोमुखस्य जलस्य कान्त्या दोप्त्या मधुराणि मनोहराणि 'कबन्धमुदकं पाथः पुष्करं सर्वतोमुखम्' इत्यमरः, देवाङ्गनासमूह-

१५ पक्षे सर्वतोमुखी सर्वतः प्रसरणशीला या कान्तिस्तया मधुराणि मनोहराणि, कमलाधिकशोभाञ्चितानि तत्र तडागपक्षे—कमलानां नीराणां नीरजानां वा या अधिकशोभा तया अञ्चितानि शोभितानि, देवाङ्गनासमूह-पक्षे—कमलाया लक्ष्म्या अधिका सातिशया या शोभा तयाञ्चितानि 'कमलं जलजं नीरे' 'कमला श्रोवर-स्त्रियाम्' इत्युभयत्रापि विश्वलोचनः । एवं सादृश्यं निरूप्य व्यतिरेकं निरूपयति—किंतु विकचपद्मवदनानि तडागसमूहपक्षे विकचानि प्रफुल्लानि पद्मानि कमलान्येव वदनानि मुखानि येषां तानि, पक्षे केशरहित-

२० कमलमुखानि, देवाङ्गनासमूहपक्षे सकचानि केशसहितानि पद्मवदनानि कमलवन्मुखानि येषां तानि । यत्रा-योध्यायां ते प्रसिद्धा जना मनुष्याः तेजना इव वंशा इव व्यशोभन्त 'वंशे त्वक्सारकर्मारत्वचिसारतृणध्वजाः ।

करनेमें लीन थे) जहाँ ललितापसरःकुलं—सुन्दर जलसे युक्त तालाबोंके समूह ललिता-पसरःकुल—सुन्दर अप्सराओंके समूहके समान थे क्योंकि जिस प्रकार तालाबोंके

२५ समूह भी स्वर्णस्थितिकलित—सुवर्णकी स्थितिसे सहित थे, जिस प्रकार तालाबोंके समूह मञ्जुगुञ्जन्मनोज्ञहंसक—मधुर शब्द करते हुए हंस पक्षियोंसे सहित थे उसी प्रकार अप्स-राओंके समूह भी मधुर शब्द करते हुए नूपुरोंसे सहित थे, जिस प्रकार तालाबोंके समूह विलोलोर्मिकोज्ज्वल—चंचल लहरोंसे शोभायमान थे उसी प्रकार अप्सराओंके समूह भी विलोलोर्मिकोज्ज्वल—चंचल अंगूठियोंसे शोभायमान थे, जिस प्रकार तालाबोंके समूह

३० सर्वतोमुखकान्तिमधुर—जलकी कान्तिसे मधुर थे उसी प्रकार अप्सराओंके समूह भी सर्वतोमुखकान्तिमधुर—सब ओर फैलनेवाली कान्तिसे मनोहर थे और जिस प्रकार तालाबोंके समूह कमलाधिकशोभाञ्चित—कमलों अथवा जलकी अधिक शोभासे सहित थे उसी प्रकार अप्सराओंके समूह भी कमलाधिकशोभाञ्चित—लक्ष्मीसे भी अधिक शोभासे युक्त थे । किन्तु दोनोंमें परस्पर भेद था क्योंकि तालाबोंके समूह विकचपद्मवदन थे—खिले

३५ हुए कमलरूपी मुखोंसे सहित थे (पक्षमें केशरहित कमलरूपी मुखोंसे सहित थे) और अप्स-राओंके समूह सकचपद्मवदन थे—केशसहित कमलतुल्य मुखोंसे सहित थे । जहाँके प्रसिद्ध मनुष्य बाँसोंके समान थे क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य सुपर्वसुन्दर—देवोंके समान सुन्दर थे उसी प्रकार बाँसोंके समूह भी सुपर्वसुन्दर—अच्छी-अच्छी पोरोंसे सुन्दर थे किन्तु दोनोंमें

भावास्पदत्वमकृशानुभावास्पदत्वं मुक्तास्थानत्वममुक्तास्थानत्वं चेति परस्परभेदः । यत्र च राजेव राजा सकलकलावल्लभः कुवलयानन्दसंदायकश्च, किंतु दीनबन्धुर्नदीनबन्धुरलीकविप्रियो नालीकविप्रियः, क्षत्राधिपतिर्नक्षत्राधिपतिर्वसुधावैभवमनोहरश्च ।

शतपर्वा यवफलो वेणुमस्करतेजनाः' इत्यमरः, उभयोः सादृश्यमाह—सुपर्वसुन्दराः ते जना अयोध्यावासिनो मनुजाः सुपर्वाणो देवा इव सुन्दरा इति सुपर्वसुन्दराः वंशाः सुपर्वभिः सुन्दरा इति सुपर्वसहिताः, एवं सादृश्यं निरूप्य परस्परभेदं दर्शयति—तथापि कृशानुभावास्पदत्वं—वंशेषु कृशानुभावस्याग्निसद्भावस्यास्पदत्वं स्थानत्वम् पक्षे कृशोऽल्पो योऽनुभावस्तस्यास्पदत्वम् जनेषु कृशानुभावास्पदत्वं न भवतीत्यकृशानुभावास्पदत्वं पक्षेऽकृशो महान् योऽनुभावः प्रभावस्तस्य आस्पदत्वं स्थानत्वं, मुक्तास्थानत्वं मुक्तानां मुक्ताफलानां स्थानत्वं तेजनेषु वंशेषु पक्षे मुक्तं त्यक्तमास्थानं सभासंनिवेशनं येषां तेषां भावस्तत्त्वम्, जनेषु मनुष्येषु अमुक्तास्थानत्वं मुक्तानां मुक्ताफलानां स्थानत्वं न भवतीति तथा पक्षे त्यक्तसभासंनिवेशनं न भवति तत्रत्या मनुष्या सभासंनिवेशनार्हा आसन्निति परस्परभेदः । वंशानां मुक्तास्थानत्वं यथा—'द्विपेन्द्रजीमूतवराहशङ्खमत्स्याहिशुष्युद्भव-वेणुजानि । मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषां तु शुक्लपुद्गवमेव भूरि' इत्यगस्त्यः । यत्र च राजा भूपालो राजेव चन्द्र इव व्यशोभत । उभयोः सादृश्यं यथा—सकलकलावल्लभः सकलकलानां चतुःषष्टिकलानां वल्लभः स्वामी भूपालः सकलकलानां षोडशकलानां वल्लभः स्वामी चन्द्रः, कुवलयानन्दसंदायकश्च कुवलयं पृथिवीमण्डलं तस्यानन्दसंदायको हर्षप्रदायको भूपालः, कुवलयानामुत्पलानामानन्दसंदायको विकासप्रदायकश्चन्द्रः । इत्थं सादृश्यं निरूप्य व्यतिरेकं दर्शयति—किंतु दीनबन्धुर्नदीनबन्धुः, भूपालो दीनानां बन्धुहितकर इति दीनबन्धुः चन्द्रस्तु दीनबन्धुर्न भवतीति नदीनबन्धुः पक्षे नदीनां सरिताग्निः स्वामी नदीनः समुद्रस्तस्य बन्धुः, अलीकविप्रियो नालीकविप्रियः भूपालोऽलीकस्य मिथ्याभाषणस्य विप्रियो विरोधी चन्द्रस्तु तथा न भवतीति नालीकविप्रियः पक्षे नालीकानां पद्मखण्डानां विप्रियो विरोधी । 'नालीकं पद्मखण्डेऽपि' इति विश्वलोचनः । क्षत्राधिपतिर्नक्षत्राधिपतिः भूपालः, क्षत्राणामधिपतिः चन्द्रस्तु तथा न भवतीति नक्षत्राधिपतिः पक्षे नक्षत्राणां ताराणामधिपतिरिति, वसुधावैभवमनोहरो नवसुधावैभवमनोहरश्च भूपालो वसुधायाः पृथिव्या वैभवेन समृद्ध्या मनोहरश्चन्द्रस्तु तथा न भवतीति नवसुधावैभवमनोहरः पक्षे नवसुधायाः प्रत्यग्रपीयूषस्य वैभवेन मनोहरः ।

परस्पर भेद था क्योंकि बाँसोंके समूह कृशानुभाव—अल्पप्रभावके आस्पद—स्थान थे (पक्षमें कृशानु—अग्निके सद्भावसे सहित थे) और मनुष्य अकृशानुभावास्पद—बहुत भारी प्रभावके स्थान थे । बाँसोंके समूह मुक्तास्थानत्व—आस्थान—सभासंनिवेशसे मुक्त थे (पक्षमें मोतियोंके स्थान थे) और मनुष्य अमुक्तास्थानत्व—सभासंनिवेशसे मुक्त नहीं थे अर्थात् सभाओंमें स्थान पानेके योग्य थे । जहाँ राजा—भूपाल राजा—चन्द्रमाके समान था क्योंकि जिस प्रकार भूपाल सकलकलावल्लभ—समस्त—चौंसठ कलाओंका स्वामी था उसी प्रकार चन्द्रमा भी सकलकलावल्लभ—सोलह कलाओंका स्वामी था और जिस प्रकार भूपाल कुवलयानन्दसंदायक—पृथिवीमण्डलको आनन्ददायक था उसी प्रकार चन्द्रमा भी कुवलयानन्दसंदायक—नीलकमलोंको आनन्ददायक था किन्तु दोनोंमें परस्पर भेद था क्योंकि भूपाल दीन बन्धु था—दीनोंका हितैषी था और चन्द्रमा नदीनबन्धु था—दीनोंका हितैषी नहीं था (पक्षमें समुद्रका बन्धु था), भूपाल अलीकविप्रिय—मिथ्याभाषणका विरोधी था और चन्द्रमा नालीकविप्रिय था—मिथ्याभाषणका विरोधी नहीं था (पक्षमें कमलसमूहका विरोधी था), भूपाल क्षत्राधिपति—क्षत्रों—क्षत्रियोंका अधिपति था और चन्द्रमा नक्षत्राधिपति—क्षत्रोंका अधिपति नहीं था (पक्षमें नक्षत्रोंका अधिपति था) भूपाल वसुधावैभवमनोहर—पृथिवीके वैभवसे मनोहर था और चन्द्रमा नवसुधावैभवमनोहर—पृथिवीके

§ २४) साकेते किल तत्र चित्रनगरे देवाधिराजः स्वयं

नाभिक्षमाधिपतेविधाय चतुरो राज्याभिषेकोत्सवम् ।

तद्देव्याश्च सुपट्टबन्धनविधिं कृत्वैतयोर्विश्वदृक्

सूनुः संभवितेति कौतुकवशात्पूजां व्यधत्ताधिकम् ॥१९॥

५ § २५) षड्भिर्मसैर्जिनाधीशे स्वर्गादवतरिष्यति ।

रत्नवृष्टिं दिवो देवाः पातयामासुरादरात् ॥२०॥

§ २६) सा किल रत्नवृष्टिरत्र त्रिभुवनाधिपतिरवतरिष्यतीति कौतुकवशेन समागता स्वर्ग-

संपदथवा पुण्यकल्पद्रुमप्ररोहपरम्परा यद्वास्मत्तेजसां निराकरणनिदानमद्भुतं तेजोऽत्र समुदेष्यतीति मत्वा तत्सेवार्थं पूर्वमेव समागता नक्षत्रपरम्पराहोस्विजगद्गुरुजन्मोत्सवो मयि भवतोत्यमन्दानन्द-

१० वशेन लोकपुरुषे कलितताण्डवे जगत्संक्षोभवशेन संजातनिधिगर्भस्रुतिः किं वा परस्परमनुप्रविष्टा

श्लेषोपमाव्यतिरेकाः ॥ § २४) साकेत इति—साकेतेऽयोध्याभिधाने तत्र पूर्वोक्ते चित्रनगरे विस्मयावह-
नगरे चतुरो निपुणो देवाधिराज इन्द्रः स्वयं स्वहस्ताभ्यां नाभिक्षमाधिपतेः—नाभिराजस्य राज्याभिषेकोत्सवं
राज्याभिषेकमहं विधाय तद्देव्या मरुदेव्याश्च सुपट्टबन्धनविधिं महिषोपट्टबन्धनविधिं कृत्वा एतयोर्मत्तदेवीनाभि-
राजयोः विश्वदृक् सर्वज्ञस्तीर्थकरः सूनुः पुत्रः संभविता भविष्यति, इति कौतुकवशात् कृतुहलवशात् अधिकं

१५ यथा स्यात् पूजां सपर्या व्यधत्त चकार किलैतिह्ये ॥ शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥१९॥ § २५) षड्भिरिति—
षड्भिर्मसैः षण्मासानन्तरं जिनाधीशे जिनेन्द्रे स्वर्गाद् नाकात् अवतरिष्यति सति देवास्त्रिदशाः आदरात्
दिवो गगनात् रत्नवृष्टिं पातयामासुः ॥२०॥ § २६) सा किलेति—सा किल देवनिपातिता रत्नवृष्टिः
नभश्चरैर्देवविद्याधरैरिति पूर्वोक्तप्रकारेण उत्प्रेक्ष्यमाणा तर्क्यमाणा वसुधारा रक्तधारा 'वसु तोये घने मणी'
इति वैजयन्ती । जगद्भूतुर्भगवतो हिरण्यं स्वर्णं गर्भं यस्य स हिरण्यगर्भस्तस्य भावस्तां हिरण्यगर्भतां पक्षे

२० ब्रह्मरूपतां प्रकटयितुमिव नाभितरपालस्य नाभिराजस्य सदानाङ्गणे भवनाजिरे निपपात न्यपसत् इतीति
कथमुत्प्रेक्ष्यमाणेत्याह—अत्र किल भवने त्रिभुवनाधिपतिस्त्रिलोकीनाथः अवतरिष्यति जन्म गृहीष्यति, इति
कौतुकवशेन समागता समायाता स्वर्गसंपत् त्रिदिवसंपत्तिः अथवा पुण्यमेव कल्पद्रुमः पुण्यकल्पद्रुमः सुकृत-
महीरुहस्तस्य प्ररोहानामङ्कुराणां परम्परा संततिः । यद्वा अस्मत्तेजसां निराकरणस्य निदानमादिकारणम्
अद्भुतमाश्चर्यकरं तेजो जिनेन्द्ररूपं अत्र सद्ने समुदेष्यतीति समुत्पत्स्यत इति मत्वा तत्सेवार्थं पूर्वमेव समागता
२५ समायाता नक्षत्रपरम्परा तारासंततिः । आहोस्वित् अथवा जगद्गुरोस्तीर्थकरस्य जन्मोत्सवो मयि भवति

वैभवसे मनोहर नहीं था (पक्षमें नवीन अमृतके वैभवसे मनोहर था) । § २४) साकेत
इति—अयोध्यानामक उस आश्चर्यकारक नगरमें चतुर इन्द्रने स्वयं नाभिराजाका राज्या-

३० भिषेक कर उनकी राजी मरुदेवीका पट्टबन्ध किया और इनके सर्वज्ञ पुत्र होनेवाला है इस
कौतुकसे उनकी अत्यधिक पूजा की ॥१९॥ § २५) षड्भिरिति—छहमाहमें जिनेन्द्र भगवान्
स्वर्गसे अवतीर्ण होंगे इस विचारसे देवोंने आदरपूर्वक आकाशसे रत्नवर्षा की ॥२०॥

§ २६) सा किलेति—वह रत्नवृष्टि क्या थी मानो यहाँ त्रिलोकीनाथ अवतार लेवेंगे इस-
प्रकारके कौतूहलसे आयी स्वर्गकी सम्पत्ति है, अथवा पुण्यरूप कल्पवृक्षोंके अंकुरोंकी परम्परा
है, अथवा हमारे तेजके निराकरण करनेका प्रधान कारण आश्चर्यकारक तेज यहाँ उदित
होगा यह मानकर उसकी सेवाके लिए पहलेसे ही आयी हुई नक्षत्रोंकी परम्परा है अथवा
३५ जगद्गुरु—तीर्थकर भगवान्का जन्मोत्सव मुझमें हो रहा है इस प्रकारके बहुत भारी आनन्द-
के वशसे लोकरूपी पुरुषके ताण्डव नृत्य करनेपर जगत्के क्षोभके वश निधियोंका गर्भस्राव

विद्युदिन्द्रायुधसंततिरिति नभश्चरैरुप्रेक्ष्यमाणा वसुधारा जगद्भर्तुर्हिरण्यगर्भतां प्रकटयितुमिव नाभिनरपालसदनाङ्गणे निपपात ।

§ २७) रत्नगर्भा धरा जाता हर्षगर्भाः सुरोत्तमाः ।

क्षोभमायाज्जगद्गर्भो गर्भाधानोत्सवे विभोः ॥२१॥

§ २८) अथ कदाचिद्गङ्गातरङ्गधवलदुकूलप्रच्छदपर्यङ्कशोभिते सौधे सुप्ता सा मरुदेवी निशायाः पश्चिमे यामे निजकुचयुगलमिवावधोरितधराधरमेन्द्रं गजं, शृङ्गारसहितं परिशोभितं माहारावसक्तं वृषभं, स्तम्बेरमकुम्भस्थलनिर्भेदनपटुं गर्जत्पञ्चाननं, निजकान्तकीर्तिमिव सुरनाग-

इतीत्यम् अमन्दानन्दवशेन प्रचुरप्रहर्षवशेन लोक एव पुरुषस्तस्मिन् लोकपुरुषे भुवनमनुजे कलितताण्डवे कृत-
ताण्डवनृत्ये जगतां संक्षोभस्य परिस्पन्दनस्य वशेन संजाता समुत्पन्ना निधीनां या गर्भलुतिर्गर्भस्त्रावः सा ।
किंवा यद्वा परस्परमन्योऽन्यम् अनुप्रविष्टा मिलिता विद्युदिन्द्रायुधयोस्तदिन्द्रधनुषोः संततिः परम्परा । उत्प्रेक्षाल-
कारः । § २७) रत्नेति—विभोर्भगवतो गर्भाधानोत्सवे गर्भकल्याणकमहोत्सवे धरा वसुधा रत्नानि गर्भे मध्ये
यस्या रत्नगर्भा जाता । सुरोत्तमा देवोत्तमाः हर्षो गर्भे येषां तथाभूता हर्षगर्भा जाताः जगतां गर्भो जगद्गर्भो
जगन्मध्यं क्षोभं परिस्पन्दम् आयात् प्राप्नोत् ॥२१॥ § २८) अथेति—अथानन्तरं कदाचित् गङ्गातरङ्गवद्
देवधुनौकल्लोलवद् विमलो निर्मलो दुकूलप्रच्छदः क्षोभोत्तरच्छदो यस्य तथाभूतेन पर्यङ्केन पल्यङ्केन शोभिते
विराजिते सौधे प्रासादे सुप्ता सा मरुदेवी निशाया रजन्याः पश्चिमेऽन्तिमे यामे प्रहरे निजकुचयुगलमिव स्वस्तन-
युगमिव अवधोरितस्तिरस्कृतो धराधरो पर्वतो येन तं स्तनयुगपक्षे काठिन्येन गजपक्षे बृहदाकारेणेति भावः
एन्द्रं गजं ऐरावतहस्तिनं निजकुचयुगलमिव शृङ्गारसहितं अरणमारः प्राप्तिः शृङ्गयोर्विषाणयोरारः प्राप्तिरिति
शृङ्गारस्तेन सहितं परिशोभितं परितः शोभासंपन्नं, महंश्चासौ आरावश्चेति महारावो महाराव एव माहा-
रावो महाशब्दस्तस्मिन् सक्तं लीनं वृषभं बलीवदं, निजकुचयुगलं तु शृङ्गारेण शृङ्गारसेन सहितं, परिशोभितं
मा लक्ष्मीस्तयोपलक्षितो यो हारो मुक्तादाम तेनावसक्तं युक्तम् । निजकुचयुगलमिव स्तम्बेरमस्य गजस्य कुम्भ-
स्थलयोर्गण्डस्थलयोर्निर्भेदने विदारणे पक्षे पराजयो पटुं समर्थं गर्जत्पञ्चाननं गर्जन्मृगेन्द्रं । निजकान्तकीर्तिमिव

हो गया है, अथवा परस्परमें मिली हुई बिजली और इन्द्रधनुषकी सन्तति ही है इस प्रकार
देव और विद्याधरोंके द्वारा जिसकी उत्प्रेक्षा की जा रही थी ऐसी वह रत्नोंकी धारा जगत्-
के स्वामी—तीर्थंकर भगवान्की हिरण्यगर्भताको प्रकट करनेके लिए ही मानो नाभिराजाके
भवनके आँगनमें पड़ रही थी । § २७) रत्नेति—भगवान्के गर्भकल्याणकोत्सवके समय
पृथिवी रत्नगर्भा हो गयी थी, उत्तमदेव हर्षसे युक्त हो गये थे और जगत्का मध्य क्षोभको
प्राप्त हो गया था ॥२१॥ § २८) अथेति—तदनन्तर किसी समय गंगानदीकी तरंगोंके समान
निर्मल रेशमी चदरसे युक्त पलंगसे सुशोभित राजभवनमें सोयी हुई मरुदेवीने रात्रिके पिछले
भागमें सोलह स्वप्न देखे । प्रथम ही उसने अपने स्तनयुगलके समान अवधोरितधराधरं—
स्तनपक्षमें कठोर स्पर्शसे और ऐरावतपक्षमें विशाल आकारसे पर्वतको तिरस्कृत करनेवाला
ऐरावत हाथी देखा । फिर अपने ही स्तनयुगलके समान शृङ्गारसहित—सींगोंकी प्राप्तिसे
सहित, (पक्षमें शृङ्गाररससे सहित) परिशोभित—शोभायमान और माहारावसक्तं—जोर-
दार शब्द करनेवाले (पक्षमें सुन्दर हारसे सहित) वृषभको देखा । तदनन्तर अपने स्तनोंके
समान हाथियोंके गण्डस्थलके विदारण करनेमें समर्थ (पक्षमें हाथियोंके गण्डस्थलको परा-
जित करनेमें समर्थ) गरजते हुए सिंहको देखा । पश्चात् अपने पतिकी कीर्तिके समान सुर-
नाग—देवगज—ऐरावत हाथीके द्वारा लालनीय (पक्षमें सुरनाग—इन्द्रके द्वारा प्रशंसनीय)

लालनीयां पद्मां, भ्रमरहितमनोरमामवदातां मालायुगलीं, जीवजीवं प्रत्यानन्दसंदायिनीं सकलाञ्चित-
वृत्तिमिन्दुमण्डलीं, स्वनायकवक्षःस्थलमिव पद्माधिकोल्लासकरं पुरः परिस्फुरन्तं भास्वन्तं,
सरसंयुक्तं पद्मावृतं शातकुम्भकुम्भयुगं, विमलसरःस्थितिसमासक्तं मोनद्वयं, निजवल्लभमिव
कमलाञ्चितैः कवीश्वरैः संस्तुतं कुवलयप्रसाधनं निर्मलं सरोवरं, सदुच्चलहरिधुरंधरं सज्जनक्रमकर-

- ५ स्ववल्लभयशःसंततिमिव सुरनागेन देवगजेन लालनीयां पक्षे सुरेषु नागः सुरनागः सुरश्रेष्ठ इन्द्र इत्यर्थस्तेन
लालनीयां प्रशंसनीयां, पद्मां लक्ष्मीं । निजकान्तकीर्तिमिव भ्रमरहितमनोरमां भ्रमरेभ्यो हिता भ्रमरहिता
भ्रमरहिता चासौ मनोरमा चेति भ्रमरहितमनोरमा तां पक्षे भ्रमेण रहिता भ्रमरहिता सा चासौ मनोरमा चेति
तां अवदातामुज्ज्वलां मालायुगलीं स्रग्द्वयोम् । निजकान्तकीर्तिमिव जीवजीवं प्रति चकोरं प्रति पक्षे प्राणिनं
प्राणितं प्रति आनन्दस्य हर्षस्य संदायिनीं प्रदायिकां सकलाञ्चितवृत्तिं सकला कलासहिता अञ्चिता शोभिता च
१० वृत्तिर्यस्यास्तां पक्षे सकलैः सर्वैरञ्चिता पूजिता श्लाघिता वृत्तिर्यस्यास्तां इन्दुमण्डलीं चन्द्रमण्डलीम् ।
स्वनायकवक्षःस्थलमिव स्ववल्लभोरःस्थलमिव पद्माधिकोल्लासकरं पद्मानां कमलानां पक्षे पद्माया लक्ष्म्या
अधिकोल्लासस्यातिविकासस्य पक्षे प्रभूतहर्षस्य करं विधायकं पुरोऽग्रे परिस्फुरन्तं देदीप्यमानं भास्वन्तं सूर्यं,
स्वनायकवक्षःस्थलमिव सरसंयुक्तं मालासहितं अथवा सरसं सजलं युक्तं योग्यं पक्षे हारसहितं पद्मावृतं पद्मं
कमलेन आवृतं संवृतं पक्षे पद्माया लक्ष्म्या वृतं स्वीकृतं शातकुम्भकुम्भयुगं स्वर्णकलशयुगलं । स्वनायकवक्षः-
१५ स्थलमिव विमलसरःस्थितिसमासक्तं विमलं निर्मलं यत्सरः कासारस्तस्मिन् स्थितिरवस्थानं तथा समासक्तं
सहितं पक्षे विमलसरस्य निर्मलहारस्य स्थित्या समासक्तं अस्मिन् पक्षे 'खर्परे शरि विसर्गलोपो वा वक्तव्यः'
इति वार्तिकेन वैकल्पिको विसर्गलोपः मोनद्वयं पाठोनयुगलम् । निजवल्लभमिव स्वजीवितेश्वरमिव कमला-
ञ्चितैः—कमलैः पद्मैरञ्चितैः शोभितैः पक्षे कमलाया लक्ष्म्या अञ्चितैः पूजितैः सत्कृतैरित्यर्थः कवीश्वरैः के
जले विद्यमाना वयः पक्षिण इति कवयस्तेषामोश्वरास्तैः जलपक्षिश्रेष्ठैरित्यर्थः पक्षे कवयः काव्यकर्तारस्तेषा-
२० मोश्वरैः कविश्रेष्ठैः संस्तुतं परिचितं पक्षे सम्यक्प्रकारेण स्तुतं, कुवलयप्रसाधनं—कुवलयानि नीलकमलानि
प्रसाधनानि समलंकरणानि यस्य तं पक्षे कीर्तयं कुवलयं महीमण्डलं तस्य प्रसाधनमलंकरणं निर्मलं निष्पङ्कं
लक्ष्मीको देखा । फिर अपने पतिकी कीर्तिके समान भ्रमरहितमनोरम—भ्रमरोंके लिए हित-
कारी, मनोहर (पक्षमें भ्रमसे रहित मनोहर) और उज्ज्वल मालाओंके युगलको देखा । तद-
नन्तर अपने पतिकी कीर्तिके समान जीवजीवं प्रति आनन्दसंदायिनी—चकोरके लिए आनन्द
२५ देनेवाली (पक्षमें प्रत्येक प्राणीको आनन्द देनेवाली) और सकलाञ्चितवृत्तिं—समस्त कलाओं-
से सुशोभित सद्भावसे युक्त (पक्षमें सबके द्वारा प्रशंसित प्रवृत्तिसे युक्त) चन्द्रमण्डलको
देखा । फिर अपने पतिके वक्षःस्थलके समान पद्माधिकोल्लास—कर-कमलोंके अत्यधिक
विकासको करनेवाले (पक्षमें लक्ष्मीके अत्यधिक हर्षको करनेवाले, सामने प्रकाशमान सूर्य-
को देखा । तत्पश्चात् अपने पतिके वक्षःस्थलके समान सरसंयुक्त—मालासे सहित अथवा
३० सजल और योग्य (पक्षमें हारसे सहित) तथा पद्मावृत—कमलसे ढँके हुए (पक्षमें लक्ष्मीसे
स्वीकृत) सुकर्णकलशके युगलको देखा । फिर अपने पतिके वक्षःस्थलके समान विमलसरः-
स्थितिसमासक्त—निर्मल सरोवरमें रहनेवाले (पक्षमें निर्मलहारकी स्थितिसे युक्त) मछ-
लियोंके युगलको देखा । तदनन्तर अपने पतिके समान कमलाञ्चितैः कवीश्वरैः संस्तुतं—
कमलोंसे सुशोभित श्रेष्ठ जलपक्षियोंसे सेवित (पक्षमें लक्ष्मीसे सम्मानित बड़े-बड़े कवियोंके
३५ द्वारा अच्छी तरह स्तुत), कुवलयप्रसाधन—नीलकमलरूप अलंकारोंसे सहित (पक्षमें
पृथिवी मण्डलको अलंकृत करनेवाले) तथा निर्मल—पंकरहित (पक्षमें दोषरहित) सरोवर-
को देखा । फिर अपने पतिके समान सदुच्चलहरिधुरन्धर—उत्तम तथा लची लहरोंसे श्रेष्ठ
(पक्षमें उत्तम तथा उललते हुए घोड़ोंसे श्रेष्ठ) सज्जनक्रमकर—स्थित नाकू और भगारोंसे

मुग्रतरवारिमज्जितक्षमाभृत्कुलं पारावारं, सद्वृत्तरत्नमण्डितं सिंहासनं, सुरुचिरमणिमनोहरं सुरभवनं, बहुशोभनागमहितं फणीन्द्रभवनं, लोलांशुकविराजितं रत्नसंचयं, प्रतापिनं निर्धूमपावकं च विलोकयामास ।

§ २९) दृष्ट्वेमान् षोडश स्वप्नानद्राक्षीन्मदिरेक्षणा ।

प्रविशन्तं स्ववक्त्राब्जं पुङ्गवं कुन्दनिर्मलम् ॥२९॥

पक्षे निर्दोषं सरोवरं कासारं । निजवल्लभमिव सदुच्चलहरिधुरंधरं सत्यः समीचीना उच्चताश्च या लहरयस्तरङ्गास्ताभिर्धुरंधरं श्रेष्ठं पक्षे सन्तः प्रशस्ता उच्चला उच्चलन्तश्च ये हरयोऽश्वास्तैर्धुरंधरं श्रेष्ठं, सज्जनक्रमकरं सज्जा निभृता मकरा जलजन्तुविशेषा यस्मिन्तस्मिन् पक्षे सज्जनस्य साधोर्यः क्रमो रीतिस्तस्य करं विधायकं, उग्रतरवारिमज्जितक्षमाभृत्कुलं—अतिशयेनोग्रमुग्रतरम् उन्नततरं यद् वारि जलं तस्मिन् मज्जितानि ब्रुडितानि क्षमाभृत्कुलानि पर्वतसमूहा यस्मिन् तथाभूतं पक्षे उग्रतरवारिणा तीक्ष्णकृपापेन मज्जितानि नाशितानि क्षमाभृत्कुलानि राजसमूहा येन तथाभूतं पारावारं समुद्रम् । निजवल्लभमिव सद्वृत्तरत्नमण्डितं सन्ति प्रशस्तानि वृत्तानि वर्तुलानि च यानि रत्नानि तैर्मण्डितं शोभितं पक्षे सद्वृत्तं सच्चरित्रमेव रत्नं तेन मण्डितः शोभितस्तं सिंहासनं । निजवल्लभमिव सुरुचिरमणिमनोहरं सुरुचयः सुकान्तियुक्ता ये मणयो रत्नानि तैर्मनोहर पक्षे मण्डितं रुचिः प्रीतिः कान्तिर्वा यासां ताः सुरुचयस्तथाभूता या रमणयः स्त्रियस्तासां मनोहरस्तं रमणीशब्दस्य बाहुलकाद्बलस्वत्वम् । सुरभवनं देवभवनं देवविमानमित्यर्थः । निजवल्लभमिव बहुशोभनागमहितं—बह्वी शोभा येषां ते बहुशोभाः ते च ते नागाश्चेति बहुशोभनागास्तैर्महितं शोभितं पक्षे बहुशोभनश्चासावागमश्चेति बहुशोभनागमः सुशास्त्रं तेन हितस्तं । निजवल्लभमिव लोलांशुकविराजितं अश्व एवांशुकाः किरणाः लोलाश्च तैःशुकाश्चेति लोलांशुकास्तैर्विराजितः शोभितस्तं पक्षे लोलानि चञ्चलानि च तानि अंशुकानि वस्त्राणि चेति लोलांशुकानि तैर्विराजितस्तं । निजवल्लभमिव प्रतापिनं प्रकृष्टं तपतीत्येवंशीलस्तं पक्षे प्रतापो विद्यते यस्य तं निर्धूमपावकं च धूम्ररहितानलं च विलोकयामास ददर्श । श्लेषोपमालंकारः । § २९) दृष्ट्वेति—मदिरेक्षणा खञ्जनलोचना मरुदेवी, इमान् पूर्वोक्तान् षोडशस्वप्नान् दृष्ट्वा समवलोक्य स्ववक्त्राब्जं स्वमुखकमलं प्रविशन्तं कुन्दनिर्मलं माव्यकुसुमवद्वलं पुङ्गवं श्रेष्ठवृषभम् अद्राक्षीत् ददर्श । रूपकाल-

सहित (पक्षमें सज्जनोंके क्रमको करनेवाले) और उग्रतरवारिमज्जितक्षमाभृत्कुल—अत्यन्त गहरे पानीमें डूबे हुए पर्वतोंके समूहसे युक्त (पक्षमें पैनी तलवारके द्वारा राजाओंके समूहको खण्डित करनेवाले) समुद्रको देखा । पश्चात् अपने पतिके समान सद्वृत्तरत्नमण्डित—उत्तम तथा गोल रत्नोंसे सुशोभित (पक्षमें सदाचाररूपी रत्नसे सुशोभित) सिंहासनको देखा । तदनन्तर अपने पतिके समान सुरुचिरमणि मनोहर—देदीप्यमान मणियोंसे मनोहर (पक्षमें उत्तम प्रीति अथवा कान्तिसे युक्त स्त्रियोंसे सुशोभित) देवभक्त देवविमानको देखा । फिर अपने पतिके समान बहुशोभनागमहित—अत्यन्तशोभासे युक्त नागोंसे सुशोभित (पक्षमें अत्यन्त शोभायमान आगमसे हितकारी) नागेन्द्रके भवनको देखा । तदनन्तर अपने पतिके समान लोलांशुकविराजित—चंचल किरणोंसे सुशोभित (पक्षमें चंचल वस्त्रोंसे सुशोभित) रत्नराशिको देखा और अन्तमें अपने पतिके समान प्रतापितं—अत्यन्त तपनेवाली (पक्षमें प्रतापसे युक्त) निर्धूम अग्निको देखा । § २९) दृष्ट्वेति—खंजनपक्षीके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली मरुदेवीने इन सोलह स्वप्नोंको देखकर अपने मुखकमलमें प्रवेश करते हुए

§ ३०) अरुणाम्बरं दधाना संध्यारमणी विनिद्रपद्ममुखी ।

देवि ! तव पादसेवां कर्तुमिवायाति कमललोलाक्षी ॥२३॥

§ ३१) लक्ष्म्याः समस्तवसुवृद्धिपुषो निवासोऽ-

प्यब्जं तथा वसुमतो वसुभिः परोतम् ।

देवि ! त्वदीयमुखराजविरोधहेतो-

नीलालके नवसुमत्त्वमहो दधाति ॥२४॥

§ ३२) तवाननाम्भोजविरोधिनी द्वा-

वब्जस्तथाब्जं च पुमांस्तु तत्र ।

त्वया जितोऽस्ताचलदुर्गमाप-

त्यक्तं पुनः क्लीबमुपैति मोदम् ॥२५॥

१०

कारः ॥२२॥ § ३०) अरुणाम्बरमिति—हे देवि ! हे राज्ञि ! अरुणाम्बरं अरुणेन सूर्यसारथिना सहितमम्बरं अरुणाम्बरं लोहितगगनमित्यर्थः पक्षे लोहितवस्त्रं दधाना धृतवती, विनिद्रपद्ममेव विकसितकमलमेव मुखं यस्याः सा पक्षे विनिद्रपद्ममिव मुखं यस्यास्तथाभूता, कमलान्येव लोलानि अक्षीणि यस्याः सा पक्षे कमले इव लोले अक्षिणी यस्याः सा, संध्यैव रमणी संध्यारमणी संध्यास्त्री तव भवत्याः पादसेवां चरणशुश्रूषां कर्तुमिव विधातु-
१५ मिव आयाति समागच्छति । रूपकालंकारः । आर्याछन्दः ॥२३॥ § ३१) लक्ष्म्या इति—हे देवि ! हे राज्ञि ! समस्तवसुवृद्धिपुषः समस्तानां सर्वेषां वसुवृद्धिं धनवृद्धिं पुष्पातीति समस्तवसुवृद्धिपुष्टं तस्या लक्ष्म्याः श्रियो निवा-
सोऽपि वसुमतो धनवतः पक्षे सूर्यस्य वसुभिः धनैः पक्षे किरणैः परोतं व्याप्तमपि अब्जं कमलं त्वदीयमुखमेव राजा नृपतिश्चन्द्रश्च तस्य विरोधहेतोर्विद्वेषकारणात् नीलालके श्यामकुन्तले वसुमत्त्वं धनवत्त्वं किरणवत्त्वं च न दधाति । राज्ञी नीलालके धृतं कमलं प्रातर्निष्पन्नं जातमिति भावः यथा लक्ष्म्या निवासभूतोऽपि धनैर्युक्तोऽपि
२० वा कश्चित् राजविरोधात् स्वस्य धनवत्त्वं न प्रदर्शयति तथा कमलं लक्ष्म्या निवासभूतमपि वसुभिः परोतमपि वा त्वदीयमुखराजविरोधात् स्वस्य वसुमत्त्वं धनवत्त्वं न दधातीत्यहो आश्चर्यम् । श्लेषकाव्यलिङ्गालंकारी । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२४॥ § ३२) तवेति—तव भवत्याः आननाम्भोजविरोधिनी मुखकमलविद्वेषिणी द्वौ स्तः अब्जचन्द्रः तथा अब्जं कमलं च । तत्र द्वयोरब्जयोः यः पुमान् पुरुषत्वोपेतः पुंलिङ्गश्च चन्द्र इत्यर्थः स त्वया जितः पराभूतः सन् अस्ताचलदुर्गं पश्चिमाचलकान्तारम् आपत् लज्जितो भूत्वा पश्चिमाचलकान्तार-
२५ मगच्छदिति भावः । यत्तु क्लीबं पुरुषत्वहीनं नपुंसकलिङ्गं च कमलमित्यर्थः, तत् त्यक्तं सत् उपेक्षितं सत् मोदं हर्षं विकासं च उपैति प्राप्नोति निर्लज्जतया मोदत इति भावः । प्रातश्चन्द्रोऽस्तमेति कमलं च विकसतीति

कुन्दकुसुमके समान सफेद बैलको देखा ॥२२॥ § ३०) अरुणाम्बरमिति—हे देवि ! जो लाल आकाश रूपी लालवस्त्रको धारण कर रही है, खिले हुए कमल ही जिसका मुख है तथा कमल ही जिसके चंचल नेत्र हैं ऐसी सन्ध्यारूपी स्त्री तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेके लिए ही मानो आ रही है ॥२३॥ § ३१) लक्ष्म्या इति—हे देवि ! जो सबके धनकी वृद्धिको पुष्ट करनेवाली लक्ष्मीका निवास भी है तथा वसुमान्—धनाढ्य (पक्षमें सूर्य) के वसु—धन (पक्षमें किरणों) से व्याप्त भी है वह कमल तुम्हारे मुखरूपी राजा—भूपाल (पक्षमें चन्द्रमा) से विरोध होनेके कारण श्यामल केशोंके बीच वसुमत्त्व—धनाढ्यपना (पक्षमें किरणोंसे सहितपना) को प्रकट नहीं कर रहा है यह आश्चर्य है ॥२४॥ § ३२) तवेति—तुम्हारे मुखकमलके विरोधी
३० दो हैं एक चन्द्रमा और दूसरा कमल । उन दोनोंमें जो पुरुष—पुंलिंग (पक्षमें पौरुषसे सहित) है वह चन्द्रमा तो तुम्हारे द्वारा पराजित होता हुआ अस्ताचलके दुर्गको प्राप्त हो चुका है परन्तु तुमने जिसे नपुंसक समझकर छोड़ दिया था वह कमल हर्ष (विकास) को

§ ३३) इति प्राबोधिकहृद्यतमपद्यपरिपाटीभिर्मङ्गलवाद्यरवधाटोभिश्च प्रबुद्धा सा देवी कृतप्रत्युपकृत्या कलितमङ्गलनेपथ्या सभामण्डपविभासितसिंहासनाग्रमधिवसन्तं नाभिमेदिनीकान्तं निजनयनचकोरकुमुदिनीकान्तमासाद्य यथादृष्टं स्वप्नजातं निवेदयामास ।

§ ३४) पृथ्वीशोऽप्यवधिज्ञानप्रबुद्धः स्वप्नसत्फलम् ।

व्याजहार रदोद्योतव्याजहारमयं दधत् ॥२६॥

§ ३५) अपि देवि मत्तेभगमने ! मत्तेभदर्शनेन महान्पुत्रस्ते भविता वृषासक्तचित्ते ! वृषनिरीक्षणेन सकललोकाधिपतिः, सिंहमध्ये ! सिंहविलोकेनानन्तवीर्यो, मालारुचिरकचनिचये ! मालावलोकनेन धर्मतीर्थकर्ता, लक्ष्मीतुलितसौन्दर्यसंपन्ने ! लक्ष्मीवीक्षणेन लोकोत्तरविभवः, पूर्णचन्द्रानने ! पूर्णचन्द्रदर्शनेन सकलजनानन्दसंदायकः, प्रभाकरनिभमणिगणमण्डिते ! प्रभाकरनिरी-

यावत् । इलेषोत्प्रेक्षे उपजातिवृत्तम् ॥२५॥ § ३३) इतीति—इतीत्यं प्रबोधो जागरणं प्रयोजनं येषां ते १० प्राबोधिकास्तेषां हृद्यतमानामतिसुन्दराणां पद्यानां श्लोकानां परिपाठ्यः संततयस्ताभिः, मङ्गलवाद्यानां रवधाट्यश्च शब्दपरम्पराश्च ताभिः प्रबुद्धा जागृता सा देवी मरुदेवी राज्ञी कृतानि प्रत्युपकृत्यानि प्रातःकालिककार्याणि यथा तथाभूता, कलितं धृतं मङ्गलनेपथ्यं माङ्गलिकवेषो यथा तथाभूता सती सभामण्डपे विभासितं यत् सिंहासनं तस्याग्रम् अधिवसन्तं तत्र तिष्ठन्तं निजनयनचकोरयोः कुमुदिनीकान्तश्चन्द्रस्तं नाभिमेदिनीकान्तं नाभिराजम् आसाद्य प्राप्य यथादृष्टमवलोकितक्रमेण स्वप्नजातं स्वप्नसमूहं निवेदयामास कथयामास । १५

§ ३४) पृथ्वीशोऽपीति—अवधिज्ञानेन प्रबुद्धः प्रबोधं प्राप्तः अयं पृथ्वीशोऽपि नाभिमहोपालोऽपि रदानां दन्तानामुद्योतस्य प्रकाशस्य व्याजेन मिषेण हारं मौक्तिकयष्टि दधत् धारयन् देव्या वक्षसीत्यर्थः स्वप्नानां सत्फलं समीचीनपरिणामं व्याजहार जगाद । यमकालंकारः ॥२६॥ § ३५) अयीति—अयि देवि, मत्तेभस्य गमनमिव गमनं यस्यास्तत्संबुद्धौ हे मत्तेभगमने ! हे मत्तमतङ्गजगामिनि ! मत्तेभदर्शनेन मत्तद्विषावलोकनेन ते तव महान् पुत्रो भविता भविष्यति । वृषे वर्मे आसक्तं लीनं चित्तं यस्यास्तत्संबुद्धौ हे वृषासक्तचित्ते ! २० वृषस्य वृषभस्य निरीक्षणेन समवलोकनेन सकललोकाधिपतिः समग्रलोकेश्वरः, । सिंहस्येव मध्यं यस्यास्तत्संबुद्धौ हे सिंहमध्ये ! सिंहविलोकेन मृगेन्द्रदर्शनेन अनन्तं वीर्यं यस्य तथाभूतः । मालाभिः स्रग्भिः रुचिरो रमणीयः कचनिचयः केशसमूहो यस्यास्तत्संबुद्धौ हे मालारुचिरकचनिचये ! मालयोरवलोकनेन साद्वयदर्शनेन धर्मतीर्थस्य वर्मपरम्परायाः कर्ता विधायकः । लक्ष्म्या तुलितं यत्सौन्दर्यं लावण्यं तेन संपन्ना तत्संबुद्धौ हे लक्ष्मीतुलितसौन्दर्यसंपन्ने ! लक्ष्म्या वीक्षणेन समवलोकनेन लोकोत्तरो विभवो यस्य तथाभूतो लोकोत्तरविभवः २५

प्राप्त हो रहा है ॥२५॥ § ३३) इतीति—इस प्रकार जगानेके कार्यमें नियुक्त वन्दीजनोंके अत्यन्त सुन्दर श्लोकोंके समूहसे और मंगलमय बाजोंकी शब्द परम्परासे जो जाग उठी थी, जिसने प्रातःकालके कार्य सम्पन्न कर मांगलिक वेषभूषा धारण की थी ऐसी मरुदेवीने सभामण्डपमें सुशोभित सिंहासनके अग्रभागपर स्थित तथा अपने नेत्ररूपी चकोरोंके लिए चन्द्रमाके समान आनन्ददायक नाभिराजाके पास जाकर देखे हुए क्रमसे सब स्वप्न सुनाये । ३० § ३४) पृथ्वीशोऽपीति—अवधिज्ञानी राजा नाभिराय भी दाँतोंकी कान्तिके बहाने हार पहनाते हुए इस प्रकार स्वप्नोंका शुभफल कहने लगे ॥२६॥ § ३५) अयीति—हे मत्त हाथीके समान चालवाली देवि ! मत्त हाथीके देखनेसे तुम्हारे महान् पुत्र होगा । हे धर्ममें लीन चित्तवाली देवि ! बैलके देखनेसे वह पुत्र समस्त लोकका स्वामी होगा । हे सिंहके समान पतली कमरवाली ! सिंहके देखनेसे वह अनन्तवीर्यसे युक्त होगा । हे मालाओंसे सुन्दर केशोंवाली ! मालाओंके देखनेसे वह पुत्र धर्मतीर्थका कर्ता होगा । हे लक्ष्मीके समान सौन्दर्यवाली ! लक्ष्मीके देखनेसे वह पुत्र सर्वश्रेष्ठ वैभवका धारक होगा । हे पूर्णचन्द्रमुखे ! पूर्ण-

- क्षणेन निःसीमतेजःप्रसरः, कुम्भस्तनि ! कुम्भयुगलेन निधिभाक्, मोनायतलोचने ! मीनद्वयेना-
नन्तसुखः, सरोवरसदृशनाभिमण्डले ! सरोवरेण सल्लक्षणोपेतः, पारावारगम्भीरे ! पारावारेण
समस्तदर्शी, पीठायितनितम्बे ! सिंहपीठदर्शनेन साम्राज्यमहितः, सुरविमानसमानमन्दिरे ! सुर-
विमानेन स्वर्गादवतरिष्यति, फणिनिभवेणि ! फणिपतिभवनेनावधिज्ञानलोचनः, सद्रत्नशोभिते !
९ रत्नसंचयेन गुणाकरः, शुचिस्मिते ! शुचिदर्शनेन कर्मन्धनदहनः, वृषभाकारमादाय तवास्य-
प्रवेशेन वृषभो देवस्त्वद्गर्भे संनिधास्यतीति ।

§ ३६) तावत्सुराधिपतिशासनतः समेत्य

दिवकन्यकाश्च कुतुकेन सिषेविरे ताम् ।

- सर्वश्रेष्ठसमृद्धियुक्तः । पूर्णचन्द्र इवाननं यस्यास्तत्संबुद्धौ हे पूर्णचन्द्रानने पूर्णन्दुमुखि ! पूर्णचन्द्रस्य दर्शनेन
१० सकलजनानां निखिलप्राणिनामानन्दस्य हर्षस्य संदायक इति सकलजनानन्दसंदायकः । प्रभाकरनिभाः सूर्य-
सदृश ये मणिगणास्तैर्मण्डिता शोभिता तत्संबुद्धौ हे प्रभाकरनिभमणिगणमण्डिते ! प्रभाकरस्य सूर्यस्य
निरीक्षणेन निःसीमा तेजःप्रसरो यस्य तथाभूतो निःसीमतेजःप्रसरः अपरिमितप्रतापसमूहः । कुम्भाबिव स्तनौ
यस्यास्तत्संबुद्धौ हे कुम्भस्तनि ! कुम्भयुगलेन कलशयुगेन निधि भजतीति निधिभाक् लोकोत्तरकोषयुक्तः ।
मोनाविवायते लोचने यस्यास्तत्संबुद्धौ हे मोनायतलोचने ! मीनद्वयेन मीनयुगलेन अनन्तं सुखं यस्य तथाभूतो-
१५ ऽनन्तसौख्यभाक् । सरोवरसदृशं नाभिमण्डलं यस्यास्तत्संबुद्धौ हे सरोवरसदृशनाभिमण्डले ! सरोवरेण
कासारावलोकनेन सद्बिर्लक्षणोपेतः सल्लक्षणोपेतः प्रशस्तविल्लसहितः । पारावार इव गम्भीरा तत्संबुद्धौ
हे पारावारगम्भीरे ! पारावारेण सागरेण समस्तदर्शी विश्वदृशः । पीठायितनितम्बे ! सिंहपीठस्य सिंहासनस्य
दर्शनेन समवलोकनेन साम्राज्येन महितः शोभितः साम्राज्यमहितः । सुरविमानसमानं मन्दिरं भवनं यस्या-
स्तत्संबुद्धौ हे सुरविमानसमानमन्दिरे ! सुरविमानेन देवविमानेन स्वर्गात् नाकात् अवतरिष्यति समागमि-
२० ष्यति । फणिनिभा सर्पतुल्या वेणी भस्मिलो यस्यास्तत्संबुद्धौ हे फणिनिभवेणि ! फणिपतिभवनेन नागेन्द्रभवनेन
अवधिज्ञानं लोचनं यस्य तथाभूतोऽवधिज्ञानसंपन्नः । सद्रत्नशोभिते प्रशस्तरत्नालङ्किते ! रत्नसंचयेन रत्न-
राशिना गुणाकरो गुणखनिः । शुचिस्मिते धवलहसिते ! शुचिदर्शनेन अग्निनिरीक्षणेन कर्मन्धनदहनः कर्मदाह-
भस्मकर्ता । वृषभाकारं वृषाकृतिम् आदाय गृहीत्वा तव भवत्या आत्मप्रवेशेन मुखप्रवेशेन वृषभो देवः त्वद्गर्भे
भवद्गर्भे संनिधास्यति संनिहितो भविष्यति । इतीत्यस्य व्याजहारेति क्रियया संबन्धः । § ३६) तावदिति—
२५ तावत् तावता समयेन सुराधिपतिशासनतः शक्राज्ञया समेत्य समागत्य दिवकन्यका रुचकगिरिनिवासिन्यः

- चन्द्रमाके देखनेसे वह सब लोगोंको आनन्दका देनेवाला होगा । हे सूर्यके समान मणियोंके
समूहसे सुशोभित ! सूर्यके देखनेसे वह अपरिमित तेजके प्रसारसे सहित होगा । हे कुम्भके
समान स्तनोंवाली ! कुम्भयुगलके देखनेसे वह निधियोंको प्राप्त करनेवाला होगा । हे मीनके
समान लम्बे नेत्रोंवाली ! मीनयुगलके देखनेसे वह अनन्तसुखसे युक्त होगा । हे सरोवरके
३० समान नाभिमण्डलवाली ! सरोवरके देखनेसे वह अच्छे लक्षणोंसे सहित होगा । हे समुद्र-
के समान गम्भीर ! समुद्रके देखनेसे वह पुत्र सर्वदर्शी होगा । हे स्थूल नितम्बोंवाली ! सिंहा-
सनके देखनेसे वह साम्राज्यशाली होगा । हे देवविमानके समान मन्दिरवाली ! देवविमान-
के देखनेसे वह स्वर्गसे अवतार लेगा । हे सर्पके समान चोटीवाली ! नागेन्द्रका भवन देखने-
से वह अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे युक्त होगा । हे समीचीन रत्नोंसे सुशोभित ! रत्नराशिसे वह
३५ पुत्र गुणोंकी खान होगा । हे धवल मुसकानवाली ! अग्निके देखनेसे वह कर्मरूपी ईन्धन-
की जलानेवाला होगा और बैलका आकार लेकर तुम्हारे मुखमें प्रवेश करनेसे वृषभनाथ
भगवान् तुम्हारे गर्भमें आवेंगे । § ३६) तावदिति—उसी समय इन्द्रकी आज्ञासे आकर

श्रीर्ह्यधृतिः सपदि कीर्तिसुबुद्धिलक्ष्म्यो

देव्यो जिनस्य जननीमनवद्यरूपाम् ॥२७॥

§ ३७) तास्तस्याः परिचर्यायां गर्भशोधनमादितः ।

प्रचक्रुः शुचिभिर्द्रव्यैः स्वर्गलोकादुपाहृतैः ॥२८॥

§ ३८) तत्र काचिन्मुखविजितसेवार्थसमागतविधुबिम्बशङ्काकरेण धवलातपत्रेण, अन्या च तद्वदनकमलमभिपतन्मरालशङ्कावहेन चामरेण, अपरा च निजतनुलताविलसितभुजशाखासंसक्त-शुकनिकरसंदेहदायकेन ताम्बूलीदलवृन्देन, इतरा च तदङ्गरक्षणतत्परा देहकान्तिसरोवरदीर्घ-मीनायमानेन करकलितकरवालेन यथोचितं मरुदेव्याः सेवां चक्रिरे ।

§ ३९) सा भारतीव व्यङ्ग्यार्थं सिन्धुवेल्लेव सन्मणिम् ।

बभार सुदती गर्भं गुहेव हरिपोतकम् ॥२९॥

१०

षट्पञ्चाशत् संख्याका देवीविशेषाः श्रीः पद्मसरोवरवासिनी, ह्रीः महापद्मसरोवरवासिनी, धृतिः तिगिञ्जसरोवर-वासिनी, कीर्तिः केसरिसरोवरवासिनी, सुबुद्धिः महापुण्डरीकसरोवरवासिनी, लक्ष्मीः पुण्डरीकसरोवरवासिनी एताः षट्कुमारिका देव्यश्च अनवद्यं निर्दोषं रूपं यस्यास्तां जिनस्य तीर्थकृतः जननीं मातरं तां मरुदेवीं कुतुकेन कुतूहलेन सपदि शोधनं सिषेविरे सेवन्ते स्म । वसन्ततिलकाच्छन्दः ॥२७॥ § ३७) तास्तस्या इति—ताः पूर्वोक्ता देव्यः तस्या जिनजनन्याः परिचर्यायां सेवयाम् आदितः सर्वतः प्राक् स्वर्गलोकात् त्रिविष्टपात् जपाहृतैरानीतैः शुचिभिः पवित्रैः द्रव्यैः पदार्थैः गर्भस्य शोधनं गर्भशोधनं गर्भशुद्धिं प्रचक्रुः प्रारब्धवत्यः ॥२८॥ § ३८) तत्रेति—तत्र तासु देवीषु काचिद्देवी मुखेन विजितं पराभूतं अतएव सेवार्थं समागतं समायातं यद् विधुबिम्बं चन्द्रमण्डलं तस्य शङ्काकरेण संदेहदायकेन धवलातपत्रेण शुक्लच्छत्रेण, अन्या च तस्या मरुदेव्या वदनकमलं मुखारविन्दम् अभिपतन् संमुखमागच्छन्त्यो मरालो हंसस्तस्य शङ्कावहेन संदेहधारकेण चामरेण बालव्यजनेन, अपरा च निजतनुलतायां स्वशरीरवल्यां विलसिता शोभिता या भुजशाखा बाहुशाखा तस्यां संसक्तः संनिविष्टो यः शुकनिकरः कीरसमूहस्तस्य संदेहदायकेन संशयोत्पादकेन ताम्बूलीदलवृन्देन नागवल्लीदल-वीटिकासमूहेन, तस्या अङ्गस्य रक्षणे तत्परा लीना तदङ्गरक्षणतत्परा इतरा च देवी देहकान्तिः शरीरकान्ति-रेव सरोवरस्तस्य दीर्घमीन इवाचरति तेन तथाभूतेन करकलितकरवालेन हस्तधृतकृपाणेन यथोचितं यथा-योग्यं मरुदेव्याः सेवां शुभ्रपां चक्रिरे विदिविरे । § ३९) सेति—शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती सुन्दरा सा मरुदेवी व्यङ्ग्यार्थं ध्वन्यर्थं भारतीव वाणोव, सन्मणिं समीचीनमणिं सिन्धुवेल्लेव सागरतटीव, हरिपोतकं

१५

२०

२५

दिकन्यकाएँ तथा श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि और लक्ष्मी नामक देवियाँ निर्दोषरूपसे युक्त जिनमाता मरुदेवीकी कुतूहलपूर्वक शीघ्र ही सेवा करने लगीं ॥२७॥ § ३७) तास्तस्या इति—उन देवियोंने जिनमाताकी परिचर्यामें सबसे पहले, स्वर्गलोकसे लाये हुए पवित्र पदार्थोंसे गर्भशोधन किया ॥२८॥ § ३८) तत्रेति—उन देवियोंमें किसी देवीने, मुखकमलसे पराजित होकर सेवाके लिए आये हुए चन्द्रबिम्बकी शंका करनेवाले सफेद छत्रसे, किसी अन्यने उनके मुखकमलकी ओर आते हुए हंसकी शंका करनेवाले चामरसे, किसी दूसरीने अपनी शरीर लतामें सुशोभित बाहुरूपी शाखापर बैठे हुए तोताओंके समूहका संदेह देनेवाले पानोंके समूहसे, और उनके शरीरकी रक्षा करनेमें तत्पर रहनेवाली किसी अन्य देवीने शरीरकी कान्ति रूप सरोवरके किसी बड़े भारी मीनके समान आचरण करनेवाले हस्तधृत कृपाणसे यथायोग्य मरुदेवीकी सेवा की थी । § ३९) सेति—जिस प्रकार भारती व्यंग्य अर्थको, समुद्रकी बेला उत्तममणिको और गुहा सिंहके शिशुको धारण करती है उसी प्रकार सुन्दर

३०

३५

§ ४०) नोदरे विकृतिः कापि न स्तनौ नीलचूचुको ।

न पाण्डु वदनं तस्या गर्भोऽप्यवृधदद्भुतम् ॥३०॥

§ ४१) कदाचिन्मरुदेवी देवीजनैः सह विकचवारिजविगलन्मधुरसमांसलपयःपरिवाहां तरङ्गिणीमासाद्य, बाले ! अतनुविहारकान्तासि । मुग्धे ! किमद्यापि चापक्रीडापरायणासि ।
५ भामिनि ! किमिति शरविहारमाकलयसि । सुदति ! किंवा बहुतरवारिक्रीडां विदधासि । मुग्धे ! सर्वतोमुखभङ्गं करोषि । अबले ! जडसंगमं परिहर । सुकेशि ! कीलालार्द्रं वसनं संत्यज । बुद्धे ! कुतो विषं पिबसि । अपापे ! त्यज कबन्धानुरागम् । सुमुखि ! स्वर्णस्थितिमाप्तासि । सुमध्ये !

सिंहशावकं गुहेष्व कन्दरेव गर्भं भ्रूणं बभार दधार । मालोपमा ॥२९॥ § ४०) नोदर इति—तस्या मरुदेव्या उदरे जठरे कापि विकृतिः वृद्धिजन्यविकारो नाभवत्, स्तनौ कुचौ नीलचूचुको श्यामवदनी नाभूताम्, वदनं
१० मुखं च पाण्डु धवलं न बभूव तथापि गर्भो भ्रूणं अद्भुतं चित्रं यथा स्यात्तथा अवृधत् वर्धतेस्म ॥३०॥
§ ४१) कदाचिदिति—कदाचित् जानुचित् मरुदेवी देवीजनैः सुराङ्गनाजनैः सह सार्धं विकचभ्यो विकसितेभ्यो वारिजेभ्यः कमलेभ्यो विगलन् निःसरन्त्यो मधुरसस्तेन मांसलः पुष्टः पयःपरिवाहो जलप्रवाहो यस्यास्तां तरङ्गिणीं नदीम् आसाद्य प्राप्य, हे बाले ! न विद्यते तनुः शरीरं यस्य सोऽतनुः कामस्तस्य विहारेण क्रीडया कान्ता मनोहरा अस्ति, अतनुविहारेण शरीररहितविहारेण अत्यधिकविहारेण वा कान्ता अस्ति अथवा ईषत्तनु-
१५ र्यस्य सोऽतनुर्जलं तस्मिन् विहारेण क्रीडया कान्तासि । मुग्धे ! सुन्दरि ! मूढे ! वा अद्यापि किं चापक्रीडायां धनुःक्रीडायां परायणा तत्परा अस्ति, अथवा अद्यापि च सांप्रतमपि आपक्रीडायां जलसमूहक्रीडायां परायणासि । भामिनि ! इतीत्थं किं शरविहारं बाणविहारं जलविहारं वा आकलयसि करोषि 'शरस्तेजनके काण्डे शरं नोरे नपुंसकम्' इति विश्वलोचनः । सुदति ! सुरदने ! बहुतरवारिक्रीडां प्रभूतखड्गक्रीडां किंवा विदधासि, अथवा बहुतरवारिक्रीडां प्रचुरतरजलक्रीडां किंवा विदधासि । मुग्धे ! सर्वतः समन्तात् मुखभङ्गं वदन-
२० कौटिल्यं करोषि अथवा सर्वतोमुखस्य जलस्य भङ्गं करोषि ? अबले ! जडसंगमं धूर्तसंगं डलयोरभेदात् जल-संगमं परिहर मुञ्च । सुकेशि ! सुकचे ! कीलालार्द्रं रुधिरार्द्रं जलार्द्रं वा वसनं वस्त्रं संत्यज 'कीलालं रुधिरंऽपि स्वात्पातोयेऽपि नपुंसकम्' इति विश्वलोचनः । बुद्धे हे बुद्धिदेवि ! विषं गरलं पक्षे जलं कुतो पिबसि—'विषं तु गरले जले' इति विश्वलोचनः । अपापे ! मिष्कलङ्के कबन्धे शिरोरहितशरीरेऽनुरागं प्रीतिं त्यज पक्षे कबन्धे जलेऽनुरागं त्यज 'कबन्धं वारि न श्रो तु गतमूर्द्धकलेवरं' इति विश्वलोचनः । सुमुखि ! सुन्दरि !

२५ दाँतोवाली मरुदेवी गर्भको धारण कर रही थी ॥२९॥ § ४०) नोदर इति—यद्यपि मरुदेवीके उदरमें कोई विकार नहीं हुआ था, स्तनोंके अग्रभाग भी काले नहीं हुए थे और मुख भी सफेद नहीं हुआ था तो भी उनका गर्भ वृद्धिको प्राप्त हो रहा था यह आश्चर्यकी बात थी ॥३०॥ § ४१) कदाचिदिति—किसी समय मरुदेवी, देवीजनोंके साथ विकसित कमलोंसे झरते हुए मधुरसके द्वारा परिपुष्ट जल प्रवाहसे युक्त नदीको प्राप्त होकर इस प्रकारके द्वयर्थक वचन कहने लगी—हे बाले ! तू अतनुविहार—कामक्रीडासे सुन्दर है, (तू जलक्रीडासे सुन्दर है) हे मुग्धे ! तू अब भी चापक्रीडा—धनुष क्रीडामें तत्पर है (जल समूहकी क्रीडामें तत्पर है,) हे भामिनि ! क्यों इस तरह शरविहार—बाणोंको क्रीडा कर रही है (जलक्रीडा कर रही है) हे सुदति ! तू बहुतरवारि क्रीडा—बहुत अधिक तलवारकी क्रीडा क्यों करती है (तू अत्यधिक जलक्रीडा क्यों करती है) हे मुग्धे ! तू सर्वतोमुखभंग—सब ओर मुख टेढ़ा करती है (तू जलका भंग करती है) हे अबले ! जडसंगम—धूर्तका संगम छोड़ दे (जलका संगम छोड़ दे) हे सुकेशि ! कीलालार्द्र—खूनसे गीला वस्त्र छोड़ (पानीसे गीला वस्त्र-दूर कर) हे बुद्धि ! तू विष—जहर पी रही है (तू जल पी रही है) हे अपापे—कबन्धा-

प्रचुरोमिकाव्रजं भजसि । इत्यादि विविधव्याहारपेशलां व्यातुक्षिकां निर्वर्त्य भवनप्रासादमारुह्य, यावत्सचमत्कारसल्लापभभिकाङ्क्षति तावत्काचिदिदं पद्यमाह ।

§ ४२) नदवनजमुदारं नाभिराजस्य कान्ते !

तव मुखसुखजन्मप्राप्तिसक्त्यातपस्थम् ।

अपि यदि तदधस्तान्नीतशोर्षं तपस्येत्

जनवदनमथापि प्रोद्भवेदेणनेत्रे ! ॥३१॥

§ ४३) अहो साधु साधु भाषितमिति तामभिनन्द्यान्या तावदाह—

§ ४४) सुरादिजीवैरमृतनिष्ठैर्लाभ्या सरःस्थितिः ।

कुचाद्रितटयोस्तन्वि ! तव भातीति नाद्भुतम् ॥३२॥

स्वर्णस्य काञ्चनस्य स्थितिस्तां स्वर्णस्थितिं पक्षे सुष्ठु अर्णः स्वर्णस्तस्मिन् स्थितिस्ताम् आत्मा प्राप्तासि । १०
सुमध्वे ! शोभनावलम्बे ! प्रचुरोमिकाणां बहुलाङ्गुलीयकानां व्रजं समूहं पक्षे प्रचुरोमिकाणां प्रभूततरङ्गानां व्रजं भजसि सेवसे । इत्यादि विविधव्याहारेण नैकविधालापेन व्यातुक्षिकां 'फाग' इति प्रसिद्धां क्रीडां जल-
क्रीडां वा निर्वर्त्य समाप्य भवनप्रासादं भवनाट्टालिकामारुह्य, यावत् सचमत्कारश्चमत्कारसहितः सल्लापः
समापणं तम् अभिकाङ्क्षति वाञ्छति तावत् काचिद्देवी इदं पद्यमाह कथयामास । § ४२) नदेति—हे एण-
नेत्रे ! हे मृगलोचने ! हे नाभिराजस्य कान्ते ! मरुदेवि ! उदारं समृत्कुण्डं नदवनजं सरिस्सलिलजं तव भवत्या १५
मुखमेव वदनमेव सुखजन्म सुखदायकजनिस्तस्य प्राप्तिः सक्त्या प्राप्तिस्त्वपरतया अहं तव मुखं भविष्यामीतीच्छ-
येत्यर्थं आतपस्थं आतपे घर्मे तिष्ठतीति आतपस्थं पक्षे आ समन्तात् तपसि तपश्चरणे तिष्ठतीति आतपस्थं
'वर्षरे शरि विसर्गलोपो वा वनतव्यः' इति वातिकेन वैकल्पिको विसर्गलोपः । तत् वदनजं यदि अद्यस्तात् नीचैः
नीतशोर्षं नीतमस्तकं यथा स्वात्तया शिरो नीचैः कृत्वा तपस्येत् तपश्चरणं कुर्यात् अपि संभावनायाम् अथापि
एतत्तपश्चरणानन्तरमपि तत् जनवदनं साधारणजनमुखं भवेत् भवितुं शक्नुयात् । तव मुखभवनं तु तादृश- २०
तपश्चरणेनापि दुःसाध्यमेवास्तीति भावः । मालिनी छन्दः ॥३१॥ § ४३) अहो इति—अहो साधु साधु
सम्पक् सम्यक् बोधसायां द्वित्वमिति तां तथा वदन्तीं देवीम् अभिनन्द्य प्रशस्य अन्या देवी तावत् प्राह
कथयामास— § ४४) सुरादीति—हे तन्वि ! हे कृशाङ्गि ! तव कुचाद्रितटयोः स्तनगिरितीरयोः अमृते
सुधायां जले च निष्ठा आस्था येषां तैः सुरादिजीवैः देवप्रभृतिप्राणिभिः लाल्या सेवनीया प्रशंसनीया च
सरःस्थितिः तडागस्थितिः भाति शोभते इति नाद्भुतं नाश्चर्यम् अद्रितटयोः सरःस्थितेरद्भुतत्वेऽपि तन्निषेध २५

नुराग—शिररहित धड़के अनुरागको छोड़ (जलके अनुरागको छोड़), हे सुमुखि !
तू स्वर्णस्थिति—सुवर्णकी स्थितिको प्राप्त हुई है (तू उत्तमजलमें स्थितिको प्राप्त हुई है), हे
सुमध्वे ! तू बहुत भारी अँगूठियोंके समूहको प्राप्त हो रही है (तू बहुत भारी तरंगोंके समूह-
को प्राप्त हो रही है) इस प्रकार नाना तरहके वचनोंसे मनोहर फागको पूरा कर महलमें
पहुँची । वह ज्योंही वहाँ चमत्कारपूर्ण वार्तालापकी इच्छा करती है त्योंही कोई देवी यह पद्य ३०
बोल उठी । § ४२ नदेति—हे मृगनेत्रि ! हे नाभिराजकी प्राणवल्लभे ! नदीका उत्कृष्ट कमल
तुम्हारे मुखरूप सुखदायक जन्मकी प्राप्तिकी लगनसे आतपस्थ—चाममें स्थित (सब ओरसे
तपमें स्थित होकर) विद्यमान है सो यदि वह नीचे शिर लटकाकर तप कर सके तो उतनेपर
भी साधारण मनुष्यका मुख हो सकता है तुम्हारा मुख हो सकता तो दुर्लभ ही है ॥३१॥
§ ४३) अहो इति—अहो ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहा इस प्रकार उसकी प्रशंसा कर दूसरी ३५
देवी बोली । § ४४) सुरादिजीवैरिति—हे कृशाङ्गि ! तुम्हारे स्तनरूपी पर्वतोंके तटपर अमृत—
सुधा और जलके प्रेमी देव आदि प्राणियोंके द्वारा प्रशंसनीय—सेवनीय सरस्थिति—सरोवर-

§ ४५) अपरा तावदाह—

§ ४६) चन्द्रात्मना सुधाब्धौ तव कान्त्यब्धौ मुखात्मना जातः ।

द्विजराज इत्यभिख्यामन्वर्था वहति घनकुचे ! राजा ॥३३॥

§ ४७) अन्या तावदाह—

५ § ४८) अधरारुणबिम्बेद्वस्मितेन्दुरुचिसुन्दरम् ।

महादर्शविलासं ते मुखं घत्त इति स्फुटम् ॥३४॥

§ ४९) न केवलमेतदेव युक्तम् । अन्यदप्येव दरोदृश्यत इत्यभिधाय काचिदाह—

§ ५०) कीर्तीन्दुमण्डलोपेतः प्रतापरविशोभितः ।

अमानवचरित्रस्ते पतिरित्यपि युज्यते ॥३५॥

१० आश्चर्यकर इति भावः पक्षे सरःस्थितिरित्यत्र विसर्गे लुप्ते सति सरस्थितिः हारस्थितिरित्यर्थो योज्यः ॥३२॥

§ ४५) अपरेति—तावत् अपरा काचित् आह कथयति स्म । § ४६) चन्द्रात्मनेति—हे घनकुचे हे पीवर-पयोधरे ! चन्द्रात्मना शशिरूपेण सुधाब्धौ पीयूषपारावारे तव भवत्याः कान्त्यब्धौ दीप्तितोयनिधौ मुखात्मना मुखरूपेण जातः समुत्पन्नो राजा चन्द्रः द्विजराजो द्विजानां द्विप्रकारोत्पन्नानां राजा स्वामी इत्येवम् अन्वर्था सार्थकाम् अभिख्याम् आह्वा 'आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च' इत्यमरः । वहति दधाति । श्लेषः ।

१५ आर्याछन्दः ॥३३॥ § ४७) अन्येति—अन्या पुनर्भूयः आह जगाद । § ४८) अधरेति—अधर ओष्ठ एवा-रुणबिम्बं लोहितरुचकफलं तत्र इदं शोभितं स्मितमेव मन्दहास्यमेव इन्दुरुचिः कर्पूरकान्तिः ताभ्यां रक्तश्वेत-पदार्थाभ्यां सुन्दरं मनोहरं ते तव मुखं महादर्शविलासं महादर्पणशोभां घत्त इति स्फुटं स्पष्टम् । पक्षे अधर एव अरुणबिम्बं सूर्यमण्डलं बद्धस्मितमेव प्रकटितमन्दहास्यमेवेन्दुरुचश्चन्द्रस्तयो रच्या कान्त्या सुन्दरं ते मुखं महादर्शविलासम् अमावास्याशोभां घत्त इति स्फुटम् । श्लेषः ॥ § ४९) न केवलमिति—केवलं मात्रम्

२० एतदेव न युक्तं किन्तु अन्यदपि मुखातिरिक्तोऽपि एवं महादर्शविलाससहितो दरोदृश्यते पुनः पुनरवलोक्यते इतीत्यभिधाय कथयित्वा काचिद् देवो आह— § ५०) कीर्तीति—कीर्तिरेवेन्दुमण्डलं चन्द्रबिम्बं तेनोपेतः सहितः, प्रताप एव रविः प्रतापरविस्तेजस्तपनस्तेन शोभितः, ते तव पतिः न केवलं मुखं पतिरपीत्यर्थः अमानवचरित्रः अमावास्यानूतनचरित्रयुक्तः पक्षे लोकोत्तरचरित्रः अस्ति इत्यपि युज्यते एतदपि संगच्छते

२५ की स्थिति शोभा दे रही है यह आश्चर्यकी बात नहीं है (पक्षमें तुम्हारे कठोर स्तनोंपर हार शोभा दे रहा है) ॥३२॥ § ४५) अपरेति—तब तक कोई अन्य देवी बोली । § ४६) चन्द्रा-त्मनेति—हे पीवरपयोधरे ! चन्द्ररूपसे अमृतके समुद्रमें और मुख रूपसे तुम्हारे कान्तिसागर-में उत्पन्न हुआ चन्द्रमा द्विजराज—दो बार उत्पन्न होनेवालोंका स्वामी (पक्षमें द्विजराज—चन्द्र) इस सार्थक नामको धारण करता है । भावार्थ—चन्द्रमा द्विजराज कहलाता है सो उक्त प्रकारसे चन्द्रमा दो बार उत्पन्न होकर सचमुच ही द्विजराज हुआ है ॥३३॥ § ४७)

३० अन्येति—कोई दूसरी देवी बोली । § ४८) अधरेति—अधरोष्ठ रूपी लालबिम्बफल पर सुशो-भित मन्द मुसकान रूपी सफेद कान्तिसे सुन्दर तुम्हारा मुख विशालदर्पणकी शोभाको धारण कर रहा है यह स्पष्ट है (पक्षमें अधरोष्ठरूपी सूर्य बिम्ब और सुशोभित मन्द मुसकान-रूपी चन्द्रमाकी कान्तिसे सुन्दर तुम्हारा मुख अमावास्याकी बहुत भारी शोभाको धारण कर रहा है यह स्पष्ट है ॥३४॥ § ४९) न केवलमिति—यह ही ठीक नहीं है और कुछ भी तो

३५ ऐसा दिखाई देता है यह कहकर कोई देवी बोली । § ५०) कीर्तीन्दु—कीर्तिरूपी चन्द्र-मण्डलसे सहित और प्रतापरूपी सूर्यसे सुशोभित तुम्हारा पति अमानवचरित्र—अमावास्याके चरित्रको धारण करनेवाला (पक्षमें लोकोत्तर चरित्रसे युक्त) है यह भी तो ठीक है ॥३५॥

§ ५१) इतरा पुनराह—

§ ५२) तन्वि ! त्वद्वचनामृते विलसिते द्राक्षावली द्रागिय

मादौ रूपयुता तथा किल सिता मध्येऽधिका मानिनि ! ।

लोलाक्ष्यग्रजनाञ्चिता नवसुधा लोलम्बकेश्यादितो

राजच्छोभमवास्पदं मधुरसः प्रायो दधौ हास्यताम् ॥३६॥

§ ५३) एतच्छ्रुत्वा साधु चमत्कारभाषणधुरीणा साधु, द्राक्षावली रुद्राक्षावली, सिता सिकता, नवसुधा नवसुधाना, मधुरसोऽवमधुरसो बभूवेति सम्यगभिहितमित्यभिनन्द्य काचि-
देवमूचे ।

श्लेषरूपके ॥३५॥ § ५१) इतरेति—इतरा अन्या पुनराह— § ५२) तन्वीति—हे तन्वि ! हे कृशाङ्गि ! हे मानिनि ! हे मनस्विनि ! हे लोलाक्षि ! हे चपललोचने ! हे लोलम्बकेशि ! हे भ्रमरकचे ! त्वद्वचनमेवा- १०
मृतमिति त्वद्वचनामृतं तस्मिन् त्वदीयवचनपीयूषे विलसिते सति आदौ पूर्वं रूपयुता सौन्दर्ययुक्ता इयमेषा द्राक्षावली गोस्तनीसंततिः द्राक् इदिति आदौ प्रारम्भे रूपयुता 'रू' इत्यक्षरेण उपयुता सहिता भवति द्राक्षावली रुद्राक्षावली जायते स्मेति भावः । मध्ये अधिका श्रेष्ठा सिता शर्करोपलः मध्येऽधिका भवति अधि-
गतः कः 'क' इति वर्णो यस्यां तथाभूता सिकतेति यावत् । अग्रजनैः श्रेष्ठपुरुषैर्देवैरित्यस्तैरञ्चिता शोभिता नवसुधा प्रत्यग्रपीयूषम् अग्रजनाञ्चिता अग्रजः अग्रोत्पन्नो यो नः—नकारो वर्णस्तेनाञ्चिता शोभिता नवसुधा १५
ना नूतनभूषयववत् जातेति भावः । आदितः प्रारम्भतः यो मधुरसः राजच्छोभं राजन्तो शोभा यस्य तद् राजच्छोभम् अवास्पदं अवस्थ रक्षणस्यास्पदं स्थानं बभूव सः, अवास्पदम् 'अव' इति पदस्यास्पदं स्थानं सन् प्रायः प्रचुरेण हास्यतां हास्यभाजनतां दधौ । श्लेषः । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥३६॥ § ५३) एतदिति—
एतद् देवीनिगदितं श्रुत्वा निशम्य साधु सम्यक् सचमत्कारभाषणे धुरीणा निपुणा सचमत्कारभाषणधुरीणा साधु सम्यग्, द्राक्षावली रुद्राक्षावली रुद्राक्षाणामावली जाता द्राक्षावली रुद्राक्षवत् स्वादरहिता जाता । सिता २०
शर्करोपलः सिकता बालुका भवति बालुकावत्स्वादरहिताभूदिति भावः । नवसुधा नवपीयूषं नवसुधाना सुधु धाना सुधाना नवा चासौ सुधाना चेति नवसुधाना नूतनभूषयवा 'धाना भूषयवेऽपि च' इति मेदिनी । नवसुधा स्वादरहिता जाता । मधुरसोऽपि अवमधुरसः अवक्रुष्टं मधु अवमधु कुत्सितमदिरा तस्य रस इव रसो यस्य

§ ५१) इतरेति—फिर दूसरी देवी बोली—§ ५२) तन्वीति—हे तन्वांगि ! हे मानवति ! हे चपललोचने ! हे भ्रमरकचे ! तुम्हारे वचनरूपी अमृतके सुशोभित होनेपर जो दाखों- २५
की पंक्ति पहले रूपयुता—सौन्दर्यसे सहित थी वह प्रारम्भमें 'रू' इस अक्षरसे सहित हो गयी अर्थात् रुद्राक्षावली बनकर रुद्राक्षमालाके समान स्वादरहित हो गयी । जो सिता—
मिसरी मध्येऽधिका—मध्यमें अधिक थी वह तुम्हारे वचनरूपी अमृतके सुशोभित होनेपर मध्येऽधिका—बीचमें 'क' नामक अक्षरसे सहित होकर सिकता बन गयी अर्थात् सिकता—
बालूके समान निःस्वाद हो गयी । जो नवसुधा अग्रजनाञ्चिता—श्रेष्ठ मनुष्योंसे सत्कारको ३०
प्राप्त होती थी वह तुम्हारे वचनामृतके सुशोभित होनेपर अग्रजनाञ्चिता—आगे उत्पन्न 'ना' इस अक्षरसे युक्त होकर नवसुधाना हो गयी अर्थात् भूँजे हुए नवीन जौके समान माधुर्यसे रहित हो गयी । और जो मधुरस—शहद पहले सुशोभित तथा अवास्पद—रक्षाका स्थान
था वह तुम्हारे वचनामृतके प्रकट होनेपर अवास्पद—अव शब्दका स्थान बनकर अवमधुरस
हो गया अर्थात् कुत्सितमदिराके समान स्वादवाला हो गया । इस तरह ये सब प्रायः हास्य- ३५
भावको धारण करने लगे ॥३६॥ § ५३) एतदिति—यह सुनकर 'ठीक, तुम चमत्कारपूर्ण
भाषण करनेमें निपुण हो, ठीक, द्राक्षावली रुद्राक्षावली, सिता सिकता, नवसुधा नवसुधाना

§ ५४) बिम्बाधरि ! तव कन्तुककञ्चुकनयनं धीरतरधीः नयनयनो घनतानघः सरसः तव पतिश्च कल्याणगुणोज्ज्वलतया परस्परं समाना कदाचिदपि वर्णविपर्यासं न सहन्ते इति ।

§ ५५) इत्यादिभिः स्फुटचमत्कृतिभिर्वचोभि-

देवीजनेन सहितं परिचर्यमाणा ।

सा निर्भरप्रथितगर्भभरालसाङ्गी

पत्या समं प्रमदवारिनिधौ ममज्ज ॥३७॥

- तथाभूत इति अवमधुरसो निन्दितस्वादयुक्तो बभूव । इतीत्यं सम्यग् अभिहितं कथितम् । इत्येवमभिनन्द्य प्रशस्य काचिद् देवो एवमित्थम् ऊचे जमाद । § ५४) बिम्बाधरोति—बिम्बमिवाधरो यस्यास्तत्संबुद्धौ हे बिम्बाधरि ! हे रक्तदशनच्छदे ! तव भवत्याः कन्तुरेव कन्तुकः कामः कन्तुकश्च, कञ्चुकश्च स्तनवस्त्रं च, नयनं च नेत्रं च, इत्येषां समाहारः कन्तुककञ्चुकनयनम्, धीरतरा गम्भीरतरा चासौ धीश्च बुद्धिश्च इति धीरतरधीः, नयस्य नीतेः नयनः प्रापको नयनयनः, घनतानघः घनं कांस्यतालादिवाद्यं तस्य तानः समूहस्तस्य घो ध्वनिः शब्द इत्यर्थः 'घनं स्यात्कांस्यतालादिवाद्ये मध्यमताण्डवे', 'घो घण्टायां च घा घाते किङ्किण्यां स्त्रीध्वनौ तु घः' इत्युभयत्र विश्वलोचनः । सरसः—स प्रसिद्धः रसः तव पतिश्च वल्लभश्च पतिपक्षे उपरितनशब्दानां व्याख्यानमित्थं कन्तुककञ्चुकनयनं कन्तुककञ्चुकः कामाच्छादकं यत् नयनं तद्रूपम्, धीरतरधीः धीरतरा गम्भीरतरा धीर्यस्य सः, नयनयनो नयो नीतिरेव नयनं यस्य सः, घनतानघः घनतया दृढतया अनघो निष्पापः, सरसः सस्नेहः कल्याणगुणैः स्वर्णसूत्रैरुज्ज्वलतया देदीप्यमानतया कञ्चुकपक्षे, पतिपक्षे कल्याणगुणैः श्रेयस्कारगुणैरुज्ज्वलतया शोभिततया परस्परं मिथः समानाः सदृशाः कदाचित् जायुचित् वर्णविपर्यासं वर्णस्य रूपस्य वर्णानामक्षराणां वा विपर्यासं विपरीतभावं पतिपक्षे वर्णानां ब्राह्मणादीनां विपर्यासं वैपरीत्यं न सहन्ते इति । § ५५) इत्यादिभिरिति—इत्यादिभिः पूर्वोक्तप्रकारैः स्फुटा स्पष्टा चमत्कृतिष्वेषु तैः स्पष्टचमत्कारयुक्तैः वचोभिः वचनैः सहितं यथा स्यात्तथा देवीजनेन सुरीसमूहेन परिवर्ष्यमाणा सेव्यमाना निर्भरेण प्रथितगर्भभरेण प्रसिद्धगर्भभारेणालसमङ्गं यस्यास्तथाभूता सा मरुदेवो पत्या प्राणनाथेन समं प्रमदवारिनिधौ हर्षपारावारे ममज्ज निमग्नाभूत् । रूपाकालंकारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥३७॥

- और मधुरस अवमधुरस हो गया यह तुमने ठीक कहा', इस तरह उसकी प्रशंसा कर कोई देवी इस प्रकार कहने लगी । § ५४) बिम्बाधरोति—हे बिम्बके समान लाल होंठोंवाली ! तुम्हारा कन्तुक—काम, कंचुक—चोली, नयन—नेत्र, तुम्हारी धीरतरधी—अत्यन्तगंभीर बुद्धि, तुम्हारा नयनयन—नीतिनिर्देश, तुम्हारा घनतानघ—कांस्यताल आदि वाद्यसमूहका शब्द और तुम्हारा सरस वह स्नेह तथा उक्त विशेषणोंसे विशिष्ट अर्थात् कामको रोकनेवाले नयनस्वरूप, गंभीर बुद्धिसे युक्त, नीतिरूपी नेत्रसे युक्त, कोमलतासे निष्पाप एवं स्नेहसे युक्त तुम्हारा पति, कल्याण सूत्र—स्वर्णकी लड़ी (पक्षमें कल्याणकारी गुणों) से सुशोभित होनेके कारण परस्परमें समान होते हुए कभी भी वर्णविपर्यास—रूपका परिवर्तन, अक्षरोंका परिवर्तन और ब्राह्मणादिवर्णोंकी विपरीत प्रवृत्तिको सहन नहीं करते । कन्तुक कंचुक आदि शब्द यदि विपरीत क्रमसे पढ़े जाते हैं तो भी उनका उच्चारण उसीरूप होता है । § ५५) इत्यादिभिरिति—इस प्रकारके स्पष्ट चमत्कारोंसे युक्त वचनोंके साथ देवीजनोंके द्वारा जिसकी परिचर्या की जा रही थी तथा बहुत भारी प्रसिद्ध गर्भके भारसे जिसका शरीर अलसा रहा

§ ५६) चैत्रे मासवरे धरेश्वरसती पक्षे वलक्षेत्तरे

सल्लग्ने नवमीदिने दिनमणौ प्राचीदिशं प्राञ्चति ।

विश्वे ब्रह्मसमाह्वये सति महायोगे विशालेक्षणा

प्राचीवार्धमसूत तत्र तनयं स्फारप्रभामेदुरम् ॥३८॥

§ ५७) नाभिक्षमापत्तिपूर्वभूधरतटात्प्राप्तोदयं श्रीजिनं

बालार्कं विलसन्निबोधकिरणं प्रोद्यत्तमोनाशनम् ।

लेखस्त्रीनलिनीलताः कुतुकतः संवीक्ष्य मोदोल्लसद्-

वाष्पव्याजमरन्दपूर्णविकसन्नेत्राम्बुजा रेजिरे ॥३९॥

§ ५८) तदा किल त्रिदशाधिकस्नेहोज्ज्वले सुरुचिराज्यविशोभिते विभावयुदितभयहरण-
चणे उत्तमश्रीविराजितेऽपि तमःसमूहविध्वंसनधुरीणे जिनाभिधाने त्रिभुवनदीपे परिस्फुरति, १०

§ ५६) चैत्र इति—तत्रायोव्यायां विशालेक्षणा दीर्घलोचना सा धरेश्वरसती राजवल्लभा मरुदेवी चैत्रे चैत्रनामनि मासवरे मासोत्तमे वलक्षेत्तरे कृष्णे पक्षे सल्लग्ने प्रशस्तलग्ने नवमीदिने नवम्यां तिथौ दिनमणौ सूर्ये प्राची दिशं पूर्वाशाम् प्राञ्चति प्रगच्छति सति ब्रह्मसमाह्वये ब्रह्माभिधाने विश्वे महायोगे एतन्नामयोगे च सति प्राची पूर्वदिशा अर्कं सूर्यमिव स्फारप्रभामेदुरं दीप्रदोतिसहितं तनयं पुत्रम् असूत जनयामास । उपमा । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥३८॥ § ५७) नाभीति—लेखस्त्रियो देवाङ्गना एव नलिनीलताः कमलनीव्रततमः १५
कुतुकतः कुतूहलात् नाभिक्षमापत्तिरेव नाभिराज एव पूर्वभूधरः पूर्वाचलस्तस्य तटात् प्राप्तोदयमुदितं विलसन्तः शुभन्तः त्रिबोधा मतिश्रुतावधयो ज्ञानान्येव किरणा यस्य तं प्रोद्यत्तमोनाशनं प्रकटीभवत्तिमिरापहारकं बालार्कं बाल एवार्कस्तं बालसूर्यं संवीक्ष्य समवलोक्य वाष्पव्याजेन हर्षाश्रुच्छलेन मरन्दपूर्णानि मकरन्द-संभृतानि विकसन्नेत्राम्बुजानि विकसन्नयनकमलानि यासां तथाभूताः सत्यो रेजिरे शुशुभिरे । रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥३९॥ § ५८) तदेति—तदा किल जिनेन्द्रजन्मवेलायां खलु त्रिदशानां देवानामधिक- २०
स्नेहेन सातिशयप्रेम्णोज्ज्वलो देदीप्यमानस्तस्मिन्, पक्षे तिखो दशा वतिका इति त्रिदशास्तासु विद्यमानो योऽ-
धिकस्नेहः प्रचुरतैलं तेनोज्ज्वलस्तस्मिन्, सुष्ठु, रुचिः सुरुचिः सुकान्तिस्तस्या राज्येन विशोभितस्तस्मिन्, पक्षे सुरुचिरमतिमनोहरं यद् आज्यं धृतं तेन विशोभिते, विभो प्रभौ, अरिम्यः शत्रुभ्य उदितं यद् भयं तस्य हरणं तेन वित्तस्तस्मिन् पक्षे विभावयां रात्रावुदितं यद् भयं तस्य हरणेन वित्तस्तस्मिन्, उद्गतं तमं उत्तमं उत्कटतिमिरं

रहा था ऐसी वह मरुदेवी पतिके साथ हर्षरूपी सागरमें निमग्न थी ॥३७॥ § ५६) चैत्र इति— २५
उस अयोध्यानगरमें विशाल नेत्रोंवाली राजवल्लभा—मरुदेवीने चैत्र मासके कृष्ण पक्ष
सम्बन्धी नवमीतिथिके दिन जब कि सूर्य पूर्व दिशाको प्राप्त हो रहा था, ब्रह्मनामक विश्व
तथा महायोग विद्यमान था तब जिस प्रकार पूर्व दिशा सूर्यको उत्पन्न करती है उसी प्रकार
देदीप्यमान प्रभासे युक्त पुत्रको उत्पन्न किया ॥३८॥ § ५७) नाभीति—देवांगनारूपी कमलिनी-
की लताएँ नाभिराजरूपी पूर्वाचलके तटसे उदित, तीन ज्ञानरूपी किरणोंसे सुशोभित तथा ३०
उठते हुए अन्धकारको नष्ट करनेवाले श्रीजिनेन्द्र रूपी बालसूर्यको कुतूहल वश देख हर्षसे
छलकनेवाले आँसुओंके बहाने मकरन्दसे पूर्ण नेत्र कमलोंसे युक्त होती हुई सुशोभित हो रही
थी ॥३९॥ § ५८) तदेति—निश्चयसे उस समय जो देवोंके अत्यधिक स्नेहसे उज्ज्वल था
(पक्षमें तीन वक्तियोंमें विद्यमान अत्यधिक तैलसे देदीप्यमान था), जो उत्तम कान्तिके
राज्यसे सुशोभित था (पक्षमें उत्तम धी से सुशोभित था) जो विभु—सामर्थ्यवान् था तथा ३५
शत्रुओंसे उदितभयको नष्ट करनेमें प्रसिद्ध था (पक्षमें रात्रिमें उदित अन्धकारको नष्ट करनेमें

लज्जयेव तदीयकान्तिकल्लोलिनीलीना सुराङ्गनाकरारोपितदीपावलिर्दिनकरकरनिकरनिरन्तरे दिनान्तरे खद्योतपरम्परेवानवलोकनीयप्रकाशा केवलमङ्गलफला विललास ।

§ ५९) नदीपबन्धुर्गाम्भीर्यगुणेन त्रिजगद्गुरुः ।

दीपानयं निराचक्रे तेजसेति न विस्मयः ॥४०॥

५ § ६०) तदानीं खलु जिनस्य प्रसिद्धां कालारिरित्यभिख्यां विबुध्य भयेनेव सेवनार्थं समसमयसमवतीर्णः सर्वतुर्विलासैर्विकसदशोकविकचमल्लिकाकुन्दकुड्मलाडम्बरकदम्बरसनन्ददर-विन्दविकसितसिन्दुवारप्रबुद्धलोघ्रैर्विशोभमाना वनमेदिनीकामिनी संजातोऽयं भुवनाधिपतिर्विभुतया

तस्य श्रीः शोभा तथा विराजितेऽपि तमःसमूहस्य तिमिरसमूहस्य विध्वंसने नाशने धुरीणो निपुणस्तस्मिन् इति विरोधः । परिहारपक्षे उत्तमश्रिया समुत्कृष्टलक्ष्म्या विराजितेऽपि शोभितेऽपि जिनाभिधाने जिननामनि त्रिभुवनदीपे परिष्कुरति सति, लज्जयेव त्रपयेव तदीयकान्तिरेव कल्लोलिनीति तदीयकान्तिकल्लोलिनी तस्यां लीनान्तहिता सुराङ्गनानां देवीनां करेषु हस्तेषु आरोपिता धृता या दीपावलिर्दीपमालिका सा, दिनकरस्य सूर्यस्य करनिकरेण किरणसमूहेन निरन्तरे व्याप्ते दिनान्तरे दिनमध्ये खद्योतपरम्परेव ज्योतिरिङ्गणसंतति-रिव अनवलोकनीयोऽदर्शनीयः प्रकाशो यस्यास्तथाभूता केवलं मङ्गलफलं यस्यास्तथाभूता मात्रमङ्गलप्रयोजना विललास शुशुभे । इलेष-विरोधाभास-रूपकोत्प्रेक्षोपमालंकाराः । § ५९) नदीपेति—गाम्भीर्यमेव गुणस्तेन १५ गाम्भीर्यगुणेन धैर्यगुणेन दीपानां बन्धुर्न भवतीति नदीपबन्धुः त्रिजगद्गुरुः लोकत्रयगुरुः अयं जिनबालकः तेजसा दीपान् निराचक्रे तिरश्चक्रे इति न विस्मयः । यो दीपानां बन्धुर्नास्ति स दीपान् निराकुरुत इत्यत्र को विस्मयः । पक्षे नदीं पाति रक्षतीति नदीपः सागरस्तस्य बन्धुः सहोदरः गाम्भीर्यगुणेन सागर इत्यर्थः ॥४०॥ § ६०) तदानीमिति—तदानीं जिनजन्मसमये खलु निश्चयेन जिनस्य तीर्थंकरस्य प्रसिद्धां प्रथितां कालारिः यमारिः पक्षे समयारिः 'कालस्तु समये मृत्यो महाकाले यमे शितौ' इति विस्वलोचनः, इत्यभिख्यां इत्याह्वां २० विबुध्य ज्ञात्वा भयेनेव भीत्येव सेवनार्थं शुश्रूषायै समसमये युगद् समवतीर्णः प्रकटितैः सर्वतुर्विलासैर्निखिलतूनां विलासाः शोभाश्चिह्नानि वा तैः विकसन्ति शोभमानानि अशोकानि कङ्कलिकुसुमानि, विकचा विकसिता मल्लिका मालत्यः, कुन्दकुड्मलानां माध्यकोरकाणामाडम्बराः समूहाः, कदम्बानि नीपकुसुमानि, रसेन मकर-न्देन नन्दन्ति शुम्भन्ति यान्यरविन्दानि कमलानि, विकसितानि प्रफुल्लानि सिन्दुवाराणि, प्रबुद्धानि विकसितानि

प्रसिद्धा) तथा अत्यधिक अन्धकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित होनेपर भी (पक्षमें उत्तम—उत्कृष्ट २५ लक्ष्मीसे सुशोभित होनेपर भी) जो अन्धकारके समूहको नष्ट करनेमें समर्थ था ऐसे जिन नामक त्रिलोकी दीपकके देदीप्यमान रहते हुए लज्जासे ही मानो जो उनकी कान्तिरूपी नदी-में जा छिपी थी ऐसी देवांगनाओंके हाथमें धारण की हुई दीपपंक्ति, सूर्यकी किरणोंके समूहसे व्याप्त दिनके मध्यमें जुगनुओंके समूहके समान अदर्शनीय प्रकाशसे युक्त होती हुई मात्र मंगलरूप फलसे युक्त रह गयी थी । § ५९) नदीपेति—गाम्भीर्यगुणसे जो दीपकोंके बन्धु ३० नहीं थे (पक्षमें समुद्रके बन्धु थे) ऐसे इन त्रिभुवन गुरुने तेजके द्वारा दीपोंका निराकरण किया था यह आश्चर्यकी बात नहीं थी ॥४०॥ § ६०) तदानीमिति—उस समय जिनेन्द्र भगवान्का 'कालारि'—समयके शत्रु (पक्षमें यम—मृत्युके शत्रु) यह नाम प्रसिद्ध है ऐसा जानकर भयसे ही मानो उनकी सेवाके लिए एक साथ सब ऋतुएँ प्रकट हो गयी थीं । उनके चिह्नस्वरूप विकसित अशोक, प्रफुल्लित जुही, कुन्दकी बोंडियोंका विस्तार, कदम्बके ३५ फूल, रससे भरे हुए कमल, खिले हुए सिन्दुवार और विकसित लोघ्रके फूलोंसे वनभूमि रूपी स्त्री सुशोभित हो उठी थी । वनभूमि रूपी स्त्रीने समझा कि यह जो भुवनाधिपति (त्रिलोकीनाथ) उत्पन्न हुए हैं वे विभुता—अद्वितीय सामर्थ्यके कारण (पक्षमें 'भु' अक्षरको

वनाधिपतिरिति मत्वा किल निजानुरागं प्रकटयन्तीव मन्दहासमातन्वतीव, पुलाकमुकुलानि विभ्राणैव, आनन्दाश्रुबिन्दून्मुञ्चतीव हर्षवशेन नयने विस्तारयन्तीव, मलयजरजोराजि किरन्तीव विरराज ।

§ ६१ § शम्बरारिमदभेदनधीरो जात एष इति तोषविशेषात् ।

शम्बराणि सह सज्जनचित्तैः संप्रसादमुपजग्मुर्द्वारम् ॥४१॥

§ ६२) प्रौढशोभनखरांशुवैभवो जात एष जिनचण्डदोधितिः ।

इत्यवेत्य किल लज्जया तदा मन्दितोष्णकिरणोऽभवद्रविः ॥४२॥

लोघ्राणि लोघ्रकुसुमानि एषां द्वन्द्वः तैर्विशोभमाना विराजमाना वनमेदिनीकामिनो काननवसुधाभामिनो मंजातः समुत्पन्नः अयमेष भुवनाधिपतिस्त्रिलोकीनाथः विभूतया समर्थतया पक्षे विगतभुवर्णतया वनाधिपतिः वनस्वामी यो भुवनाधिपतिः स सामर्थ्येन वनाधिपतिरस्त्येव, यो भुवनाधिपतिः स भुवर्णं त्यक्त्वा वनाधिपति- १०
रस्त्येवेति भावः, इतोत्थं मत्वा विज्ञाय किल निजानुरागं निजप्रीत्यतिभारं प्रकटयन्तीव दर्शयन्तीव विकसद-
शोककुसुमच्छलेनेति भावः, मन्दहासं मन्दहसितम् आतन्वतीव विस्तारयन्तीव विकचमलिकाकुन्दकुड्मलव्याजे-
नेति भावः, पुलाकमुकुलानि रोमाञ्चकुड्मलानि विभ्राणैव दधानैव विकसितकदम्बकुसुमकपटेनेति भावः, आन-
न्दाश्रुबिन्दून् हर्षाश्रुपृषताः मुञ्चन्तीव त्यजन्तीव नन्दरविन्दरसैरिति भावः, हर्षवशेन प्रमोदवशेन नयने नेत्रे
विस्तारयन्तीव वितन्वन्तीव विकसितसिन्दुवारव्याजेनेति भावः, मलयजरजोराजि चन्दनपरागपङ्क्तिं किरन्तीव १५
प्रक्षिपन्तीव प्रबुद्धलोघ्रपरागच्छलेनेति भावः विरराज शुशुभे । श्लेषोत्प्रेक्षा । § ६१) शम्बरारिरिति—जातः
समुत्पन्न एष जिनबालकः शम्बरारिर्मनसिजो जलशत्रुश्च तयोर्मदभेदने गर्वविध्वंसने धीरो निपुणस्तथाभूत
इति तोषविशेषाद् हर्षविशेषात् शम्बराणि जलानि सज्जनचित्तैः साधुहृदयैः सह उदारं महान्तं संप्रसादं
नैर्मल्यं प्रसन्नतां च उपजग्मुः प्रापुः । 'शम्बरारिर्मनसिजः कुसुमेषुरनन्यभूः', 'अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनोरक्षीराम्बु-
शम्बरम्' इति चामरः । श्लेषसहोक्तो । स्वागताछन्दः ॥४१॥ § ६२) प्रौढेति—प्रौढशोभं प्रकृष्टशोभायुक्तं २०
नखरांशुवैभवं नखकिरणैश्चर्यं यस्य तथाभूतः, पक्षे प्रौढशोभनं खरांशुवैभवं तीक्ष्णकिरणैश्चर्यं यस्य तथाभूतः
एष जिन एव चण्डदोधितिजिनचण्डदोधितिः जिनेन्द्रसूर्यः जातः समुत्पन्न इतीत्यम् अवेत्य ज्ञात्वा किल लज्जया
मन्दाक्षेण तदा जिनजन्मकाले रविः सूर्यः मन्दिता उष्णकिरणा यस्य तथा भूतः अभवद् । श्लेष-रूपकोत्प्रेक्षाः ।

छोड़ देनेसे) वनाधिपति—वनके स्वामी हैं ऐसा मानकर खिले हुए अशोकके लाल-लाल २५
फूलोंसे वह ऐसी जान पड़ने लगी मानो अपना अनुराग ही प्रकट कर रही हो, खिले हुए
जुही तथा कुन्द कुंडलोंसे ऐसी मालूम होने लगी मानो मन्द हास्यको ही विस्तृत कर रही
हो, कदम्ब पुष्पोंसे ऐसी सुशोभित हो मानो रोमांचको ही धारण कर रही हो, कमल
रससे ऐसी जान पड़ने लगी मानो हर्षके आँसू ही छोड़ रही हो, विकसितसिन्दुवार—
निर्गुण्डीके फूलोंसे ऐसी लगने लगी मानो हर्षसे नेत्रोंको विस्तृत ही कर रही हो और खिले
हुए लोघ्रकी परागसे ऐसी सुशोभित हो उठी मानो चन्दन धूलिके समूहको ही उड़ा रही हो । ३०
§ ६१) शम्बरारोति—यह जो बालक उत्पन्न हुआ है वह शम्बरारि—कामका गर्व नष्ट
करनेमें (पक्षमें जलके शत्रुओंका गर्व चूर्ण करनेमें) धीर वीर है इस प्रकारके संतोष विशेषसे
शम्बर—जल, सज्जनोंके हृदयोंके साथ-साथ बहुत भारी प्रसन्नताको (स्वच्छताको) प्राप्त
हो गये थे ॥४१॥ § ६२) प्रौढेति—जिसकी नख किरणोंका वैभव अत्यधिक शोभासे युक्त
है (पक्षमें जिसकी तीक्ष्ण किरणोंका वैभव अत्यधिक शोभायमान है) ऐसा यह जिनेन्द्ररूपी ३५
सूर्य उत्पन्न हुआ है ऐसा जानकर उस समय लज्जासे ही मानो सूर्यकी उष्ण किरणें मन्द पड़

§ ६३) स सदागतिस्वभावः पावनरीतिं वहन्महच्छ्लाघ्यः ।

जातोऽसाविति दुर्भरहर्षभराद्वायुराववो मन्दम् ॥४३॥

§ ६४) पुण्यश्रियं समधिकां प्राप्तुं सूनश्रियं महद्वृक्षाः ।

विजहुः को वा कुतुकादूनं न जहाति समधिकं प्राप्तुम् ॥४४॥

५ § ६५) राकाकोकारिकान्तिप्रसरमुपगता प्रोल्लसत्पुण्डरीक-

आजच्छोभां दधाना जिनपवरयशःश्रीशरन्मेघजालम् ।

आरादुज्जृम्भतापं शमयति सहसेत्यम्बरश्रीस्तदानीं

मेघाटोपैर्विविक्तं विमलतरलसद्रूपमेघा बभार ॥४५॥

- आर्या छन्दः ॥४२॥ ६३) § स सदेति—यः सदा सर्वदा अगतिस्वभावः पक्षे सदागतिः शश्वदगमनमेव
 १० स्वभावो यस्य सः वायुस्वभाव इत्यर्थः 'सदागतिर्गन्धवाहे निर्वाणेऽपि सदीश्वरे' इति विश्वलोचनः । पावनरीतिं
 पवित्ररीतिं पक्षे पवनस्य वायोरीत्यं पावनो सा चासौ रीतिश्चेति पावनरीतिं वायुरीतिं वहन् दधत्, महद्भिः
 श्लाघ्य इति महच्छ्लाघ्यः महापुरुषप्रशंसनीयः अस्ति, सोऽसौ सोऽयं जिनबालको जातः समुत्पन्नः इतीत्यं
 दुर्भरहर्षभराद् विपुलप्रमोदभारात्, वायुः पवनो मन्दं यथा स्यात्तथा ववौ वहति स्म । श्लेषोत्प्रेक्षे । आर्याछन्दः
 ॥४३॥ § ६४) पुण्यश्रियमिति—महतां वृक्षा महद्वृक्षाः कल्पवृक्षाः समधिकां प्रभूतां पुण्यश्रियं सुकृतलक्ष्मीं
 १५ प्राप्तुं सूनश्रियं अतिशयेन ऊना सूना सा चासौ श्रोश्चेति सूतश्रोस्ताम् पक्षे सूनानां पुष्पाणां श्रोस्ताम् विजहु-
 स्त्यक्तवन्तः कल्पवृक्षाः पुष्पाणि वर्षयामासुरिति भावः । तदेवार्थान्तरन्यासेन समर्थयति समधिकं प्रभूतं प्राप्तुं
 को वा जनः कुतुकात् कुतूहलात् ऊनमल्पं न जहाति न त्यजति अपितु सर्व एव त्यजति । अर्थान्तरन्यासः ।
 आर्याछन्दः ॥४४॥ § ६५) राकेति—राकायाः कोकारिः राकाकोकारिः पूर्णिमाचन्द्रस्तस्य कान्तेः प्रसरं
 विस्तारम्, उपगता प्राप्ता, पक्षे राकाकोकारेः कान्तिरिव कान्तिस्तां प्रोल्लसत्पुण्डरीकाणां विकसच्छ्वेतकमलानां
 २० आजच्छोभां देदीप्यमानशोभां दधाना पक्षे प्रोल्लसत्पुण्डरीकाणामिव आजच्छोभां दधाना, जिनपवरयशो
 जिनेन्द्रोत्कृष्टकीर्तिरेव श्रीशरद् जिनपवरयशःश्रीशरद् अपां समूह आपं उज्जृम्भितं वर्धितम् आपं येन तं
 तथाभूतं मेघजालं मेघसमूहं आराद् दूरात् शमयति शान्तं करोति पक्षे उज्जृम्भो वर्धनशीलस्तापो यस्मात् तं
 तथाभूतं संतापकारकं मे मम अधजालं पापसमूहं आराद् सहसा झटिति शमयति नाशयति इति हेतोस्तदानीं
 तस्मिन् काले एषा अम्बरश्रीः मेघाटोपैर्विघसमूहैः विविक्तं रहितं विमलतरं च तत् लसद्रूपं चेति विमलतरल-
 २५ सद्रूपं स्वच्छतरशुम्भद्रूपं बभार । आकाशमतिनिर्मलमभूदिति भावः । रूपकश्लेषोत्प्रेक्षाः । स्रग्धराछन्दः ॥४५॥

- गयीं थी ॥४२॥ § ६३) स सदेति—जो सदागति स्वभाव है—सर्वदा मोक्ष स्वभावको
 धारण करनेवाला है (पक्षमें वायुके स्वभावसे सहित है), जो पावनरीति—पवित्ररीति
 (पक्षमें वायुकी रीति) को धारण कर रहा है तथा जो महान् पुरुषोंके द्वारा प्रशंसनीय है
 ३० ऐसा यह जिन बालक उत्पन्न हुआ है इस प्रकारके बहुत भारी हर्षके भारसे ही मानो वायु
 धीरे-धीरे बहने लगी ॥४३॥ § ६४) पुण्यश्रियमिति—कल्प वृक्षोंने अत्यधिक पुण्यलक्ष्मीको
 प्राप्त करनेके लिए सूनश्री—अल्पलक्ष्मी (पक्षमें फूलोंकी लक्ष्मी) को छोड़ दिया था अर्थात्
 पुष्पवर्षा की थी सो ठीक ही है क्योंकि अधिक पानेके लिए कौन कुतूहल पूर्वक अल्प वस्तुको
 नहीं छोड़ देता है ? ॥४४॥ § ६५) राकेति—पौर्णमासीके चन्द्रमाकी कान्तिके प्रसारको प्राप्त
 (पक्षमें पूर्णिमाके चन्द्रमा जैसी कान्तिके समूहको प्राप्त) तथा खिले हुए सफेद कमलोंकी
 ३५ उत्तम शोभाको धारण करनेवाली (पक्षमें खिले हुए सफेद कमलों जैसी उत्तम शोभाको
 धारण करनेवाली) जिनेन्द्र भगवान्की यशोलक्ष्मी रूपी शरद्भक्तु जलसमूहकी वृद्धिसे युक्त
 मेघोंके समूहको (पक्षमें सन्ताप उत्पन्न करनेवाले मेरे पापोंके समूहको) दूरसे ही शीघ्र

§ ६६) सा किल साकेतपुरी सुरतरुकुसुममेदुरतया विधृतविमलदुकूलेव, नभोऽङ्गणनि-
पतितचिरत्नरत्नरुचिरतया मणिभूषणमण्डितेव, मलयजरससंसिक्ताङ्गी तत्र तत्र कल्पितविचित्र-
मुक्तामयरङ्गवल्लिविशोभिततया व्याभुक्तमुक्तामालिकेव, प्रतिनिलयं लयविलसितगानविलास-
मनोरमतया स्वयं गायन्तीव, समुल्लसत्पल्लवतल्लजसंदानितवन्दनमालामुन्दरतया निजानुराग-
धारां प्रकटयन्तीव, व्यालोलसमुल्लसदुदस्तकेतुहस्ततया जिनजन्मोत्सवकुतूहलेन नृत्यन्तीव चिरतरं ५
चकासामास ।

§ ६७) जिनस्त्रिलोकीजनवन्द्यपादो जगद्गुरुः सोऽयमजायतात्र ।

इतीव सत्केतुपटावृतां तां पुरीं न पस्पर्श रविः स्वपादैः ॥४६॥

§ ६६) सा किलेति—सा किल साकेतपुरी अयोध्यापुरी सुरतरुकुसुमैः कल्पवृक्षपुष्पैर्मंदुरतया विधृतं परिहितं १०
विमलदुकूलं निर्मलश्रौं यया तथाभूतेव, नभोऽङ्गणाद् गगनचत्वरत् नपतितानि वृष्टानि यानि चिरत्नरत्नानि
श्रेष्ठमणयस्ती रुचिरतया शोभिततया मणिभूषणै रत्नालङ्कारैर्मण्डितेव शोभितेव, मलयजरसेन चन्दनरसेन
संसिक्तमङ्गं यस्यास्तथाभूता, तत्र तत्र विविधस्थानेषु कल्पिता रचिता विचित्रा विविधप्रकारा या मुक्तामय-
रङ्गवल्लयस्ताभिविशोभिततया व्यामुक्ता धृता मुक्तामालिका यया तथाभूतेव, प्रतिनिलयं प्रतिगृहं लयविलसितो
लयशोभितो यो गानविलासस्तेन मनोरमतया मनोज्ञतया स्वयं स्वतो गायन्तीव गानं कुर्वन्तीव, समुल्लसद्भिः
शुम्भद्भिः पल्लवतल्लजैः श्रेष्ठकिसलयैः संदानिता बद्धा या वन्दनमाला वन्दनस्रजस्तापिः सुन्दरतया १५
निजानुरागस्य धारा संततिस्तां प्रकटयन्तीव, व्यालोलश्चपलाः समुल्लसन्तः समुदस्ताः समुन्नताः केतवः
पताका एव हस्ता यया तस्या भावस्तया जिनजन्मोत्सवस्य कुतूहलं कौतुकं तेन नृत्यन्तीव नृत्यं कुर्वन्तीव
चिरतरं दीर्घकालपर्यन्तं चकासामास शुशुभे । उत्प्रेक्षा । § ६७) जिन इति—त्रिलोकीजनैर्वन्द्यो पादौ चरणौ
यस्य तथाभूतः, जगतां गुरुर्जगद्गुरुः जगच्छ्रेष्ठः सोऽयं लोकोत्तरमहिममहितः जिनो जिनेन्द्रः अत्र अजायत
समुत्पन्न इतीव हेतोः सत्केतुपटावृतां सदैवजयन्तीवस्त्रावृतां पुरीं नगरीं रविः सूर्यः स्वपादैः स्वचरणैः पक्षे २०
स्वदीप्तिभिः 'पादोऽस्त्रो चरणे मूले तुरीयांशोऽपि दीप्तिः' इति विश्वलोचनः । श्लेषोत्प्रेक्षे । उपेन्द्रवज्रा-

शान्त कर रही है इस विचारसे ही मानो उस समय आकाश लक्ष्मीने मेघोंके विस्तारसे रहित
अत्यन्त निर्मल तथा सुन्दर रूपको धारण किया था ॥४५॥ § ६६) सा किलेति—उस समय
वह अयोध्यापुरी कल्पवृक्षके फूलोंसे व्याप्त होनेके कारण ऐसी जान पड़ती थी मानो उसने
स्वच्छ रेशमी वस्त्र ही पहिन रखा हो, आकाश रूप आँगनसे पड़े हुए श्रेष्ठ रत्नोंसे सुन्दर होने- २५
के कारण ऐसी मालूम होती थी मानो रत्नोंके आभूषणोंसे सुशोभित ही हो रही हो, चन्दन
रसके छिड़कावसे ऐसी जान पड़ती थी मानो उसने चन्दनका लेप ही लगा रखा हो, जहाँ-
तहाँ बनाये हुए रंग-बिरंगे मोतियोंके बेलबूटोंसे सुशोभित होनेके कारण ऐसी प्रतिभासित
होती थी मानो उसने मोतियोंकी मालाएँ ही पहिन रखी हो, प्रत्येक घरमें होनेवाले लयसे ३०
सुशोभित संगीतसे मनोरम होनेके कारण ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वयं गा ही रही हो,
लहलहाते श्रेष्ठ पल्लवोंसे निर्मित वन्दनमालाओंसे सुन्दर होनेके कारण ऐसी मालूम होती
थी मानो अपने अनुरागकी सन्तति ही प्रकट कर रही हो और फहराती हुई पताकाओं रूप
हाथोंको ऊपर उठानेके कारण ऐसी जान पड़ती थी मानो जिनेन्द्र भगवान्के जन्मोत्सवके
कुतूहलसे नृत्य ही कर रही हो । § ६७) जिन इति—जिनके चरण तीन लोकके मनुष्योंके
द्वारा वन्दनीय हैं ऐसे जगद्गुरु भगवान् जिनेन्द्रने यहाँ जन्म प्राप्त किया है इस कारण ही ३५
मानो उत्तम पताकाओंसे धिरी हुई उस नगरीको सूर्यने अपने चरणोंसे (पक्षमें किरणोंसे)

§ ६८) भवनामरभवनेषु प्रादुरभूच्छङ्खसंकुलारावः ।

भो भो भो इति मरुतां जिनजन्ममहं वदन्निवानन्दात् ॥४७॥

§ ६९) व्यन्तरभेरीरावो लोकं व्यालोलयस्तदाजृम्भत् ।

जिनजन्मोत्सवहर्षान्मुक्तिश्रीविकसदट्टहास इव ॥४८॥

५ § ७०) कण्ठीरवकण्ठरवो ज्योतिष्काणां गृहाङ्गणे जातः ।

आशासु कुञ्जरान् द्राङ् विनिर्मदांस्तानबिन्दुकांश्चक्रे ॥४९॥

§ ७१) कल्पामरवरघण्टाघोषोऽभून्मोक्षसञ्छियो हर्षात् ।

नृत्यन्त्याश्चरणरणन्मणिनूपुरशब्दसंशयनिदानम् ॥५०॥

§ ७२) तदानीमुदारजिनरजनीकरशुभोदयलीलावेलोत्कूलितप्रमदपारावारचञ्चद्दीचिसंचये-

१० नेव, विश्वातिशायिमहिम्नि जगद्गुरो जाते को वान्यस्य राज्यमहिमेति प्रभावशक्त्या-

छन्दः ॥४६॥ § ६८) भवनेति—भवनामरभवनेषु भवनवासिदेवभवनेषु आनन्दात् हर्षात् भो भो भो

इत्यनुकरणशब्देन मरुतां देवानां जिनजन्ममहं जिनोत्पत्युत्सवं वदन्निव कथयन्निव शङ्खसंकुलारावः शङ्खानां

कम्बूनां संकुलारावो विकटशब्दः प्रादुरभूत् प्रकटितोऽभवत् । उत्प्रेक्षा । आर्या ॥४७॥ § ६९) व्यन्तरेति—

तदा तस्मिन् काले जिनस्य जन्मोत्सवा जिनजन्मोत्सवस्तेन हर्षः प्रमोदस्तस्मात् मुक्तिश्रिया मुक्तिलक्ष्म्या

१५ विकसन् प्रकटीभवन् अट्टहास इव व्यन्तराणां भेरीरावो व्यन्तरभेरीरावो व्यन्तरदुन्दुभिनादो लोकं जगत्

व्यालोलयन् कम्पयन् अजृम्भत् ववृधे । उपमा । आर्या ॥४८॥ § ७०) कण्ठीरव इति—ज्योतिष्काणां ज्योतिष्क-

देवानां गृहाङ्गणे भवनाङ्गणे जातः समुद्भूतः कण्ठीरवकण्ठरवः सिंहकण्ठवनिः आशासु दिक्षु विद्यमानान्

तान् कुञ्जरान् गजान् द्राग् इदिति विनिर्मदान् मदरहितान् अबिन्दुकान् अबेदितून् ज्ञानशून्यानि यवत्

‘बिन्दुः स्यादन्तर्दशने शुके वेदितृविप्रुषोः’ इति विश्वलोचनः । चक्रे विदधे । आर्याछन्दः ॥४९॥ § ७१) कल्पा-

२० मरेति—कल्पामरवरघण्टाघोषः कल्पवासिदेवश्रेष्ठघण्टाशब्दः हर्षात् प्रमोदात् नृत्यन्त्या नटन्त्या मोक्षसञ्छियः

मोक्षलक्ष्म्याः चरणयोः पादयो रणन्ति यानि मणिनूपुराणि मणिमञ्जोरकाणि तेषां शब्दस्य संशयस्तस्य निदानं

कारणम् अभूत् । आर्याछन्दः ॥५०॥ § ७२) तदानीमिति—तदानीं तस्मिन्काले निलम्पयतीनां देवेन्द्राणाम्

अकम्पनानि अचलानि सिंहासनानि चकम्पिरे कम्पितानि बभूवुः । अथ तेषां कम्पने हेतूत्प्रेक्षणं कुर्वन्नाः—

उदारेति—उदार उत्कृष्टो यो रजनीकरश्चन्द्रस्तस्य या शुभोदयलीला तस्या वेलयां समये उत्कूलित उत्क्रान्त-

२५ ततो यः प्रमदपारावारो हर्षसागरस्तस्य चञ्चद्दीचीनां संचलत्तरङ्गाणां संचयस्तेनेव, विश्वातिशायी लोकोत्तरा

नहीं हुआ था ॥४६॥ § ६८) भवनेति—भवनवासी देवोंके भवनोंमें हर्षसे ‘भो भो भो’ इस

प्रकारके शब्द द्वारा देवोंको जिनेन्द्रके जन्मोत्सवकी सूचना देते हुएके समान शंखोंका विशाल

शब्द होने लगा ॥४७॥ § ६९) व्यन्तरेति—उस समय जिनेन्द्रदेवके जन्मोत्सव सम्बन्धी

हर्षसे मुक्तिलक्ष्मीके प्रकट होते हुए अट्टहासके समान लोकको चंचल करता हुआ व्यन्तर

३० देवोंकी भेरियोंका शब्द बढ़ने लगा ॥४८॥ § ७०) कण्ठीरवेति—ज्योतिषी देवोंके गृहांगणोंमें

उत्पन्न हुई सिंहोंकी कण्ठध्वनिने उन प्रसिद्ध दिग्गजोंको शीघ्र ही मदरहित तथा ज्ञानशक्ति-

से शून्य कर दिया था ॥४९॥ § ७१) कल्पामरेति—कल्पवासी देवोंके यहाँ होनेवाला घण्टा-

का उत्कृष्ट शब्द, हर्षसे नृत्य करती हुई मोक्ष लक्ष्मीके चरणोंमें रुनझुन करनेवाले नूपुरोंके

शब्द सम्बन्धी संशयका कारण हो रहा था ॥५०॥ § ७२) तदानीमिति—उस समय इन्द्रोंके

३५ अकम्प आसन कम्पायमान हो उठे सो ऐसा ज्ञान पड़ता था मानो उत्कृष्ट जिनराजरूपी

चन्द्रमाके शुभ उदय सम्बन्धी लीलाके समय तटकी सीमाको लाँघनेवाले समुद्रकी चंचल

लहरोंके समूहसे ही कम्पायमान होने लगे थे । अथवा लोकोत्तर महिमासे युक्त जगद्गुरु—

घातेनेव, तत्कालजृम्भितविविधदुन्दुभिप्रभृतिवाद्यरवपूरितलहरीभरेणेव, आद्योदितस्य जिनराजस्य सकलसिंहासनपराभवप्रवीणं सिंहासनमुदेक्ष्यतीति भयेनेव निलिम्पपतीनामकम्पनानि सिंहासनानि चकम्पिरे ।

§ ७३) सुराधिपतिरादराच्चलनकारणं निश्चितुं

दृशां दशशतैरपि प्रगुणमक्षमस्तत्क्षणम् ।

उदीतविमलावधिप्रथितलोचनेन स्वयं

जिनाधिपविधूदयं हृदि विवेद तत्कारणम् ॥५१॥

§ ७४) ततः पुरंदरः पीठात् प्रज्वमुत्थाय, तद्दिशि सप्तपदानि गत्वा, नत्वा च, तमभिषेक्तुमना मनागितरमोदेन घनगर्जनतर्जनपटीयसीं प्रस्थानभेरीं दापयामास ।

§ ७५) चिराच्छयालुं सद्धर्मं क्षणादुन्निद्रयन्निव ।

त्रिलोकीं पूरयामास तारो दुन्दुभिनिस्वनः ॥५२॥

महिमा यस्य तस्मिन् जगद्गुरो भगवति जाते समुत्पन्ने सति अन्यस्य तदितरस्य को वा राज्यमहिमा राज्यप्रभाव इतीत्थं प्रभावशक्तेराघातस्तेनेव, तत्कालं जृम्भिता वृद्धिगता ये विविधदुन्दुभिप्रभृतिवाद्यानां रवाः शब्दास्तैः पूरितो यो लहरीभरस्तरङ्गसमूहस्तेनेव, आद्योदितस्य प्रथमोत्पन्नस्य जिनराजस्य जिनेन्द्रस्य सकलसिंहासनानां निखिलमृगेन्द्रविष्टराणां पराभवे तिरस्करणे प्रवीणं निपुणं सिंहासनम् उदेक्ष्यति इति भयेनेव भीत्येव । उत्प्रेक्षा । § ७३) सुरेति—सुराधिपतिरिन्द्रः आदरात् विनयात् दृशां दशशतैरपि सहस्रेणापि नेत्रैः प्रगुणं स्थिरं चलनकारणं कम्पननिमित्तं सिंहासनानामिति यावत्, निश्चितुं निर्णेतुम् अत्र 'निश्चितुं' इत्यत्र गुणाभावविचिन्त्यः, अक्षमोऽसमर्थः सन् तत्क्षणं तत्कालम् उदीत उत्पन्नो यो विमलावधिनिर्मलावधिज्ञानं तदेव प्रथितलोचनं प्रसिद्धनयनं तेन हृदि स्वचेतसि जिनाधिप एव विधुजिनाधिपविधुजिनचन्द्रस्तस्योदयं समुद्भवं तत्कारणं कम्पनकारणं विवेद ज्ञातवान् । रूपकालंकारः । पृथ्वीचन्द्रः ॥५१॥ § ७४) तत इति—घनेति—घनगर्जनस्य तर्जने भर्तर्जने पटीयसीं घनगर्जनतर्जनपटीयसीम् । शेषं स्पष्टम् । § ७५) चिरादिति—तारो विशालो दुन्दुभिनिस्वनो भेरीनादः चिरात् चिरकालेन शयालुं कृतशयनं सद्धर्मं समीचीनधर्मं क्षणादल्पेनैव कालेन उन्निद्रय-

जिनराजके उत्पन्न हो चुकनेपर किसी दूसरेकी राज्यमहिमा क्या हो सकती है इस तरह प्रभाव शक्तिके आघातसे ही मानो कम्पित हो उठे थे । अथवा उस समय नाना प्रकारके दुन्दुभि आदि बाजोंके वृद्धिगत शब्दोंसे भरी हुई लहरोंके समूहसे ही हिल उठे थे । अथवा सबके सिंहासनोंके तिरस्कार करनेमें प्रवीण प्रथम जिनेन्द्रका सिंहासन यहाँ उदयको प्राप्त होगा इस भयसे ही मानो काँप उठे थे । § ७३) सुरेति—जब इन्द्र आदरपूर्वक एक हजार नेत्रोंके द्वारा सिंहासनोंके कम्पित होनेके सुदृढ कारणका निश्चय करनेके लिए समर्थ नहीं हो सका तब उसने उसी क्षण उदित हुए निर्मल अवधिज्ञानरूपी नेत्रके द्वारा अपने हृदयमें जिनचन्द्रमाके उदयको उसका कारण जान लिया ॥५१॥ § ७४) तत इति -- तदनन्तर इन्द्रने सिंहासनसे शीघ्र ही उठकर उस दिशामें सात कदम जाकर नमस्कार किया और जिनराजका अभिषेक करनेके लिए उत्कण्ठित हो बहुत भारी हर्षसे मेघ-नार्जनाका तिरस्कार करनेमें समर्थ प्रस्थानभेरी दिलवायी । § ७५) चिरादिति—भेरीका वह बहुत भारी शब्द चिरकालसे सान्ते हुए समीचीन धर्मको क्षणभरमें जगाते हुएके समान तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गया ।

§ ७६) ततः शक्राज्ञया देवपृतना निर्ययुर्दिवः ।

तारतम्येन सद्धवाना महाब्धेरिव वीचयः ॥५३॥

§ ७७) चतुर्णिकायत्रिदशास्तदानीं जिनेन्द्रजन्मोत्सवकौतुकेन ।

विनिर्ययुर्भूषणभूषिताङ्गा दिशामधीशाश्च दश प्रचेलुः ॥५४॥

५ § ७८) तदनु सुपर्वराजोऽपि सुरहिततया, कुवलयानन्दसंदायकतया, सत्पथप्रवृत्ततया, सकलकलोज्ज्वलतया च पर्वराज इति कविभिरुत्प्रेक्ष्यमाणः सौधर्मकल्पशतक्रतुः, अगाभिख्याञ्चितमपि नागाभिख्याञ्चितं नागमपि अनागं, मदाह्लादिनमपि नमदाह्लादिनमेरावणमारुह्य, शच्या

त्रिव जागरयन्निव त्रिलोकीं त्रिभुवनं पूरयामास । उत्प्रेक्षा ॥५२॥ § ७६) तत इति—ततस्तदनन्तरं शक्राज्ञया सुरपतिनिदेशेन देवपृतनाः देवसेनाः सद्धवानाः सशब्दाः महाब्धेः महासागरात् वीचय इव तरङ्गा इव तारतम्येन क्रमशो दिवः स्वर्गात् निर्ययुर्निर्जग्मुः । उपमा ॥५३॥ § ७७) चतुर्णिकायेति—तदानीं तस्मिन् काले भूषणैराभरणैर्भूषितान्यलंकृतान्यङ्गानि येषां तथाभूताः चतुर्णिकायत्रिदशाः भवतवास्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिदेवाः जिनेन्द्रस्य जन्मोत्सवस्य कौतुकं तेन जिनराजजन्माभिषवमहकुतूहलेन विनिर्ययुः विनिर्जग्मुः, दिशामाशानां दशाधीशाश्च दशदिक्पालाश्च प्रचेलुः चलन्ति स्म ॥ उपेन्द्रवज्राच्छन्दः ॥५४॥ § ७८) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं सुपर्वणां सुमनसां राजापि सुपर्वराजोऽपि पुरंदरोऽपि सुराणां देवानां १५ हिततया सुरहिततया पक्षे 'सु' वर्णेन रहिततया (सुपर्वराज इत्यत्र 'सु' वर्णत्यागे 'पर्वराज' इत्येवावशिष्यते) कुवलयानन्दस्य महीमण्डलानन्दस्य संदायकतया प्रदायकतया पक्षे उत्पलविकासप्रदायकतया च 'स्यादुत्पलं कुवलयमथ नीलाम्बुजं च' इति धनंजयः, संज्ञासौ पन्थाश्चेति सत्पथं समीचीनमार्गंस्तस्मिन् प्रवृत्ततया पक्षे सतां नक्षत्राणां पन्थाः सत्पथं गगनं तस्मिन् प्रवृत्ततया विद्यमानतया, सकलकलाभिनिखिलचातुरीभिरुज्ज्वलतया निर्मलतया च पक्षे षोडशकलाभिरुज्ज्वलतया च पर्वराजः पूर्णिमाचन्द्र इति कविभिः उत्प्रेक्ष्यमाणस्तर्क्यमाणः सौधर्मकल्पः प्रथमस्वर्गस्तस्य शतक्रतुरिन्द्रः, अगस्य पर्वतस्येवाभिख्या शोभा तयाञ्चितमपि शोभितमपि अगाभिख्याञ्चितं न भवतीति नागाभिख्याञ्चितमिति विरोधः परिहारपक्षे नाग इत्यभिख्या नाम तयाञ्चितम् हस्तीति नाम्ना सहितमित्यर्थः, नागमपि हस्तिनमपि अनागं नागो न भवतीति अनागस्तमिति विरोधः परिहारपक्षे न विद्यते आगोऽपराधो यस्य तम् अकारान्तोऽप्यागशब्दः क्वचिद् दृश्यते, मदेन दानेन आह्लादयतीति मदाह्लादी तं तथाभूतमपि नमदाह्लादिनमिति विरोधः पक्षे नमतां नम्रोभवतामाह्लादिनम्,

२५ ॥५२॥ § ७६) तत इति—तदनन्तरं इन्द्रकी आज्ञासे शब्द करती हुई देवसेनाएँ क्रमशः स्वर्गसे उस प्रकार निकली जिस प्रकार कि समुद्रसे लहरें निकलती हैं ॥५३॥ § ७७) चतुर्णिकायेति—उस समय आभूषणोंसे भूषित शरीरवाले चारों निकायोंके देव, जिनेन्द्र-भगवान्के जन्मोत्सव सम्बन्धी कुतूहलसे बाहर निकले तथा दशों दिक्पाल भी चले ॥५४॥ § ७८) तदन्विति—तदनन्तरं सुपर्वराज—देवराज होनेपर भी जो सुरहिततया—देवोंके लिए हितकारी (पक्षमें 'सु' अक्षरसे रहित) होनेके कारण, कुवलयानन्द संदायकतया—पृथ्वी-मण्डलको आनन्ददायी (पक्षमें नीलकमलोंको हर्षदायी) होनेसे, सत्पथ प्रवृत्ततया—समीचीन मार्गमें प्रवृत्त होनेके कारण (पक्षमें आकाशमें प्रवृत्त होनेसे) और सकलकलोज्ज्वलतया—समस्त कलाओं—चतुराईयोंसे उज्ज्वल (पक्षमें सोलह कलाओंसे निर्मल) होनेके कारण मानो पर्वराज—पूर्णिमाका चन्द्र ही है। इस प्रकार कवि लोगोंके द्वारा जिसकी उत्प्रेक्षा- ३५ की जा रही थी ऐसा सौधर्मस्वर्गका इन्द्र, अग—पर्वतकी शोभासे सहित होनेपर भी नागा-भिख्याञ्चित—पर्वतकी शोभासे रहित (पक्षमें नाग—हस्ती इस नामसे सहित नाग होनेपर भी अनाग—नागसे भिन्न (पक्षमें अपराधसे रहित) तथा मदाह्लादी—मदसे हर्षित होकर भी

सह कृतप्रस्थानः, सामानिकत्रायस्त्रिशपारिषदात्मरक्षलोकपालाभियोग्यकिल्बिषसंदोहपरिवृतः, सुरभिलसुरतरुकुसुमपूरितपात्रपवित्रकरकिङ्करनिकरानुगम्यमानतया तदीयविरहं सोढुमशक्नुवद्भिः क्रोडावनैरनुगम्यमानः, परस्परघट्टनरणन्मणिभूषणवाचालितकुचकुम्भाः कलितकांस्यतालध्वनिभिरिव दृश्यमानैः गगनपयोधिपयोजशङ्कावहवदनविराजितैर्नृत्यद्भिः सुराङ्गनाजनैः परिनिष्क्रियमाणपुरो- भागः, नभःस्थलजलाधितरङ्गमकरशङ्काकरैस्तुरङ्गस्तम्बैर्मैनिविडितसविधप्रदेशः क्रमेणाम्बरतला- ५
द्वततार ।

§ ७९) संमर्दाद्गलिता नटद्विषदं वक्षःस्थलप्रोल्लसन्-

मालामौक्तिकराजयः क्षितितले पेतुः सुशोभाञ्जिताः ।

व्योमाभोगचलत्करेणुचरणप्रक्षेपचूर्णीभव-

न्क्षत्रप्रचया इव प्रतिदिनं निःसीमकान्त्युल्वणाः ॥५९॥

१०

ऐरावतं ऐरावतम् आरुह्याधिष्ठाय शच्या पुलोमजया इन्द्राण्येत्यर्थः सह कृतप्रस्थानः कृतप्रयाणः, सामानिकः त्रायस्त्रिशः पारिषदः आत्मरक्षः लोकपालः आभियोग्यः किल्बिषकश्च देवविशेषास्तेषां संदोहेन समूहेन परिवृतः परिवेष्टितः, 'इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिशपारिषदात्मरक्षलोकपालानोकप्रकोर्णकाभियोग्यकिल्बिषिकाश्च' इति देवानां दशभेदाः । सुरभिलानि सुगन्धीनि यानि सुरतरुकुसुमानि कल्पवृक्षपुष्पाणि तैः पूरितानि संभृतानि यानि पात्राणि भाजनानि तैः पवित्रकराः पूतपाणयो ये किङ्कराः सेवकास्तेषां निकरेण समूहेनानुगम्यमानतया तदीयविरहं इन्द्रवियोगं सोढुमनुभवितुम् अशक्नुवद्भिः असमर्थैः, क्रोडावनैरिव कैलिकाननैरिवानुगम्यमानः, परस्परघट्टनेन मिथो घातेन रणन्ति शब्दायमानानि यानि मणिभूषणानि तैः—वाचालिता मुखरिताः कुचकुम्भाः स्तनकलशा येषां तैः कलितः कृतः कांस्यतालध्वनिर्यस्तेरिव दृश्यमानैरवलीव्यमानैः गगनमेव पयोधिः गगन- १५
पयोधिराकाशसमुद्रस्तस्मिन् विद्यमानानि यानि पयोजानि कमलानि तेषां शङ्कावहानि संदेहधारकाणि यानि वदनानि मुखानि तैर्विराजितैः शोभितैः, नृत्यद्भिर्नटद्भिः सुराङ्गनाजनैः देवीसमूहैः परिनिष्क्रियमाणः क्रिया- २०
शून्योक्रियमाणः पुरोभागोऽग्रभागो यस्य तथाभूतः नभःस्थलमेव गगनमेव जलधस्तस्य ये तरङ्गमकराः कल्लोल- मकरास्तेषां शङ्काकरैः संदेहदायकैः तुरङ्गस्तम्बैर्मैर्ह्यहस्तभिः निविडितः सान्द्रः सविधप्रदेशो यस्य तथाभूतः सन् क्रमेण अम्बरतलात् आकाशपृष्ठात् अवततार नीचैरागच्छत् । § ७९) संमर्दादिति—संमर्दात्परस्पर- प्रघट्टनात् गलिताः पतिताः सुशोभया अञ्जिताः सुशोभाञ्जिता उत्तमशोभासहिताः नटन्तश्च ते द्विषदश्चेति २५
नटद्विषदस्तेषां नृत्यत्रिलिम्पानां वक्षःस्थले प्रोल्लसन्त्यो या मालास्तासां मौक्तिकराजयो मुक्तापङ्क्तयः प्रतिदिनं प्रतिदिवसं निःसीमकान्त्या उल्वणा उत्कटा इति निःसीमकान्त्युल्वणाः व्योमाभागे आकाशविस्तारे

नमदाह्लादी मदसे रहित (पक्षमें नम्र मनुष्योंको आह्लाददायी) ऐरावत हाथीपर इन्द्राणी- के साथ बैठकर प्रस्थान करता हुआ क्रमशः आकाशसे नीचे उतरा । उस समय सुगन्धित कल्पवृक्षके फूलोंसे भरे पात्र हाथोंमें धारण करनेवाले किंकरोंके समूह उसके पीछे-पीछे चल रहे थे उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो उसका विरह सहन करनेके लिए असमर्थ होते हुए क्रोडावन ही उसके पीछे चलने लगे हों । परस्परके आघातसे रुनझुन शब्द करनेवाले मणिमय आभूषणोंसे जिनके स्तन कलश शब्दायमान हो रहे थे, जो काँसेकी झाँझोंके शब्द करती हुई सी दिखाई देती थीं तथा जो आकाशरूपी समुद्रमें सुशोभित कमलकी शंका करने- ३०
वाले मुखासे सुशोभित थीं ऐसी नृत्य करती हुई देवियोंने उस इन्द्रके अग्रभागको क्रिया- शून्य कर दिया था । आकाशरूपी समुद्रकी तरंगों तथा भ्रमरोंकी शंका करनेवाले घोड़े और ३५
हाथियोंसे उसका समीपवर्ती प्रदेश खूब व्याप्त था । § ७९) संमर्दादिति—उस समय परस्पर- के आघातसे टूटकर गिरे हुए नृत्य करनेवाले देवोंके वक्षःस्थलोंपर शोभायमान मालाओंके

§ ८०) पुरंदरपुरान्तराज्ञभसि संपतन्ती तदा

जिनेश्वर गृहावधि त्रिदशपद्धतिर्मेदुरा ।

समुज्जिगमिषोर्दिवं तदुहकीर्तिलक्ष्म्याः पद-

क्रमाय परिकल्पिता मणिमयीव निःश्रेणिका ॥५६॥

५ § ८१) स्फटिकरुचिरसालं केतुमालाविलास-

स्थगितगगनभागं तत्पुरं संपरीत्य ।

सुरवरपूतनास्तास्तस्थुरापूर्णबिम्बं

शशिन इव परीतास्तारका व्योमसीम्नि ॥५७॥

§ ८२) ततश्चतुर्णिकायदिशाध्यक्षसमेतसहस्राक्षः साकेतपुरलक्ष्मीवदनायमानं, गगनतस्-

१० मञ्जरीभिरिव तर्जयन्तीभिः सुरपुरश्रियं पताकाभिरुपशोभमानं, चन्द्रबिम्बमिव सकलकलं, वृन्दा-

चलतां गच्छतां करेणूनां मतङ्गजानां चरणाः पादास्तेषां प्रक्षेपेण चूर्णोभवन्तो ये नक्षत्रप्रचयास्तारासमूहास्तद्वत् क्षितितले महीतले पेतुः पतन्ति स्म 'करेणुर्गजयोषायां स्त्रियां पुंसि मतङ्गजे' इति विश्वलोचनः । उत्प्रेक्षा ।

शार्दूलविक्रीडितम् ॥५५॥ § ८०) पुरंदरेति—तदा तस्मिन् काले पुरंदरपुरान्तरात् इन्द्रनगरमध्यात् नभसि गगने संपतन्ती समागच्छन्ती मेदुरा प्रभूता जिनेश्वरगृहं जिनेन्द्रभवनमवधिर्यस्य तथाभूता या त्रिदशपद्धति-

१५ दैवपङ्क्तिः दिवं स्वर्गं समुज्जिगमिषोः समुद्गन्तुमिच्छन्त्याः तदुहकीर्तिलक्ष्म्या जिनेन्द्रविशालयशःश्रियाः पदक्रमाय चरणचाराय परिकल्पिता रचिता मणिमयी रत्नमयी निःश्रेणिकेव सोपानसंततिरिव रेजे शुशुभे इति शेषः । उत्प्रेक्षा । पृथ्वीछन्दः ॥५६॥ § ८१) स्फटिकेति—स्फटिकस्याकोपलस्य रुचिरो मनोहरः साली यस्मिंस्तत्, केतुमालायाः पताकापरम्पराया विलासेन स्थगितः समाच्छादितो गगनभागो नभःप्रदेशो यस्मिंस्तत्

तथाभूतं तत् पुरं तल्लगरम् अयोध्यामिति यावत् संपरीत्य वेष्टयित्वा ताः पूर्वोक्ताः सुरवरपूतना देवराजसेना

२० व्योमसीम्नि नभःक्षेत्रे शशिनश्चन्द्रमसः आपूर्णबिम्बं संपूर्णमण्डलं परीताः परिवृत्य स्थिताः तारका इव नक्षत्रतय इव तस्थुः स्थिता बभूवुः । उपमा । मालिनी ॥५७॥ § ८२) तत इति—ततस्तदनन्तरम् चतुर्णिकायविद्वानां भवनामरव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिदेवानामध्यक्षैरिन्द्रैः समेतः सहितः सहस्राक्षः सौधमेन्द्रः नाभिराजसदनं नाभिराजभवनम् आसाद्य प्राप्य शचीदेवीमिन्द्राणीम् अन्तर्मध्ये प्रेषयामास । अथ नाभिराजसदनं विशेष-यितुमाह—साकेतपुरलक्ष्म्या अयोध्यानगरश्रिया वदनायमानं मुखायमानं, गगनतस्मञ्जरीभिरिव व्योममहो-

२५ मोतियोंकी सुन्दर पंक्तियाँ पृथिवीपर ऐसी पड़ रही थीं मानो प्रतिदिन अपरिमितकान्तिसे युक्त नक्षत्रोंके समूह आकाशके मैदानमें चलते हुए हाथियोंके पादचारसे चूर-चूर होकर ही गिर रहे हों ॥५५॥ § ८०) पुरन्दरेति—उस समय इन्द्रनगरके मध्यसे लेकर जिनेन्द्रभगवान्के भवन तक आकाशमें आती हुई देवोंकी विशाल सन्तति ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्ग जानेके लिए इच्छुक जिनेन्द्रदेवकी विशाल कीर्तिरूपी लक्ष्मीके चरण निक्षेपके लिए निर्मित

३० मणिमयी सीढ़ियाँ ही हों ॥५६॥ § ८१) स्फटिकेति—इन्द्रकी वे सेनाएँ स्फटिक मणिके सुन्दर कोटसे युक्त तथा पताकाओंके समूहसे आकाशको आच्छादित करनेवाले उस अयोध्यानगरको घेरकर उस तरह स्थित हो गयीं जिस तरह कि आकाशमें चन्द्रमाके पूर्ण बिम्बको घेरकर ताराएँ स्थित होती हैं ॥५७॥ § ८२) तत इति—तदनन्तर चार निकायके इन्द्रोंसे सहित सौधमेन्द्रने नाभिराजके उस भवनको प्राप्त कर इन्द्राणीको भीतर भेजा जो कि अयोध्यानगर-

३५ की लक्ष्मीके मुखके समान था, आकाशरूपी वृक्षकी पुष्पमंजरियोंके तुल्य स्वर्गकी लक्ष्मीकी तर्जित करनेवाली पताकाओंसे सुशोभित था, चन्द्रमण्डलके समान सकलकल—कलकल

रकवृन्दमिव सदामङ्गलमादधानं मञ्जुलास्यविराजितं च, विजिगीषुराजबलमिव पुरतोरण-
श्रीविराजमानं सर्वतोमरशोभितं च, वनोज्ज्वलमपि नवनोज्ज्वलं, शिवाञ्चितमपि विभवाञ्चितं,
सशालमपि विशालं, नाभिराजसदनमासाद्य शचीदेवीमन्तः प्रेषयामास ।

§ ८३) अरिष्टगेहं तदनुप्रविष्टा सुरेन्द्रपत्नी सहसा ददर्श ।

पुत्रेण जुष्टां जिनमातरं तां संध्यां नवार्केण युतामिवाद्याम् ॥५८॥

§ ८४) तदनु भक्तिरसपरीवाहेन प्लाविता पुरंदरवनिता समुन्नतवंशपोतमवलम्बितुकामा

रूपवृषसंततिभिरिव सुरपुरश्रियां स्वर्गलक्ष्मीं तर्जयन्तीभिः भर्त्सयन्तीभिरिव पताकाभिर्वैजयन्तीभिः उपशोभमानं
विराजमानं, चन्द्रबिम्बमिव सकलकलं सकलाः कला यस्य तत् पक्षे कलकलेन कलकलशब्देन सहितं तत्,
वृन्दारकवृन्दमिव देवनिफुरम्बमिव सदामङ्गलमादधानं सदामं गालासहितं गलं कण्ठम् आदधानं पक्षे सदा
वश्वत् मङ्गलं मङ्गलद्रव्यमादधानं विभ्रत्; अकारान्तो दामशब्दः वचित् दृश्यते, मञ्जुलास्यविराजितं च १०
मञ्जुलं मनोहरं यदास्थं मुखं तेन विराजितं शोभितं पक्षे मञ्जुलास्येन मनोहरनृत्येन विराजितं च, विजिगीषु-
राजबलमिव विजेतुमिच्छुर्विजिगीषुः स चासौ राजा चेति विजिगीषुराजस्तस्य बलमिव सैन्यमिव पुरतोरण-
श्रीविराजमानं पुरतोऽग्रे रणश्रिया युद्धलक्ष्म्या विराजमानं शोभमानं पक्षे पुरतोरणानां नगरबहिर्द्वाराणां श्रिया
शोभया विराजमानं शोभमानं, सर्वतोमरशोभितं च सर्वतोमरैः सकलशस्त्रविशेषैः शोभितं पक्षे सर्वतः समन्तात्
अमरशोभितं च देवशोभितं च, वनोज्ज्वलमपि काननशोभितमपि न वनोज्ज्वलं न काननशोभितमिति विरोधः १५
परिहारपक्षे नवनेन स्तवनेन उज्ज्वलं शोभितं, शिवाञ्चितमपि शिवेन भवेन अञ्चितं शोभितमपि विभवा-
ञ्चितं न भवाञ्चितमिति विरोधः परिहारपक्षे शिवाञ्चितमपि कल्याणाञ्चितमपि विभवाञ्चितं समृद्धिसं-
शोभितम्, सशालं शालाभिः सहितमपि विशालं विगताः शाला यस्य तत् शालारहितमिति विरोधः परिहार-
पक्षे विशालं विपुलम् । श्लेषोपमाविरोधाभासाः । § ८३) अरिष्टेति—तदनु तदनन्तरम् अरिष्टगेहं सूतिकागृहम्
'अरिष्टं सूतिकागृहम्' इत्यमरः प्रविष्टा सुरेन्द्रपत्नी शची सहसा दृष्टिं पुत्रेण सूतुना जुष्टां सेवितां २०
जिनमातरं जिनेन्द्रजननीं नवार्केण बालसूर्येण युतां सहिताम् आद्यां सन्ध्यामिव प्रभातवेलांमिव ददर्श
विलोकयामास । उपमा । उपजातिवृत्तम् ॥५८॥ § ८४) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं भक्तिरसस्य भक्ति-
जलस्य परीवाहः प्रपूरस्तेन प्लाविता मज्जिता पुरंदरवनिता इन्द्राणी समुन्नतः श्रेष्ठतमो वंशो गोत्रं यस्य

शब्दसे सहित (पक्षमें समस्त कलाओंसे सहित) था, देवसमूहके समान सदामङ्गलमाद-
धानं—सर्वदा मङ्गलको धारण करनेवाला था (पक्षमें माला सहित कण्ठको धारण करने- २५
वाला था) तथा मञ्जुलास्यविराजित—मनोहर मुखसे सुशोभित (पक्षमें मनोहर नृत्यसे
सुशोभित) था, और विजयाभिलाषी राजाकी सेनाके समान पुरतोरणश्रीविराजमान—
आगे युद्धकी लक्ष्मीसे सुशोभित (पक्षमें नगर सम्बन्धी तोरण द्वारोंसे सुशोभित) तथा
सर्वतोमरशोभित—समस्त तोमर नामक शस्त्रोंसे विराजित (पक्षमें सब ओरसे देवोंसे
विराजित) था । साथ ही वनोज्ज्वल—वनोसे सुशोभित होकर भी नवनोज्ज्वल—वनोसे ३०
सुशोभित नहीं था (परिहार पक्षमें स्तवनसे उज्ज्वल था) शिवांचित—भव—महादेवसे
सुशोभित होकर भी विभवांचित—भव—महादेवसे सुशोभित नहीं था (परिहारपक्षमें
शिवांचित—कल्याणकारी पदार्थोंसे युक्त होकर भी विभवांचित—समृद्धिसे सुशोभित था
और सशाल—शालाओंसे सहित होकर भी विशाल—शालाओंसे रहित था (परिहारपक्षमें
विशाल—विस्तृत था । § ८३) अरिष्टेति—तदनन्तर प्रसूतिकागृहमें प्रविष्ट हुई इन्द्राणीने ३५
पुत्रसे सहित जिनमाताको शीघ्र ही ऐसा देखा जैसे नवीन उदित सूर्यसे सहित प्रातःकालकी
संध्या ही हो ॥५८॥ § ८४) तदन्विति—तदनन्तर जो भक्तिरूप जलके प्रवाहसे डूबकर ऊँचे

समीपमासाद्य रूपसंपदा मारं कुमारमभिजातमपि नाभिजातं, रोचितवृत्तिमपि नरोचितवृत्ति, सलक्षणमपि विलक्षणं, विलसन्तमप्यविलसन्तं तनयं तं मायानिद्रामोहिताया मरुदेव्या अङ्गे प्राचीव पूर्वपयोधिवीचेः प्रतिबिम्बं समर्प्य भानुमन्तं क्षणात् स्वीचकार ।

§ ८५) स्पर्शं स्पर्शं कौतुकात्कोमलाङ्गं

५ दशं दशं तस्य दृग्भ्यां मुखाब्जम् ।

उद्यद्वंशं पोतमेषाश्रितापि

पोलोमी द्राक् संमदाब्धौ ममज्ज ॥५९॥

§ ८६) तदनु द्यौरिव बालभानुमुद्यन्तमर्हन्तमादाय व्रजन्ती मङ्गलधारिणीभिर्दिवकुमारोभि-

- समुन्नतवंशः स चासौ पोतश्च बालकश्चेति समुन्नतवंशपोतस्तं पक्षे समुन्नतः समुत्तुङ्गो वंशो वेणुर्यस्मिन् तथा-
१० भूतः पोतो नोस्तम्, अवलम्बितकामा समाश्रयणं कर्तुंकामा, सतो समीपं निकटम् आसाद्य प्राप्य रूपमेव संपत्त्या सौन्दर्यसंपत्त्या मारं कामदेवं अभिजातं श्रेष्ठकुलोत्पन्नमपि अभिजातं न भवतीति नाभिजातमिति विरोधः परिहारपक्षे नाभिराजसमुत्पन्नम्, रोचिता वृत्तिर्यस्य तं तथाभूतमपि प्रियव्यवहारमपि न रोचिता वृत्तिर्यस्य तमिति विरोधः परिहारपक्षे नराणां मनुजानामुचिता योग्या वृत्तिर्यस्य तम्, सलक्षणमपि लक्षण- सहितमपि विलक्षणं विगतलक्षणमिति विरोधः परिहारपक्षे विलक्षणं विभिन्नम्, विचित्रमित्यर्थः विलसन्तमपि
१५ शुम्भन्तमपि अविलसन्तं न शुम्भन्तमिति विरोधः । परिहारपक्षे अः विष्णुस्तद्वद् विलसन्तं शोभमानं तनयं पुत्रं तं, मायैव निद्रा मायानिद्रा तथा मोहितायाः मुग्धायाः मरुदेव्या जिनजनन्या अङ्गे क्रोडे प्राचीव पूर्वदिशेव पूर्वपयोधिवीचेः पूर्वसिन्धुतरङ्गसंततेः अङ्गे प्रतिबिम्बं समर्प्य भानुमन्तमिव सूर्यमिव क्षणात् स्वीचकार आदत्त- वती । श्लेषोपमाविरोधाभासाः । § ८५) स्पर्शमिति—एषा पूर्वोक्ता पोलोमी शची कौतुकात् कुतूहलात् तस्य पुत्रस्य कोमलाङ्गं मृदुलशरीरं स्पर्शं स्पर्शं स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा, दृग्भ्यां नयनाभ्यां मुखाब्जं मुखकमलं दशं दशं दृष्ट्वा
२० दृष्ट्वा उद्यन् उत्तुङ्गो वंशो वेणुर्यस्मिस्तथाभूतं पोतं नौकां पक्षे उद्यद्वंशं श्रेष्ठकुलं पोतं शिशुं 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः, आश्रितापि प्राप्तापि द्राक्क्षटिति संमदाब्धौ हर्षसागरे ममज्ज निमग्ना- भूत् । रूपकविरोधाभासौ । शालिनीछन्दः ॥५९॥ § ८६) तदन्विति—उद्यन्तमुदीयमानं बालभानुं प्रभात- प्रभाकरं द्यौरिव, अर्हन्तं जिनम् आदाय गृहीत्वा व्रजन्ती गच्छन्ती मङ्गलधारिणीभिरष्टमङ्गलद्रव्यधारिकाभिः

- बाँससे युक्त जहाज (पक्षमें उच्चकुलोत्पन्न बालक) का अवलम्बन लेना चाहती थी ऐसी
२५ इन्द्राणीने पास जाकर जो सौन्दर्यरूप सम्पत्तिसे कामदेव था, अभिजात—उच्चकुलोत्पन्न होकर भी नाभिजात—उच्चकुलोत्पन्न नहीं था (पक्षमें नाभिराजासे उत्पन्न था) रोचितवृत्ति—उत्तम व्यवहारसे युक्त होकर भी नरोचितवृत्ति—उत्तम व्यवहारसे युक्त नहीं था (पक्षमें मनुष्यों- के योग्य व्यवहारसे सहित था) सलक्षण—लक्षणोंसे सहित होनेपर भी जो विलक्षण— लक्षणोंसे रहित था (पक्षमें अनुपम अथवा विचित्र था) तथा विलसन्तमपि—शोभायमान होनेपर भी जो अविलसन्त—शोभायमान नहीं था (परिहारपक्षमें अ अर्थात् विष्णुके समान शोभायमान था) ऐसे उस बालकको, मायामयी निद्रासे मोहित मरुदेवीको गोदमें तत्सदृश- कृत्रिम बालकको रखकर उसी क्षण उस प्रकार उठा लिया जिस प्रकार कि पूर्वदिशा पूर्व- समुद्रकी बीचकी गोदमें प्रतिबिम्बको रखकर सूर्यको उठा लेती है । § ८५) स्पर्शमिति— यद्यपि वह इन्द्राणी उद्यद्वंशं पोतं—ऊँचे बाँसवाले जहाज (पक्षमें उच्च कुलवाले बालक)
३५ को प्राप्त थी तो भी कुतूहलवश जिनबालकके कोमल शरीरका बार-बार स्पर्श कर तथा नेत्रोंसे उसके मुख कमलको बार-बार देखकर शीघ्र ही हर्षके सागरमें डूब गयी ॥५९॥
§ ८६) तदन्विति—तदनन्तर उदित होते हुए बालसूर्यको लेकर आकाशके समान, उदीयमान

स्तरङ्गितपुरोभागा सेयमिन्द्राणो पाकशासनस्य करे पूर्वगिरेः सानो द्युमणिं प्राचीव समर्पयामास ।

§ ८७) गोर्वाणेन्द्रास्त्रिजगतां गुरुमादाय सादरम् ।

संददर्श स तद्रूपं संप्रीतिस्फुरितेक्षणः ॥६०॥

§ ८८) त्वं लोकाधिपतिस्त्वमेव हि गतिर्भक्तिस्पृशां मादृशां

राजत्केवलबोधवासरमणोः पूर्वाचलं त्वां विदुः ।

श्रीमन्नाधिपदे तनोति विनते द्राक् संपदं त्वद्गुचिः

सिद्धयत्यत्र जने सुदृष्टिमहिते भव्ये समाधिस्ततः ॥६१॥

§ ८९) स्तुत्वेति जम्भद्विषता जिनोऽयं न्यधायि मूर्ध्नि त्रिदशद्विपस्य ।

जयेश नन्देति वदद्भिर्हृच्चैः कराञ्जलिस्तत्र समस्तलेखैः ॥६२॥

दिवकुमारीभिर्देवीभिः तरङ्गितः पुरोभागो यस्यास्तथाभूता इयं सा इन्द्राणो पाकशासनस्य पुरंदरस्य करे हस्ते १०
पूर्वगिरेरुदयाचलस्य सानो शिखरे द्युमणिं सूर्यं प्राचीव पूर्वदिगिव समर्पयामास । उपमा । § ८७) गोर्वा-
णेन्द्र इति—गोर्वाणानां देवानामिन्द्रो भर्ता गोर्वाणेन्द्रः स सौधर्मेन्द्रः सादरं यथा स्यात्तथा त्रिजगतां त्रिलोकीनां
गुरुं जिनम् आदाय गृहीत्वा संप्रीत्या स्फुरितानि ईक्षणानि नयनानि यस्य तथाभूतः सन् तद्रूपं जिनशिशुसौन्दर्यं
संददर्श विलोकयामास ॥६०॥ § ८८) त्वमिति—हे भगवन् ! त्वं लोकाधिपतिः लोकस्वामी असि, हि १५
निश्चयेन त्वमेव भक्तिस्पृशां भक्तियुक्तानां मादृशां मत्सदृशजनानां गतिर्लक्ष्यस्थानम् असि । त्वां भवन्तं
राजत्केवलबोध एव वासरमणिस्तस्य शोभमानकेवलज्ञानसूर्यस्य पूर्वाचल उदयाचलं विदुर्जनन्ति, हे श्रीमन् !
त्वद्गुचिस्त्वदोयश्रद्धा आधिपदे मनोव्ययास्पदे विनते नम्रे जने द्राक् शोघं संपत्तिं तनोति विस्तारयति पक्षे
समितिपदं संपदं तनोति योजयति ततस्तस्मात् कारणात् सुदृष्टिमहिते सम्यक्श्रद्धाविभूषिते अत्र भव्ये जने
समाधिः ध्यानं सिद्धयति । अथ आधिपदे 'सम्' इति शब्दस्य योजने सति समाधिः सिध्यत्येव । रूपकश्लेषो ।
शार्दूलविक्रीडितम् ॥६१॥ § ८९) स्तुत्वेति—इति पूर्वोक्तप्रकारेण स्तुत्वा जम्भद्विषता सौधर्मेन्द्रेण अयं जिन २०
एष जिनबालकः त्रिदशद्विपस्य देवगजस्य ऐरावतस्येत्यर्थः मूर्ध्नि शिरसि न्यधायि स्थापितः कर्मणि प्रयोगः ।
हे ईश ! भो स्वामिन् ! 'जय नन्द' इति वदद्भिर्हृच्चरद्भिः समस्तलेखैः निखिलनिलिम्पैश्च कराञ्जलिर्हस्ताञ्जलिः

जिनबालकको लेकर जो जा रही थी, तथा मंगल द्रव्योंको धारण करनेवाली दिक्कुमारी २५
देवियोंके द्वारा जिसके आगेका प्रदेश व्याप्त हो रहा था ऐसी उस इन्द्राणीने उस बालकको
इन्द्रके हाथमें उस प्रकार सौंप दिया जिस प्रकार कि पूर्वदिशा सूर्यको पूर्वाचलके शिखरपर
सौंप देती है । § ८७) गोर्वाणेन्द्र इति—इन्द्र, त्रिजगद्गुरुको आदरपूर्वक ग्रहण कर प्रीतिवश
नेत्रोंको खोल-खोलकर उनके रूपको देखता रहा ॥६०॥ § ८८) त्वमिति—हे भगवन् ! आप
ही लोकके स्वामी हैं, आप ही मेरे जैसे भक्तपुरुषोंके लक्ष्य स्थान हैं, आपको ही लोग
शोभायमान केवलज्ञानरूपी सूर्यका उदयाचल कहते हैं । हे श्रीमन् ! अपनी श्रद्धा आधि—
मानसिक व्यथाके स्थानभूत विनम्र मनुष्य में शीघ्र ही संपद्—संपत्ति (पक्षमें 'सम्' इस
पद) को विस्तृत करती है इसलिए इस जगत्में सम्यग्दर्शनसे सुशोभित मनुष्यमें समाधि— ३०
ध्यान (पक्षमें सम्+आधि=समाधि शब्द) सिद्ध होता है ॥६१॥ § ८९) स्तुत्वेति—इस
प्रकार स्तुति कर इन्द्रने जिनबालकको ऐरावत हाथोंके मस्तकपर धारण किया और 'ईश !
जयवन्त होओ समृद्धिवान् होओ' इस तरह कहते हुए समस्त देवोंने हाथोंकी अंजलि

§ ९०) तितीषुर्भववाराशि जिनपोतं समाश्रितः ।

करं मेरुप्रयाणाय चालयामास वासवः ॥६३॥

§ ९१) तदनु कौतुकवशेन नभोऽङ्गणमुत्पतितैर्भूषणगणप्रभाभिः सुरचापानि तन्वद्भिर्जय-
धोषणमुखरमुखैर्बहिर्मुखैः कवचितपुरोभागः, गन्धर्वसमारब्धसंगीतानुसारिणीभिः कलितकुतुक-
धोरणीभिरुत्क्षिप्तभ्रूपताकाभिश्चलत्कुचकुम्भाभिरप्सरोभिर्विरचितनाट्यविलासः, संघट्टक्षुण्णजलधरै-
विमानवरैर्निरन्तरगगनान्तश्चलदैरावणद्वात्रिंशदाननविलसदष्टदन्तसमुदञ्चितसरोवरसमुज्ज्वलद्वा -
त्रिंशद्दलविलसितकमलदलेषु नटन्तीनां सुरलासिकानां लास्यान्यवलोकनेनाङ्गोक्ताङ्गः, सुरनिकर-
कराम्बुरुहमुकुलीकरणचतुरं मन्दस्मितफेनिलप्रमदपारावारपरिवर्धनतत्परं स्वाङ्कालंकारं जिनचन्द्रं
वक्षसा भुजाभ्यां चावलम्बमानो जन्माभिषेकलालसमानसः सौधर्म्यतिर्नभोमार्गेण ससैन्यः प्रतस्थे ।

१० तत्र मूर्ध्नि न्यधायि स्थापितः । उपजातिवृत्तम् ॥६२॥ § ९०) तितीषुरिति—भव एव वाराशिः भववाराशिस्तं
संसारसागरं तितीषुः तरितुमिच्छुः अतएव जिन एव पोतो जलयानं तं पक्षे जिनबालकं समाश्रितः वासव इन्द्रः
मेरुप्रयाणाय मेरुं प्रति प्रस्थानं कर्तुं करं हस्तं चालयामास कम्पयामास । रूपकालंकारः ॥६३॥ § ९१) तद-
न्विति—तदनन्तरं कौतुकवशेन नभोऽङ्गणं गगनाजिरम् उत्पतितैरुद्गतैः, भूषणानां गणस्य प्रभाभिर्भूषणगण-
प्रभाभिराभरणसमूहदीप्तिभिः सुरचापं शक्रशरासनं तन्वद्भिर्विस्तारयद्भिः, जयधोषणेन जयजयेत्युच्चारणेन
मुखराणि वाचालानि मुखानि येषां तैः बहिर्मुखैर्गोवर्णिः । 'बहिर्मुखाः क्रतुभुजो गोवर्णा दानवारयः' इत्यमरः,
१५ कवचितो व्यासः पुरोभागोऽग्रप्रदेशो यस्य तथाभूतः, गन्धर्वः संगीतप्रियदेवविशेषः समारब्धं प्रारब्धं यत्संगीतं
तदनुसरन्तीत्येवंशोलाभिः, कलिता धृताः कुतुकस्य कुतूहलस्य धोरण्यो नद्यो याभिस्ताभिः, उत्क्षिप्ता उन्नमिता
भ्रुव एव पताका याभिस्ताभिः, चलन्ती कुचकुम्भो स्तनकलशी यासां ताभिः अप्सरोभिर्देवाङ्गनाभिः, विरचितः
कृतो नाट्यविलासो नृत्यविलासो यस्य तथाभूतः, संघट्टेन समाचालेन क्षुण्णाश्चूर्णीकृता जलधरा मेघा दैस्तैः
२० विमानवरैः श्रेष्ठव्योमयानैः निरन्तरं सान्द्रं यद् गगनं तस्यान्तर्मध्ये चलदैरावणस्य चलदैरावतस्य द्वात्रिंशदाननेषु
प्रत्याननं विलसन्तो विशोभमाना येऽष्टदन्तास्तेषु समुदञ्चिताः शोभिता ये सरोवरास्तडागास्तेषु समुज्ज्वलन्ति
शोभमानानि यानि द्वात्रिंशद्दलविलसितानि कमलदलानि नलिनपत्राणि तेषु नटन्तीनां नृत्यन्तीनां सुरलासिकानां
देवनर्तकीनां लास्यानि नृत्यानि अवलोकनेन अङ्गोक्ताङ्गः स्त्रीकुर्वाणः, सुरनिकरस्य देवसमूहस्य कराम्बुरुहाणां

मस्तकपर धारण की अर्थात् हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये ॥६२॥ § ९०) तितीषुरिति—
२५ संसार सागरसे पार होनेके इच्छुक अतएव जिनपोत—जिनेन्द्ररूपी जहाज (पक्षमें जिन
बालक) का आश्रय लेनेवाले इन्द्रने मेरुपर्वतकी ओर चलनेके लिए हाथ चलाया अर्थात्
हाथसे इशारा किया ॥६३॥ § ९१) तदन्विति—तदनन्तर कुतूहलवश, आकाशगणमें उड़े
हुए, आभूषणसमूहकी प्रभासे इन्द्रधनुषोंको विस्तृत करनेवाले तथा जय जय शब्दके उच्चा-
रणसे शब्दायमान मुखोंसे युक्त देवोंके द्वारा जिसका अग्रभाग व्याप्त हो रहा था, गन्धर्व-
३० देवोंके द्वारा प्रारम्भ किये हुए संगीतके अनुसार चलनेवाली, कुतूहलयुक्त, भौंहोंको ऊपर
उठानेवाली तथा हिलते हुए स्तनकलशोंसे युक्त अप्सराएँ जिसके आगे नृत्यकी शोभा बढ़ा
रही थीं, अपने आघातसे मेघोंको चूर-चूर कर देनेवाले श्रेष्ठ विमानोंसे व्याप्त आकाशके बीच
चलते हुए ऐरावत हाथीके बत्तीस मुखोंमें सुशोभित आठ-आठ दाँतोंपर झलकते हुए तालावोंमें
शोभायमान बत्तीस-बत्तीस कलिकाओंसे युक्त कमलोंके प्रत्येक दलोंपर नृत्य करती हुई
३५ देवनर्तकियोंके नृत्योंको जो अवलोकनके द्वारा स्वीकृत कर रहा था, देवसमूहके करकमलोंको
मुकुलित करनेमें प्रवीण, मन्द हास्यसे फेनयुक्त हर्षरूपी समुद्रके बढ़ानेमें तत्पर तथा अपनी
गोदके अलंकार स्वरूप जिनचन्द्रको जो वक्षःस्थल और दोनों भुजाओंसे पकड़े हुआ था

§ ९२) तूर्यारावप्रसरमुखरे व्योमभागे तदानीं

गद्यैः पद्यैर्ललितमधुरं नाकनाथैः प्रकल्पितैः ।

जैनं स्तोत्रं श्रवणविषयं नाभवत्किंतु लेखै-

रासोज्झातं विचलदधरस्फारलीलायितेन ॥६४॥

§ ९३) ईशानवासवधृतं धवलातपत्रं

प्रोद्भूतहेमकलशं प्रगुणं व्यतानीत् ।

जन्माभिषेककुतुकेन समागतस्य

चन्द्रस्य हस्तधृतसत्कलशस्य शङ्काम् ॥६५॥

§ ९४) तदा खलु सानत्कुमारमाहेन्द्रनायककरनीरेजकलितचारुचामरपङ्क्तिः जिनाभिषेक-
मेदुरतया समनुसृतपयःपारावारवीचिपरम्परेव, समुत्सुकमुक्तिलक्ष्मोप्रहितकटाक्षधारेव, भगवत्सेवार्थ- १०
मनुप्रवहन्ती सुरस्रवन्तीव च विरराज ।

करकमलानां मुकुलीकरणे कुङ्कुमलीकरणे चतुरो दक्षस्तं, मन्दस्मितेन मन्दहसितेन फेनिलो डिण्डोरयुक्तो यः
प्रमदपारावरो हर्षसागरस्तस्य परिवर्धने तत्परस्तं, स्वाङ्कुस्य स्वोत्सङ्गस्थालंकारस्तं, जिनचन्द्रं जिनेन्द्रचन्द्रमसं
वक्षसा भुजाभ्यां बाहुभ्यां चावलम्बमानो गृह्णातः, जन्माभिषेके लालसा यस्य जन्माभिषेकलालसं तथाभूतं
मानसं यस्य सः, सौधर्मपतिः सौधर्मन्द्रः नभोमार्गेण गगनवर्त्मना ससैन्यः सपुत्रः प्रतस्थे प्रययौ । १५
§ ९२) तूर्येति—तदानीं तस्मिन् काले तूर्याणां वाद्यानामारावस्य शब्दस्य प्रसरेण मुखरे शब्दायमाने व्योम-
भागे गगनप्रदेशे नाकनाथैरिन्द्रैः प्रकल्पितैः रचितैः गद्यैः पद्यैः ललितमधुरं प्रशस्ततमं जिनस्येदं जैनं जेनेन्द्रं
स्तोत्रं स्तवनं श्रवणविषयं कर्णगोचरं नाभवत् कलकलारावस्य बाहुल्येन स्तोत्रं न श्रूयते स्मेति भावः । किंतु
लेखैः सुरैर्विचलतामधराणामोष्ठानां स्फारलीलायितेन प्रचुरलीलया जातम् आसीत् । ओष्ठानां चाञ्चल्येन देवैः
स्तोत्रस्यानुमानं कृतमिति यावत् । मन्दाक्रान्ता ॥६४॥ § ९३) ईशानेति—ईशानवासवेन ऐशानेन्द्रेण धृतं २०
स्थापितमितोशानवासवधृतं प्रोद्भूतः प्रकटितो हेमकलशो यस्मिंस्तत् प्रगुणं प्रकृष्टं श्रेष्ठमित्यर्थः । धवलातपत्रं
शुक्लच्छत्रं जन्माभिषेकस्य कुतुकेन तेन समागतस्य समायातस्य हस्ते धृतः सत्कलशो येन तथाभूतस्य चन्द्रस्य
शशिनः शङ्का संदेहं व्यतानीत् विस्तारयामास । उपमा । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥६५॥ § ९४) तदेति—
तदा खलु सानत्कुमारमाहेन्द्रनायकयोः तन्नामैन्द्रयोः करनीरेजेषु हस्तकमलेषु कलिता धृता या चारुचामर- २५
पङ्क्तिः सुन्दरबालव्यजनसंततिः सा, जिनाभिषेकादरेण मेदुरतया मिलिततया समनुसृता समागता पयःपारा-
वारस्य ओरपयोर्वेर्वीचिपरम्परेव तरङ्गपरिपाटीव, समुत्सुकया समुत्कण्ठया मुक्तिलक्ष्म्या निर्वृतिश्रिया प्रहिता
मुक्ता कटाक्षधारेव केकरपङ्क्तिरिव, भगवत्सेवार्थम् जिनेन्द्रसेवार्थम् अनुप्रवहन्ती अनुप्रगच्छन्ती सुरस्रवन्तीव च

तथा जिसका हृदय जन्माभिषेकके लिए उत्सुक हो रहा था ऐसे सौधर्मैन्द्रेने सेनासहित
आकाशमार्गसे प्रस्थान किया । § ९२) तूर्येति—उस समय बाद्योंके शब्दसमूहसे वाचालित
आकाशमें इन्द्रोंके द्वारा रचे हुए गद्य-पद्योंसे सुन्दर जिनस्तोत्र कानोंका विषय नहीं हो रहा ३०
था किन्तु देव हिलते हुए होंठोंकी विशाल लीलासे उसे जान रहे थे ॥६४॥ § ९३) ईशानेति—
जिसपर स्वर्णकलश लग रहा था ऐसा ऐशानेन्द्रके द्वारा धारण किया हुआ सुन्दर सफेद
छत्र, जन्माभिषेकके कुतूहलसे हाथमें कलश लेकर आये हुए चन्द्रमाकी शंका कर रहा
था ॥६५॥ § ९४) तदेति—उस समय सानत्कुमार और माहेन्द्र इन्द्रोंके करकमलोंमें स्थित
सुन्दर चामरोंकी पंक्ति ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो जिनाभिषेकके आदरसे युक्त होनेके ३५
कारण साथ-साथ आये हुए क्षीरसागरकी तरंगोंकी परम्परा ही हो अथवा अत्यन्त उत्कण्ठित

§ ९५) तत्र किल विचित्रविविधवाहनान्यधिरूढेषु भवनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पनाथेषु ससैन्येषु जिनमभितः प्रचलितेषु, केचित्किरोटघटितपद्मरागप्रभाबालातपरुचिरवदनसरोजतया प्रचुरानुरागमन्तरमेयत्वेन बहिरपि प्रसृतमुद्रहन्त इव, अपरे च विचलदेकावली तरलमणिधृणिश्रेणि-
५ दन्तुरितभुजान्तरतयान्तःप्ररूढाजिनभक्तिनिःसारितहृदयस्थितमोहतिमिरनिकरमेदुरा इव, केचन तपनबिम्बे रक्तोत्पलधिया धावमानं मत्तद्विपं निजवाहनं निवर्तयन्तः, परे पुनः सैनिकसंमर्दितपाण्डुर-
जलधरखण्डेषु दध्योदनभ्रान्त्या संभ्रान्तान्विडालांस्ताडयन्तोऽन्ये च पुनस्तरलमुक्ताहारविसृत-
कान्तिधारासु मृणालिनीशङ्कया संकुलान्हंसान्सान्त्वयन्त, इतरे तावत्तारापथसंचरत्सुरसिन्धुरकर-
गलितफूत्कारजलकणगणांस्तारानिकरान्मन्यमाना, एके च संमर्दसंवृत्तितभूषणमणिगणान् जानन्तः
संचेलुः ।

- १० मन्दकिनीव च विरराज शुशुभे । § ९५) तत्रेति—तत्र किल विचित्राणि विस्मयावहानि विविधानि नाना-
प्रकाराणि च यानि वाहनानि यानानि तानि अधिरूढेष्वधिश्रितेषु भवनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पानां चतुर्णिकाया-
मराणां नाथेषु इन्द्रेषु ससैन्येषु पतनापरीतेषु जिनमभितः परितः प्रचलितेषु सत्सु, केचिद्देवाः किरीटेषु मुकुटेषु
घटिताः खचिता ये पद्मरागा लोहितमणयस्तेषां प्रभैव बालातपः प्रातस्तनवर्मस्तेन रुचिरं मनोहरं वदनसरोज
मुखकमलं येषां तेषां भावस्तया प्रचुरानुरागं प्रभूतानुरागम् अन्तर्मध्येऽमेयत्वेन यातुमशक्यत्वेन बहिरपि प्रसृतं
१५ विस्तृतम् उद्रहन्त इव धरन्त इव, अपरे च अन्ये च विचलन्ती कम्पमाना या एकावली एकयष्टिका तस्या य-
स्तरलमणिर्मध्यमणिस्तस्य धृणिश्रेणिभिः किरणसंततिभिः तन्दुरितं व्याप्तं भुजान्तरं वक्षो येषां तेषां भावस्तया
अन्तर्मध्ये प्ररूढा समुत्पन्ना या जिनभक्तिस्तया निःसारितं बहिष्कृतं हृदयस्थितं यत् मोहतिमिरं मोहध्वान्तं
तस्य निकरेण समूहेन मेदुरा मिलिता इव, केचन देवाः तपनबिम्बे सूर्यमण्डले रक्तोत्पलधिया रक्तराजीव-
बुद्ध्या धावमानं वेगेन गच्छन्तं मत्तद्विपं मत्तगजं निजवाहनं स्वयान् निवर्तयन्तः प्रत्यागमयन्तः, परे पुनर्देवाः
२० सैनिकैः संमर्दितानि यानि पाण्डुरजलधरखण्डानि श्वेतवदशकलानि तेषु दध्योदनभ्रान्त्या दधिभक्तसंदेहेन
संभ्रान्तान् व्यग्रान् विडालान् मार्जारान् ताडयन्तः पीडयन्तः, अन्ये च पुनस्तरलमुक्ताहारस्य विसृताः या
कान्तिधारास्तासु मृणालिनीशङ्कया विविनीसंदेहेन संकुलान् व्यग्रान् हंसान्मरालान् सान्त्वयन्तः शमयन्तः,
इतरेऽन्ये तावत् तारापथे गगने संचरतां गच्छतां सुरसिन्धुराणां देवगजानां करगलिता हस्तपतिता ये

- मुक्ति लक्ष्मीके द्वारा छोड़े हुए कटाक्षोंकी धारा हो अथवा भगवान्की सेवाके लिए पीछे-पीछे
२५ बहती हुई आकाशगंगा ही हो । § ९५) तत्रेति—वहाँपर जब आश्चर्यकारक नानाप्रकारके
वाहनोंपर बैठे हुए भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क और कल्पवासी देवोंके इन्द्र सेना सहित
जिनेन्द्रके दोनों ओर चल रहे थे तब कितने ही देव, मुकुटमें लगे हुए पद्मरागमणिकी प्रभारूपी
लाल-लाल धामसे मुखकमलके सुशोभित होनेके कारण ऐसे जान पड़ते थे मानो भीतर न
समा सकनेके कारण बाहरकी ओर भी निकले हुए बहुत भारी अनुरागकी ही धारण कर रहे
३० हों । अन्य देव, हिलती हुई एकावलीके मध्य मणिकी किरणोंके समूहसे वक्षःस्थलके व्याप्त
होनेसे ऐसे जान पड़ते थे मानो भीतर उत्पन्न हुई जिनभक्तिके द्वारा बाहर निकाले हुए
हृदयस्थित मोहरूपी अन्धकारके समूहसे ही व्याप्त हो रहे हों । कितने ही देव, सूर्यबिम्बकी
लालकमल समझ उस ओर दौड़ते हुए अपने वाहनस्वरूप मत्त हाथीकी लौटा रहे थे । कोई
३५ देव, सैनिकोंके द्वारा संमर्दित सफेद मेघोंके टुकड़ोंमें दधि मिश्रित भातकी भ्रान्तिसे संभ्रम-
को प्राप्त हुई बिलावोंका ताडन कर रहे थे । कितने ही देव, चंचल मुक्ताहारोंसे निकली हुई
कान्तिकी धाराओंमें मृणालके सन्देहसे व्याकुल हंसोंको सान्त्वना दे रहे थे । कितने ही देव,
आकाशमें चलते हुए देवहस्तियोंकी सूँडोंसे निकले हुए फुंकार सम्बन्धी जलकणोंके समूहको

§ ९६) पुरः प्रवृत्ता सेनायाः प्रतीहारपरम्परा ।

सुराद्रि प्रापयामास सुरानोकं शनैः शनैः ॥९६॥

§ ९७) तदानीं सौधमन्द, ईशानेन्द्रादीन्प्रत्येवमुवाच—

§ ९८) हेमभूमिधरोऽप्येष महारजतशोभितः ।

महतीं रीतिमादत्ते बहुलोहस्य गोचरः ॥९७॥

§ ९९) किंच—

§ १००) अगाभिख्याञ्चितोऽप्येष नागाभिख्याञ्चितो गिरिः ।

तथापि नमदानन्दी मदानन्दी च सोऽपि सन् ॥९८॥

फूत्कारजलकणास्तेषां गणान् समूहान् तारानिकरान् नक्षत्रसमूहान् मन्यमानाः स्वोर्कुर्वाणाः, एकेऽन्ये च संमर्देन परस्परघातेन संवृष्टितानि भूषणानि तेषां मणिगणान् रत्नसमूहान् जानन्तः सन्तः संचेलुः । उत्प्रेक्षा- १०
भ्रान्तिमन्तो । § ९६) पुर इति—सेनाया पृतनायाः पुरोऽग्रे प्रवृत्ता चलन्ती प्रतीहारपरम्परा प्रतीहार-
संततिः सुरानोकं देववर्जिनीं शनैः शनैः मन्दमन्दं सुराद्रिं सुमेरुं प्रापयामास । ‘अकथितं च’ इति द्विकर्मक-
त्वम् ॥९६॥ § ९७) तदानीमिति—तदानीं तस्यां वेलायां सौधमन्दः आद्यस्वर्गपुरंदरः ईशानेन्द्रादीन्
द्वितीयादिस्वर्गशक्रान् प्रति एवमित्यम् उवाच जगाद । § ९८) हेमेति—एष पर्वतः हेमभूमिधरोऽपि स्वर्ण-
भूमिधरोऽपि सन् महारजतशोभितः महता प्रभूतेन रजतेन रोप्येण शोभितः अस्तीति विरोधः परिहारपक्षे १५
महारजतेन चामीकरेण सुवर्णेन शोभितः ‘चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने’ इत्यमरः । बहुश्च लोहश्चेति
बहुलोहस्तस्य प्रभूतायसो गोचरोऽपि विषयोऽपि सन् महतीं प्रभूतां रीतिं पित्तलम् आदत्ते गृह्णातीति विरोधः
‘रीतिः स्त्रियां स्पन्दप्रचारयोः । पित्तले लोहकिट्टे च’ इति मेदिनी । परिहारपक्षे बहुलश्चासावूहश्चेति
बहुलोहस्तस्य विपुलतर्कस्य गोचरः सन् महतीं रीतिं भूयान्सं प्रचारम् आदत्ते ॥ विरोधाभासः ॥९७॥
§ ९९) किंचेति—स्पष्टम् । § १००) अनेति—एष गिरिः सुमेरुपर्वतः अगाभिख्याञ्चितोऽपि अगस्य पर्वतस्य २०
अभिख्या शोभा तथाञ्चितोऽपि सन् अगाभिख्याञ्चितो न भवतीति नागाभिख्याञ्चित इति विरोधः परिहार-
पक्षे ‘अग’ इति अभिख्या नामधेयमिति अगाभिख्या तथाञ्चितोऽपि सन् नागाभिख्याञ्चितो नागानां हस्तिनाम्
अभिख्याया शोभयाञ्चितः । तथापि सोऽपि सन् तथाभूतोऽपि सन् मदानन्दी—मदेन गजदानेन आनन्दयति
हर्षयतीति मदानन्दी माम् आनन्दयतीति मदानन्दी वा सन् तथा न भवतीति नमदानन्दीति विरोधः परिहार-

ताराओंके समूह मान रहे थे और कुछ लोग संमर्दसे दूटे हुए आभूषण सम्बन्धी मणिओंके २५
समूह जान रहे थे ॥ § ९६) पुर इति—सेनाके आगे चलनेवाली प्रतीहारों—द्वारपालोंकी
सन्ततिने देवसेनाको धीरे-धीरे सुमेरुपर्वतको प्राप्त करा दिया ॥९६॥ § ९७) तदानीमिति—
सौधमन्त्रने ऐशानेन्द्र आदिके प्रति इस प्रकार कहा । § ९८) हेमेति—यह पर्वत, हेमभूमि-
धर—सुवर्णकी भूमिको धारण करनेवाला होकर भी महारजत—बहुत भारी चाँदीसे सुशो-
भित है (परिहारपक्षमें महारजत—सुवर्णसे सुशोभित है) और बहुलोह—बहुत भारी लोह- ३०
का विषय होकर भी महती रीति—बहुत अधिक पीतलको ग्रहण कर रहा है (पक्षमें बहुल
ऊह—बहुत भारी तर्कका विषय होकर भी महती-रीति—बहुत भारी प्रचारको ग्रहण कर रहा
है ॥९७॥ § ९९) किंचेति—और भी । § १००) अनेति—यह पर्वत अगाभिख्यांचित—पर्वतकी
शोभासे सुशोभित होनेपर भी नागाभिख्यांचित—पर्वतकी शोभासे सहित नहीं है (पक्षमें
अगाभिख्यांचित—‘अग—पर्वत’ इस नामसे सुशोभित होकर भी नागाभिख्यांचित— ३५
नाग—हाथियोंकी अभिख्या—शोभासे सुशोभित है । और उतनेपर भी मदानन्दी—हाथियोंके
मदसे हर्षदायक होकर भी नमदानन्दी—हाथियोंके मदसे हर्षदायक नहीं है अथवा मदा-

§ १०१) असौ किल वृन्दारकसंदोहसेवितपादः सकलदिगम्बरोच्छ्रितमहिमा, सुवृत्तरत्न-
शोभितः, कल्याणाञ्चितो, जातरूपधरो गिरीशोऽयं, मन्दरागः, संततनिष्पतत्कल्पतरुपुष्पवृष्टिर्दिव्य-
ध्वनिशोभितः, प्रथिताशोकसंपदं दधानस्तथा चामरव्रजविराजितः, स्फारदण्डोज्ज्वलपुण्डरीक-

- पक्षे नमतो नम्रीभवतो जनान् आनन्दयतीति नमदानन्दी । विरोधाभासः ॥६८॥ § १०१) असाविति—
५ असौ किल सुमेरुपर्वतो विशेषणसाम्यादायातो जिनश्च वृन्दारकसंदोहसेवितपादः—वृन्दारकाणां देवानां संदोहेन
सेविताः पादाः प्रत्यन्तपर्वताः पक्षे पादौ चरणी यस्य तथाभूतः, सकलदिगम्बरोच्छ्रितमहिमा—सकलाश्च
ता दिशश्च सकलदिशः सकलदिशश्च अम्बरं चेति सकलदिगम्बराणि तेषु निखिलकाष्ठाकाशेषु उच्छ्रित उन्नतो
महिमा औन्नत्यं यस्य तथाभूतः सुमेरुः पक्षे सकलदिगम्बरेषु समप्रदिगम्बरमतानुयायिषु उच्छ्रितो महान्
महिमा गौरवं यस्य तथाभूतः, सुवृत्तरत्नमण्डितः—सुवृत्तानि वर्तुलाकाराणि यानि रत्नानि तैर्मण्डितः पक्षे
१० सुवृत्तं सम्यक्चारित्रमेव रत्नं तेन मण्डितः, कल्याणाञ्चितः कल्याणेन सुवर्णेन अञ्चितः शोभितः पक्षे
कल्याणैः गर्भजन्मनिष्क्रमणज्ञाननिर्वाणनामधेयैरञ्चितः शोभितः, जातरूपधरः—जातरूपस्य सुवर्णस्य धरो
धारकः पक्षे जातस्यैव रूपं जातरूपं दिगम्बरमुद्रा तस्य धरो धारकः, गिरीशोऽयं—गिरीणां पर्वतानामीशः
स्वामी पक्षे गिरां दिव्यध्वनीनामीशो गिरीशः, मन्दरागः—मन्दरश्चासौ अगश्चेति मन्दरागः मन्दरगिरिः
पक्षे मन्दो रागो यस्य स मन्दरागो मन्दरागयुक्तः, संततेति—संततं शश्वत् निष्पतन्ती कल्पतरुपुष्पाणां
१५ कल्पवृक्षकुसुमानां वृष्टिर्मस्मिन् सः पक्षे पुष्पवृष्टिप्रातिहार्योपेतः, दिव्यध्वनिशोभितः—दिवि आकाशे अध्वनि
मार्गे शोभितो बिभ्राजितः पक्षे दिव्यध्वनिना तन्नामप्रातिहार्येण शोभितः, प्रथिताशोकसंपदं प्रथिता प्रसिद्धा
अशोकसंपत् शोकाभावसंपत्तिः तां दधानो बिभ्रत् तथाभूतः पक्षे प्रथिताशोकवृक्षाभिधानप्रातिहार्यसहितः, तथा
चामरव्रजविराजितः तथा च अमराणां देवानां व्रजेन समूहेन विराजितः पक्षे तथा, चामराणां चतुःषष्टि-
बालव्यजनानां व्रजेन समूहेन विराजितः, स्फारदण्डोज्ज्वलपुण्डरीकमण्डितः—स्फारदण्डोज्ज्वला विशालमुषक-
२० शोभितो ये पुण्डरीका मृगविशेषा देववाहनभूतास्तैर्मण्डितः शोभितः पक्षे स्फारदण्डैर्विशालदण्डैरुज्ज्वलानि यानि

- नन्दी—मुझे आनन्ददायक होकर भी नमदानन्दी—मुझे हर्षदायक नहीं है (पक्षमें नम्रीभूत-
मनुष्योंके लिए आनन्ददायी है) ॥६८॥ § १०१) असाविति—यह सुमेरुपर्वत जिनेन्द्रके
समान वृन्दारकसंदोहसेवितपाद—देवसमूहके द्वारा सेवित प्रत्यन्तपर्वतोंसे सहित है
(पक्षमें देवसमूहके द्वारा वन्दितचरण है), सकलदिगम्बरोच्छ्रितमहिमा—समस्त दिशाओं
२५ और आकाशमें उन्नत महिमासे युक्त है (पक्षमें समस्त दिगम्बरधर्मानुयायियोंमें उत्कृष्ट
गौरवसे युक्त है) सुवृत्तरत्नमण्डितः—उत्तम गोलाकार रत्नोंसे सुशोभित है (पक्षमें सम्यक्-
चारित्ररूपी रत्नसे सुशोभित है) कल्याणाञ्चितः—सुवर्णसे सुशोभित है (पक्षमें गर्भजन्म
आदि पाँच कल्याणकोंसे सुशोभित है) जातरूपधरः—सुवर्णको धारण करनेवाला है
(पक्षमें दिगम्बर मुद्राको धारण करनेवाला है) गिरीश—पर्वतोंका स्वामी है (पक्षमें वचनों-
३० का स्वामी है), मन्दराग—मन्दरगिरि नामसे प्रसिद्ध है (पक्षमें अलपरागसे सहित है)
संततनिष्पतत्कल्पतरुपुष्पवृष्टिः—सदा पड़ते हुए कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षासे सहित है (पक्षमें
पुष्पवृष्टिप्रातिहार्यसे सहित है) दिव्यध्वनिशोभितः—आकाशमार्गमें शोभित है (पक्षमें
दिव्यध्वनिनामक प्रातिहार्यसे विभूषित है) प्रथिताशोकसंपदं दधानः—प्रसिद्ध शोकाभाव—
हृषरूप सम्पत्तिको धारण करनेवाला है (पक्षमें अशोकप्रातिहार्यको धारण करनेवाला है)
३५ तथा चामरव्रतविराजितः—देवोंके समूहसे विराजित है (पक्षमें चामर नामक प्रातिहार्यसे
विराजित है) स्फारदण्डोज्ज्वलपुण्डरीकमण्डितः—विशालवृषणोंसे युक्त मृगोंसे मण्डित है

मण्डितः, विचित्रसिंहासनोज्ज्वलः, प्रभामण्डलपूरितः, सुरानकरवतुलितघनाराव इति युक्तं किंतु भूयोमणिगणाङ्कितः, पिहितदिगम्बरदर्शनः, सितांशुकं दधानः सर्वोत्तराशामाश्रितः, कान्तारसामोदो, लताङ्गीकृतरुचिः, सदारामाञ्चितः, सुरागविख्यात इति विरुद्धमुपलक्ष्यते ।

पुण्डरीकाणि छत्राणि तैर्मण्डितः शोभितः छत्रत्रयप्रातिहार्यसहित इत्यर्थः, विचित्रसिंहासनोज्ज्वलः—विचित्रा विविधवर्णा ये सिंहा देववाहनभूता मृगेन्द्रास्तैरुज्ज्वलः शोभितः पक्षे विचित्रं नानामणिकिरणकर्बुरं यत् ५
सिंहासनं सिंहासनप्रातिहार्यं तेनोज्ज्वलः शोभमानः प्रभामण्डलपूरितः—प्रभायाः कान्तेर्मण्डलं समूहस्तेन पूरितः पक्षे प्रकृष्टं श्रेष्ठं यद् भामण्डलं तन्नामप्रातिहार्यं तेन पूरितः सहितः, सुरानकरवतुलितघनारावः—सुरानकानां देवदुन्दुभीनां रवेण शब्देन तुलितो घनारावो मेघगर्जनं यत्र तथाभूतः पक्षे सुरानकानां देवदुन्दुभीनां प्रातिहार्यरूपाणां रवेण शब्देन तुलितो घनो रावो येन तथाभूतः, इति युक्तं पूर्वोक्तसाधर्म्यात् सुमेरुजिनेन्द्रयोः साम्यं युक्तमित्यर्थः । किं तु अयं सुमेरुः भूयोमणिगणाङ्कितो भूयोमणिगणैः प्रचुररत्नसमूहैरङ्कितः १०
सहितः जिनेन्द्रस्तु वीतरागत्वात्तथा न भवति, पिहितदिगम्बरदर्शनः—पिहितं तिरस्कृतं दिगम्बरदर्शनं दिगम्बरधर्मसिद्धान्तो येन तथाभूत इति विरुद्धं परिहारपक्षे पिहितं तिरोहितं दिगम्बरदर्शनं काष्ठाकाशाविलोकनं येन तथाभूतः, सितांशुकं—सितं च तद् अंशुकं चेति सितांशुकं श्वेतवस्त्रं दधानः, जिनेन्द्रस्तु दिगम्बरत्वात्तथा न भवतीति विरुद्धं पक्षे सिता अंशवो रश्मयो यस्य तं सितांशुकं चन्द्रं दधानः, सर्वोत्तराशामाश्रितः—सर्वेभ्य उत्तरा बलिष्ठा या आशा तृष्णा ताम् आश्रितः जिनेन्द्रस्तु वीतरागत्वात्तथा न भवतीति विरुद्धं पक्षे सर्वोत्तराशां सर्वोत्तरकाष्ठाम् आश्रितः सुमेरुर्ह्येव सर्वक्षेत्रेभ्य उत्तरदिशायामेव स्थितः, कान्तारसामोदः—कान्तारसेन स्त्रीस्नेहेन आमोदने प्रसीदतीति कान्तारसामोदो जिनेन्द्रस्तु ब्रह्मचार्यविभूषितत्वात्तथा न भवतीति विरुद्धं परिहारपक्षे कान्तारेण वनेन सामोदः सौगन्ध्यसहितः, लताङ्गीकृतरुचिः—लताङ्गीषु तन्वङ्गीषु कृता विहिता रुचिरभिलाषो येन तथाभूतो जिनेन्द्रस्तु निष्कामत्वात्तथा न भवतीति विरुद्धं परिहारपक्षे लताभिर्वल्लीभि- १५
रङ्गीकृता स्वीकृता रुचिः कान्तिर्यस्य तथाभूतः । सदारामाञ्चितः—सदा सर्वदा रामाभिः स्त्रीभिरञ्चितः २०
शोभित इति तथाभूतो जिनेन्द्रस्य वीतरागत्वात्तथा न भवतीति विरुद्धं परिहारपक्षे सदा सर्वदा आरामैरुद्यानै-

(पक्षमें विशालदण्डोंसे देदीप्यमान छत्रत्रयरूप प्रातिहार्यसे मण्डित है) विचित्रसिंहासनोज्ज्वल—नानावर्णके सिंहोंके आसनोसे उज्ज्वल है (पक्षमें आश्चर्यकारकसिंहासन नामक प्रातिहार्यसे सुशोभित है) प्रधानमण्डलपूरितः—कान्तिके समूहसे परिपूर्ण है (पक्षमें श्रेष्ठ भामण्डल नामक प्रातिहार्यसे परिपूर्ण है) और सुरानकरवतुलितघनाराव—देवदुन्दुभियोंके शब्दसे मेघगर्जनाकी तुलना करनेवाला है (पक्षमें दुन्दुभिनामक प्रातिहार्यसे मेघगर्जनाकी तुलना करनेवाला है) इतना तो ठीक है किन्तु इस प्रकार जिनेन्द्रकी तुलना प्राप्त करके भी यह सुमेरु भूयोमणिगणाङ्कित—बहुत भारी मणियोंके समूहसे सहित है जब कि जिनेन्द्र वीतराग होनेके कारण मणियोंके समूहसे रहित हैं, यह पिहितदिगम्बरदर्शनः—दिगम्बरधर्मके सिद्धान्तको आच्छादित करनेवाला है जबकि जिनेन्द्र ऐसे नहीं हैं (पक्षमें यह पर्वत दिशा और आकाशके अवलोकनको आच्छादित करनेवाला है) यह सितांशुकं दधानः—सफेद वस्त्रको धारण करनेवाला है जब कि जिनेन्द्र सर्वथा वस्त्ररहित हैं (पक्षमें यह चन्द्रमाको धारण करनेवाला है) यह सर्वोत्तराशामाश्रितः—सबसे अधिक तृष्णाको प्राप्त है जब कि जिनेन्द्र सब प्रकारकी तृष्णासे रहित है, (पक्षमें सब ओरसे उत्तर दिशामें स्थित है) यह कान्तारसामोदः—स्त्रियोंकी प्रीतिसे प्रसन्न होनेवाला है जब कि जिनेन्द्र ब्रह्मचारी होनेसे ऐसे नहीं हैं (पक्षमें वनोंसे सुगन्धित है) यह लताङ्गीकृतरुचिः—स्त्रियोंमें रुचि रखनेवाला है जब कि जिनेन्द्र निष्काम होनेसे ऐसे नहीं हैं (पक्षमें लताओंके द्वारा सुशोभित है), यह सदारामाञ्चित—सर्वदा स्त्रियोंसे सुशोभित है जब कि जिनेन्द्र वीतराग होनेसे ऐसे नहीं हैं (पक्षमें ३५

§ १०२) अपि च—

§ १०३) पुष्यत्सुमनोविततेमन्दारागस्य मन्दारागस्य ।

विलसत्प्रवालपङ्कतेः केवलमाकारतो भेदः ॥६९॥

§ १०४) एष किल मेरुरूपशोभितस्तरुणशोभितो जातरूपशोभितश्च । गोपमहितोऽगोप-

५ महितो नागोपमहितो नानागोपमहितश्च । अपि च—अत्र च सुराङ्गनागानमुपवनं च मरुत्पूरित-
मञ्जुगुञ्जद्वंशं सदा लयाञ्जितं विविधमालसंगतं सुरागमहितं रसालसंभावितकलकण्ठालापं च ।

रञ्जितः शोभितः अथवा सन्तश्च ते आरामाश्चेति सदारागाः श्रेष्ठोद्यानानि तैरञ्जितः, सुरागख्यातः—
सुष्ठु रागः सुरागः सुप्रोतिस्तेन विख्यातः प्रसिद्धो जिनेन्द्रस्तु वीतरागत्वात्तथा न भवतीति विरुद्धं परिहारपक्षे
सुराणां देवानां अगः पर्वत इति ख्यातः प्रसिद्धः अथवा सुराणां देवानां अगा वृक्षाः कल्पवृक्षा इत्यर्थः तैः
१० ख्यातः । इतीत्यं विरुद्धं विपरीतम् उपलक्ष्यते दृश्यत इति । परिहारः प्रागुक्तः । श्लेषोपमाव्यतिरेकाः ।
§ १०२) अपि चेति—अन्यदपि वर्णयत इत्यर्थः । § १०३) पुष्यदिति—पुष्यन्ती सुमनसां देवानां पक्षे
पुष्पाणां विततिः पङ्क्तिर्यस्य तस्य, विलसन्ती शुभ्रन्ती प्रवालानां विद्रुमाणां पक्षे किसलयानां पङ्क्तिर्यस्मिन्
तथाभूतस्य मन्दारागस्य मन्दारश्चासी अगश्चेति मन्दारागस्तस्य कल्पवृक्षस्य मन्दारागस्य च मन्दारश्चासी
अगश्चेति मन्दारागस्तस्य सुमेरुपर्वतस्य मध्ये केवलं मात्रम् आकारतः आकृतिमात्रात् अथ च दोर्घाकारमात्रात्
१५ भेदो वैशिष्ट्यं वर्तत इति शेषः । श्लेषः ॥६९॥ § १०४) एषेति—एष किल मेरुः उपशोभितः, तरुभिर्वृक्षै-
रुपशोभितः जातरूपेण सुवर्णेन शोभितश्च वर्तते । गोपमहितः गां स्वर्गं पाति रक्षतीति गोप इन्द्रस्तेन
महितः शोभितः, अगर्वृक्षैरुपमहित इति अगोपमहितः नागैर्हस्तिभिरुपमहित इति नागोपमहितः, गां पृथिवीं
रक्षन्तीति गोपा राजानः विद्याधरनरेशा इत्यर्थः नानागोपैर्महित इति नानागोपमहितः । अपि च किं च ।
अत्र चेत्—अत्र सुमेरुपर्वते च सुराङ्गनागां गानं सुराङ्गनागानं देवोत्तमोत्तमं उपवनमुद्यानं च समानं वर्तत
२० इति शेषः । उभयोः सादृश्यं यथा—मरुत्पूरितमञ्जुगुञ्जद्वंशं महद्भिर्देवैः पूरिता मञ्जु मनोहरं यथा स्यात्तथा
गुञ्जन्तः शब्दं कुर्वन्तो वंशाः सुविरवाद्यानि यस्मिन् तत् सुराङ्गनागानं पक्षे मरुता वायुना पूरिता मञ्जु गुञ्जन्तो

समीचीन उद्यानोऽसे सहित है) सुरागविख्यातः—उत्तमरागसे प्रसिद्ध है जब कि जिनेन्द्र
वीतराग होनेसे ऐसे नहीं हैं (पक्षमें देवपर्वत नामसे प्रसिद्ध है अथवा कल्पवृक्षोंसे सुशोभित
है) इस प्रकार विरुद्ध दिखाई देता है । § १०२) अपि चेति—और भी वर्णन देखिए—
२५ § १०३) पुष्यदिति—उस समय मन्दाराग—मन्दारवृक्ष और मन्दाराग—सुमेरुपर्वत दोनोंमें
केवल आकार—आकृति अथवा दीर्घाकारकी अपेक्षा ही भेद रह गया था क्योंकि दोनों ही
पुष्यत्सुमनोवितति—पुष्ट होती हुई फूलोंकी पंक्तिसे सहित (पक्षमें पुष्ट होते हुए देवोंकी
पंक्तिसे सहित) थे और दोनों ही विलसत्प्रवालपङ्क्ति—शोभायमान किसलयोंकी पङ्क्ति
(पक्षमें शोभायमान मूँगाओंकी पंक्ति) से सहित थे ॥६९॥ § १०४) एष इति—यह
३० मेरुपर्वत उपशोभित था,—समीपमें ही शोभायमान है, तरुपशोभित—वृक्षोंसे सुशोभित है
और जातरूपशोभित—सुवर्णसे सुशोभित है । तथा गोपमहित है—इन्द्रसे पूजित है,
नागोपमहित—हाथियोंसे सुशोभित है और नानागोपमहित—अनेक विद्याधर राजाओंसे
पूजित है । और भी देखिए—इस पर्वतपर देवांगनाओंका गान और उपवन दोनों ही
एक समान है क्योंकि जिस प्रकार देवांगनाओंका गान मरुत्पूरितमञ्जुगुञ्जद्वंश—देवोंके
३५ द्वारा पूरित तथा मनोहर शब्द करनेवाली बाँसुरियोंसे सहित है उसी प्रकार उपवन भी
वायुके द्वारा पूरित मनोहर गूँजते हुए बाँसोंसे सहित है । जिस प्रकार देवांगनाओंका

§ १०५) अत्रत्योपवनेषु सारसंगतान्यपि विसारसंगतानि, मरालीमहितान्यपि अमराली-
महितानि, कूर्मितामुपगतान्यपि सूर्मितामुपगतानि बहुलापान्यप्यपापानि सरांसि विलसन्ति ।

§ १०६) इत्यादिकोमलवचोविसरैः सुमेरुं

व्यावर्ण्यं निर्जरपतिः सुरशैलमूर्ध्नि ।

वंशा वेणवो यस्मिंस्तत् उपवनम् । सदा लयाञ्छितं—सदा सर्वदा लयैः स्वराणामारोहावरोहैरञ्छितं शोभितं ५
सुराङ्गनागानं पक्षे सद्भिः प्रवास्तैरालयैर्भवनैरञ्छितं शोभितमुपवनम् । विविधतालसंगतं—विविधैस्तालैः
संगतं सहितं सुराङ्गनागानं पक्षे विविधैस्तालैस्ताडवृक्षैः संगतम् उपवनम् । सुरागमहितं—सुष्ठु रागाः
सुरागास्तैर्महितं शोभितं सुरागमहितं पक्षे सुराणां देवानामगैस्तनुभिः कल्पवृक्षैरिति यावत्, महितं शोभित-
मुपवनम् । रसालसंभावितकलकण्ठालापं च—रसेनालसं रसालसं भावितः कलकण्ठानां मधुरकण्ठानामालापो
यस्मिंस्तत् तथाभूतं च सुराङ्गनागानं पक्षे रसालेषु सहकारवृक्षेषु संभावितः शोभितः कलकण्ठानां कोकिलाना- १०
मालापौ यस्मिंस्तत् उपवनम् । श्लेषः । § १०५) अत्रत्येति—अत्रत्योपवनेषु सरांसि जलाशया विलसन्ति
शोभन्ते । कथंभूतानि तानीत्युच्यते—सारसंगतान्यपि सारेण जलेन संगतान्यपि सहितान्यपि तथा न भवन्तीति
विसारसंगतानि जलरहितानीति विरोधः, परिहारपक्षे सारसंगतानि जलसहितान्यपि विविधं रक्तश्वेतनीला-
दिभेदेन बहुविधं सारसं कमलं गतानि प्राप्तानि 'सारं न्याये जले वित्ते' इति विश्वलोचनः 'सारसं सरसीरुहम्'
इत्यमरः, मरालीमहितान्यपि हंसीशोभितान्यपि तथा न भवन्तीति अमरालीमहितानि अहंसीशोभितानीति १५
विरोधः, परिहारपक्षे अमराणां देवानामालया पङ्क्त्या महितानि शोभितानि । कूर्मितामुपगतान्यपि—कुत्सिता
ऊर्मयो भङ्गा येषु तानि कूर्मीणि तेषां भावस्तां कूर्मितां कुत्सिततरङ्गसहितस्वमुपगतान्यपि प्राप्तान्यपि सूर्मिताम्-
शोभना ऊर्मयो येषु तेषां भावस्तामुपगतानि शुभलहरीमुपगतानीति विरोधः, परिहारपक्षे कूर्माः कच्छपा विद्यन्ते
येषु तानि कूर्मीणि तेषां भावस्तामुपगतानि । बहुलापान्यपि अपां समूह आपं बहुलम् आपं येषु तानि बहुला-
पानि विपुलजलसमूहसहितान्यपि अपापानि अपगतम् आपं येषु तानि जलसमूहरहितानीति विरोधः परिहारपक्षे २०
अपापानि पापरहितानि निर्मलानीत्यर्थः । विरोधाभासः । § १०६) इत्यादीति—निर्जरपतिः सौधसंन्द्रः
इत्यादिकोमलवचोविसरैरिति प्रभृतिकोमलवाक्समूहैः सुमेरुं सुरादि व्यावर्ण्यं वर्णयित्वा सुरशैलस्य मूर्धा

गान सदा लयाञ्छितं—सदा लयसे सुशोभित है उसी प्रकार उपवन भी सत् + आलय +
अञ्चित—उत्तम भवनोंसे सुशोभित है जिस प्रकार देवांगनाओंका गान विविधतालसंगत
है—नाना प्रकारकी तालोंसे सहित है उसी प्रकार उपवन भी नानाप्रकारके ताडवृक्षोंसे २५
सहित है । देवांगनाओंका गान जिस प्रकार सुरागमहित—उत्तम रागरागिनियोंसे सहित है
उसी प्रकार उपवन भी सुरागमहित—कल्पवृक्षोंसे सुशोभित है और देवांगनाओंका गान
जिस प्रकार रसालसंभावितकलकण्ठालाप—रससे अलस तथा कण्ठके मनोहर आलापसे
सहित है उसी प्रकार उपवन भी आम्रवृक्षोंपर होनेवाले कोयलोंके आलापसे सहित है ।
§ १०५) अत्रत्येति—यहाँके उपवनोमें ऐसे तालाब सुशोभित हो रहे हैं जो सारसंगत— ३०
जलसे सहित होकर भी विसारसंगत—जलसे सहित नहीं हैं (पक्षमें नाना प्रकारके कमलों-
को प्राप्त हैं) मरालीमहित—हंसियोंसे सुशोभित होकर भी अमरालीमहित—हंसियोंसे
सुशोभित नहीं हैं (पक्षमें देवपंक्तियोंसे सुशोभित हैं) कूर्मितामुपगतान्यपि—कुत्सित लहरोंसे
युक्त होकर भी सूर्मितामुपगतानि—सुन्दर लहरोंसे युक्त हैं (पक्षमें कच्छपोंके सद्भावसे युक्त
होकर भी उत्तम लहरोंसे युक्त हैं) तथा बहुलाप—बहुत भारी जलसमूहसे सहित होकर ३५
भी अपाप—जलसमूहसे रहित हैं (पक्षमें पाप—मलसे रहित—निर्मल हैं) । § १०६) इत्या-
दीति—इत्यादि कोमल वचनोंके समूहसे सुमेरुपर्वतका वर्णन कर परमसन्तोषके आधीन

आसाद्य पाण्डुकवनं पृतनानिवेशं

तत्राततान परितः परितोषनिघ्नः ॥७१॥

§ १०७) वाहिनीं विनिवेश्यात्र वासवः प्राप निर्मलाम् ।

तस्य प्रागुत्तराशायां पाण्डुकाख्यां महाशिलाम् ॥७२॥

५

§ १०८) या किल महीमानिनीमस्तकायमानमहामेरूपरिलसितकबरीभरशङ्काकरपाण्डुक-
वनस्य सितकेतुद्युतिमुद्भिद्रयन्ती, सततमवलम्बरहिताम्बरतलसंचारसंजातश्रान्तिविश्रान्त्यै सुरभि-
समीरकिशोरमनोरमपाण्डुकवनमुपगतेवाष्टमीन्दुकला, पाण्डुकवनलक्ष्मीमौक्तिकशुक्तिरिवात्यन्तमव-
दातपर्यन्तभागयोजिनाभिषेकाय सौधर्मेशानेन्द्रयोर्विष्टरं मध्ये च भगवतः सिंहासनं बिभ्राणा मङ्गल-
द्रव्यपरिशोभिता पुष्पोपहाररुचिरा परितः परिस्फुरद्भक्तकिरणपरीततया सुरचापमध्यगतशशाङ्क-

१० कलामनुकुर्वन्ती विद्योतते ।

तस्मिन् सुमेरुशिखरे पाण्डुकवनं तन्नामवनम् आसाद्य प्राप्य परितोषनिघ्नः संतोषायतः सन् तत्र परितः
समन्तात् पृतनानिवेशं परितः सैन्यशिविरं आततान विस्तारयामास । वसन्ततिलका । § १०९) वाहिनी-
मिति—वासवः सौधर्मन्द्रः अत्र सुमेरौ वाहिनीं सेनां विनिवेश्य स्थापयित्वा तस्य सुमेरोः प्रागुत्तराशायां
ऐशान्यां दिशायां निर्मलां विमलां पाण्डुकास्यां महाशिलां प्राप लेभे ॥७१॥ § १०८) या किलेति—या किल
१५ पाण्डुकशिला महीमानिन्या वसुधावनिताया मस्तकायमानो यो महामेरुर्जम्बूद्वीपस्य सुमेरुस्तस्योपरि ललितः
शोभितो यः कबरीभरो धम्मिल्लभरस्तस्य शङ्काकरं यत् पाण्डुकवनं तस्य सितकेतुद्युतिं श्वेतपताकान्तिम्
उद्भिद्रयन्ती प्रकटयन्ती, सततं सर्वदा अवलम्बरहितं समाश्रयशून्यं यद् अम्बरतलं गगनतलं तस्मिन् संचारेण
संभ्रमेण संजाता समुत्पन्ना या श्रान्तिस्तस्या विश्रान्त्यै दूरीकरणाय सुरभिसमीरस्य सुगन्धिपवनस्य किशोरेण
पोतेन मन्दवायुनेत्यर्थः मनोरमं यत् पाण्डुकवनं तत् उपगता प्राप्ता अष्टमीन्दुकलेव अष्टमोचन्द्रकलेव, पाण्डुक-
२० वनलक्ष्मोरेव मौक्तिकानि तेषां शुक्तिरिव मुक्तास्फोट इव, अत्यन्तं सातिशयम् अवदातपर्यन्तभागयोः समुज्ज्व-
लान्तप्रदेशयोः जिनाभिषेकाय जिनाभिषवाय सौधर्मेशानेन्द्रयोः प्रथमद्वितीयस्वर्गशक्तयोः विष्टरमासनं मध्ये च
भगवतो जिनैन्द्रस्य सिंहासनं हरिविष्टरं बिभ्राणा दधाना मङ्गलद्रव्यैः सुप्रतिष्ठकादिभिः परिशोभिता समलंकृता
पुष्पाणामुपहारेण रुचिरा मनोज्ञा परितः समन्तात् परिस्फुरतां देदीप्यमानानां रत्नानां किरणै रश्मिभिः परीत-

हुए इन्द्रने सुमेरुके शिखरपर पाण्डुकवन प्राप्त कर वहाँ सब ओर सेना ठहरायी ॥७१॥

२५

§ १०७) वाहिनीमिति—इन्द्रने इस पाण्डुकवनमें सेनाको ठहरा कर उसकी ऐशान दिशामें
पाण्डुकनामकी महाशिला प्राप्त की ॥७१॥ § १०८) या किलेति—जो पाण्डुकशिला, पृथिवी-
रूपी स्त्रीके मस्तकके समान आचरण करनेवाले महामेरुके ऊपर सुशोभित चोटीकी शंका
करनेवाले पाण्डुकवनकी सफेद पताकाकी शोभाको प्रकट करती हुई, निरन्तर आश्रयरहित
आकाशतलमें संचार करनेसे उत्पन्न थकावटको दूर करनेके लिए मन्द-सुगन्धित वायुसे
मनोहर पाण्डुकवनमें आयी हुई अष्टमीके चन्द्रकी कलाके समान अथवा पाण्डुकवनकी
३० लक्ष्मीरूप मोतियोंकी शुक्तिके समान सुशोभित होती है । वह पाण्डुकशिला अत्यन्त उज्ज्वल
दोनों भागोंमें जिनाभिषेकके लिए सौधर्मन्द्र और ऐशानेन्द्रके आसनोंको और वाचमें
भगवान्‌के सिंहासनको धारण करती हुई मंगलद्रव्योंसे सुशोभित रहती है, फूलोंके उपहारसे
सुन्दर है तथा चारों ओर चमकते हुए रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त होनेके कारण इन्द्रधनुषके

§ १०९) तत्र किल देवराजो विविधमणिखचितविचित्रस्तम्भसंभूतं वस्त्राङ्गमहोजसमुद्भूत-
वसननिर्मितवितानविराजितं तारातरलमुक्तामालाविभूषितमवलम्बितसुरभिकुसुमदामावकीर्णं चतु-
र्णिकायामरेन्द्रवृन्दसंकीर्णमभिषेकमण्डपं विधाय तत्र सिंहविष्टरे जिनाभं पूर्वाभिमुखं निवेशयामास ।

§ ११०) तदा दुन्दुभिनिध्वानो निरुद्धाशेषदिक्तः ।

समुज्जजृम्भे संभूतघनगर्जनतर्जनः ॥७२॥

इत्यर्हदासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे चतुर्थस्तवकः ॥४॥

तथा व्यासतया सुरचापमध्यगता या शशाङ्गकला चन्द्रकला ताम् अनुकुर्वन्तो विद्योतते, विशोभते । § १०९) तत्रेति—तत्र किल पाण्डुकशिलायां देवराजः सौम्येन्द्रः, विविधमणिभिर्नारत्नैः खचिता जटिता ये विचित्र-
स्तम्भास्तैः संभूतं संघृतं, वस्त्राङ्गमहोजात् वस्त्राङ्गजातीयकल्पवृक्षात्समुद्भूतं समुत्पन्नं यद् वसनं वस्त्रं तेन
निर्मितेन वितानेन चन्द्रोपकेन विराजितं शोभितं, तारावत् तरलाभिश्चपलाभिर्मुक्तामालाभिर्मीक्तिस्रग्भिर्वि- १०
भूषितं शोभितं, अवलम्बितानि यानि सुरभिकुसुमदामानि सुगन्धिपुष्पमाल्यानि तैरवकीर्णं व्याप्तं चतुर्णिकाया-
मरेन्द्रानां भवनवास्यादिचतुर्णिकायदेवेन्द्रानां वृन्देन समूहेन संकीर्णं व्याप्तम् अभिषेकमण्डपं विधाय रचयित्वा
तत्राभिषेकमण्डपे सिंहविष्टरे सिंहासने जिनाभं जिनेन्द्रनन्दनं पूर्वाभिमुखं यथा स्यात्तथा निवेशयामास
स्थापयामास । § ११०) तदेति—तदा तस्मिन्काले निरुद्धानि अशेषदिक्तानि येन स तथाभूतो निरुद्धाखिल-
काष्ठान्तःसंभूतं समुत्पन्नं यद् घनगर्जनं मेघगर्जनं तस्य तर्जनं भर्त्सनं यस्मात् सः, अथवा संभूता एकत्रस्थिता १५
ये घना मेघास्तेषां गर्जनस्य तर्जनं यस्मात्तथाभूतः, दुन्दुभिध्वानो भेरीनादः 'शब्दो निनादो निनदो ध्वनिध्वान-
रवस्वनाः' इत्यमरः । समुज्जजृम्भे ववृधे ॥७१॥

इत्यर्हदासकृते पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य वासन्तीसमाख्यायां संस्कृतव्याख्यायां

चतुर्थः स्तवकः समाप्तः ॥४॥

बीचमें स्थित चन्द्रकलाका अनुकरण करती रहती है । § १०९) तत्रेति—उस पाण्डुकशिला- २०
पर इन्द्रने नाना प्रकारके मणियोंसे जड़े हुए विचित्र खम्भोंसे धारण किया हुआ, वस्त्रांग-
जातिके कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न वस्त्रसे निर्मित चँदोवासे सुशोभित, ताराओंके समान चंचल
मोतियोंकी मालाओंसे विभूषित, लटकती हुई सुगन्धित फूलोंकी मालाओंसे व्याप्त और
चतुर्णिकायके इन्द्रसमूहसे व्याप्त अभिषेकमण्डप बनाकर उसके बीच सिंहासन पर जिन
बालकको पूर्वमुख विराजमान किया । § ११०) तदेति—उस समय समस्तदिशाओंके तटको २५
रोकनेवाला तथा उत्पन्न हुई मेघगर्जनाको डँटता हुआ दुन्दुभिबाजोंका शब्द वृद्धिको प्राप्त
हो रहा था ॥७२॥

इस प्रकार श्रीमान् अर्हदासकी कृति पुरुदेवचम्पूप्रबन्धमें

चतुर्थ स्तवक पूर्ण हुआ ॥४॥

पञ्चमः स्तवकः

§ १) तदनु जिनेन्द्रजन्माभिषेकसंभूतादरजम्भालम्भननिदेशपरवशः किन्नरेशः कौतुकवशेन सर्वतः समापततो दिशामधीशान्सपरिवारान् करचलितमणिदण्डेन तन्मण्डपे हठाद्यथोचितं विनिवेश्य, भो भो मास्ता निरन्तरमवकरनिकरमपसारयत । अये मेघकुमाराः सुगन्धिशीतलगन्धोदकवृष्टिं कुरुत । हे दिक्कुमार्यो मुक्तामयरङ्गवल्लीभिर्नानाविधपत्रलताचित्राणि विरचयत । अयं किलैशाननाथः स्वयमेव धवलातपत्रं धत्ते । तदीयमृगलोचनाः पुनर्भङ्गलद्रव्याणि तरङ्गयन्तु । सनत्कुमारा जिनाभैकपरिसरे बालव्यजनानि वीजयन्तु । देव्यश्च बलिफलकुसुममालागन्धधूमाद्यैः पात्राणि पूरयन्तु । नर्तकाः पुनः पटुपटहमृदङ्गादीनि सज्जयन्तु । वाणी च वीणां गायतु । सुरलासिकाश्च लास्यलीलामुल्लासयन्तु, इत्यादिक्रमेण त्रिदशपतीन्भगवज्जन्माभिषेकसमुचितकृत्येषु नियोजयामास ।

१० § १) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं जिनेन्द्रस्य जन्माभिषेके संभूतो सम्यक्प्रकारेण धृत आदरो येन तथाभूतो यो जम्भालम्भन इन्द्रस्तस्य निदेशेन समाज्ञया परवशो निघ्नः, किन्नरेशः किन्नरजातीयव्यन्तरेन्द्रः कौतुकवशेन सर्वतः समन्तात् समापततः समागच्छतः सपरिवारान् परिवारोपेतान् दिशामधीशान् दिक्पालान् करेण चलितो यो मणिदण्डस्तेन तन्मण्डपे पूर्वोक्तमण्डपे हठाद् बलाद् यथोचितं यथायोग्यं विनिवेश्य, भो भो मास्ताः पवनकुमारदेवाः ! निरन्तरं सततं अवकरनिकरं अवकरसमूहं अवकरः ‘कचड़ा’ इति हिन्दीभाषायां प्रसिद्धः । अये मेघकुमाराः ! सुगन्धि सुरभि शीतलं शिशिरं च यद् गन्धोदकं तस्य वृष्टिं कुरुत । हे दिक्कुमार्यः ! मुक्तामयरङ्गवल्लीभिः मोक्तिकरङ्गलताभिः नानाविधपत्रलतानां विविधपत्रवल्लीनां चित्राणि आलेख्यानि विरचयत । अयं किल ऐशाननाथो द्वितीयेन्द्रः धवलातपत्रं श्वेतच्छत्रं स्वयमेव अकथितोऽपि धत्ते धारयति । तदीयाश्च ता मृगलोचनाश्चेति तदीयमृगलोचनास्तद्देव्यः पुनः मङ्गलद्रव्याणि सुप्रतिष्ठकप्रभृतीनि मङ्गलद्रव्याणि तरङ्गयन्तु वर्धयन्तु । सनत्कुमाराः सनत्कुमारस्वर्गनिवासिनो देवा जिनाभैकस्य जिमवालकस्य १५ परिसरे निकटे बालव्यजनानि लघुतालवृत्तकानि वीजयन्तु कम्पयन्तु । देव्यश्च तदीयदेवाङ्गनाश्च बलिश्च नैवेद्यं च फलं च कुसुमं च माला च गन्धश्च धूपश्च एषां द्वन्द्वस्तदादीः पात्राणि भाजनानि पूरयन्तु संभरन्तु । नर्तकाः नृत्यकराः पुनः पटुपटहमृदङ्गादीनि उत्तमानकमुरजप्रभृतीनि सज्जयन्तु सज्जानि कुर्वन्तु । वाणी

२५ § १) तदन्विति—तदनन्तरं जिनेन्द्र भगवान्के जन्माभिषेकमें आदर रखनेवाले इन्द्रकी आज्ञासे परवश किन्नरेन्द्रेने कुतूहलवश सब ओरसे आते हुए दिक्पालोंको उनके ३० परिवारोंके साथ हाथसे चलाये हुए मणिमयदण्डके द्वारा उस मण्डपमें बलपूर्वक यथायोग्य रीतिसे बैठकर इस प्रकार आदेश दिये—हे पवनकुमार देवो ! निरन्तर कचड़ाके समूहको दूर करो । हे मेघकुमारो ! सुगन्धित और शीतल गन्धोदककी वर्षा करो । हे दिक्कुमारियो ! मोतियोंकी रंगावलीसे नाना प्रकारके पत्र और लताओंके चित्र बनाओ । यह ऐशानेन्द्र स्वयं ही सफेद छत्र धारण किये हुए है उसकी देवियाँ मंगलद्रव्योंको बढ़ावें । सनत्कुमारस्वर्गके देव जिमवालकके निकट छोटे-छोटे पंखे चलावें । और उनकी देवियाँ नैवेद्य फल-पुष्प माला गन्ध और धूप आदिके द्वारा पात्रोंको भरें । नृत्यकार उत्तम तबला तथा मृदंग आदिको

§ २) व्याकीर्णप्रचुरप्रसूननिकरे कर्पूरधूलिमिलद्-

गन्धक्षोदमनोहरे सुरभिले तन्मण्डपे संगताः ।

भृङ्गाः कर्तुमुपेयुषां भगवतो जन्माभिषेकोत्सवं

वृट्यदुष्टकृतशृङ्खलालितुलनां व्यातेनिरे व्यातताः ॥१॥

§ ३) ततो जिनाभकस्यास्य वामदक्षिणभागयोः ।

सौधमेशाननाथा तावासने स्वेऽध्यरोहताम् ॥२॥

§ ४) तदनु स्वयंभुवः पयःपूरधवलशोणितं पवित्रं गात्रं क्षीराब्धिरेव स्पष्टमुहंति नान्यः

स किल निम्नगानामधीशोऽतिवृद्धोऽयमधिकतरजरसाक्रान्तमूर्तिद्विपदरहितश्चिरममृतान्धोजनक्षु-

सरस्वती च वीणां विपञ्ची गायतु । सुरलासिकाश्च देवनर्तक्यश्च लास्यलीलां नृत्यलीलाम् उल्लासयन्तु

वर्धयन्तु । इत्यादिक्रमेण त्रिदशपतीन् इन्द्रान् भगवतो जिनेन्द्रस्य जन्माभिषेकसमुचितानि जन्माभिषवयोग्यानि १०

यानि कृत्यानि कार्याणि तेषु वियोजयामास संलग्नान् कारयामास । § २) व्याकीर्णेति—व्याकीर्णां विस्तृताः

प्रचुरप्रसूनानां प्रभूतपुष्पाणां निकराः समूहा यस्मिस्तस्मिन्, कर्पूरधूलीभिर्घनसारचूर्णमिलन् यो गन्धश्चन्दन-

स्तस्य क्षोदेण चूर्णन मनोहरे रमणीये सुरभिले सुगन्धिते तन्मण्डपे पूर्वोक्तमण्डपे व्यातता विस्तृताः भृङ्गा

भ्रमरा भगवतो जिनेन्द्रस्य जन्माभिषेकोत्सवं जन्माभिषवमहं कर्तुं विधातुम् उपेयुषां समागतानां वृट्यदुष्टो या

दुष्टकृतशृङ्खलाः पापहिंजीरास्तेषामालिः पङ्क्तिस्तस्यास्तुलामुपमां व्यातेनिरे विस्तारयामासुः । कृष्णा भ्रमराः १५

पापखण्डानोव बभुरिति भावः । उपमा । शार्दूलविक्रीडितम् ॥१॥ § ३) तत इति—ततस्तदनन्तरं तो

प्रसिद्धौ सौधमेशाननाथौ प्रथमद्वितीयस्वर्गशक्रौ अस्य जिनाभकस्य जिनबालकस्य वामदक्षिणभागयोः

सव्यासव्यप्रदेशयोः स्वे स्वकीये आसने विष्टरे अध्यरोहताम् अधिरूढौ बभूवतुः ॥२॥ § ४) तदन्विति—

तदनु तत्पश्चात्, स्वयंभुवो भगवतः, पयःपूर इव दुग्धप्रवाहधवलं श्वेतं शोणितं रुधिरं यस्मिस्तत्, पवित्रं

शुचितमं गात्रं शरीरं क्षीराब्धिरेव क्षीरसागर एव स्पष्टम् अर्हति योग्योऽस्ति नान्यो नेतरः, स किल स तु २०

क्षीरसागरः निम्नगानां नीचार्धमिनाम् अधीनः स्वामी पक्षे नदीनां पतिः, अतिवृद्धः अतिशयस्थविरः पक्षेऽति-

वृद्धि गतः, अयमेव, अधिकतरजरसाक्रान्तमूर्तिः अतिशयेनाधिका जरा अधिकतरजरा तथा आक्रान्ता मूर्तिः

शरीरं यस्य तथाभूतः पक्षेऽधिकतरजेन प्रभूतात्पन्नेन रसेन जलेन आक्रान्तमूर्तिर्व्याप्तशरीरः, द्वाभ्यां पदाभ्यां

चरणाभ्यां रहितः शून्यः द्विपदरहितत्वेन चलितुमसमर्थ इत्यर्थः, पक्षे द्विपदास्त्रसजीवा द्वीन्द्रियादयस्ते रहितः,

विरं विरकालपर्यन्तं अमृतं पोषणमेव अन्धो भोजनं येषां तेऽमृतान्वसः ते च ते जनाश्चेति अमृतान्धोजनास्तैः २५

ठीक करं । सरस्वती वीणासे गान करे, और देवनर्तकियाँ नृत्यकी लोलाको बढ़ावे—

इत्यादिक्रमसे किन्नरेन्द्रने इन्द्रोंको भगवान्के जन्माभिषेक सम्बन्धी योग्य कार्योंमें संलग्न

किया । § २) व्याकीर्णेति—जिसमें अत्यधिक फूलोंके समूह बिखरे हुए थे तथा कर्पूरकी

धूलिसे युक्त चन्दनके चूर्णसे जो मनोहर था ऐसे उस सुगन्धित मण्डपमें फैले हुए भ्रमर,

भगवान्का जन्माभिषेक करनेके लिए आये हुए प्राणियोंकी दृष्टती हुई पापशृङ्खलाओंके ३०

समूहकी तुलना कर रहे थे ॥१॥ § ३ तत इति—तदनन्तरके सौधर्म और ऐशानस्वर्गके इन्द्र,

जिन बालकके बायें तथा दाहिने भागमें स्थित अपने-अपने आसनोपर अधिरूढ हो गये ॥२॥

§ ४) तदन्विति—तदनन्तर दुग्धप्रवाहके समान सफेद रुधिरसे युक्त भगवान्के पवित्र

शरीरको क्षीरसागर ही छूनेके योग्य है अन्य नहीं किन्तु वह नीचे चलनेवालोंमें प्रमुख है,

अत्यन्त वृद्ध है, अत्यधिक बुढ़ापासे उसका शरीर आक्रान्त है, दो पैरोंसे रहित है और ३५

उतनेपर भी देवोंके द्वारा चिरकालतक पीड़ित किया गया है (पक्षमें नदियोंका पति है,

अत्यन्त विस्तारको प्राप्त है, अत्यधिकजलसे व्याप्त है, त्रसजीवोंसे रहित है तथा देवोंके

मितः कथमत्युन्नतमिमं शैलमधिरोहत्विति पर्यालोच्य तदधिरोपणाय परिकल्पितनीलोपलसोपान-
पङ्क्तयः, सौवर्णकपिशकलशमालां करे निदधाना नाकिजना गगनाङ्गणे निरन्तरनिचितसान्ध्य-
वलाहकविलासं तन्वानाः, सौधर्मेशाननाथसिंहासनप्रदेशादारभ्य पयःपारावारतीरपर्यन्तं पङ्क्तिशो
द्विधा समवस्थिताः प्रवालपरिशोभितं घनपुष्पोज्ज्वलमिदमपि पाण्डुकवनमिति मत्वा वनाद्वनान्तरं

५ प्रतिनिवृत्ताः पात्राङ्गसुरद्रुमा इव व्यराजन्त ।

§ ५) मुक्तादामपरम्परावृतमुखान्गाङ्गेयकुम्भान्करे

कुर्वाणांस्त्रिविकसो जलनिधिः संवीक्ष्य तीरागतान् ।

भूयस्ते भुजगेन्द्रवेष्टनलसन्मन्थाचलान्विभ्रतः

प्राप्ता इत्यधिकाद्भ्यादिव चलद्भ्रङ्गैश्चकम्पे तदा ॥३॥

- १० क्षुभितः पीडितः पक्षे मथितः अत्युन्नतमतितुङ्गम् इमं शैलं सुमेरुपर्वतं कथं केन प्रकारेण अधिरोहन्तुं चटितुं
शक्नोतु इतीत्यं पर्यालोच्य विचार्य तस्य क्षीराब्धेरधिरोपणं तस्मै परिकल्पिता रचिताः नीलोपलसोपानपङ्क्तयो
नीलमणिनिःश्रेणिपरम्परा यैस्तथाभूताः, सौवर्णेन सुवर्णभावेन कपिशः पीता ये कलशाः कुम्भास्तेषां मालां
पङ्क्तिं करे निदधाना धरन्तः, नाकिजना देवाः, गगनाङ्गणे नभश्चत्वरे निरन्तरं निर्व्यवधानं निचिता एकत्री-
भूता ये सान्ध्यवलाहका संध्याकालमेवास्तेषां विलासं शोभां तन्वाना विस्तारयन्तः, सौधर्मेशाननाथयोः
१५ सिंहासनयोः प्रदेशः स्थानं तस्मात् आरभ्य पयःपारावारतीरपर्यन्तं क्षीरसागरतटपर्यन्तं पङ्क्तिशः पङ्क्ति-
रूपेण द्विधा द्विप्रकारेण समवस्थिताः, प्रवालैर्निद्रुमेण पक्षे किसलयेन परिशोभितं घनपुष्पेण जलेन पक्षे
प्रचुरपुष्पेण उज्ज्वलं शोभितम् इदमपि पाण्डुकवनम् इति मत्वा वनात् एकस्माद्गता वनान्तरं अन्यद्वनं
प्रतिनिवृत्ताः प्रत्यावृत्ताः पात्राङ्गसुरद्रुमा इव भाजनाङ्गकल्पवृक्षा इव व्यराजन्त व्यशोभन्त । श्लेषोत्प्रेक्षा-
लंकारः । § ५) मुक्तेति—तदा तस्मिन् काले जलनिधिः क्षीरसागरः मुक्तादामनां मोक्षितकमालानां
२० परम्परया संतत्या आवृतं मुखं वदनं येषां तथाभूतान् गाङ्गेयकुम्भान् काञ्चनकलशान् करे हस्ते कुर्वाणान्
विदधतः तीरागतान् तटप्राप्तान् त्रिविधं स्वर्गं ओकः स्थानं येषां तान् त्रिविकसो देवान् संवीक्ष्य भुजगेन्द्रः
शेषनाग एव वेष्टनं तेन लसन्तो शोभमाना ये मन्थाचला मन्दरगिरयस्तान् बिभ्रतो दधतस्ते देवा भूयः पुनरपि
प्राप्ताः समायाता मथितुमिति यावत्, इत्येवम् अधिकात्प्रचुरात् भयादिव भीतेरिव चलद्भ्रङ्गैः चञ्चलतरङ्गैः

- द्वारा मथित है) इसलिए इस अत्यन्त ऊँचे पर्वतपर कैसे चढ़ सकता है ऐसा विचार कर उसे
२५ चढ़ानेके लिए जिन्होंने नीलमणिकी सीढ़ियाँ बनायी थीं, जो स्वर्णनिर्मित पीले-पीले कलशोंके
समूहको हाथमें लिये हुए थे तथा आकाशरूपी आंगनमें व्यवधानरहित होकर एकत्रित हुए
सन्ध्याकालके बादलोंकी शोभाको बढ़ा रहे थे ऐसे देव सौधर्मेश और ऐशानेन्द्रके
सिंहासनोंके समीपवर्ती स्थानसे प्रारम्भ कर क्षीरसागरके तटपर्यन्त दो पङ्क्तियोंमें स्थित हो
हो गये । उस समय वे देव ऐसे जान पड़ते थे मानो प्रवालपरिशोभित—मूँगासे सुशोभित
३० (पक्षमें पल्लवोंसे सुशोभित) तथा घनपुष्पोज्ज्वल—जलसे उज्ज्वल (पक्षमें अत्यधिक
पुष्पोंसे उज्ज्वल) यह क्षीरसागर भी पाण्डुकवन है ऐसा मानकर एक वनसे दूसरे वनकी
ओर लौटे हुए भाजनांग जातिके कल्पवृक्ष ही हों । § ५) मुक्तेति—उस समय समुद्र,
मोतियोंकी मालाओंसे ढँके हुए मुखोंसे युक्त सुवर्णकलशोंको हाथमें धारण करनेवाले तटागत
देवोंको देखकर शेषनागरूपी वेष्टनसे सुशोभित मन्दरपर्वतोंको धारण करते हुए ये फिरसे
३५ आ गये हैं इस बहुत भारी भयसे ही मानो उठती हुई लहरोसे काँप उठा था ॥३॥

§ ६) यः किल वाहिनीपतिरिव वाहिनीपतिश्चलितविमलतरवारिशोभितश्चापाञ्चितो धनकीलालकलितमूर्तिरुद्दण्डकाण्डमण्डितः पुरो वर्तितकबन्धः पृथुलहरिजालकोलाहलमुखरित-दिकटश्च, किं त्वयं बहुभङ्गेषु सत्स्वपि प्रगर्जत्येव स तु भङ्गे सति पराजयत इति विशेषः ।

§ ७) यः खलु भुवनपतिरिव भुवनपतिरतिशोभनक्रमकरः, सर्वतोमुखसंपदाढयः, स्वर्ण-चक्रम्पे कम्पितवान् । उत्प्रेक्षा । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥३॥ § ६) यः किलेति—यः किल क्षीरसागरः वाहिनीपतिरिव सेनापतिरिव आसीत् । अथोभयोः सादृश्यमाह—तत्र क्षीरसागरपक्षे वाहिनीनां नदीनां पतिः, सेनापतिपक्षे वाहिनीनां सेनानां पतिः, चलितेति—चलितं कम्पितं विमलतरमतिस्वच्छं यद्धारि जलं तेन शोभितः क्षीरसागरः, चलितेन विमलतरवारिणा स्वच्छकृपाणेन शोभितो वाहिनीपतिः, चापाञ्चितः—‘च’ इति पदं-पृथक्कृत्य आपाञ्चितः अपांसमूह आपं तेन अञ्चितः शोभितः क्षीरसागरः, चापेन धनुषा अञ्चितः शोभितो-वाहिनीपतिः । घनेति—घनकीलालेन प्रभूतजलेन कलिता मूर्तिर्यस्य तथाभूतः क्षीरसागरः घनकीलालेन प्रचुररुधिराण कलिता मूर्तिः शरीरं यस्य तथाभूतः वाहिनीपतिः, उद्दण्डेति—उद्दण्डकाण्डेन समुच्छलद्धारिणा मण्डितः शोभितः क्षीरसागरः उद्दण्डकाण्डैरायतबाणैर्मण्डितो वाहिनीपतिः ‘काण्डोऽस्त्री बाणबाणार्थनलावसर-वारिषु’ इति विश्वलाचनः । पुर इति—पुरोऽग्रे नतितं कबन्धं जलं यस्य तथाभूतः क्षीरसागरः नतिताः कबन्धाः शिरोरहितशरीरा यस्य तथाभूतो वाहिनीपतिः, पृथुलेति—पृथुलहरीणां स्थूलतरङ्गाणां जालस्य समूहस्य कोलाहलेन कलकलेन मुखरितानि वाचालितानि दिक्कटानि येन तथाभूतः क्षीरसागरः, पृथुलानां स्थू-लानां हरीणामश्वानां जालस्य समूहस्य कोलाहलेन मुखरितानि दिक्कटानि येन तथाभूतो वाहिनीपतिः । अथ तयो-र्व्यतिरेकं दर्शयति—किन्तु अयं क्षीरसागरः बहुभङ्गेषु बहुपराजयेषु पक्षे बहुतरङ्गेषु सत्सु अपि विद्यमानेष्वपि प्रगर्जत्येव प्रगर्जनं करोत्येव स तु वाहिनीपतिः भङ्गे सति एकस्मिन्नेव पराजये जाते पराजयते पराजितो भवतीति विशेषः । § ७) यः खल्विति—यः खलु क्षीरसागरो भुवनपतिरिव राजेवासीत् । अथोभयोः सादृश्यमाह—भुवनपतिः जलपतिः क्षीरसागरः पक्षे जगत्पतिः, अतिशोभा नक्रमकर जलवन्तुविशेषा यस्मिन्

§ ६) यः किलेति—जो क्षीरसागर वाहिनीपति—सेनापतिके समान था—क्योंकि जिस प्रकार सेनापति वाहिनी—सेनाओंका पति होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी वाहिनी—नदियोंका पति था, जिस प्रकार सेनापति चलितविमलतरवारिशोभित—चलती हुई निर्मल तलवारसे शोभित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी चलितविमलतरवारिशोभितः—चलते हुए अत्यन्त स्वच्छ जलसे सुशोभित था, जिस प्रकार सेनापति चापांचित—धनुषसे शोभित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी आपांचित—जलसमूहसे शोभित था, जिस प्रकार सेनापतिका शरीर घनकीलाल—अत्यधिक रुधिरसे युक्त होता है उसी प्रकार क्षीर-सागर भी घनकीलाल—अत्यधिक जलसे युक्त था, जिस प्रकार सेनापति उद्दण्डकाण्ड—लम्बायुग्मान तीक्ष्ण बाणोंसे मण्डित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी उद्दण्डकाण्ड—ऊँचे लहराते हुए जलसे मण्डित था, जिस प्रकार सेनापतिके आगे कबन्ध—शिर रहित धड़ उछलते हैं उसी प्रकार क्षीरसागरके आगे भी कबन्ध—जल उछल रहा था और जिस प्रकार सेनापति पृथुल-हरिजाल—स्थूल घोड़ोंके समूह सम्बन्धी कोलाहलसे दिक्कटोंको शब्दायमान करता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी पृथुल-हरिजाल—बड़ी मोटी तरंगोंके समूह सम्बन्धी कोलाहलसे दिक्कटोंको मुखरित कर रहा था । इस प्रकार समानता होनेपर भी यह क्षीरसागर, बहुभंग—अनेक पराजयों (पक्षमें तरंगों) के रहते हुए भी गरजता रहता है परन्तु सेनापति एक ही भंग—पराजयके होनेपर पराजित हो जाता है यह दोनोंमें विशेषता है । § ७) यः खल्विति—सचमुच ही जो क्षीरसागर भुवनपति—राजाके समान था क्योंकि जिस प्रकार राजा भुवनपति—जगत्का पति होता है उसी प्रकार वह क्षीरसागर भी

५

१०

१५

२०

२५

३०

३५

स्थितिसंपन्नः, परिस्फुरद्रत्नमण्डितश्चञ्चदूर्मिकोज्ज्वलः समुद्रश्च, किंतु नदेशविख्यातो देशविख्यातो, नवसुधाविभवहेतुर्वसुधाविभवहेतुः, नक्षत्रपबन्धुः क्षत्रपबन्धुः, गरोल्लासनिदानं नगरोल्लासनिदानं, रसहितो नरसहित इति विशेषः ।

- तथाभूतः क्षीरसागरः पक्षे अतिशोभनस्य क्रमस्य कर इत्यतिशोभनक्रमकरः साधुरीतिप्रवर्तकः सर्वतोमुखं जलमेव संपद् तथा आढ्यः सहितः क्षीरसागरः पक्षे सर्वतोमुखो समन्तादायान्तो या संपत् तथा आढ्यः, सुष्ठु अर्धः स्वर्णः सुत्रलं तस्य स्थित्या संपन्नः क्षीरसागरः पक्षे स्वर्णस्य हेमः स्थित्या संपन्नः सहितः, परिस्फुरद्भिर्देदीप्यमानं रत्नैर्मण्डितः क्षीरसागरः पक्षे देदीप्यमानाभरणखचितरत्नैरलंकृतः, चञ्चल्यः शोभमाना या ऊर्मिका लहर्गस्ताभिरुज्ज्वलः क्षीरसागरः पक्षे चञ्चन्तीभिरूर्मिकाभिरङ्गुल्याभरणैरुज्ज्वलः, समुद्रश्च समुद्रनामघेयश्च पक्षे मुद्रया सहितः समुद्रः । अथ तयोर्विशेषं दर्शयति—क्षीरसागरः नदेशविख्यातः न देशेषु जनपदेषु विख्यातः प्रसिद्ध इति नदेशविख्यातः, भुवनपतिस्तु देशविख्यात इति विशेषः पक्षे नदानामीशो नदेशस्तथा विख्यातः क्षीरसागरः । क्षीरसागरो न वसुधायाः पृथिव्या विभवस्य हेतुः भुवनपतिस्तु वसुधा विभवहेतुः पृथिवीविभवहेतुरिति विशेषः पक्षे क्षीरसागरो नवसुधायाः प्रत्यग्रपीयूषस्य यो विभवस्तस्य हेतुः क्षीरसागरः नक्षत्रपाणां राज्ञां बन्धुहितकरः भुवनपतिस्तु क्षत्रपाणां बन्धुरिति विशेषः पक्षे क्षीरसागरो नक्षत्र-पस्य चन्द्रस्य बन्धुः । क्षीरसागरः गरस्य विषस्य य उल्लासस्तस्य निदानं भुवनपतिस्तु तथा न भवतीति नगरोल्लासनिदानमिति विशेषः पक्षे भुवनपतिः नगराणां पुराणामुल्लासस्य हर्षस्य निदानम् । क्षीरसागरः रसहितः रसेन जलेन हितो हितकर्ता आसीत् भुवनपतिस्तु न तथासौदिति विशेषः पक्षे नरः सहित इति

- भुवनपति—जलका पति था, जिस प्रकार राजा अतिशोभनक्रमकर—अत्यन्त शोभायमान परिपाटीको करनेवाला होता है उसी प्रकार क्षीरसमुद्र भी अतिशोभनक्रमकर—अत्यन्त शोभायमान नाकू और मगरोंसे सहित था, जिस प्रकार राजा सर्वतोमुखसंपदाढ्य—सब ओरसे आयवाली सम्पत्तिसे सहित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी सर्वतोमुखसम्प-
दाढ्य—जलरूपी सम्पत्तिसे सहित था, जिस प्रकार राजा स्वर्णस्थितिसम्पन्न—सुवर्णकी स्थितिसे सम्पन्न होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी सुन्दर जलकी स्थितिसे सम्पन्न था, जिस प्रकार राजा परिस्फुरद्रत्नमण्डित—देदीप्यमान रत्नोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी चारों ओर चमकते हुए रत्नोंसे मण्डित था, जिस प्रकार राजा चंचदूर्मि-
कोज्ज्वल—शोभायमान अङ्गुठियोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी चंचदूर्मि-
कोज्ज्वल—सुन्दर लहरोंसे सुशोभित था, और जिस प्रकार राजा समुद्र—मुद्रासे सहित होता है उसी प्रकार क्षीरसागर भी समुद्र—समुद्र नामधारी था इस तरह दोनोंमें समानता थी परन्तु राजा तो देशविख्यात—देशोंमें प्रसिद्ध होता है पर क्षीरसमुद्र नदेशविख्यात—देशोंमें प्रसिद्ध नहीं था । पक्षमें नदों—बड़ी-बड़ी नदियोंके स्वामी रूपसे विख्यात था । राजा वसुधाविभवहेतु—पृथिवीके वैभवका कारण होता है परन्तु क्षीरसागर नवसुधाविभवहेतु—पृथिवीके विभवका हेतु नहीं था (पक्षमें नवीन अमृतके विभवका हेतु था) । राजा क्षत्रप-
बन्धु—श्रेष्ठ क्षत्रियोंका हितकारी होता है परन्तु क्षीरसागर नक्षत्रपबन्धु—श्रेष्ठक्षत्रियोंका हितकारी नहीं था (पक्षमें चन्द्रमाका बन्धु था) । क्षीरसागर गरोल्लासनिदान—विषके उल्लासका कारण होता है परन्तु राजा नगरोल्लासनिदान—विषके उल्लासका कारण नहीं था
३५ (पक्षमें नगरोंके हर्षका कारण था) क्षीरसागर रसहित—जलसे हितकारी होता है परन्तु राजा नरसहित—जलसे हितकारी नहीं था (पक्षमें मनुष्योंसे सहित था) यह दोनोंमें

§ ८) यः पुनर्धार्मिक इव सज्जनक्रमकरः, सिन्धुरवदनप्रदेश इव वारिगतानेकनागः, सत्पुरुष इव गोत्रातिशयः, पृथ्वीपतिनिलय इव प्रदृश्यमानमहापात्रः, गणिकासमूह इव घनतरुणाञ्चितसविधप्रदेशः, श्रीजिनराज इव विकसितकुमुदपरागः प्रकटितगाम्भीर्यमहिमा च, विषराशिरप्यमृतराशिः, अतिवृद्धोऽपि कान्तारागाञ्चितो राजते ।

§ ९) कनककलशजालं क्षीरवार्धौ निमज्जद्—

विशदरुचिरमुक्तातारकाभिः परीतम् ।

नरसहितो भुवनपतिः । § ८) यः पुनरिति—यः पुनः क्षीरसागरः धार्मिक इव धर्मेण चरतीति धार्मिकः धर्मात्मपुरुष इव सज्जनक्रमकरः—सज्जा निभूता नक्रमकरा जलजन्तुविशेषा यस्मिन् सः, पक्षे सज्जनक्रमकरः सज्जनानां क्रमस्य परिपाट्याः करः । सिन्धुरबन्धनप्रदेश इव हस्तिबन्धनस्थानमिव वारिगता जलगता अनेकनागा अनेकगजाः अनेकसर्पा वा यस्य तथाभूताः पक्षे वारिगता गजबन्धनोगता अनेकनागा अनेकगजा यस्मिन्सः 'वारी तु गजबन्धनी' इत्यमरः द्विरूपकोषे वारीशब्दस्य ह्रस्वत्वमपि प्रसिद्धम् । सत्पुरुष इव सज्जन इव गोत्रातिशयः—गोत्राणां पर्वतानामतिशयोऽतिक्रमणं यस्मिन् सः, पक्षे गोत्रस्य वंशस्यातिशयः प्रकर्षो यस्य तथाभूतः पृथ्वीपतिनिलय इव राजभवनमिव प्रदृश्यमानानि समवलोक्यमानानि महापात्राणि विशालभाजनानि यस्मिन् तथाभूतः क्षीरसागरः पक्षे प्रदृश्यमानानि महापात्राणि महाविद्वान्सो यस्मिन् सः । गणिकासमूह इव वेश्यासमूह इव घनतरुणा सघनवृक्षैरञ्चितः शोभितः सविधप्रदेशो यस्य तथाभूतः क्षीरसागरः घनतरुणेत्यत्र जातित्वादेकवचनम् पक्षे घनतरुणैः बहुयुवभिरञ्चितः सविधप्रदेशो यस्य तथाभूतः । श्रीजिनराज इव श्रीजिनेन्द्र इव विकसितानां कुमुदानां कैरवाणां परागो रजो यस्मिन्स्तथाभूतः क्षीरसागरः पक्षे विकसितः प्रकटितः कुमुदः कुत्सितहर्षात् अपरागो विद्वेषो यस्य तथाभूतः प्रकटितो गाम्भीर्यमहिमा अगाधत्वमहिमा यस्य तथाभूतः क्षीरसागरः पक्षे प्रकटितो गाम्भीर्यस्य धैर्यस्य महिमा यस्य सः । विषराशिरपि गरलराशिरपि अमृतराशिः पोयूषराशिरिति विरोधः परिहारपक्षे उभयत्र विषामृतयोर्जलमर्थः । अतिवृद्धोऽपि अतिस्थविरोऽपि कान्तारागेण स्त्रीप्रीत्या अञ्चितः शोभितः इति विरोधः परिहारपक्षे कान्तारं च वनं च अगाधं च पर्वताश्च तैरञ्चितः शोभितः विराजते शोभते । श्लेषोपमाव्यतिरेकविरोधाभासाः । § ९) कनकेति—क्षीरवार्धौ क्षीरसागरे

विशेषता थी । § ८) यः पुनरिति—जो समुद्र धर्मात्मा मनुष्यके समान सज्जनक्रम कर—सज्जनोंके क्रमको करनेवाला था (पक्षमें सजे हुए नाकू और मगरोंसे सहित था) । हाथी बाँधनेके स्थानके समान वारिगतानेकनागवारीमें पड़े हुए अनेक हाथियोंसे सहित था (पक्षमें जलमें स्थित अनेक साँपों अथवा हाथियोंसे सहित था) । सत्पुरुषके समान गोत्रातिशय—उत्तम कुलसे सहित था (पक्षमें पर्वतोंको डुबानेवाला था) राजाके महलके समान प्रदृश्यमान महापात्र—दिखाई देनेवाले महाविद्वानोंसे सहित था (पक्षमें दिखाई देनेवाले बड़े-बड़े वर्तनोंसे सहित था) । वेश्यासमूहके समान घनतरुणाञ्चितसविध प्रदेश—अत्यधिक युवा पुरुषोंसे शोभित समीपवर्ती प्रदेशसे सहित था (पक्षमें बहुत सघन वृक्षोंसे सुशोभित समीपवर्ती प्रदेशसे सहित था) । श्री जिनेन्द्रके समान विकसित कुमुदपराग—कुत्सित हर्षमें अपराग—विद्वेषसे सहित (पक्षमें खिले हुए कुमुदोंके परागसे सहित) तथा प्रकटित-गाम्भीर्यमहिमा—प्रकट हुई गम्भीरताकी महिमासे युक्त था (पक्षमें प्रकट हुई गहराईकी महिमासे सहित था) । इसके सिवाय वह क्षीरसागर विषराशि—विषकी राशि होकर भी अमृतराशि—अमृतकी राशि था (परिहारपक्षमें जलकी राशि था) और अतिवृद्ध—अत्यन्त बूढ़ा होकर भी कान्तारागाञ्चित—स्त्रियोंके रागसे सुशोभित था (परिहार पक्षमें अत्यन्त विस्तृत होकर भी कान्तार—वन तथा अग—पर्वतोंसे सुशोभित था) । § ९) कनकेति—जो

सकलकलमुदञ्चच्चन्द्रसाम्भं प्रपेदे

धवलमधुरदुग्धोद्योतसज्ज्योत्स्नयेदम् ॥४॥

§ १०) अथ सुरकरैर्नीतान्क्षीराब्धिसज्जलपूरितान्

कनककलशानेताविन्द्री तदा विकृतैर्भुजैः ।

दशशतमितैर्मोदात्स्वीकृत्य मूर्ध्नि जगद्गुरो-

जयजयजयारावैः सार्धं न्यपातयतां तदा ॥५॥

§ ११) ततो जयजयारावमुखरीकृतदिकटाः ।

कल्पेश्वरास्तदा हर्षात्समं धारा न्यपातयन् ॥६॥

§ १२) सा किल पयोधारा कुम्भस्थलायमानमिलितकनककुम्भद्वयविगलिततयाखण्डल-

१० शुण्डालशुण्डादण्डशङ्कामङ्कुरयन्ती, जिनाभकमुत्सङ्गे वहन्त्याः पाण्डुकवनलक्ष्म्याः कनककुम्भकुच-

निमज्जन्तु निमग्नीभवन्तु, विशदा धवला रुचिरा मनोहरा या मुक्ता मौक्तिकानि ता एव तारकास्ताभिः परीतं व्याप्तं, सकलकलं कलकलेन सहितं सकलकलं कलकलशब्दसहितं पक्षे सकलाः कला यस्य तत् पूर्णमित्यर्थः, धवलमधुरं सितमिष्टं यद् दुग्धं क्षीरं तस्योद्योतः प्रकाश एव सज्ज्योत्स्ना सच्चन्द्रिका तथा इदं दीप्तं, कनककलशजालं स्वर्णकलशनिकुरम्बं उदञ्चच्चन्द्रस्य उदीयमानेन्दोः साम्भं सादृश्यं प्रपेदे । उपमालंकारः ।

१५ मालिनी छन्दः ॥४॥ § १०) अथेति—अयानन्तरं तदा तस्मिन्काले एतौ इन्द्रौ सौधर्मेशानेन्द्रौ सुरकरैर्देवहस्तैः वीतान् प्रापितान् क्षीराब्धिसज्जलपूरितान् क्षीरसागरसत्सलिलसंभूतान् एतान् कनककलशान् काञ्चनकुम्भान् तदा विकृतैस्तत्कालविक्रियानिमित्तैः दशशतमितैः सहस्रपरिमितैः भुजैर्बाहुभिः मोदात् हर्षात् स्वीकृत्य गृहीत्वा जगद्गुरोजिनेन्द्रस्य मूर्ध्नि शिरसि जयजयजयेति आरावाः शब्दास्तैः सार्धं न्यपातयताम् निपातयांबभूवुः । हरिणीच्छन्दः ॥५॥ § ११) तव इति—ततस्तदनु तदा तस्मिन् काले जयजयारावेण जयजयशब्देन

२० मुखरीकृतानि दिक्कटानि यैस्ते तथाभूताः कल्पेश्वराः स्वर्गशतक्रतवः हर्षात् प्रमोदात् समं युगपद् धारा न्यपातयन् निपातयांबभूवुः ॥६॥ § १२) सा किलेति—सा किल पूर्वोक्ता पयोधारा जलधारा व्यराजत व्यशोभत । कथमिति चेत् । आह—कुम्भेति कुम्भस्थलायमानौ गण्डस्थलायमानौ मिलितौ परस्परं संपृक्तौ यौ कनककुम्भौ काञ्चनकलशौ तयोर्द्वयं युगलं तस्माद्विगलिततया पतिततया आखण्डलशुण्डालस्यैरावतस्य यः शुण्डादण्डस्तस्य शङ्कां संशीतिम् अङ्कुरयन्ती समुत्पादयन्ती, जिनाभकं जिनबालकं उत्सङ्गे क्रीडे वहन्त्या दधत्याः पाण्डुकवन-

२५ क्षीरसमुद्रमें निमग्न हो रहा था, श्वेत तथा सुन्दर मोती रूप ताराओंसे व्याप्त था, कल-कल शब्दसे सहित था (पक्षमें समस्त कलाओंसे युक्त था) तथा सफेद और मधुर दूधके प्रकाश रूपी चाँदनीसे देदीप्यमान था ऐसा स्वर्णकलशोंका समूह उदित होते हुए चन्द्रमाके सादृश्य-को प्राप्त हो रहा था ॥४॥ § १०) अथेति—तदनन्तर उस समय इन दोनों इन्द्रोंने देवोंके हाथोंसे लाये हुए तथा क्षीरसमुद्रके उत्तम जलसे भरे हुए इन सुवर्ण-कलशोंको तत्काल

३० विक्रियासे निर्मित एक हजार मुजाओंके द्वारा हर्षसे स्वीकृत कर जय जय जय शब्दके साथ भगवान्के मस्तकपर छोड़ा ॥५॥ § ११) तत इति—तत्पश्चात् जिन्होंने जय जय शब्दके द्वारा दिशाओंके तट गुँजा दिये थे ऐसे स्वर्गके इन्द्रोंने उस समय हर्षसे एक साथ धाराएँ छोड़ीं ॥६॥ § १२) सा किलेति—वह धारा कभी तो गण्डस्थलोंके समान मिले हुए सुवर्ण-कलशोंके युगलसे निकली होनेके कारण ऐरावत हाथीके शुण्डादण्डकी शंका उत्पन्न कर रही

३५ थी, कभी जिनबालकको गोदमें धारण करनेवाली पाण्डुकवनकी लक्ष्मीके सुवर्णकलशरूप

युगलव्यामुक्तमुक्ताहारकान्तिशरी तच्छिरसि पततीति विद्याधरनिकरेणोत्प्रेक्ष्यमाणा, वदनरुचि-
यशोवैशद्याभ्यां विजितयोः सेवार्थमागत्य नभसि संनिहितयोजम्बूद्वीपसंगतयोः सुवर्णवर्णभगवद्दिव्य-
देहकान्तिसंक्रान्तिवशेनारक्तमण्डलयोः शशाङ्कयोर्बिम्बयुगलात्रिःसरन्ती कौमुदीति पश्यतां मतिं
जनयन्ती, अयं किल जिनाभंकः परमहिमाञ्चितः, सर्वसुपर्वजनसेव्यमानपादो, महीधरसानुचर-
विद्याधरपरिवृतः, सकलदिगम्बरोन्नतः स हिमालयो गिरीश इति मत्वा समापतन्ती सुरस्रवन्तीव च
व्यराजत । ५

लक्ष्म्याः पाण्डुकवन्ध्रियाः कनककुम्भावेव कुचौ स्तनी तयोर्युगले व्यामुक्तो धृतो यो मुक्ताहारस्तस्य कान्तिशरी
दीप्तिप्रवाहः तच्छिरसि जिनाभंकमस्तके पततीति विद्याधरनिकरेण खेचरसमूहेन उत्प्रेक्ष्यमाणा तर्क्यमाणा,
वदनरुचिश्च मुखकान्तिश्च यशोवैशद्यं च कीर्तिर्नैर्मल्यं चेति वदनरुचियशोवैशद्ये ताभ्यां विजितयोः पराजितयोः
अतएव सेवार्थं शुश्रूषार्थम् आगत्य नभसि गगने संनिहितयोनिकटस्थयोः जम्बूद्वीपसंगतयोजम्बूद्वीपसंन्विनोः १०
सुवर्णवर्णो हेमद्युतियो भगवद्दिव्यदेहो जिनेन्द्रकमनीयकायस्तस्य या कान्तिर्दीप्तिस्तस्याः संक्रान्तिवशेन संमिश्रण-
वशेन आरक्तं मण्डलं बिम्बं ययोस्तयोः शशाङ्कयोश्चन्द्रमसोः बिम्बयुगलात् मण्डलद्वयात् निःसरन्ती निष्पतन्ती
कौमुदी चन्द्रिका इतीत्यं पश्यतामवलोकमानानां मतिं बुद्धिं जनयन्ती समुत्पादयन्ती, अयं किल जिनाभंको
जिनेन्द्रशिखः स प्रसिद्धो हिमालयो हिमालयनामधेयो गिरीश इति मत्वा समापतन्ती सुरस्रवन्तीव च
गङ्गानदीव च व्यराजत व्यशीभत । अथ जिनाभंकहिमालयोः सादृश्यमाह—परमहिमाञ्चितः—परश्चासौ १५
महिमा च परमहिमा उत्कृष्टप्रभावस्तेन अञ्चितः शोभितो जिनाभंकः, परमहिमेन प्रभूतप्रालयेन अञ्चितः
शोभितो हिमालयः, सर्वसुपर्वजनसेव्यमानपादः—सर्वसुपर्वजनेन निखिलदेवसमूहेन सेव्यमानो पादो चरणौ
पक्षे सेव्यमानाः पादाः प्रत्यन्तपर्वता यस्य तथाभूतः, महीधरसानुचरविद्याधरपरिवृतः—महीधरा राजानः,
सानुचरा अनुचरसहिता विद्याधराः खेचराः महीधराश्च ते सानुचरविद्याधराश्चेति महीधरसानुचरविद्याधराः २०
ससेवकविद्याधरभूपास्ताः परिवृतः परिवेष्टितः, अथवा महीधराश्च भूमिगोचरा राजानश्च सानुचरविद्या-
धराश्चेति द्वन्द्वस्तैः परिवृतो जिनाभंकः पक्षे महीधरस्य विजयार्धपर्वतस्य सानुषु शिखरेषु चरन्ति गच्छन्तीति
महीधरसानुचरास्तथाभूता ये विद्याधरास्तैः परिवृतः सकलदिगम्बरोन्नतः समग्रदिगम्बरमतानुयायिपून्नतः
श्रेष्ठो जिनाभंकः पक्षे सकलदिक्षु निखिलाशासु अम्बरे गगने च उन्नतः समुत्तुङ्गः गिरीशः गिरां वाचाम् ईशः

स्तनयुगलपर धारण किये हुए मुक्ताहारकी कान्तिका झरना क्या जिनबालकके शिरपर पड़
रहा है इस तरह विद्याधर समूहकी उत्प्रेक्षाका विषय बन रही थी । कभी मुखकी कान्ति और २५
यशकी निर्मलतासे पराजित होनेके कारण सेवाके लिए आकर आकाशमें स्थित एवं सुवर्णके
समान आभावाले भगवान्के सुन्दर शरीर सम्बन्धी कान्तिके सम्मिश्रणसे लाल-लाल दिखने-
वाले जम्बूद्वीप सम्बन्धी दो चन्द्रमाओंके बिम्बयुगलसे गिरती हुई चाँदनी है इस प्रकार
देखनेवालोंको बुद्धि उत्पन्न कर रही थी और कभी, यह जिनबालक प्रसिद्ध हिमालय नामका
पर्वत है क्योंकि जिस प्रकार जिनबालक परमहिमाञ्चित—उत्कृष्ट महिमासे सुशोभित है ३०
उसी प्रकार हिमालय भी परमहिमाञ्चित—उत्कृष्ट बर्फसे सुशोभित है, जिस प्रकार जिनबालक
सर्वसुपर्वजनसेव्यपाद—समस्त देवसमूहसे सेवनीय पादों—चरणोंसे युक्त है उसी प्रकार
हिमालय भी समस्त देवसमूहसे सेवनीय पादों—प्रत्यन्त पर्वतोंसे सहित है, जिस प्रकार
जिनबालक महीधरसानुचरविद्याधरपरिवृत—भूमिगोचरी राजा तथा सेवकों सहित
विद्याधर राजाओंसे घिरा हुआ है उसी प्रकार हिमालय भी पर्वतके शिखरोंपर चलनेवाले ३५
विद्याधरोंसे घिरा है, जिस प्रकार जिनबालक सकलदिगम्बरोन्नत—समस्त दिगम्बर
मतानुयायियोंमें उन्नत—श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार हिमालय भी समस्त दिशाओं और

§ १३) सैषा पाण्डुशिला विपाण्डुरलसत्कन्दस्य लीलां दधे

तत्रायं जिनपोतकः समतनोत्पुण्यप्ररोहश्चियम् ।

धारा क्षोरमयी रराज विचलत्काण्डश्चियं बिभ्रती

कुम्भाः पुण्यलताफलालितुलनां व्यातेनिरे व्यातताः ॥७॥

५ § १४) यद्वा सा व्यतनोज्जिनाङ्गविसरत्कान्त्या परीता पयो-

धारा प्रोद्धतस्वमकाण्डतुलनां हेम्ना समानच्छविः ।

दूरं व्योम्नि समुद्गता जलकणाश्छत्रश्चियं तेनिरे

तन्मध्ये कलशश्चियं समतनोत्कुम्भस्तदा कश्चन ॥८॥

§ १५) अयं खलु जिनबालकवलाहको बहुधाराराजितो हानिदाघं शमयति, कीर्तिमुत्पा-

१० स्वामी गिरीशो जिनार्भकः पक्षे गिरीणामीशो गिरीशः पर्वतश्रेष्ठा स हिमालयः स प्रसिद्धः हि निश्चयेन मालयः माया लक्ष्म्या आलयः स्थानम्, पक्षे सः प्रसिद्धः हिमालयो हिमस्य आलयो हिमालय इति । उत्प्रेक्षाश्लेषो ।

§ १३ सैषेति—एषा सा—इयं सा पाण्डुशिला पाण्डुकशिला विपाण्डुरोऽतिघबलो लसन् शोभमानो यः कन्द-स्तस्य लीलां शोभां दधे धृतवती । तत्र पाण्डुकशिलायां जिनपोतको जिनेन्द्रार्भकः पुण्यप्ररोहस्य पुण्याङ्कुरस्य श्रियं शोभां समतनोत् विस्तारयामास । क्षोरमयी दुग्धमयी धारा विचलत्काण्डश्चियं चञ्चलप्रकाण्डशोभां

१५ बिभ्रती दधती रराज शुशुभे । व्यातता विस्तृताः कुम्भाः कलशाः पुण्यलतायाः सुकृतवल्ल्या फलानां या आलिः पङ्क्तिस्तस्यास्तुलनां सादृश्यं व्यातेनिरे विस्तारयामासुः । उपमा । शार्दूलविक्रीडितम् ॥७॥ § १४)

यद्वेति—यद्वा विकल्पान्तरे जिनाङ्गस्य भगवद्विषयदेहस्य विसरन्ती प्रसरन्ती या कान्तिर्दीप्तिस्तया परीता व्यासा अतएव हेम्ना सुवर्णेन समाना छविर्यस्यास्तथाभूता सा पूर्वोक्ता पयोधारा जलधारा प्रोद्धतः समुन्नतो यो स्वमकाण्डः सुवर्णदण्डस्तस्य तुलनामुपमां समतनोत् विस्तारयामास, व्योम्नि नभसि दूरं विप्रकृष्टं यावत्

२० समुद्गताः समुत्पतिता जलकणाः सलिलपुषताः छत्रश्चियं आतपत्रशोभां तेनिरे विस्तारयामासुः । तन्मध्ये तेषां जलकणानां मध्ये कश्चन कोऽपि कुम्भः कलशः तदभिषेकवेलायां कलशश्चियं छत्रोपरिधृतकलशशोभां समतनोत् विस्तारयामास । उपमा । शार्दूलविक्रीडितम् ॥८॥ § १५) अयमिति—अयं खलु जिनबालक एव वलाहको मेघः इति जिनबालकवलाहकः बहुधा अनेकधा अतिशयेन राजित इति राराजितः पक्षे बहुधाराभिः राजितः शोभितः तथाभूतः, सन्, हानिदाघं हानि ददातीति हानिदः स चासावधश्चेति हानिदाघस्तं हानिप्रदपापं पक्षे

२५ आकाशमें उन्नत—ऊँचा है; जिस प्रकार जिनबालक गिरीश—वचनोंका स्वामी है उसी प्रकार हिमालय भी गिरीश—पर्वतोंका स्वामी है और जिस प्रकार जिन बालक हि + मालय—निश्चयसे लक्ष्मीका घर है उसी प्रकार हिमालय भी हिम—बर्फका आलय घर है । इस प्रकार जिनबालकको हिमालय समझकर पड़ती हुई गंगा नदीके समान जान पड़ती थी ॥ § १३) सैषेति—वह पाण्डुकशिला अत्यन्त सफेद कन्दकी

३० शोभाको धारण कर रही थी, उसपर यह जिनबालक पुण्यलताके अंकुरकी शोभाको विस्तृत कर रहा था, उसपर पड़ती हुई दूधकी धारा चञ्चल पींडकी शोभाको धारण कर रही थी और फैले हुए कलश पुण्यलताके फलसमूहकी तुलनाको बढ़ा रहे थे ॥७॥ § १४) यद्वेति—अथवा जिनेन्द्र भगवान्के शरीरकी फैलती हुई कान्तिसे व्याप्त अतएव सुवर्ण सदृश कान्तिको धारण करनेवाली वह धारा ऊँचे सुवर्णदण्डकी शोभाको विस्तृत कर रही थी,

३५ आकाशमें दूर तक उछटे हुए जलकण छत्रकी शोभाको विस्तृत कर रहे थे और उनके बीच कोई कलश उस समय छत्रपर लगे हुए कलशकी शोभाको बढ़ा रहा था ॥८॥ § १५) अयं खल्विति—बहुधा-राराजित—अनेक प्रकारसे सुशोभित(पक्षमें बहुधारा-राजित अनेक धाराओंसे

दयति, धर्माभूतवर्षेण भव्यमानसस्य समुल्लासं करिष्यतीति च युवतं, तथाप्यसौ पङ्कं नाशयति सदा-मरालीसन्तोषं विशेषयति, चञ्चलानन्दं त्यजति, समुज्जृम्भितापं मेघाटोपं निर्मूलयति तथा स्वयमधःस्थितः सन् ऊर्ध्वं घनपुष्पवृष्टिं संपादयिष्यतीति विचित्रघनाघनोऽयं सकलभुवनभूतामाधिपत्येऽभिषेक्तव्य इति मत्वा किल सुरेन्द्राः क्षीरवाराशिपयःपूरेण तमभ्यसिञ्चन् ।

‘हा’ इति दुःखार्थमव्ययं पृथक्कृत्य निदाघं ग्रीष्मं शमयति शान्तं करोति, कीर्तिं यशः पक्षे वृष्टिम् उत्पादयति, धर्मं एवामृतं पीयूषं जलं वा तस्य वर्षेण वृष्ट्या भव्यानां भव्यजीवानां मानसं चित्तं तस्य पक्षे भव्यः श्रेष्ठश्चासौ मानसश्च तन्नामसरोवरश्चेति भव्यमानसस्तस्य समुल्लासं हर्षं पक्षे वृद्धिं करिष्यतीति विधास्यतीति च युक्तम् योग्यम् । तथापि पूर्वोक्तप्रकारेण साम्ये सत्यपि असौ जिनबालकवलाहकः पङ्कं कर्दमं नाशयति पक्षे पापं नाशयति ‘पङ्कोऽस्त्री कर्दमे पापे’ इति विश्वलोचनः सदा शशवत् मरालीसन्तोषं हंसीसन्तोषं विशेषयति पक्षे सदा शशवत् अमरालीं देवपङ्क्तिं विशेषयति वर्धयति, चञ्चलाया विद्युत् आनन्दं विलासं त्यजति पक्षे चञ्चलश्चासावानन्दश्चेति चञ्चलानन्दस्तं भङ्गुरानन्दं त्यजति, समुज्जृम्भितं वृद्धितमापं जलसमूहो येन तथाभूतं मेघाटोपं मेघविस्तारं निर्मूलयति समुत्पादयति पक्षे समुज्जृम्भो तापो दुःखं यस्मात्तथाभूतं मे मम अघाटोपं पापसमूहं निर्मूलयति, तथा स्वयम् स्वतः अधःस्थितः सन् नीचैःस्थितः पक्षे मध्यलोके स्थितोऽपि सन्नित्यर्थः ऊर्ध्वं उपरि गगन इति यावत् घनपुष्पस्य जलस्य वृष्टिं ‘घनपुष्पं मेघरसः’ इत्यमरः पक्षे घना निविडा चासौ पुष्पवृष्टिश्चेति घनपुष्पवृष्टिस्तां संपादयिष्यति करिष्यतीति हेतोः विचित्रः प्रकृतघनाघनाद् विलक्षणश्चासौ घनाघनश्च मेघश्चेति विचित्रघनाघनः अयं जिनबालकः सकलभुवनभूतां निखिलजलधराणां पक्षे निखिलजगत्पालकानाम् आधिपत्ये स्वामित्वे अभिषेक्तव्योऽभिषेकाहं इति मत्वा किल सुरेन्द्राः क्षीरवाराशिः क्षीरसागरस्तस्य पयःपूरेण जल-

सुशोभित) यह जिनबालकरूपी मेघ, हानिदाघ—हानिप्रद पापको (पक्षमें ग्रीष्म ऋतु अथवा तीव्रसन्तापको) शान्त करता है, कीर्ति—यश (पक्षमें वृष्टि) को उत्पन्न करता है और धर्मरूप अमृत (पक्षमें जल) की वर्षासे भव्यमानस—भव्यजीवोंके हृदयके उल्लासको (पक्षमें सुन्दर मानसरोवरकी वृद्धिको) करेगा यह ठीक है किन्तु उक्त प्रकारसे समानता होनेपर भी यह पंक—कीचड़को नष्ट करता है जब कि दूसरा मेघ कीचड़को बढ़ाता है (पक्षमें पापको नष्ट करता है), सदा-मराली सन्तोष—सर्वदा हंसियोंके सन्तोषको विशिष्ट करता है—बढ़ाता है जब कि दूसरा मेघ हंसियोंके सन्तोषको नष्ट करता है (पक्षमें सदा-अमरालीसन्तोष—सदा देवपंक्तियोंके सन्तोषको विशिष्ट करता है, चञ्चलानन्द—बिजलीके आनन्दको छोड़ता है जब कि दूसरा मेघ बिजलीके आनन्दको धारण करता है (पक्षमें चञ्चल—क्षणभंगुर आनन्दको छोड़ता है, समुज्जृम्भितापं मेघाटोपं—जलसमूहको धारण करनेवाले मेघोंके विस्तारको निर्मूल करता है जब कि दूसरा मेघ उस प्रकारके मेघोंके विस्तारको धारण करता है (पक्षमें सन्तापको देनेवाले मेरे पापसमूहको निर्मूल करता है), तथा स्वयं नीचे स्थित होता हुआ भी ऊपर जलवृष्टिको करता है जब कि दूसरा मेघ ऊपर स्थित होकर नीचेकी ओर जलवृष्टि करता है (पक्षमें नीचे स्थित रहकर भी ऊपर आकाशसे अत्यधिक पुष्पवृष्टिको कराता है), इस प्रकारसे यह जिनबालक विचित्र मेघ है—अन्य मेघोंसे विलक्षणता रखता है इसलिए समस्त भुवनभूत—जलधर अर्थात् मेघोंके आधिपत्यमें (पक्षमें समस्त राजाओंके स्वामित्वमें) यही अभिषेक करने योग्य है ऐसा मानकर ही मानो इन्द्रोंने क्षीरसागरके जलप्रवाहसे उसका अभिषेक किया

§ १६) मरुद्धेरीरावैरितरसुरवादित्रनिनदै-

जयारावैर्नृत्यत्त्रिदशसुदतीनूपुररवैः ।

तदा वन्दित्रातैः पठितजिनराजस्तुतिरवै-

रभूच्छब्दाद्वैतं परकथितमध्यक्षविषयम् ॥९॥

५

§ १७) तदानीं खलु प्रजवं प्रचलितः प्रचुरतरपयःप्रवाहः क्वचिद् विचित्ररत्नकान्तिपरोत-
तया द्रवीभूतेन्द्रचापशङ्काकरः, क्वचन वैडूर्यप्रभारञ्जिततया एकत्र निलीनघनतिमिरशङ्काकरः,
क्वचिन्मरकतमणिघृणिसंगततया हरितांशुकच्छायः, एकत्र प्लावितानां सुरसैनिकानां क्षीराब्धि-
मज्जनमिव विदधानः, पत्रशाखाशिखाग्रदर्शनानुमीयमाननन्दनवनकर्षणः सुमेरुमभितः प्रसार ।

- १० प्रवाहेण तं जिनबालकम् अम्यसिञ्चत् स्नपयामास । इलेपरूपकोत्प्रेक्षाः । § १६) मरुदिति—तदा तस्मिन्
काले मरुद्धेरीणां देवदुन्दुभीनां रावाः शब्दास्तैः, इतराणि च तानि सुरवादित्राणि चेतोतरसुरवादित्राणि तेषां
निनदास्तैः अन्यदेववादित्रशब्दैः, जयारावैः जनजयशब्दैः, नृत्यन्त्यो नृत्यं कुर्वन्त्यो यास्त्रिदशसुदत्यो देवाङ्गना-
स्तेषां नूपुराणां मञ्जीराणां रवाः शिञ्जितानि तैः, वन्दित्रातैः चारणसमूहैः पठिता उच्चरिता या जिनराजस्य
स्तुतयः स्तोत्राणि तासां रवाः शब्दास्तैः परकथितं अन्यवादिप्ररूपितं शब्दाद्वैतं संसारे शब्द एवैको वर्तते सिद्धान्तः
अध्यक्षविषयं प्रत्यक्षस्य विषयः अभूत् । तदा तत्र सर्वत्र शब्द एव श्रूयते स्मेति भावः । शिखरिणी छन्दः ॥९॥
- १५ § १७) तदानीमिति—तदानीं तदा खलु प्रजवं प्रकृष्टवेगं यथा स्यात्तथा प्रचलितः प्रचुरतरः प्रभूततरश्चासौ
पयःप्रवाहो जलपूरश्च क्वचित् कुत्रापि विचित्ररत्नानां विविधवर्णमणोनां कान्त्या परोततया व्याप्ततया द्रवीभूतो
निःस्पन्दाकारेण परिणतो य इन्द्रचापः शक्रवनुस्तस्य शङ्काकरः संदेहोत्पादकः, क्वचन कुत्रापि वैडूर्याणां
नीलमणीनां प्रभया रञ्जिततया एकत्र एकस्थले निलीनं निगूढं यत्तिमिरं ध्वान्तं तस्य शङ्काकरः संशयकरः,
क्वचित् कुत्रचित् मरकतमणीनां हरितमणीनां घृणिभिः किरणैः संगततया सहिततया हरितांशुकस्यैव हरित-
वस्त्रस्यैव छाया कान्तिर्यस्य तथाभूतः 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः, एकत्र एकस्मिन्
स्थाने प्लावितानां निमज्जितानां सुरसैनिकानां देवसैनिकानां क्षीराब्धिमज्जनमिव क्षीरसागरस्नपनमिव
विदधानः कुर्वाणः, पत्रशाखाशिखाग्राणां दलविटपशिखराग्रभागानां दर्शनेनानुमीयमानं नन्दनवनकर्षणं यस्य
तथाभूतः सन् सुमेरुमभितः सुमेरुपर्वतस्य समन्तात् 'अभितःपरितःसमयानिकपाहाप्रतियोगेऽपि' इति ।

- था । § १६ मरुदिति—उस समय देवदुन्दुभियोंके शब्दोंसे, देवोंके अन्य बाजोंके शब्दोंसे, जय
२५ जयके शब्दोंसे, नृत्य करती हुई देवांगनाओंके नूपुर सम्बन्धी शब्दोंसे और चारणोंके समूह
द्वारा पढ़ी हुई जिनेन्द्र स्तुतियोंके शब्दोंसे, अन्यमतावलम्बियों द्वारा निरूपित शब्दाद्वैतका
सिद्धान्त प्रत्यक्षका विषय हो रहा था । अर्थात् सर्वत्र शब्द ही शब्द सुनाई पड़ रहा था ।
§ १७) तदानीमिति—उस समय बहुत भारी वेगसे बहता हुआ अत्यधिक जलका प्रवाह
कहीं तो नाना रंगके मणियोंकी कान्तिसे व्याप्त होनेके कारण पिघले हुए इन्द्रधनुषकी शंका
३० कर रहा था, कहीं वैडूर्यमणिकी प्रभासे रँगा हुआ होनेसे एक स्थानमें छिपे हुए अन्धकारका
सन्देह कर रहा था, कहीं मरकत मणियोंकी किरणोंसे सहित होनेके कारण हरे रंगके वस्त्रके
समान जान पड़ता था, किसी एक जगह डुबाये हुए सुरसैनिकोंसे ऐसा जान पड़ता था
मानो वे क्षीरसागरमें गोता लगाकर स्नान ही कर रहे हों, और कहीं उसमें पत्र शाखा तथा
शिखरके अग्रभाग दिखाई देते थे उनसे ऐसा अनुमान होता था जैसे यह नन्दनवनको ही
३५ खींचकर लिये जा रहा हो । इस प्रकारका वह जल प्रवाह मेरुपर्वतके चारों ओर फैल गया ।

§ १८) किं रोप्याद्रिरयं घनः किमु सुधाराशिः क्वचित्संगतः

किंवा स्फाटिकभूधरः किमथवा चन्द्रोपलानां चयः ।

आहोस्वित्त्रिगच्छिद्यो घवलितः सौधः सुधासेचनै-

रित्थं व्योमचरैर्व्यलोकि कनकक्षोणीधरः कौतुकात् ॥१०॥

§ १९) तदानीं गगनमुत्पतिताः प्रचुरतराः कुन्दावदाताः मेरुमहीभृतः श्वेतातपत्रविभ्रमं तन्वानाः, गगनलक्ष्म्याः सुपर्वजनसमर्दवशेन स्फुटितमुक्ताहारमणिसंदोहसंदेहं संदधानाः, श्रीमदहंती- तिलताबीजराजिशङ्कासंपादका नभोऽङ्गणपुष्पोपहारायमाणाः, दिक्सुन्दरीकर्णपूरायमाणाः स्नान- पयःपूरशीकरनिकराः क्रमेण निबिडिताः प्रासज्योतिर्लोकास्तत्र तारागणेषु क्षणं पयःस्रवणशालितया करकाशङ्कां, क्षणमुन्मज्जनवत्तया बुद्बुदमति, क्षणं डिण्डीरखण्डमण्डिततया शुक्तिकाशकलसंगत-

प्रससार प्रसृतोऽभूत् । हेतुत्प्रेक्षा । § १८) किमिति—किम् अयं दृश्यमानो रोप्याद्रिः रजतगिरिः, किमु क्वचित् कुत्रापि संगतो मिलितः घनो निबिडः सुधाराशिः चूर्णकसमूहः, वा अथवा किं स्फाटिकभूधरः स्फटिकगिरिः, अथवा किं चन्द्रोपलानां चन्द्रकान्तमणीनां चयः समूहः, आहोस्वित् अथवा सुधासेचनैः चूर्णकद्रवैः घवलितः शुक्लः त्रिजगच्छिद्यः त्रिभुवनश्रियः सौधः प्रासादः, इत्थमनेन प्रकारेण व्योमचरैर्देवविद्याधरैः कनक- क्षोणीधरः सुमेरुः कौतुकात् व्यलोकि दृष्टः कर्मणि प्रयोगः । संशयालंकारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥१०॥

§ १९) तदानीमिति—तदानीं तस्मिन् काले गगनं नभ उत्पतिता उच्छलिताः प्रचुरतराः प्रभूततमाः कुन्दावदाताः कुन्दकुसुमवद्धवला, मेरुमहीभृतः सुमेरुभूगलस्य श्वेतातपत्रविभ्रमं श्वेतच्छत्रसंदेहं तन्वाना विस्तारयस्तः, गगनलक्ष्म्या व्योमश्रियाः सुपर्वजनानां देवानां समर्दवशेन संपीडनवशेन स्फुटितस्फुटितो यो मुक्ताहारस्तस्य मणिसंदोहस्य मणिसमूहस्य संदेहं शङ्कां संदधानाः संघरन्तः, श्रीमदहंतः श्रीमज्जिनेन्द्रस्य कीर्तिरेव लता तस्या बीजराजिः बीजसंततिस्तस्याः शङ्का तस्याः संपादकाः कारकाः नभोऽङ्गणस्य गगना- जिरस्य पुष्पोपहारायमाणाः पुष्पोपहारवदाचरन्तः, दिक्सुन्दरीणाम् आशासुवासिनीनां कर्णपूरायमाणाः कर्णालंकारवदाचरन्तः स्नानपयसोऽभिषेकजलस्य यः पूरः प्रवाहस्तस्य शीकराणाम्भुक्कणानां निकराः समूहा क्रमेण निबिडिताः सान्द्रीभूताः प्राप्ता ज्योतिर्लोको यैस्तथाभूताः, तत्र ज्योतिर्लोके तारागणेषु नक्षत्रनिचयेषु क्षणमल्पकालपर्यन्तं पयःस्रवणेन जलक्षरणेन शालितया शोभितया करकाशङ्कां वर्षोपलसंशीति, क्षणमल्पकाल- पर्यन्तम् उन्मज्जनवत्तया उन्मज्जनतया बुद्बुदमति जलस्फोटबुद्धि, क्षणं डिण्डीरखण्डेन फेनशकलेन मण्डिततया

§ १८) किमिति—क्या यह रजतगिरि है, अथवा कहीं इकट्ठा हुआ चूनाकी बहुत बड़ी राशि है, अथवा क्या स्फटिकका पर्वत है, अथवा क्या चन्द्रकान्त मणियोंका समूह है अथवा क्या कलईसे पुता हुआ त्रिजगत्की लक्ष्मीका भवन है इस प्रकार आकाशमें चलनेवाले देव विद्याधरोंने कुतूहल वश सुमेरु पर्वतको देखा था ॥१०॥ § १९) तदानीमिति—उस समय जो परिमाणमें बहुत भारी थे, कुन्दफूलके समान उज्ज्वल थे, तथा आकाशमें उचटकर मेरु पर्वतरूपी राजाके सफेद छत्रका संशय उत्पन्न कर रहे थे अथवा देव समूहकी धक्का-मुक्कीके कारण टूटे हुए आकाशलक्ष्मीके मुक्ताहार सम्बन्धी मणियोंके समूहकी शंका कर रहे थे अथवा श्रीमान् जिनेन्द्रदेवकी कीर्तिरूपी लताके बीजसमूहकी शंका उत्पन्न कर रहे थे, अथवा आकाशरूपी आँगनके फूलोंके उपहारके समान जान पड़ते थे अथवा दिशारूपी स्त्रियोंके कर्णाभरणके समान प्रतीत होते थे ऐसे अभिषेक सम्बन्धी जलप्रवाहके छोटोंके समूह क्रमसे एकत्रित होकर जब ज्योतिर्लोकमें पहुँचे तब वहाँ ताराओंके समूहमें जलके क्षरणसे सुशोभित होनेके कारण क्षणभरके लिए ओलोंकी शंका, क्षणभरके लिए उखर जानेके कारण बबूलेकी

- मुक्तामणिविभ्रमं, क्षणं संजवनसमाकृष्टनन्दनवनतरुशाखाशिखालग्नतया कुसुममनीषामुत्पादयन्तः, तपनबिम्बे क्षणं कृतजलाकर्षणतया महान्तमायःपिण्डः पानीयं पायित इति संभावनां, क्षणं कोकनदबुद्धि तन्वानाः, सुधाकरबिम्बे च क्षणं जरन्मरालमर्ति, क्षणं शङ्खशङ्कां, क्षणं कुमुदधियं, क्षणं घनफेनपुञ्जधिषणां विदधानाः, अनुप्राप्तमहीतला जिनचन्द्रोदयविद्रुतसकलचन्द्रकान्तशिलागलितपयः-
- ५ प्रवाहा इव, जगद्गुरुसङ्गततरङ्गिताः सुरमहीभूतः संमदाश्रुपूरा इव प्रस्रुताः स्वच्छतरप्रवाहाः, अयं भुवनैकपालकः सगोत्ररक्षणदक्षः पारावारः सुरेन्द्रभीतानां महीधराणां शरणमिति मत्वा गिरिराजेन सुमेरुणा सागरायोपदीकृता निर्मलपटनिकरा, इति शङ्ख्यमानास्तरङ्गिणीकान्तमवापुः ।

- शोभिततया शुक्तिकायाः शकले खण्डे संगता मिलिता ये मुक्तामणयस्तेषां विभ्रमं संदेहं, क्षणं संजवनेन वेगेन समाकृष्टा या नन्दनवनतरुशाखा नन्दनवनवृक्षविटपास्तासां शिखासु लग्नतया संसक्ततया कुसुममनीषां पुष्पवृद्धिम् उत्पादयन्तः, तपनबिम्बे सूर्यमण्डले क्षणं कृतं जलस्याकर्षणं येन तस्य भावस्तया, महान् विशालः तप्तायःपिण्डो लोहगोलकः पानीयं पायितो जलमण्ड्ये प्रवेशित इति संभावनां समुत्प्रेक्षां, क्षणं कोकनदबुद्धि रक्तकमलमनीषां तन्वाना विस्तारयन्तः, सुधाकरबिम्बे च चन्द्रमण्डले च क्षणं जरन्मरालमर्ति वृद्धहंसबुद्धि, क्षणं शङ्खशङ्कां कम्बुसंशीति, क्षणं कुमुदधियं केरवकल्पनां, क्षणं घनदशाक्षी फेनपुञ्जश्च तस्य धिषणा बुद्धिस्तां विदधानाः कुर्वाणाः, अनुप्राप्तं क्रमेण लब्धं महीतलं पृथिवीतलं यैस्ते, जिन एव चन्द्रो जिनचन्द्रो जिनचन्द्रचन्द्रिरस्तस्योदयेन समुद्रगमनेन विद्रुता विलीना याः सकलचन्द्रकान्तशिला निखिलचन्द्रकान्तोपलास्ताभ्यो गलिताः क्षरिता ये पयःप्रवाहा जलपूरास्तद्वत्, जगद्गुरुजिनेन्द्रस्तस्य सङ्गेन तरङ्गिता वृद्धिगताः सुरमहीभूतः सुमेरोः संमदाश्रुपूरा इव हर्षवाष्पप्रवाहा इव, प्रस्रुताः प्रकर्षेण प्रवहमानाः स्वच्छतरप्रवाहा निर्मलतरपूराः, अयं पारावारः सागर इत्यर्थः, भुवनैकपालको जगदेकरक्षकः पक्षे भुवनं जलं तस्यैकपालको मुख्यरक्षकः, सगोत्राणां समानकुलानां रक्षणे त्राणे दक्षः समर्थः, पक्षे पर्वतानां रक्षणे समर्थः, सुरेन्द्रभीतानां गोत्रभिद्भीतानां महीधराणां पर्वतानां शरणम् रक्षिता 'शरणं गृहरक्षित्रीः' इत्यमरः, इति मत्वा, गिरिराजेन पर्वतस्वामिना सुमेरुणा सागराय समुद्राय उपदीकृता उपायनीकृताः निर्मलपटनिकरा स्वच्छतरवस्त्रसमूहा, इत्येवं शङ्ख्यमानाः शङ्खाविषयीक्रियमाणाः सन्तः तरङ्गिणीकान्तं समुद्रम् अवापुः प्रापुः ॥ उत्प्रेक्षारूपक-
- १०
- १५
- २०

- बुद्धि, क्षणभरके लिए फेनके खण्डोंसे सुशोभित होनेके कारण सीपके टुकड़ोंमें संलग्न मोतियोंका संशय, और क्षणभरके लिए वेगके द्वारा खिंचे हुए नन्दनवन सम्बन्धी वृक्षशाखाओंके अग्रभागमें संलग्न होनेसे फूलोंकी बुद्धि उत्पन्न करने लगे। सूर्यके मण्डलमें क्षणभरके लिए जल खींचनेके कारण ऐसी सम्भावना करने लगे जैसे एक बड़ा भारी तपाया हुआ लोहेका गोला पानीमें डाला गया हो, और क्षणभरके लिए लाल कमलकी बुद्धिको विस्तृत करने लगे। और चन्द्रमाके मण्डलमें क्षणभरके लिए वृद्ध हंसकी बुद्धि, क्षणभरके लिए शंखकी शंका, क्षणभरके लिए कुमुदकी बुद्धि और क्षणभरके लिए बहुत भारी फेन समूहकी बुद्धि उत्पन्न करने लगे। क्रम-क्रमसे जब पृथ्वीतलपर पहुँचे तब ऐसे जान पड़ने लगे मानो जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमाके उदयसे विलीन समस्त चन्द्रकान्त मणियोंसे झरे हुए जलके प्रवाह ही हों अथवा जगद्गुरु—भगवान्के संगसे उत्पन्न सुमेरुपर्वतके हर्षाश्रुओंके पूर ही हों। इस प्रकार अतिशय स्वच्छताको लिये हुए वे जलप्रवाह क्रमसे जब समुद्रको प्राप्त हुए तब ऐसे जान पड़ते थे कि यह समुद्र भुवनैकपालक है—संसारका एक रक्षक है (पक्षमें जलका प्रमुख रक्षक है) तथा हमारे समान वंशजोंकी रक्षा करनेमें समर्थ है और इन्द्रसे डरे हुए पर्वतोंकी रक्षा करनेवाला है ऐसा मानकर पर्वतोंके राजा सुमेरुपर्वतके द्वारा समुद्रके लिए
- २५
- ३०
- ३५

§ २०) शुद्धाम्बुस्नपने निष्ठां गते गन्धाम्बुभिः शुभैः ।

ततोऽभिषेक्तुमीशानं शतयज्वा प्रचक्रमे ॥११॥

§ २१) चञ्चच्चन्दनकल्पकद्रुकुसुमैः कर्पूरचूर्णैस्तथा

संमिश्रा सुरहेमकुम्भविगलच्छोगन्धपाथोक्षरी ।

क्षीराम्भोधिपयःप्रवाहधवलं मेरुं हिमानीगिरिं

मत्वा तत्र समापतन्त्यतितरां गङ्गैव तुङ्गा व्यभात् ॥१२॥

§ २२) तस्यां खलु गन्धोदकनिम्नगायां जिनाभकदिव्यदेहसौगन्ध्यसंजातलज्जाभरणे-
वावाङ्मुखतया प्रवहन्त्यां, कृतावभृथमज्जनाः सुरजना धूपदीपगन्धाक्षतादिभिर्देवदेवं पूजयामासुः ।

§ २३) नटसुरवधूधनप्रविसरत्कटाक्षावलि

कपोलतलसंगतां त्रिभुवनाधिपस्यादरात् ।

सुराधिपतिसुन्दरी स्नपनतोयशङ्कावशात्

प्रमार्जयितुमुद्यता किल बभूव हास्यास्पदम् ॥१३॥

संशयश्लेषोपमाः ॥ § २०) शुद्धाम्बुति—शुद्धाम्बुना स्नपनं तस्मिन् शुद्धजलाभिषेके निष्ठां समाप्तिं गते सति ततस्तदनन्तरं शतयज्वा शक्रः शुभैः प्रशस्तैः गन्धाम्बुभिः सुगन्धितजलैः ईशानं भगवन्तम् अभिषेक्तुं स्नपयितुम् प्रचक्रमे तत्परोऽभूत् ॥११॥ § २१) चञ्चच्चन्दनश्च कल्पकद्रुकुसुमानि चेति द्वन्द्वस्तैः शोभमानमलयजामरमहाकहसुमनोभिः तथा कर्पूरचूर्णैश्च धनसारचूर्णैश्च संमिश्रा संमिलिता, सुरहेम-कुम्भेभ्यो देवजाम्बूनदकलशेभ्यो विगलन्ती क्षरन्ती या श्रीगन्धपाथोक्षरी सुगन्धितजलवारा, क्षीराम्भोधेः क्षीरसागरस्य पयःप्रवाहेण जलप्रवाहेण धवलो वलक्षस्तं तथाभूतं मेरुं सुरशैलं हिमानीगिरिं हिमालयं मत्वा तत्र समापतन्ती तुङ्गा समुन्नता गङ्गैव मन्दाकिनीव अतितरामत्यन्तं व्यभात् शुशुभे । संशयोपमा । शार्दूलविक्रीडितम् । § २२) तस्यामिति—जिनाभकस्य जिनशिशोर्दिव्यदेहे कमनोयकाये यत्सौगन्ध्यं सौरभ्यं तेन संजातः समुत्पन्नो यो लज्जाभरस्त्रपासमूहस्तेनैव अवाङ्मुखतया नीचैर्बदनतया प्रवहन्त्यां तस्यां खलु पूर्वोक्तायां गन्धोदकनिम्नगायां स्नपनसलिलस्रवन्त्यां कृतं विहितमवभृथमज्जनां पूजास्नानं यैस्तथाभूताः सुरजना देवजना धूपदीपगन्धाक्षतादिभिः देवदेवं जिनेन्द्रं पूजयामासुरर्चयामासुः । § २३) नटदिति—त्रिभुवनाधिपस्य त्रिलोकीनाथस्य कपोलतलसंगतां गण्डस्थलमध्यपतितां नटसुरवधूजनस्य नृत्यदेवपुरन्ध्रोसमूहस्य प्रविसरन्ती प्रसरणशीला या कटाक्षावली केकरपङ्क्तिस्ताम् स्नपनतोयशङ्कावशात् अभिषेकजलसंशयवशात् आदरात् प्रमार्जयितुं प्राञ्छितुम् उद्यता तत्परा सुराधिपतिसुन्दरी शची हास्यास्पदं हासस्थानं बभूव किल । भ्रान्तिमान् ।

भेंट किये हुए मानो स्वच्छ वस्त्रोंके समूह ही हों । § २०) शुद्धाम्बुति—शुद्धजलका अभिषेक समाप्त होनेपर तदनन्तर इन्द्रने शुभ एवं सुगन्धित जलके द्वारा भगवान्का अभिषेक करना प्रारम्भ किया ॥११॥ § २१) चञ्चच्चन्दनेति—शोभायमान चन्दन और कल्पवृक्षके फूलों तथा कपूरके कणोंसे मिली, देवोंके स्वर्णकलशोंसे झरती हुई सुगन्धित जलकी धारा, क्षीरसागरके जलसे सफेद मेरुको हिमालय समझकर उसपर पड़ती हुई ऊँची गंगा नदीके समान अत्यन्त शोभित हो रही थी ॥१२॥ § २२) तस्यामिति—जिनबालकके दिव्य शरीर सम्बन्धी सुगन्धिसे उत्पन्न लज्जाके भारसे ही मानो जो नीचा मुख कर बह रही थी ऐसी उस अभिषेक जलकी नदीमें पूजा सम्बन्धी स्नानसे निवृत्त हो देवोंने धूप, दीप, गन्ध तथा अक्षत आदिसे भगवान्की पूजा की । § २३) नटदिति—त्रिलोकीनाथके कपोलतलपर संगत, नृत्य करती हुई देवियोंके फैलनेवाले कटाक्षोंकी पंक्तिको स्नपनका जल समझ पोंछने-

§ २४) तदनु सा किल पुलोमजा भगवदङ्गसंगतजलकणगणं विमलदुकूलाञ्चलेन संमार्ज्यं, त्रिभुवनतिलकस्य तस्य ललाटतटे तिलकं परिकल्प्य, निसर्गरन्ध्रयोः श्रवणपुटयोः किमपि तत्त्वरहस्यमधिगन्तुमुपागतमिव शुक्रसुरगुरुयुगलं तस्यामानवचरितं तन्मुखस्य च महादर्शलीलां च प्रकटयितुमायातं सूर्यचन्द्रयुग्मं मणिकुण्डलद्वितयं संयोज्य, गलशङ्खगलितमुक्ताभिरिव मुखशशिना
५ राकासुधाकरं कलाचातुर्गुण्येन विजित्य वन्दोक्तताभिरिव तत्प्रियाभिर्मुक्ताधिकसंपदमयमनु-
भविष्यतीति प्रकटयन्तीभिर्मौक्तिकपरम्पराभिर्घटितां कीर्तिलक्ष्मीभिर्मुक्तिलक्ष्मीभिरार्हन्त्यलक्ष्मीभि-
रिवाहमहमिकया समर्पितवरणमालात्रितयशङ्काकरीं त्रिगुणवलितमुक्तामालां कण्ठदेशे समर्प्य,

पृथ्वील्लन्दः ॥१३॥ § २५) तदन्विति—तदनन्तरं सा किल पुलोमजा शची भगवतो जिनेन्द्रस्याङ्गसंगताः शरीरस्थिता ये जलकणाः पयःपूषतास्तेषां गणं समूहं विमलदुकूलाञ्चलेन निर्मलक्षीमवस्त्रेण संमार्ज्यं संप्रोक्ष्य,
१० त्रिभुवनतिलकस्य त्रिजगच्छेष्टस्य तस्य भगवतो ललाटतटे नितिलतटे तिलकं स्थासकं परिकल्प्य रचयित्वा, निसर्गेण रन्ध्रं छिद्रं ययोस्तयोः श्रवणपुटयोः कर्णाञ्चलयोः किमपि अनिर्वचनीयं तत्त्वरहस्यं तत्त्वगूढाभिप्रायम् अधिगन्तुं ज्ञातुम् उपागतं समीपागतं शुक्रसुरगुरुयुगलं भार्गवबृहस्पतियुगमिव, तस्य भगवतः अमानवचरितं लोकोत्तरचरितं पक्षेऽमावास्यानवचरितं तन्मुखस्य च तद्वदनस्य च महादर्शलीलां महादर्पणक्षोभां पक्षेऽमावा-
स्यालीलां च प्रकटयितुम् आयातं समागतं चन्द्रसूर्ययुग्ममिव शशिसूर्ययुगलमिव मणिकुण्डलद्वितयं रत्नकर्णा-
१५ भरणयुगं संयोज्य संधृत्य, गल एव शङ्खो गलशङ्खः कण्ठकम्बुस्तस्माद् गलिताः पतिता या मुक्तास्ताभिस्तद्वत्, मुखशशिना वदनविधुना कलानां चातुर्गुण्यं तेन राकासुधाकरं पीर्णमासीन्दुं मुखशशी चतुःषष्टिकलाधरः पीर्णमासीन्द्रश्च षोडशकलाधर इत्यर्थः, विजित्य वन्दोक्तताभिः काराघृताभिः तत्प्रियाभिस्तदीयवत्लभाभिः तारकाभिरिव तारकाततिभिरिव, अयं जिनेन्द्रनन्दनो मुक्ताभ्यो मुक्ताफलैर्म्योऽधिका प्रभूता या संपद तां पक्षे मुक्तानां सिद्धानामधिकसंपदम् अनुभविष्यतीति प्रकटयन्तीभिः मौक्तिकपरम्पराभिः मुक्ताफलसंततिभिः घटितां
२० रचितां कीर्तिलक्ष्मीभिः यशःश्रीभिः, मुक्तिलक्ष्मीभिर्निर्वृतिश्रीभिः, आर्हन्त्यलक्ष्मीभिरार्हन्त्यश्रीभिः इव अहमहमिकया अहंपूर्वमहंपूर्वमिति भावेन समर्पितं यद् वरणमालात्रितयं स्वयंवरस्त्रयं तस्य शङ्काकरीं संशयो-
त्पादिकां त्रिगुणैस्त्रियष्टिभिर्वलिता या मुक्तामाला मौक्तिकयष्टिस्तां कण्ठदेशे ग्रीवाप्रदेशे समर्प्य संधृत्य,

के लिए उद्यत हुई इन्द्राणी हँसीका स्थान हुई थी ॥१३॥ § २४) तदन्विति—तदनन्तर वह इन्द्राणी भगवान्के शरीरमें स्थित जलकर्णोंके समूहको निर्मल रेशमी वस्त्रके अंचलसे पोंछकर
२५ आभूषण पहिनानेके लिए उद्यत हुई । सर्वप्रथम उसने तीन लोकके तिलकस्वरूप भगवान्के ललाट तटपर तिलक लगाया तदनन्तर स्वभावसे ही छिद्रयुक्त कानोंके पुटोंमें मणिमय कुण्डलोंकी जोड़ी पहिनायी । वह कुण्डलोंकी जोड़ी ऐसी जान पड़ती थी मानो तत्त्वके किसी अनिर्वचनीय रहस्यको जाननेके लिए आये हुए शुक्र और बृहस्पतिकी ही जोड़ी हो । अथवा भगवान्के अमानवचरित—लोकोत्तरचरित्र (पक्षमें अमावास्याका चरित) और उनके
३० मुखकी महादर्श लीला—दर्पणकी शोभा (पक्षमें अमावास्याकी शोभा) को प्रकट करनेके लिए आये हुए चन्द्र और सूर्यकी जोड़ी ही हो । तत्पश्चात् उसने कण्ठमें तीन लड़की मोतियोंकी माला पहिनायी । वह मोतियोंकी माला जिनमोतियोंकी परम्परासे निर्मित थी वे ऐसे जान पड़ते थे मानो कण्ठरूपी शंखसे निकले हुए मोती ही हों, अथवा चौगुनी कलाओंके कारण मुखरूपी चन्द्रमाके द्वारा पूर्णिमाके चन्द्रमाको जीतकर कैद की हुई उसकी
३५ प्रिया तारिकाएँ ही हों, अथवा यह मुक्ताधिकसंपदा—मोतियोंसे अधिक सम्पत्ति (पक्षमें सिद्धपरमेष्ठीको अधिक सम्पत्ति) का अनुभव करेगा यह सूचित ही कर रहे हों । माला तीन लड़की थी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो कीर्तिरूपी लक्ष्मी, मुक्तिरूपी लक्ष्मी और

करसरोजानुरागसमायाततपनशङ्काकरमणिकङ्कणं करयोः कल्पयित्वा, नाभिजघनरुचिहेतुतया, सद्वृत्तरत्नशोभिततया, कल्याणगुणगुम्फिततया मणिकिङ्किणीकलापस्य मध्यस्थता युक्तेति मध्यप्रदेशे तमर्पयित्वा संसारसागरस्य तारकमिदं चरणयुगलमिति नखच्छलेन समाश्रितानां तारकाणां ततिमुल्लासयितुं सन्निहितेनेव, यद्वा कान्त्या कामितार्थप्रदानस्फूर्त्या च सुरागतामिदं बिभर्तीति मत्वा तत्प्रादक्षिण्यक्रममुपगतेनेवाथवा प्रौढशोभनखाश्रिततया सत्समूहसेव्यतया शुभ-

५

करसरोजानुरागेण करकमलप्रीत्या समायातो यस्तपनः सूर्यस्तस्य शङ्काकरः संशयोत्पादको यो मणिकङ्कणो रत्नबलयस्तं करयोर्हस्तयोः कल्पयित्वा धृत्वा, नाभिश्च जघनश्चेति नाभिजघनं तुन्दितम्बं तस्या रुचिहेतुतया कान्तिकारणतया पक्षे नाभिजो नाभिराजोत्पन्न ऋषभजिनेन्द्रस्तस्मिन् या रुचिः प्रगाढश्रद्धा तस्या हेतुतया, सद्वृत्तरत्नैः प्रशस्तवर्तुलमणिभिः शोभिततया पक्षे सद्वृत्तं सम्पक्चारित्रमेव रत्नं तेन शोभिततया, कल्याणगुणाः श्रेयस्करसम्पददर्शनादिगुणास्तैर्गुम्फिततया युक्ततया पक्षे कल्याणगुणाः सुवर्णतन्तवस्तैर्गुम्फिततया मणि- १० किङ्किणीकलापस्य रत्नरशनासमूहस्य मध्यस्थता कटिप्रदेशस्थितता पक्षे समभावस्थता च युक्ता समुचिता इति हेतोः मध्यदेशे कटिप्रदेशे तं मणिकिङ्किणीकलापं अर्पयित्वा दत्त्वा, संसारसागरस्य भवार्णवस्य तारकं पारकरं पक्षे नक्षत्रम् इदं चरणयुगलं पदयुगलमिति हेतोः नखच्छलेन नखरव्याजेन समाश्रितानां प्रासानां तारकाणां पारकराणां पक्षे नक्षत्राणां तति पङ्क्तिम् उल्लासयितुं हर्षयितुं सन्निहितेनेव सन्निकटस्थितेनेव, यद्वा पक्षान्तरे कान्त्या दोष्या कामितार्थस्य समभिलषितपदार्थस्य प्रदानं वितरणं तस्य स्फूर्तिः शीघ्रता तथा च १५ इदं पदयुगं सुरागतां सुष्ठु रागः सुरागस्तस्य भावस्तां सुरक्तवर्णतां पक्षे सुराणामगः सुरागः कल्पवृक्षस्तस्य भावस्तां बिभर्ति दधातीति मत्वा तत्प्रादक्षिण्यक्रमं पदयुगपरिक्रमणपद्धतिम् उपगतेनेव प्राप्तेनेव, अथवा पक्षान्तरे प्रौढा शोभा येषां ते प्रौढशोभास्ते च ते नखाश्चेति प्रौढशोभनखास्तेषामाश्रिततया, पक्षे प्रौढं सातिशयं शोभनं शोभा यस्य तथाभूतं यत् खं गगनं तस्याश्रिततया, सतां सज्जनानां समूहः सङ्घस्तेन सेव्यतया पक्षे सतां नक्षत्राणां समूहस्तेन सेव्यतया, शुभकरतया शुभं कल्याणं करोतीति शुभकरः श्रेयस्कर-

२०

आर्हन्त्यरूपी लक्ष्मीने 'मैं पहले बर लूँ मैं पहले बर लूँ' इस भावनासे अपनी-अपनी स्वयंवर मालाएँ ही उनके गलेमें डाल रखी हों। तत्पश्चात् इन्द्राणीने हाथोंमें मणिमय कंकण पहिनाया जो ऐसा जान पड़ता था मानो हाथरूपी कमलोंके अनुरागसे आया हुआ सूर्य ही हो। पश्चात् कमरमें मणिमय मेखला पहिनायी। मेखला पहनाते समय इन्द्राणीने मानो यही विचार किया था कि यह मेखला नाभि और नितम्बकी शोभा बढ़ानेवाली है (पक्षमें नाभिज- २५ भगवान् वृषभदेवमें श्रद्धाको बढ़ानेवाली है), उत्तम तथा गोल-गोल रत्नोंसे सुशोभित है (पक्ष में सदाचाररूपी रत्नसे सुशोभित है) और कल्याण-गुण—सुवर्ण सूत्रसे गुँथी हुई है (पक्षमें कल्याणकारी गुणोंसे सहित है) अतः इसकी मध्यस्थता—शरीरके मध्यभागमें स्थित होना (पक्षमें साम्यभावमें स्थिर रहना) ही ठीक है। तदनन्तर दोनों पैरोंको हीरासे निर्मित तोड़लोंसे अलंकृत किया। उनके वे तोड़ल ऐसे जान पड़ते थे मानो भगवान्के चरणयुगल संसारसागरके तारक—तारनेवाले (पक्षमें तारास्वरूप) हैं इसलिए नखोंके छलसे आये हुए तारकों—तारनेवालों (पक्षमें ताराओं) के समूहको हर्षित करनेके लिए समीपमें आया हुआ चन्द्रबिम्ब ही हो। अथवा यह चरणयुगल कान्तिके द्वारा सुरागता— ३० उत्तम लालिमाको और अभिलषित पदार्थोंके प्रदान सम्बन्धी शीघ्रतासे सुरागता—कल्प-वृक्षताको धारण करता है इसलिए इसकी प्रदक्षिणा देनेके लिए ही मानो चन्द्रबिम्ब आया ३५ हो। अथवा अत्यन्त शोभायमान नखोंसे आश्रित होनेके कारण (पक्षमें अत्यन्त शोभायमान आकाशके आश्रित होनेके कारण), सत्समूह—सज्जनोंके समूहसे सेवनीय होनेसे (पक्षमें

करतया तिमिरनिकरनिराकरणचतुरतया च पदयुगं मम बन्धुतां स्वीकृत्य मम विप्रियं पङ्कजातं निर्मूलयतीति स्नेहादुपगतेन शीतकरबिम्बेनेव घनवज्रनूपुरेणाङ्घ्रिद्वयमलंचकार ।

§ २५) एवं शच्या भूषितं देवदेवं

पायं पायं लोचनैस्ते सुरेन्द्राः ।

५

आनन्दाब्धौ मज्जनोन्मज्जनाढ्या

इत्थं स्तोतुं प्रारभन्ते स्म भक्त्या ॥१४॥

§ २६) भजामस्त्वां लोकाधिप तव पदाम्भोजयुगलं

श्रितो भूपो नृणां द्विपद इति कीर्तिं स भजते ।

नरो यस्त्वत्सेवाविमुखहृदयस्तं बुधवरा-

१०

श्चतुष्पादं प्राहुर्वत विमलकारुण्यजलधे ! ॥१५॥

स्तस्य भावस्तया पक्षे शुभाः श्रेष्ठाः कराः किरणा यस्य तस्य भावस्तया, तिमिरनिकरस्याज्ञानान्धकारसमूहस्य पक्षे तमःसमूहस्य निराकरणे दूरीकरणे चतुरतया च विदग्धतया च पदयुगं चरणयुगलं मम शीतकरबिम्बस्य बन्धुतां सनाभितां सादृश्यमित्यर्थः स्वीकृत्य मम विप्रियमनिष्टे पक्षे शत्रुं पङ्कजातं पङ्कजानां पापानां जातं समूहं पक्षे पङ्कजाज्जातं पङ्कजातं कमलसमूहं निर्मूलयति समुत्पाटयति पराभवति इति हेतोः स्नेहात्प्रेम्णः उपागतेनेव संप्राप्तैनेव शीतकरबिम्बेनेव चन्द्रमण्डलेनेव घनवज्रनूपुरेण घनहीरकपादकटकेन अङ्घ्रिद्वयं चरणयुगलम् अलंचकार शोभयामास । श्लेषरूपकोत्प्रेक्षाः ॥ § २५) एवमिति—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण शच्या पुलोमजया भूषितं समलंकृतं देवदेवं जिनेन्द्रं लोचनैर्नयनैः पायं पायं पीत्वा पीत्वा दृष्ट्वा दृष्ट्वैत्यर्थः आनन्दाब्धौ हर्षपारावारे मज्जनं निमज्जनं उन्मज्जनं समुत्तरणं ताम्ब्यामाढ्याः सहिताः ते पूर्वोक्ताः सुरेन्द्राः सौधमेन्द्रादयः इत्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण भक्त्या अनुरागातिशयेन स्तोतुं प्रारभन्ते स्म तत्परा अभूवन् । शालिनी छन्दः ॥१४॥

२० § २६) भजाम इति—हे लोकाधिप ! हे लोकेश ! हे विमलकारुण्यजलधे ! हे निर्मलकृपाकूपार ! वयं त्वां-भजामः सेवामहे । कथमिति चेत् । यो नृणां भूपः यो मनुष्याणां नाथः तव पदाम्भोजयुगलं चरणकमलयुगं श्रितः प्राप्तः स द्विपदो द्वे पदे यस्य तथाभूतः पदद्वययुक्तो मनुष्य इति यावत् इतीत्थं कीर्तिं समजां भजते प्राप्नोति । यो नरः त्वत्सेवाया भवदाराधनाया विमुखं पराङ्मुखं हृदयं यस्य तथाभूतः अस्तीति शेषः तं नरं बुधवरा विद्वच्छ्रेष्ठाः चतुष्पादं चत्वारः पादा यस्य तं पादचतुष्टययुक्तं पक्षे पशुम् प्राहुः कथयन्ति वत खेदे । यस्त्वां-भजते २५ स द्विपदयुक्तो भवति यस्तु त्वां न भजते स चतुष्पादयुक्तो भवतीति विचित्रम् पक्षे त्वद्भक्ता मनुष्यास्त्वद-

नक्षत्रोंके समूहसे सेवनीय होनेसे) शुभाकरता—कल्याणकारी होनेसे (पक्षमें शुभकिरणोंसे युक्त होनेसे) और अज्ञान—अन्धकार (पक्षमें अन्धकारमात्र) के निराकरण करनेमें चतुर होनेसे) यह चरणयुगल हमारी बन्धुता—हमारे भाईचारेकी स्वीकृतकर हमारे विरोधी पंकजात—कमलको (पक्षमें पापोंके समूह) को नष्ट करेगा इस स्नेहसे मानो चन्द्रबिम्ब ही आया हो । § २५) एवमिति—इस प्रकार इन्द्राणीके द्वारा अलंकृत देवाधिदेव जिनेन्द्र-देवको नेत्रोंके द्वारा देख-देखकर जो हर्षके सागरमें डुबकियाँ लगा रहे थे ऐसे उन इन्द्रोंने भक्तिपूर्वक इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥१४॥ § २६) भजाम इति—हे लोकेश ! हे निर्मल दयाके सागर ! हम आपकी सेवा करते हैं क्योंकि जो मनुष्यों का राजा—श्रेष्ठनर आपके चरणकमलयुगलकी सेवा करता है वह 'द्विपद' इस प्रकार कीर्तिको प्राप्त होता है ३५ और जो मनुष्य आपकी सेवासे विमुखहृदय रहता है विद्वान् लोग उसे चतुष्पाद कहते हैं यह खेदकी बात है । अर्थात् भक्तको द्विपद और अभक्तको चतुष्पाद कहना खेदका विषय है (परिहारपक्षमें भक्तको द्विपद—मनुष्य और अभक्तको चतुष्पाद—पशु कहते हैं) ॥१५॥

§ २७) तव देव ! पादपद्मं यो देही भजति विमलतरभवत्या ।

अत्र परत्र च चित्रं शब्दं देहीति स खलु विजहाति ॥१६॥

§ २८) बहुलङ्घनैरपि विभो ! दुर्वारं जिनप ! भवमयं रोगम् ।

त्वन्नामकीर्तनौषधसेवनतः सज्जनाः प्रशमयन्ति ॥१७॥

§ २९) त्वन्नामकामधेनुः सुरवा गोष्ठप्रकामरुचिहेतुः ।

सुपदा शोभनवर्णा जिननाथ ! समस्तकाङ्क्षितं सूते ॥१८॥

§ ३०) इति स्तुत्या सह जिनाभिषवं समाप्य दुन्दुभिनादकाहलीकलकलजयघोषणादि-

भक्ताश्च पशवः सन्तीति भावः । श्लेषः । शिखरिणीछन्दः ॥१५॥ § २७) तवेति—हे देव ! हे नाथ ! यो देही प्राणी विमलतरभवत्या अत्यन्तनिर्मलभवत्या तव भवतः पादपद्मं चरणकमलं भजति सेवते सः अत्र परत्र च इहलोके परलोके च देहीति शब्दं देहि दस्व इति याचनाशब्दम् इहलोके 'देही' शरीरो इति चशब्दं परलोके खलु निश्चयेन विजहाति त्यजति । त्वच्चरणकमलभक्तो जनोऽस्मिन् लोके दरिद्रो न भवति परलोके च शरीररहितो मुक्तो भवतीत्यर्थः ॥ श्लेषः । आर्या ॥१६॥ § २८) बह्विति—हे विभो ! हे सामर्थ्यशालिन् ! हे जिनप ! हे जिनेन्द्र ! सज्जनाः साधवः बहुलङ्घनैरपि प्रचुरानशनैरपि दुर्वारं दूरोक्तुमशक्यं भवमयं संसारमयं रोगमामयं त्वन्नामकीर्तनं त्वदभिधानकीर्तनमेव औषधं भैषज्यं तस्य सेवनतः प्रशमयन्ति प्रकर्षेण शान्तं कुर्वन्ति । भवन्नामस्मरणं संसाररुजापहरणमिति भावः । श्लेषः । आर्या ॥१७॥ § २९) त्वन्नामेति—हे जिननाथ ! हे जिनेन्द्र ! त्वन्नामेव त्वदभिधानमेव कामधेनुरिति त्वन्नामकामधेनुः समस्तकाङ्क्षितं सकल-मनोरथं सूते समुत्तादयति । अथोभयोः सादृश्यमाह—सुरवा सुष्ठु रवः शब्दो यस्याः सा कामधेनुपक्षे रवो हुम्बा-ध्वनिरित्यर्थः, गोष्ठप्रकामरुचिहेतुः गोः स्वर्गस्तत्र तिष्ठतीति गाष्ठः शक्रः तस्य प्रकामा सातिशया या रुचिः श्रद्धा तस्या हेतुः पक्षे गोष्ठो गवां बन्धनस्थानं तस्य प्रकामा प्रभूता या रुचिः शोभा तस्या हेतुः । सुपदा—सुष्ठु पदं सुबन्त-तिङन्तरूपं यस्याः पक्षे सुष्ठु पदानि चरणा यस्याः सा । शोभनवर्णा शोभनाक्षरा पक्षे शोभन-रूपा । श्लेषानुप्राणितो रूपकालंकारः । आर्या ॥१८॥ § ३०) इतीति—इति स्तुत्या सह पूर्वोक्तस्तोत्रेण सह जिनाभिषवं जिनस्तपनं समाप्य दुन्दुभिनादश्च भेरीशब्दश्च काहलीकलकलश्च काहलीकलकलशब्दश्च जय-

§ २७) तवेति—हे देव ! जो प्राणी अत्यन्त निर्मल भक्तिसे आपके चरणकमलकी सेवा करता है वह इस लोकमें 'देहि—देओ' इस प्रकारके याचनासूचक शब्दको और परलोकमें 'देही—शरीरी' इस प्रकारके संसारभ्रमणसूचक शब्दको निश्चयसे छोड़ देता है ॥१६॥ § २८) बह्विति—हे विभो ! हे जिनेन्द्र ! जो संसाररूपी रोग अनेक लङ्घनोंके द्वारा भी दूर नहीं किया जा सकता उसे सत्पुरुष आपके नामके कीर्तनरूप औषधके द्वारा बिलकुल शान्त कर देते हैं ॥१७॥ § २९) त्वन्नामेति—हे जिनेन्द्र ! जिस प्रकार आपका नाम सुरवा—अच्छे शब्दसे सहित है उसी प्रकार कामधेनु भी सुरवा—उत्तम रँभानेके शब्दसे सहित है, जिस प्रकार आपका नाम गोष्ठप्रकामरुचिहेतु—इन्द्रकी प्रगाढ श्रद्धाका कारण है उसी प्रकार कामधेनु भी गोष्ठप्रकामरुचिहेतु—ब्रजकी अत्यधिक शोभाका कारण है; जिस प्रकार आपका नाम सुपदा—अच्छे पदोंसे सहित है उसी प्रकार कामधेनु भी सुपदा—उत्तम पैरोंसे सहित है और जिस प्रकार आपका नाम शोभनवर्णा—अच्छे अक्षरोंसे सहित है उसी प्रकार कामधेनु भी शोभनवर्णा—अच्छे रूपसे सहित है । इस प्रकार आपकी नामरूपी कामधेनु सब प्रकारके मनोरथोंको उत्पन्न करती है—पूर्ण करती है ॥१८॥ § ३०) इतीति—इस प्रकारकी स्तुतिके साथ जिनाभिषेकको समाप्त कर दुन्दुभियोंका शब्द काहलीका कलकल

भिर्मुखरितदिङ्मुखास्ते पुरंदरप्रमुखा बहिर्मुखाः साकेतपुरागमनसंमुखा गगनतलमुत्पत्य क्वचि-
न्मणिभूषणगणकान्तिबालातपेन हर्षितचक्रवाकाः, क्वचिन्मुक्तामरीचिवीचितोषितचकोराः क्रमेण
सुगन्धिगन्धवहस्तनंधयव्यालोलविमलपताकापटैः सुरनिकरमाह्वयन्तीमिव विलसन्तीं साकेतपुरी-
मभितः सप्ताङ्गबलानि निवेश्य, प्रविश्य च तत्र निराकृतसुरालयं नाभिराजालयं सुरविरचित-
५ विविधमणिगणरुचिनिचयरुचिरभ्रमरततिविततसुरतरुकुसुमसुरभितश्रीगृहाङ्गणशोभितसिंहविष्टरे तं
जिनाभकं निवेशयामासुः ।

§ ३१) सुतमुखनिशाधीशालोकप्रवृद्धमुदम्बुधि-

प्रवरजठरे मग्नाविन्द्रो जगत्पितराविमौ ।

स्मितयुतमुखः सर्वं तं निवेद्य तदादरात्

प्रमदजलधेः पारं ती दम्पती द्रुतमानयत् ॥२०॥

१०

१५

२०

२५

३०

३५

घोषणा जयघ्वनिश्च तदादिभिः मुखरितं वाचालितं दिङ्मुखं यैस्तथाभूताः ते पूर्वोक्ताः पुरंदरप्रमुखा इन्द्र-
प्रधाना बहिर्मुखा देवाः साकेतपुरागमनसंमुखा अयोध्यागमनतत्पराः सन्तः गगनतलं नभस्तलम् उत्पत्य समुद्गत्य
क्वचित् मणिभूषणगणस्य रत्नालंकारनिकरस्य कान्तिरेव बालातपः प्रातस्तनधर्मस्तेन हृषिताः चक्रवाका
रथाङ्गा यैस्तथाभूताः, क्वचित् मुक्तामरीचीनां मोक्तिकमयूखानां वीचिभिः संततिभिः संतोषिताः चकोरा
जीवंजीवा यैस्तथाभूताः सन्तः सुगन्धिश्चासी गन्धवहस्तनंधयश्चेति सुगन्धिगन्धवहस्तनंधयः सुगन्धितमन्द-
समीरस्तेन व्यालोलालशचपला ये विमलपताकापाटा निर्मलवैजयन्तीवस्त्राणि तैः सुरनिकरं देवसमूहम् आह्वयन्तो-
मिव आकारयन्तीमिव विलसन्तीं शोभमानां साकेतपुरीम् अयोध्यापुरीम् अभितः परितः सप्ताङ्गबलानि
सप्तविधसैन्यानि निवेश्य स्थापयित्वा तत्र साकेतपुर्यां निराकृतसुरालयं तिरस्कृतस्वर्गं नाभिराजालयं नाभिराज-
भवनं प्रविश्य च सुरविरचितानां देवनिर्मितानां विविधमणिगणानां नानारत्नराशीनां रुचिनिचयेन किरण-
कलापेन रुचिरं शोभितं भ्रमरततिविततानि भृङ्गसमूहव्यासानि यानि सुरतरुकुसुमानि कल्पवृक्षपुष्पाणि तैः
शोभितं तथाभूतं यत् श्रीगृहाङ्गणं श्रीगृहचत्वरं तस्मिन् विशोभितसिंहविष्टरे विशोभितसिंहासने तं जिनाभकं
जिनशिर्षं निवेशयामासुः निविष्टं चक्रुः ॥ § ३१) सुतेति—स्मितयुतं मन्दहसितसहितं मुखं यस्य तथाभूत
इन्द्रः सुतमुखं पुत्रवक्त्रमेव निशाधीशश्चन्द्रस्तस्यालोकेन दर्शनेन प्रकाशेन वा प्रवृद्धो वृद्धिगतो यो मुदम्बुधिः
हर्षसागरस्तस्य प्रवरजठरे श्रेष्ठमध्ये मरुतो वृद्धितो इमो जगत्पितरो जगन्मातापितरो मरुदेवीनाभिराजो
आदरात् समादरपूर्वकं तत् पूर्वोक्तं सर्वं वृत्तं निखिलं वृत्तान्तं निवेद्य कथयित्वा ती दम्पती जायापती द्रुतं
क्षिप्रं प्रमदजलधेः प्रमोदपारावारस्य पारमन्तम् आनयत् प्रापयामास । रूपकालंकारः । हरिणीच्छन्दः ॥१९॥

और जयघोषणा आदिके द्वारा दिग्दिगन्तको मुखरित करनेवाले वे इन्द्र आदि देव
अयोध्यानगरीके सम्मुख हो आकाशतलको ओर उड़े । वे कहीं तो मणिमय आभूषणोंकी
कान्तिरूप सुनहली धूपसे चक्रवर्णको हर्षित कर रहे थे और कहीं मोतियोंकी किरणसन्ततिसे
चकोरोंको सन्तुष्ट कर रहे थे । इस तरह वे क्रमसे मन्द सुगन्ध पवनके द्वारा हिलती हुई
पताकाओंके वस्त्रों द्वारा देवसमूहको बुलाती हुईके समान सुशोभित अयोध्यानगरी जा
पहुँचे । उसके चारों ओर सात प्रकारकी सेनाओंको ठहराकर उन्होंने स्वर्गको तिरस्कृत
करनेवाले नाभिराजके भवनमें प्रवेश किया तथा देवोंके द्वारा निर्मित नाना प्रकारके मणि-
गणकी कान्तिके समूहसे सुन्दर और भ्रमर पङ्क्तियोंसे व्याप्त कल्पवृक्षके फूलोंसे सुगन्धित
श्रीगृहके आँगनमें सुशोभित सिंहासनपर जिनबालकको विराजमान किया । § ३१) सुतेति—
मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त मुखवाले इन्द्रने, पुत्रके मुखरूपी चन्द्रमाके देखनेसे वृद्धिको
प्राप्त हुए हर्षरूपी सागरके श्रेष्ठ मध्यभागमें निमग्न इन जगत्के माता-पिताको आदरपूर्वक

§ ३२) तदनु महार्धमणिभूषणमाल्यवसनादिभिर्महतां पतिर्मरुदेवीनाभिराजौ पूजयित्वा युवां खलु जगद्गुरोरपि गुरुतया महापूज्यौ पुण्यधनकोशायमानौ जिनतपनसदुदयपुरंदरकाष्ठापूर्वाचलावित्यादिप्रकारेण तुष्टाव ।

§ ३३) नाभिक्षमारमणस्तदा समतनोत्तं जातकर्मोत्सवं

शक्रस्यानुमतेः प्रमोदवशगैः पौरैः समं सादरैः ।

यस्मिन् वाद्यरवैरपूर्यत जगत्स्वेष्टैस्तथाशार्थिनां

मोदैः पौरजनस्य चित्तसरणिर्नेत्रं प्रमोदाश्रुभिः ॥२०॥

§ ३४) तत्तादृक्षमहोत्सवे पुरजनान्मोदाम्बुराशेः परं

पारं प्राप्तवतो निरीक्ष्य बहुधा सोऽयं सुराणां विभुः ।

§ ३२) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं महतां पतिरिन्द्रः महार्धमणिभूषणानि च महामूल्यरत्नालंकरणानि च माल्यानि च स्रजश्च वसनानि च वस्त्राणि च तदादिभिः मरुदेवीनाभिराजौ पूजयित्वा युवां खलु जगद्गुरोरपि तीर्थकरस्यापि गुरुतया पितृतया महापूज्यौ पुण्यमेव धनं वित्तं तस्य कोशायमानौ निधिवदाचरन्तौ जिनतपनस्य जिनेन्द्रसूर्यस्य सदुदयाय प्रशस्तोदयाय पुरंदरकाष्ठा च पूर्वदिशा च पूर्वाचलश्चोदयाचलश्च, इत्यादिप्रकारेण तुष्टाव स्तुतवान् । § ३३) नामीति—तदा तस्मिन् काले नाभिक्षमारमणौ नाभिराजः शक्रस्य सोधर्मोत्सवस्य अनुमतेः समतेः प्रमोदवशगैर्हर्षवशीभूतैः सादरैरादरसहितैः पौरैर्नगरवासिभिः समं सार्धं तं जातकर्मोत्सवं जन्मक्रियोद्धवं समतनोत्तं विस्तारयामास यस्मिन् उत्सवे वाद्यरवैर्वादित्रशब्दैः जगद्भुवनम् अपूर्यत, स्वेष्टैः स्वाभिलषितैः अर्थिनां याचकानाम् आशा मनोरथः अपूर्यत, मोदेर्हर्षैः पौरजनस्य नागरिकजनस्य चित्तसरणिर्मनोमार्गः अपूर्यत, प्रमोदाश्रुभिर्हर्षवाष्पैः तस्य नेत्रं नयनं च अपूर्यत । दोषकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितम् ॥२०॥ § ३४) तदिति—स चासौ तादृक्षमहोत्सवश्चेति तत्तादृक्षमहोत्सवस्तस्मिन् तत्तादृक्षप्रभूतोद्धवे पुरजनान् नगरनरान् मोदाम्बुराशेर्हर्षसागरस्य परं द्वितीयं पारं तटं प्राप्तवतो गतवतो बहुधा नानाप्रकारेण निरीक्ष्य दृष्ट्वा सोऽयमसौ प्रसिद्धः सुराणां विभुः इन्द्रः चिरात् चिरकालपर्यन्तं उन्मत्तकं वृद्धिगतं निस्तुलं निरुपमानं निजं स्वकीयं आन्तरं आन्तरङ्गं आनन्दं हर्षं प्रकटयन् आनन्दोद्यतनाटके तन्नामनृत्यविशेषे कुतुकतः

अभिषेक सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त कह कर दोनों दम्पतियोंको शीघ्र ही हर्षरूपी सागरके पारको प्राप्त कराया था ॥१९॥ § ३२) तदन्विति—तदनन्तर इन्द्रने महामूल्य मणियोंके आभूषण, माला तथा वस्त्र आदिसे मरुदेवी और नाभिराजकी पूजा कर उनकी इस प्रकार स्तुति की—निश्चयसे आप दोनों जगद्गुरुके भी गुरु होनेसे महापूज्य हैं, पुण्यरूपी धनके भाण्डारके समान हैं तथा जिनेन्द्ररूपी सूर्यके प्रशस्त उदयके लिए पूर्व दिशा और उदयाचलके समान हैं । § ३३) नामीति—उस समय नाभिराजाने इन्द्रकी अनुमतिसे आनन्दके वशीभूत तथा आदरसे सहित नागरिकजनोंके साथ जातकर्मका वह उत्सव किया जिसमें बाजोंके शब्दोंसे जगत् पूर्ण हो गया था, अपने अभिलषित पदार्थोंसे याचकोंकी तृष्णाएँ पूर्ण हो गयी थीं, हर्षसे नगरवासियोंके हृदय पूर्ण हो गये थे और हर्षके आँसुओंसे उनके नेत्र भर गये थे ॥२०॥ § ३४) तदिति—इस प्रकारके उस महोत्सवमें नगरवासियोंको हर्षरूपी समुद्रके परले पारको प्राप्त हुए देख इन्द्रने कौतुकवश अपना चित्त आनन्दोद्यत नामक नाटकमें लगाया । उस समय इन्द्र, चिरकालसे वृद्धिकी प्राप्त तथा अनुपम अपने हार्दिक आनन्दको

आनन्दोद्यतनाटके कुतुकतश्चित्तं दधेऽसौ चिरा-

दानन्दं निजमान्तरं प्रकटयन्नुन्मस्तकं निस्तुलम् ॥२१॥

§ ३५) वक्ता नाट्यागमानां कुलिशधवरो नाटके सन्तटोऽभूद्-

यस्मिन्नाभिक्षितीशप्रमुखनरसुराः प्रेक्षकाः श्रीजिनेशः ।

आराध्यो रङ्गभूमिस्त्रिभुवनवलयं तत्फलं तु त्रिवर्ग-

प्राप्तिस्तन्नाटकस्य त्रिदशकृतनुतेर्वर्णने को नु शक्तः ॥२२॥

§ ३६) अथापि कविजनसमुचिताचारानुसारेण किञ्चिद्व्यावर्धते ।

§ ३७) स खलु मधवा घनाघसङ्घविघाताय समाहितः सकलबलारिप्रमुखसुराधिपमुकुट-
तटघटितजम्भारिमणिजृम्भमाणमेचकरुचिनिचयबलाहकविलसितचलाचलशम्पाकुलशङ्कामतिसंपा -

१० दकयामुक्तमुक्ताफलनिरगलं निगलत्प्रभापटलपुनरुक्तनखचन्द्रचन्द्रिकानन्दितपुरीजनसुरीजननयनी-

कौतूहलात् चित्तं मनो दधे धृतवान् । आनन्दोद्यतनाटकं कर्तुमियेषेति भावः ॥२१॥ § ३५) वक्तेति—
यस्मिन् नाटके नाट्यागमानां नाट्यशास्त्राणां वक्ता समुपदेश कुलिशधरोऽप्येवेषु वरः श्रेष्ठः सौधर्मेन्द्रः सन्नटः
प्रशस्तनटोऽभूत्, नाभिक्षितीशो नाभिराजः प्रमुखः प्रधानो येषु तथाभूताश्च ते नरसुराश्चेति नाभिक्षितीश-
प्रमुखनरसुराः प्रेक्षका दर्शका अभूवन्, श्रीजिनेशो जिनेन्द्रः आराध्य आराधनाविषयोऽभूत्, त्रिभुवनवलयं
१५ लोकत्रयमण्डलं रङ्गभूमिरभिनयस्थानम् अभूत् त्रिवर्गप्राप्तिस्तु धर्मार्थकामप्राप्तिस्तु तत्फलं नाटकफलं अभूत्,
त्रिदशदैवैः कृता नृतिः स्तुतिर्यस्य तस्य नाटकस्य वर्णने कः शक्तः कः समर्थः । नु वितर्कः । सधरा-
छन्दः ॥२२॥ § ३६) अथापीति—तथापि कविजनानां यः समुचिताचारस्तदनुसारेण किञ्चित् मनाम्
व्यावर्धते कथ्यते । § ३७) स खल्विति—स खलु मधवा शक्रः घनाघसङ्घविघाताय प्रचुरपापसमूहविनाशाय
समाहितः समुद्युक्तः सन्, सकला अखिला बलारिप्रमुखा इन्द्रप्रधाना ये सुराधिपा देवेन्द्रास्तेषां प्रकटानि यानि

२० मुकुटतटानि मौलितोराणि तत्र घटिताः खचिता ये जम्भारिमणय इन्द्रनीलमणयस्तेषां जृम्भमाणा वर्धमाना
या मेचकरुचयः कृष्णकिरणास्तासां निचयः समूह एव बलाहको मेघस्तस्मिन् विलसितं स्फुरितं यत्
चलाचलमतिशयचपलं शम्पाकुलं विद्युत्निकुरम्बं तस्य शङ्कामतेः संशीतिबुद्धेः संपादकानि विधायकानि
यानि व्यामुक्तमुक्ताफलानि धृतभौक्तिकानि तेभ्यो निरगलं निष्प्रतिबन्धं यथा स्यात्तथा निगलन् निःसरन्
यः प्रभापटलः कान्तिसमूहस्तेन पुनरुक्ता द्विरुक्ता या नखचन्द्रचन्द्रिका नखरकुमुदबान्धवकौमुदी
२५ तथा नन्दितानि प्रहर्षितानि पुरीजनसुरीजनानां नगरीनरदेवाङ्गनानां नयनीलोत्पलानि नेत्रनीलकमलानि-

प्रकट कर रहा था ॥२१॥ § ३५) वक्तेति—जिस नाटकमें नाट्यशास्त्रोंका उपदेश देनेवाला
सौधर्मेन्द्र उत्तम नट था, नाभिराज आदि मनुष्य तथा देव दर्शक थे, श्रीजिनेन्द्र आराध्यदेव
थे, तीन लोकका मण्डल रंगभूमि थी, और त्रिवर्गकी प्राप्ति जिसका फल था देवोंके द्वारा
स्तुत उस नाटका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥२२॥ § ३६) अथापीति—फिर
३० भी कविजनोंके योग्य आचारके अनुसार कुछ वर्णन किया जाता है । § ३७) स खल्विति—
वह इन्द्र अत्यधिक पापसमूहके नष्ट करनेके लिए उद्यत था और उन जिनेन्द्रदेवके चरित्रको
लक्ष्य कर प्रवृत्त हुए रूपकका अभिनय करनेके लिए तत्पर हुआ था जो कि सौधर्मेन्द्र आदि
समस्त इन्द्रोंके मुकुटतटोंमें लगे हुए इन्द्रनीलमणियोंकी श्यामल किरणोंके समूहरूप
मेघमें अत्यन्त कौंदनेवाले विद्युत्समूहकी शंकापूर्ण बुद्धिको सम्पन्न करनेवाले धारण किये
हुए मोतियोंसे निरन्तर निकलती हुई प्रभाके पुञ्जसे पुनरुक्त नखरूप चन्द्रमाकी चाँदनीके
३५ द्वारा नगरवासीजन तथा देवियोंके नेत्ररूपी नीलकमलको विकसित करनेवाले थे । वह

लोत्पलस्य भगवतो जिनराजस्य चरितमधिकृत्य प्रवृत्तं, प्रदीपमिव प्रकटितदशावतारं, पाण्डुकवन-
मिव जन्माभिषेकसंगतम्, एकनेत्राञ्चितमपि सहस्रनेत्राञ्चितं किमपि रूपकमभिनेतुं प्रवृत्तः
कृतमङ्गलालंकारो मूर्तिमानिव नाट्यागमः, कामिनोमिव सदा मरालीसंनुतपदन्यासं सुवर्णालंकार-
शोभितां च, मुक्तावलिमिव सुगुणां सुनामकां सद्वृत्तरत्नमण्डितां च, अनुपमामपि उपमाञ्चितां

येन तथाभूतस्य भगवतः परमेश्वर्यशालिनः जिनराजस्य जितेन्द्रस्य चरितमुपाख्यानम् अधिकृत्याभिलक्ष्य ५
प्रवृत्तं प्राग्भवं, प्रदीपमिव प्रकटितदशावतारा यस्मिंस्तत् पक्षे प्रकटितो दशानां
वर्तिकानामवतारो यस्मिंस्तत्, पाण्डुकवनमिव जन्माभिषेकेण संगतं पक्षे जन्माभिषेके संगतं प्राप्तं,
एकनेत्रा एकनाथकेनाञ्चितमपि शोभितमपि सहस्रनेत्रा बहुनायकैरञ्चितं शोभितमिति विरोधः परिहारपक्षे
सहस्रं नेत्राणि यस्य स सहस्रनेत्र आखण्डास्तेनाञ्चितं शोभितं, किमपि वचनाशोचरं रूपकं नाटकम्
अभिनेतुं कर्तुं प्रवृत्तः सपुत्रतः कृता घृता मङ्गलालंकारा येन तथाभूतः मूर्तिमान् शरीरो नाट्यागम इव १०
नाट्यशास्त्रमिव, कामिनोमिव भाभिनोमिव सदा सर्वदा मरालीभिर्हंसीभिः संनुतः संस्तुतो मृदुपदन्यासः
कोमलवरणनिक्षेपो यस्यास्तां नान्दीपक्षे सदा सर्वदा अमरालीभिर्देवपण्डितभिः संनुतानां संस्तुतानां मृदुपदानां
कोमलाक्षरसंघातानां न्यासां निक्षेपो यस्यां तथाभूतां, सुवर्णस्य काञ्चनस्य येऽलंकाराः कटककेयूराद्याभरणानि
तैः शोभितां समलंकृतां नान्दीपक्षे सुवर्णाः शोभनाक्षराणि अलंकारा उपमादयश्च तैः शोभितां, मुक्तावलिमिव
मौक्तिकहारयष्टिमिव सुगुणां प्रशस्तसूत्रां नान्दीपक्षे प्रशस्तमाधुर्यादिगुणां, सुनायकां सुष्ठुनायको मध्यमणि १५
यस्यास्तां नान्दीपक्षे सुष्ठुनायको नेता यस्यां तां 'नायको नेतरि श्रेष्ठे हारमध्यमणावपि' इति विश्वलोचनः ।
सद्वृत्तरत्नमण्डितां च सद्वृत्तानि प्रशस्तवर्तुलानि यानि रत्नानि तैर्मण्डितां शोभितां नान्दीपक्षे सद्वृत्तानि
समोचनछन्दास्पैव रत्नानि तैर्मण्डितां शोभितां च, अनुपमामपि-उपमारहितामपि उपमाञ्चितां उपमा-

रूपक प्रदीपके समान था, क्योंकि जिस प्रकार प्रदीप प्रकटितदशावतार—प्रकट किये २०
हुए वक्तियोंके अवतारसे सहित होता है उसी प्रकार वह रूपक भी प्रकटितदशावतार—
प्रकट किये हुए दश अवतारोंसे युक्त था । अथवा पाण्डुकवनके समान था क्योंकि जिस
प्रकार पाण्डुकवन जन्माभिषेकसे संगत होता है उसी प्रकार वह रूपक भी जन्माभिषेकसे
संगत था अर्थात् जन्माभिषेकके समय किया गया था । इसके सिवाय वह रूपक एक
नायकसे सहित होकर भी हजार नायकोंसे सहित था (पक्षमें इन्द्रसे सहित था) । उस
समय मंगलमय अलंकारोंको धारण करनेवाला वह इन्द्र ऐसा जान पड़ता था मानो २५
शरीरधारी नाट्यशास्त्र ही हो । रूपकके प्रारम्भमें इन्द्रने उस नान्दीको किया जो कि स्त्रीके
समान थी क्योंकि जिस प्रकार स्त्रीका कोमलपद निक्षेप सदा मराली—हंसीसे संस्तुत
होता है उसी प्रकार उस नान्दीके भी कोमल शब्दसमूहका निक्षेप सदा अमराली—देव-
पण्डितसे संस्तुत था, जिस प्रकार स्त्री सुवर्णालंकारशोभिता—सोनेके आभूषणोंसे शोभित
होती है उसी प्रकार वह नान्दी भी सुवर्णालंकारशोभिता—अच्छे अच्छे वर्ण और अलं- ३०
कारोंसे सुशोभित थी । अथवा वह नान्दी मोतियोंकी मालाके समान थी; क्योंकि जिस
प्रकार मोतियोंकी माला सुगुणा—अच्छे सूत्रसे सहित होती है उसी प्रकार वह नान्दी भी
सुगुणा—माधुर्य आदि उत्तम गुणोंसे सहित थी, जिस प्रकार मोतियोंकी माला सुनायका—
अच्छे मध्यमणिसे सहित होती है उसी प्रकार वह नान्दी भी सुनायका—अच्छे नेतासे
सहित थी, और जिस प्रकार मोतियोंकी माला सद्वृत्तरत्नमण्डिता—अच्छे गोलाकार
रत्नोंसे सुशोभित होती है उसी प्रकार वह नान्दी भी सद्वृत्तरत्नमण्डिता—उत्तम श्रेष्ठ ३५
छन्दोंसे सुशोभित थी । वह नान्दी अनुपमा—उपमासे रहित होकर भी उपमाञ्चिता—

बुधजनकलितश्लाघामपि विबुधजनकलितश्लाघां नान्दीं प्रयुज्य रङ्गमवतीर्णः पीतावशेषं नाटयस्व स्वयं विभजन्निव पुष्पाञ्जलिं चिक्षेप ।

§ ३८) पुष्पाञ्जलिः पतन् रेजे मत्तालिभिरनुद्रुतः ।

नेत्रोघ इव वृत्रघ्नः कल्माषितनभोऽङ्गणः ॥२३॥

५ § ३९) ततः किल नानाविधवाद्यमुखरीकृतदिगन्तरे तद्रङ्गस्थलान्तरे सरसमुद्रताभिनय-
प्रायमारभटीयवृत्तियुक्तं ताण्डवमारभमाणः, परितः प्रसृतया कटाक्षधारया यवनिकाविभ्रममुद्गा-
वयन्, व्यालोलमुकुटव्यालग्नरत्नप्रभाभिदिशि दिशि सुरचापशङ्खामङ्कुरयन्, चञ्चलमुक्तामणिभि-
रभिनभःस्थलं सौदामिनोसहस्रभ्रमं संपादयन्, निजभुजशाखासहस्रे कलितनर्तनानप्सरोजनान्क्षणं

शोभितामिति विरोधः पक्षे उपमालंकारेणाञ्चितां शोभितां, बुधजनैर्विद्वत्पुरुषैः कलिता कृता इत्येता प्रशंसा
१० यस्यास्तथाभूतामपि बुधजनकृतश्लाघा न भवतीति विबुधजनकलितश्लाघामिति विरोधः पक्षे विबुधजनैर्देवजनैः
कलिता श्लाघा यस्यास्तां तादृशीं नान्दीं नाटकस्य प्रारम्भे क्रियमाणां स्तुतिं 'आशोर्बचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मा-
त्प्रयुज्यते । देवद्विजन्पादोनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥' इति नान्दीलक्षणम् । प्रयुज्य कृत्वा रङ्गं नाट्यभूमिम्
अवतीर्णः पीतावशेषं पानावशिष्टं नाटयस्व नाट्यमेव रसस्तं स्वयं स्वतो विभजन्निव विभक्तं कुर्वन्निव
पुष्पाञ्जलिं कुसुमाञ्जलिं चिक्षेप क्षिप्तवान् । रूपकश्लेषोपमाविरोधाभासाः ॥ § ३८) पुष्पाञ्जलिरिति—
१५ मत्तालिभिः मत्तभ्रमरैः अनुद्रुतोऽनुगतः पतन् पुष्पाञ्जलिः कुसुमाञ्जलिः कल्माषितं चित्रितं नभोऽङ्गणं गगनचत्वरं
येन तथाभूतः वृत्रघ्नः पुरंदरस्य नेत्रोघ इव नयनसमूह इव रेजे शुशुभे । उपमा ॥२३॥ § ३९) तत इति—
ततस्तदनन्तरं किल स इन्द्रः, नानाविधवाद्यैर्नैकविधवादित्रैर्मुखरीकृतानि वाचालितानि दिगन्तराणि यस्मि-
स्तस्मिन् तद्रङ्गस्थलान्तरे तद्रङ्गभूमिमध्ये सरसं शृङ्गारादिरसोपेतं उद्भूताभिनयप्रायम् उत्कटाभिनयप्रचुरम्
२० आरभटीयवृत्त्या वृत्तिविशेषेण युक्तं सहितं 'मायेन्द्रजालसंग्रामक्रीडोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः संयुक्ता वधवग्धा-
द्यैरुद्गतारभटी मता' ॥ इत्यारभटीवृत्तिलक्षणम् । ताण्डवं नटनं आरभमाणः प्रारब्धं कुर्वन्, परितः समन्तात्
प्रसृतया कटाक्षधारया केकरश्रेण्या यवनिकाविभ्रमं नेपथ्यसंदेहम् उद्गावयन् प्रकटयन्, व्यालोलानि चञ्चलानि
यानि मुकुटानि तेषु व्यालग्नानि खचितानि यानि रत्नानि तेषां प्रभाः कान्तप्रस्ताभिः दिशि दिशि सुरचापशङ्खां

उपमासे सहित थी (परिहारपक्षमें उपमालंकारसे सहित थी) । बुधजनकलितश्लाघा—
विद्वानोंके द्वारा की हुई प्रशंसासे युक्त होकर भी विबुधजन कलितश्लाघा—विद्वज्जनोंके
२५ द्वारा की हुई प्रशंसासे युक्त नहीं थी (परिहारपक्षमें देवोंके द्वारा की हुई प्रशंसासे युक्त
थी) । नान्दी करनेके बाद वह इन्द्र रंगभूमिमें उतरा और पान करनेसे शेष बचे हुए नाट्य-
रसका स्वयं विभाग करते हुए की तरह पुष्पाञ्जलिक्षेपण करने लगा । § ३८) पुष्पाञ्जलि-
रिति—मत्त भौरे जिसके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे ऐसी वह पुष्पाञ्जलि, गगनांगणकी चित्रित
करनेवाले इन्द्रके नेत्रसमूहके समान सुशोभित हो रही थी ॥२३॥ § ३९) तत इति—तदनन्तर
३० नाना प्रकारके बाजोंसे जहाँ दिशाओंके अन्तराल शब्दायमान हो रहे थे ऐसी उस रंग-
भूमिके मध्यमें शृंगारादि रसोंसे सहित, प्रायः उद्भूत अभिनयसे युक्त और आरभटी वृत्तिसे
सहित ताण्डव नृत्यको प्रारम्भ करता हुआ इन्द्र चारों ओर फैली हुई कटाक्षधारासे कभी
परदाका भ्रम उत्पन्न करता था, कभी चञ्चल मुकुटोंमें लगे हुए रत्नोंकी प्रभासे प्रत्येक दिशामें
३५ बिजलियोंका भ्रम उत्पन्न करता था । वह इन्द्र अपनी मुजारूपी हजारों शाखाओंपर नृत्य

गूढं क्षणं प्रकाशं च संचारयन्, क्षणमेकः, क्षणमनेकः, क्षणं व्यापी, क्षणमणुः, क्षणमदूरे, 'क्षणं दूरे, क्षणं दिवि, क्षणं भुवि, विलसमानः परितो नाट्यरसमुत्तरङ्गयामास ।

§ ४०) तदा तादृङ्नाट्ये विलसति बलारातिकलिते

भुजोल्लासक्षुब्धजलदविगलद्वारिपृषताम् ।

सुरश्रेणीवृष्टप्रचुरकुसुमानां च पततां

विशेषो विज्ञातो मधुकरवितत्या विततया ॥२४॥

§ ४१) अयं किल वज्रधरः पुरा शिलामयान्पूरूपान्धरान्विभेद, अहं किल मृण्मयी स्त्रीरूपा धरेति भयेनेव, पुरंदरपरिवितेन क्लीबेनापि बहुधाचलेन नाट्येन पूरूपा एव अचलाः कम्पिता अहं तु स्त्रीरूपाचलेति मत्वा किल काश्यपो तदा कम्पमाससाद ।

शक्रशरासनसंदेहम् अङ्कुरयन् प्रादुर्भाषयन् । शेषं सुगमम् । § ४०) तदेति—तदा तस्मिन् काले बलारातिकलिते १०
पुरंदरविहिते तादृङ्नाट्ये तादृक्षनाट्ये विलसति शोभमाने सति भुजानां बाहूनामुल्लासेन समुष्यनेन क्षुब्धतः
संचलन्तो ये जलदा मेघास्तेभ्यो विगलन्ति पतन्ति यानि वारिपृषन्ति जलबिन्दवस्तेषां पततां स्थलतां सुरश्रेण्या
देवपङ्क्त्या वृष्टानि यानि प्रचुरकुसुमानि प्रभूतपुष्पाणि तेषां च विशेषो वैशिष्ट्यं विततया विस्तृतया मधुकर-
वितत्या भ्रमरपङ्क्त्या विज्ञातः । येषामुपरि मधुकरविततिरधावत् तानि कुसुमानि तदितराणि च वारिपृषन्ति
सन्तीति ज्ञातानित्यर्थः । शिखरिणीछन्दः ॥२४॥ § ४१) अयमिति—अयं किल वज्रधरः पविधारक इन्द्रः १५
पुरा प्राक् शिलामयान् प्रस्तरमयान् पूरूपान् पुंलिङ्गरूपान् धरान् पर्वतान् विभेद खण्डयामास । अहं किल
मृण्मयी मृत्तिकारूपा स्त्रीरूपा स्त्रीलिङ्गरूपा धरा पृथिवी, पुमपेक्षया स्त्रियाः कोमलत्वादिति भावः, इति
भयेनेव भीत्येव, पुरंदरपरिचितेन प्राप्तपुरुहूतपरिचयेन क्लीबेनापि नपुंसकलिङ्गेनापि पक्षे नपुंसकवत्कातरेणापि,
बहुधाचलेन अतिचपलेन नाट्येन नटनेन पूरूपा एव पुंलिङ्गा एव अचलाः पर्वताः कम्पिता अहं तु स्त्रीरूपा
अचला पृथिवी, इति मत्वा किल काश्यपो क्षितिः 'क्षाणिज्या काश्यपो क्षितिः' इत्यमरः । तदा ताण्डवनाट्य- २०

करनेवाली अप्सराओंको क्षण भर गूढ़ रूपसे और क्षण भर प्रकट रूपसे चला रहा था ।
क्षण भरमें वह एक हो जाता था, क्षण भरमें अनेक हो जाता था, क्षणभरमें व्यापक हो जाता
था, क्षण भरमें अणुरूप हो जाता था, क्षण भरमें समीपमें, क्षण भरमें दूर, क्षण भरमें आकाशमें
और क्षणभरमें पृथिवीपर अपनी चेष्टा दिखलाता हुआ सब ओर नाट्यरसको बढ़ा रहा था ।

§ ४०) तदेति—उस समय इन्द्रके द्वारा किये हुए उस प्रकारके नाट्यके सुशोभित होनेपर २५
भुजाओंके उल्लाससे क्षुब्ध मेघोंसे झड़नेवाली जलकी बूँदों और देवसमूहके द्वारा बरसाये
हुए बहुत भारी फूलोंकी विशेषता विस्तारको प्राप्त भ्रमरोंकी पङ्क्तिसे जानी गयी थी ॥२४॥

§ ४१) अयमिति—वज्रको धारण करनेवाले इस इन्द्रने पहले शिलाओंसे तन्मय तथा पुंलिङ्ग
रूपधारी धरों—पर्वतोंका भेदन किया था फिर मैं तो मिट्टीसे तन्मय और स्त्रीरूपको धारण
करनेवाली धरा—पृथिवी हूँ मुझे तो यह अनायास ही खण्डित कर देगा इस भयसे ही ३०
मानो उस समय पृथिवी काँपने लगी थी । अथवा यह नाट्य यद्यपि बहुत चंचल है और
नपुंसकलिङ्ग (पक्षमें नपुंसकके समान कातर) है तो भी इन्द्रसे परिचित होनेके कारण
इसने पुंलिङ्ग (पक्षमें पुरुषरूपके धारक) अचलों—पर्वतों (पक्षमें विचलित न होनेवाले
शूरो) को भी कम्पित कर दिया है फिर मैं तो स्त्रीरूपको धारण करनेवाली अचला—पृथिवी
हूँ—मुझे कम्पित करनेमें इसे क्या देर लगेगी इस भयसे ही मानो उस समय पृथिवी कंपनको ३५

§ ४२) तालशोभि ललिताप्सरोज्ज्वलं चित्तहारिततवेणुनिःस्वनम् ।

हंसकध्वनिमनोरमं बभौ तद्यथोपवनमिन्द्रवर्तनम् ॥२५॥

§ ४३) तदानीं श्रवणमपि दृश्यानुगुणतयैव गन्धर्वा एवं प्रकटयामासुः ।

§ ४४) धिक्तां कुतीर्थराजि धिक् तां तत्कल्पितां मतप्रौढीम् ।

५ धिक् तांस्त्वय्यप्रकटात् धिक् तान्ये नात्र संगता भगवन् ॥२६॥

§ ४५) धर्माध्वनि चिन्तकतां मदनान्तकतां भवार्तिकृन्तकताम् ।

मुक्तिश्रीकान्तकतां प्राप्स्यसि संत्रातसकलजन्तुकताम् ॥२७॥

- वेलायां कम्पम् आससाद प्राप । पृथिवी कम्पिताभूदित्यर्थः । श्लेषोत्प्रेक्षे । § ४२) तालेति—तत् पूर्वोक्तम् इन्द्रनर्तनम् पुरंदरनृत्यम् उपवनं यथा उद्यानमिव बभौ शुशुभे । अधोभयोः सादृश्यमाह—तालशोभि तालैः १० कालक्रियामानैः शोभत इत्येवंशीलमिन्द्रनर्तनम् तालैस्ताडवृक्षैः शोभत इत्येवंशीलमुपवनम्, ललिताप्सरोज्ज्वलम्—ललिताश्च ता अप्सरसश्चेति ललिताप्सरसः सुन्दरसुराङ्गनास्ताभिर्ज्वलति द्योतते इति तथाभूतम् इन्द्रनर्तनं अपां सरांसि अप्सरांसि ललितानि मनोहराणि यानि अप्सरांसि जलसरोवरास्तेज्वलति शोभते तथाभूतमुपवनम्, चित्तहारिततवेणुनिःस्वनम्—तत् वीणादिकं वाद्यं, वेणुवंशादिकं वाद्यं, चित्तहारो मनोहारी ततवेणूनां निःस्वनः शब्दो यस्मिंस्तत् इन्द्रनर्तनं, चित्तहारो मनोहारी ततवेणूनां त्रिस्तुतवंशानां निःस्वनः शब्दो १५ यस्मिंस्तद् उपवनम्, हंसकध्वनिमनोरमम् हंसका नूपुराणि तेषां ध्वनिना मनोरमं रम्यम् इन्द्रनर्तनं पक्षे हंसा एव हंसका मरालास्तेषां ध्वनिना मनोरमम् उपवनम् । श्लेषोपमा । रथोद्धताछन्दः ॥२५॥ § ४३) तदानीमिति—श्रवणमपि श्रोतुं योग्यमपि संगीतं गन्धर्वा देवविशेषाः दृश्यगुणानुतयैव दृश्यकाव्यानुकूलतयैव एवं वक्ष्यमाण-प्रकारेण प्रकटयामासुः । § ४४) धिक् तामिति—तां प्रसिद्धां कुतीर्थीनां कुगुल्फां राजिः पङ्क्तिस्तं धिक्, तैः कुतीर्थैः कुगुरुभिः कल्पितां रचितां मतप्रौढीं धर्मवैदग्ध्यं धिक्, त्वयि भवति अप्रकटान् तद्भक्तिरहितान् २० तान् धिक्, हे भगवन् ! ये अत्रोत्सवे न संगता न सम्मिलिताः तान् धिक् । आर्या ॥२६॥ § ४५) धर्मेति—भगवन् ! त्वं धर्माध्वनि धर्ममार्गे चिन्तकतां विचारकतां, मदनान्तकतां कामविनाशकतां, भवार्तिकृन्तकतां संसारदुःखच्छेदकतां, मुक्तिश्रीकान्तकतां मुक्तिलक्ष्मीवल्लभतां, संत्राताः संरक्षिताः सकलजन्तवो येनेति संत्रात-

- प्राप्त हुई थी । § ४२) तालेति—इन्द्रका वह नृत्य उपवनके समान सुशोभित हो रहा था क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रका नृत्य तालशोभि—तालसे सुशोभित था उसी प्रकार उपवन भी २५ तालशोभि—ताडवृक्षोंसे सुशोभित था, जिस प्रकार इन्द्रका नृत्य ललिताप्सरोज्ज्वल—सुन्दर अप्सराओंसे सुशोभित था उसी प्रकार उपवन भी ललिताप्सरोज्ज्वल—सुन्दर जलके सरोवरोंसे सुशोभित था, जिस प्रकार इन्द्रका नृत्य चित्तहारिततवेणुनिःस्वन—मनको हरण करनेवाले वीणा और बाँसुरीके शब्दोंसे सहित था उसी प्रकार उपवन भी चित्तहारिततवेणुनिःस्वन—मनको हरण करनेवाले विस्तृत बाँसोंके शब्दोंसे सहित था और जिस प्रकार इन्द्रका नृत्य ३० हंसकध्वनिमनोरम—नूपुरोंकी झनकारसे सुन्दर था उसी प्रकार उपवन भी हंसकध्वनिमनोरम—हंसोंकी बोलीसे सुन्दर था ॥२५॥ § ४३) तदानीमिति—उस समय सुनने योग्य संगीतको भी गन्धर्वोंने दृश्यकाव्यके अनुरूप ही इस तरह प्रकट किया था । § ४४) धिक्तामिति—उस कुगुरुओंकी पङ्क्तिको धिक्कार हो, उनके द्वारा कल्पित मिथ्यामत सम्बन्धी चतुराईको धिक्कार हो, आपमें जो अप्रकट हैं—आपके अश्रद्धालु हैं उन्हें धिक्कार हो और ३५ हे भगवन् ! जो इस जन्मोत्सवमें सम्मिलित नहीं हुए हैं उन्हें भी धिक्कार हो ॥२६॥ § ४५) धर्मेति—हे भगवन् ! आप धर्मके मार्गमें विचारकताको, कामकी नाशकताको, संसार-सम्बन्धी पीड़ाकी छेदकताको, मुक्ति लक्ष्मीकी वल्लभताको और समस्त जीवोंकी रक्षकताको

§ ४६) मुक्तिश्रीनेपथ्यैः सुरनरपथ्यैः प्रतीतसद्रथ्यैः ।

कर्मारिविजयरथ्यैर्दिव्यध्वनिभिर्भविष्यति सुतथ्यैः ॥२८॥

§ ४७) एवं नाकाधिराजस्य नर्तनं पुण्यवर्धनम् ।

दृष्ट्वा नाभिमहीपालो देव्या सह विसिष्मये ॥२९॥

§ ४८) वृषो धर्मस्तेन त्रिभुवनगुरुर्भाति यदयं

ततो नाकाधीशो वृषभ इति नामास्य विदधे ।

जनन्या सुस्वप्ने विबुधनुतनाकावतरणे

तया दृष्टः श्रीमान्वृषभवररूपः स इति वा ॥३०॥

§ ४९) तदनु पुरुहूतस्तस्य जगद्गुरोः मज्जनमण्डनसंस्कारक्रीडनादिचतुरान् देवीनिकरान् समानवयोरूपवेषान् प्रकटितमनो विनोदनतत्तद्विकृतिसमुन्मेषान् सुरकुमारविशेषांश्च परिचर्यायां १०
नियोज्य निखिलनिर्जरबलेन सह निजभवनमुपजगाम ।

सकलजन्तुकस्तस्य भावस्तां प्राप्स्यसि लप्स्यसे ॥ आर्या ॥२७॥ § ४६) मुक्तीति—हे भगवन् ! त्वं दिव्य-
ध्वनिभिः उपलक्षितो भविष्यसि । कथंभूतैर्दिव्यध्वनिभिरित्याह—मुक्तिश्रीनेपथ्यैः मुक्तिलक्ष्मीप्रसाधनैः
'आकल्पवेषो नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः । सुरनरपथ्यैः देवमनुजहितकरैः प्रतीतसद्रथ्यैः प्रतीता
श्रद्धाविषयोक्ता रथ्या समीचीनसरणिर्गैस्तैः, कर्मारिविजयरथ्यैः कर्मशत्रुविजयरथाश्चैः, सुतथ्यैः शोभनसत्यैः । १५
आर्या ॥२८॥ § ४७) एवमिति—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण नाकाधिराजस्य शक्रस्य पुण्यवर्धनं सुकृतवृद्धिकरं
नर्तनं नृत्यं दृष्ट्वा समवलोक्य नाभिमहीपालो नाभिराजः, देव्या मरुदेव्या सह सार्धं विसिष्मये विस्मया-
न्वितोऽभूत् ॥२९॥ § ४८) वृष इति—वृषः धर्मः 'वृषो धर्मे बलीवर्दे' इति मेदिनी । यद् यस्मात् कारणात्
अयं त्रिभुवनगुरुस्त्रिलोकोनाथः तेन वृषेण धर्मेण भाति शोभते ततो हेतोः नाकाधीश इन्द्रः अस्य त्रिभुवनगुरोः
वृषभ इति नाम नामधेयं विदधे चक्रे । अथवा तया जनन्या मात्रा विबुधनुतं देवस्तुतं यन्नाकावतरणं स्वर्गावतरणं २०
तस्मिन् गर्भकल्याणक इत्यर्थः, सुस्वप्ने शोभनस्वप्ने वृषभवररूपो वृषभोत्कृष्टरूपधारकः श्रीमान् स त्रिभुवनगुरुः
दृष्ट इति वा हेतोः वृषभ इति नाम विदधे । षोडशस्वप्नदर्शनानन्तरं देव्या स्ववक्त्राब्जे प्रविशन् पुङ्गवो दृष्ट
इति प्रागुक्तम् । शिखरिणीछन्दः ॥३०॥ § ४९) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं पुरुहूत इन्द्रः तस्य पूर्वोक्तस्य
जगद्गुरोर्भगवतः मज्जनं स्नपनं मण्डनमलंकारधारणं संस्कार उद्वर्तनादिकरणं क्रीडनं खेलनं तदादिषु चतुरान्
निपुणान् देवीनिकरान् गुरोसमूहान्, समानाः सदृश वयोरूपवेषा दशासौन्दर्यनेपथ्यानि येषां तान्, प्रकटितः २५
प्रादुर्भाविता मनोविनोदनाय तत्तद्विकृतिसमुन्मेषः तत्तद्विक्रियासमुदयो यैस्तथाभूतान् सुरकुमारविशेषांश्च परि-

प्राप्त होंगे ॥२७॥ § ४६) मुक्तीति—हे भगवन् ! आप उस दिव्यध्वनिसे युक्त होंगे जो
मुक्तिरूपी लक्ष्मीका प्रसाधन है, देव तथा मनुष्योंका हित करनेवाली है, समीचीन मार्गकी
श्रद्धा करानेवाली है, कर्मरूपी शत्रुको जीतनेके लिए अश्वके समान है तथा उत्तम सत्यसे
सहित है ॥२८॥ § ४७) एवमिति—इस प्रकार इन्द्रके पुण्यवर्धक नृत्यको देखकर राजा ३०
नाभिराय मरुदेवीके साथ आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२९॥ § ४८ वृष इति—वृषका अर्थ धर्म है ।
यह त्रिभुवनके गुरु चूँकि उस धर्मसे सुशोभित हैं इसलिए इन्द्रने इनका वृषभ यह नाम रखा ।
अथवा देवोंके द्वारा स्तुत स्वर्गावतरणके समय माता मरुदेवीने स्वप्नमें उत्तम वृषभके रूपको
धारण करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्को देखा था इसलिए भी उसने उनका वृषभ यह नाम
रखा ॥३०॥ § ४९) तदन्विति—तदनन्तर इन्द्र, जगद्गुरुके स्नान, प्रसाधन, संस्कार तथा ३५
क्रीड़ा आदिमें चतुर देवियोंके समूहको और समान अवस्थारूप एवं वेषसे सहित और

§ ५०) जिननन्दनद्रुमोऽयं सितो देवैः स्वकालबालेद्धः ।

स्मितकुसुमानि दधे द्राक्तन्वानस्तत्र काञ्चनच्छायाम् ॥३१॥

§ ५१) अलममितफलप्रदानचतुरस्य निरवधिकश्रीविराजितस्य विजितमारस्य जिनकुमारस्य सुमितफलप्रदानचतुरैः सूनश्रीविराजितैः स्वयमेव पञ्चतामुपगतैः कल्पद्रुमैरुपमानवार्तया ।

५ § ५२) जिनबालशीतरश्मिर्जीवजोवं प्रति प्रहर्षकरः ।

स्मितचन्द्रिकां वितेने सकलकलावल्लभः सदानन्दी ॥३२॥

- चर्यायां शुश्रूषायां नियोज्य नियुक्तान्विधाय निखिलनिर्जरबलेन सकलसुरसैन्येन सह मित्रभवनं स्वकोयसदनम् उपजगाम प्राप । § ५०) जिनेति— देवैर्मरैः सितः स्नपितः पक्षे कृतसेचनः स्वकालबालेद्धः स्वस्यात्मनो ये कालबालाः कृष्णकचास्तैरिद्धः शोभितः पक्षे स्वकस्य मित्रस्य आलबालेन आवामेन इद्धः शोभितः काञ्चनस्य सुवर्णस्य छायां कान्तिं तन्वानो विस्तारयन् पक्षे काञ्चन कामप्यनिर्वचनीयां छायामनातपं तन्वानो विस्तारयन् 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः । अयमेष जिननन्दनो जिनबालक एव द्रुमो वृक्षः अथवा नन्दने नन्दनवने विद्यमानो द्रुमो नन्दनद्रुमः कल्पतरुः, जिन एव नन्दनद्रुम इति जिननन्दनद्रुमः स्मित-कुसुमानि मन्दहसितपुष्पाणि द्राक् झटिति दधे धृतवान् । रूपकश्लेषो । आर्था ॥३१॥ § ५१) अलमिति— पूर्वोक्तश्लोकेन जिनस्य नन्दनद्रुमेण कल्पवृक्षेण सादृश्यं निरूप्येदानीं तद्व्यतिरेकं निरूपयति अलमिति—
- १५ अमितानां प्रमाणरहितानां फलानां प्रदाने चतुरो विदम्बस्तस्य, निरवधिका निष्प्रमाणा या श्रीलक्ष्मीः शोभा वा तया विराजितस्य शोभितस्य विजितो मारो मृत्युर्धनं तस्य जिनकुमारस्य जिनबालकस्य, सुमितानां परिमितानां फलानां प्रदाने चतुरा विदम्बास्तैः पक्षे सुमानं सज्जातानि येषु तानि सुमितानि पुष्पितानि तथाभूतानि यानि फलानि तेषां प्रदाने चतुरैः, सूना अतिशयेन ऊना हीना या श्रीलक्ष्मीः शोभा वा तया विराजितैः पक्षे सूनानां कुसुमानां श्रिया विराजितैः शोभितैः, स्वयमेव स्वत एव पञ्चतां मृत्युं पक्षे पञ्चसंख्यावत्त्वं 'पञ्चता मृत्युमात्रेऽपि पञ्चभावेऽपि पञ्चता' इति विश्वलोचनः 'पञ्चते देवतरवा मन्दारः पारिजातकः । संतानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्' इत्यमरवचनात्कल्पद्रुमानां पञ्चसंख्या प्रसिद्धा, उपगतैः प्राप्तेः कल्पद्रुमैर्कल्प-वृक्षैः उपमानस्य वार्ता तया उपमाचर्चया अलं व्यर्थम् । इष्टेरूपकव्यतिरेकाः । § ५२) जिनबालेति—जीवं जीवं प्रति प्राणिनं प्राणिनं प्रति पक्षे चकोरं प्रति, प्रहर्षकरः प्रमोदोत्पादकः, सकलकलानां निखिलवैद्योनां

- मनोविनोदके लिए विभिन्न प्रकारकी विक्रियाके उद्यको प्रकट करनेवाले विशिष्ट
- २५ देवकुमारोंको सेवामें नियुक्त कर समस्त देवसेनाके साथ अपने घर चला गया । § ५०) जिनेति—देवोंने जिसे सींचा था (पक्षमें देवोंने जिसका अभिषेक किया था), जो अपनी क्यारीसे सुशोभित था (पक्षमें जो अपने काले-काले केशोंसे सुशोभित था) तथा जो किसी अद्भुत छायाको विस्तृत कर रहा था (पक्षमें सुवर्णकी कान्तिको विस्तृत कर रहा था) ऐसा यह जिनेन्द्ररूपी कल्पवृक्ष शीघ्र ही मन्द मुसकानरूपी फूलोंको धारण करने लगा ॥३१॥
- ३० § ५१) अलमिति—अथवा जिनबालककी कल्पवृक्षोंके साथ उपमाकी चर्चा करना व्यर्थ है क्योंकि जिनबालक अमित—अपरिमित फलोंके प्रदान करनेमें चतुर था और कल्पवृक्ष सुमित—अत्यन्त सीमित फलोंके प्रदान करनेमें चतुर थे (पक्षमें फूलोंसे युक्त फलोंके प्रदान करनेमें चतुर थे), जिनबालक अवधिरहित श्रीसे सुशोभित था और कल्पवृक्ष सूनश्री—अत्यन्त अल्पश्रीसे सुशोभित थे (पक्षमें फूलोंकी श्रीसे सुशोभित थे) जिनबालक मार—
- ३५ मृत्युको जीतनेवाला था और कल्पवृक्ष अपनेआप ही पञ्चता—मृत्युको प्राप्त थे (पक्षमें पञ्चसंख्याको प्राप्त थे) । § ५२) जिनबालेति—जो जीवं जीवं प्रति—प्रत्येक प्राणीके प्रति हर्षको करनेवाला था (पक्षमें चकोरके प्रति हर्षको करनेवाला था), जो समस्त कलाओंका

§ ५३) अलमलं सिद्धान्तविदितमहिम्नः कलङ्करहितस्य दोषकथातोतस्य विमलमतेजिन-
बालकस्य पूर्वपक्षविदितमहिम्ना सकलङ्केन दोषाकरेण जडव्युत्पन्नेन चन्द्रेणोपमित्या ।

§ ५४) सर्वतोमुखसमृद्धिसमेतो मानसस्य परितोषणहेतुः ।

द्राग्वभार जिनपोतपयोदो हासकान्तिमयविद्युतमिडाम् ॥३३॥

§ ५५) कृतं निश्चलानन्दसुन्दरस्य सकलभुवनोद्धरणदक्षस्य समाश्रितानाममृतप्रदस्य ५

चतुःषष्टिकलानां वा पक्षे पोडशकलानां बल्लभः स्वामी, सतः सत्पुरुषान् आनन्दयति हर्षयतीति सदानन्दी,
सदा सर्वदा आनन्दति हर्षतीत्येवंशीलः सदानन्दी, सन् समीचीन आनन्दो विद्यते यस्य स सदानन्दो इति
वा, पक्षे सतो नक्षत्रान् आनन्दयति शोभयतीति सदानन्दी, जिनबालो जिनशिशुरेव शीतरश्मिश्चन्द्र इति
जिनबालशीतरश्मिः स्मितमेव मन्दहसितमेव चन्द्रिका ज्योत्स्ना ताम् वितेने विस्तारयामास । रूपकश्लेष-
व्यतिरेकाः । आर्या ॥३२॥ § ५३) अलमलमिति—पूर्वोक्तश्लोके जिनबालस्य शीतरश्मिना सादृश्यं निरूप्य १०
साम्प्रतं तद्व्यतिरेकं निरूपयति—सिद्धान्ते शास्त्रे, पक्षे उत्तरपक्षे विदितः प्रख्यातो महिमा माहात्म्यं यस्य
तथाभूतस्य, कलङ्करहितस्य कल्मषरहितस्य पक्षे लाञ्छनरहितस्य, दोषकथातोतस्य दोषचर्चारहितस्य,
विमलमतेर्निर्मलबुद्धेः जिनबालस्य जिनेश्वरशिखोः पूर्वपक्षे शङ्कापक्षे, पक्षे कृष्णपक्षे विदितो महिमा यस्य तस्य,
सकलङ्केन कल्मषसहितेन पक्षे लाञ्छनसहितेन, दोषाकरेण दोषाणामवगुणानामाकरस्तेन पक्षे दोषाकरेण
रात्रिकरेण जडव्युत्पन्नेन जडा मूर्खा धीर्बुद्धिर्यस्य स जडयोस्तस्मादुत्पन्नो मूर्ख इत्यर्थः पक्षे डलयोरभेदात् जलधिः १५
समृद्रस्तस्मादुत्पन्नस्तेन तथाभूतेन चन्द्रेण उपमित्या उपमानवार्तया अलमलम् अतिशयेन व्यर्थमित्यर्थः । रूप-
कश्लेषव्यतिरेकाः ॥ § ५४) सर्वत इति—सर्वतोमुखी समन्तादायशीला या समृद्धिः संपत्तिस्तया समेतः
सहितः पक्षे सर्वतोमुखस्य जलस्य समृद्धया समेतः, मानसस्य चित्तस्य पक्षे मानससरोवरस्य परितोषणं समा-
ह्लादनं पक्षे वर्धनं तस्य हेतुः, जिनपोत एव पयोदो जिनपोतपयोदो जिनबालकमेघः, इडां दीप्तां हासकान्तिमयो
हःसचिरूपा विद्युत्सोदामिनी ताम्, द्राग् जटिति, बभार दधार । रूपकश्लेषौ । स्वागता छन्दः ॥३३॥ २०
§ ५५) कृतमिति—पूर्वोक्तश्लोकेन जिनाभक्तस्य मेघेन सादृश्यं प्ररूप्येदानीं तद्व्यतिरेकं प्रदर्शयति—निश्चला-

स्वामी था (पक्षमें सोलह कलाओंसे युक्त था) और सदानन्दी—निरन्तर हर्षको धारण
करनेवाला था अथवा सत्पुरुषोंको हर्षित करनेवाला था अथवा समीचीन आनन्दसे सहित
था (पक्षमें नक्षत्रोंको हर्षित करनेवाला था) ऐसा जिनबालकरूपी चन्द्रमा मन्द मुसकान-
रूपी चाँदनीको विस्तृत करने लगा ॥३२॥ § ५३) अलमलमिति—अथवा जिनबालककी २५
चन्द्रमाके साथ उपमा करना बिलकुल व्यर्थ है क्योंकि जिनबालक सिद्धान्त पक्षमें प्रसिद्ध
महिमासे युक्त था और चन्द्रमा पूर्वपक्ष—शंकापक्ष (पक्षमें कृष्णपक्ष) में प्रसिद्ध महिमासे
युक्त था, जिनबालक कलंकरहित था—पापरहित था और चन्द्रमा कलंकसहित—पाप
सहित था (पक्षमें लांछनसे सहित था), जिनबालक दोषकथातोत—दोषोंकी चर्चासे
रहित था और चन्द्रमा दोषाकर—दोषोंकी खान था (पक्षमें रात्रिको करनेवाला था) ३०
जिनबालक विमलमति—निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाला था और चन्द्रमा जडधी—मूर्खसे
उत्पन्न था अर्थात् निर्मलबुद्धिसे रहित था (पक्षमें जलधि—समृद्रसे उत्पन्न था) । § ५४)
सर्वत इति—जो सर्वतोमुखी—सब ओरसे आयवाली समृद्धिसे सहित था (पक्षमें जलकी
समृद्धिसे सहित था) और मानस—हृदयके संतोषका कारण था (पक्षमें मानस-सरोवरकी
वृद्धिका कारण था) ऐसा जिनबालकरूपी मेघ हासकी कान्तिरूप देदीप्यमान बिजलीको ३५
शीघ्र ही धारण करने लगा ॥३३॥ § ५५) कृतमिति—अथवा जिनबालककी मेघके साथ
उपमा करना व्यर्थ है क्योंकि जिनबालक निश्चलानन्दसे सुन्दर है—अविनाशी आनन्दसे

निखिलमनोहरदिव्यध्वनिं प्राप्स्यतो जिनाभंकस्य चञ्चलानन्दसुन्दरेण सकलभुवनान्यधः पातयता समाश्रितानां विषप्रदेन कठोरगर्जनेन जलदेनोपमया ।

§ ५६) पीठबन्धः सरस्वत्या लक्ष्म्या हसितविभ्रमः ।

कीर्तिवल्ल्या विकासोऽस्य मुग्धस्मितमयोऽभवत् ॥३४॥

५ § ५७) मुखवारिजं विलोलं नयनभ्रमरं स्फुटाधरोष्ठदलम् ।

दन्तांशुकेशराढ्यं स्मितमकरन्दं दधे कुमारस्य ॥३५॥

§ ५८) एतन्मुखं वारिजं च कृतराजविद्वेषतया लक्ष्मीनिवासभूतया च समानम्, अथापीदं वदनं मन्मनवचनामृतविशोभितं रत्नभूषणैरलंकारमाश्रितं सुमनोजनसेवितं च, नलितं पुनर्विष-

- नन्देन स्थायिहर्षेण सुन्दरो मनोहरस्तस्य, सकलभुवनस्य निखिलसंसारस्योद्धरणे समुपयने दक्षः समर्थस्तस्य, १० समाश्रितानां शरणागतानाम् अमृतप्रदस्य पीयूषप्रदस्य पक्षे मोक्षप्रदस्य, निखिलानां समग्रजीवानां मनोहरश्चेतो-हरो यो दिव्यध्वनिस्तं प्राप्स्यतो जिनाभंकस्य जिनशिरोः चञ्चलानन्देन भङ्गुरहर्षेण सुन्दरस्तस्य पक्षे विद्युदानन्दसुन्दरस्य 'तडित्सौदामिनो विद्युच्चञ्चला चपला अपि' इत्यमरः । सकलभुवनानि निखिलसंसारान् पक्षे निखिलजलानि अधः पातयता नीचैः पातयता पक्षे वर्षयता, समाश्रितानां शरणागतानां विषप्रदेन गरलप्रदेन पक्षे जलप्रदेन, कठोरगर्जनेन कठिनध्वनिसहितेन जलदेन मेघेन उपमया कृतं व्यर्थमित्यर्थः । १५ रूपकश्लेषव्यतिरेकाः । § ५६) पीठबन्ध इति—सरस्वत्याः शारदायाः पीठबन्ध आसनप्राप्तिः, लक्ष्म्याः श्रियाः हसितविभ्रमो हासयिलापः, कीर्तिवल्ल्या यशोलतायाः विकासः अस्य जिनबालकस्य मुग्धस्मितमयः मन्दहसितरूपः अभवत् । रूपकालंकारः ॥३४॥ § ५७) मुखेति—कुमारस्य जिनबालकस्य विलोलं चञ्चलं नयनभ्रमरं लोचनषट्पदम्, स्फुटाधरोष्ठदलं विकसिताधरोष्ठपत्रम्, दन्तांशुकेशराढ्यं रदनरश्मिकिञ्जल्कसहितं मुखवारिजं मुखकमलं स्मितमकरन्दं मन्दहसितमकरन्दं दधे बभार । रूपकालंकारः ॥३५॥ § ५८) एतन्मुख- २० मिति—एतन्मुखं जिनराजवदनं वारिजं च कमलं च कृतो बिहितो राजा चन्द्रेण सह विद्वेषो वैरं येन तस्य भावस्तया, लक्ष्म्याः पद्मालयाया निवासभूततया निवासस्थानत्वेन च यद्यपि समानं तुल्यं, अथापि तुल्यत्वेऽपि इदं वदनं मुखं मन्मनवचनमव्यक्तवचनमेवामृतं पीयूषं तेन विशोभितं समलंकृतं, रत्नभूषणैर्मणिमयालंकारैः अलंकारं शोभाम् आश्रित प्राप्तं सुमनोजनसेवितं च विद्वज्जनसेवितं च, नलितं पुनः कमलं तु, विषजातेन

- मनोहर है और मेघ चञ्चलानन्द—क्षणभंगुर आनन्दसे सुन्दर है (पक्षमें बिजलीके २५ आनन्दसे सुन्दर है), जिनबालक सकलभुवन—समस्त संसारके उद्धार करनेमें दक्ष है और मेघ सकलभुवन—समस्त संसारको नीचे गिरानेवाला है (पक्षमें समस्त जलको नीचे वर्षानेवाला है), जिनबालक शरणागत मनुष्योंके लिए अमृत प्रदान करनेवाला है—(पक्षमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है) और मेघ आश्रित मनुष्योंको विष प्रदान करनेवाला है (पक्षमें जल प्रदान करनेवाला है) जिनबालक सबके मनको हरण करनेवाली दिव्यध्वनिको प्राप्त ३० होगा और मेघ कठोर गर्जना करनेवाला है । § ५६) पीठबन्ध—सरस्वतीका आसनग्रहण, लक्ष्मीका हास-वैभव और कीर्तिरूपी लताका विकास इस जिनबालककी सुन्दर मुसकान रूप था ॥३४॥ § ५७) मुखेति—जो अत्यन्त चंचल था, नेत्ररूपी भ्रमरोंसे सहित था, अधरोष्ठरूपी खिली हुई कलिकाओंसे युक्त था, तथा दाँतोंकी किरणरूपी केशरसे सहित था ऐसा जिनबालकका मुखकमल मन्द मुसकानरूपी मकरन्दको धारण कर रहा था ॥३५॥ ३५ § ५८) एतन्मुखमिति—जिनबालकका मुख और कमल राजा—चन्द्रमाके साथ विद्वेष होने तथा लक्ष्मीके निवास होनेसे संमान था तो भी यह मुख मन्मन वचनरूपी अमृतसे सुशोभित था, रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत था और विद्वज्जनोंसे सेवित था किन्तु कमल विषजात—

जातविख्यातं स्वर्णस्फूर्तिमधिगतमपि सर्वतोमुखसंपदाढ्यमपि बहूमिकाहंसकर्णिकादिकालितमपि अपाढ्यगुणान्नालमिति शब्दमधिगम्य मार्गणानां पञ्चतामेवाशासमानस्य विषमायुधस्य मार्गणतां-
मुपगतं मधुपसेवाकरमिति न दृष्टान्ततामर्हति । किं बहुना, संधारागरञ्जितनभःस्थले बालचन्द्र-
चन्द्रिकापूर इव, पद्मरागघटितप्रदेशे स्फटिकमणिप्रभाप्रसर इव, समुल्लसत्पल्लवतल्लजे प्रत्यग्रकु-
सुमसुषमाप्रसर इव विकचकोकनदे राजहंसचिरिव, कुङ्कुमलितप्रदेशे मलयजरस इव, तस्य ५
जिनबालस्याधरबिम्बे स्मितच्छविराविरास ।

गरलभमूहेन विख्यातं प्रसिद्धं पक्षे विषात् जलात् जातं विषजातं जलजमिति नाम्ना विख्यातं, स्वर्णस्य
कनकस्य स्फूर्तिभूयिष्ठता ताम् अधिगतमपि पक्षे सुष्ठु अर्णः स्वर्णः सुजलं तस्मिन् स्फूर्तिं विकासम् अधिगतमपि
प्राप्तमपि, सर्वतोमुखो समन्तादायकरो या संपद् संपत्तिस्तया आढ्यमपि सहितमपि पक्षे सर्वतोमुखं जलमेव १०
संपद् तथा आढ्यं सहितमपि, ऊमिका अङ्गुलीयकं, हंसकः पादकटकः कर्णिका कर्णाभरणं, बहवः प्रभूता ये
ऊमिकाहंसकर्णिकादयस्तैः कलितं सहितमपि पक्षे बहूमिका बहुतरङ्गा हंसका हंसपक्षिणः कर्णिका कमलदण्ड-
स्तदादिभिः कलितमपि, अपगता दूरोभूता आढ्यस्य धनिकस्य गुणा यस्मात्तस्मात् धनिकगुणरहितत्वादिति
भावः, नालं एतत् सर्वं मम अलं न पर्याप्तं न इति शब्दं पक्षे नालं कमलदण्डमिति शब्दम् अधिगम्य, मार्गणानां
गत्यादीनां पञ्चतामेव मृत्युमेव पक्षे मार्गणानां बाणानां पञ्चतामेव पञ्चसंख्यामेव आशासमानस्य वाञ्छतः
विषमायुधस्य तीक्ष्णशस्त्रशालिनः पक्षे मदनस्य मार्गणतां याचकतां पक्षे बाणताम् उपगतं प्राप्तं, मधुपसेवाकरं १५
मद्यपायिसेवाकरं पक्षे भ्रमरसेवाकरम्, इति हेतोः दृष्टान्ततां तुलनां नार्हति । उभयोस्तुलना नास्तोत्यर्थः ।
बहुना प्रभूतकल्पनेन किम् । संधारागेण संध्यालालिम्ना रञ्जितं रक्तवर्णीकृतं यत् नभःस्थलं तस्मिन् बाल-
चन्द्रस्य द्वितीयामृगाङ्कुस्य चन्द्रिकापूर इव कौमुदीप्रवाह इव, पद्मरागघटितप्रदेशे लोहितमणिखचितस्थाने
स्फटिकमणोनामकौरालानां प्रभाप्रसर इव कान्तिविस्तार इव, समुल्लसत्पल्लवतल्लजे शुम्भच्छेष्टकिसलये
प्रत्यग्रकुसुमस्य नूतनपुष्पस्य सुषमाप्रसर इव परमशोभाविस्तार इव, विकचकोकनदे विकसितरक्तारविन्दे २०
राजहंसचिरिव सितच्छदकान्तिरिव, कुङ्कुमलितप्रदेशे काशमीरलितस्थाने मलयजरसस्य चन्दनरस इव तस्य
जिनबालस्य जिनाभकस्य अधरबिम्बे अधरो बिम्बमिव अधरबिम्बं तस्मिन् स्मितच्छविर्मन्दहसितकान्तिः

विषसमूहसे विख्यात था (पक्षमें 'जलजात' इस नामसे प्रसिद्ध था) तथा स्वर्ण—सुवर्णकी
वृद्धिको प्राप्त होकर भी, (पक्षमें सुन्दर जलमें विकासको प्राप्त होकर भी) सर्वतोमुख-
संपदा—सब ओरसे आयवाली सम्पत्ति (पक्षमें जलरूप संपदा) से सहित होकर भी एवं २५
बहुत सी अँगूठियों, पादकटकों और कर्णाभरणोंसे युक्त होकर भी (पक्षमें बहुत सी लहरों,
हंसपक्षियों और डण्ठल आदिसे युक्त होकर भी) धनाढ्य पुरुषके गुणोंसे रहित होनेके
कारण हमारे पास 'नालम्'—अलं न—पर्याप्त नहीं हैं इस शब्दको प्राप्त कर उस कामदेवके
सामने याचकपनेको प्राप्त होता है (पक्षमें बाणपनेको प्राप्त होता है) जो कि सदा
मार्गणाओंके विनाशकी ही इच्छा करता रहता है (पक्षमें बाणोंकी पाँच संख्याको चाहता ३०
है) तथा विषम—तीक्ष्ण शस्त्रोंको धारण करनेवाला है (पक्षमें विषमायुध नामसे सहित
है) और मधुप—मद्यपायी मनुष्योंकी सेवा करनेवाला है (पक्षमें भ्रमरोंकी सेवा करनेवाला
है) इस तरह कमल, मुखकी दृष्टान्तताको प्राप्त करनेके योग्य नहीं है । अधिक क्या कहा
जावे, संध्याको लालीसे रंगे हुए आकाशमें जिस प्रकार द्वितीयाके चन्द्रमाकी चाँदनीका पूर
सुशोभित होता है, पद्मरागमणियोंसे खचित प्रदेशमें जिस प्रकार स्फटिकमणियोंकी ३५
प्रभाका समूह सुशोभित होता है, लहलहाते हुए श्रेष्ठ पल्लवपर जिस प्रकार नवीन फूलकी
सुषमाका समूह सुशोभित होता है, लाल कमलपर जिस प्रकार राजहंसकी कान्ति
शोभा पाती है और केशरसे लिप्त प्रदेशपर जिस प्रकार चन्दनका रस सुशोभित होता

§ ५९) तन्मुखकान्तिपयोधौ स्मितचन्द्रः स मुदब्धिवृद्धिकरः ।

पित्रोर्मन्मनवाणीपीयूषं चाविरास सुरसेव्यम् ॥३६॥

§ ६०) उत्तानशयनमुपगतस्य नरनाथनन्दनस्य मुष्टिद्वयं केषांचिद्वदनमुधाकरकान्तिमंक्राति-
मुकुलितबाहुनालोदञ्चितकरकमलयुगलशङ्कामन्येषां च कर्मारिविजयसंनद्धनियुद्धार्थमाबद्धमुष्टि-
युगमति, परेषां च वक्षःस्थलविलसितमुक्ताहाररुचिसुरापगासंजातसुवर्णसरोजद्वयसंभावनाम्, इतरेषां
पुनर्देहकान्तिकलशवरुणालयतरुणविद्रुमवल्लिकापल्लवतल्लजद्वन्द्वधियं च संपादयामास ।

§ ६१) इमं चुचुम्ब मुक्तिश्रीध्रुवं रागात्कपोलयोः ।

ताम्बूलस्य रसः सक्तो यत्कुण्डलरुचिच्छलात् ॥३७॥

- १० आविरास प्रादुर्बभूव । श्लेषव्यतिरेकोपमाः । § ५९) तन्मुखेति—तस्य जिनस्य मुखकान्तिरेव वदनदीप्तिरेव पयोधिः सागरस्तस्मिन् पित्रोर्मातापित्रोः मुदब्धिवृद्धिकरः हर्षसागरवृद्धिकारकः स स्मितमेव चन्द्रः स्मितचन्द्रः मन्दहसितनिशाकरः सुरसेव्यं देवाराधनीयं, मन्मनवाण्येव अव्यक्तभारत्येव पोयूषं सुधेति मन्मनवाणीपीयूषं च आविरास प्रकटीबभूव । 'आस' इति तिङन्तप्रतिरूपकोऽव्ययः । रूपकालंकारः । आर्याछन्दः ॥३६॥
- १५ § ६०) उत्तानेति—उत्तानशयनम् उपगतस्य प्राप्तस्य नरनाथनन्दनस्य नरेन्द्रनन्दनस्य मुष्टिद्वयं मुष्टियुगलं केषांचित् जनानां वदनमुधाकरस्य मुखमृगाङ्कस्य या कान्तिर्दीप्तिस्तस्याः संक्रान्त्या संमिश्रणेन मुकुलितं कुड्मलितं बाहुनालोदञ्चितं भुजनालोलमिति यत् करकमलयुगलं पाणिपद्मद्वयं तस्य शङ्कां संशीतिम्, अन्येषां च कर्मारिणां कर्मवैरिणां विजयाय संनद्धं सुनिश्चितं यद् नियुद्धं बाहुयुद्धं तदर्थं आबद्धं यद् मुष्टियुगं तस्य मति बुद्धिम्, परेषां च वक्षःस्थले विलसितः शोभितो यो मुक्ताहारस्तस्य रुचिः कान्तिरेव सुरापगा गङ्गा तस्यां संजातं समुत्पन्नं यत् सुवर्णसरोजद्वयं कनककमलयुगलं तस्य संभावनामुत्प्रेक्षाम्, इतरेषां पुनः देहकान्तिरेव शरीरदीप्तिरेव कलशवरुणालयः क्षीरसागरस्तस्मिन् विद्यमाना या तरुणविद्रुमवल्लिका प्रौढप्रवालवल्ली तस्याः पल्लवतल्लजयोः किसलयश्रेष्ठयोः यद् द्वन्द्वं युगं तस्य धियं च बुद्धिं च संपादयामास चकार । रूपको-
त्प्रेक्षे ॥ § ६१) इममिति—मुक्तिश्रीर्मुक्तिलक्ष्मीः रागात् स्नेहातिरेकात् इमं जिनं कपोलधोर्गण्डस्थलयोः ध्रुवं निश्चयेन चुचुम्ब चुम्बति स्म, यत् यस्मात् कारणात् कुण्डलरुचिच्छलात् कर्णाभरणकान्तिकपटात् ताम्बूलस्य

- २५ है उसी प्रकार जिन बालकके अधरोष्ठपर मन्द मुसकानकी कान्ति सुशोभित हो रही थी । § ५९) तन्मुखेति—जिनबालककी मुखकान्तिरूप सागरमें माता-पिताके हर्षरूपी समुद्रकी वृद्धिको करनेवाला वह मन्दहास्यरूप चन्द्रमा और देवोंके द्वारा सेवनीय अव्यक्त वाणीरूपी अमृत प्रकट हुआ था ॥३६॥ § ६०) उत्तानेति—उत्तानशय्याको प्राप्त हुए जिनबालककी मुष्टियोंका युगल, किन्हींको मुखरूपी चन्द्रमाकी कान्तिके सम्मिश्रणसे बन्द हुए भुजनालमें सुशोभित हस्तकमलयुगलकी शङ्काको सम्पन्न कर रहा था तो किन्हींको कर्मरूपी शत्रुओंको जीतनेके लिए सुनिश्चित बाहुयुद्धके अर्थ बाँधे हुए मुक्कोंके युगलकी बुद्धि उत्पन्न कर रहा था, किन्हींको वक्षःस्थलपर सुशोभित मुक्ताहारकी कान्तिरूपी गंगानदीमें उत्पन्न हुए सुवर्णकमलोंके युगलकी सम्भावना सम्पन्न कर रहा था तो किन्हींको शरीरकी कान्तिरूपी क्षीरसागरमें विद्यमान प्रौढप्रवाललताके श्रेष्ठ पल्लवोंके युगलकी बुद्धि उत्पन्न कर रहा था । § ६१) इममिति—जान पड़ता है कि मुक्तिरूपी लक्ष्मीने रागकी प्रबलतासे कपोलोंपर इस जिनबालकका चुम्बन किया था क्योंकि कुण्डलोंकी कान्तिके छलसे उसके पानका रस

§ ६२) इयं खलु मेदिनी मामकोनपादस्पर्शादिपापः निष्पङ्का च जायेत चेत्तदा कथं सारसस्यसमृद्धिर्भविष्येति मत्वा किल मत्पितुर्नाभिमहोक्तान्तस्य पत्नीत्वेन मम जननी मेदिनीति बुद्धयेव मणिभूमिषु भूपतिमुतश्चङ्क्रमणं जानुभ्यां चमदकुरुत ।

§ ६३) स्खलत्पदं बभौ तस्य वचनं गमनं तथा ।

आद्यं पुनर्मनोहारि परं नूपुरराजितम् ॥३८॥

§ ६४) प्रवेपमानाग्रपदं नृपात्मजश्चाल देवोजनदत्तहस्तः ।

नखप्रभाभिर्मणिकुट्टिमाङ्गणे तन्वन्प्रसूनास्तरणस्य शङ्काम् ॥३९॥

§ ६५) धूलिकेलीं ततानापं नालीकनिभलोचनः ।

सुराधीशसुतैः साकं धरापालस्य नन्दनः ॥४०॥

नागबल्लोदलस्य रसः सक्तः संलग्नः । हेतुत्प्रेक्षा ॥३७॥ § ६२) इयमिति—इयं खलु मेदिनी पृथिवी, १०
चेत् यदि मामकोनपादस्पर्शात् मदीयचरणस्पर्शात् अपापा पापरहिता पक्षे अपगता आपो जलानि यस्यास्तथा-
भूता निर्जला निष्पङ्का पापरहिता पक्षे कर्दमरहिता च जायेत स्यात् तदा सारसस्यसमृद्धिः श्रेष्ठधान्यसमृद्धिः
पक्षे सारसस्य कमलस्य समृद्धिः कथं भविता इति मत्वा किल, मत्पितुः मज्जनकस्य नाभिमहोक्तान्तस्य
नाभिराजस्य पत्नीत्वेन मेदिनी भूमिः मम जननी माता, इति बुद्धयेव धियेव भूपतिमुतो राजपुत्रो जिनामर्कः
जानुभ्यां जहनुभ्यां मणिभूमिषु रत्नमयमेदिनीषु चङ्क्रमणं संचारं चमदकुरुत चमत्कुरुते स्म पादाभ्यां जनन्याः १५
स्पर्शोऽनुचित इति मत्वा स जानुभ्यां चङ्क्रमणं चकारेति भावः । § ६३) स्खलदिति—तस्य जिनबालस्य
स्खलन्ति श्रुतचदञ्जराणि पदानि सुवन्ततिङन्तरूपाणि यस्मिंस्तत् वचनं, तथा स्खलती पदे चरणे यस्मिंस्तत्
गमनं बभौ शशुभे । स्खलत्पदत्वेन तस्य वचनं गमनं च समानमिति भावः । पुनः किंतु आद्यं वचनमित्यर्थः
मनोहारि चेतोहारि परं गमनमित्यर्थः नूपुरराजितं मञ्जोरकशोभितं बभूवेति विशेषः । इलेषव्यतिरेकोपमाः ॥३८॥
§ ६४) प्रवेपमानेति—देवीजनेन सुरीसमूहेन दत्तो हस्तो यस्मै तथाभूतो नृपात्मजो राजपुत्रः मणिकुट्टि- २०
माङ्गणे रत्नखचितजिरे नखप्रभाभिः नखरकान्तिभिः प्रसूनास्तरणस्य पुष्पशय्यायाः शङ्कां संशीति तन्वन्
विस्तारयन् प्रवेपमानाग्रपदं प्रकम्पमानाग्रचरणं यथा स्वास्तथा चचाल चलति स्म । उपजातिवृत्तम् ॥३९॥
§ ६५) धूलोति—नालीकनिभं कमलतुल्ये लोचने यस्य तथाभूतः अयं धरापालस्य नाभिराजस्य नन्दनोऽ-
र्भकः 'नन्दनो दारकोऽर्भकः' इत्यमरः । सुराधीशसुतैः सुरेन्द्रकुमारैः साकं सह धूलिकेलीं पातुक्रोडां ततान

लगा हुआ था ॥३७॥ § ६२) इयमिति—यदि कहीं यह पृथिवी मेरे चरणोंके स्पर्शसे २५
अपापा--पापरहित (पक्षमें जलरहित) और निष्पङ्का—पापशून्य (पक्षमें कर्दमरहित) हो
गयी तो फिर सार-सस्य-समृद्धि—श्रेष्ठ धान्यकी उत्पत्ति तथा सारसस्य—कमलकी समृद्धि
कैसे होगी ? ऐसा मानकर, अथवा यह पृथिवी मेरे पिता नाभिराजकी पत्नी होनेसे मेरी
माता है अतः माताका चरणोंसे स्पर्श कैसा ? यह विचारकर ही मानो राजपुत्र-
जिनबालक मणिमयभूमिमें घुटनोंके द्वारा संचार करता था । § ६३) स्खलदिति—जिसमें ३०
सुवन्त-तिङन्तरूप पद स्खलित हो रहे थे ऐसा उसका वचन तथा जिसमें पैर लड़खड़ा रहे थे
ऐसा उसका गमन, दोनों ही एक समान सुशोभित हो रहे थे परन्तु उनमें पहला अर्थात्
वचन मनोहारी था और दूसरा अर्थात् गमन नूपुरोंसे सुशोभित था ॥३८॥ § ६४) प्रवेप-
मानेति—देवियोंके द्वारा जिसे हाथका सहारा दिया गया था ऐसा राजपुत्र, नखोंकी कान्तिसे
रत्नखचित आँगनमें पुष्पशय्याकी शंकाको विस्तृत करता हुआ चल रहा था । चलते समय ३५
उसका आगेका पैर कम्पायमान रहता था ॥३९॥ § ६५) धूलोति—कमलके समान नेत्रोंवाला

- § ६६) एवं बाललोलामतिक्रान्तः कौमारवयसि सुरकुमारैः परिवृतः सहोत्पन्नमतिश्रुता-
वधिलोचनः सकलविद्यापारावारपारदृश्या प्रत्यक्षीकृतसकलवाङ्मयः, पृथ्वीपतितनयः कदाचित्
व्यालोलमुक्ताकलापः कलितमधुरालापः संगीतप्रसङ्गेन, कदाचिदाबद्धकविपुण्डरीकमण्डलः काव्य-
प्रबन्धरचनेन, कदाचित्काव्यसागरनौकासकाशछन्दोविविचित्चारुतरलक्षणप्रसरादिपरीक्षणेन, कदा-
चित्कवितावितानालंकारायमाणोपमाद्यलंकारविवेचनेन, कदाचिदक्षरच्युतकमात्राच्युतकबिन्दुच्युतक-
चित्रबन्धविशेषादिशब्दालंकारकल्पनया, कदाचिन्मन्थानभूधरमथ्यमानपयःपारावारगर्भसमाविर्भूत-
लहरीपरम्परागर्वसर्वकषवचनप्रपञ्चः वावदूकैः समं वादकलया, कदाचिन्मधुरतरवाद्यगोष्ठीभिः,
कदाचिद्वाणागोष्ठीभिः, कदाचिच्छुकशिखण्डिहंससारसक्रौञ्चकरिकलभमल्लाद्यनेकाकारविकृतामर-
विस्तारयामास ॥४०॥ § ६६) एवमिति—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण बाललीलां बालक्रीडाम् अतिक्रान्तोऽतीत्य
गतः कोमारवयसि कौमारावस्थायां सुरकुमारैः देवबालकैः परिवृतः परिवेष्टितः, सहोत्पन्नानि मतिश्रुतावधय
एव लोचनानि यस्य स तथाभूतः जन्मप्रभृत्येव मत्यादिज्ञानत्रयसंपन्नः, सकलविद्या एव पारावारः सागर-
स्तस्थ पारदृश्या पारं दृष्टवान्, प्रत्यक्षीकृतं सम्यग्भ्यस्तं सकलवाङ्मयं यस्य तथाभूतः, पृथ्वीपतितनयो राजपुत्रः
कदाचित् जातुचित् व्यालोलश्चपलो मुक्ताकलापो मुक्ताहारो यस्य तथाभूतः, कलितमधुरालापः कृतमधुरशब्दः
संगीतप्रसङ्गेन संगीतावसरेण, कदाचित् आबद्धमायोजितं कविपुण्डरीकाणां कविश्रेष्ठानां मण्डलं परिषद् येन
तथाभूतः सन् काव्यप्रबन्धरचनेन कवितासंदर्भरचनेन, कदाचित् काव्यसागरे काव्यमहार्णवे नौकासकाशा
तरणितुल्या या छन्दोविवितिः छन्दःसमूहस्तस्या चारुतराणि श्रेष्ठतमानि यानि लक्षणप्रसरादीनि तेषां
परीक्षणेन, कदाचित् कवितावितानस्य कविताचन्द्रोपकस्य कवितासमूहस्य वा अलंकारायमाणा ये उपमाद्य-
लंकारास्तेषां विवेचनेन व्याख्यानेन, कदाचित् अक्षरच्युतकं, मात्राच्युतकं बिन्दुच्युतकं चित्रबन्धविशेषः
पद्मबन्ध-हारबन्धप्रभृतिचित्रबन्धविशेषः, तदादिशब्दालंकाराणां कल्पना तथा, कदाचित् मन्थानभूधरेण
मन्दराचलेन मथ्यमानो यः पयःपारावारः क्षीरसागरस्तस्य गर्भे मध्ये समाविर्भूता प्रकटिता या लहरीपरम्परा
तरङ्गसंततिस्तस्या गर्वस्य दर्पस्य सर्वकषः सर्वघाती वचनप्रपञ्चो वाक्समूहो यस्य तथाभूतः सन् वावदूकैः
वाचाटैः समं वादकलया शास्त्रार्थकलया, कदाचित् मधुरतरवाद्यगोष्ठीभिः अतिमधुरवाद्यप्रविष्टिभिः,
कदाचित् वीणागोष्ठीभिः विपञ्चीपरिषद्भिः, कदाचित् शुकः कीरः, शिखण्डी मयूरः, हंसी मरालः, सारसो
गोनर्दः, क्रौञ्चः पक्षिविशेषः, करिकलभो हस्तिशावकः, मल्लो बाहुयुद्धादिनिपुणः एतदाद्यनेकाकारैः विकृताः
यह राजपुत्र देवकुमारोंके साथ धूलिक्रीड़ाको विस्तृत करने लगा ॥४०॥ § ६६) एवमिति—
इस प्रकार बाललीलाको व्यतीतकर भगवान्ने कुमार अवस्थामें प्रवेश किया । उस समय
वे देवकुमारोंसे घिरे रहते थे, साथ ही उत्पन्न हुए मति श्रुत और अवधिज्ञान रूपी नेत्रोंसे
सहित थे, समस्त विद्यारूपी सागरके पारदर्शी थे, उन्होंने समस्त वाङ्मयको प्रत्यक्ष जान
लिया था, जिनका मोतियोंका हार हिल रहा था तथा जो मधुर आलाप भर रहे थे ऐसे राजपुत्र
वृषभ कभी संगीतके प्रसंगसे, कभी श्रेष्ठ कवियोंकी परिषद् बुलाकर काव्यप्रबन्धकी रचनासे,
कभी काव्यरूपी सागरमें नौकाके समान छन्दःसमूहके अत्यन्त सुन्दर लक्षणों आदिकी परीक्षा-
के द्वारा, कभी कवितारूपी चँदोवाके अलंकारोंके समान आचरण करनेवाले उपमा आदि
अलंकारोंके विवेचनसे, कभी अक्षरच्युतक मात्राच्युतक बिन्दुच्युतक तथा नानाप्रकारके चित्र
बन्ध आदि शब्दालंकारोंकी कल्पनासे, कभी मन्दरगिरिके द्वारा मथे जानेवाले क्षीरसागरके
भीतर उठती हुई लहरोंकी संततिके गर्वको समूल नष्ट करनेवाले वचनोंके विस्तारसे युक्त होते
हुए बहुत बोलनेवाले विद्वानोंके साथ वादकलासे, कभी अत्यन्त मधुर बाजोंकी गोष्ठियोंसे,
कभी वीणाकी गोष्ठियोंसे, कभी तोता मयूर हंस सारस क्रौंच पक्षी, हाथियोंके बच्चे तथा

कुमारपरिपाठनपटुनटनमृदुकूजितक्रेङ्कारोहणायोधनादिनानाविविधविनोदैः, कदाचित्समागतप्रकृति-जनरञ्जनवचनगुम्फेन, कदाचिदमराधिपप्रहितसुरतरूपसूनविरचितसुरभिदामौम्बरभूषणः सुरभिलेपनो मेघकुमारकल्पितधारागृहेषु जलकेलिविनोदेन, कदाचिन्नन्दनवनसमाने क्रीडावने पवनामर-मन्दमन्दवलनविरजीकृते वनक्रीडाव्यापारेण कालं निनाय ।

इत्यर्हदासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे पञ्चमः स्तवकः ॥५॥

५

कृतविक्रिया येऽमरकुमाः देवबालकास्तेषां क्रमेण परिपाठनं पटुनटनं, मृदुकूजितं, क्रेङ्कारो ध्वनिविशेषः आरोहणं समधिष्ठानं, आयोधनं युद्धकरणं तदादयः तत्प्रभृतयो ये नानाविविधविनोदा विविधकेलयस्तैः, कदाचित् समागतप्रकृतिजनानां समायातप्रजाजनानां रञ्जनो हर्षाकरो यो वचनगुम्फो वचनसरणिस्तेन, कदाचित् अमराधिपेन सुरेन्द्रेण प्रहितानि प्रेषितानि सुरतरूपसूनविरचितसुरभिदामानि अम्बराणि भूषणानि च यस्य तथाभूतः, सुरभिलेपनः सुगन्धिलेपनयुक्तः, मेघकुमारकल्पितधारागृहेषु स्तनितकुमारामररचितजलयन्त्रागारेषु १० जलकेलिविनोदेन जलक्रीडाविनोदेन, कदाचित् नन्दनवनसमाने नन्दनवनतुल्ये पवनामराणां वायुकुमारदेवानां मन्दमन्दवलनेन मन्दमन्दसंचारेण विरजीकृते निर्धूलीकृते क्रीडावने केल्युपवने वनक्रीडाव्यापारेण वनकेलिविनोदेन कालं निनाय व्यपगमयामास ।

इत्यर्हदासकृतेः पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती'समाख्यायां

संस्कृतव्याख्यायां पञ्चमः स्तवकः ॥५॥

१५

मल्ल आदिके अनेक आकारोंसे विक्रिया करनेवाले देवकुमारोंको क्रमसे पढ़ाना, अच्छी तरह नचाना, कोमल शब्द कराना, क्रेङ्कारध्वनि कराना, सवारी करना तथा कुश्ती लड़ाना आदि नानाप्रकारके विनोदोंसे, कभी आये हुए प्रजाजनोंको प्रसन्न करनेवाले वचनोंकी रचनासे, कभी इन्द्रके द्वारा भेजे हुए कल्पवृक्षके फूलोंसे निर्मित सुगन्धित मालाओं, वस्त्रों और आभूषणोंको धारण कर तथा सुगन्धित लेप लगाकर मेघकुमार देवोंके द्वारा निर्मित फव्वारोंके २० गृहोंमें जलक्रीडाके विनोदसे और कभी पवनकुमार देवोंके मन्द-मन्द चलनेसे धूलिरहित किये हुए नन्दनवन तुल्य क्रीडावनमें वनक्रीडाके व्यापारसे समयको व्यतीत करते थे ।

इस प्रकार अर्हदासकी कृति पुरुदेवचम्पू प्रबन्धमें

पाँचवाँ स्तवक समाप्त हुआ ॥५॥

षष्ठः स्तवकः

§ १) क्षोणीकल्पतरोजिनस्य तदनु प्राज्यप्रभावश्रियः

छायां काञ्चनमञ्जुलां विदधतो नाकाधिपानन्दिनीम् ।

तारुण्यामलमञ्जरी सुमहिता हृष्यतित्रिलोकीजन-

प्रोद्यन्नेत्रपरम्परामधुकरश्रेणीं सदातर्पयत् ॥१॥

५

§ २) तदानो निःस्वेदनिर्मलक्षीरगौरक्षतजसमचतुरस्र संस्थानवज्रवृषभनाराचसंहननसुरूप-
सुरभिस्वस्तिकनन्द्यावर्त्याद्यष्टात्तरशतलक्षणमसूरिकाप्रभृतिनवशतव्यञ्जनरञ्जिततप्तपनीयनिकास-
वर्णसंपूर्णपरमोदारिकशरीरस्य शस्त्रपाषाणातपवर्षाविवाग्निकाष्ठकण्टकविदोषसंभवाभयजरादि-

१०

§ ३) क्षोणीति—तदनु कीमारकालानन्तरम् प्राज्यप्रभावश्रियः प्राज्यप्रभावा प्रकृष्टप्रभावोपेता
श्रीशोभा यस्य तथाभूतस्य, नाकाधिपं सुरेन्द्रमावन्दयतीत्येवंशीला तां काञ्चनमिव सुवर्णमिव मञ्जुला
मनोहरा तां छायां कान्तिं विदधतः कुर्वतो विशेषेण दधतो वा पक्षे मञ्जुलां मनोहरां कांचन कामपि छाया-
मनातपं विदधतो जिनस्य जिनेन्द्रस्य क्षोणीकल्पतरोः पृथिवीकल्पवृक्षस्य अतिशयेन महिता सुमहिता सुशोभिता
पक्षे सुमैः पुष्पैर्हिता सुमहिता तारुण्यमेव यौवनमेव अमलमञ्जरी निर्मलपुष्पसंततिः हृष्यन्तः परमानन्दमनु-
भवन्तो ये त्रिलोकीजनास्त्रिभुवनपुरुषास्तेषां प्रोद्यन्ती प्रोच्छलन्ती वा नेत्रपरम्परा भयनपर्ववितरेव मधुकरश्रेणी-
भ्रमररिञ्जिता तां सदा सर्वदा अतर्पयत् तृप्तामकरोत् । रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥१॥

१५

§ ४) तदानोमिति—तदानो तारुण्यादसरे नस्य पूर्वोक्तस्य नाभिराजकुमारस्य भगवता वृषभदेवसौन्दर्य-
महिमानं लावण्यप्रभावम् आकलयितुं वर्णयितुं को वा कविः इष्टे समर्थोऽस्ति न कोऽपीत्यर्थः । अथ नाभिराज-
कुमारं विदोषयितुमाह—निःस्वेदेति—निःस्वेदं स्वेदरहितं, निर्मलं मलमूत्रादिबाधाविरहितं, क्षीरदग्गोरं
धवलं क्षतजं रुधिरं यस्य तथाभूतं, समचतुरस्रं संस्थानं यस्य तथाभूतं, वज्रवृषभनाराचः संहननं यस्य
तथाभूतं, सुष्ठु रूपं यस्य तथाभूतं सुरूपं, सुरभि सुगन्धि, स्वस्तिकनन्द्यावर्तदिनि यानि अष्टोत्तरशतलक्षणानि
तैर्लक्षितं सहितं, मसूरिकाप्रभृतीनि यानि नवशतव्यञ्जनाणि चिह्नानि तैर्विराजितं शोभितं, तप्तपनीयनिकासं
कनत्काञ्चनसंनिभं वर्णं रूपं यस्य तथाभूतं च परमोदारिकशरीरं यस्य तस्य, शस्त्रेति—शस्त्रं च पाषाणश्च

२०

§ १) क्षोणीति—तदनु—तदनन्तरं जिनकी प्रभावरूपी लक्ष्मी अत्यन्त श्रेष्ठ थी, तथा
जो इन्द्रको आनन्दित करनेवाली सुवर्णके समान सुन्दर कान्ति (पक्षमें किसी अनिर्वचनीय
सुन्दर छाया) को धारण कर रहे थे ऐसे जिनराजरूपी कल्पवृक्षका अत्यन्त सुशोभित (पक्षमें
फूलोंसे हित करनेवाली) यौवनरूपा निर्मल मञ्जरीने हर्षित होते हुए त्रिलोकवर्ती मनुष्योंकी
विकसित नेत्रपंक्तिरूपी भ्रमर पंक्तिको सदा सन्तुष्ट किया था ॥१॥ § २) तदानोमिति—
उस समय जिनका परमौदारिक शरीर पसीनासे रहित था, मलमूत्रसे शून्य था, दूधके
समान सफेद रुधिरसे युक्त था, समचतुरस्रसंस्थान तथा वज्रवृषभनाराचसंहननसे सहित
था, अत्यन्त सुन्दर था, सुगन्धित था, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त आदि एकसौ आठ लक्षणोंसे
सहित था, मसूरिका आदि नौ सौ व्यञ्जनोंसे सुशोभित था तथा तपाये हुए सुवर्णके समान
वर्णसे परिपूर्ण था, जो शस्त्र पाषाण घाम वर्षा विष अग्नि काष्ठ कंटक वातादि तीन दोषोंसे

२५

३०

बाधाविदूरस्य मृदुमधुरगम्भीरोदारप्रियहितमितवचनसारस्य चतुरस्रराशोतिपूर्वलक्षितानपवर्त्ययुषः
सौन्दर्यविजितमारस्य तस्य नाभिराजकुमारस्य सौन्दर्यमहिमानमाकलयितुं को वा कविरोष्टे ।
अथापि तदीयभक्तिरेव मां मुखरयति वनप्रियमिव वासन्तलक्ष्मीः ।

§ ३) तरुषु स्थितमेव पुष्पवृन्दं फलहेतुर्भुवने चिराय दृष्टम् ।

सुरभूजसुमं जिनस्य मूर्ध्नि स्थितमासीत्सफलं विचित्रमेतत् ॥२॥

§ ४) संत्यक्तुं सकलङ्कतां मुखतया जातं निशानायकं

दृष्ट्वा तद्वनिता निशा जिनपतेः केशात्मनाजायत ।

दोषाख्यामपहातुमित्युपगताशङ्का विशङ्कामहे

नोचेतत्र कथं नवोत्पलरुचिर्हन्तोत्तमश्वोरपि ॥३॥

आतपश्च वर्षं च, त्रिषं च अग्निश्च काष्ठश्च कण्टकश्च त्रिदोषसंभवामयाश्च वातादिजनितरोगाश्च, जरा १०
वार्धक्यं चेत्येषां द्वन्द्वस्तदादिबाधाविदूरस्य तत्प्रभृतिकष्टदूरवर्तिनः, मृदु मधुरं गम्भीरं उदारं प्रियं हितं मितं च
यद् वचनं तेन सारस्य श्रेष्ठस्य, चतुरस्रराशोतिपूर्वलक्षणेन उपलक्षितं सहितम् अनपवर्त्यमकालमरणरहितम्
आयुर्यस्य तस्य, चतुरशोतिलक्षवर्षाणामेकं पूर्वाङ्गं भवति, चतुरशोतिलक्षपूर्वाङ्गानामेकं पूर्वं भवति, इत्थं
चतुरशोतिलक्षपूर्वप्रमितं वृषभदेवस्यायुरासीत्, सौन्दर्येण लावण्येन विजितो मारो भवनो येन तस्य । अथापि
सौन्दर्याकलनसामर्थ्याभावेऽपि वनप्रियं कोकिलं वासन्तलक्ष्मीरिव वसन्तर्तुसंघन्विश्वोरिव तदीयभक्तिरेव मां १५
कवि मुखरयति वाचलयति । उपमा । § ३) तरुष्विति—तरुषु वृक्षेषु स्थितमेव पुष्पवृन्दं कुसुमसमूहः भुवने
जगति चिराय चिरकालेन फलहेतुः फलकारणं दृष्टं समबलोक्तिं किं तु सुरभूजसुमं कल्पानोकहकुसुमं जिनस्य
वृषभदेवस्य मूर्ध्नि शिरसि स्थितमेव विद्यमानं सदेव सफलं फलसहितं पक्षे सार्थकम् आसीत्, एतद् विचित्र-
माश्चर्यकरमित्यर्थः ॥२॥ § ४) संत्यक्तुमिति—सकलङ्कतां सपापतां पक्षे सलाञ्छनतां संत्यक्तुं मोक्तुं
मुखतया वक्त्ररूपेण जातं समुत्पन्नं निशानायकं चन्द्रममं दृष्ट्वा विलोक्य तस्य निशानायकस्य वनिता स्त्री २०
तद्वनिता निशा रजनी दोषाख्यां दोषाणामवगुणानामाख्यां पक्षे दोषा रात्रिरिति आख्या नाम ताम् अपहातुं
त्यक्तुं जिनपतेजिनेन्द्रस्य केशात्मना कचरूपेण अजायत समुदपद्यत, इतीत्यम् उपगता प्राप्ता शङ्का येषां
तथाभूता वयं विशङ्कामहे संशयं कुर्मः । नो चेत् एवं न स्यात् यदि तर्हि तत्र नवोत्पलरुचिः प्रत्यग्रविकसित-
नीलकमलकान्तिः उत्तमश्वोरपि उद्गतं तमं तिमिरं उत्तमं तस्य श्रोः शोभापि कथं आसीत् निशायामेव

उत्पन्न होनेवाले रोग, तथा बुढ़ापा आदिकी बाधाओंसे बहुत दूर थे, कोमल मधुर गम्भीर २५
उदारप्रिय हित तथा परिमित वचनोंसे श्रेष्ठ थे, चौरासी लाख पूर्वकी जिनकी अनपवर्त्य—
बीचमें न छिदनेवाली आयु थी और सौन्दर्यसे जिन्होंने कामदेवको जीत लिया था ऐसे
उन वृषभदेव सम्बन्धी सुन्दरताकी महिमाको आँकनेके लिए कौन कवि समर्थ है ? अर्थात्
कोई नहीं । फिर भी जिस तरह वसन्तकी लक्ष्मी कोयलको मुखरित करती है उसी प्रकार उन-
की भक्ति ही मुझे मुखरित करती है । § ३) तरुष्विति—संसारमें चिरकालसे फूलोंका समूह ३०
वृक्षोंपर स्थित रहता हुआ ही फलका हेतु देखा गया है परन्तु कल्पवृक्षका फूल जिनराजके
मस्तकपर स्थित होता हुआ सफल—फलसहित (पक्षमें सार्थक) हुआ था यह विचित्र
बात है ॥२॥ § ४) संत्यक्तुमिति—अपनी सकलङ्कता—पापसहित वृत्तिको (पक्षमें लाञ्छन-
सहित वृत्तिको) छोड़नेके लिए निशानायक चन्द्रमाको भगवान् के मुखरूपसे उत्पन्न हुआ
देख उसकी स्त्री रात्रि अपनी दोषाख्या—दोषपूर्व नामको (पक्षमें 'दोष' इस नामको) ३५
छोड़नेके लिए जिनराजके केशरूपसे उत्पन्न हो गयी थी इस प्रकारकी आशंका रखते हुए
हम शंका करते हैं क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वहाँ रात्रिमें खिलनेवाले नवीन उत्पलोंकी

§ ५) तस्य किल वदनं प्रौढशोभनक्षत्राधिपं सकलमहीभृन्मस्तकसेव्यमानपादं निखिल-
दिगन्तेषु व्यवस्थापितकरं महितशोभनवसुधाधिपतिविख्यातं संवर्धितभुवनपति राजानमेव निज-
प्रौढिम्ना न जिगाय, वनवासिनं कलितमहातपस्थितिं सदापरागरुचिशोभितं कुशेशयनिकरं जिगायेति
किं चित्रम् ।

- नीलोत्पलकान्तिः समुद्गततिमिरश्रीश्च युज्यते पक्षे नीलोत्पलतुल्यकान्तिः उत्कृष्टलक्ष्मीश्च । हन्तेति पादपूर्ती ।
५ श्लेषोत्प्रेक्षा । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥३॥ § ५) तस्येति—तस्य किल भगवतो वदनं मुखं जिनप्रौढिम्ना
स्वकीयसामर्थ्येन राजानमेव चन्द्रमसमेव पक्षे नृपतिमेव न जिगाय जितवान् किंतु कुशेशयनिकरं कमलसमूहं
पक्षे तपस्विसमूहमपि जिगायेति किं चित्रम् । किमाश्चर्यम् । न किमपीत्यर्थः । अथ राजानं वर्णयितुमाह—
प्रौढशोभनक्षत्राधिपं प्रौढा शोभा येषां तानि प्रौढशोभानि प्रकृष्टशोभासहितानि यानि नक्षत्राणि भानि तेषा-
मधिपस्तं चन्द्रमसं पक्षे प्रौढं शोभनं येषां ते प्रौढशोभनाः ते च ते क्षत्राश्चेति प्रौढशोभनक्षत्रास्तेषामधिपस्तं
१० नृपतिम्, सकलमहीभृन्मस्तकसेव्यमानपादं—सकलमहीभृतां निखिलपर्वतानां मस्तकैः शिखरैः सेव्यमानाः पादाः
किरणा यस्य तं चन्द्रमसं पक्षे सकलमहीभृतां निखिलनरेन्द्राणां मस्तकैर्मूर्धभिः सेव्यमानाः पादौ चरणौ यस्य
तं नृपतिम्, निखिलदिगन्तेषु सर्वकाष्ठान्तेषु व्यवस्थापितकरं व्यवस्थापिताः कराः किरणा यस्य तं चन्द्रमसं पक्षे
व्यवस्थापिता कराः राजस्वानि यस्य तं नृपतिं, महितशोभनवसुधाधिपतिविख्यातं महिता प्रशस्ता शोभा यस्या-
स्तथाभूता या वसुधा प्रत्यग्रपीयूषं तस्या अधिपतिः स्वामीति विख्यातस्तं चन्द्रमसं पक्षे महितं शोभनं यस्या-
१५ स्तथाभूता या वसुधा पृथिवी तस्या अधिपतिः स्वामीति विख्यातस्तम्, संवर्धितभुवनपतिं संवर्धितः समुद्वेलितो
भुवनपतिः समुद्रो येन तथाभूतस्तं चन्द्रमसं पक्षे संवर्धिताः समुल्लासिता भुवनपतयो राजानो येन तं नृपतिम् ।
अथ कुशेशयनिकरं विशेषयितुमाह—कुशेशयनिकरं कुशे जले शेरत इति कुशेशयानि कमलानि तेषां
निकरं समूहं पक्षे कुशे दर्भे शेरत इति कुशेशयास्तपस्विनस्तेषां निकरं समूहं । उभयोः सादृश्यं यथा—
वनवासिनं कमलनिकरपक्षे जलवासिनं तपस्विनिकरपक्षे काननवासिनम्, कलितमहातपस्थितिं—कलिता
२० कृता महातपे महाधर्मे स्थितिर्येन तं कमलनिकरं पक्षे कलिता कृता महातपसि प्रचण्डतपश्चरणे स्थितिर्येन
तं तपस्विनिकरं, सदापरागरुचिशोभितं—सदा सर्वदा परागस्य रजसो रुच्या 'कान्त्या' शोभितस्तं
कमलनिकरं पक्षे सदा सर्वदा अपरागे वीतरागे रुचिः श्रद्धा तथा शोभितस्तं तपस्विनिकरम् । श्लेषोपमा ।

- कान्ति और उत्पन्न हुए तम—अन्धकारकी शोभा भी कैसे रहती (पक्षमें नीलोत्पन्न तुल्य
कान्ति और उत्कृष्ट अन्धकारकी शोभा कैसे रहती ?) ॥३॥ § ५) तस्येति—उन वृषभ
२५ जिनेन्द्रके मुखने अपनी सामर्थ्यसे प्रौढशोभ-नक्षत्राधिप—अत्यन्तशोभायमान नक्षत्रोंके
स्वामी, समस्त पर्वतोंके शिखरोंसे सेवनीय किरणोंसे युक्त, समस्त दिशाओंके अन्तमें व्यव-
स्थापितकर—किरणोंसे सहित, अतिशयसुशोभितनूतनसुधाके स्वामी रूपसे विख्यात तथा
भुवनपति—समुद्रको समुद्वेलित करनेवाले चन्द्रमाको ही (पक्षमें प्रौढशोभन-क्षत्राधिप—
अतिशय शोभायमान क्षत्रियोंके स्वामी, समस्त राजाओंके सेवनीय चरणोंसे युक्त,
३० समस्त दिशाओंके अन्त तक टैक्स (कर) स्थापित करनेवाले, अतिशयसुशोभित वसुधाके
स्वामीरूपसे विख्यात तथा राजाओंको समुल्लासित करनेवाले नृपतिको ही) नहीं
जीता था किन्तु वनवासी—जलमें निवास करनेवाले, महातप—तीक्ष्ण धामसे स्थित
रहनेवाले तथा सदा परागकी कान्तिसे सुशोभित कुशेशयनिकर—कमलोंके समूहको
भी (पक्षमें अरण्यवासी, महान् तपमें स्थिति रखनेवाले और सदा वीतरागकी
३५ श्रद्धासे सुशोभित तपस्वियोंके समूहको भी) जीत लिया था इसमें क्या आश्चर्य है ?

§ ६) भुवनत्रितयातिशायिशोभां स्फुटरेखात्रितयेन दर्शयन्तम् ।
गलमस्य निरीक्ष्य हन्त शङ्खस्त्रयया वारिनिधौ ममज्ज नूनम् ॥४॥

§ ७) तस्य वक्षःस्थलं विद्यो लक्ष्म्या निर्वृतिमन्दिरम् ।
यत्र मुक्ता विराजन्ते सदा शुद्धाः स्फुरद्बुचः ॥५॥

§ ८) परमहिमयुतं तदीयवक्षःस्थलमिच्छन्ति हिमालयं कवीन्द्राः ।
तदुचितमुरुहारकान्तिगङ्गा यदपतदत्र परीतपद्मरागा ॥६॥

§ ९) मिथ्यात्वात्पततो धर्मगजो नाभिसरसि निमज्ज ।
अस्यान्यथा कथं स्यान्मदधारा रोमराजिकपटेन ॥७॥

§ ६) भुवनेति—स्फुटरेखात्रितयेन प्रकटितरेखात्रयव्याजेन भुवनत्रयस्य लोकत्रयस्यातिशायिनी या शोभा तां त्रिजगज्जित्वरशोभां दर्शयन्तं प्रकटयन्तम् अस्य भगवतो गलं कण्ठं निरीक्ष्य शङ्खः कम्बुः १०
नूनं निश्चयेन त्रयया लज्जया वारिनिधौ सागरे ममज्ज मग्नोऽभूत् । उत्प्रेक्षालंकारः । शङ्खातिशायस्य गलोऽभूदिति भावः ॥४॥ § ७) तस्येति—तस्य भगवतो वक्षःस्थलमुरःस्थलं लक्ष्म्याः श्रियः निर्वृतिमन्दिरं संतोषस्थानं पक्षे निर्वाणस्थानं विद्यो जानीमहे यत्र वक्षःस्थले सदा सततं शुद्धा निर्दोषाः पक्षे कर्मकलङ्करहिताः स्फुरद्बुचः स्फुरन्ती देदीप्यमाना रुक् कान्तिर्यासां तथाभूताः पक्षे स्फुरन्ती रुक् श्रद्धा येषां ते तथाभूताः मुक्ताः मुक्ताफलानि पक्षे सिद्धपरमेष्ठिनः विराजन्ते शोभन्ते । श्लेषोपमा ॥५॥ § ८) परमेति— १५
कवीन्द्राः कविराजाः तदीयवक्षःस्थलं हिमालयं हिमस्यालयस्तं हिमाचलं अथ च हि निश्चयेन मालयं माया लक्ष्म्या आलयं भवनम् । उभयोः सादृश्यं यथा—परमहिमयुतं वक्षःस्थलपक्षे परश्चासौ महिमा चेति परमहिमा तेन युतं सहितं श्रेष्ठमाहात्म्यसहितं हिमालयपक्षे परमहिमेन श्रेष्ठतुषारेण युतं सहितम् । यद् इच्छन्ति समभिलषन्ति तदुचितं योग्यम् अस्तीति शेषः । यद् यस्मात् कारणात् अत्र वक्षःस्थले परीत- २०
पद्मरागा परीतो व्याप्तः पद्मानां कमलानां रागो यस्यां तथाभूता पक्षे परीता मध्ये मध्ये गुम्फिताः पद्मरागा लोहितमणयो यस्यां तथाभूता, उरुहारकान्तिगङ्गा उरुहारकान्तिरेव विशालहारदीप्तिरेव गङ्गा मन्दाकिनी, पक्षे उरुहारकान्तिर्गङ्गेव इति उरुहारकान्तिगङ्गा अपतत् पतिता । श्लेषरूपकोपमाः । पुष्पिताग्रा छन्दः ॥६॥
§ ९) मिथ्यात्वेति—मिथ्यात्वमेवातपो धर्मस्तेन तप्तो व्याकुलीकृतो धर्मगजो धर्मकरी अस्य भगवतो नाभिसरसि नाभिजलाशये निमज्ज निमग्नोऽभूत् । अन्यथा इतरथा चेत्तर्हि रोमराजिकपटेन लोमलेखा-

§ ६) भुवनेति—साफ-साफ दिखनेवाली तीन रेखाओंके द्वारा तीन लोकसे बढकर शोभाको २५
दिखलाते हुए इनके कण्ठको देखकर शंख लज्जासे ही मानो समुद्रमें डूब गया था ॥४॥
§ ७) तस्येति—हम उनके वक्षःस्थलको लक्ष्मीका संतोषभवन अथवा मुक्तिभवन मानते हैं क्योंकि उसमें सदा शुद्ध—निर्दोष (पक्षमें कर्मकालिमासे रहित) और स्फुरद्बुच्—देदीप्यमान कान्तिसे युक्त (पक्षमें समीचीन श्रद्धासे युक्त) मुक्ता—मोती (पक्षमें सिद्धपरमेष्ठी) सुशोभित रहते हैं ॥५॥ § ८) परमेति—बड़े-बड़े कविराज उनके वक्षःस्थलको हिमालय १०
मानते हैं यह उचित है क्योंकि वक्षःस्थल भी हिमालयके समान परमहिमयुत—उत्कृष्ट हिमसे युक्त (पक्षमें उत्कृष्ट महिमासे सहित) था और उसपर परीतपद्मरागा—कमलोंकी लालीसे व्याप्त विशाल हारकी कान्तिरूपी गंगा नदी पड़ती थी (पक्षमें पद्मराग मणियोंसे युक्त, गंगानदीके समान विशाल हारकी कान्ति पड़ रही थी) ॥६॥ § ९) मिथ्यात्वेति—
मिथ्यात्वरूपी घामसे संतप्त हुआ धर्मरूपी हाथी इनके नाभिरूपी सरोवरमें गोता लगा गया ३५

§ १०) तस्य किल करसरोरुहानिरन्तरनिर्मितदानप्रभावेण स्वर्णत्वमुपगता दीना नदीना बभूवुरिति युज्यते, ते पुनर्लक्ष्मीकुमाराः कथमासन्निति सविस्मयमास्महे ।

§ ११) आस्थितो दशभवाञ्जिनचन्द्रो निष्कलङ्कविदितो भवितेति ।

नूनमिन्दुरकरोद्दशभावांस्तस्य हस्तनखरूपमुपेत्य ॥८॥

§ १२) सदाखण्डलाभिख्यमाक्रान्तनेत्रं बलघ्नं बलघ्नं वरस्यास्य विद्मः ।

स्फुरद्रत्नकाञ्चीसुवज्रायुधाढ्यं स्वराजत्वजुष्टं धनश्रीसमेतम् ॥९॥

- व्याजेन मदधारा दानसंततिः कथं स्यात् । रूपकोत्प्रेक्षा । आर्या ॥७॥ § १०) तस्येति—तस्य किल भगवतः करसरोरुहाम्यां पाणिपद्माभ्यां निरन्तरं सततं निर्मितं रचितं यद्दानं त्यागस्तस्य प्रभावेण दानसलिलमहिम्नेति यावत् स्वर्णत्वं काञ्चनत्वं पक्षे जलत्वम् उपगताः प्राप्ता दीना निर्धना जना न दीना इति नदीना न निर्धनाः सधना इति यावत् बभूवुः अथ च नदीनामिना नदीनाः सागरा बभूवुरिति च युज्यते युक्तं प्रतिभाति, किंतु ते लक्ष्मीकुमाराः लक्ष्मीपुत्राः कथम् आसन् बभूवुः इति सविस्मयं साश्चर्यम् आस्महे तिष्ठामः । श्लेषः ॥ § ११) आस्थित इति—दशभवान् महाबलप्रभृतीन् दशभवान् आस्थितः प्राप्तो जिनचन्द्रो जिनेन्द्रचन्द्रः निष्कलङ्कः इति विदितो निष्कलङ्कविदितः कर्मकालिमारहितो भविता भविष्यतीति हेतोः नूनं निश्चयेन इन्दुश्चन्द्रः तस्य भगवतो हस्तनखरूपं हस्तयोर्नखानि हस्तनखानि तेषां रूपं समाकारम् उपेत्य प्राप्य दशभावान् १५ दशपर्यायान् अकरोत् विदधे । उत्प्रेक्षा ॥८॥ § १२) सदेति—वरस्य श्रेष्ठस्य अस्य भगवतो बलघ्नं मध्यं 'मध्यमं चावलघ्नं' चेत्यमरः । भागुरिमतेऽवेत्यस्याकारलोपः बलघ्नं बलारिम् इन्द्रमित्यर्थः विद्मो जानीमः । अथोभयोः सादृश्यमाह—तत्र मध्यमपक्षे सदाखण्डलाभिख्यं सती प्रशस्ता अखण्डला खण्डरहिता अभिख्या शोभा यस्य तत्, इन्द्रपक्षे सदा सर्वदा आखण्डल इति अभिख्या नाम यस्य स तम्, 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः । आक्रान्तनेत्रं आक्रान्तं परिवृत्तं नेत्रं वस्त्रं यस्य तत् तथाभूतं मध्यं, आक्रान्तानि धृतानि नेत्राणि २० सहस्रनयनानि यस्य स तं इन्द्रम्, स्फुरद्रत्नकाञ्चीसुवज्रायुधाढ्यं स्फुरद्रत्नकाञ्चीव देदीप्यमानमणिखचित-मेखलेव सुवज्रायुधं शक्रशरासनं तेन आढ्यं सहितं, इन्द्रं, मध्यपक्षे स्फुरद्रत्नकाञ्ची सुवज्रायुधमिव इति स्फुरद्रत्नकाञ्चीसुवज्रायुधं तेन आढ्यं सहितं, स्वराजत्वजुष्टं स्वस्य राजत्वं राज्यमिति स्वराजत्वं तेन जुष्टं सेवितं मध्यं, पक्षे राजा शक्रः तस्य भावो राजत्वं शक्रत्वमित्यर्थः स्वस्य राजत्वं, स्वराजत्वं तेन जुष्टं सेवितं

- था यदि ऐसा न होता तो रोमराजिके छलसे इसकी मदधारा कैसे होती ? ॥७॥ § १०) तस्येति—उनके हस्तकमलोंके द्वारा निरन्तर निर्मित दानके प्रभावसे स्वर्णत्व—सुवर्णपनेको प्राप्त कर दीन मनुष्य नदीन—धनवान् हो गये थे (पक्षमें दानजलके द्वारा स्वर्ण—उत्तम जलको पाकर नदीन—समुद्र बन गये थे) यह तो हो सकता है किन्तु वे लक्ष्मीपुत्र कैसे हो गये यह विचारकर हम आश्चर्य सहित हैं । § ११) आस्थित इति—महाबल आदि दश-भवोंको प्राप्त हुआ जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा निष्कलंक हो जावेगा यह विचारकर ही मानो चन्द्रमाने उनके हाथोंके नखोंका रूप प्राप्त कर दश भाव—दश पर्याय धारण की थी ॥८॥ § १२) सदेति—हम श्रेष्ठ जिनेन्द्र भगवान्के मध्य भागको इन्द्र समझते हैं क्योंकि जिस प्रकार इन्द्र सदाखण्डलाभिख्य—निरन्तर आखण्डल इस नामसे सहित है उसी प्रकार मध्य भाग भी सदाखण्डलाभिख्य—प्रशस्त तथा अखण्ड शोभासे युक्त था, जिस प्रकार इन्द्र आक्रान्तनेत्र—एक हजार नेत्रोंसे सहित है उसी प्रकार मध्यभाग भी आक्रान्तनेत्र—वस्त्रसे सहित था, जिस प्रकार इन्द्र देदीप्यमान मणिमेखलाके समान उत्तम इन्द्रधनुषसे सहित है उसी प्रकार मध्यभाग भी इन्द्रधनुषकी तुलना करनेवाली देदीप्यमान मणिमेखलासे सहित था, जिस प्रकार इन्द्र स्वराजत्वजुष्ट—अपने इन्द्रपनेसे सहित है उसी प्रकार मध्यभाग

§ १३) तस्य खलु सक्थिदण्डः करभ-कलभकर-कदलिखण्डाश्च परस्परं समानाः परंतु ते कान्तिकल्लोलैरुरवः अयं तु मुख्यवर्णदैर्घ्यवशादूरुरिति विशेषः ।

§ १४) पादाङ्गुष्ठनखानांशुराजिकलितं जङ्घायुगं श्रीपते-

हेमस्तम्भशिखानिखातरजतश्रीशृङ्खलाशालिनीम् ।

दोलां हन्त जहास हर्षविहरत्सद्धर्मलक्ष्म्यास्तथा

कंदर्पद्विरदस्य बद्धनिगलामालानलीलां दधे ॥१०॥

§ १५) इष्टार्थदानाद्वर्णाच्च सुरागौ चरणौ विभोः ।

अथापि पल्लवं चित्रमधश्चक्रतुरुज्ज्वलम् ॥११॥

‘राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः’ इतिः विश्वः । घनश्रीसमेतं विपुलं शोभासहितं मध्यं, विपुललक्ष्मी-सहितम् इन्द्रम्, अथवा घनस्य स्ववाहनस्य श्रिया शोभया समेतं, इन्द्रस्य मेघवाहनत्वं प्रसिद्धम् । श्लेषोपमा । १०
भुजङ्गप्रयातं छन्दः ॥९॥ § १३) तस्येति—तस्य खलु भगवतः सक्थिदण्ड ऊरुदण्डः ‘सक्थि वलीबे पुमानूरुः’ इत्यमरः । करभः मणिबन्धादारम्य कनिष्ठिकापर्यन्तः करस्य बहिर्भागः ‘मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः’ इत्यमरः । कलभकरः करिशावकशुण्डा, कदलिखण्डो मोचाप्रकाण्डः, एषां द्वन्द्वे करभ-कलभकर-कदलिखण्डाश्च परस्परं मिथो समानाः सदृशाः परंतु ते करमादयः कान्तिकल्लोलैः दीप्तिसंततिभिः उरवः श्रेष्ठाः अयं तु सक्थिदण्डस्तु मुख्यवर्ण आद्याधरस्तस्य दैर्घ्यं गुरुत्वं तस्य वशात् ऊरुः इति विशेषः । § १४) पादाङ्गुष्ठेति— १५
पादाङ्गुष्ठयोर्नखानां नखराणां या अंशुराजिः किरणसंततिस्तया कलितं सहितं श्रीपतेर्भगवतः जङ्घायुगं प्रसृता-युगलं हर्षेण मोदेन विहरन्ती क्रोडन्ती या सद्धर्मलक्ष्मीः प्रशस्तधर्मश्रीस्तस्याः हेमस्तम्भयोः सुवर्णस्तम्भयोः शिखयोरग्रभागयोर्निखाता संलग्ना या रजतश्रीशृङ्खला रौप्यश्रीहिञ्जीरिका तथा शालिनीं शोभिनीं दोलां दोलनवल्लीं ‘झूला’ इति प्रसिद्धां जहास हसति स्म हन्त हर्षं, तथा उपमान्तरमाह—कंदर्पद्विरदस्य कामकिरणः बद्धो निगलो यस्यां तथाभूतां बद्धनिगलां आलानलीलां बन्धस्तम्भशोभां दधे । उपमा । शार्दूलविक्रीडितं २०
छन्दः ॥१०॥ १५) § इष्टार्थेति—विभोः भगवतः चरणौ इष्टार्थदानाद् वाञ्छितार्थप्रदानात् वर्णाच्च रूपाच्च सुरागौ सुराणां देवानामगौ वृक्षौ सुरागौ कल्पवृक्षावित्यर्थः यक्षे सुष्ठु रागो लालिमा यद्योस्ती । अथापि तथापि उज्ज्वलं शोभमानं पल्लवं किसलयम् अधश्चक्रतुर्नैश्चक्रतुरिति चित्रं वृक्षाणां पल्लवा उपरि भवन्ति अत्र तु वैपरीत्यं ततश्चित्रमाश्चर्यकरमिति भावः, अथ च चरणौ सुरागौ पल्लवं किसलयं अधश्चक्रतुः तिरश्चक्रतुः रक्तत्वातिशयादिति भावः । अथ च पदोश्चरणयोर्लवस्तलरूपांश इति पल्लवस्तं पत्तलमित्यर्थः अधश्चक्रतुः २५

भी स्वराजत्वजुष्ट—अपने आपकी शोभासे सहित था और जिस प्रकार इन्द्र घनश्री-समेत—बहुत भारी लक्ष्मी अथवा अपने वाहनभूत मेघोंकी शोभासे सहित होता है उसी प्रकार मध्यभाग भी घनश्रीसमेत—बहुत भारी शोभासे सहित था ॥९॥ § १३) तस्येति— निश्चयसे उनका सक्थिदण्ड, करभ, हाथीके बालककी सूँड़ और केलाका प्रकाण्ड परस्पर समान थे—एक सदृश चढ़ाव-उतारकी लिये हुए थे परन्तु वे सब कान्तिकी परम्परासे उरु— ३०
श्रेष्ठ थे और सक्थिदण्ड प्रथम अक्षरकी दीर्घताके कारण ऊरु था यह विशेषता थी । § १४) पादाङ्गुष्ठेति—पैरोंके अंगूठों सम्बन्धी नखोंकी किरणपङ्क्तिसे युक्त भगवान्की जंघाओंका युगल, हर्षसे क्रीड़ा करती हुई समीचीन धर्मरूपी लक्ष्मीके उस झूलाकी हँसी कर रहा था जो कि सुवर्णमय स्वम्भोंके अग्रभागमें बँधी हुई चाँदीकी सांकलसे सुगोभित हो रहा था । अथवा कामदेवरूपी हाथीके उस बन्धस्तम्भकी शोभाको धारण कर रहा था ३५
जिसमें वेड़ी बँधी हुई थी ॥१०॥ § १५) इष्टार्थेति—भगवान्के चरण, इष्ट अर्थके देनेसे तथा रूप-रंगसे सुराग थे—कल्पवृक्ष थे, लालवर्णके थे फिर भी आश्चर्य है कि उन्होंने पल्लवको

§ १६) तदनु नाभिराजनरपालस्तनयस्य यौवनारम्भमेवं विजृम्भितं समीक्ष्य वीतरागस्य विवाहप्रारम्भो दुर्घटः । एष किल हठाभ्यर्थादातीत इव मत्तदन्तावलस्तपसे वनं प्रविशेत् । तथापि काललब्धिरस्य प्रतीहारी समागमिष्यति यावत्तावत्पर्यन्तं लोकानुरोधेन पवित्रचरित्रं कलत्रं परिणाययितुमुचितमिति संचिन्त्य समासाद्य च समीपं देवस्य ससान्त्वमेवमवोचत ।

५ § १७) त्रिभुवनपते ! देव ! श्रोमन्स्वभूरसि हेतव-

स्तव वयमिहोत्पत्तौ पूर्वक्षमाधरवद्रवेः ।

इति दृढमथाप्यस्मद्वाणीं न लङ्घितुमर्हसि

त्रिदशविनुतो यस्मात्तस्माद्गुरुननु मन्यसे ॥१२॥

§ १८) मतिं विधेहि लोकस्य सर्जनं प्रति सम्प्रति ।

१० तथाविधं त्वामालोक्य लोकोऽप्येवं प्रवर्तताम् ॥१३॥

नीचैश्चक्रतुः । श्लेषः ॥११॥ § १६) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं नाभिराजनरपालः तनयस्य पुत्रस्य भगवतो वृषभदेवस्येत्यर्थः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण विजृम्भितं वृद्धिगतं यौवनारम्भं ताहण्यारम्भं समीक्ष्य विलोक्य वीतरागस्य रागरहितस्य विवाहप्रारम्भो दुर्घटो दुःशक्पः । एष किल भगवान् हठात् प्रसह्य मर्यादातीतो मत्तदन्तावल इव मत्तद्विरद इव तपसे तपस्यार्थं वनं प्रविशेत् । तथापि अस्य तपसः प्रतीहारी द्वारपालिका
१५ काललब्धिः यावत् समागमिष्यति तावत्पर्यन्तं, लोकानुरोधेन लोकानुग्रहनिवेदनेन पवित्रचरित्रं पवित्राचारं कलत्रं भार्या परिणाययितुं विवाहयितुम् उचितं योग्यम्, इति संचिन्त्य देवस्य भगवतः समीपं पार्श्वं समासाद्य च एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण ससान्त्वं सान्त्वनासहितं यथा स्यात्तथा अवोचत् जगाद । § १७) त्रिभुवनेति—हे त्रिभुवनपते हे त्रिजगन्नाथ ! हे देव ! हे श्रीमन् ! त्वं स्वभूः स्वेन भवतीति स्वभूः कारणान्तरनिरपेक्षः असि, तव भवतः इहास्मिन् लोके उत्पत्तौ जन्मधारणे वयं रवेः प्रभाकरस्योत्पत्तौ पूर्वक्षमाधरवदुदयाचल इव हेतवः स्मः,
२० इति दृढं निश्चितम् । अयापि स्वस्य कारणान्तरनिरपेक्षत्वेऽपि यस्मात् कारणात् त्वं त्रिदशविनुतो देवनमस्कृतः तस्मात् गुरुन् गुरुजनान् अनुमन्यसे सत्करोषि, ततः अस्मद्वाणीं मद्भारतीं लङ्घितुम् उल्लङ्घयितुं नार्हसि योग्यो नासि । हरिणीछन्दः ॥१२॥ § १८) मतिमिति—सम्प्रति साम्प्रतं लोकस्य जगतः सर्जनं सृष्टिं प्रति मतिं बुद्धिं विधेहि कुरु । त्वां तथाविधं लोकसर्जनीयतम् आलोक्य दृष्ट्वा लोकोऽपि अन्यजनोंऽपि एवं प्रवर्तताम् प्रवृत्ति

नीचे किया था (पक्षमें तिरस्कृत किया था) ॥११॥ § १६) तदन्विति—तदनन्तर राजा
२५ नाभिराजने पुत्रके इस तरह वृद्धिको प्राप्त हुए यौवनारम्भको देखकर विचार किया कि वीतरागका विवाह प्रारम्भ करना कठिन है । यह मर्यादाको लाँघनेवाले मत्त हाथीके समान हठपूर्वक तपके लिए वनमें प्रवेश कर सकते हैं । फिर भी इस तपकी प्रतीहारीके समान काललब्धि जबतक आवेगी तबतकके लिए लोकोपकारके अनुरोधसे पवित्र चरित्रवाली स्त्रीका विवाह कराना उचित है । इस प्रकारका विचार कर वे भगवान्के पास पहुँचे और सान्त्वना पूर्वक इस प्रकारके वचन कहने लगे । § १७) त्रिभुवनेति—हे त्रिलोकीनाथ ! हे देव ! हे श्रीमन् ! आप स्वयम्भू हैं आपकी यहाँ उत्पत्तिमें हम उसी तरह कारण हैं जिस तरह कि सूर्यकी उत्पत्तिमें पूर्वाचल कारण है यह निश्चित है । फिर भी आप मेरी वाणीका उल्लंघन करनेके योग्य नहीं हैं क्योंकि देवोंके द्वारा स्तुत होनेसे आप गुरुजनोंका सम्मान करते हैं ॥१२॥ § १८) मतिमिति—इस समय आप लोककी सृष्टिकी ओर बुद्धि लगाइए ।

§ १९) ततः सुरनिकरवन्दितचरण ! त्रिभुवनरमण ! धर्मवल्लिकामतल्लिकाबीजपरम्प-
रायमाण ! प्रजासंततिसमुत्पत्तये कांचन काञ्चनवल्लोसरूपां सौन्दर्यवैभवनिरस्तरतिमदाटोपां
विधृतमणिकलापां त्रिजगति धन्यां कन्यां परिणेतुमर्हसीति ।

§ २०) अङ्गीचक्रे परमपुरुषः सस्मितस्तस्य वाचं

दाक्षिण्याद्वा पितृविषयकात् किं प्रजानुग्रहाद्वा ।

तस्या ज्ञात्वाभ्युपगममयो भूपतिर्वीतशङ्को

हर्षाच्चक्रे परिणयविधिं देवराजानुमत्या ॥१४॥

§ २१) तन्व्यौ कच्छमहाकच्छजाम्यौ सौम्ये पतिवरे ।

यशस्वती-सुनन्दाख्ये स एनं पर्यणीनयत् ॥१५॥

§ २२) तदानीं खलु साकेतपुरलक्ष्मीविलासमणिमुकुरायमाणे नूतनवितानवितति विलम्बि १०

करोतु ॥१३॥ § १९) तत इति—ततः तस्मात्कारणात् सुरनिकरैर्देवसमूहैर्वन्दितो नमस्कृतो चरणो यस्य तत्सं-
बुद्धो ! हे त्रिभुवनरमण हे त्रिलोकीनाथ ! प्रशस्ता वल्लिका वल्लिकामतल्लिका धर्म एव वल्लिकामतल्लिका
धर्मवल्लिकामतल्लिका तस्या बीजपरम्परा बीजसंततिरिवाचरति तत्संबुद्धो ! 'मतल्लिकामर्चचिका प्रकाण्ड-
भुद्धतल्लजौ । प्रशस्तवाचकान्यमून्ययः शुभावहो विधिः ॥' इत्यमरः । प्रजासंततिसमुत्पत्तये संततिसमूहोत्पत्तये
'प्रजा स्यात्संततौ जने' इत्यमरः । काञ्चनवल्लोसरूपां स्वर्णलतासदृशीं सौन्दर्यस्य लावण्यस्य वैभवेन निरस्तो १५
द्वरीकृतो रतेर्मदनमानिन्या मदाटोपो गर्वविस्तारो यया तां, विधृतो मणिकलापो मणिमेखला यया तां त्रिजगति
त्रिभुवने धन्यां भाग्यशालिनीं कांचन कन्यां पतिवरां परिणेतुं विवाहयितुम् अर्हसि योग्योऽसि । इतीत्थं नाभि-
राजो भगवन्तं जगाद । 'कलापः संहतौ वर्हे काञ्चन्यां भूषणतूणयोः' इति मेदिनी । § २०) अङ्गीचक्र इति—
परमपुरुषो भगवान् सस्मितः समन्दहसितः सन् पिता विषयो यस्य तस्मात् पितृविषयकात् दाक्षिण्यात् औदार्यात्
किम् । प्रजानुग्रहाद्वा लोकोपकाराद्वा तस्य नाभिराजस्य वाचं वाणीम् अङ्गीचक्रे स्वीचकार । अथो तस्य २०
भगवतः अभ्युपगमं स्वीकृति ज्ञात्वा भूपतिर्नाभिराजः देवराजस्य सौवर्म्येन्द्रस्यानुमत्या संमत्या वीतशङ्को
निःशङ्को सन् हर्षात् प्रमोदात् परिणयविधिं विवाहविधिं चक्रे कृतवान् । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥१४॥ § २१)
तन्व्याविति—स नाभिराजः तन्व्यौ कृशाङ्गौ कच्छ-महाकच्छयोः जाम्यौ स्वसारौ 'जामौ स्वसृकुलस्त्रियोः'
इत्यमरः । सौम्ये सौम्याकारे यशस्वतीसुनन्दाख्ये तन्नाम्न्यौ पतिवरे कथ्ये एनं भगवन्तं पर्यणीनयत् विवाहया-
मास ॥१५॥ § २२) तदानीमिति—तदानीं विवाहविधिविधानावसरे खलु निश्चयेन साकेतपुरलक्ष्म्या २५
अयोध्यानगरश्रिया विलासमणिमुकुरमिव विलासरत्नादर्शमिवाचरतीति तस्मिन्, नूतनवितानां नवीनचन्द्रो-

आपको वैसा देख अन्य मनुष्य भी ऐसी प्रवृत्ति करें ॥१३॥ § १९) तत इति—इसलिए हे
देव समूहके द्वारा पूजितचरण ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे धर्मरूपी श्रेष्ठलताकी बीज सन्ततिके
समान आचरण करनेवाले ! सन्तान समूहकी उत्पत्तिके लिए किस ऐसी कन्याको विवाहनेके
योग्य हो जो सुवर्णलताके समान हो, अपने सौन्दर्यके विभवसे जिसने रतिके गर्वको नष्ट ३०
कर दिया हो, जो मणि मेखलाको धारण कर रही हो तथा अत्यन्त भाग्यशालिनी हो ।
§ २०) अङ्गीचक्र इति—भगवान्ने मुसकुराकर नाभिराजके वचन स्वीकृत कर लिये सो क्या
पिता सम्बन्धी सरलतासे स्वीकृत क्रिये थे या प्रजाके अनुग्रहकी भावनासे । तदनन्तर उनकी
स्वीकृतिको जानकर राजा नाभिराजने निःशंक होकर बड़े हर्षसे इन्द्रकी अनुमति पूर्वक
विवाहकी तैयारी की ॥१४॥ § २१) तन्व्याविति—राजा नाभिराजने कृशाङ्गी, सौम्यवर्ण ३५
कच्छ और महाकच्छकी बहिर्ने यशस्वती और सुनन्दा नामकी कन्याओंके साथ भगवान्
वृषभदेवका विवाह कराया ॥१५॥ § २२) तदानीमिति—उस समय जो अयोध्यानगरकी

नानामणिगणधृणिपूरनिमग्नसुरनिकरे विविधवाद्यरवमुखरितदिगन्तरे परितः परिस्फुरन्मणिदीप-
प्रभाविसरे नवरत्नचयविनिर्मितविवाहमण्डपान्तरे विलसमानमङ्गलद्रव्यसंगतशातकुम्भमयपूर्णकुम्भ-
लम्बितमणिवेदिकामध्ये ताभ्यां कन्यामणिभ्यां पुरुदेवः चन्द्रिकाप्रसन्नताभ्यां गगनतल इव निशा-
करो विरराज ।

५ § २३) सौन्दर्यस्य तरङ्गिण्यौ शृङ्गाराम्बुधिचन्द्रिके ।
तच्चित्तमत्तकरिणः शृङ्खले ते बभूवतुः ॥१६॥

§ २४) तयोः सौन्दर्यसंपत्तिः स्वप्नबुद्धेरगोचरा ।
गाहते सा कथंकारं गिरां पूरं कवीशिनाम् ॥१७॥

१० § २५) ते खलु कन्यामतल्लिके गुरुतरभारारोपणमेव चाञ्चल्यनिवारणधुरीणमिति कौतु-

पकानां विततिषु पङ्क्तिषु विलम्बितो ये नानामणिगणगणस्तेषां धृणयः किरणास्तेषां पूरे निमग्नता ब्रुविताः
सुरनिकरा देवसमूहा यस्मिंस्तस्मिन्, विविधवाद्यानां नानावादित्राणां रवेण शब्देन मुखरितानि दिगन्तराणि
यस्मिंस्तस्मिन्, परितः समन्तात् परिस्फुरन् देदीप्यमानो मणिदीपानां प्रभाविसरः कान्तिसमूहो यस्मिंस्तस्मिन्,
नवरत्नानां चयेन समूहेन विनिर्मितो रचितो यो विवाहमण्डपस्तस्यान्तरे मध्ये विलसमानानि शोभमानानि
१५ यानि मङ्गलद्रव्याणि तैः संगताः सहिता ये शातकुम्भमयाः सुवर्णरचिताः पूर्णकुम्भास्तैर्लम्बितं प्रापितं यत्
मणिवेदिकाया मध्यं तस्मिन्, ताभ्यां पूर्वोक्ताभ्यां कन्यामणिभ्यां कन्यारत्नाभ्यां पुरुदेवो वृषभनाथः गगनतले
नभस्तले चन्द्रिका-प्रसन्नताभ्यां ज्योत्स्ना-निर्मलताभ्यां निशाकर इव चन्द्र इव विरराज शुशुभे । उपमा ।
§ २३) सौन्दर्यस्येति—सौन्दर्यस्य लावण्यस्य तरङ्गिण्यौ नद्यौ, शृङ्गाराम्बुधेः शृङ्गारसारस्य चन्द्रिके
ज्योत्स्ने ते यशस्वतीसुन्दरे तच्चित्तमेव मत्तकरो तस्य जिनेन्द्रमानसमत्तमतङ्गजस्य शृङ्खले बन्धनहिङ्गीरके
२० बभूवतुः । छपकम् ॥१६॥ § २४) तयोरिति—तयोः यशस्वतीसुन्दरयोः सौन्दर्यसंपत्तिः लावण्यसंपद्
स्वप्नबुद्धेः अगोचरा अविषया आसीत् सा सौन्दर्यसंपत्तिः कवीशिनां कवीन्द्राणां गिरां वाचां पूरं कथंकारं केन
प्रकारेण गाहते प्रविशति । वचनागोचरा तदीयसौन्दर्यसंपत्तिरिति भावः ॥१७॥ § २५) ते खल्विति—
ते पूर्वोक्ते खलु प्रशस्ते कन्ये कन्यामतल्लिके गुरुतरस्य दुर्भरतरस्य भारस्वारोपणमेव समर्पणमेव चाञ्चल्यस्य

लक्ष्मीके मणिमयविलास दर्पणके समान आचरण करता था, नवीन चँदोवोंके समूहमें
२५ लटकते हुए नाना मणिसमूहकी किरणोंके पूरमें जहाँ देवोंके समूह डूब गये थे, नाना
प्रकारके बाजोंके शब्दसे जिसमें दिगन्तराल शब्दायमान हो रहे थे, और जहाँ चारों ओर
चमकते हुए मणि दीपकोंकी प्रभाका समूह सुशोभित हो रहा था ऐसे नवरत्नोंके समूहसे
निर्मित उस विवाह-मण्डपके बीचमें शोभायमान मंगल द्रव्योंसे सहित सुवर्णमय पूर्ण
कलशोंसे युक्त मणिमय वेदिकाके मध्यमें उन दोनों कन्याओंसे युक्त भगवान् पुरुदेव
३० आकाशमें चाँदनी और निर्मलताके साथ चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहे थे । § २३)
सौन्दर्यस्येति—सौन्दर्यकी नदी और शृंगार सागरको समुद्वेलित करनेके लिए चाँदनी स्वरूप
वे दोनों वृषभजिनेन्द्रके चित्तरूपी मत्त हाथीको बाँधनेके लिए सांकल स्वरूप हुई थीं ॥१६॥
§ २४) तयोरिति—उन दोनोंकी सौन्दर्यरूप सम्पदा स्वप्नबुद्धिका भी विषय नहीं थीं अतः
वह कविराजोंके वचनपूरमें कैसे अवगाहन कर सकती थीं ? ॥१७॥ § २५) ते खल्विति—
३५ वे श्रेष्ठ कन्याएँ, 'बहुत भारी भारका लाद देना ही चपलताको दूर करनेमें निपुण है' इस

कितचेतसा वेधसा नितम्बपयोधरभारव्याजेन महीधरैः संयोज्य वनितारूपतया निर्मिते विद्युल्लते इव पुरुदेवसुरद्रुमस्य समीपे सद्यस्तनगुच्छकलिते कल्पलते इव च व्यराजताम् ।

§ २६) अयममरपतीनां रत्नकोटीरकोटी-

घटितपदपयोजस्तत्र ताभ्यां प्रियाभ्याम् ।

सुचिरमधिकभोगान्प्राप्नुवानः प्रहर्षात्

क्षणमिव बहुकालं देवदेवः स निन्ये ॥१८॥

§ २७) अथ कदाचित्सौधतलविलसद्रत्नपर्यङ्के सुप्ता यशस्वती महादेवी स्वप्ने कविजन-विदितां जिनवदनस्य राजतां वसुधानुभवप्रदर्शनेन प्रकटयितुमिव परिप्राप्तग्रसनां मेदिनीं, कुचयुग-मिव सरस्थितिशोभितं नितम्बबिम्बमिव मेखलाञ्छितं समुन्नतं च सुराचलं, करमिव कमलसहचरं

चपलताया निवारणे दूरीकरणे धुरीणां निपुणम् इतीत्थं कौतुकितचेतसा कुतूहलितहृदयेन वेधसा विधात्रा १०
नितम्बपयोधरमेव भारस्तस्य व्याजेन छलेन महीधरैः पर्वतैः संयोज्य संयुक्ते कृत्वा वनितारूपतया स्त्रीरूपेण
निर्मिते रचिते विद्युल्लते इव तडिदल्लयाविव, पुरुदेवसुरद्रुमस्य वृषभामरमहोरुहस्य समीपे सद्यस्तनी तत्काल-
विकसितो यो गुच्छो पुष्पस्तवको ताभ्यां कलिते सहिते पक्षे सद्यो झटिति स्तनी कुचो गुच्छाविवेति स्तनगुच्छो
ताभ्यां कलिते कल्पलते इव कल्पवल्याविव व्यराजताम् शुशुभाते । उत्प्रेक्षा । § २६) अयमिति—अमर-
पतीनां देवराजानां रत्नकोटीरकोट्या मणिमयमौल्यप्रभागेन घटिते युक्ते पदपयोजे चरणकमले यस्य तथाभूतः, १५
'मौलिः किरीटं कोटीरमुष्णीषं पुष्पदाम तु' इति हैमः । ताभ्यां पूर्वोक्ताभ्यां प्रियाभ्यां वल्लभाभ्यां सह सुचिरं
सुदीर्घकालं यावत् अधिकभोगान् प्रचुरविषयान् प्राप्नुवानो लभमानः देवदेवः सोऽयं वृषभजिनेन्द्रः प्रहर्षात्
प्रकृष्टहर्षात् बहुकालं क्षणमिव निन्ये व्यगमयामास । मालिनीवृत्तम् ॥१८॥ § २७) अथेति—अथानन्तरं
कदाचित् जातुचित् सौधतले प्रासादपृष्ठे विलसन् शोभमानो यो रत्नपर्यङ्को मणिमयमञ्चस्तत्र सुप्ता कृतशयना
यशस्वती महादेवी स्वप्ने स्वापे निजवदनस्य स्वमुखस्य राजतां नृपतितां पक्षे चन्द्रतां प्रकटयितुमिव वसुधायाः २०
पृथिव्या अनुभव उपभोगस्तस्य प्रदर्शनेन पक्षे 'व' इति त्यक्त्वा सुधानुभवप्रदर्शनेन पीयूषानुभवप्रदर्शनेन
परिप्राप्त ग्रसनं यस्यास्तथाभूतां स्वमुखेन भक्ष्यमाणामित्यर्थः मेदिनीं पृथिवीं, कुचयुगमिव स्तनयुगलमिव
सरस्थितिशोभितं हारस्थितिशोभितं पक्षे कासारस्थितिशोभितं, नितम्बबिम्बमिव नितम्बमण्डलमिव मेखलाञ्छितं
रशनाशोभितं पक्षे कटकसहितं 'काञ्च्यां शैलनितम्बे च खड्गबन्धे च मेखला' इति विश्वलोचनः, समुन्नतं
योवनातिरेकात् समुत्थितं पक्षे समुत्तुङ्गं सुराचलं सुमेरुम्, करमिव हस्तमिव कमलसहचरं कमलसहितं पक्षे २५

प्रकारके कुतूहलसे युक्त चित्तवाले विधाताके द्वारा नितम्ब और स्तनोंके भारके बहाने पर्वतोंसे युक्त कर स्त्रियोंके रूपमें रची हुई विद्युल्लताओंके समान अथवा भगवान् वृषभ-देवरूपी कल्पवृक्षके समीप तत्काल विकसित होनेवाले स्तनरूपी गुच्छोंसे सहित कल्पलताओं-के समान सुशोभित हो रही थीं ॥ § २६) अयमिति—इन्द्रोंके मणिमय मुकुटोंके अग्रभागसे जिनके चरणकमल मिल रहे थे ऐसे यह देवाधिदेव वृषभजिनेन्द्र, उन प्रियाओंके साथ ३० दीर्घकाल तक अधिक भोगोंको प्राप्त होते हुए, हर्षपूर्वक बहुत भारी समयको क्षणके समान व्यतीत कर रहे थे ॥१८॥ § २७) अथेति—तदनन्तर किसी समय छतपर सुशोभित रत्नोंके पलंगपर सोयी हुई यशस्वती महादेवीने निम्नलिखित स्वप्न देखे । सर्वप्रथम उसने अपने मुखके द्वारा प्रसित होनेवाली पृथिवीको देखा, उस समय वह पृथिवी वसुधानुभव—पृथिवीके उपभोगको दिखा कर (पक्षमें सुधाके उपभोगको दिखा कर) उसके मुखकी राजता ३५—नृपतिता अथवा चन्द्रताको ही मानो प्रकट करना चाहती थी । दूसरे स्वप्नमें सुमेरु पर्वत देखा । वह सुमेरु पर्वत यशस्वतीके कुचयुगलके समान सरस्थित शोभित—सरोवरकी

प्रभाकरं, काञ्चीकलापमिव सकलकलं निशाकरं, पदपद्ममिव सहस्रकं सरोवरं, बाहुयुगलमिव परमकराञ्चितं पयोनिधिं च विलोकयामास ॥

§ २८) वन्दित्रातप्रकटितसुधासारधक्कारगोतै-

वादित्राणां श्रुतिहतरवैः सा ततः संप्रबुद्धा ।

उत्थाय द्रागमलशयनान्मङ्गलस्नानपूता

भेजे स्वप्नप्रकथितफलं प्रष्टुकामा स्वकान्तम् ॥१९॥

§ २९) तमुपेत्य सुखासीना तत्र सा भद्रविष्टरे ।

कान्ताय स्वप्नमालां तां कथयामास सुन्दरी ॥२०॥

§ ३०) तदनु दिव्यामललोचनविलोकितस्तत्स्वप्नफलस्वभावोऽसौ देवः सुमेरुस्तनि ! सुमेरु-

१० विकासकत्वेन कमलमित्रं प्रभाकरं सूर्यं, काञ्चीकलापमिव रशनासमूहमिव सकलकलं कलकलशब्देन सहितं पक्षे सकलाः कला यस्य तं तथाभूतं निशाकरं चन्द्रम्, पदपद्ममिव चरणकमलमिव सहस्रकं सपादकटकं पक्षे समरालं, सरोवरं कासारं, बाहुयुगलमिव भुजयुगमिव परमकराञ्चितं परमश्चासौ करश्चेति परमकरः श्रेष्ठ-हस्तस्तेनाञ्चितं पक्षे पराश्च ते मकराश्चेति परमकरास्तैरञ्चितः सहितस्तं पयोनिधिं सागरं च विलोकयामास । श्लेषोपमा । § २८) वन्दित्रातेति—ततः स्वप्नदर्शनानन्तरं वन्दित्रातेन स्तुतिपाठकसमूहेन प्रकटितानि

१५ सूचरितानि सुधासारधक्काराणि पोयूषसारतिरस्कारकाणि यानि गीतानि तैः, वादित्राणां वाद्यानां श्रुतिहतरवैः कर्णाहृतशब्दैः संप्रबुद्धा जागृता सा यशस्वती द्राग् झटिति अमलशयनात् निर्मलशय्यायाः उत्थाय मङ्गल-स्नानेन मङ्गलाभिषेकेन पूता पवित्रा तथाभूता, स्वप्नैः प्रकथितं प्रकटितं यत् फलं तत् प्रष्टुकामा प्रष्टुमनाः सती स्वकान्तं स्ववल्लभं भेजे प्राप । मन्दाक्रान्ता ॥१९॥ § २९) तमुपेत्येति—तं स्वकान्तम् उपेत्य प्राप्य तत्र भद्रविष्टरे मङ्गलासने सुखासीना सुखोपविष्टा सा सुन्दरी यशस्वती कान्ताय तां स्वप्नमालां स्वप्न-परम्परां कथयामास समुवाच ॥२०॥ § ३०) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं दिव्यामलविलोचनेन अवधि-ज्ञाननेत्रेण विलोकितो दृष्टस्तत्स्वप्नानां फलस्वभावो येन तथाभूतोऽसौ देवो वृषभजिनेन्द्रः इत्येवं स्वप्नफलं

स्थितिसे शोभित (पक्षमें हारकी स्थितिसे शोभित) था तथा नितम्ब मण्डलके समान मेखलाञ्चित—कटनियोंसे सहित (पक्षमें करधनीसे सुशोभित) और समुन्नत—ऊँचा (पक्षमें उठा हुआ) था । तीसरे स्वप्नमें सूर्य देखा, वह सूर्य यशस्वतीके हाथके समान

२५ कमलसहचर—कमलोंका मित्र (पक्षमें क्रीड़ा कमलसे सहित) था । चौथे स्वप्नमें चन्द्रमा देखा, वह चन्द्रमा उसकी करधनीके समान सकलकल—कलकल शब्दसे सहित (पक्षमें सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त) था । पाँचवें स्वप्नमें सरोवर देखा, वह सरोवर यशस्वतीके चरण-कमलके समान सहस्रक—तोड़र अथवा नूपुरोंसे सहित (पक्षमें हंसपक्षियोंसे युक्त) था और छठवें स्वप्नमें समुद्र देखा, वह समुद्र उसके बाहुयुगलके समान परमकराञ्चित—बड़े-बड़े मगरोंसे सहित (पक्षमें श्रेष्ठ हाथोंसे युक्त) था । § २८) वन्दित्रातेति—तदनन्तर

३० वन्दीजनोंके द्वारा प्रकट किये हुए, अमृतसारका तिरस्कार करनेवाले—मधुरगीतों और कानोंमें टकरानेवाले बाजोंके शब्दोंसे जो जाग उठी थी, तथा निर्मल शय्यासे शीघ्र ही उठ-कर जो मांगलिक स्नानसे पवित्र हुई थी ऐसी यशस्वती स्वप्नोंके द्वारा सूचित फलको पूछनेकी इच्छा रखती हुई अपने पतिके पास पहुँची ॥१९॥ § २९) तमुपेत्येति—उनके पास

३५ जाकर मंगलमय आसनपर सुखसे बैठी हुई उस सुन्दरीने वह स्वप्नपरम्परा पतिके लिए कही ॥२०॥ § ३०) तदन्विति—तदनन्तर दिव्य निर्मलनेत्र—अवधिज्ञानके द्वारा जिन्होंने उन स्वप्नोंके फल और स्वभावको अच्छी तरह देख लिया था ऐसे भगवान् वृषभदेवने उन

दर्शनेन चक्रवर्तिनं, कमलाक्षि ! कमलबन्धुना प्रतापिनं, चन्द्रमुखि ! चन्द्रेण कान्तिसंपन्नं, सरोजगन्धि ! सरोजदर्शनेन सरोरुहवासिन्या लक्ष्म्या समाक्रान्तवक्षःस्थलं, महीधरश्रीणि ! मही-
ग्रसनेन जलधिमेखलाया वसुमत्याः परिपालयितारं, सागरगंभीरे ! सागरेण संसारसागरसंतरण-
निपुणं चरमाङ्गमिदं शक्रकुलवर्धनं पुत्रशताग्रजं तनूजं परिप्राप्स्यसीति स्वप्नफलमित्यमचीकथत् ।

§ ३१) इमां भर्तुर्वीचं कुवलयदलाक्षी श्रुतिपुटे

वितन्वाना वेगात्प्रमदभरमासाद्य ववृधे ।

यथा वार्धेर्वेला प्रविलसति राकाहिमकरे

यथा वा संप्राप्ते जलदसमये स्फारतटिनी ॥२१॥

§ ३२) ततः सुबाहुप्रथितोऽहमिन्द्रः सर्वार्थसिद्धिं समुपागतो यः ।

विधेर्वशाद् व्याघ्रचरः सुरोऽयं समासददगर्भमरालकेश्याः ॥२२॥

स्वप्नसूचितफलम् इत्यमनेन प्रकारेण अचीकथत् कथयामास । 'अचीकथत्' इति प्रयोगोऽपानिर्णयः । इतीति कथं । तदेवोचते—सुमेरुरिव स्तनी यस्यास्तत्संबुद्धौ हे सुमेरुस्तनि समुन्नतकुचे ! सुमेरुदर्शनेन सुरगिरि-
विलोकेन चक्रवर्तिनं सुदर्शनचक्रधरं, कमलाक्षि ! शतदललोचने ! कमलबन्धुना सूर्येण प्रतापिनं प्रतापवन्तं, चन्द्रमुखी ! शशिवर्धने ! चन्द्रेण अशिना कान्तिसंपन्नं दीप्तिमन्तम्, सरोजगन्धि ! कमलगन्धि ! सरोजदर्शनेन कमलावलीकमेव सरोरुहवासिन्याः कमलनिवासिन्या लक्ष्म्या श्रिया समाक्रान्तवक्षःस्थलं समधिष्ठितोरःस्थलं, महीधरश्रीणि ! स्थूलनितम्बे ! महीग्रसनेन पृथिवीग्रसनेन जलधिमेखलाया सागररक्षणाया वसुमत्याः पृथिव्याः
परिपालयितारं रक्षकं, सागरगंभीरे जलधिबद्गाम्भीर्यशालिनि ! सागरेण समुद्रेण संसारसागरस्य भवार्णवस्य संतरणे निपुणं दक्षं, चरमाङ्गं चरमशरीरं तद्भवमोक्षगामिनमित्यर्थः, इक्ष्वाकुकुलवर्धनं इक्ष्वाकुवंशवृद्धिकर्तारं पुत्राणां शतं तस्याग्रजं ज्येष्ठं तनूजं पुत्रं परिप्राप्स्यसि लप्स्यसे । इति ॥ § ३१) इमामिति—कुवलयदले
इवाक्षिणी यस्याः सा कुवलयदलाक्षी नीलोत्पलदललोचना सा यशस्वती भर्तुः पत्युः इमां पूर्वोक्तां वाचं
वाणीं श्रुतिपुटे कर्णपुटे वितन्वाना कुर्वाणा समाकर्णयन्तीत्यर्थः वेगाद् रभसात् प्रमदभरं हर्षसमूहम् आसाद्य प्राप्य राकाहिमकरे पूर्णिमेन्दौ प्रविलसति प्रशोभमाने सति वार्धेः सागरस्य वेला यथा तटोच्छ्वास इव वा
अथवा जलदसमये वर्षाकाले संप्राप्ते सति स्फारतटिनी यथा महानदीव ववृधे वृद्धिमगमत् । उपमा । शिखरिणी छन्दः ॥२१॥ § ३२) तत इति—ततस्तदन्तरं सुबाहु इति प्रथितः प्रसिद्धो यो मतिवरमन्त्रि-
जीवः अहमिन्द्रः अन् सर्वार्थसिद्धिं तन्नामानुत्तरधिमानं समुपागतः, भूतपूर्वो व्याघ्र इति व्याघ्रचरः होऽयम्
अहमिन्द्रो विधेर्भाग्यस्य वशात् अरालकेश्याः कुटिलकचाया यशस्वत्या गर्भं समासदत् प्राप । उपजातिछन्दः

स्वप्नोक्ता फल इस प्रकार कहा—हे सुमेरुस्तनि ! सुमेरु पर्वतके देखनेसे चक्रवर्ती, हे कमल-
लोचने ! सूर्यके देखनेसे प्रतापी, हे चन्द्रमुखी ! चन्द्रमाके देखनेसे कान्तिसम्पन्न, हे कमल-
गन्धि ! कमलके देखनेसे कमल निवासिनी लक्ष्मीके द्वारा आक्रान्त वक्षःस्थलवाले, हे
स्थूलनितम्बे ! पृथिवीका ग्रसन देखनेसे समुद्रान्त पृथिवीके रक्षक, हे सागरके समान
गाम्भीर्यसे सुशोभिते ! समुद्रके देखनेसे संसार सागरसे पार करनेमें निपुण, चरमशरीरी,
इक्ष्वाकु वंशकी बढ़ानेवाले तथा सौ पुत्रोंमें प्रथम पुत्रको प्राप्त करोगी । § ३१) इमामिति—
कुवलयदले समान नेत्रोंवाली यशस्वती, पतिके इन वचनोंकी सुनकर वेगसे हर्षके समूहको
प्राप्त होती हुई उस तरह वृद्धिको प्राप्त हुई जिस तरह कि पूर्ण चन्द्रमाके सुशोभित रहते हुए
समुद्रकी वेला और वर्षाकालके आनेपर विशाल नदी वृद्धिको प्राप्त होती है ॥२१॥ § ३२)
तत इति—तदनन्तर सुबाहु नामसे प्रसिद्ध जो जीव अहमिन्द्र होता हुआ सर्वार्थसिद्धि गया
था वह व्याघ्रका जीव देव भाग्यवश कुटिल केशोंवाली यशस्वतीके गर्भको प्राप्त हुआ ॥२२॥

§ ३३) एषा किल भुवनपतियोषा स्वस्या वचोविलासमिव सुरसार्थश्लाघ्यं, मध्यदेशमिव दिने दिने प्रवर्धमानं, उदरभागमिव वलिभङ्गविरहितं कुचयुगलमिव मलिनमण्डलाग्रशोभां चक्रशोभां च प्रकटीकरिष्यमाणं, शरीरसंनिवेशमिव कोमलकलधौतरुचिं, सुमित्रानन्दनमपि सुलक्ष्मणमपि भरताभिख्यां प्राप्स्यमानं गर्भं बभार ।

५ § ३४) अन्तर्वन्त्या यशस्वत्या मुखं राजेति मन्महे ।

बुभुजे वसुधां यस्मात्तारोल्लासं ततान यत् ॥२३॥

- ॥२२॥ § ३३) एषेति—एषा किल भुवनपतियोषा भुवनपतियोषा जगदीश्वरजाया यशस्वती गर्भं दौहृदं बभार दधारेति कर्तृकर्मक्रियासंबन्धः । अथ गर्भं विशेषयन्नाह—स्वस्या वचोविलासमिव वचनसंदर्भमिव सुरसार्थश्लाघ्यं सुराणां देवानां सार्थः समूहस्तेन श्लाघ्यं गर्भं पक्षे रसश्च अर्थश्च १० रसार्थो मुष्टु रसार्थो सुरसार्थो ताभ्यां श्लाघ्यं वचनविलासम् । स्वस्या मध्यदेशमिव कटिप्रदेशमिव दिने दिने प्रतिदिनं प्रवर्धमानं, गर्भो दिने दिने वर्धते स्म तस्य भारान्मध्यदेशश्च दिने दिने बद्धे इति भावः । स्वस्या उदरभागमिव जठरभागमिव वलिभङ्गविरहितं श्लेषे बवयोरभेदात् बलिनां बलवतां भङ्गेन नाशेन विरहितं गर्भं पक्षे वलयस्त्रिवलय एव भङ्गास्तरङ्गास्तेविरहितं शून्यम् । स्वस्याः कुचयुगलमिव स्तनयुगलमिव मलिनमण्डलाग्रशोभां मलिनश्चासौ कृष्णश्चासौ मण्डलाग्रश्च कृपाणश्चेति मलिनमण्डलाग्रस्तस्या शोभां १५ पक्षे कृष्णचूचकशोभां, चक्रशोभां च चक्रस्य चक्ररत्नस्य शोभां पक्षे चक्रस्येव चक्रवाकस्येव शोभा तां प्रकटीकरिष्यमाणं, स्वस्याः शरीरसंनिवेशमिव कोमलकलधौतरुचिं कोमलसुवर्णकान्तिं उभयत्र समानम्, सुमित्रानन्दनमपि सुमित्राया एतदभिधानदशरथपत्न्या नन्दनमपि पुत्रमपि सुलक्ष्मणमपि लक्ष्मणनामसहितमपि भरताभिख्यां भरतनामधेयं प्राप्स्यमानमिति विरोधः सुमित्रायाः पुत्रो लक्ष्मणनाम्ना प्रसिद्धः कैकेय्यास्तु पुत्रो भरतनाम्ना प्रथित इति विरोधबीजं परिहारपक्षे सुमित्रानन्दनमपि सन्मित्रजनसंतोषकरमपि, मुष्टु लक्ष्माणि २० यस्य तं सुलक्ष्मणं शोभनहलकुलिशादिसामुद्रिकशास्त्राभिहितलक्षणयुक्तमपि भरताभिख्यां भरतेति नामधेयं प्राप्स्यमानम् । श्लेषोपमाविरोधाभासाः । § ३४) अन्तर्वन्त्या इति—अन्तर्वन्त्या गर्भवत्याः यशस्वत्या मुखं वदनं राजा चन्द्रो नृपतिश्च इति मन्महे जानीमः । यस्मात् कारणात् यत् मुखं अवसुधां अवगता सुधा अवसुधा तां प्राप्तपीयूषं बुभुजे भुङ्क्ते स्म, नृपतिपक्षे वसुधां पृथिवीं बुभुजे । तारोल्लासं ताराणां नक्षत्राणां मुल्लासस्तं ततान विस्तारयामास नृपतिपक्षे तारश्चासावुल्लासश्चेति तारोल्लासस्तं महोल्लासं ततान विस्तार-

- २५ § ३३) एषेति—इस यशस्वतीने ऐसे गर्भको धारण किया जो अपने ही वचनोंके विलासके समान सुरसार्थश्लाघ्य—देवसमूहसे प्रशंसनीय (पक्षमें उत्तम रस और अर्थसे प्रशंसनीय) था । अपने ही मध्यदेशके समान प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हो रहा था । अपने ही उदरभागके समान वलिभंगविरहित—बलवानोंके त्रिनाशसे रहित (पक्षमें त्रिवलि रूप तरंगोंसे रहित) था । अपने ही स्तन युगलके समान आगे चलकर मलिन मण्डलाग्र—कृष्णखड्ग (पक्षमें काले चूचुक) की शोभा को तथा चक्रशोभा—चक्ररत्नकी शोभा (पक्षमें चक्रवाक पक्षी जैसी शोभा) को प्राप्त होगा । जो अपने ही शरीरसंनिवेशके समान कोमलकलधौतरुचि—सुवर्णके समान कान्तिको प्राप्त होगा । तथा जो सुमित्रानन्दन—सुमित्राका पुत्र और सुलक्ष्मण—लक्ष्मण नामका धारक होकर भी भरताभिख्या—भरत नामको प्राप्त होगा (पक्षमें समीचीन मित्रोंको आनन्ददायक एवं अच्छे लक्षणोंसे युक्त होकर भी भरत नामको प्राप्त होगा । ३० § ३४) अन्तर्वन्त्या इति—गर्भवती यशस्वतीका मुख राजा—चन्द्रमा अथवा नृपति था ऐसा हम मानते हैं क्योंकि वह अवसुधा—प्राप्तसुधाका उपभोग करता था (पक्षमें वसुधा-पृथिवीका उपभोग करता था) और तारोल्लास—नक्षत्रोंके उल्लास (पक्षमें विशाल हर्ष)

§ ३५) ददशन्तिर्वर्त्तीं धरणपतिरानन्दभरितः

पयोगर्भा केकी सलिलधरराजीमिव नवासु ।

यथा तेजोगर्भा सुरपतिदिशं कोकतरुणो

यथा शुक्ति मुक्ताफलललितगर्भमिव वणिक् ॥२४॥

§ ३६) ततश्च सा च यशस्वती देवी त्रिभुवनपतिना सह लीलाभवनोपवनकृतकाचलेष्विव विजयार्धहिमवदचलकूटेषु, निजगूहोद्यानक्रीडासरोवरेष्विव गङ्गाजललवणाम्बुधिवेलावनसरसी-सलिलेषु, विलासमन्दिरपरिसरचन्दनवनलतानिकेतन इव पाटीरगिरिशिखरकोटोविलसितचन्दन-वाटीसंनिवेशे विहरमाणा, भिषक्परिषत्संपादितकल्याणामृताहारमिव षट्खण्डक्षेत्रमृत्तिकां सेवमाना, सेवाभिज्ञावाराङ्गनाशृङ्गारसुधासिक्तसूक्तिसरणिमिव समरालापसमुद्भूतवीरभटघटापटुतरक्थां

यामास । श्लेषः ॥२३॥ § ३५) ददर्शेति—आनन्दभरः संजातो यस्य तथाभूतः प्रमोदयुतः धरणपतिर्वृषभ-जिनेन्द्रः अन्तर्वर्त्तीं गर्भिणीं यशस्वतीं केकी मयूरः पयोगर्भा जलमध्यां नवां प्रत्यग्रां सलिलधरराजीमिव पयोधरपङ्क्तिमिव, कोकतरुणश्चक्रवाकयुवा तेजोगर्भा तेजोमध्यां सुरपतिदिशं यथा प्राचीमिव, वणिक् नैगमः 'नैगमो वाणिजो वणिक्' इत्यमरः । मुक्ताफलं मौक्तिकं ललितगर्भं यस्यास्तां शुक्ति यथा ददर्श विलोकयामास । मालोपमा । शिखरिणीछन्दः ॥२४॥ § ३६) ततश्चेति—ततश्च गर्भधारणानन्तरं च सा यशस्वती देवी त्रिभुवनपतिना जगत्त्रयाधीशेन सह लीलाभवनस्य क्रीडाभवनस्योपवने विद्यमाना ये कृतका-चलाः कृत्रिमपर्वतास्तेष्विव विजयार्धश्च हिमवांश्चेति विजयार्धहिमवन्ती तौ च तावचलौ चेति विजयार्ध-हिमवदचलौ तयोः कूटेषु शिखरेषु, निजगूहोद्यानस्य स्वकीयसदनोपवनस्य क्रीडासरोवरेष्विव केलिकासारेष्विव गङ्गाजलं च लवणाम्बुधिवेलावनसरसी सलिलानि च तेषु सुरस्रवन्तीसलिललवणोदतटोद्यानकासारनोरेषु, विलासमन्दिरस्य क्रीडागारस्य परिसरे समीपे यच्चन्दनवनं तस्य लतानिकेतने निकुञ्ज इव पाटीरगिरेः मलयाचलस्य कोटयामग्रभागे विद्यमाना या चन्दनवाटी तस्याः संनिवेशे विहरमाणा विहारं कुर्वाणा, भिषजां वैद्यानां परिपदा समूहेन संपादितो रचितो यः कल्याणामृताहारः श्रेयस्करसुधाहारस्तमिव षट्खण्ड-क्षेत्रमृत्तिका भरतक्षेत्रमृत्तां सेवमाना भुञ्जाना, सेवाभिज्ञा सेवाज्ञाननिपुणा या वाराङ्गनास्तासां शृङ्गार-सुधासिक्ता शृङ्गारपीयूषोक्षिता या सूक्तिसरणिः सुभाषितसंततिस्तामिव समरालापे युद्धसंबन्धिवक्त्रारे समुद्भूताः समुद्यता ये वीरभटास्तेषां घटा पङ्क्तिस्तस्याः पटुतरक्थां समर्थवार्ता शृण्वन्ती समाकर्णयन्ती,

को विस्तृत करता था ॥२३॥ § ३५) ददर्शेति—आनन्दके भारसे युक्त राजा वृषभदेव गर्भवती यशस्वतीको उस प्रकार देखते थे जिस प्रकार मयूर जल सहित नवीन मेघमालाको, तरुण चक्रवा सूर्यसे युक्त पूर्व दिशाको और वणिक् मुक्ताफल रूपी सुन्दर गर्भसे युक्त शुक्तिको देखता है ॥२४॥ § ३६) ततश्चेति—तदनन्तर वह यशस्वती रानी भगवान् वृषभदेवके साथ क्रीडाभवनके उपवन सम्बन्धी कृत्रिम पर्वतोंके समान विजयार्ध तथा हिमवान् पर्वतोंके शिखरोंपर, अपने घरके उद्यान सम्बन्धी क्रीडा-सरोवरोंके समान गंगाजल तथा लवण समुद्रके तटवन सम्बन्धी सरोवरोंके जलमें एवं क्रीडा-मन्दिरके समीप स्थित चन्दनवनके निकुञ्जके समान मलयाचल सम्बन्धी शिखरके अग्रभागपर सुशोभित चन्दनवनके बीच विहार करती हुई, वैद्य समूहके द्वारा निर्मापित कल्याणकारी अमृतमय आहारके समान षट्खण्ड-भरतक्षेत्रकी मिट्टीका सेवन करती हुई, सेवामें निपुण वाराङ्गनाओंके शृङ्गाररूप सुधासे सिक्त सुभाषितोंके समूहके समान युद्ध सम्बन्धी वार्तालाप करनेमें दक्ष वीरयोद्धाओं-

शृण्वन्ती, मृदुमधुरविदग्धमुग्धपरिहासमनोहरालापशुकमौरिकावलिमिव पञ्जररगतकुञ्जरारति-
किशोरपरम्परां पश्यन्ती कानिचिद्दिनानि निनाय ।

§ ३७) शाणोल्लीढे कृपाणे मणिमुकुर इव स्वाननं साध्वपश्यत्

वीणागानं मनोज्ञं मधुरमिव मुदा साशृणोच्चापशब्दम् ।

५ चित्ते चक्रे चिराय प्रथमरसमिव प्रौढवीराद्भुतादौ-

नेषा त्रस्तेकवर्षस्थितहरिणशिशुप्रोल्लसल्लोलनेत्रा ॥२५॥

§ ३८) तदनु चक्रधरोदयनिदानतया भृशमनवमेऽपि नवमे मासि सैषा लक्ष्मीनिर्विशेषा
हरिहयहरिदिव पूर्वमहीभृन्मनोहराकारा विमलशोभनक्षत्राधिपोदयहेतुश्च यशस्वती देवी, भास्वन्त-

- १० मृदुः कोमलः मधुरो हृद्यो विदग्धश्चातुर्याञ्चितो मुग्धः सुन्दरो यः परिहासस्तेन मनोहरालापः मधुरशब्दा-
याः शुकसारिकास्तासामावलिमिव पङ्क्तिमिव पञ्जरगता लोहशलाकागृहस्थिता ये कुञ्जरारतिकिशोराः
सिंहशिशवस्तेषां परम्परां संततिं पश्यन्ती समवलोकयन्ती कानिचिद् कतिपयानि दिनानि निनाय व्यपगम-
यामास । उपमा ॥ § ३७) शाणेति—त्रस्तो भोत एकवर्षस्थित एकवर्षप्रमितायुष्को यो हरिणशिशुर्मृगमाण-
वकस्तस्येव प्रोल्लसती शोभमाने लोलनेत्रे चञ्चलनयने यस्यास्तथाभूता एषा सा यशस्वती मणिमुकुर इव
१५ मणिमयमुकुरन्द इव शाणोल्लीढे शाणोपलसंघृष्टे कृपाणे करवाले स्वाननं स्वमुखं साधु यथा स्यात्तथा अवश्यत्
विलोकयामास, मनोज्ञं मनोहरं मधुरं प्रियतरं वीणागानमिव परिवादिनीगोतमिव चापशब्दं कोदण्डध्वनिं
मुदा हर्षेण अशृणोत् आकर्णयामास । प्रथमरसमिव शृङ्गारमिव प्रौढवीराद्भुतादीन् समुत्कटवीरविस्मयादीन्
रसान् चिराय दीर्घकालपर्यन्तं चित्ते चेतसि चक्रे विदधे । गर्भस्थबालकप्रभावानुसारिणी तदीयचेष्टाभवदिति
भावः । स्रग्धराद्वन्दः ॥२५॥ § ३८) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं चक्रधरस्य चक्रवर्तिन उदयो जन्म तस्य
२० निदानतयादिकारणत्वेन भृशमन्यन्तम् न नवम इत्यनवमस्तस्मिन् नवमभिन्नेऽपि नवमे इति विरोधः पक्षे
न अवम इति अनवम उत्कृष्ट इत्यर्थः तस्मिन् नवमे मासि, लक्ष्मीनिर्विशेषा पद्यातुल्या विभुवनपतियोषा
त्रिजगदधीश्वरसीमन्तिनी 'स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः, हरिहयहरिदिव प्राचीव
पूर्वश्चासी महीभृच्चेति पूर्वमहीभृत् प्रथमनरेन्द्रो वृषभ इति यावत् तस्य मनोहरश्चेतोहर आकारो देहो
यस्यास्तथाभूता पक्षे पूर्वमहीभृत् पूर्वाचलस्तेन मनोहर आकार आकृतिर्वस्यास्तथाभूता, विमलं शोभनं यस्य

- २५ के समूहकी जोशीली कथाको सुनती हुई, और कोमल मनोहर चतुर तथा सुन्दर परिहाससे
मनोहर आलाप करनेवाले तोता मैनाओंकी पङ्क्तिके समान पिंजड़ोंमें स्थित सिंह शिशुओंकी
परम्पराको देखती हुई कुछ दिन व्यतीत करती रही ॥ § ३७) शाणेति—एक वर्षके भयभीत
हरिण शिशुके समान सुशोभित चञ्चल नेत्रोंसे युक्त वह यशस्वती मणिमय दर्पणके समान
सानपर चढ़े हुए खड्गमें अच्छी तरह मुख देखती थी, मनोहर तथा इष्ट वीणाके गानके
समान हर्ष पूर्वक धनुषके शब्दको सुनती थी और शृंगाररसके समान प्रौढ़ वीर तथा अद्भुत
३० आदि रसोंको चिरकालतक चित्तमें धारण करती थी ॥२५॥ § ३८) तदन्विति—तदनन्तर
चक्रवर्तीकी उत्पत्तिका कारण होनेसे जो अनवम—नवमसे भिन्न (पक्षमें भेष्ट) होकर
भी नवम—नौवाँ था ऐसे मासमें लक्ष्मीतुल्य, जिनराजकी जाया इस यशस्वती देवीमें
अविनाशी शुभ गुणोंसे युक्त मुहूर्तमें दुरुदर नामक योगके रहते हुए मनुवंशरूपी क्षीरसागरके
३५ लिए चन्द्रमाके समान तथा राजनीतिको प्रकट करनेवाले पुत्रको उत्पन्न किया । उस समय
यशस्वती देवी इन्द्रको दिशा—पूर्व दिशाके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार

१. शालिकावलिमिव क० ।

मिव सच्चक्रानन्दं कन्दलयन्तं कमलाधिकपरिपोषं परिस्फुरत्तेजःपरिवेषं चाभञ्जुरशुभंयुगुणसंपन्ने मुहूर्ते दुरुदराह्वये योगे मनुकुलकलशजलधिकलानिधिं समुदितनयं तनयं जनयामास ।

§ ३९) अजायत भुजाश्लिष्टवसुधो यदयं सुतः ।

ततोऽस्य सार्वभौमत्वं तदा नैमित्तिका जगुः ॥२६॥

§ ४०) सुतेन्दुमासाद्य कलानिवासं समेधयन्तं कुमुदं चिराय ।

श्यामा चकासे सुदतीत्रियामा सा पापचक्रव्यथनैकहेतुः ॥२७॥

स विमलशोभनो निर्मलशोभायुक्तः विमलशोभनश्चासौ क्षत्राधिपदचेति विमलशोभनक्षत्राधिपस्तस्योदयस्य जन्मनो हेतुः पक्षे विमला शोभा यस्य स विमलशोभः स चासौ नक्षत्राधिपश्च चन्द्रश्चेति विमलशोभनक्षत्राधिपस्तस्योदयस्य समुद्गमस्य हेतुश्च यशस्वती देवी भास्वन्तमिव सूर्यमिव सच्चक्रानन्दं सतां साधूनां चक्रः समूहस्तस्यानन्दं हर्षं पक्षे सन्तश्च ते चक्राश्च चक्रवाकपक्षिणश्चेति सच्चक्रास्तेषामानन्दं हर्षं कंदलयन्तं वर्धयन्तं, कमलाधिकपरिपोषं कमलाया लक्ष्म्या अधिकः प्रभूतः परिपोषः पुष्टिर्यस्मात् तं पक्षे कमलानामरविन्दानां परिपोषो यस्मात्, परिस्फुरत्तेजः परिवेषं परिस्फुरन् तेजसः प्रभावस्य पक्षे प्रतापस्य परिवेषो मण्डलं यस्य तथाभूतं च, अभञ्जुराः स्थायिनो ये शुभंयुगाः श्रेयस्करगुणास्तैः संपन्ने सहिते मुहूर्ते दुरुदराह्वययोगे दुरुदरनामयोगे मनुकुलमेव कलशजलविक्षीरसागरस्तस्य कलानिधिं चन्द्रमसं समुदितः प्रकटितो नयो राजनीतिर्यस्मात् तनयं पुत्रं जनयामास प्राप्तं । विरोधाभासश्लेषोपमाः । § ३९) अजायतेति—यद् यस्मात्कारणात् अयं सुतः पुत्रः भुजेन बाहुना अश्लिष्टा समालिङ्गिता वसुधा मही येन तथाभूतः सन् अजायत ततस्तस्मात्कारणात् तदा जन्मकाले नैमित्तिका निमित्तज्ञानिनः अस्य पुत्रस्य सर्वस्या भूमेरधिप इति सार्वभौमस्तस्य भावस्तत्त्वं चक्रवर्तित्वं जगुः कथयामासुः ॥२६॥ § ४०) सुतेन्दुमिति—पापचक्रव्यथनैकहेतुः पापानां दुरितानां चक्रः समूहस्तस्य व्यथनैकहेतुः पीडनैककारणं पक्षे पापाः पापवन्तो ये चक्राश्चक्रवाकास्तेषां व्यथनस्य पीडनस्यैकहेतुः प्रमुखकारणं श्यामा यौवनवती पक्षे तमोबाहुल्येन कृष्णा सुदती एव त्रियामा इति सुदतीत्रियामा यशस्वतीरजनी कलानां चतुःषष्टिकलानां पक्षे षोडशकलानां निवासो यस्मिन्, कुमुदं कोः पृथिव्या मुदं मोदं पक्षे कुमुदं कैरवं चिराय चिरकालपर्यन्तं समेधयन्तं वर्धयन्तं सुत एवेन्दुः सुतेन्दुस्तं पुत्रचन्द्रमसम् आसाद्य

इन्द्रकी दिशा पूर्वमहीभृन्मनोहराकारा—पूर्वाचलसे सुन्दर आकारवाली है उसी प्रकार यशस्वती भी पूर्वमहीभृन्मनोहराकारा—आद्य राजा वृषभजिनेन्द्रके मनको हरनेवाले शरीरसे सहित थी और जिस प्रकार इन्द्रकी दिशा विमलशोभनक्षत्राधिपोदय हेतु—निर्मल शोभासे युक्त चन्द्रमाके उदयका कारण है उसी प्रकार यशस्वती भी विमलशोभन—क्षत्राधिपोदयहेतु—निर्मल शोभासे युक्त चक्रवर्तीकी उत्पत्तिका कारण थी । यशस्वतीने जिस पुत्रको उत्पन्न किया था वह सूर्यके समान सच्चक्रानन्दं कंदलयन्तं—साधु समूहके हर्षको बढ़ानेवाला (पक्षमें उत्तम चक्रवर्तीके हर्षको बढ़ानेवाला) था, कमलाधिकपरिपोष—लक्ष्मीकी अधिक पुष्टिको करनेवाला (पक्षमें कमलोंके अधिक विकासको करनेवाला) था तथा देदीप्यमान तेज—प्रताप (पक्षमें घाम) के मण्डलसे सहित था । § ३९) अजायतेति—जिस कारण यह पुत्र अपनी भुजासे पृथिवीको आलिंगित करता हुआ उत्पन्न हुआ था उस कारण निमित्तज्ञानियोंने उस समय कहा था कि यह पुत्र समस्त भूमिका स्वामी—चक्रवर्ती होगा ॥२६॥ § ४०) सुतेन्दुमिति—पाप समूहको नष्ट करनेवाली (पक्षमें पापी चक्रवर्तीको पीड़ा देनेवाली) तथा श्यामा—यौवनसे सुशोभित (पक्षमें श्यामवर्ण) वह यशस्वतीरूपी रात्रि, कलाओंके निवासभूत (पक्षमें सोलह कलाओंसे युक्त) तथा कुमुद—पृथिवीके हर्षको (पक्षमें कैरवको) चिरकालतक बढ़ानेवाले पुत्ररूपी चन्द्रमाको प्राप्त कर सुशोभित हो रही थी ॥२७॥

§ ४१) स किल जिनराजः पद्माकर इव सर्वतोमुखसमृद्धिसंपन्नः समुन्निद्रशोभनतामर-
सहितः सदामरालीसेव्यमानः भ्रमरहितश्च, पद्मबन्धुनेव प्रौढशोभनखोज्ज्वलपादेन साधुचक्रसंतोष-
दायिना उदयमुपेयुषा भृशमुल्ललास ।

§ ४२) पितामही च तस्याम् प्रमोदं परमापनुः ।

यथा सवेलो जलधिरुदये शीतरोचिषः ॥२८॥

५

- प्राप्य चक्राशे शुशुभे । रूपकश्लेषो ॥ उपजातिवृत्तम् ॥२७॥ § ४१) स किलेति—जिनराजो वृषभदेवः पद्माकर इव तडाग इव सर्वतोमुखी समन्तादायकरो या समृद्धिः संपत्तिस्तया संपन्नः पक्षे सर्वतोमुखस्य सलिलस्य समृद्ध्या वृद्ध्या संपन्नः, समुन्निद्रा प्रकटिता शोभा येषां ते समुन्निद्रशोभाः ते च ते नतामराश्च नम्रीभूतदेवाश्च तैः सहितः पक्षे समुन्निद्रं शोभनं येषां तानि समुन्निद्रशोभनानि तथाभूतानि यानि तामरसानि
- १० कमलानि तेभ्यो हितः, सदा सर्वदा अमरालोभिः देवपङ्क्तिभिः सेव्यमानः पक्षे सदा सर्वदा मरालीभिर्हंसीभिः सेव्यमानः, भ्रमेण सदेहेन रहितः भ्रमरहितः पक्षे भ्रमरेभ्यः षट्पदेभ्यो हितः कल्याणकरः, पद्मबन्धुनेव सूर्येणैव प्रौढा प्रकृष्टा शोभा येषां तथाभूता ये नखास्तैश्ज्ज्वलो पादौ चरणौ यस्य तेन पक्षे प्रौढं प्रकृष्टं शोभनं यस्य तथाभूतं यत् खं गगनं तस्मिन् उज्ज्वलाः पादाः किरणा यस्य तेन, साधुचक्राय सज्जनसमूहाय संतोषं हर्षं ददातीति साधुचक्रसंतोषदायी तेन पक्षे साधवश्च ते चक्राश्च चक्रवाकाश्चेति साधुचक्रास्तेभ्यः संतोषं
- १५ ददातीति तेन उदयं जन्म पक्षे उद्गमम् उपेयुषा प्राप्तवता कुमारेण पुत्रेण भृशमत्यन्तम् उल्ललास शुशुभे ॥ श्लेषोपमा । § ४०) पितामहाविति—तस्य पुत्रस्य अम् प्रसिद्धो पितामही च पितामहश्चेति पितामही मरुदेवीना-
भिराजो शीतरोचिषः क्षिपिनः उदये सवेलः तटीसहितः जलधिर्यथा सागर इव परं सातिशयं प्रमोदं हर्षं आपनुः

- § ४१) स किलेति—जिस प्रकार उदित होते हुए सूर्यसे पद्माकर सुशोभित होता है उसी प्रकार जिनराज वृषभदेव, उदित होते हुए पुत्रसे सुशोभित हो रहे थे । उस समय जिनराज
- २० ठीक पद्माकर—तालाबके समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार पद्माकर सर्वतोमुख समृद्धि सम्पन्न—जलकी समृद्धिसे सहित होता है उसी प्रकार जिनराज भी सर्वतोमुख समृद्धि सम्पन्न—सब ओरसे आयवाली सम्पत्तिसे सहित थे, जिस प्रकार पद्माकर समुन्निद्र-शोभन—तामरस-हित विकसित शोभावाले कमलोंके लिए हितकारी होता है उसी प्रकार जिनराज भी समुन्निद्रशोभ—नतामर-सहित—शोभायमान नम्रीभूत देवोंसे सहित थे, जिस
- २५ प्रकार पद्माकर सदामराली सेव्यमान—सर्वदा हंसियोंसे सेवित रहता है उसी प्रकार जिनराज भी सदामरालीसेव्यमान—सदा देवपङ्क्तिसे सेवित थे और जिस प्रकार पद्माकर भ्रमर-हित—भ्रमरोंके लिए हितकारी होता है उसी प्रकार जिनराज भी भ्रमर-हित—संदेहसे रहित थे । वह पुत्र भी ठीक सूर्यके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सूर्य प्रौढ-शोभन-खोज्ज्वलपाद—अत्यन्त शोभायमान आकाशमें चमकती हुई किरणोंसे युक्त होता है
- ३० उसी प्रकार वह पुत्र भी प्रौढशोभन-खोज्ज्वलपाद—अत्यन्त शोभायमान नखोंसे देदीप्यमान चरणोंसे सहित था और जिस प्रकार सूर्य साधुचक्रसंतोषदायी—उत्तम चक्रवाक पक्षियोंको संतोषका देनेवाला होता है उसी प्रकार वह पुत्र भी साधुचक्रसंतोषदायी—सज्जन समूहको संतोषका देनेवाला था । § ४२) पितामहाविति—जिस प्रकार चन्द्रमाका उदय होनेपर वेला सहित समुद्र हर्षको प्राप्त होता है उसी प्रकार उस पुत्रके दादा और दादी—नाभिराज और

§ ४३) पुण्याशीर्वचनारवैर्मृगदृशां भूपालगेहान्तरे

सानन्दं प्रहृतानकध्वनिभरैर्वादित्रघोषेस्तथा ।

लेलोन्मुक्तसुमावलीमनुपतल्लोलम्बकोलाहलैः

शब्दैकार्णवमग्नमेतदभवद्व्यालोललोकत्रयम् ॥२९॥

§ ४४) मन्दारवनविहारो मन्दं मन्दं चचार पवमानः ।

ककुभां जेता जात इति भीत इव प्रतीतदिवपालः ॥३०॥

§ ४५) तदानीं सरभससंचरत्परिजननिकरसंक्षोभसंचलितमहीतला, प्रतिनिकेतनं समुदस्त-
केतनपटसंजातमञ्जुपवनसमानीतकल्पतरुकुसुमोपहारा, गङ्गातरङ्गशीकरनिकरद्विगुणितशैत्यसौर-
भ्यमृगमदजलच्छटासंसिक्तमधुकरनिकरझङ्कारमनोहारिकुसुमोपहारमण्डितरथ्याङ्गणा, महीपतिनि-

लेभाते । उपमा ॥२८॥ § ४३) पुण्याशीरिति—भूपालगेहान्तरे राजभवनमध्ये मृगदृशां नारीणां पुण्याशीर्वच- १०
नारवैः पवित्राशीर्वाद्बचनध्वनिभिः सानन्दं सहर्षं यथा स्यात्तथा प्रहृतास्ताडिता य आनकाः पटहास्तेषां ध्वनिभरैः
शब्दसमूहैः, वादित्रघोषैः बाधनिनादैः तथा लेखैर्देवैरुन्मुक्ता पातितया सुमावली प्रसूनपङ्क्तिस्ताम्, अनुपत-
न्तोऽनुवावमाना ये लोलम्बा भ्रमरास्तेषां कोलाहलैः कलकलशब्दैः एतत् व्यालोललोकत्रयं चञ्चलजगत्त्रयम्
शब्द एव एकार्णवः एकसागरस्तस्मिन् मग्नं बुद्धितम् अभवत् । समन्तात् शब्दा एव श्रूयमाणा आसन्निति
भावः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥२९॥ § ४४) मन्दारेति—मन्दारवनविहारो कल्पतरुधानविहरणशीलः १५
पवमानः पवनः ककुभां दिशां जेता जित्वरः जातः समुत्पन्न इति हेतोः भीत इव भययुक्त इव प्रतीतदिवपालः
सूचितदिवपालः सन् मन्दं मन्दं शनैः शनैर्यथा स्यात्तथा चचार चरति स्म । उत्प्रेक्षा ॥३०॥ § ४५)
तदानीमिति—तदानीं तस्मिन् काले साकेतपुरी अयोध्यापुरी अजायत बभूवेति कर्तृक्रियासंबन्धः । कीदृशी
अजायतेत्याह सरभसेति—सरभसं सर्वगं संचरन्तः समन्ताच्चलन्तो ये परिजननिकराः कुटुम्बजनसमूहास्तेषां
संक्षोभेण संचलितं कम्पितं महीतलं यस्यां तथाभूता, प्रतीति—निकेतनं निकेतनं प्रतीति प्रतिनिकेतनं २०
प्रतिगृहं समुदस्ताः समुन्नमिता ये केतनपटा वैजयन्तोवस्त्राणि तैः संजातः समुत्पन्नो यो मञ्जुपवनः सुन्दर-
समीरस्तेन समानीताः संप्रापिताः कल्पतरुणां कुसुमोपहारा यस्यां सा, गङ्गाति—गङ्गातरङ्गणां
भागीरथीभङ्गानां ये शीकरा अम्बुकणास्तेषां निकरेण समूहेन द्विगुणिते शैत्यसौरभ्ये शिशिरत्वसीगन्धे यस्य
तथाभूतं यत् मृगमदजलं कस्तूरीसलिलं तस्य छटया संसिक्ताः समुक्षिता ये मधुकरनिकराः षट्पदसमूहास्तेषां

मरुदेवी परमहर्षको प्राप्त हो रहे थे ॥२८॥ § ४३) पुण्याशीरिति—राजभवनके अन्दर स्थित २५
स्त्रियोंके पवित्र आशीर्वादात्मक वचनोंके शब्दोंसे, हर्षसहित ताड़ित नगाड़ोंके शब्दोंसे,
अन्य बाजोंके शब्दोंसे तथा देवोंके द्वारा बरसाये हुए पुष्पसमूहका पीछा करनेवाले भ्रमरोंके
कोलाहलसे हलचलको प्राप्त हुआ यह लोकत्रय शब्दरूप एक सागरमें निमग्न हो गया था—
सब ओर शब्द ही शब्द सुनाई पड़ता था ॥२९॥ § ४४) मन्दारेति—‘दिशाओंको जीतनेवाला
उत्पन्न हो चुका है’ इस प्रकार डरते-डरते दिक्पालोंको सूचित करनेवाला कल्पवनविहारो ३०
वायु धीरे-धीरे बह रहा था ॥३०॥ § ४५) तदानीमिति—उस समय वेगसे सब ओर चलने-
वाले कुटुम्बजनोके समूह सम्बन्धी क्षोभसे जिसका भूतल कम्पित हो रहा था, प्रत्येक
घरोंपर फहराया हुई पताकाओंके वस्त्रोंसे उत्पन्न सुन्दर वायुके द्वारा जिसमें कल्पवृक्षोंके
फूलोंका उपहार लाया गया था, गंगा सम्बन्धी लहरोंके जलकणोंके समूहसे अत्यन्त शीतल
तथा सुगन्धित कस्तूरीके जलकी छटासे सींचे हुए भ्रमर समूहकी झंकारसे मनोहर फूलोंके ३५

वेदनसंभ्रमसंचरद्वृद्धकञ्चुकीनिकरपुरःसरपरिवारजननिर्दयसमर्हनिपतितकुब्जवामनवर्षधरनिकुरम्बा, लम्बमानकुचविम्बेविस्रस्तास्तरीयवृद्धधात्रीजनपरिकलितनर्तननिरीक्षणजनितपुरजनहास्यरसा, युग-पत्तरङ्गितमङ्गलसंगीतसंगतानेकगानकलयानुगतलीलालास्यप्रसक्तकामिनीजनकमनीया, साकेतपुरी वेलातीतपौरजनप्रमोदा, अजायत ।

५ § ४६) तदानीं क्षोणीशे वितरति बहूनर्थनिवहान्

सुरद्रुव्यूहो द्रागहह दिवि पञ्चत्वमभजत् ।

तथा चिन्ताश्मत्वं सुरमणिरवाप प्रकृतितो

जगाहे स्वर्धेनुः सपदि शतमन्युं दूढतरम् ॥३१॥

- १० झङ्कारेण अव्यक्तशब्देन मनोहारिणी रम्या ये कुसुमोपहाराः पुष्पोपहारास्तैर्मण्डितं समलंकृतं रथ्याङ्गणं राजमार्गाजिरं यस्यां तथाभूता, महीपतीति—महीपतये राज्ञे निवेदनं समाचारदानं तस्य संभ्रमेण सत्वरत्वेन संचरतः समन्तात् चलन्तो ये वृद्धकञ्चुकीनिकराः स्थविरसौविद्धलसमूहास्ते पुरःसरा अग्रेसरा येषां तथाभूता ये परिवारजनाः कुटुम्बजनास्तेषां निर्दयसमर्हेन निष्करणसमाधातेन निपतितानि कुब्जवामनवर्षधरा कुब्जखर्वशिखण्डजनानां निकुरम्बाणि कदम्बकानि यस्यां तथाभूता, लम्बमानेति—लम्बमानेभ्यः संसमानेभ्यः कुचविम्बेभ्यो वक्षोजमण्डलेभ्यो विस्रस्तं नीचैःपतितमन्तरीयं वस्त्रं येषां तथाभूता ये वृद्धधात्रीजनाः स्थविरो-
- १५ पमातृसमूहास्तैः परिकलितं कृतं यन्नर्तनं नृत्यं तस्य निरीक्षणेन समवलोकनेन जनितः समुत्पादितः पुरजनानां नागरनराणां हास्यरसो यस्यां तथाभूता, युगपदिति—युगपद् एककालावच्छेदेन तरङ्गितानि वृद्धिगतानि यानि मङ्गलसंगीतानि तेषु संगतानि समायोजितानि यानि अनेकगानकानि नानाविधोपधानानि तेषां लयं स्वरतान-मनुगतानि यानि लीलालास्यानि लीलानृत्यानि तेषु प्रसक्ताः संलग्ना ये कामिनीजनाः स्त्रीसमूहास्तैः कमनीया मनोहरा वेलातीतो निर्भयादः पौरजनानां नागरनराणां प्रमोदो हर्षो यस्यां तथाभूता । स्वभावोक्तिः ।
- २० § ४६) तदानीं क्षोणीश इति—तदानीं पुत्रजन्मावसरे क्षोणीशे वृषभजिनेन्द्रे बहून् प्रभूतान् अर्थनिवहान् धनसमूहान् वितरति ददति सति सुरद्रुणां कल्पतरूणां व्यूहः समूहः द्राग् झटिति दिवि स्वर्गं पञ्चत्वं पञ्चतां मृत्युमिति यावत् पक्षे पञ्चसंख्यात्वं अभजत् । तथा सुरमणिर्देवमणिः प्रकृतितो निसर्गतः चिन्ताश्मत्वं चिन्तया अश्मत्वं पापान्श्वं पक्षे चिन्तामणित्वम् अवाप प्राप्तवान्, स्वर्धेनुः कामधेनुः सपदि शीघ्रं दूढतरं प्रबलं शतमन्युं शतशोकं पक्षे इन्द्रं 'मन्युः पुमान् क्रुधि । दैन्ये शोके च यजे च' इति मेदिनी, 'मन्युर्दैन्ये क्रतो क्रोधे वासवे तु शतात्परः' इति विश्वलोचनः, जगाहे प्राप अहह इति खेदे 'अहहाद्भुतखेदयोः' इति विश्वलोचनः ।
- २५

- उपहारसे जिसमें राजमार्गके मैदान सुशोभित हो रहे थे, राजाके लिए पुत्रजन्म सम्बन्धी सूचना देने की उतावलीसे सब ओर चलते हुए वृद्ध कञ्चुकियोंके समूह जिनके आगे-आगे चल रहे थे ऐसे परिवारके लोगोंकी निर्दय धक्काधूमीसे जहाँ कुबड़ों, बीनों और हिंजड़ोंके समूह गिर गये थे, लटकते हुए स्तनविम्बोंके ऊपरसे जिनके वस्त्र नीचेकी ओर खिसक गये थे ऐसी वृद्ध धायोंके द्वारा किये हुए नृत्यको देखनेसे जहाँ नगरवासी जनोको हास्यरस उत्पन्न हो रहा था, और एक साथ वृद्धिको प्राप्त हुए मंगलमय संगीतके बीच-बीचमें मिले हुए अनेक उपगानोंकी लयके अनुसार होनेवाली नृत्य क्रीड़ामें व्यस्त स्त्रीजनोंसे जो सुन्दर थी ऐसी वह अयोध्यापुरी नागरिकजनोंके बहुत भारी हर्षसे युक्त हो रही थी । § ४६) तदानीं क्षोणीश इति—उस समय जब राजा वृषभदेव बहुत भारी धनसमूहका वितरण कर रहे थे तब खेद है कि कल्पवृक्षोंका समूह शीघ्र ही स्वर्गमें पञ्चता—मृत्यु (पक्षमें पाँच संख्या) को प्राप्त हो गया, देवमणि स्वभावसे ही चिन्ताके कारण पाषाणपत्तेको प्राप्त हो गया (पक्षमें चिन्तामणि बन गया) और कामधेनु शीघ्र ही बहुत भारी शतमन्यु—सैकड़ों प्रकारके शोक
- ३५

§ ४७) तदनु नाभिराजकच्छमहाकच्छभूपालाः संमिलितास्तस्य कुमारस्य जातकर्मोत्सवं विधाय, निधाय च निजाङ्के भाविसकलभरताधिपस्यास्य भरत इति नामधेयं प्रकटयामासुः ।

§ ४८) तन्नाम्ना भारतं वर्षमितीहासीञ्जनास्पदम् ।

हिमाद्रेरासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्रभृतामिदम् ॥३२॥

§ ४९) पुत्रोऽयं तनुकान्तिनिर्मलजलः श्रीकुन्तलालिब्रज-

व्याप्तः पादकरास्यशोणकमलो वाहामृणालद्युतिः ।

राज्यश्रीहृदयंगमप्रविलसत्संवासपद्माकरः

सामोदः समभूच्चिरं मनुकुलक्षीराब्धिमध्ये ध्रुवम् ॥३३॥

§ ५०) स किल भरतकुमारो बन्धुजनकरकमलविहारकेलिकलहंसः सकलगुरुजननयनेन्दी-

श्लेषः । शिखरिणी छन्दः ॥३१॥ § ४७) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं नाभिराजश्च कच्छश्च महाकच्छश्चेति १०
नाभिराजकच्छमहाकच्छाः ते च ते भूपालाश्च राजानश्चेति तथाभूताः संमिलिताः संगताः सन्तः तस्य
कुमारस्य जातकर्मोत्सवं जन्मक्रियोत्सवं विधाय कृत्वा निजाङ्के स्वोत्सङ्गे निधाय च स्थापयित्वा च भावो
चासौ सकलभरताधिपश्चेति तथा तस्य अस्य कुमारस्य भरत इति नामधेयं नाम प्रकटयामासुः । § ४८)
तन्नाम्नेति—जनास्पदं लोकस्थानं । हिमाद्रेः हिमवत्कुलाचलादारभ्य आसमुद्रात् आलवणोदं इदम् चक्रभृतां
चक्रवर्तिनां क्षेत्रं तन्नाम्ना तन्नामधेयेन भारतं वर्षम् आसीत् इतीह इत्येवम् इतिहासज्ञा वदन्ति ॥३२॥ § ४९) १५
पुत्रोऽयमिति—अयं पुत्रः मनुकुलं मनुवंश एव क्षीराब्धिः क्षीरसागरस्तस्य मध्ये ध्रुवं निश्चयेन राज्यश्रिया
राज्यलक्ष्म्या हृदयंगमः प्रियः प्रविलसन् प्रकर्षेण शोभमानः संवासपद्माकरो निवाससरोवरः चिरं चिरकाल-
पर्यन्तं समभूत् । अथ पुत्रस्य पद्माकरत्वं साधयति—तनुकान्तिः देहदोषिरेव निर्मलजलं स्वच्छतलिलं यस्मिन्
सः, श्रीकुन्तलाः शुम्भदलका एव अलयो भ्रमरास्तेषां व्रजेन समूहेन व्याप्तः, पादो च करो च आस्यं चेति
पादकरास्यं तदेव शोणकमलानि रक्तकमलानि यस्मिन्स्थिताभूतः, वाहा बाहुरेव मृणालद्युतिर्मृणालकान्तिर्यस्मिन् २०
सः 'वाहावाही ह्ये बाही' इति विश्वलोचनः । सामोदः आमोदो हर्ष एवामोदोऽतिनिर्हारी गन्धस्तेन सहितः ।
'सुगन्धि मुदि वा मोदः' इति विश्वलोचनः । रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥३३॥ § ५०) स
किलेति—बन्धुजनानां करकमलेषु विहारो यस्य तथाभूतः केलिकलहंसः क्रीडाकादम्बः, सकलगुरुजनानां

(पक्षमें इन्द्र) को प्राप्त हो गयी ॥३१॥ § ४७) तदन्विति—तदनन्तर नाभिराज कच्छ-
महाकच्छ आदि राजाओंने सम्मिलित होकर उस पुत्रका जन्म क्रिया सम्बन्धी उत्सव किया २५
और अपनी गोदमें रखकर समस्त भरत क्षेत्रका स्वामी होनेवाले इस पुत्रका 'भरत' यह
नाम प्रकट किया । § ४८) तन्नाम्नेति—उसके नामसे यह देश भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ
ऐसा इतिहास है । हिमवान् कुलाचलसे लेकर लवण समुद्र तकका यह क्षेत्र चक्रवर्तियोंका
क्षेत्र कहलाता है ॥३२॥ § ४९) पुत्रोऽयमिति—सचमुच ही वह पुत्र, मनुवंशरूपी क्षीरसागरके
मध्यमें राज्यलक्ष्मीके प्रिय निवास स्वरूप पद्माकर—तालाब था क्योंकि शरीरकी कान्ति ही ३०
उसमें निर्मल जल था, वह शोभायमान केशरूपी भ्रमरोंके समूहसे व्याप्त था, पैर हाथ तथा
मुख ही उसमें लाल कमल थे, भुजा ही उसमें मृणाल थी और आमोद—हर्ष ही उसमें
सुगन्धि थी ॥३३॥ § ५०) स किलेति—जो बन्धुजनोंके करकमलोंमें विहार करनेवाला क्रीडा-
हंस था, तथा समस्त गुरुजनोंके नेत्ररूपी नीलकमलोंको विकसित करनेके लिए शरद् ऋतुका

वरानन्दशरच्चन्द्रः सुन्दरमन्मनहसितमन्मनालापलसितमणिकुट्टिमचङ्क्रमणादिभिः पित्रोरानन्दं कन्दलयामास ।

§ ५१) कण्ठे मञ्जुलकुञ्जरारिनखरव्याबद्धमुक्तामणी-

मालां धैर्यगुणश्रियः प्रविचलद्दोलायमानां दधत् ।

५ चिक्रीड क्षितिपालबालककुलैर्व्यालोलसत्कुण्डलः

सानन्दं पुरुषनन्दनो मनुकुलप्राच्याचलाहस्करः ॥३४॥

§ ५२) तदनु मनुकुलतिलकोऽयं बालको लोकयात्रावर्तनतत्परेण पुरुषरमेश्वरेण परिकलि-
तान्नप्राशनचौलोपनयादिक्रमः, सवयोभिर्नरेन्द्रनन्दनैः सह प्रकटितपांसुविहारः, कुरङ्गमदकर्म-
संपादितरेखामण्डितगण्डमण्डलः, कुङ्कुमपांसुपटलसान्द्रसिन्दूरितमस्तकः, कदाचिन्मदान्धसिन्धुर-

- १० निखिलगुरुजनानां नयनान्येव इन्द्रीवराणि कुवलयानि तेषामानन्दाय हर्षाय शरच्चन्द्रः शरदिन्दुः स भरत-
कुमारः किल सुन्दरमन्मनहसितं मनोज्ञमन्दहसितं, मन्मनालापोऽव्यक्तमधुरशब्दः, लसितमणिकुट्टिमेषु शोभित-
रत्नवसुन्धरापृष्ठेषु चङ्क्रमणं जानुभ्यां चलनं तदादिभिस्तत्प्रभृतिभिः पित्रोः माता च पिता चेति पितरौ
तयोर्मतापित्रोः आनन्दं हर्षं कन्दलयामास वर्धयामास । § ५१) कण्ठ इति—कण्ठे ग्रीवायां धैर्यगुणश्रियो
धौरत्वगुणलक्ष्म्याः प्रविचलन्ती चासौ दोला चेति प्रविचलद्दोला तद्वद् आचरतीति प्रविचलद्दोलायमाना ताम्
- १५ आन्दोलयमानां दोलवदाचरन्तीम् मञ्जुलैर्मनोहरैः कुञ्जरारिनखैर्व्याघ्रनखरैर्व्याबद्धा व्यामिथा या मुक्तामणीमाला
मुक्तायष्टिस्तां दधत् बिभ्रत्, व्यालोले चञ्चले सत्कुण्डले शोभितकर्णाभरणे यस्य तथाभूतः, मनुकुलं मनुवंश
एव प्राच्याचलः पूर्वगिरिस्तत्राहस्करः सूर्यः पुरुषनन्दनो वृषभजिनेन्द्रनन्दनः क्षितिपालबालककुलः राजपुत्रसमूहः
सह सानन्दं सहर्षं यथा स्यात्तथा चिक्रीड क्रीडति स्म । रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥३४॥ § ५१)
तदन्विति—तदनु तदनन्तरं मनुकुलतिलको मनुवंशश्रेष्ठः अयं बालको भरताभिधानः, लोकयात्रायाः लोक-
- २० व्यवहारस्य वर्तने प्रवर्तने तत्परः समुद्युक्तस्तेन पुरुषरमेश्वरेण वृषभजिनेन्द्रेण परिकलिताः कृताः अन्नप्राशन-
चौलोपनयादिक्रमा अन्नभक्षण-चूडासंस्कारयज्ञोपवीतसंस्कारप्रभृतिविधयो यस्य तथाभूतः सन्, सवयोभिः
समानावस्थायुक्तैः नरेन्द्रनन्दनैः राजपुत्रैः सह प्रकटितः पांसुविहारो धूलिकेलियेन तथाभूतः, कुरङ्गमदकर्ममेन
कस्तूरीद्रवेण संपादिता रचिता या रेखास्ताभिर्मण्डितं शोभितं गण्डमण्डलं कपोलस्थलं यस्य सः, कुङ्कुमस्य
काश्मीरस्य पांसुपटलेन धूलिसमूहेन सान्द्रं यथा स्यात्तथा सिन्दूरितं रक्तवर्णकृतं मस्तकं येन सः, कदाचित्
- २५ चन्द्र था ऐसा वह भरत कुमार, सुन्दर किलकारियोंसे परिपूर्ण मन्द मुसकान, अव्यक्त मधुर
बोली और शोभायमान मणिमय फर्शपर घुटनोंके बल चलना आदिके द्वारा माता-पिताके
हर्षको बढ़ा रहा था । § ५१) कण्ठ इति—जो कण्ठमें धैर्य गुणरूपी लक्ष्मीके चञ्चल झूलाके
समान सुशोभित, मनोहर व्याघ्र नखोंसे युक्त मुक्तामणियोंकी मालाको धारण कर रहा था,
जिसके उत्तम कुण्डल हिल रहे थे तथा जो मनुवंशरूपी उदयाचलपर सूर्यके तुल्य था ऐसा,
भगवान् वृषभदेवका वह पुत्र राजकुमारोंके समूहके साथ सानन्द क्रीड़ा करता था ॥३४॥
§ ५२) तदन्विति—तदनन्तर लोक व्यवहारके चलानेमें तत्पर वृषभजिनेन्द्रके द्वारा जिसके
अन्नप्राशन, मुण्डन तथा यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये गये थे ऐसा वह मनुवंशका तिलक
स्वरूप बालक, समान अवस्थावाले राजकुमारोंके साथ कभी धूलिमें खेलता था, कभी
हाथीका रूप रखकर खेलता था, उस समय वह कस्तूरीके रससे निर्मित रेखाओंके द्वारा
अपने गण्डस्थलोंको सुशोभित करता था तथा केशरकी परागके समूहसे अपने मस्तकको
अत्यधिक सिन्दूरसे युक्त किये हुएके समान लाल-लाल कर लेता था । जब और बढ़ा हुआ
तब सचमुच ही मदनोन्मत्त हाथीपर सवार होकर हर्षसहित अपने योग्य वाहनोंपर बैठे हुए

मारुह्य सहर्षमधिरूढोपवाह्यैरन्यैर्वयस्यैः सह प्रमदवनं प्रति प्रतिष्ठमानः, कुञ्चिताग्रतर्जनीनिशिता-
ङ्कुशः प्रविश्य च तद्वनं तत्र विचित्रकृतकाचलतुङ्गतमशृङ्गेषु व्यापारिततदगजः, कोमलकदलीकाननेषु
संभ्रमसमुत्पाटितरम्भातरुगुम्भं कुम्भीन्द्रं संचारयन्, गम्भीरतरविमलदीधिकासलिलेषु संप्लावयन्,
विकचकमलकुलशोभितकमलाकरे सरोजवननिर्मूलनप्रचण्डशुण्डादण्डं शुण्डालमखण्डं संक्रीडयन्,
उदण्डपुण्डरीकषण्डप्रकल्पितधवलातपत्रधरः शुभ्रतरादभ्रमृदुलतन्तुसंतानदन्तुरितचामरनिकरः,
समुल्लसदशोकपल्लवपरिकल्पितविजयवैजयन्तीविसरः, पठनपटुबालकवन्दिसदोहजयजयानन्दको-
लाहलमुखरितदिगन्तरः नृपभवनमवजगाहे ।

मदान्वसिन्धुरं मत्तमतङ्गजम् आरुह्य समधिष्ठाय सहर्षं सानन्दं यथा स्यात्तथा अधिरूढा अधिष्ठिता उपवाह्याः
स्ववाहनयोग्यगजा यैस्तैः अन्यैरितरैः वयस्यैर्मित्रैः सह प्रमदवनं क्रीडाकाननं प्रति प्रतिष्ठमानः प्रस्थानं
कुर्वाणः, कुञ्चिताग्रा या तर्जनी तद्वत् निशितस्तीक्ष्णः अङ्कुशो यस्य सः, तद्वनं च प्रविश्य तत्र वने विचित्रा
नानाकारा ये कृतकाचलाः कृत्रिमक्रीडाशैलास्तेषां तुङ्गतमानि सूनतानि यानि शृङ्गाणि शिखराणि तेषु
व्यापारितः संचारितः तदगजः स्वाधिष्ठितद्विरदो येन सः, कोमलकदलीकाननेषु मृदुलमोचारामेषु संभ्रमेण
त्वरया समुत्पाटितो निर्मूलितो रम्भातरुगुम्भः कदलीतरुगुल्मो येन तं कुम्भीन्द्रं गजेन्द्रं संचारयन् भ्रमयन्,
गम्भीरतराणि अगाधानि विमलानि स्वच्छानि यानि दीधिकासलिलानि दीधिकाजलानि तेषु उपवनेषु जल-
क्रीडार्थं रचिता विशाललहदा दीधिका उच्यन्ते, संप्लावयन् समुत्तारयन्, विकचकमलानां विकसितारविन्दानां
कुलेन समूहेन शोभितो यः कमलाकरः पद्मोपलक्षितसरोवरस्तस्मिन् सरोजवनस्य कमलवनस्य निर्मूलने
समुत्पाटने प्रचण्डोऽतिदक्षः शुण्डादण्डो यस्य तं शुण्डालं गजं अखण्डं यथा स्यात्तथा संक्रीडयन् रमयन्,
उदण्डानि समुन्नतदण्डानि यानि पुण्डरीकाणि श्वेतकमलानि तेषां षण्डेन समूहेन प्रकल्पितं रचितं यद्
धवलातपत्रं तस्य धरः, शुभ्रतरा अतिधवला अदभ्रा अकुशा मृदुलाः कोमला ये तन्तवो मृणालसूत्राणि तेषां
संतानेन समूहेन दन्तुरितो नतोन्नतीकृत्स्नचामरनिकरो बालव्यजनसमूहो येन सः समुल्लसद्भिस्सन्मयमानैः
अशोकपल्लवैः कङ्कुलिकिसलयैः परिकल्पितो रचितो विजयवैजयन्तीविसरो विजयध्वजसमूहो येन सः, पठन-
पटव उच्चारणचतुरा बालका अल्पवयस्का ये बन्दिंसदोहा स्तुतिपाठकसमूहास्तेषां जयजयनन्दकोलाहलेन
जयजयकारकलकलेन मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि येन तथाभूतः सन् नृपभवनं राजसदनम् अवजगाहे

अन्य मित्रोंके साथ प्रमदवनकी ओर प्रस्थान करता था, जिसका अग्रभाग मुड़ा हुआ है
ऐसी तर्जनीके समान तीक्ष्ण अंकुशको वह लिये रहता था। वनमें प्रवेश कर वहाँ नाना
प्रकारके कृत्रिमपर्वतोंके अत्यन्त ऊँचे शिखरोंपर उस हाथीको घुमाता था। कभी कोमल
कदलीवनोमें वह हाथीको घुमाता था उस समय वह हाथी बड़ी उतावलीके साथ केलके
वृक्षोंको उखाड़नेमें तत्पर रहता था। कभी अत्यन्त गहरे एवं निर्मल दीधिका के कृत्रिम
तालाबोंके जलमें उस हाथीको तैराता था, कभी खिले हुए कमलोंके समूहसे शोभित
तालाबमें, जिसका शुण्डादण्ड बड़ी तेजीसे कमलवनको उखाड़ रहा था ऐसे हाथीको
निरन्तर क्रीड़ा कराता था, और कभी ऊँची डण्ठलवाले सफेद कमलोंसे निर्मित छत्रोंको
धारण कर, अत्यन्त सफेद बारीक और कोमल मृणाल सूत्रोंके चमरोंको चलवाता, ऊपरकी
ओर उठाये हुए अशोक वृक्षके पल्लवोंसे निर्मित विजयपताकाको धारण करता और
उच्चारण करनेमें निपुण अल्पवयस्थावाले बन्दीजनोंके जयजयकारसे दिशाओंके अन्तराल-

§ ५३) शरीरवल्लीकुसुमायमानं तारुण्यमेतस्य ततो जजृम्भे ।

सौन्दर्यलक्ष्मीविनिवासभूमेः सुवर्णखण्डस्य यथा सुगन्धः ॥३५॥

§ ५४) पितुर्यादृक् तादृक् ललितगमनं सैव च तनुः

कला लीला सैव स्मितमपि तदेव द्युतिरपि ।

५ वचः शीलं तद्वन्मधुरमिति सर्वेऽपि सुगुणा-

स्तथैव प्रोद्भूता न तु गुणविशेषो व्यलसत ॥३६॥

§ ५५) अयं खलु मनुकुलपूर्वाचलद्युमणिभूपालतनयचूडामणिर्मदन इति मानिनीभिः, सुर-
तरुरिति वनोपकजनैर्वैवस्वत इति विद्वेषिगणैः, कलासदनमिति कोविदैर्गन्धर्व इति गायकैः, स्नेह
इति धनैः, अनाश्रयणीय इति दोषैः, दुर्ग्रहचित्तवृत्तिरिति चित्तभुवा, स्त्रीपर इति सरस्वत्या, जनक
१० इति कीर्त्या, पतिरिति लक्ष्म्या, षण्ड इति परकलत्रैर्जगत्पालक इति प्रजाभिरगृह्यत ।

प्रविशेत् । § ५३) शरीरेति—ततस्तदनन्तरं सौन्दर्यलक्ष्म्या विनिवासभूमिस्तस्य सौन्दर्यश्रीसदनस्य एतस्य
भरतस्य शरीरवल्यास्तनुलतायाः कुसुमायमानं पुष्पायमाणं तारुण्यं यौवनं सुवर्णखण्डस्य काञ्चनशकलस्य
सुष्ठु गन्धः सुगन्धः सुरभिर्यथा जजृम्भे वद्वे । रूपकोपमा । उपजातिवृत्तम् ॥३५॥ § ५४) पितुरिति—
१५ पितुर्जनकस्य वृषभजिनेन्द्रस्य यादृक् यादृशं ललितगमनं सुन्दरगमनं तादृक्ललितगमनं, सैव च पितुसदृश्येव
तनुर्मूर्तिः 'स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः' इति धनंजयः । कला लीला सैव पितुसदृश्येव, स्मितमपि मन्दहसितमपि
तदेव, द्युतिः कान्तिरपि सैव, वचो वचनं शीलं स्वभावः च तद्वत् पितुरिव मधुरं मनोहरम् । इत्येवं सर्वेऽपि
सुगुणाः शोभनगुणाः तथैव पितुर्यथैव प्रोद्भूताः प्रकटिताः, गुणविशेषो गुणानां वैशिष्ट्यं न तु व्यलसत
शुशुभे । शिखरिणी छन्दः ॥३६॥ § ५५) अयमिति—अयं खलु एष किल, मनुकुलमेव पूर्वाचलस्तत्र
२० द्युमणिविरोचनः भूपालतनयेषु राजपुत्रेषु चूडामणिः शिखामणिरिव श्रेष्ठो भरतः, मदनी मीनकेतन इति मानि-
नीभिः मनस्विनीभिः, सुरतरुः कल्पवृक्ष इति वनोपकजनैर्याचकजनैः, वैवस्वतो यम इति विद्वेषिगणैः शत्रुसमूहैः,
कलासदनं चातुरीभवनम् इति कोविदैर्बुधैः, गन्धर्वो गानप्रियदेवविशेष इति गायकैः, स्नेहः प्रणय इति धनैर्विस्त्रैः,
अनाश्रयणीय आश्रयितुमर्ह इति दोषैरवगुणैः, दुर्ग्रहा चित्तवृत्तिर्यस्य स दुर्यहमनोवृत्तिरिति चित्तभुवा
मनोजेन, स्त्रीपरः स्त्रीसक्तः इति सरस्वत्या शारदया, जनकः पितेति कीर्त्या यशसा, पतिवत्लभ इति लक्ष्म्या,
षण्डः क्लीब इति परकलत्रैः परपुरन्ध्रीभिः, जगत्पालकस्त्रिभुवनत्राता इति प्रजाभिर्जनैः अगृह्यत गृहीतः ।

२५ को गुञ्जाता हुआ राजभवनमें प्रवेश करता था । § ५३) शरीरेति—तदनन्तरं सौन्दर्य-
लक्ष्मीकी निवासभूमि स्वरूप इस भरतका, शरीररूपी लताके समान आचरण करनेवाला
यौवन, सुवर्ण खण्डकी सुगन्धके समान वृद्धिको प्राप्त होने लगा ॥३५॥ § ५४) पितुरिति—
उसका पिताका जैसा ही सुन्दर गमन था, वही शरीर था, वही कला और लीला थी, वही
मुसकान थी, वही कान्ति थी, वचन तथा शील भी उन्हींके समान थे इस तरह उसके
३० सभी गुण पिताके समान ही प्रकट हुए थे, गुणोंमें थोड़ी भी विशेषता नहीं थी ॥३६॥
§ ५५) अयमिति—मनुवंशरूपी उदयाचलके सूर्य तथा राजपुत्रोंमें श्रेष्ठ इस भरतको यह
काम है इस प्रकार स्त्रियोंने, कल्पवृक्ष है इस प्रकार याचक जनोंने, यम है इस प्रकार शत्रु-
दलोंने, कलाभवन है इस प्रकार विद्वानोंने, गन्धर्व है इस प्रकार गायकोंने, स्नेह है इस
प्रकार धनोंने, अनाश्रयणीय है इस प्रकार दोषोंने, इसकी मनोवृत्तिको ग्रहण करना कठिन
३५ है इस प्रकार कामदेवने, स्त्रियोंमें आसक्त है इस प्रकार सरस्वतीने, जनक है इस प्रकार
कीर्तिने, पति है इस प्रकार लक्ष्मीने, नपुंसक है इस प्रकार परस्त्रियोंने और जगत्का रक्षक

§ ५६) मनुकुलवारिजदिनकरभरतगुणाब्धिर्हि कुशलिमकरोऽयम् ।

नक्रंदयते कमपि च तद्युक्तं भङ्गरहित इति चित्रम् ॥३७॥

§ ५७) नरजन्या लसमानो नखोज्ज्वलोऽयं तथापि भरत इति ।

राजेति च प्रसिद्धि गत इति चित्तेऽपि नृत्यति विचित्रम् ॥३८॥

§ ५८) तदनु यः किल वज्रजङ्घभवे पुरोहितानन्दनस्ततोऽधोग्रैवेयकाहमिन्द्रः पीठः सर्वार्थ-

सिद्धावहमिन्द्रश्च बभूव स खलु यशस्वत्यां वृषभसेननामतनूजोऽजायत ।

§ ५९) श्रेष्ठो धनमित्रोऽप्यधोग्रैवेयकाहमिन्द्रो महापीठः सर्वार्थसिद्धावहमिन्द्रश्च सोऽयमधु-
नानन्तविजयो नाम तनयो बभूव ।

§ ६०) शार्दूलार्यश्च चित्राङ्गदेवो वरदत्तनृपोऽच्युतसामानिको विजयनृपश्च भूत्वा
सर्वार्थसिद्धयहमिन्द्रः सोऽयमनन्तवीर्यो नाम तनयोऽजायत ।

§ ६१) वराहार्यश्च मणिकुण्डलामरो वरसेनभूपालोऽच्युतसामानिको वैजयन्तनृपश्च भूत्वा
सर्वार्थसिद्धयहमिन्द्रः सोऽयमच्युतनाम सूनुरजायत ।

उल्लेखालंकारः । § ५६) मनुकुलेति—कुशलस्य भावः कुशलिमा कुशलत्वं तस्य करः पक्षे कुशलिनो मकरा
जलजन्तुविशेषा यस्मिन् तथाभूतः अयम् मनुकुलवारिजदिनकरो मनुवंशकमलकमलबन्धुर्यो भरतस्तस्य
गुणाब्धिर्गुणसागरः कमपि जनमिति शेषः न क्रन्दयते न रोदयति पक्षे कमपि विलक्षणं नक्रं जलजन्तुविशेषं
दयते रक्षति तद्युक्तं योग्यम् किन्तु भङ्गरहितस्तरङ्गरहितः पक्षे विनाशरहित इति चित्रमाश्चर्यम् । दलेप-
विरोधाभासौ । आर्यावृत्तम् ॥३७॥ § ५७) नरजन्येति—अयं वृषभजिनेन्द्रमुतः रजन्या रात्र्या न लसमानो
न शोभमानः, न खे गगने उज्ज्वलो देदीप्यमानः तथापि भेषु नक्षत्रेषु रत आसक्त इति, राजा चन्द्रश्च इति
प्रसिद्धि प्रख्याति गतः प्राप्त इति चित्तेऽपि चेतस्यपि विचित्रमाश्चर्यं नृत्यति । पक्षे नरजन्या मनुष्यजन्मना
लसमानः, नखैर्नखैरुज्ज्वलो देदीप्यमान इति नखोज्ज्वलः, भरत इति नामधेयः राजा भूपतिरिति प्रसिद्धि

है इस प्रकार प्रजाओंने समझा था । § ५६) मनुकुलेति—कुशलिमकर—कुशलताको करने-
वाला (पक्षमें अच्छे मगरोंसे सहित) सूर्यवंशरूप कमलोंको विकसित करनेके लिए सूर्य-
स्वरूप भरतका गुणरूपी सागर किसीको भी नहीं रुलाता है—किसीको दुःखी नहीं करता
है (पक्षमें नक्रपर दया करता है) यह उचित है किन्तु भंगरहित—तरंगरहित है यह
आश्चर्य है । (पक्षमें विनाश—पराजयसे रहित है ॥३७॥ § ५७) नरजन्येति—भगवान्
वृषभदेवका वह पुत्र न तो रात्रिसे शोभायमान था, और न आकाशसे उज्ज्वल ही था तो
भी भरत—नक्षत्रोंमें रत और राजा—चन्द्र इस प्रकारकी प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ था यह
विचित्र बात मनमें भी सदा नृत्य करती रहती है (पक्षमें वह वृषभदेवका पुत्र मनुष्य
जन्मसे शोभायमान था, नाखूनोंसे देदीप्यमान था, भरत तथा राजा इस प्रकारकी प्रसिद्धिको
प्राप्त था) ॥३८॥ § ५८) तदन्विति—तदनन्तर वज्रजङ्घभवे जो आनन्द नामका पुरोहित था,
फिर अधोग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुआ पश्चात् पीठ और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह
यशस्वतीके वृषभसेन नामका पुत्र हुआ । § ५९) श्रेष्ठेति—श्रेष्ठो धनमित्र भी अधोग्रैवेयकमें
अहमिन्द्र, महापीठ और सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह इस समय अनन्तविजय
नामका पुत्र हुआ । § ६०) शार्दूलार्येति—शार्दूलार्यका जीव चित्राङ्ग देव, वरदत्त राजा,
अच्युतस्वर्गका सामानिकदेव और विजय राजा होकर सर्वार्थसिद्धिका अहमिन्द्र हुआ था
वह अनन्तवीर्य नामका पुत्र हुआ । § ६१) वराहार्येति—वराहार्यका जीव मणिकुण्डल-

§ ६२) वानरार्यश्च मनोहरदिविजश्चित्राङ्गदभूपालोऽच्युतसामानिको जयन्तमहीपतिश्च भूत्वा सर्वार्थसिद्धौ संजातोऽहमिन्द्रो वीरनामा तनूभवो बभूव ।

§ ६३) नकुलार्यश्च मनोहरदिविजः शान्तमदनमहीकान्तोऽच्युतसामानिकोऽपराजितनृपश्च भूत्वा सर्वार्थसिद्धौ संजातोऽहमिन्द्रो वरवीराभिधानः सूनुरजायत ।

५ § ६४) इत्येकोनशतं पुत्रा यशस्वत्या जिनेश्वरात् ।

भरतस्यानुजन्मानो बभूवुश्चरमाङ्गकाः ॥३९॥

§ ६५) ब्राह्मीं तनूजामतिसुन्दराङ्गीं ब्रह्माथ तस्यामुदपादयत्सः ।

कलानिधेः पूर्णकलां मनोज्ञां प्राच्यां दिशायामिव शुक्लपक्षः ॥४०॥

§ ६६) पूर्वोक्तवज्रजङ्घसेनानायकोऽकम्पनश्चाधोग्रैवेयकाहमिन्द्रो महाबाहुमहीपतिश्च

१० भूत्वा सर्वार्थसिद्धौ संजातोऽहमिन्द्रो मृगेन्द्र इव कन्दरागर्भं सुनन्दागर्भमाविवेश ।

§ ६७) व्यपगतवल्लिभङ्गं संप्रवृद्धं मृगाक्ष्याः

सुभगमुदरदेशं वीक्ष्य सद्बृत्तरूपी ।

- गतः । श्लेषविरोधाभासो । आर्यावृत्तम् । § ५८-६३) तदन्विति—श्रेष्ठीति,—शार्दूलार्येति,—वराहार्येति,—
 वानरार्येति—नकुलार्येति—सुगमं सर्वम् । § ६४) इत्येकोनेति—इतीत्थं जिनेश्वरात् वृषभात् यशस्वत्या
 १५ भरतस्य अनु पश्चात् जन्म येषां ते, चरमाङ्गाकाश्चरमशरीराः एकोनशतं तदन्वतिः पुत्राः बभूवुः समुत्पन्नाः
 ॥३९॥ § ६५) ब्राह्मीमिति—अथ तदनन्तरं स ब्रह्मा वृषभजिनेन्द्रः तस्यां यशस्वत्यां शुक्लपक्षः प्राच्यां
 पूर्वस्यां दिशायां काष्ठायां कलानिधेरिन्द्रोः मनोज्ञां मनोहरां पूर्णकलामिव अतिसुन्दराङ्गीं अतिकमनीय-
 कलेवरां ब्राह्मीं तन्नाम्नीं तनूजां पुत्रीम् उदपादयत् जनयामास । उपमा । उपजातिः ॥४०॥ § ६६)
 पूर्वोक्तेति—सुगमम् । § ६७) व्यपगतेति—मृगाक्ष्याः कुरङ्गलोचनायाः सुनन्दायाः संप्रवृद्धं समन्ताद्वृद्धि-
 २० प्राप्तं व्यपगता विनष्टा वलिभङ्गास्त्रिबलितरङ्गा यस्मिन्स्थिताभूतं सुभगं सुन्दरं उदरदेशं जठरप्रदेशं वीक्ष्य
 दृष्ट्वा सद्बृत्तं समीचीनवर्तुलाकारं रूपं ययोस्ती पक्षे सद्बृत्तं सच्चारित्रमेव रूपं स्वरूपं ययोस्ती

- नामका देव, वरसेन राजा अच्युतस्वर्गका सामानिक देव, और वैजयन्त नामका राजा
 होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह अच्युत नामका पुत्र हुआ । § ६२) वानरार्येति—
 वानरार्यका जीव मनोहरदेव, चित्राङ्गद राजा, अच्युतस्वर्गका सामानिक देव, और जयन्त
 २५ राजा होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह वीरनामक पुत्र हुआ । § ६३) नकुला-
 र्येति—नकुलार्यका जीव मनोरथ देव, शान्तमदन राजा, अच्युतस्वर्गका सामानिक देव और
 अपराजित नामका राजा होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह वरवीर नामका
 पुत्र हुआ । § ६४) इत्येकोनेति—इस प्रकार वृषभ जिनेन्द्रसे यशस्वतीके, भरतके पीछे जन्म
 लेनेवाले निन्यानवे चरमशरीरी पुत्र और हुए ॥३९॥ § ६५) ब्राह्मीमिति—तदनन्तर जिस
 ३० प्रकार शुक्लपक्ष पूर्वदिशामें चन्द्रमाकी सुन्दर पूर्णकलाको उत्पन्न करता है उसी प्रकार
 वृषभ जिनेन्द्रने उस यशस्वतीमें अत्यन्त सुन्दर शरीरकी धारक ब्राह्मी नामकी पुत्रीको
 उत्पन्न किया ॥४०॥ § ६६) पूर्वोक्तेति—पूर्वोक्त वज्रजङ्घका सेनापति अकम्पन अधोग्रैवेयकमें
 अहमिन्द्र और महाबाहु राजा होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था वह सुनन्दाके
 गर्भमें उस तरह प्रविष्ट हुआ जिस तरह कि मृगराज गुहाके गर्भमें प्रविष्ट होता है ।
 ३५ § ६७) व्यपगतेति—त्रिबलरूपी तरंगसे रहित तथा वृद्धिको प्राप्त हुए सुनन्दाके सुन्दर
 उदरको देखकर सद्बृत्तरूप—उत्तम गोल आकारवाले (पक्षमें सदाचार स्वरूप) और

वत सुहचिरमुक्तोद्भूतशोभां दधाना-

वपि मलिनमुखत्वं प्रापतुर्द्रागुरोजौ ॥४१॥

§ ६८) सा किल विशालाक्षो दिशावशावल्लभसकाशकरेणुराजकलितसमरविलोकनविलासमतिकौतुकेन विलोकमाना नानाविधमल्लजननियुद्धकेलिकथामेव शुश्रूषन्ती क्रमेण नवमासेष्वतीतेषु बाहुबलिसमाह्वयं तनयं जनयामास ।

§ ६९) विनृत्यद्वारस्त्रीचरणविरणन्तूपुररवे-

स्तथा भेरीध्वानेः पटुदलितदिग्भित्तिपटलैः ।

परीतं साकेतं पुरमभवदुत्तोरणकुलं

समुद्भूते पुत्रे विमलपटकेतुप्रघटितम् ॥४२॥

§ ७०) वज्रजङ्घभवे यास्य भगिन्यासीदनुन्दरी ।

सा सुन्दरीत्यभूत्पुत्री वृषभस्यातिसुन्दरी ॥४३॥

सुहचिराः सुन्दरा या मुक्ता मुक्ताफलानि ताम्य उद्भूता समुत्पन्ना या शोभा तां पक्षे सुहचिराः शोभनश्रद्धाप्रदायका ये मुक्ताः सिद्धपरमेष्ठिनस्तेषामुद्भूतशोभां समुत्कटशोभां दधानावपि बिभ्रतावपि उरोजौ कुचौ द्राग् शटिति मलिनमुखत्वं श्याममुखत्वं पक्षे कृष्णग्रभागत्वं प्रापतुरिति वत खेदः । सज्जनावपि दुर्जनवत्परगुणासहौ जाताविति खेदस्य विषयः । श्लेषः । मालिनी छन्दः ॥४१॥

§ ६८) सा किलेति—सा किल विशालाक्षो दीर्घलोचना सुनन्दा, दिशावशावल्लभानां दिग्गजानां सकाशाः सदृशा ये करेणुराजा गजराजास्तैः कलितः कृतो यः समरो रणस्तस्य विलोकनविलासं दर्शनक्रोडाम् अतिकौतुकेन महाकुतूहलेन विलोकमाना पश्यन्ती, नानाविधमल्लजनानां या नियुद्धकेलिः बाहुयुद्धक्रीडा तस्याः कथामेव वातमेव शुश्रूषन्ती श्रोतुमिच्छन्ती क्रमेण नवमासेषु अतीतेषु सप्तु बाहुबलिसमाह्वयं बाहुबलिनामधेयं तनयं पुत्रं जनयामास प्राप्तम् ॥ § ६९) विनृत्यदिति—पुत्रे सूती समुद्भवे समुत्पन्ने सति

साकेतपुरमयोध्यानगरम् विनृत्यन्त्यो विशेषेण नृत्यं कुर्वन्त्यो या वारस्त्रियस्तासां चरणेषु विरणन्तः शिञ्जितं कुर्वाणा ये नूपुरास्तुलाकोटयस्तेषां रवैः शब्दैः तथा पटु यथा स्यात्तथा दलितानि खण्डितानि दिग्भित्तोनामाशाकुडधानां पटलानि यैस्तैः भेरीध्वानैर्दुन्दुभिनादैः परीतं व्याप्तं उद्गतानि तोरणकुलानि बहिर्द्वार-

निकुरम्भाणि यस्मिंस्तत्, विमलपटकेतुभिर्निर्मलवैजयन्तीवस्त्रैः प्रघटितं सहितम् अभवत् । § ७०) वज्रजङ्घेति—वज्रजङ्घभवे वज्रजङ्घपर्याये अस्य भगवतो या अनुन्दरी तन्नाम्नी भगिनी स्वसा अभूत् सा

अत्यन्त सुन्दर मोतियोंसे उत्पन्न शोभाको (पक्षमें उत्कृष्ट श्रद्धा प्रदान करनेवाले सिद्धपरमेष्ठीके समान बहुत भारी शोभाको) धारण करनेवाले स्तन भी शीघ्र ही मलिन मुखपनेको प्राप्त हो गये थे यह खेदकी बात थी ॥४१॥ § ६८) सा किलेति—जिसके नेत्र अत्यन्त विशाल थे, जो दिग्गजोंके समान गजराजोंके द्वारा किये हुए युद्धके देखने सम्बन्धी विलासको बहुत भारी कौतुकसे देखती थी और नानाप्रकारके मल्लोंके बाहु युद्ध सम्बन्धी चर्चाको ही सुननेकी इच्छा रखती थी ऐसी उस सुनन्दाने क्रमसे नव माह व्यतीत होनेपर बाहुबली नामका पुत्र उत्पन्न किया । § ६९) विनृत्यदिति—उस समय पुत्रके उत्पन्न होनेपर अयोध्या-

नगरी विशिष्ट प्रकारका नृत्य करनेवाली वारांगनाओंके चरणोंमें रुनझुन करनेवाले नूपुरोंके शब्दोंसे तथा अत्यधिक रूपसे दिशारूप दीवारोंके पटलोंको खण्डित करनेवाले दुन्दुभियोंके शब्दोंसे व्याप्त हो गयी थी । उस समय वहाँ ऊँचे-ऊँचे तोरण द्वार खड़े किये गये थे और

निर्मल पताकाओंके वस्त्र फहराये गये थे ॥४२॥ § ७०) वज्रजङ्घेति—वज्रजङ्घभवे जो इनकी अनुन्दरी नामकी बहिन थी वह इन भगवान् वृषभदेवकी सुन्दरी नामकी अत्यन्त

§ ७१) स्वर्णस्फुरत्सरोजश्रियं वितन्वन्तमुदितमभ्रमितम् ।

रविमिव विभया प्राची पुत्रं पुत्र्या सहाभजत्तेषां ॥४४॥

§ ७२) तत्कालकामदेवं तारुण्यश्रीमनोहराकारम् ।

को वर्णयितुं शक्नो भुजबलिनं तं त्रिलोकरमणीयम् ॥४५॥

५

§ ७३) यस्य च चञ्चरीकसंचयधिककारिणी कुन्तलराजी, राजीवसुहृद्वदनप्रभा, प्रभाकर-
निभं कुण्डलमहो, महोत्पलच्छविनयनलक्ष्मीः, लक्ष्मीनिकेतनं वक्षोवलयं, वलयविलसितं करयुगलं,
गलविलसिता मुक्तावली, बलित्रयभासुरं सुभगोदरं, दरहसितं तुलितेन्दुबिम्बं, बिम्बसहोदरमधर-
पल्लवं, पल्लवकोमलं पादयुगं, युगायतो भुजविलासो, विलासवतोमनोहरा तनुलतेति ।

- १० वृषभस्य जिनेन्द्रस्य अतिसुन्दरी रमणीयतरा सुन्दरोति नामधेया पुत्री सुता अभूत् ॥४३॥ § ७१) स्वर्ण-
स्फुरदिति—एषा सा सुनन्दा प्राची पूर्वाशा विभया प्रभया सह रविमिव सूर्यमिव पुत्र्या दुहित्रा सह पुत्रं
सूनुम् अभजत् प्रापत् । अथ पुत्ररग्योः सादृश्यमाह—स्वर्णस्य कनकस्य स्फुरद् विकसत् यत्सरोजं कमलं तद्वत्
श्रीः शोभा तां पक्षे सुष्ठु अर्णः स्वर्णः सुजलं तस्मिन् स्थितानि यानि सरोजानि कमलानि तेषां श्रियं शोभां
वितन्वन्तं विस्तारयन्तम्, उदितं प्राप्तजन्मानं पक्षे प्राप्तोदयम्, भ्रमः संजातो यस्य स भ्रमितः संदेहयुक्तः न
भ्रमित इत्यभ्रमितस्तं संदेहातीतं पक्षे अभ्रं गगनम् इतं प्राप्तम् । श्लेषोपमा । आर्या ॥४४॥ § ७२) तत्का-
लेति—तत्कालकामदेवं स चासी कालः तत्कालस्तत्समयः तृतीयकालान्त इत्यर्थः तत्र कामदेवस्तं चतुर्विंशतिः
कामदेवा भवन्ति तेष्वयं प्रथमकामदेवपदवीधारकोऽभूदिति भावः, तारुण्यश्रिया यौवनलक्ष्म्या मनोहर आकारो
यस्य तं त्रिलोकरमणीयं त्रिभुवनैकसुन्दरं तं भुजबलिनं बाहुबलिनं वर्णयितुं कः शक्तः कः समर्थः । न
कोऽपीत्यर्थः । आर्या ॥४५॥ § ७३) यस्य चेति—यस्य च बाहुबलिनः कुन्तलराजी अलकपङ्क्तिः चञ्चरीक-
संचयस्य भ्रमरसमूहस्य धिक्कारिणी तिरस्कारिणी, वदनप्रभा मुखकान्तिः राजीवसुहृद् कमलमित्रम्,
२० कुण्डलमहः कर्णभरणतेजः प्रभाकरनिभं सूर्यसदृशं, नयनलक्ष्मीः नेत्रश्रीः महोत्पलस्थारविन्दस्येव छविर्यस्या-
स्तथाभूता, वक्षोवलयं उरःस्थलं लक्ष्मीनिकेतनं धीसदनं, करयुगलं पाणियुगं वलयविलसितं कटकालंकृतं,
मुक्तावली द्वारयष्टिः गलविलसिता कण्ठविभूषिता, सुभगोदरं सुन्दरजठरं बलित्रयभासुरं रेखात्रितयशोभितं,
दरहसितं मन्दहसितं तुलितेन्दुबिम्बं उपमितमृगाङ्गमण्डलम्, अधरपल्लवं अधरोष्ठकिसलयं बिम्बसहोदरं
पक्वचक्रफलसदृशं, पादयुगं चरणयुगलं पल्लवकोमलं किसलयमृदुलं, भुजाविलासो बाहुविलासो युगायतो
२५ युगवद्दोर्धः वृषभाणां स्कन्धेषु ध्रियमाणः काष्ठदण्डो युगपदेन गच्छते 'जुवा' इति हिन्दीभाषायां, तनुलता

सुन्दर पुत्री हुई ॥४३॥ § ७१) स्वर्णोति—जिस प्रकार पूर्वदिशा प्रभाके साथ उत्तम जलमें
स्थित कमलोंकी शोभाको बढ़ानेवाले, उदित तथा आकाशको प्राप्त हुए सूर्यको प्राप्त होती है
उसी प्रकार यह सुनन्दा भी पुत्रीके साथ स्वर्गनिर्मित विकसित कमलके समान शोभाको
विस्तृत करनेवाले, अभ्युदयको प्राप्त तथा सन्देहरहित पुत्रको प्राप्त हुई थी ॥४४॥

- ३० § ७२) तत्कालेति—जो उस समयके कामदेव थे, जिनका शरीर यौवनकी लक्ष्मीसे
अत्यन्त मनोहर था और जो तीनों लोकोंमें अद्वितीय सुन्दर थे ऐसे उन बाहुबलीका
वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है ? ॥४५॥ § ७३) यस्य चेति—जिस बाहु-
बलीकी केशपंक्ति भ्रमर समूहका धिक्कार करनेवाली थी, मुखकी प्रभा कमलका मित्र
थी, कुण्डलका तेज सूर्यके समान था, नयनोंकी लक्ष्मी कमलके समान कान्तिवाली थी,
३५ वक्षस्थल लक्ष्मीका घर था, हस्तयुगल कटकसे सुशोभित था, मोतियोंका हार गलेमें सुशोभित
था, सुन्दर उदर त्रिबलियोंसे शोभित था, मन्दहास्य चन्द्रमण्डलके समान था, अधरपल्लव
रुचकफलके समान था, चरणयुगल पल्लवके समान कोमल था, भुजाएँ युगके समान लम्बी

§ ७४) यस्य च बलोद्दण्डो भुजदण्डः पराक्रमलक्ष्मीपर्यङ्क इव, राज्यलक्ष्म्या उपधानखण्ड इव, प्रकृतिजनानामालम्बनदण्ड इव, शत्रुबलजलधेमन्थानदण्ड इव, कीर्तिलक्ष्म्याः केतुदण्ड इव, जयश्रीलताया उपघनदण्ड इव च व्यराजत ।

§ ७५) धातुः शिल्पादिरम्यप्रकटनतिलकस्थानमेनं स्वरूपं

यं दृष्ट्वा सारसाक्ष्यः रजनिकरशिलापुत्रिकावद्द्रुताः स्युः ।

शत्रुक्षोणीधुरीणा जगति सुविदिता ये तु संग्रामसिंहा-

स्ते सर्वे ग्रामसिंहाः सपदि समभवन्संपदं संत्यजन्तः ॥४६॥

§ ७६) एकोत्तरं शतमिमे मधुराः कुमाराः

कान्त्या गुणेन विभवेन च तुल्यरूपाः ।

ते यौवनेन भरतप्रमुखा विरेजु-

र्वन्या मनोहरमदेन यथा द्विपेन्द्राः ॥४७॥

देहवल्ली विलासवती मनोहरा रमणीचेतोहरा, आसीदिति शेषः । शृङ्खलायमकालंकारः । § ७४) यस्य चेति—यस्य च बाहुबलिनो बलेन पराक्रमेणोद्दण्ड उत्कट इति बलोद्दण्डो, भुजो दण्ड इवेति भुजदण्डो बाहुदण्डः, पराक्रमलक्ष्म्या वीर्यश्रियाः पर्यङ्क इव मञ्च इव, राज्यलक्ष्म्या राजश्रिया उपधानखण्ड इव उप-समीपे धीयते स्थाप्यत इत्युपधानं 'तकिया' इति प्रसिद्धं तस्य खण्डः शकलमिव, प्रकृतिजनानामालम्बनादीनाम् आलम्बन-दण्ड इवाश्रयदण्ड इव, शत्रुबलमेव रिपुसैन्यमेव जलधिः सागरस्तस्य मन्थानदण्ड इव, कीर्तिलक्ष्म्या यशःश्रियः केतुदण्ड इव पताकादण्ड इव, जयश्रीलताया विजयलक्ष्मीवल्ल्या उपघनदण्ड इवाश्रयतरुविव च व्यराजत व्यशोभत । मालोपमा । § ७५) धातुरिति—धातुः ब्रह्मणः वृषभजिनेन्द्रस्येति यावत्, शिल्पादिरम्याणां शिल्पप्रभृतिषुन्दरकलानां प्रकटनाय प्रकटीकरणाय तिलकस्थानं श्रेष्ठस्थानं, सुरूपं सुन्दरं एनं यं बाहुबलिनं दृष्ट्वा समबलोक्य सारसाक्ष्यः कमललोचनाः स्त्रियः रजनिकरशिलापुत्रिकावत् चन्द्रकान्तमणिनिमित्त-पुतलिकावत् द्रुताः प्राप्तद्रवाः स्युः भवेयुः । जगति भुवने सुविदिताः प्रसिद्धतराः शत्रुक्षोणीधुरीणा प्रस्थि-पृथिवीप्रधाना ये तु संग्रामेषु सिंहा इवेति संग्रामसिंहाः समरशूरा आसन् ते सर्वे सपदि शीघ्रं संपदं संपत्तिं पक्षे 'सम्' इति पदं संपदं संत्यजन्तो मुञ्चन्तः ग्रामसिंहाः श्वानः समभवन् बभूवुः । संग्रामसिंहाः 'सम्' इति पदत्यागे ग्रामसिंहा भवन्त्येवेति भावः । सधरा छन्दः ॥४६॥ § ७६) एकोत्तरमिति—एकोत्तरं शतम् एकोत्तरशतसंख्याका इमे मधुरा मनोहराः कुमाराः कान्त्या दीप्त्या, गुणेन दयादाक्षिण्यादिगुणेन विभवेन

थीं और शरीरलता स्त्रियोंके मनको हरण करनेवाली थी । § ७४) यस्य चेति—जिस बाहु-बलीका अत्यन्त बलिष्ठ भुजदण्ड पराक्रम रूपी लक्ष्मीके परलंगके समान, राज्यलक्ष्मीके तकियाके समान, मन्त्री आदि प्रकृतिजनोंके आलम्बनदण्डके समान, शत्रुसेनारूपी समुद्रको मथनेवाले मन्थानदण्डके समान, कीर्तिरूपी लक्ष्मीके पताकादण्डके समान और विजयलक्ष्मी रूपी लताके आश्रयदण्डके समान सुशोभित हो रहा था । § ७५) धातुरिति—आदि ब्रह्माके शिल्प आदि सुन्दर कार्योंके प्रकट करनेके श्रेष्ठ स्थानस्वरूप, अत्यन्त सुन्दर जिस बाहुबलीको देखकर स्त्रियाँ चन्द्रकान्त मणिकी पुतलियोंके समान द्रवीभूत हो जाती थीं यह तो ठीक ही था परन्तु शत्रुओंकी पृथिवीमें प्रसिद्ध तथा जगत्में अत्यन्त ख्याति प्राप्त जो संग्रामसिंह-रणकलामें शूर-वीर थे वे सब जिस बाहुबलीको देखकर शीघ्र ही संपदं—सम्पत्ति (पक्षमें 'सम्' इस पद) को छोड़ते हुए ग्रामसिंह—श्वान हो गये थे—श्वानके समान निर्बल हो गये थे ॥४६॥ § ७६) एकोत्तरमिति—ये एक सौ एक मनोहर पुत्र कान्ति, गुण तथा वैभवसे

§ ७७) भूषारत्नमणीघृणिप्रसरणव्याप्ताखिलाशान्तराः

कान्त्या कोमलया जितासमशराः कारुण्यवाराकराः ।

गाम्भीर्येण पयोनिधिं स्थिरतया भूमिं महिम्ना कुल-

क्षोणीघ्रा ननु कुर्वते स्म त इमे दानेन कल्पद्रुमान् ॥४८॥

५

इत्यहंदासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे षष्ठः स्तवकः ॥६॥

सामर्थ्येण च तुल्यरूपाः समानाः आसन् । भरतप्रमुखा भरतादयः ते कुमारौ यौवनेन तारुण्येन मनोहरमदेन सुन्दरदानेन वन्या वनोत्पन्ना द्विपेन्द्रा यथा गजराजा इव विरेजुः शुशुभिरे । उपमा । वसन्ततिलका छन्दः ॥४७॥ § ७७) भूषेति—भूषारत्नमणीनां भूषणरत्नमणिक्यानां घृणिप्रसरणेन किरणप्रसारेण व्याप्तानि परीतानि अखिलाशानां निखिलदिशानामन्तराणि यैस्तथाभूताः, कोमलया मृदुलया कान्त्या रुच्या १० जितः पराभूतोऽसमशरः कामो यैस्ते, कारुण्यवाराकराः दयासागराः, त इमे कुमारौ गाम्भीर्येण धैर्येण पयोनिधिं पारावारं स्थिरतया दृढतया भूमिं वसुधां, महिम्ना औन्नत्येन कुलक्षोणीघ्रान् कुलाचलान्, दानेन त्यागेन 'त्यागो विहापितं दानम्' इत्यमरः । कल्पद्रुमान् सुरतरुन् अनुकुर्वते स्म अनुचक्रुः । उपमा । शार्दूल-विक्रीडितं छन्दः ॥४८॥

इत्यहंदासकृते पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती'समाख्यायां

संस्कृतव्याख्यायां षष्ठः स्तवकः ॥६॥

१५

एक समान थे । भरतको आदि लेकर वे सब कुमार यौवनसे, मनोहरमदसे वनमें उत्पन्न हुए गजराजके समान सुशोभित हो रहे थे ॥४७॥ § ७७) भूषेति—आभूषणोंमें लगे हुए रत्न और मणियोंकी किरणोंके प्रसारसे जिन्होंने दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त कर रखा था, जिन्होंने कोमल कान्तिके द्वारा कामदेवको जीत लिया था तथा जो दयाके सागर थे ऐसे २० उन इन कुमारोंने गम्भीरतासे समुद्रका, स्थिरतासे पृथिवीका, महिमासे कुलाचलोंका और दानसे कल्पवृक्षोंका अनुकरण किया था ॥४८॥

इस प्रकार अहंदासकी कृति पुरुदेवचम्पू प्रबन्धमें

छठवाँ स्तवक समाप्त हुआ ॥६॥

सप्तमः स्तवकः

§ १) अथ जातुचिदमरकुमारपल्लवनिर्लोलचामरविधूननजनितमन्दगन्धवहान्दोलित-
विमलदुकूलञ्चलः, त्रिदशवन्दिसंदोहसंस्तूयमानगर्भावतरणजन्माभिषवणप्रमुखनिसर्गमहिमा-
कर्णनसमुदीर्णलज्जया किंचिदवनतवदनसरोरुहः, संततसमवनतदिविजमनुजविद्याधरव्रजमुकुट-
घटितमणिमरीचिपुञ्जपिञ्जरितोत्तुङ्गसिंहासनमलंकुर्वाणो वृषभेश्वरः सकलहृद्यतमविद्योपदेशाय
मतिं व्यापारयामास ।

§ २) उद्भिन्नस्तनकुड्मले मृदुरणत्काञ्चोक्लापाञ्चिते

शिञ्जन्मञ्जुलनूपुरेद्वचरणन्यासे चकोरेक्षणे ।

कान्ति काञ्चनरेणुराजिसदृशीमङ्गैः किरन्त्यौ पुरो

ब्राह्मी संसदि सुन्दरी च समितौ प्राप्ते समीपं गुरोः ॥१॥

§ १) अथेति—अयानन्तरं जातुचित् कदाचित् अमरकुमाराणां देवकुमाराणां करपल्लवैर्हस्तकिसलयै- १०
निर्लोल निःशेषेण चपला ये चामराः प्रकीर्णकास्तेषां विधूननेन कम्पनेन जनितः समुत्पादितो यो मन्दगन्धवहो
मन्दपवनस्तेनान्दोलितं चलितं विमलदुकूलाञ्चलं निर्मलक्षीमप्रान्तो यस्य तथाभूतः, त्रिदशवन्दिसंदोहेन
अमरमागवमण्डलेन संस्तूयमानः सम्यक्स्तुतिविषयीक्रियमाणो यो गर्भावतरण-जन्माभिषवणप्रमुखो गर्भजन्म-
कल्याणप्रधानो निसर्गमहिमा स्वाभाविकमहिमा तस्याकर्णनेन श्रवणेन समुदीर्णो प्रकटिता या लज्जा त्रया तथा
किंचित् मनाग् अवनतं नम्रं वदनसरोरुहं मुखकमलं यस्य तथाभूतः, संततं शश्वत् समवनता नम्रीभूता ये १५
दिविजमनुजविद्याधरा देवमनुष्यखेचरास्तेषां व्रजस्य समूहस्य मुकुटतटे मौलितटे घटिताः खचिता ये मणय-
स्तेषां मरीचिपुञ्जेन किरणकलापेन पिञ्जरितं पीतवर्णीकृतं यद् उत्तुङ्गसिंहासनं समुन्नतमृगेन्द्रासनं तत्
अलंकुर्वाणो वृषभेश्वरः प्रथमजिनेन्द्रः सकलहृद्यतमविद्यानां निखिलचाहतमविद्यानामुपदेशस्तस्मै मतिं मनोषां
व्यापारयामास व्यापृतां विदधे । § २) उद्भिन्नेति—उद्भिन्नौ प्रकटितौ स्तनकुड्मलो कुचकुड्मलो ययोस्ते, २०
मृदु कोमलं यथा स्यात्तथा रणता शब्दं कुर्वता काञ्चीकलापेन मेललामण्डलेन अञ्चिते शोभिते, शिञ्जद्विरव्यक्त-
शब्दविशेषं कुर्वद्भिः मञ्जुलनूपुरैर्मनोहरतुलाकोटिभिरिद्धो देदीप्यमानश्चरणन्यासः पादनिक्षेपो ययोस्ते,
चकोरेक्षणे चकोरलोचने, अङ्गैरवयवैः पुरोऽग्रे काञ्चनरेणुराजिसदृशीं कनकपरागपङ्क्तिप्रतिमां कान्तिं दीप्तिं

§ १) अथेति—तदनन्तरं किसी समय देवकुमारोंके करपल्लवोंसे चंचल चामरोंके २५
दोरनेसे उत्पन्न मन्द-मन्द वायुसे जिनके रेशमी वस्त्रका अंचल हिल रहा था, देव वन्दियोंके
समूहके द्वारा अच्छी तरह स्तुति की जानेवाली गर्भावतरण तथा जन्माभिषेक आदिकी स्वाभा-
विक महिमाके सुननेसे उत्पन्न लज्जाके द्वारा जिनका मुखकमल कुछ-कुछ नम्र हो रहा था,
और जो निरन्तर नम्रीभूत देव, मनुष्य और विद्याधरोंके समूह-सम्बन्धी मुकुटतटोंमें लगे
हुए मणियोंके किरण समूहसे पीतवर्ण ऊँचे सिंहासनको अलंकृत कर रहे थे ऐसे भगवान्
वृषभदेवने समस्त उत्तमोत्तम विद्याओंके उपदेशके लिए बुद्धिको व्याप्त किया अर्थात् लोक-
हितकारी विद्याओंके उपदेश देनेका विचार किया । § २) उद्भिन्नेति—जिनके कमलकी ३०
बोडियोंके समान स्तन प्रकट हुए थे, जो कोमल शब्द करनेवाली करधनियोंके समूहसे

§ ३) ते किल बाल्यादनन्तरे वयसि वर्तमाने विहारसदने मेधाविलासिन्याः, चन्द्रिके विनयाम्बुधेः, कुलसदने शीलसंपदां, सीमाभूते सौन्दर्यस्य, सकलमानवतीजननवनपात्रे, मृदुपाद-
विन्यासेन पुरतः प्रकीर्णरक्ताम्बुजोपहारश्रियं व्यातन्वाने, नखमणिदर्पणसंक्रान्तनिजतनुलताच्छाया-
चल्लेन रूपसंपदा विनिर्जितं पादमुपाश्रितं दिक्कुमारीनिकरमिव दर्शयन्त्यौ, मदनसदनाग्रभाग-
प्रसद्धधूपधूमरेखामिव नाभिनिपानावतरणार्थमिन्द्रनीलमणिखचितसोपानपरम्परामिव, अगाधतर-
नाभिकूपखननश्रान्तेन वेधसा तन्निकटे क्षिप्तां खननशलाकामिव रोमराजिलतां बिभ्राणे, सद्भूपति-
सभासंनिवेशमिव, सुमनोजनवादरणस्थानं, पद्माकरमिव सद्यस्तनकुड्मलशोभितं, सुरेन्द्रनन्दनवन-

किरन्त्यौ प्रक्षिपन्त्यौ ब्राह्मो सुन्दरी च इमे द्वे कन्ये समितौ सभायां गुरोः पितुः समीपं निकटं प्राप्ते गते ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥१॥ § ३) ते किलेति—ते किल कन्ये बाल्यात् शैशवात् अनन्तरे निकटगते वयसि

१० दशायां वर्तमाने, मेधाविलासिन्या बुद्धिविलासिन्या विहारसदने क्रीडाभवने, विनयाम्बुधेविनयसागरस्य चन्द्रिके ज्योत्स्ने, शीलसंपदां शीलसंपत्तीनां कुलसदने कुलभवने, सौन्दर्यस्य लावण्यस्य सीमाभूते अवधिभूते, सकलमानवतीजनस्य निखिलनारीनिकुरम्बस्य नवनपात्रे स्तुतिपात्रे, मृदुपादविन्यासेन कोमलचरणनिक्षेपेण पुरतोऽग्रे प्रकीर्णरक्ताम्बुजोपहारश्रियं प्रक्षिप्तकोकनदोपायनशोभां व्यातन्वाने कुर्वाणे, नखा नखरा एव मणिदर्पणा रत्नादशस्तेषु संक्रान्ता प्रतिफलिता या निजतनुलता स्वशरीरवल्ली तस्याः छायाणां प्रतिबिम्बानां

१५ छलेन व्याजेन रूपसंपदा सौन्दर्यसंपत्त्या विनिर्जितं पराभूतम् अतएव पादमुपाश्रितं चरणमुपगतं दिक्कुमारी निकरमिव काष्ठाकुमारीकदम्बकमिव दर्शयन्त्यौ प्रकटयन्त्यौ, मदनसदनं वराङ्गमेव कामनिकेतनं तस्याग्रभागे प्रसरन्ती प्रसरणशीला या धूपधूमस्य धूपधूमस्य रेखा लेखा तामिव, नाभिनिपाने तुन्द्रिजलाशयेऽवतरणार्थं इन्द्रनीलमणिखचिता या सोपानपरम्परा निःश्रेणिस्ततिस्तामिव, अगाधतरो गम्भीरतरो यो नाभिकूपस्तुम्भि-
प्रहिस्तस्य खननेनावदारणेन श्रान्तः कलान्तस्तेन वेधसा विधात्रा तन्निकटे नाभिप्रहिसमीपे क्षिप्तां पातितानां
२० खननशलाकामिव लोहकुशीमिव रोमराजिलतां लोमरेखावल्लीं बिभ्राणे दधाने, सद्भूपतेः सन्नृपतेः सभासं-
निवेशमिव समिति सदनमिव सुमनोजस्य सुकामस्य यत् नवादरणं प्रत्यग्रप्रीतिस्तस्य स्थानं पक्षे सुमनोजनानां

शोभित थीं, जिनके चरणोंके निक्षेप रुनझुन करते हुए मनोहर नूपुरोंसे देदीप्यमान थे, जिनके नेत्र चकोरके समान थे, और जो अपने अंगोंसे आगे सुवर्णधूलिके सदृश कान्तिको बिखेर रही थीं ऐसी ब्राह्मी और सुन्दरी कन्याएँ सभामें अपने पिताके निकट पहुँचीं ॥१॥ § ३) ते

२५ किलेति—उस समय वे कन्याएँ बाल्यअवस्थाके बाद आनेवाली अवस्थामें विद्यमान थीं, बुद्धिरूपी विलासिनीकी क्रीडागृह थीं, विनयरूप समुद्रके लिए चाँदनी थीं, शीलरूप सम्पत्तियों-
के कुलभवन थीं, सौन्दर्यकी सीमास्वरूप थीं, समस्त स्त्रीसमूहकी स्तुतियोंकी पात्र थीं, कोमल चरणनिक्षेपसे आगे फैलाये हुए लालकमलोंके उपहारकी शोभाको विस्तृत कर रही थीं । उनके नखरूपी मणिमयदर्पणोंमें उन्हींके शरीरकी छाया पड़ रही थी जिससे वे ऐसी

३० जान पड़ती थीं मानो सौन्दर्यरूप सम्पत्तिके द्वारा पराजित होनेके कारण सेवाके लिए चरणोंमें आयी हुई दिक्कुमारियोंके समूहको ही दिखला रही हों, वे जिस रोमराजिरूपी लताको धारण कर रही थीं वह ऐसी जान पड़ती थी मानो काममन्दिरके अग्रभागमें फैली हुई धूप-
सम्बन्धी धूमकी रेखा ही हो, अथवा नाभिरूपी जलाशयमें उतरनेके लिए निर्मित इन्द्रनील-
मणियोंसे खचित सीढ़ियोंकी ही परम्परा हो, अथवा बहुत गहरे नाभिरूपी कुँएकी खोदनेसे

३५ थके हुए विधाताके द्वारा उसके निकट डाली हुई लोहकी कुशी ही हो । वे जिस वक्षःस्थलको धारण कर रही थीं वह किसी अच्छे राजाके सभास्थलके समान जान पड़ता था क्योंकि जिस प्रकार सभास्थल सुमनोजन-वादरणस्थान—विद्वज्जनोंके शास्त्रार्थरूपी युद्धका

मिव सुरतरुचिरलीलास्पदं मञ्जुलकुचोज्ज्वलं च, मुक्तिप्रदेशमिव मुक्ताधिकशोभाञ्चितं वक्षःस्थलं दधाने, पूर्वाचलमिवारुणबिम्बप्रकाशं, मरुमार्गमिव विद्रुमच्छायं, बन्धुजीवप्रभाहरमपि अधिकारुण्यं वहन्तं सुरागमप्यधरमुद्रहन्त्यौ, कन्दर्पजैत्रास्त्रे इव नेत्रे पुरो व्यापारयन्त्यौ, लोलालकप्रतिबिम्बसंगताभ्यां कपोलाभ्यां सकलङ्कस्य सुधाकरस्य लक्ष्मीं ह्लेपयन्त्यौ, विकुरनिकररुचिरेण वदनेन

विद्वज्जनानां वादरणस्य शास्त्रार्थसमरस्य स्थानं, पद्माकरमिव कमलसर इव सद्यस्तनकुङ्कुमलाभ्यां तत्कालोद्भिन्नकुलमुकुलाभ्यां शोभितं समलंकृतं पक्षे सद्योभवाः सद्यस्तनास्ते च ते कुङ्कुमलाश्चेति सद्यस्तनकुङ्कुमलास्तः शोभितं, सुरेन्द्रनन्दनवनमिव पुरन्दरनन्दनोद्यानमिव सुरतरुचिर-लीलास्पदं सुरतस्थ संभोगस्य या रुचिरा मनोहरा लीला क्रीडा तस्या आस्पदं स्थानं पक्षे सुरतरुणां कल्पवृक्षाणां चिरलीलाया दीर्घकालव्यापिशोभाया आस्पदं स्थानं, मञ्जुलकुचोज्ज्वलं च मञ्जुलाभ्यां मनोहराभ्यां कुचाभ्यां स्तनाभ्यामुज्ज्वलं च शोभितं च पक्षे मञ्जुलैर्मनोहरैर्लकुचैर्दृढभिः 'लकुचो लिकुचो डङ्कुः' इत्यमरः, मुक्तिप्रदेशमिव निर्वृतिस्थानमिव मुक्ताधिक-शोभितं मुक्तानां मुक्ताफलानां पक्षे सिद्धपरमेष्ठिनाम् अधिका प्रभूता पक्षे के आत्मनि इति अधिकम् आत्मसम्बन्धिनी या शोभा तया अञ्चितं शोभितं वक्षःस्थलं मुरःस्थलं दधाने बिभ्राणे, पूर्वाचलमिव पूर्वार्द्रिमिव अरुणबिम्बप्रकाशं पक्ववृक्षफलसदृशप्रकाशं पक्षे अरुणबिम्बस्य सूर्यमण्डलस्य प्रकाशो यस्मिंस्तम्, मरुमार्गमिव मरुस्थलपथमिव विद्रुमच्छायं विद्रुमप्रवालस्य छायेव छाया कान्तिर्यस्य तं पक्षे विगता द्रुमाणां वृक्षाणां छाया-नातपो यस्मिंस्तम्, बन्धुजीवप्रभाहरमपि सनाभिजीवस्फूर्तिविनाशकमपि अधिकाण्यं अधिगतं कारुण्यमवि-कारुण्यं प्राप्तकरुणाभावं वहन्तं दधतमिति विरुद्धं पक्षे बन्धुजीवानां द्विप्रहरिका पुष्पविशेषाणां प्रभायाः कान्ते-हरमपि अधिकं च तत् आरुण्यं चेति अधिकाण्यं प्रभूतरक्तत्वं वहन्तं दधतं, सुरागमपि सुराणां देवानामगः पर्वतस्तथाभूतमपि अधरं न धरः पर्वत इत्यधरस्तं पक्षे सुष्ठु रागो यस्य तथाभूतमपि अधरं अधरसंज्ञासहितं नीचस्तनरदनच्छदम् उद्रहन्त्यौ दधत्यौ, कन्दर्पस्य कामस्य जैत्रास्त्रे इव विजयिशास्त्रे इव नेत्रे नयने पुरोऽग्रे व्यापारयन्त्यौ चालयन्त्यौ, लोलालकानां चञ्चलकुन्तलानां प्रतिबिम्बेन संगताभ्यां सहिताभ्यां कपोलाभ्यां

स्थान होता है उसी प्रकार उनका वक्षःस्थल भी सुमनोज-नवादरण-स्थान-कामकी नूतन प्रीतिका स्थान था, अथवा कमलसरोवरके समान था क्योंकि जिस प्रकार कमलसरोवर सद्यस्तनकुङ्कुमलशोभित—तत्काल उत्पन्न हुई बोंडियोंसे शोभित होता है उसी प्रकार उनका वक्षःस्थल भी सद्यस्तनकुङ्कुमलशोभित—तत्काल प्रकट होनेवाले बोंडियोंके सदृश स्तनोंसे सुशोभित था, अथवा इन्द्रके नन्दनवनके समान था क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रका नन्दनवन सुरतरु-चिरलीलास्पद—कल्पवृक्षोंकी चिरस्थायी शोभाका स्थान होता है उसी प्रकार उनका वक्षस्थल भी सुरतरु-चिर-लीलास्पद—संभोगसे सुन्दर क्रीडाका स्थान था, तथा जिस प्रकार इन्द्रका नन्दनवन मञ्जुलकुचोज्ज्वल—मनोहरलुकाटके वृक्षोंसे उज्ज्वल होता है उसी प्रकार उनका वक्षःस्थल भी मञ्जुलकुचोज्ज्वल—मनोहर स्तनोंसे देदीप्यमान था, अथवा उनका वह वक्षःस्थल मुक्तिप्रदेश—मोक्षस्थानके समान जान पड़ता था, क्योंकि जिस प्रकार मोक्षस्थान मुक्ताधिकशोभाञ्चित—सिद्धपरमेष्ठियोंकी आत्मसम्बन्धी शोभासे सहित होता है उसी प्रकार वक्षःस्थल भी मुक्ताधिकशोभाञ्चित—मोतियोंकी अत्यधिक शोभासे सहित था। वे जिस अधरोष्ठको धारण कर रही थीं वह पूर्वाचल—उदयाचलके समान अरुणबिम्बप्रकाश—लाल-रुचकफलके समान प्रकाशसे युक्त (पक्षमें सूर्यबिम्बके प्रकाशसे सहित) था, मरुस्थलके मार्गके समान विद्रुमच्छाय—मूँगाके समान कान्तिसे युक्त (पक्षमें वृक्षोंकी छायासे रहित) था, और बन्धुजीव—प्रभाहर—बन्धुजनोंके प्राणोंकी प्रभाको हरनेवाला होकर भी अधिका-रुण्य—अधिक दयालुताको धारण करता था (पक्षमें दुपहरियाके फूलोंकी प्रभाको हरनेवाला होकर भी अधिक लालिमाको धारण करता) तथा सुराग—देव पर्वत होकर भी अधर—

शैवलपटलपरिवृतं पंफुल्यमानपयोजं प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहविराजितं राकामुधाकरं च तुल्यन्त्यौ, मालाजालकलितेन कबरीभरेण गङ्गातरङ्गसंगतं कालिन्दोप्रवाहं स्मारयन्त्यौ ब्राह्मोसुन्दर्यौ सप्रश्रयं समीपमुपाश्रित्य जगन्नाथं नमश्चक्रतुः ।

§ ४) उत्थाप्य वेगात्प्रणते सुते ते स्वाङ्कं समारोप्य च कौतुकेन ।

५ स्पृष्ट्वा कराभ्यां मुहुरुत्सुकोऽयं लोकेश्वरो मूर्धनि जिघ्रति स्म ॥२॥

§ ५) तदनु तयोर्विनयशीलादिकं विलोक्य जगद्गुरुर्विद्यास्वीकारणकालोऽयमिति मत्वा ब्राह्मोसुन्दरोभ्यां सिद्धमातृकोपदेशपुरःसरं गणितं स्वायंभुवाभिधानानि पदविद्याछन्दोविचित्यलंकार-शास्त्राणि च, अर्थशास्त्रभरतशास्त्रे भरताय, वृषभसेनाय गान्धर्वं, अनन्तविजयाय चित्रकलाशास्त्रं

- गण्डाभ्यां सकलकस्य सलाञ्छनस्य सुधाकरस्य चन्द्रस्य लक्ष्मीं शोभां ह्रियन्त्यौ लज्जयन्त्यौ, चिकुरनिकरेण केशकलापेन हचिरं मनोहरं तेन वदनेन मुखेन शैवलपटलपरिवृतं जलनीलिनिकुरम्बव्याप्तं पंफुल्यमानपयोजम् अतिविकसितकमलं, प्रावृषेण्यानां वर्षाकालभवानां पयोवाहानां मेघानां व्यूहेन समूहेन शोभितं राकामुधाकरं च पूर्णिमाचन्द्रं च तुल्यन्त्यौ उपमितं कुर्वन्त्यौ, मालाजालकलितेन स्रक्समूहसहितेन कबरीभरेण केशकलापेन गङ्गातरङ्गसंगतं भागीरथीभङ्गसहितं कालिन्दोप्रवाहं यमुनापूरं स्मारयन्त्यौ स्मृतं कारयन्त्यौ ब्राह्मोसुन्दर्यौ तन्नामकस्य सप्रश्रयं सवितयं समीपं पार्श्वम् उपाश्रित्य गत्वा जगन्नाथं भगवन्तं नमश्चक्रतुः प्रणेतुः ।
- १५ रूपकोत्प्रेक्षा श्लेषोपमाविरोधाभासाः । § ४) उत्थाप्येति—उत्सुक उत्कण्ठितः अयं लोकेश्वरो जगत्पतिः वृषभजिनेन्द्रः प्रणते नम्रोभूते सुते पुत्र्यौ वेगाद् रभसात् उत्थाप्य कौतुकेन स्वाङ्कं स्वोत्संगं समारोप्य च समधिष्ठाप्य च कराभ्यां पाणिभ्यां स्पृष्ट्वा मुहुरन्तकवारान् मूर्धनि शिरसि जिघ्रति स्म तासां विषयो चकार । इन्द्रवज्रा ॥२॥ § ५) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं तयोः पुत्र्योः विनयशीलादिकं नम्रतासत्स्वभावादिकं विलोक्य दृष्ट्वा जगद्गुरुर्विनेन्द्रः अयमेवः विद्यानां स्वीकारणस्य कालः समय इति मत्वा ज्ञात्वा ब्राह्मो-
- २० सुन्दरीभ्यां तन्नामपुत्रीभ्यां सिद्धमातृकाया वर्णमालाया उपदेशः पुरःसरोऽग्रेसरो यस्य तथाभूतं गणितमङ्कशास्त्रं, स्वायंभुवम् अभिधानं नाम येषां तानि पदविद्या च छन्दोविचित्यश्च अलंकारशास्त्राणि चेति पदविद्याछन्दो-विचित्यलंकारशास्त्राणि व्याकरणछन्दःसमूहालंकारशास्त्राणि च, भरताय तन्नामपुत्राय अर्थशास्त्रभरत-शास्त्रे अर्थशास्त्रनाट्यशास्त्रे, वृषभसेनाय तन्नामपुत्राय गान्धर्वं संगीतशास्त्रम्, अनन्तविजयाय तन्नामपुत्राय

- पर्वतरूप नहीं था (पक्षमें अत्यन्त लाल होकर अधर इस नामको धारण करता था)
- २५ वे कामदेवके विजयी बाणोंके समान नेत्रोंको आगे चला रही थीं, चंचल केशोंके प्रति-बिम्बसे सहित कपोलोंके द्वारा वे लाञ्छनसहित चन्द्रमाकी शोभाको लज्जित कर रही थीं । केशोंके समूहसे सुन्दर मुखके द्वारा वे सेवालके समूहसे घिरे विकसित कमलकी अथवा वर्षाकाल सम्बन्ध। मेघसमूहसे सुशोभित पूर्णिमाके चन्द्रकी तुलना कर रही थीं, और मालाओंके समूहसे युक्त केशपाशके द्वारा गंगाकी लहरोंसे युक्त यमुनाके
- ३० प्रवाहका स्मरण करा रही थीं । इस प्रकार उन ब्राह्मी और सुन्दरी कन्याओंने विनय सहित समीप जाकर भगवान्को नमस्कार किया । § ४) उत्थाप्येति—उत्सुकतासे युक्त भगवान्ने नम्रीभूत उन पुत्रियोंको बड़े वेगसे उठाकर कुतूहलधश अपनी गोदमें बैठा लिया और हाथोंसे बार-बार स्पर्श कर उनका मस्तक सूँधा ॥२॥ § ५) तदन्विति—तदनन्तर उन पुत्रियोंके विनय तथा शील आदिको देखकर जगद्गुरु—भगवान् वृषभदेवने विचार किया
- ३५ कि यह इनका विद्या स्वीकार करानेका काल है । ऐसा निश्चय कर उन्होंने ब्राह्मी और सुन्दरीके लिए वर्णमालाके उपदेशके साथ-साथ गणित तथा 'स्वायंभुव' इस नामको धारण करनेवाले व्याकरण, छन्दःसमूह और अलंकार शास्त्रका, भरतके लिए अर्थशास्त्र और

वास्तुपिद्यां च, भुजबलितनयाय कामतन्त्रसामुद्रिकायुर्वेदधनुर्वेदहस्त्यश्वतन्त्ररत्नपरीक्षादीनि, अन्येभ्यश्च यथोचितं लोकोपकारकशास्त्राण्युपदिदेश ।

§ ६) सुतैरधीतनिःशेषविद्यैरक्षुतदीक्षिता ।

किरणैरिव तिग्मांशुरासादितशरदद्युतिः ॥३॥

§ ७) पुत्रैः कलत्रैश्च महापवित्रैर्वृतस्य नित्यं वृषभेश्वरस्य ।

कालो व्यतीयाय महान् क्रमेण मनोहरैर्मङ्गलदिव्यभोगैः ॥४॥

§ ८) अत्रान्तरे कालवैभवकृतेन महौषधिदीप्तौषधिप्रमुखसर्वौषधिशक्तिप्रक्षयेण नर-
निकररक्षणविचक्षणानामकृष्टपच्यानां सस्यानां विरलीभावेन लोकोत्तरपादपानां रसवीर्यविपाक-
प्रहाणेन जीवनशङ्कातङ्ककलङ्कितमनोवृत्तयः प्रकृतयो नाभिराजाज्ञया सनातनं पुरुषभासाद्य
सविनयमेवं विज्ञापयामासुः ।

चित्रकलाशास्त्रम् आलेख्यकलाशास्त्रम्, वास्तुविद्यां च भवननिर्माणविद्यां च, भुजबलितनयाय बाहुबलिपुत्राय
कामतन्त्रं कामशास्त्रं, सामुद्रिकं रेखाविज्ञानं, आयुर्वेदश्चिकित्साशास्त्रं, धनुर्वेदः शस्त्रविद्या, हस्त्यश्वतन्त्रं
हस्तिहृषपरीक्षाशास्त्रं, रत्नपरीक्षा रत्नगुणदोषपरीक्षा तदादीनि, अन्येभ्यश्च पुत्रेभ्यो यथोचितं यथायोग्यं
लोकोपकारकशास्त्राणि जनहितावहविद्याः उपदिदेश समुपदिष्टवान् । § ६) सुतैरिति—ईशिता भगवान्
वृषभदेवः, अधीताः पठिता निःशेषविद्याः सकलविद्या यैस्तैः सुतैः पुत्रैः आसादिता प्राप्ता शरदा शरद्वतुना
युतिः संवग्धो येन तथाभूतः तिग्मांशुः सूर्यः किरणैरिव मयूररवैरिव अद्युतत् व्यशोभत । उपमा ॥३॥ § ७)
पुत्रैरिति—महापवित्रैरतिशुचिभिः पुत्रैः सुतैः कलत्रैश्च स्त्रीभिश्च नित्यं निरन्तरं वृतस्य परिवेष्टितस्य
वृषभेश्वरस्यादिजिनेन्द्रस्य महान् विपुलः कालः मनोहरैश्चेतोहरैः मङ्गलदिव्यभोगैः श्रेयोमयसुरोपनीतभोगैः
क्रमेण व्यतीयाय व्यतिजगाम । उपजातिच्छन्दः ॥४॥ § ८) अत्रान्तर इति—अत्रान्तरे एतन्मध्ये कालस्वा-
वसर्पिणीसंज्ञस्य वैभवेन सामर्थ्येन कृतस्तेन, महौषधिदीप्तौषधिप्रमुखसर्वौषधीनां शक्त्याः प्रक्षयस्तेन,
नरनिकरस्य मर्त्यसमूहस्य रक्षणे त्राणे विचक्षणानां निपुणानाम् अकृष्टपच्यानाम् अकृष्टपक्वमुर्हीणां सस्यानां
धान्यानां विरलीभावेन विरलतया, लोकोत्तरपादपानां तात्कालिकश्रेष्ठवृक्षाणां रसवीर्यविपाकस्य प्रहाणेन
नाशेन जीवनशङ्का जीवितसंशोतिरेवातङ्क आमयस्तेन कलङ्किता मनोवृत्तिर्यासां ताः, प्रकृतयो प्रजाः नाभि-
राजाज्ञया नाभिराजादेशेन सनातनं पुरुषं वृषभजिनेन्द्रम् आसाद्य प्राप्य सविनयं सप्रश्रयं यथा स्यात्तथा एवं

नाट्यशास्त्रका, वृषभसेनके लिए संगीतशास्त्रका, अनन्त विजयके लिए चित्रकला शास्त्र तथा
मकान बनानेकी विद्याका, बाहुबलिके लिए कामशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद,
हस्तिपरीक्षा, अश्वपरीक्षा तथा रत्नपरीक्षा आदिके शास्त्र और अन्य पुत्रोंके लिए लोकोपकारी
शास्त्रोंका उपदेश दिया । § ६) सुतैरिति—समस्त विद्याओंका अध्ययन करनेवाले पुत्रोंसे
भगवान् वृषभदेव इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणोंसे शरद्वृक्षतुका
सूर्य सुशोभित होता है ॥३॥ § ७) पुत्रैरिति—अतिशय पवित्र पुत्रों तथा स्त्रियोंसे निरन्तर
घिरे रहनेवाले वृषभ जिनेन्द्रका बहुत भारी समय मनोहर तथा मंगलमय देवोपनीत भोगों
द्वारा क्रमसे व्यतीत हो गया ॥४॥ § ८) अत्रान्तर इति—इसी बीचमें अवसर्पिणीकालकी
सामर्थ्यसे किये हुए महौषधि, दीप्तौषधि आदि समस्त औषधियोंकी शक्तिके क्षयसे, मनुष्य-
समूहकी रक्षा करनेमें निपुण बिना जोते अपनेआप उत्पन्न होनेवाली धान्यके विरलभावसे
तथा उस समयके श्रेष्ठ वृक्षोंके रस और वीर्य शक्ति नष्ट हो जानेसे जीवनकी आशंकारूपी
रोगसे जिनकी मनोवृत्ति कलङ्कित हो रही थी ऐसी प्रजा नाभिराजकी आज्ञासे वृषभ जिनेन्द्र-

§ ९) त्रिभुवनपते ! श्रीमन् ! स्वामिन् ! दयागुणशेखरे !

वयमतिभयाद्युष्मत्पादाम्बुजं शरणं गताः ।

तदुचिततमां वृत्तिं व्यावेद्य रक्ष भवत्प्रजा-

स्तरुततिरियं नष्टा सस्यानि नैव फलन्ति च ॥५॥

५ § १०) पिपासा क्षुब्धाया तरलयति चित्तं प्रतिदिनं

निराहाराणां नस्त्रिभुवनपते ! त्राहि दयया ।

तथा जाता बाधा घनपवनवर्षातिपमुखै-

निराधारानस्मान्निरवधिं दुनोत्याकुलयति ॥६॥

§ ११) ततोऽस्माकं यथाद्य स्याज्जीविका निरुपद्रवा ।

तथोपदेष्टुमुद्योगं कुरु देव ! प्रसीद नः ॥७॥

१०

§ १२) इति प्रजानां विज्ञापनशैलीं निशम्य विशालतरकरुणस्त्रिभुवनरमणः पूर्वापरविदेहे-
ष्विव ग्रामारामनगरादीनि च षट्कर्माणि प्रकृतिविततिजोवनाय व्यवस्थापनीयानीति निश्चित्य

वक्ष्यमाणप्रकारेण विज्ञापयामासुः कथयामासुः । § ९) त्रिभुवनेति—हे त्रिभुवनपते ! हे त्रिलोकीनाथ ! हे श्रीमन् ! लोकोत्तरलक्ष्मीशालिन् ! हे स्वामिन् ! हे स्वामिगुणोपेत ! हे दयागुणशेखरे ! हे करुणागुणनिधे !

१५ वयम् अतिभयात् तीव्रभीतेः युष्मत्पादाम्बुजं भवच्चरणकमलं शरणं रक्षितुबुद्ध्या गताः प्राप्ताः । तत्तस्मात्कारणात् उचिततमां योग्यतमां वृत्तिं जीविकां व्यावेद्य कथयित्वा भवत्प्रजाः स्वप्रकृतीः रक्ष त्रायस्व, इयं तरुततिर्वृक्ष-
पङ्क्तिर्नष्टा सस्यानि च धान्यानि च नैव फलन्ति फलयुक्तानि भवन्ति । शिखरिणीच्छन्दः ॥५॥ § १०) पिपासेति—हे त्रिभुवनपते ! हे त्रिजगदधीश्वर ! प्रतिदिनं प्रतिवासरं निराहाराणाम् आहाररहितानां नोऽस्माकं चित्तं पिपासा उदग्ना क्षुब्धाया बुभुक्षापीडा तरलयति चपलयति, अतो दयया कृपया त्राहि रक्ष ।

२० तथा घनपवनवर्षातिपमुखैर्वसमोरवृष्टिघर्मप्रभृतिभिः जाता समुत्पन्ना बाधा पीडा निराधारान् गृहादिरहितान् अस्मान् निरवधिं निःसीम यथा स्यात्तथा दुनोति संतापयति आकुलयति व्यग्रीकरोति च । शिखरिणीच्छन्दः ॥६॥ § ११) तत् इति—ततस्तस्मात् कारणात् हे देव ! यथा येन प्रकारेण अस्माकं जीविका वृत्तिः निरुपद्रवा निर्वाधा स्यात् तथा तेन प्रकारेण उपदेष्टुं समुपदेशं दातुम् उद्योगं कुरु विधेहि । नोऽस्माकं प्रसीद प्रसन्नो भव ॥७॥ § १२) इतीति—वृत्राहितः इन्द्रः, अदेवमातृका नक्षत्रमुपालिताः देवमातृका वृष्ट्यम्बु-

२५ के पास आकर इस तरह निवेदन करने लगे । § ९) त्रिभुवनेति—हे त्रिलोकीनाथ ! हे श्रीमन् ! हे स्वामिन् ! हे दयागुणके भाण्डार ! हम लोग बहुत भारी भयसे आपके चरण कमलोंकी शरण-
को प्राप्त हुए हैं इसलिए अत्यन्त योग्य आजीविका बतलाकर अपनी प्रजाकी रक्षा कीजिए । यह वृक्षोंकी पंक्ति नष्ट हो गयी है और धान्य भी नहीं फलते हैं ॥५॥ § १०) पिपासेति—प्यास और भूखकी बाधा प्रतिदिन निराहार रहनेवाले हम लोगोंके चित्तको चंचल करती रहती है

३० इसलिए हे तीन लोकके नाथ ! दयासे हम लोगोंकी रक्षा कीजिए । भूख-प्यासके सिवा मेघ वायु वर्षा और घाम आदि कारणोंसे उत्पन्न बाधा भी गृह आदिके आधारसे रहित हम लोगोंको अत्यन्त सन्तप्त करती तथा व्यग्र बनाती रहती है ॥६॥ § ११) तत् इति—इसलिए हे देव ! जिस प्रकार हम लोगोंकी जीविका निर्वाध हो सके उस प्रकार उपदेश देनेके योग्य हो । हम लोगोंपर प्रसन्न होइए ॥७॥ § १२) इतीति—इस प्रकार प्रजाजनोंकी प्रार्थना

३५ शैलीको सुनकर जिन्हें बहुत भारी करुणा उत्पन्न हुई थी ऐसी त्रिलोकीनाथने निश्चय किया कि पूर्व और पश्चिम विदेहोंके समान ग्राम उद्यान तथा नगर आदिका विभाग कर प्रजा

समाश्वास्य च मुहुः प्रजानिकरं मा भेष्टेति गिरा सुराधिपस्य सस्यार । अथ तदनुध्यानमात्रेणागतः सकलसुरनिकरपरिवृतः वृत्राहितस्तत्त्वादपङ्कजं निजमुकुटमणिमरीचिमञ्जर्या पिञ्जरीकुर्वाणस्तदाज्ञावशेन शुभे मुहूर्ते तस्यायोध्यापुरस्य मध्ये महादिक्षु च रुचिविजितसुरमन्दिराणि जिनमन्दिराणि निर्मायादेवमातृकदेवमातृकसाधारणानूपजाङ्गलभेदानन्तपालपालितदुर्गपरिवृतान्, लुब्धकारण्यचरपुलिन्दश्वरादिपरीक्षितान्तरालप्रदेशान्, काशिकोसलकलिङ्गवङ्गकरहाटककर्णाटक-चोलकेरलमालवमहाराष्ट्रसौराष्ट्रवनवासद्रविडान्ध्रकाम्बोजवाल्हिकतुरुष्ककेदारसौवीरामीरचेदि-केकयशूरसेनापरान्तिकविदेहसिन्धुगन्धारकुरुजाङ्गलविदर्भवत्सावन्तीवनभेदपल्लवदशार्णकच्छमहा-कच्छमगधमगधरम्यकाश्मीरकुरुसौभद्रकादिविविधविषयान् तज्जनपदमध्यभागेषु परिखावप्रप्रकार-गोपुराट्टालकालङ्कृतानि नानाविधनगराणि च ग्रामपुरखेटखर्वटादिकं च परिकल्पयामास ।

§ १३) पुराणि परिकल्पयन्मुचिसूदनः सार्थकं

पुरंदरसमाह्वयं दधदयं विभोः शासनात् ।

यथोचितपदेषु ता भुवि निवेश्य सर्वाः प्रजाः

त्रिविष्टपमुपासदन्निखिललेखवर्गेः समम् ॥८॥

पालिताः साधारणाः नदीमातृकदेवमातृकमिश्राः, अनूपा जलप्रायदेशाः, जाङ्गला निर्वारिदेशाः, ग्रामपुरखेट-खर्वटादीनां लक्षणानि परिशिष्टे द्रष्टव्यानि । शेषं सुगमम् । § १३) पुराणीति—विभोर्वृषभदेवस्य शासनात् आज्ञायाः पुराणि नगराणि परिकल्पयन् रचयन् सार्थकमन्वितार्थं पुरंदरसमाह्वयं पुरंदरेति नाम दधत्

जनोकी जीविकाके लिए असि, मषी, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या इन छह कर्मोंकी व्यवस्था करनी चाहिए । निश्चयानुसार उन्होंने 'भयभीत मत होओ' इस प्रकारकी वाणीसे बार-बार आश्वासन दे कर इन्द्रका स्मरण किया । तदनन्तर उनके स्मरणमात्रसे समस्त देवसमूहसे परिवृत इन्द्र आ पहुँचा । अपने मुकुटमें लगे हुए मणियोंकी किरणरूप मंजरीके द्वारा भगवान्‌के चरण कमलोंको पीतवर्ण करते हुए इन्द्रने उनकी आज्ञासे शुभमुहूर्तमें उस अयोध्यानगरके बीचमें तथा उसकी चारों महादिशाओंमें कान्तिसे इन्द्रभवनको जीतनेवाले जिन मन्दिरोंकी रचना की । तदनन्तर जो अदेवमातृक—नदी आदिके जलसे जीवित रहनेवाले, देवमातृक—वर्षाके जलसे जीवित रहनेवाले, साधारण—दोनों प्रकारके अनूप—अत्यधिक जलवाले, तथा जांगल—जलरहित भेदोंसे सहित थे, जो अन्तपाल—पहरेदारोंसे सुरक्षित दुर्गोंसे घिरे हुए थे, लुब्धक, अरण्यचर, पुलिन्द तथा श्वर आदिके द्वारा जिनके भीतरी प्रदेशोंकी सदा परीक्षा की जाती थी ऐसे काशी, कोसल, कलिंग, वंग, करहाटक, कर्णाटक, चोल, केरल, मालव, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, वनवास, द्रविड, आन्ध्र, काम्बोज, वाल्हिक, तुरुष्क, केदार, सौवीर, आभीर, चेदि, केकय, शूरसेन, अपरान्तिक, विदेह, सिन्धु, गन्धार, कुरुजांगल, विदर्भ, वत्स, अवन्ती, वनभेद, पल्लव, दशार्ण, कच्छ, महाकच्छ, मगध, रम्य, काश्मीर, कुरु और सौभद्रक आदि नाना देशोंकी और उन देशोंके मध्यभागोंमें परिखा, धूलिसाल, कोट, गोपुर तथा अट्टालकोंसे सुशोभित नाना प्रकारके नगर और ग्राम, पुर, खेट तथा खर्वट आदिकी रचना की । § १३) पुराणीति—भगवान्‌की आज्ञासे पुरों—नगरोंकी रचना करता हुआ जो पुरन्दर इस प्रकारके सार्थक नामको धारण करता था ऐसे

§ १४) सृष्ट्वा क्षत्रियवैश्यशूद्रविदितं वर्णत्रयं सप्रभु—

वृत्तिं चास्य तथा यथार्हमकरोत् षट्कर्मसंपादिताम् ।

तामाज्ञां त्रिजगद्गुरोहिततमां मूर्ध्ना दधानाः प्रजाः

प्रापुः क्षेमपरम्परामतितरां निविघ्नमूर्वीतले ॥९॥

५ § १५) युगादिब्रह्मणा तेन यदित्थं स कृतो युगः ।

ततः कृतयुगं नाम्ना तं पुराणविदो विदुः ॥१०॥

§ १६) आदीशस्य विधातुमुत्सुकमना राज्याभिषेकोत्सवं

स्फूर्जत्तूर्यविरावपूरमुखरव्योमावकाशस्ततः ।

व्यावल्गन्मणिभूषणद्युतिशरीनिर्धूतभानुप्रभं—

१० देवैः साकमवातरत्त्रिदिवतो गोत्राहितः सोत्सवम् ॥११॥

नमुचिसूदनः इन्द्रः, भुवि पृथिव्यां ताः पूर्वोक्ताः सर्वा अखिलाः प्रजाः जनान् यथोचितपदेषु यथायोग्यस्थानेषु निवेश्य स्थापयित्वा निखिललेखवर्गैः सकलसुरसमूहैः समं सार्धं त्रिविष्टपं स्वर्गम् उपासदत् प्राप । पृथ्वीच्छन्दः ॥८॥ § १४) सृष्ट्वेति—स प्रभुः क्षत्रियवैश्यशूद्रेति विदितं प्रख्यातं वर्णत्रयं सृष्ट्वा रचयित्वा तथाच अस्य वर्णत्रयस्य यथार्हं यथायोग्यं षट्कर्मसंपादितां षट्कर्मभिरसिमयीकृषिशिल्पवाणिज्यविद्याभिधानैः संपादितां

१५ कृतां वृत्तिं जीविकां च अकरोत् विदधे । त्रिजगद्गुरोर्भगवतः हिततमाम् अतिशयहितरूपां तां पूर्वोक्ताम् आज्ञां मूर्ध्ना शिरसा दधाना बिभ्रत्यः प्रजा उर्वीतले भूतले अतितरामत्यन्तं निविघ्नं विघ्नानामभावो निविघ्नं निरन्तरायं यथा स्यात्तथा क्षेमपरम्परां कल्याणसंततिं प्रापुः लेभिरे । शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥९॥ § १५) युगादीति—यत् यस्मात् कारणात् इत्थमनेन प्रकारेण स युगः कालभेदः तेन युगादिब्रह्मणा प्रथमजिनेन्द्रेण कृतो रचितः ततस्तस्मात् कारणात् पुराणविदः पुराणज्ञाः तं युगं नाम्ना कृतयुगं विदुः जानन्ति ॥१०॥

२० § १६) आदीशस्येति—ततस्तदनन्तरम् आदीशस्य प्रथमजिनेन्द्रस्य राज्याभिषेकोत्सवं राज्याभिषेकोद्भवं विधातुं कर्तुम् उत्सुकमना उत्कण्ठितचेताः स्फूर्जत्तूर्यणां वाद्यमानवादित्राणां विरावपूरेण शब्दसमूहेन मुखरो वाचालितो व्योमावकाशो गगनान्तरालं येन तथाभूतो गोत्राहितो गोत्रभिद् इन्द्र इत्यर्थः, व्यावल्गतां चलतां मणिभूषणानां रत्नालंकाराणां द्युतिशरीभिः कान्तिनिर्झरैर्निर्धूता तिरस्कृता भानुप्रभा सूर्यदीप्तिर्येस्तैः लेखैरमरैः साकं सह त्रिदिवतः स्वर्गात् सोत्सवं समहं यथा स्यात्तथा अवातरत् अवतीर्णोऽभूत् । शार्दूलविक्रीडितछन्दः

२५ इन्द्रने समस्त प्रजाको पृथ्वीपर यथायोग्य स्थानोंमें ठहराया । तदनन्तर वह समस्त देव समूहके साथ स्वर्गको वापस लौट गया ॥८॥ § १४) सृष्ट्वेति—उन भगवान्के क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस नामसे प्रसिद्ध तीन वर्णोंकी रचना कर यथायोग्य असि, मषी, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या इन छह कार्योंसे होनेवाली आजीविका निश्चित की । और तीन जगत्के गुरु भगवान्की अत्यन्त हितकारी उस आज्ञाको शिरसे धारण करती हुई प्रजा पृथिवीतल-

३० पर निविघ्नरूपसे अस्थायिक कल्याणकी परम्पराको प्राप्त हुई ॥९॥ § १५) युगादीति—इस तरह चूँकि वह युग, युगके आदि ब्रह्मा—भगवान् वृषभदेवके द्वारा किया गया था इसलिए पुराणके ज्ञाता उसे 'कृतयुग' इस नामसे जानते हैं ॥१०॥ § १६) आदीशस्येति—तदनन्तर आदि जिनेन्द्रका राज्याभिषेक करनेके लिए जिसका मन उत्कण्ठित हो रहा था और बजते हुए बाजोंके जोरदार शब्द समूहके द्वारा जिसने आकाशको गुँजा दिया था ऐसा इन्द्र,

३५ चंचल मणिमय आभूषणोंकी कान्ति रूपी शिरनोंसे सूर्यकी प्रभाको तिरस्कृत करनेवाले देवोंके

§ १७) ततः परं नाकराजो नाभिराजादिपरिवृतस्त्रिभुवनगुरुपट्टाभिषेकाय त्वरमाणः, शुभे मुहूर्ते, सुरशिल्पजनकल्पिते, मञ्जुलसुरभिमृत्स्नाविरचितवेदिकाविराजमाने, चञ्चलचञ्चरत्न-चूर्णविरचितरङ्गवल्लीविराजितसुनाशीरशरासने, व्यामुक्तमुक्ताफलशोभमानविरचितवितानचित्र-च्छायाछुरितसुन्दरपुरन्दरमणिकुट्टिमबन्धुरतया विडम्बितसंधारागरञ्जितसौदामिनीसंगतनील-जलधरपटले, विविधोपकरणसमुद्धरणनियमितानेकनाककामिनीनिरुद्धसंचारमार्गे, संचरत्पीरविला- ९
सिनीललितमृदुलपदन्यासमञ्जुगुञ्जन्मञ्जीरमनोहरक्षङ्कारप्रवर्धमानकोलाहले, पारावार इव परि-

॥११॥ § १७) तत इति—ततः परं तदनन्तरं न विद्यतेऽकं दुःखं यत्र स नाकः स्वर्गस्तस्य राजा नाकराजः शक्रः नाभिराजादिभिः परिवृतः परीतः त्रिभुवनगुरोर्बृषभजिनेन्द्रस्य पट्टाभिषेकाय राज्याभिषेकाय त्वरमाणः शोभतां कुर्वन्, शुभे प्रशस्ते मुहूर्ते नृपभवस्य राजमन्दिरस्य मध्ये लसत्तानः शोभमानो योऽभिषेकमण्डपस्तस्मिन् सुरशरवर्जितानां निलिम्बविलासिनीनां करपल्लवैः पाणिकिसलयैः विधूयमानानां कम्प्यमानानां १०
चारुचामराणां सुन्दरबालव्यजनानां समीरेण वायुना आन्दोलिताश्चालिताः, प्रलम्बमाना दीर्घायता या मन्दारमालाः कल्पानोकहकुसुमस्रजस्ताभिरञ्जितं शोभितं देवं त्रिभुवनपतिं जिनेन्द्रं हरिविष्टरे सिंहासने प्राङ्मुखं पूर्वाभिमुखं यथा स्यात्तथा विनिवेशयामास स्यापयामासेति कर्तृकर्मक्रियासंबन्धः । अथाभिषेकमण्डपं वर्णयितुमाह—सुगन्धश्च ते शिल्पिजनाश्चेति सुरशिल्पिजना देवकार्यकरास्तैः कल्पिते रचिते, मञ्जुला मनोहरा सुरभिः सुगन्धश्च या मृत्स्ना मृत्तिका तथा विरचिता निमिता या वेदिका परिष्कृता भूमिस्तया विराजमाने १५
शोभमाने, चञ्चता शुम्भता पञ्चरत्नचूर्णेन पञ्चविधरत्नकणिकानिकरेण विरचिता निमिता या रङ्गवत्स्यः पत्रलतास्ताभिविराजितं विशोभितं सुनाशरिशरासनं शक्रचापो यस्मिस्तस्मिन्, व्यामुक्तैः व्यालम्ब्य धृतैर्मुक्ताफलैर्मोक्षितैः शोभमाना विराजमाना ये विरचितविताना निमित्तवन्द्रापकास्तेषां चित्रच्छायाभिर्विविधकान्तिभिः छुरितो व्याप्तो यः सुन्दरपुरन्दरमणिकुट्टिमो मनोहरमहानीलमणिभूपृष्ठस्तेन बन्धुरतया शोभिततया विडम्बित-स्तिरस्कृतः संधारागरञ्जितः संधाराणिमरक्तः सौदामिनीसंगतश्च विद्युत्सहितश्च नीलजलधरपटलः २०
श्यामलघनसमूहो येन तस्मिन्, विविधोपकरणानां नानाविधसामग्र्योणां समुद्धरणे नियमिताः संलग्ना या अनेकनाककामिन्यो बह्वेव्यस्ताभिर्निरुद्धः संचारमार्गो यातायतसरणिर्यस्मिस्तस्मिन्, संचरत्पीरानां भ्रमन्तीनां पीरविलासिनीनां नागरिकनारीणां ललितमृदुलैः चारुकोमलैः पदन्यासैश्चरणनिक्षेपैर्मञ्जुमनोहरं यथा स्यात्तथा

साथ स्वर्गसे उत्सव सहित अवतीर्ण हुआ—पृथिवीपर आया ॥११॥ § १७) तत इति—तदनन्तरं जो नाभिराजा आदिके द्वारा घिरा हुआ था और नुत्रिलोकीनाथका राज्याभिषेक २५
करनेके लिए शीघ्रता कर रहा था ऐसे इन्द्रने शुभमुहूर्तमें राजभवनके मध्यमें सुशोभित अभिषेक मण्डपमें सुरबालाओंके करकिसलयोंसे चलाये जानेवाले सुन्दर चामरोंकी वायुसे कम्पित लटकती हुई कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाओंसे सुशोभित भगवान्को सिंहासनके ऊपर पूर्वाभिमुख बैठाया । वह अभिषेकमण्डप देव कारीगरोंके द्वारा निर्मित था, मनोहर तथा सुगन्धित मिट्टीके द्वारा विरचित वेदिकासे सुशोभित हो रहा था, चमकदार पंचरत्नोंके ३०
चूर्णसे विरचित रंगीन बेलवूटोंके द्वारा उस मण्डपमें इन्द्रधनुष सुशोभित हो रहा था, लटका कर लगाये हुए मोतियोंसे सुशोभित जो नानारंगके चूंदोंवा बनाये गये थे उनकी रंगबिरंगी कान्तिसे वहाँका नीलमणि निर्मित फर्स व्याप्त हो रहा था इसलिए वह मण्डप सन्ध्याही लालिमासे रंगे तथा बिजलीसे सहित श्यामल मेघ-समूहको तिरस्कृत कर रहा था, नाना प्रकारके उपकरणोंके उठानेमें लगी हुई अनेक देवांगनाओंके द्वारा उस मण्डपमें यातायातका ३५
मार्ग रुक गया था, इधर-उधर चलती हुई नगर-निवासिनी स्त्रियोंके सुन्दर तथा कोमल चरणोंके निक्षेपसे सुन्दर शब्द करनेवाले नूपुरोंकी झंकारसे उस मण्डपमें कोलाहल बढ़ रहा

शोभितरङ्गे सर्वतोमुखसमृद्धे कुशलमकरे च, पद्माकर इव विकस्वरशोभनतामरससहिते कमलाकरे च, नन्दनवन इव सुरागविशोभिते तालमनोहरे मधुराप्सरःकुलशोभिते च, नृपभवनमध्यलसमानाभिषेकमण्डपे सुरवारवनिताकरपल्लवविधूयमानचारुचामरसमीरान्दोलितप्रलम्बमानमन्दारमालाञ्चितं देवं त्रिभुवनपतिं हरिविष्टरे प्राङ्मुखं विनिवेशयामास ।

५ § १८) तत्रानन्दात्त्रिभुवनपतिं विष्टरे तस्थिवांसं
गङ्गासिन्धुप्रमुखसलिलैरभ्यषिञ्चन्सुरेशाः ।

गुञ्जन्ति शब्दं कुर्वाणामि यानि मञ्जीराणि नूपुराणि तेषां मनोहरझङ्कारेण चारुशिञ्जितेन प्रवर्धमानः समेषमानः कोलाहलो यस्मिस्तस्मिन्, पारावार इव सागर इव परिशोभितः परिलसितो रङ्गा नृत्यभूमिर्यस्मिस्तस्मिन् पारावारपक्षे परिशोभितः समन्ताच्छोभमानास्तरङ्गाः कल्लोला यस्मिस्तस्मिन्, सर्वतः समन्तात्
१० मुखैर्हारैः समृद्धे संपन्ने पारावारपक्षे सर्वतोमुखेन सलिलेन समृद्धे परिपूर्णं, कुशलिन्यः कुशलतायाः करस्तस्मिन् पारावारपक्षे कुशलिनः कुशलयुक्ता मकरा जलजन्तुविशेषा यस्मिस्तस्मिन्, पद्माकर इव कासार इव विकस्वरशोभाः प्रकटशोभासंपन्नाः नता नम्रोभूताश्च येऽमरा देवास्तैः सहितस्तस्मिन् पद्माकरपक्षे विकस्वरशोभनानि प्रकटितशोभायुक्तानि यानि तामरसानि पद्मानि तैः सहिते, कमलाया लक्ष्म्याः करस्तस्मिन् पद्माकरपक्षे कमलानां पद्मानामाकरः खनिस्तस्मिन्, नन्दनवन इव इन्द्रोद्यान इव सुरागशोभिते हुण्डु रागः सुरागः
१५ सुन्दरसंगीतध्वनिस्तेन शोभितः नन्दनवनपक्षे सुराणां देवानामगा वृक्षाः सुरागाः कल्पवृक्षास्तैः शोभिते समलङ्कृते, तालैर्लयमानैर्मनोहरे रम्ये नन्दनवनपक्षे डलयोरभेदात् ताडमनोहरे ताडवृक्षसुन्दरे, मधुराप्सरसां सुन्दरसुरविलासिनीनां कुलेन समूहेन शोभिते च रम्ये च नन्दनवनपक्षे मधुराप्सरसां मधुरजलतडागास्तेषां कुलैः समूहैः शोभिते च । § १८) तत्रेति—तत्राभिषेकमण्डपे विष्टरे सिंहासने तस्थिवांसं स्थितं त्रिभुवनपतिं वृषभजिनेन्द्रं सुरेशा देवेन्द्राः गङ्गासिन्धुप्रमुखानां गङ्गासिन्धुप्रभृतीनां सलिलैरभ्यभिः, अभ्य-

२० था, वह मण्डप समुद्रके समान था क्योंकि जिस प्रकार समुद्र परिशोभित-तरंग—सब ओर शोभा देनेवाली तरंगोंसे युक्त होता है उसी प्रकार वह मण्डप भी परिशोभित-रंग—शोभायमान रंगभूमि—नृत्यभूमिसे सहित था, जिस प्रकार समुद्र सर्वतोमुखसमृद्ध—जलसे समृद्ध होता है उसी प्रकार वह मण्डप भी सर्वतोमुख समृद्ध—चारों ओर निर्मित द्वारोंसे समृद्धका ओट जिस प्रकार समुद्र कुशलमकर—कुशलतासे युक्त मगरोंसे सुशोभित होता है उसी
२५ प्रकार वह मण्डप भी कुशलमकर—कुशलताको करनेवाला था । अथवा वह मण्डप तालाबके समान था, क्योंकि जिस प्रकार तालाब विकस्वर-शोभन-तामरस-सहित—खिले हुए शोभायमान कनलोंसे सहित होता है उसी प्रकार वह मण्डप भी विकस्वर शोभनतामर-सहित—विकसित शोभासे युक्त नम्रोभूत देवोंसे सहित था, और जिस प्रकार तालाब कमलाकर—कमलोंकी खान होता है उसी प्रकार वह मण्डप भी कमलाकर—लक्ष्मीको करने-
३० वाला था । अथवा वह मण्डप नन्दनवनके समान था क्योंकि जिस प्रकार नन्दनवन सुराग-शोभित—कल्पवृक्षोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार वह मण्डप भी सुरागशोभित—अच्छे-अच्छे रागोंसे सुशोभित था, जिस प्रकार नन्दनवन तालमनोहर—ताड़ वृक्षोंसे सुन्दर रहता है उसी प्रकार वह मण्डप भी तालमनोहर—स्वर तालोंसे सुन्दर था और जिस प्रकार नन्दनवन मधुराप्सरःकुलशोभित—मीठे जलवाले सरोवरोंके समूहसे शोभित होता है उसी
३५ प्रकार वह मण्डप भी मधुराप्सरःकुलशोभित—सुन्दर अप्सराओंके समूहसे शोभित था । § १८) तत्रेति—उस मण्डपमें सिंहासनपर बैठे हुए त्रिलोकीनाथका इन्द्रोने हर्षपूर्वक गंगा,

भूपा नाभिक्षितिपतिमुखाः पौरवर्गाश्च भर्तु-

स्तीर्थोपात्तैः सुरभिसलिलैस्तेऽभिषेकं वितेनुः ॥१२॥

§ १९) तदनु हैमस्नानजलकुण्डे कृतावगाहनस्त्रिभुवनकमनः कुङ्कुमारुणपयोधरैररुणप्रभा-
धरपल्लवशोभितमुखभागैः कोमलमधुकरसंगतैः कलधौतरुचिरुचिरैः कामिनीजनैः कनककलशैश्च
स्नापितः, कृतनोराजनश्चात्मवत् कल्याणगुणं वसनं परिधाय, सरसं मुकुरमवलोक्य भद्रश्रीख्याति- ९
कलितं चन्दनं च धृत्वा, सद्बृत्तरत्नमण्डितैः सदाखण्डलसत्प्रभावि राजितैर्मुक्तामयैर्नवपुष्परङ्गैस्त्रि-

पिञ्चन् अभिषिक्तं चक्रुः । ते प्रसिद्धाः नाभिक्षितिपतिमुखा नाभिराजादयो भूपा राजानः पौरवर्गाश्च नागरिक-
नरसमूहाश्च तीर्थोपात्तैस्तीर्थनीतैः सुरभिसलिलैः सुगन्धितजलैः भर्तुः स्थामिनः अभिषेकं राज्याभिषेकं वितेनु-
विस्तारयामासुः ॥१२॥ § १९) तदन्वित—तदनु तदनन्तरं हेम्ना निर्वृत्तो हैमः सौवर्णः स चासी स्नानजल-
कुण्डश्च तस्मिन्, कृतावगाहनः कृतप्रवेशः त्रिभुवनकमनः त्रिजगत्पतिः कुङ्कुमेन केशरेण अरुणा रक्ताः पयोवराः १०
स्तना येषां तैः कामिनीजनैः, पक्षे कुङ्कुमेन केशरेण अरुणं रक्तं यत् पयोजलं तस्य धराधारकास्तैः कनककलशैः
काञ्चनकुटैः, अरुणप्रभै रक्तकान्तिभिः अधरपल्लवैर्दशनच्छदकिसलयैः शोभिताः समलंकृता मुखभागा येषां
तैः कामिनीजनैः, पक्षे अरुणप्रभाया रक्तकान्त्या धराधारका ये पल्लवाः किसलयास्तैः शोभितो मुखभागो-
द्यभागो येषां तैः कनककलशैः, कोमला मृदुला मध्वो मधुरूपाश्च ये कराः पाणयस्तैः संगतैः कामिनीजनैः,
पक्षे कोमलमधुकरैः मृदुभ्रमरैः संगतैः सहितैः कनककलशैः, कलधौतस्य सुवर्णस्येव रुचिः कान्तिस्तथा रुचिरैः १५
सुन्दरैः कामिनीजनैः, पक्षे कलधौतस्य सुवर्णस्य रुच्या कान्त्या रुचिरै रम्यैः कनककलशैश्च स्नापितः अभिषिक्तः,
कृतं विहितं नोराजनम् आरातिकं यस्य तथाभूतः, आत्मवत् स्वमिव कल्याणगुणं कल्याणस्य सुवर्णस्य गुणा-
स्तन्तवो यस्मिस्तत्, वसनं वस्त्रं पक्षे कल्याणाः कल्याणकरा गुणा यस्य तं स्वं जिनेन्द्रमित्यर्थः, परिधाय धृत्वा,
स्वमिव आत्मानमिव सरसं रसेन पारदेन सहितं सरसं मुकुरं दर्पणं पक्षे रसेन स्नेहेन सहितं सरसं स्वं,
अवलोक्य दृष्ट्वा, स्वमिव आत्मानमिव भद्रश्रीख्यातिकलितं—‘भद्रश्री’ इति ख्यात्या प्रसिद्ध्या कलितं २०
सहितं चन्दनं मलयजं पक्षे भद्रा कल्याणकारिणी या श्रीः लक्ष्मीस्तया कलितं स्वं, चन्दनं च धृत्वा, सद्बृत्त-
रत्नमण्डितैः सद्बृत्तं सदाचार एव रत्नं तैर्मण्डितैः शोभितैः त्रिदशजनैः देवैः पक्षे सन्ति रेखादिदोषरहितानि
वृत्तानि वर्तुलानि च यानि रत्नानि तैर्मण्डितैः भूषणगणैश्च भूषासमूहैश्च, सदा सततम् आखण्डलस्य सहस्रा-

सिन्धु आदि नदियोंके जलसे अभिषेक किया तथा नाभिराज आदि राजा और नगर निवासी
लोगोंने भी तीर्थोंसे लाये हुए सुगन्धित जलसे भगवान्का अभिषेक किया ॥१२॥ § १९) तद- २५
न्वित—तदनन्तर सुवर्णनिर्मित स्नानजलके कुण्डमें जिन्होंने अवगाहन किया था ऐसे
त्रिलोकीनाथका स्त्रीजनोंने जिन सुवर्णकलशोंसे अभिषेक किया था वे सुवर्णकलश उन्हीं
स्त्रीजनोंके समान थे, क्योंकि स्त्रीजन कुङ्कुमारुणपयोधर—केशरसे लाल-लाल स्तनोंको धारण
करनेवाले थे और सुवर्णकलश भी कुङ्कुमारुणपयोधर—केशरसे लाल-लाल जलको धारण कर
रहे थे, स्त्रीजनोंके मुख अरुण-प्रभाधरपल्लव—लालकान्तिवाले अधरोष्ठ रूपी पल्लवोंसे ३०
सुशोभित थे और सुवर्ण कलशोंके मुख भी लाल प्रभाको धारण करनेवाले पल्लवोंसे सुशोभित
थे, स्त्रीजन कोमलमधुकर संगत—कोमल तथा मधुरूप हाथोंसे सहित थे और सुवर्णकलश
भी कोमल-मधुकर-संगत—कोमल भ्रमरोंसे सहित थे, तथा स्त्रीजन-कलधौतरुचि-रुचिर—
सुवर्णके समान कान्तिसे सुन्दर थे और सुवर्ण कलश भी कलधौत रुचिरुचिर—सुवर्णकी
कान्तिसे मनोहर थे । स्नपनके बाद स्त्रीजनोंने उनकी आरती की थी । तदनन्तर उन्हींने ३५
अपने ही समान कल्याणगुण सुवर्णतन्तुओंसे निर्मित (पक्षमें कल्याणकारी गुणोंसे सहित)
वस्त्रको धारण किया, अपने ही समान सरस—पारेसे सहित (पक्षमें स्नेहसे सहित)

दशजनैर्भूषणगणैश्च भूषितः, स्वात्मानमिव सुपर्वाञ्चितं सुरुचिरमणीमनोहरं च नाभिराजापितं मौलिं शिरसि निदधानो राजताभ्युदयाकरेण नाभिराजकरेण पट्टबन्धेन च बन्धितललाटतटः परं विरराज ।

§ २०) तदानीमुदारवचनमकरन्दाः सुवन्दिन इत्थं पठन्ति स्म ।

५ § २१) देव ! त्वं लोकसेव्यः प्रकृतिविरुद्धेन कोविदो मुक्तलोभा-
आजगच्छैः कलाहैररिलयनियतः कोलसंकाशवीर्यः ।

- अस्य या सत्प्रभा सत्कान्तिस्तया विराजितैः शोभितैः त्रिदशजनैः पक्षे सदा सततम् अखण्डं यथा स्वात्तया लसन्ती शोभमाना या प्रभा कान्तिस्तया विराजितैः भूषणगणैः, मुक्तस्त्यक्त आमयो रोगो येस्तै रोगरहितैः त्रिदशजनैः पक्षे मुक्तानां मुक्ताफलानां विकारा मुक्तामया तैः भूषणगणैः, न वपुषि शरीरे अरागं रागरहितैरिति नवपुष्परागैः शरीररागसहितैरित्यर्थः, त्रिदशजनैः पक्षे नवो नूतनः पुष्परागो मणिविशेषो येषु तैः भूषणगणैः भूषितः समलंकृतः, स्वात्मानमिव स्वमिव सुपर्वाभिः सुमनोभिः अञ्चितस्तं देवपूजितं स्वात्मानं पक्षे सुपर्वाभिः सुशिखरैरञ्चितं शोभितं मौलिं मुकुटं, सुष्ठु हविः कान्तिर्यासां ताः सुरुचयः तथाभूता या रमण्यः स्त्रियस्तासां मनोहरं चेतोहरं स्वात्मानं पक्षे सुरुचिरमणीभिः सुन्दरतररत्नैर्मनोहरं मौलिं मणिशब्द ईकारान्तोऽपि दृश्यते । नाभिराजेन अपितं दत्तं मौलिं मुकुटं शिरसि निदधानः, राज्ञोभावो राजता नृपतिता तस्या अभ्युदयस्य आ-
१५ समन्तात् करः कर्ता इति राजताभ्युदयाकरस्तेन नाभिराजकरेण स्वपितृहस्तेन, पक्षे रजतस्य अयं राजतः रोप्यः स चासौ अभ्युदयस्तस्य आकरः खनिस्तेन रजतनिर्मितेन पट्टबन्धेन च बन्धितो ललाटतटो यस्य तथाभूतः सन् परमत्यन्तं विरराज शुशुभे । श्लेषोपमा । § २०) तदानीमिति—तदानीं राजपट्टबन्धनावसरे उदारं समुत्कृष्टं वचनमकरन्दं येषां ते सुवन्दिनः सुमागवाः इत्थं अनेन प्रकारेण पठन्ति स्म विरुद्धावलीमुच्चारयामासुः । § २१) देवेति—हे देव ! हे राजन् ! यद्वा येन प्रकारेण त्वं लोकसेव्यः लोकैः सेव्यः लोकसेव्यो
२० जनाराधनीयः, प्रकृतिविरुद्धेन प्रजाप्रसन्निकरणे कोविदो निपुणः, मुक्तलोभः त्यक्तलोभः, कलाहैः कलायोग्यैः अङ्गैरवयवैः आजन् शोभमानः, अरिलये शत्रुनाशे नियतः संलग्नः, कोलसंकाशं वीर्यं यस्य तथाभूतः सुदृढपराक्रमः,

- दर्पणको देखकर अपने ही समान भद्रश्रीख्यातिकलित—‘भद्रश्री’ इस नामसे सहित (पक्षमें कल्याणकारी लक्ष्मीसे सहित) चन्दन लगाया । तदनन्तर देवोंने अपने समान सद्बृत्तरत्नमण्डित—समीचीन गोलाकार रत्नोंसे सुशोभित, (पक्षमें सदाचरणरूपी रत्नसे
२५ सुशोभित), सदाखण्डलसत्प्रभाविराजित—निरन्तर अखण्ड रूपसे सुशोभित कान्तिसे विराजित (पक्षमें इन्द्रकी समीचीन प्रभासे विराजित), मुक्तामय—मोतियोंसे तन्मय (पक्षमें रोगरहित), तथा नवपुष्पराग—नूतन पुष्पराजमणिसे सहित (पक्षमें शरीरमें अराग—अप्रीतिसे रहित) भूषणोंके समूहसे अलंकृत किया । अलंकार धारण करनेके पश्चात् उन्होंने अपने ही समान सुपर्वाञ्चित—सुन्दर कलशियोंसे सुशोभित (पक्षमें देवोंके द्वारा पूजित)
३० और सुरुचिरमणी मनोहर—सुन्दर मणियोंसे मनोहर (पक्षमें सुन्दर स्त्रियोंके मनको हरनेवाले) नाभिराजाके द्वारा प्रदत्त मुकुटको मस्तकपर धारण किया, तदनन्तर राजताभ्युदयकर—राजपनाके अभ्युदयको करनेवाले नाभिराजके हाथ तथा राजताभ्युदयकर—चाँदीके अभ्युदयको करनेवाला अर्थात् रजतनिर्मित पट्टबन्ध उनके ललाट तटपर बाँधा गया । इन सब कारणोंसे वे अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे । § २०) तदानीमिति—उत्कृष्ट वचनरूपी
३५ मकरन्दसे सहित सुवन्दीजन इस प्रकार पाठ कर रहे थे । § २१) देवेति—हे देव ! जिस प्रकार आप लोकसेव्य हैं—लोगोंके द्वारा सेवा करने योग्य हैं, प्रजाके प्रसन्न करनेमें निपुण हैं, लोभसे रहित हैं, कलाके योग्य अंगोंसे शोभायमान हैं, शत्रुओंका नाश करनेमें संलग्न हैं,

रामालास्यप्रकारप्रकटितहृदयः सत्सभालाभयोग्य-

स्तद्वल्लोकाधिनाथ ! स्फुरति तव रिपुलेश एवास्ति भेदः ॥१३॥

§ २२) मन्ता सत्कार्यभूम्नां शुभकररमितस्त्वं दयोद्दामशीलो

मीनाङ्कुशलाघ्यदेहो मितरहितयशा मानिभिः सेवितश्रीः ।

प्रज्ञावद्भिः प्रमेयः प्रतिमतकुशलः प्राप्तसाम्यो न कश्चित्

लोकेश ! त्वत्सपत्नो न खलु तव समो मोहमाप्नोति विष्वक् ॥१४॥

रामाया लक्ष्म्या लास्यप्रकारे नृत्यभेदे प्रकटितं हृदयं यस्य तथाभूतः, सत्सभानां समीचीनपरिषदां लाभस्य प्राप्तेर्योग्यः समर्हः असीति शेषः, हे लोकाधिनाथ ! हे लोकेश ! तद्वत् तथैव तव रिपुः शत्रुः स्फुरति शोभते । उभयोः लेश एव अल्प एव भेदो विशेषः अस्ति । अथ च ले लकारस्थाने शः शकार इति लेश एव भेदोऽस्ति उपरितन- विशेषणेषु लकारस्थाने शकारं योजयित्वा शत्रुपक्षे व्याख्यानं कर्तव्यमिति यावत् । एवं च शत्रुपक्षे श्लोकपाठ १० एवं बोध्यः—देव ! त्वं शोकसेव्यः प्रकृतिविशसने कोविदो मुक्तशोभो भ्राजन् अङ्गैः कशाहैररिशयनियतः कीशसंकाशवीर्यः । रामालास्यप्रकारप्रकटितहृदयः सत्सभाशालाभयोग्यस्तद्वल्लोकाधिनाथ ! स्फुरति तव रिपुः शेष एवास्ति भेदः ॥ हे देव ! त्वं लोकसेव्यः तव रिपुस्तु शोकसेव्यः शोकयुक्तः, त्वं प्रकृतिविलसने कोविदः तव रिपुस्तु प्रकृतिविशसने प्रजाविनाशे कोविदः, त्वं मुक्तलोभः तव रिपुस्तु मुक्तशोभः शोभारहितः, त्वं कलाहैः अङ्गैः भ्राजन् तव रिपुस्तु कशाहैः 'अश्वादेस्ताडनी कशा' तदहैः अङ्गैः भ्राजन्, त्वं अरिलयनियतः १५ तव रिपुस्तु अरिशये शत्रुहस्ते नियतो बद्धः, त्वं कीलसंकाशवीर्यः नव रिपुस्तु कीशसंकाशवीर्यः कपितुल्यपराक्रमः, त्वं रामालास्यप्रकारप्रकटितहृदयः तव रिपुस्तु रामालास्यप्रकारप्रकटितहृदयः स्त्रीनिघ्नताप्रकारप्रकटितहृदयः, त्वं सत्सभालाभयोग्यः तव रिपुस्तु सत्सभाशालाभयोग्यः सत्सभासु अनादरयोग्यः, त्वं लोकाधिनाथः तव रिपुस्तु शोकाधिनाथः शोकयुक्तः, इत्युभयोर्भेदः शेष एव असमाप्त एव विद्यते । श्लेषव्यतिरेको । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥१३॥ § २२) मन्तेति—हे लोकेश ! हे जगत्पते ! त्वं सत्कार्याणां भूमानस्तेषां प्रशस्तकार्य- २० बाहुल्यानां मन्ता बोद्धा, शुभकरैः श्रेयस्करैरमितः क्रीडितः, दयाया उद्दामशीलं यस्य तथाभूतः कुपोक्त-स्वभावः, मीनाङ्को मदनस्तद्वत् श्लाघ्यो देहो यस्य सः, मितरहितमपरिमितं यशो यस्य सः, मानिभिर्मनस्विभिः सेविता श्रेयस्य सः, प्रज्ञावद्भिर्बुद्धिमद्भिः प्रमातुं योग्यः प्रमेयः, प्रतिमतं प्रतिज्ञातं कुशलं श्रेयो यस्य सः, असीति शेषः । कश्चित् कोऽपि प्राप्तसाम्यः प्राप्तसादृश्यो नास्ति तवेति शेषः । खलु निश्चयेन त्वत्सपत्नस्त्वद्वैरी 'रिपो

कीलके समान सुहृद् पराक्रमसे सहित हैं, लक्ष्मीके नृत्यभेदमें आपका हृदय प्रकट है, आप २५ समीचीन सभाओंकी प्राप्तिके योग्य हैं तथा लोकके नाथ हैं इसी प्रकार आपका शत्रु भी है उसमें लेशमात्र ही भेद है—थोड़ा सा भेद है (पक्षमें उपर्युक्त विशेषणोंमें लकारके स्थानमें शकार कर देने मात्रका भेद है अर्थात् आपका शत्रु शोकसेव्य है—शोकके द्वारा सेवनीय है, प्रकृति—प्रजाके विशसन—नष्ट करनेमें निपुण है, मुक्तशोभ—शोभासे रहित है, कशाह—कोड़ाके योग्य अंगोंसे सहित है, अरिशयनियत—शत्रुके हाथोंमें बद्ध है, कीशसंकाशवीर्य—वानरके ३० समान शक्तिका धारक है, स्त्रियोंकी आज्ञामें चलनेवाला है, समीचीन सभाओंमें अनादरके योग्य है तथा शोकाधिनाथ—शोकका स्वामी है) ॥१३॥ § २२) मन्तेति—हे लोकेश ! आप अनेक सत्कार्योंके माननेवाले हैं, कल्याणकारी लोगोंके द्वारा क्रीडाको प्राप्त हैं, दयासे परिपूर्ण शीलसे युक्त हैं, कामदेवके समान सुन्दर देहसे सहित हैं, अपरिमित यशसे सहित हैं, मानीजनोंके द्वारा सेवित श्रीसे सम्पन्न हैं, बुद्धिमानोंके द्वारा जाननेके योग्य हैं, तथा ३५ कल्याणकारी कार्योंको जानने वाले हैं, कोई भी पुरुष आपकी समानताको प्राप्त करनेवाला नहीं है । हे लोकेश्वर ! आपका शत्रु आपके समान नहीं है वह सब ओरसे मोह—विभ्रमको

§ २३) देव ! त्वं काशपुष्पस्तवकनिभयशा गोविशालोत्सवाढ्यो-

दानैकायत्तचित्तो रिपुजनविततेः शासने धीरवीरः ।

भासेद्धिर्मयाप्तो भुवि लयरहितो धीद्ववृत्तिभरेण

युक्तस्त्वद्वक्तथं स्याद्रिपुमरनुत् ! प्राग्भजत्यापदं सः ॥१५॥

- ५ वैरिसपत्नारिद्विषद्वेषणदुर्हृदः' इत्यमरः, तव समो न भवतः सदृशो न वर्तते, स विष्वक् समन्तात् मोहं विभ्रमम् आप्नोति प्राप्नोति अथ यः मकारस्य स्थाने हं हकारं प्राप्नोति उपर्युक्तविशेषणेषु सर्वत्र मकारस्थानेषु हकारं प्राप्नोति तथा च त्वद्रिपुपक्षे इत्थं पाठः परिवर्त्यते—हन्ता सत्कार्यभूम्नां शुभकररहितस्त्वं दयोदाहशीलो हीनाङ्गुलाध्यदेहो हितरहितयशा हानिभिः सेवितश्रीः । प्रज्ञावद्भिः प्रहेयः प्रतिहतकुशलः प्राप्तसाह्यो न कश्चित् लोकेश ! त्वत्सपत्नो न खलु तव सहो होहमाप्नोति विष्वक् ॥ अस्मिन् पक्षे व्याख्यानं त्वित्यम्—
- १० हे लोकेश ! त्वत्सपत्नो भवद्रिपुः सत्कार्यभूम्नां प्रशस्तकार्यबाहुल्यानां हन्ता नाशकः, शुभकरैः श्रेयस्करैः रहितः शून्यः, दयोदाहं कृपादाहकरं शोलं स्वभावो यस्य सः, हीनाश्च तेऽङ्गाश्चेति हीनाङ्गाः कुत्सितलिङ्गानि तैः श्लाघ्यो युक्तो देहो यस्य सः, हितरहितं कल्याणरहितं यशो यस्य सः, हानिभिः सेविता श्रीर्यस्य सः, प्रज्ञावद्भिर्बुद्धिर्माद्भिः प्रहानुं त्यक्तुं योग्यः प्रहेयः, प्रतिहतं नष्टं कुशलं यस्य सः, अस्तीति शेषः । कश्चित् कोऽपि तस्य साह्य सहभवः साह्यः सहयायी न वर्तते । हे लोकेश ! त्वत्सपत्नस्त्वद्रिपुः तव सहते इति सहः सहन-
कर्ता न त्वां न सहतेऽसाविति भावः । स विष्वक् समन्तात् अहं तर्कम् आप्नोति हा इति खेदेऽव्ययः । श्लेष-
व्यतिरेको ॥ शार्ङ्गलविक्रीडितं छन्दः ॥१४॥ २३) देवेति—हे देव ! हे राजन् ! त्वं काशपुष्पस्तवनिभं काशपुष्पगुच्छकसदृशं यशः कीर्तियस्य तथाभूतः, गवि भूम्नां विशालोत्सवैर्बहुद्वैः आढ्यः सहितः, दानस्य विहापितस्य एकायत्तं एकाधीनं चित्तं यस्य सः, दानैकतत्परहृदय इत्यर्थः, रिपुजनवितते, शत्रुजनसंततेः शासने दमने धीरवीरो दक्षतरः, भासा कान्त्या इद्धा दीप्ता ऋद्धिर्यस्य तथाभूतः मया लक्ष्म्या आप्तः सहितः,
२० भुवि पृथिव्यां लयरहितो नाशरहितः, विद्या बुद्ध्या इद्धाया वृत्तिप्रवृत्तिस्तस्या भरेण समूहेन युक्तः सहितः असीति शेषः, रिपुः शत्रुः त्वद्वत् त्वत्सदृशः कथं स्यात् अपि तु केनापि प्रकारेण न स्यात् । हे अमरनुत् ! हे देव-
स्तुत ! स त्वद्रिपुः प्राक्पूर्वमेव आपदमापत्तिं भजति प्राप्नोति त्वदहितविचारात् पूर्वमेव स आपत्तिमवाप्नोतीति भावः । अथ च स प्राक् पूर्वोक्तविशेषणेषु प्राक् आ इति पदम् आपदं भजति सेवते । तथा च त्वद्रिपुपक्षे इत्थं पाठः, परिवर्त्यते त्वं काशपुष्पस्तवकनिभयशाः, त्वद्रिपुस्तु आकाशपुष्पस्तवकनिभयशाः—आकाशपुष्पस्तवकनिभं
- २५ प्राप्त होता है (पक्षमें आपका शत्रु उपर्युक्त विशेषणोंमें मकारके स्थानमें हकारको प्राप्त होता है अर्थात् वह प्रशस्त सत्कार्योक्तो अधिकताका हन्ता—नाश करनेवाला है, शुभकर—कल्याणकारी लोगोंसे रहित है, दयोदाहशील—दयाको जलानेवाले स्वभावसे सहित है अर्थात् निर्दय है, हीन चिह्नोंसे युक्त शरीरवाला है, हित रहित यशसे सहित है अर्थात् हितकारी यशसे शून्य है, हानियोंसे युक्त लक्ष्मीवाला है, बुद्धिमानोंके द्वारा प्रहेय—छोड़नेके योग्य है, कुशलताको नष्ट करनेवाला है, उसका कोई साथी नहीं है, वह आपको सहन नहीं कर सकता वह तो सदा तर्क ही को प्राप्त होता रहता है यह खेदकी बात है) ॥१४॥
- ३० § २३) देवेति—हे देव ! आप काशके फूलोंके गुच्छोंके समान यशसे सहित हैं, पृथ्वीपर विशाल उत्सवोंसे युक्त हैं, आपका चित्त सदा दान देनेमें ही संलग्न रहता है, आप शत्रु-समूहका दमन करनेमें शूर-वीर हैं, आपकी ऋद्धि—सम्पत्ति कान्तिसे देदीप्यमान है, पृथिवी पर आप विनाशसे रहित हैं, तथा आप बुद्धिसे विभूषित चेष्टाके समूहसे युक्त हैं । हे देव-
स्तुत ! आपका शत्रु आपके समान कैसे हो सकता है वह तो कुछ करनेके पहले ही आपद्—आपत्तिको प्राप्त हो जाता है (पक्षमें आपका शत्रु उपर्युक्त विशेषणोंके पहले 'आ' इस पदको प्राप्त होता है अर्थात् वह आकाशके फूलोंके गुच्छोंके समान यशवाला है—यशसे रहित है,

§ २४) किंच देवः खलु करोदितविभवः कविगीतयशः करिमिलितदिगन्तरः कमलविलसितनयनयुगः कोपक्रियाविरहितः कान्तोपलालितहर्षः कामाभतनुलतः कार्तस्वरमात्रविचित्रसदनः कर्णसंयोजितमहार्घभूषणः कारणचिन्ताधुरीणमानसः, कवनयोग्यपवित्रचरित्रः कार्यसमापनतत्परः कामितविभवत्यागो कासारविराजितभवनप्रदेशः करेणुवृन्दस्थपुटितमन्दिरद्वारदेशः काननस्थापितपरतृणः कालवालजलदस्तवरिपुस्तु पूर्वकात्र रक्षतीति कथं तव कक्षां गाह्य इति ।

५

गगनपुष्पस्तवकसदृशं शून्यरूपं यशो यस्य तथाभूतः, त्वं गोविशालोत्सवाढ्यः त्वद्रिपुस्तु आगोविशालोत्सवाढ्यः आगोभिरपरार्धविशालाः पूर्णा ये उत्सवास्तैराढ्यः, त्वं दानैकायत्तचित्तः त्वद्रिपुस्तु आदानैकायत्तचित्तः आदानस्य ग्रहणस्य एकायत्तं चित्तं यस्य तथाभूतो दोन इत्यर्थः, रिपुजनविततो शत्रुसमूहस्य आशासने आज्ञापालने धीरधीरोऽतिदक्षः, त्वं भासेर्द्धिः त्वद्रिपुस्तु आभासेर्द्धिः आभासं यथा स्यात्तथा इद्धा ऋद्धयो यस्य सः आभासमात्रद्विभुक्त इत्यर्थः, त्वं मयाप्तः त्वद्रिपुस्तु आमयाप्तः सः रोगः, त्वं भुवि लयरहितः त्वद्रिपुस्तु आलय- १०
रहितो गृहरहितः, त्वं धोद्धवृत्तेर्भरेण युक्तः त्वद्रिपुस्तु आधोद्धवृत्तेर्भरेण युक्तः आधयो मानसव्यवस्थास्तरिद्धा या वृत्तिश्चेष्टा तस्या भरेण युक्तः, त्वम् अमरनुतः त्वद्रिपुस्तु आमरनुतः आ समन्तात् त्रियन्त इत्याभरास्तैः नुतः स्तुतः तत्संबुद्धौ । श्लेषव्यतिरेको । शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥१५॥ § २४) किं चेति—किं च अन्यदपि देवो भवान् खलु निश्चयेन करै राजस्वैरुदितं बलवैभवं वीर्यसामर्थ्यं यस्य सः, कविभिर्गीतं यशो यस्य सः, करिभिर्गजैर्मिलितानि दिगन्तराणि काष्ठान्तानि यस्य सः, कमलमिव विलसितं शोभितं नयनयुगं यस्य सः, १५
कोपक्रिया क्रोधचेष्टया विरहितः शून्यः, कान्ताभिः कामिनीभिरुपलालितो वर्धितो हर्षो यस्य सः, कामाभा स्मरसदृशी तनुलता देहवल्ली यस्य सः, कार्तस्वरपात्रैः सुवर्णभाजनैश्चित्राणि विस्मयकराणि सदनानि भवनानि यस्य सः, कर्णयोः श्रवणयोः संयोजिते धृते महार्घभूषणे महामूल्याभरणे यस्य सः, कारणानां चिन्तायां धुरीणं दक्षं मानसं यस्य सः, कवनयोग्यं स्तवनयोग्यं पवित्रचरित्रं यस्य सः, कार्याणां प्रारब्धकृत्यानां समापने पूरणे तत्परः संलग्नः, कामितविभवस्य इष्टवैभवस्य त्यागो दानं कामितविभवत्यागः सोऽस्ति यस्येति तथाभूतः, २०
कासारेण सरसा विराजितः शोभितो भवनप्रदेशो यस्य सः, करेणुवृन्देन हस्तिमूहेन स्थपुटितो व्याप्तो मन्दिरद्वारदेशो भवनद्वारप्रदेशो यस्य सः, कानने वने स्थापिता उषिता परतृणाः क्षुद्रशत्रवो येन सः, कालवालैः

आगोविशाल—अपरार्धोसे पूर्ण उत्सवोसे युक्त है, आदानैकायत्तचित्त—ग्रहण करनेमें ही उसका चित्त संलग्न रहता है, वह शत्रुसमूहकी आज्ञाका पालन करनेमें अति दक्ष है, आभासमात्र ऋद्धियोंसे युक्त है—उसके पास वास्तविक सम्पत्ति नहीं है, आमयाप्त—रोगोंको २५
प्राप्त है, पृथिवीपर आलय—घरसे रहित है, आधोद्धवृत्ति—मानसिक व्यथाओंसे युक्त है । चेष्टाओंके समूहसे युक्त है और मरणशील मनुष्योंके द्वारा ही स्तुति करने योग्य है ।) ॥१५॥
§ २४) किंचेति—इसके सिवाय निश्चयसे आपके पराक्रमकी सामर्थ्य राजस्वों—टैक्सोंसे वृद्धिको प्राप्त हुई है, कवियोंके द्वारा आपका यश गाया जाता है, आपने दिशाओंके अन्तराल हाथियोंसे मिला दिये हैं, आपके दोनों नेत्र कमलोंके समान सुशोभित हैं, आप क्रोधकी १०
क्रियासे रहित हैं, आपका हर्ष कान्ताओं—स्त्रियोंसे बढ़ाया गया है, आपकी शरीरलता काम-देवके समान है, आपके भवन स्वर्णमय पात्रोंसे आश्चर्य उत्पन्न कर रहे हैं, आपके कानोंमें महामूल्य आभूषण सुशोभित है, आपका मन कारणोंकी चिन्ता करनेमें निपुण है, आपका पवित्र चरित्र स्तुतिके योग्य है, आप कार्योंको समाप्त करनेमें तत्पर रहते हैं, आपने इष्टविभवोंका त्याग किया है, आपके भवनोंके प्रदेश तालाबोंसे सुशोभित हैं, आपके भवनोंके द्वार हाथियोंके ३५
समूहसे व्याप्त रहते हैं, आपने शत्रुरूपी तृणको अथवा तृणके समान क्षुद्र शत्रुओंको वनमें खदेड़ दिया है, तथा काले केशोंसे आप मेघके समान जान पड़ते हैं परन्तु आपका शत्रु अपने पूर्ववर्तीजनोंकी रक्षा नहीं कर सकता इसलिए वह आपकी बराबरी कैसे कर सकता

§ २५) ततः सानन्दमानन्दनाटकं कुलिशायुधः ।

प्रयुज्यास्थाधिकारङ्गे प्रत्यगाद्गां सुरैः सह ॥१७॥

§ २६) अथ स मुकुटबद्धप्रोल्लसन्मौक्तिमाला-

मसृणितनखराजोराजितो विश्वसृष्टा ।

५

विधृतसकलभारो नाभिराजोपकण्ठे

प्रकृतिनिचयरक्षायतनमित्थं चकार ॥१८॥

कृष्णकर्चः जलदो मेघः, असोति शेषः, तव भवतो रिपुस्तु शत्रुस्तु पूर्वकान् पूर्वं एव पूर्वकाः स्वकीयपूर्वपुरुषा-
स्तान् न रक्षतीति कथं तव कशामुपमां गाहते इति । अथ च तव रिपुः उपर्युक्तविशेषणेषु विद्यमानान् पूर्वकान्
पूर्वकाक्षरान् न रक्षतीति कथं तव कथां गाहते । रिपुपक्षे पूर्वकाक्षरत्यागे विशेषणानामित्वमर्थो भवति—

१० रोदितबलविभवः—रोदित आक्रन्दनयुक्तो बलविभवो यस्य सः, विगीतं निन्दितं यशो यस्य सः, अरिभिमिलितं
दिगन्तरं यस्य सः, मलविलसितं नयनयुगं यस्य सः, उपक्रियाविरहितः समुपकारशून्यः, अन्तेन विनाशेनोप-
लालितो हर्षो यस्य सः, अमाभा अशोभना तनुलता यस्य सः, आर्तस्वरस्य पीडितशब्दस्य पात्रं विचित्रं
चित्ररहितं सदनं यस्य सः, ऋणे संयोजितानि समर्पितानि महार्घभूषणानि यस्य सः, रणचिन्तायां समरचिन्तायां
धुरीणं मानसं यस्य सः, वनयोग्यं पवित्रचरित्रं यस्य सः, आर्याणां सत्पुरुषाणां समापने विनाशे तत्परः

१५ समुद्युक्तः, अमितविभवत्यागोऽपरिमितैश्वर्यत्यागो विद्यते यस्य सः, सारेण धनेन विराजितः शोभितो भवन-
प्रदेशो न भवति यस्य सः असारविराजितभवनप्रदेशः, अथवा आसारेण बलीकपटलरहितत्वाद् धारासंपातेन
विराजितो भवनप्रदेशो यस्य सः, रेणुवन्देन धूलिसमूहेन स्पर्शपटिता नतोग्नता मन्दिरद्वारदेशा भवनद्वारदेशा यस्य
सः, आननेषु मुखेषु स्थापिताः परैः शत्रुभिः तुणा यस्य सः, आलवालेषु आवापेषु जलं ददातीति आलवाल-
जलवा । श्लेषव्यतिरेको । § २५) तत इति—ततस्तदनन्तरं कुलिशायुधो वज्रायुध इन्द्र इत्यर्थः आस्था-

२० यिकारङ्गे सभारङ्गभूमौ सानन्दं यथा स्यात्तथा आनन्दनाटकं तन्नामनाटकं प्रयुज्य कृत्वा सुरैरमरैः सह गां
स्वर्गं 'गौः पुमान् वृषभे स्वर्गे खण्डवज्रहिमांशुषु' इति विश्वलोचनः । प्रत्यगात् प्रतिजगाम ॥१७॥ § २६)
अथेति—अथ तदनन्तरं मुकुटबद्धा मौलिसंलग्ना या प्रोल्लसन्त्यः शोभमाना मौक्तिमाला मुक्ताफलनिकरा-
स्ताभिर्मसृणिताः स्निग्धा या नखराज्यो नखरपङ्क्तयस्ताभो राजितः शोभितः, विधृतः संधृतः सकलभारो

है ? (पक्षमें आपका शत्रु उपर्युक्त विशेषणोंमें ककारकी रक्षा नहीं करता है अर्थात् उसका

२५ बल विभव सदा रोदनसे युक्त रहता है, वह विगीतयश—निन्दित यशसे युक्त है, उसके
दिशाओंके अन्तराल शत्रुओंसे व्याप्त रहते हैं, उसके नेत्रयुगल मलसे दूषित रहते हैं, वह
उपकारोंसे शून्य रहता है, उसका हर्ष अन्तसे सहित होता है, उसकी शरीरलता अशोभनीक
रहती है, उसका भवन दुःखमय शब्दोंका पात्र तथा चित्रोंसे विहीन है, उसके महामूल्य
आभूषण ऋणमें चले जाते हैं, वह सदा रणकी चिन्तामें ही व्यग्र रहता है, उसका पवित्र

३० चरित्र वनके योग्य है, वह आर्य मनुष्योंके नाश करनेमें तत्पर रहता है, उसे अपने अपरिमित
विभवका त्याग करना पड़ता है, उसके महलोंके प्रदेश सारहीन हैं अथवा छप्परसे रहित
होनेके कारण वर्षासे पीड़ित रहते हैं, उसके मकानोंके आगे धूलिके ढेर लगे हुए हैं, उसके
शत्रु उससे मुखमें वृण धारण कराते हैं, तथा वह आजीविकासे दुःखी हो क्या रियोंमें पानी
देता फिरता है—इस तरह वह आपकी बराबरी कैसे कर सकता है ?) § २५) तत इति—

३५ तदनन्तर इन्द्र, सभारूपी रंगभूमिमें हर्ष सहित आनन्द नामका नाटक कर देवोंके साथ
स्वर्गको वापिस चला गया ॥१७॥ § २६) अथेति—तदनन्तर मुकुटोंमें लगी हुई देदीप्यमान
मौक्तियोंकी मालासे चिकनी नखोंकी पंक्तियोंसे जो सुशोभित हो रहे थे, तथा जिन्होंने

§ २७) तदानीं त्रिभुवनपतिः शस्त्रशोभितभुजेन स्वात्मना सृष्टानां क्षतत्राणधुरीणानां क्षत्रियाणां प्रजापालनशरणागतरक्षणादिकं, ऊरुभ्यां यात्रां प्रदर्श्य सृष्टानां वैश्यानां जलस्थलयात्रा-प्रवृत्तिं, पादाभ्यां सृष्टानां शूद्राणां वर्णोत्तमशुश्रूषां च यथाहंमुपदिश्य तद्वृत्तेरनतिक्रमाय दण्ड-मेवोदण्डसाधनं मन्यमानः, चतुःसहस्रमुकुटबद्धपरिवृतान् सोमप्रभर्ह्यकम्पनकाश्यपनामधेयान्महा-माण्डलिकान्नरपालान्मूर्धाभिषिक्तान्दण्डधरान्विधाय सोमप्रभस्य कुरुराजाभिधानं कुरुवंशाग्रगण्यतां च, हरेश्च हरिकान्तसमाह्वयं हरिवंशतिलकतां च, अकम्पनस्य पुनः श्रीधरनामधेयं नाथवंशमुक्ता-फलतां च, काश्यपस्य मधवाह्वयमुग्रवंशललामतां च प्रथयांचकार । ५

§ २८) प्रभुः कच्छमहाकच्छप्रमुखान्वसुधापतीन् ।

स्वाधिराजपदे देवः स्थापयामास सत्कृतान् ॥१९॥

निखिलभारो येन तथाभूतः, विश्वसृष्टा जगत्सृष्टा, स वृषभजिनेन्द्रः, नाभिराजस्य स्वजनकस्योपकण्ठे समीपे १०
इत्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रकृतिनिचयस्य प्रजासमूहस्य रक्षायास्त्राणस्य यत्नमभ्युपायं चकार कृतवान् । भालिनी
छन्दः ॥१८॥ § २७) तदानीमिति—प्रजापालनाभ्युपायचिन्तनवेलायां त्रिभुवनपतिवृषभेश्वरः, शस्त्रेण
शोभितो भुजो यस्य तथाभूतेन स्वात्मना स्वेन सृष्टानां रचितानां क्षतानां विपन्नानां त्राणे रक्षणे धुरीणानां
निपुणानां क्षत्रियाणां क्षत्रियवंशानां प्रजापालनं प्रकृतिसंरक्षणं शरणागतानां रक्षणं त्राणं च तदादिकं तत्प्रभृतिकं,
ऊरुभ्यां सक्थिभ्यां यात्रां गमनागमनं प्रदर्श्य सृष्टानां निर्मितानां वैश्यानां वैश्यवर्णानां जलस्थलयोर्नरभूमि- १५
तलयोः प्रवृत्तिं गतागतिं, पादाभ्यां चरणाभ्यां सृष्टानां रचितानां शूद्राणां शूद्रवर्णजानां वर्णोत्तमशुश्रूषां
क्षत्रियवैश्यवर्णजसेवां च यथाहं यथायोग्यं उपदिश्य निरूप्य, तद्वृत्तेस्तदीयव्यापारस्यानतिक्रमायानुल्लङ्घनाय
दण्डमेव उदण्डसाधनं समुत्कटसाधनं मन्यमानः स्वोक्तुर्वाणः चतुःसहस्रं ये मुकुटबद्धास्तैः परिवृतान् परिवेष्टितान्,
सोमप्रभश्च हरिश्च अकम्पनश्च काश्यपश्चेति सोमप्रभर्ह्यकम्पनकाश्यपास्ते नामधेयानि येषां तथाभूतान्
महामाण्डलिकान् महामण्डलेश्वरान् मूर्धनि अभिषिक्तान् कृतमस्तकाभिषेकान् दण्डधरान् दण्डधारकान् २०
प्राप्तदण्डाधिकारानिति भावः विधाय कृत्वा सोमप्रभस्य कुरुराजाभिधानं कुरुराजसंज्ञां, कुरुवंशस्य अग्रगण्यतां
प्रधानतां च, हरेश्च हरिकान्तेति समाह्वयो यस्य तं, हरिवंशस्य तिलकतां श्रेष्ठतां च, अकम्पनस्य पुनः
श्रीधरनामधेयं श्रीधरसंज्ञां नाथवंश एव वंशो वेणुस्तस्य मुक्ताफलतां मौक्तिकतां च, काश्यपस्य मधवाह्वयं
मधवेति नामधेयं उग्रवंशललामतां उग्रवंशाभरणतां च प्रथयांचकार रक्षयापयामास । § २८) प्रभुरिति—

समस्त भार धारण किया था ऐसे जगत्सृष्टा भगवान् आदि जिनेन्द्रने नाभिराजाके २५
समीप प्रजासमूहकी रक्षाका इस प्रकार उपाय किया ॥१८॥ § २७) तदानीमिति—उस समय
त्रिलोकेश्वर वृषभ जिनेन्द्रने शस्त्रसे शोभित भुजाके धारक अपने-आपके द्वारा रचे हुए तथा
विपत्तिग्रस्त जीवोंकी रक्षा करनेमें निपुण क्षत्रियोंका प्रजापालन और शरणागतरक्षण आदि
कार्य, जाँघोंके द्वारा यात्रा दिखलाकर रचे हुए वैश्योंका जल और स्थलमें गमनागमन कार्य,
तथा पैरोंसे रचे हुए शूद्रोंकी यथायोग्य उत्तम वर्णवालोंकी सेवा करना कार्य बतलाकर उन ३०
कार्योंका कोई उल्लंघन न कर सके इस अभिप्रायसे दण्डको ही उत्कृष्ट साधन मानते हुए,
चार हजार मुकुटबद्ध राजाओंसे परिवृत सोमप्रभ, हरि, अकम्पन और काश्यप नामक महा-
मण्डलेश्वर राजाओंका मस्तकाभिषेक कर उन्हें दण्ड देनेका अधिकारी निश्चित किया और
सोमप्रभका कुरुराज यह नाम रखकर उन्हें कुरुवंशका अग्रगण्य घोषित किया, हरिका
हरिकान्त नाम रखकर उन्हें हरिवंशका तिलक बतलाया, अकम्पनका श्रीधर नाम रखकर ३५
उन्हें नाथवंश रूप बाँसका मुक्ताफल—मोती सूचित किया और काश्यपका मधवा यह नाम
रखकर उन्हें उग्रवंशका आभरण प्रकट किया ॥ § २८) प्रभुरिति—सर्वसामर्थ्यवान् आदि-

§ २९) तदनु पुत्रानपि विचित्रवस्तुवाहनसंपदा संयोजयन्नयमादिदेवः सकलनराणामिक्षुरससंग्रहणघटनेनेक्ष्वाकुरिति, प्रजाजीवनोपायकल्पनेन प्रजापतिरिति, निजकुलोद्धरणेन कुलधर इति, काश्यपदवाच्यतेजःपरिपालनेन काश्यप इति, कृतयुगप्रारम्भस्यादिभूतत्वेनादिब्रह्मेत्यादिनामधेयानि निखिलजनकर्णरसायनानि प्रकटयामास ।

§ ३०) नाकाधीश्वरमौलिमौक्तिकमणोतारावलीसेवित-

प्रोद्यत्पादनखेन्दुबिम्बविततिलोकत्रयाधीश्वरः ।

दिव्यस्रग्मणिभूषणाम्बरधरः साकेतसिंहासना-

रूढः पुत्रकलत्रमित्रसहितः शास्ति स्म विश्वंभराम् ॥२०॥

§ ३१) तदा देवे पृथ्वीमवति घनसंपत्तिरभवत्

न वारिप्राचुर्यं तदपि भुवनेषु ववचिदभूत् ।

१०

- प्रभवतीति प्रभुः प्रकृष्टसामर्थ्योपेतः देवो वृषभेश्वरः, सत्कृतान्प्राप्तसत्कारान् कच्छमहाकच्छो प्रमुखौ येषु तान् तथाभूतान् वसुधापतीन् राज्ञः स्वाधिराजपदे निजोत्कृष्टराजस्थाने स्थापयामास नियोजयामास ॥१९॥
- § २९) तदन्विति—सष्टम् । § ३०) नाकेति—नाकाधीश्वराणां देवेन्द्राणां मौलिषु मुकुटेषु विद्यमाना मौक्तिकमणयो मुक्ताफलरत्नाम्येव तारा नक्षत्राणि तासामावल्या पङ्क्त्या सेविता प्रोद्यता समुदीयमानानां नखेन्दुबिम्बानां नखरचन्द्रमण्डलानां विततिः समूहो यस्य तथाभूतः, दिव्यानि स्वर्गसमुत्पन्नानि स्रग्मणिभूषणाम्बराणि मालामाणिश्चालंकारवस्त्राणि तेषां धरः, साकेतस्य अयोध्यानगरस्य सिंहासनेऽधिरूढः स्थितः, पुत्रमित्रकलत्रैः सुतस्त्रोसुहृज्जनैः सहितो युक्तः, लोकत्रयाधीश्वरः त्रिभुवनपतिः विश्वंभरां पृथिवीं शास्ति स्म पालयामास । रूपकालंकारः । शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥२१॥ § ३१) तदेति—तदा तस्मिन् काले देवे वृषभेश्वरे पृथ्वीं मेदिनीम् अवति रक्षति सति यद्यपि भुवनेषु लोकेषु घनसंपत्तिर्मेघसंपदा अभवत् किंतु वारिप्राचुर्यं जलाधिवयं ववचित् कुत्रापि नाभूदिति विरोधः परिहारपक्षे घनसंपत्तिः प्रभूतसंपत्तिरभूत् अरिप्राचुर्यं शत्रुबाहुल्यं न बाभूदिति । भयंभ्यो भीतिभ्यः स्वम् आत्मीयजनं त्रातर्यपि रक्षितर्यपि तस्मिन् अयं पीरो नागर-

- जिनेन्द्रने सत्कारको प्राप्त कच्छ, महाकच्छ आदि राजाओंको अपने राजाधिराजपदपर नियुक्त किया अर्थात् उन्हें श्रेष्ठराजा बनाया ॥१९॥ § २९) तदन्विति—तदनन्तर पुत्रोंको भी नाना-प्रकारकी वस्तुएँ तथा वाहन आदि सम्पत्तिसे युक्त करते हुए इन आदिजिनेन्द्रने, समस्त मनुष्योंको इक्षुरसके संग्रह करनेका उपदेश देनेके कारण इक्ष्वाकु, प्रजाके जीवित रहनेके उपायोंकी रचना करनेसे प्रजापति, अपने कुलका उद्धार करनेसे कुलधर, काश्यपदके वाच्य-भूत तेजकी रक्षा करनेसे काश्यप और कृतयुगके प्रारम्भके आदिकारण होनेसे आदि ब्रह्मा इत्यादि अपने नाम प्रकट किये । उनके वे सब नाम समस्त मनुष्योंके कानोंके लिए रसायनके समान थे । § ३०) नाकेति—इन्द्रोंके मुकुटोंमें संलग्न मोतियों तथा रत्नोंकी पंक्तिरूप ताराओंकी पंक्तियोंसे जिनके उदीयमान चरण नखरूप चन्द्रमण्डलका समूह सेवित हो रहा था, जो स्वर्गमें उत्पन्न माला, मणिभूषण और वस्त्रोंको धारण कर रहे थे, तथा जो पुत्र स्त्री तथा मित्र जनोंसे सहित थे ऐसे त्रिलोकीनाथ आदि जिनेन्द्रने अयोध्याके सिंहासनपर आरूढ़ हो पृथिवीका शासन किया था ॥२०॥ § ३१) तदेति—उस समय भगवान्‌के पृथिवीका पालन करते हुए यद्यपि लोकमें घनसम्पत्ति—मेघसम्पत्ति तो थी परन्तु कहीं भी जलकी प्रचुरता नहीं थी (परिहारपक्षमें घनसम्पत्ति—अत्यधिक सम्पत्ति तो थी परन्तु अरिप्राचुर्य—शत्रुओंकी अधिकता नहीं थी) और यद्यपि भगवान्‌ भयोंसे आत्मीयजनोंकी

भयेभ्यः स्वं त्रातर्यपि महितनीतिज्ञचतुरो

प्यनीतिः पौरोऽयं समजनि भयाढ्यश्च वत हा ॥२१॥

§ ३२) अथ कदाचन महास्थानमध्ये पूर्वाचलतटमिव पुटकिनीविटं, सिंहासनमलंकुर्वन्तं नृपशतपरिवृतं त्रिभुवनपतिमुपासितुमागतेन भर्तुर्विषयेषु विरतिमापादयितुमुद्यतेन पाकाहितेन प्रेरिता प्रक्षीणायुर्दशा नीलाञ्जनानाम सुरनर्तकी सविलासं नटन्ती सौदामिनीव क्षणाददृश्यता- १
माससाद ।

§ ३३) तदा सुरेन्द्रो रसभङ्गभीत्या प्रायुङ्क्त तस्याः सदृशं मनोजम् ।

पात्रान्तरं तुल्यविलासवेषं तथापि वेत्ति स्म तदेष देवः ॥२२॥

§ ३४) ततोऽस्य चेतसीत्यासीच्चिन्ता भोगाद्विरज्यतः ।

परां संवेगनिर्वेगभावनां समुपेयुषः ॥२३॥

१०

जनः महितनीतिज्ञेषु प्रशस्तनीतिज्ञातृषु चतुरो विदग्धोऽपि सन् अनीतिः नीतिरहितो बभूव किंच भयाढ्यः भयेन भीत्या आढ्यो भयाढ्यो भीतियुक्तः समजनि बभूव इति वत हा खेदस्य विषयः । इत्थं विरोधः परिहारपक्षे अनीतिः न विद्यन्त इतयो यस्य सः, भयाढ्यः भया कान्त्या आढ्यः सहित इति 'अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकः शलभः शुक्रः । अत्यासन्नाश्च राजानः पडेटा इतयः स्मृताः' । विरोधाभासः । शिखरिणीछन्दः ॥२१॥ § ३२) अथेति—कदाचन जातुचित् महास्थानमध्ये विशालसभामण्डपमध्ये पूर्वाचलतटं पूर्वादितं १५
पुटकिनीविटमिव कमलिनीवल्लभमिव सूर्यमिवेत्यर्थः, सिंहासनं मृगेन्द्रविष्टरम् अलंकुर्वन्तं शुम्भयन्तं नृपशतपरिवृतं बहुनृपतिपरीतं त्रिभुवनपतिं वृषभं जिनेन्द्रम्, उपासितुं सेवितुम् आगतेन विषयेषु पञ्चेन्द्रियभोग्यपदार्थेषु भर्तुः स्वामिनो विरक्तिं विरक्तिम् आपादयितुं प्रापयितुम् उद्यतेन तत्परेण पाकाहितेन पुरंदरेण प्रेरिता प्राप्तसंकेता प्रक्षीणायुर्दशा अल्पायुष्का नीलाञ्जना तन्नामधेया सुरनर्तकी देवतृत्यकारिणी सविलासं सविभ्रमं नटन्ती सौदामिनीव विद्युदिव क्षणात् अदृश्यतामनवलोकनीयताम् आससाद प्राप मृतेत्यर्थः । § ३३) तदेति—तदा २०
नीलाञ्जनाविलयवेलायां सुरेन्द्रः सौधमेन्द्रः रसभङ्गभीत्या रसविनाशभयेन तस्या नीलाञ्जनायाः सदृशं समानं मनोजं सुन्दरं तुल्यो सदृशो विलासवेषो यस्य तथाभूतं तत्सदृशविभ्रमनेपथ्ययुक्तं पात्रान्तरं अन्यत्पात्रं यद्यपि प्रायुङ्क्त प्रयुक्तं चकार तथापि एष देवो वृषभः तत् पात्रान्तरं वेत्तिस्म जानाति स्म । उपजातिवृत्तम् ॥२२॥ § ३४) ततोऽस्येति—तत्तदनन्तरं भोगाद् पाञ्चेन्द्रियविषयात् विरज्यतो विरक्तिं प्राप्तवतः परामुत्कृष्टां संवेगः संसाराद्भूतिः निर्वेग औदासीन्यं तयोर्भावनां समुपेयुषः प्राप्तवतः अस्य भगवतः चेतसि चित्ते २५

रक्षा करते थे तथापि यह नगरवासो जनसमूह प्रशस्तनीतिज्ञ जनोंमें चतुर होकर भी अनीति—नीतिसे रहित तथा भयाढ्य—भयोंसे युक्त था यह खेदकी बात थी (परिहारपक्षमें नीतिज्ञ होकर भी अनीति—अतिवृष्टि आदि ईतियोंसे रहित था तथा कान्तिसे सम्पन्न था ॥२१॥ § ३२) अथेति—तदनन्तर किसी समय महासभामण्डपके मध्यमें पूर्वाचलको सूर्यके समान सिंहासनको अलंकृत करनेवाले तथा सैकड़ों राजाओंसे घिरे हुए त्रिलोकीनाथकी सेवाके ३०
लिए आगत और इन्द्रियोंके विषयोंमें भगवान्को विरक्ति उत्पन्न करानेमें तत्पर इन्द्रके द्वारा प्रेरित अल्पायुष्क नीलाञ्जना नामकी देवनर्तकी विलास सहित नृत्य करती हुई बिजलीकी भाँति क्षणभरमें अदृश्यताको प्राप्त हो गयी । § ३३) तदेति—उस समय इन्द्रने रसभंगके भयसे यद्यपि उसीके समान सुन्दर तथा एक समान विलास और वेषको धारण करनेवाले दूसरे पात्रको नियुक्त कर दिया था तथापि यह भगवान् उसे जान गये ॥२२॥ § ३४) ततोऽस्येति—तदनन्तर भोगोंसे विरक्त हो संवेग और निर्वेगकी उत्कृष्ट भावनाको प्राप्त होनेवाले ३५

§ ३५) वातोद्धूतप्रसरविसरद्दीपतुल्यं शरीरं

लक्ष्मीरेषा विलसिततडिद्वल्लरीसंनिकाशा ।

संध्यारागप्रतिममुदितं यौवनं चातिलोल-

मेतत्सौख्यं पुनरिह पयोराशिबीचोविलोलम् ॥२४॥

§ ३६) देवी कार्चिद्वासवाज्ञावशेन नृत्यन्ती यन्नोरजाक्षी पुरस्तात् ।

याता देवादीदृशीं चेदवस्थां को वा लोके संसृती निर्व्यपायः ॥२५॥

§ ३७) विषराशिसमुपजातां लक्ष्मीं तु मन्दरागेण ।

पोयूषवाधिजातां मुग्धाः कलयन्त्यमन्दरागकरीम् ॥२६॥

§ ३८) नोरक्षीरनयेन यः परिणतो जीवस्य देहश्चिरा-

१० दाधारः सुखदुःखयोः स विलयं कालेन संयाति चेत् ।

इतोत्पन्ना चिन्ता विचारसंततिः आसीत् बभूव ॥२३॥ § ३५) वातेति—शरीरं वर्ष्म 'शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः । वातस्य पवनस्य उद्धूतप्रसरेण प्रचण्डवेगेन विसरन् विनाशोन्मुखो यो दीपस्तत्तुल्यं वर्तत इति शेषः, एषा दृश्यमाना लक्ष्मीः राज्यश्रीः विलसिता स्फुरिता या तडिद्वल्लरी विद्युल्लता तस्याः संनिकाशा सदृशी अस्तीति शेषः, उदितं प्रकटितं यौवनं च तारुण्यं च संध्यारागप्रतिमं सान्ध्यारुणिमतुलितं अतिलोलं

१५ अत्यन्तचलं 'लोलश्चलसत्तृणयोः' इत्यमरः, अस्तीति शेषः । इहास्मिन् संसारे पुनः एतत्सौख्यं समनुभूयमान-विषयसुखं पयोराशिबीचोव सागरतरङ्ग इव विलोलं चपलतरं वर्तत इति शेषः । उपमा । मन्दाक्रान्ताञ्छन्दः

॥२४॥ § ३६) देवीति—यत् यस्मात् कारणात् वासवाज्ञावशेन इन्द्रसमादेशनिघ्नत्वेन पुरस्तादपे नृत्यन्ती नटन्ती नोरजाक्षी कमललोचना काचित् कापि देवी मुरी देवात् नियतेः ईदृशीमित्थंभूताम् अवस्थां दशां चेत् याता प्राप्ता तर्हि समन्तात्सुतिर्भ्रमणं यस्मिन् तथाभूते लोके जगति निर्व्यपायो विनाशरहितः को वा । अपितु न

२० कोऽप्यस्ति । शालिनीछन्दः ॥२५॥ § ३७) विषेति—मुग्धा मूढाः 'मुग्धाः सुन्दरमूढयोः' इत्यमरः । मन्दरागेण मन्दप्रोत्था पक्षे मन्दराचलेन विषराशिसमुपजातां गरलराशिसमुत्पन्नां पक्षे जलराशिसमुत्पन्नां लक्ष्मीं श्रियं पोयूषवाधिजातां सुधासागरसमुद्भूतां अमन्दरागकरीं विपुलप्रोतिकरीं पक्षे अमन्दराचलकरीं कलयन्ति जानन्ति । श्लेषः ॥ आर्या ॥२६॥ § ३८) नीरेति—जीवस्य जन्तोः, यो देहः कायः नोरक्षीरनयेन जलदुग्धवत् परिणतः परस्परं मिश्रितः चिरात् चिरकालेन सुखदुःखयोः आधार आश्रयः अस्तीति शेषः, स

२५ भगवान् वृषभ जिनेन्द्रके मतमें इस प्रकारकी विचारधारा उत्पन्न हुई ॥२३॥ § ३५) वातेति—यह शरीर वायुके प्रचण्डवेगसे नष्ट होने के सन्मुख दीपके समान है, यह लक्ष्मी कौधती हुई बिजली रूपी लताके समान है, प्रकट हुआ यौवन सन्ध्याकी लालिमाके समान अत्यन्त चंचल है, और यह सुख समुद्रकी लहरके समान भंगुर है ॥२४॥ § ३६) देवीति—जिस कारण इन्द्रकी आज्ञासे सामने नृत्य करती हुई कमललोचना कोई देवी भाग्यवश यदि ऐसी

३० अवस्थाको प्राप्त हुई है तो सब ओर भ्रमण करना ही जिसका स्वभाव है ऐसे संसारमें विनाशसे रहित कौन है ? अर्थात् कोई नहीं है ॥२५॥ § ३७) विषेति—मूर्खलोग, मन्दराग—मन्दराचल (पक्षमें मन्दप्रोति) के द्वारा विषराशिसमुत्पन्नां—जलके समूहसे उत्पन्न (पक्षमें विषके समूह उत्पन्न) लक्ष्मीको अमृत समुद्रमें उत्पन्न तथा अमन्दरागकरी—बहुत भारी रागको करनेवाली (पक्षमें अमन्दराचलको करनेवाली) समझते हैं । भावार्थ—मूर्ख

३५ मनुष्योंकी बुद्धिको क्या कहा जावे क्योंकि वे विषसे उत्पन्न लक्ष्मीको अमृतसे उत्पन्न हुई समझते हैं और जो लक्ष्मी मन्दराग—अल्परागसे उत्पन्न होती है उसे वे अमन्दराग—बहुत भारी रागको उत्पन्न करनेवाली जानते हैं ॥२६॥ § ३८) नीरेति—जीवका जो शरीर दूध

बाह्ये पुत्रकलत्रमुख्यविभवे का वा मनीषाजुषा-

मास्थी किंतु विमोहचेष्टितमिदं बध्नाति सर्वं जनम् ॥२७॥

§ ३९) जन्तुः पापवशादवासनरको भुक्त्वातिदुःखं तत-

श्च्युत्वा कालवशेन याति विविधं तैरश्चदुःखं ततः ।

एवं दुःखपरम्परामतितरां भुक्त्वा मनुष्यः पुन-

र्जातश्चेत्स्वहिने मतिं न कुरुते तद्दुःखमात्यन्तिकम् ॥२८॥

§ ४०) एवं चिन्तयन्तं मुक्तिलक्ष्म्या संदिष्टाभिः समागताभिस्तत्तत्स्त्रीभिरिव विशुद्धिभिः समाश्रितान्तरङ्गं देवं बोधयितुं सारस्वतादित्यप्रमुखलौकान्तिकसुरपङ्क्तिर्मुकुटमणिघृणिभिर्निरभ्रेऽपि गगने पुरंदरचापलक्ष्मीमङ्कुरयन्ती मुकुलीकृतहस्तपल्लवा त्रिभुवनवल्लभमासाद्य प्रणम्य चेमां वाचमुवाच ।

५

१०

देहश्चेत् कालेन विलयं विनाशं प्राप्नोति तर्हि मनीषाजुषां मनीषिणां बाह्ये बहिर्भवे पुत्रकलत्रमुख्यविभवे सुतश्चोपभृतिविभूती का वा आस्था आदरबुद्धिः न कापोत्यर्थः किंतु इदं विमोहचेष्टितं अज्ञानविलासः सर्वं जनं निखिलं लोकं बध्नाति स्ववशं विदधाति ॥ शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥२७॥ § ३९) जन्तुरिति—जन्तुः प्राणी पापवशात् दुरितवशात् अवासनरकः प्राप्तस्वप्नः सन् अतिदुःखं तीव्रकष्टं भुक्त्वा ततो नरकात् च्युत्वा निर्गत्य कालवशेन विविधं नानाप्रकारं तिरश्चामिदं तैरश्चं तच्च तद् दुःखं चेति तैरश्चदुःखं तैर्यम्योनिजदुःखं याति प्राप्नोति ततस्तदनन्तरं एवं पूर्वोक्तां दुःखपरम्परां दुःखसंततिम् अतितरां नितरां भुक्त्वा पुनः पश्चात् चेत् यदि मनुष्यो जातः समुत्पन्नः सन् स्वहिते स्वश्रेयसि मतिं बुद्धिं न कुरुते तत् आत्यन्तिकं तीव्रं दुःखमस्तीति शेषः ॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥२८॥ § ४०) एवमिति—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण चिन्तयन्तं विचारयन्तं मुक्तिलक्ष्म्या निर्वृतिश्रिया संदिष्टाभिः प्राप्तसंदेशाभिः समागताभिः समायाताभिः तत्स्त्रीभिरिव मुक्तिलक्ष्मीसहचरीभिरिव विशुद्धिभिः प्राप्तवैराग्यभावनाभिः समाश्रितान्तरङ्गं संसेवितहृदयं देवं भगवन्तं बोधयितुं सारस्वतादित्यप्रमुखा या लौकान्तिकसुरपङ्क्तिः देव्यसंततिः साः 'सारस्वतादित्यवल्गुचरणगर्दतोयनुषिताव्यावाधारिष्ठाश्च' इत्यष्टविधा लौकान्तिकदेवा आगमे प्रसिद्धाः, मुकुटमणिघृणिभिः मौलिरत्नरश्मिभिः निरभ्रेऽपि घनरहितेऽपि गगने नभसि पुरंदरचापलक्ष्मीं शक्रगरासनश्रियम् अङ्कुरयन्ती प्रकटयन्ती, मुकुलीकृतहस्तपल्लवा कुड्मलीकृतकरकितलया सती त्रिभुवनवल्लभं त्रिजगदधीश्वरम् आसाद्य प्राप्य प्रणम्य नमस्कृत्य च इमां

१५

२०

और पानीके समान परस्पर मिश्रताको प्राप्त होता हुआ चिरकालसे सुख दुःखका आधार बना हुआ है वह भी यदि कालके द्वारा विनाशको प्राप्त हो जाता है तो बुद्धिमान मनुष्योंका फिर बाह्यभूत पुत्र तथा स्त्री आदि मुख्य वैभवमें कौन सी आदर बुद्धि हो सकती है ? अर्थात् कोई भी नहीं । फिर भी यह अज्ञानकी चेष्टा सब जीवोंको बाँध रही है—बन्धनमें डाल रही है ॥२७॥ § ३९) जन्तुरिति—यह जीव पापके वशसे नरकको प्राप्त होता है वहाँ बहुत भारी दुःख भोगकर कालके वशीभूत हो वहाँसे निकलकर तिर्यचोंके नाना दुःखोंको प्राप्त होता है । इस प्रकार अत्यन्त तीव्र दुःखोंकी परम्पराको भोगकर मनुष्य हुआ है और फिर भी आत्महितमें बुद्धि नहीं लगाता है तो अत्यन्त दुःखको उत्पन्न करता है ॥२८॥ § ४०) एवमिति—जो इस प्रकार विचार कर रहे थे, तथा मुक्तिरूपी लक्ष्मीके द्वारा सन्देश प्राप्त कर आयी हुई उसकी सखियोंके समान विशुद्धियोंसे जिनका अन्तरंग सेवित हो रहा था ऐसे वृषभ जिनेन्द्रको सम्बोधनके लिए सारस्वत आदित्य आदि लौकान्तिक देवोंकी पङ्क्ति मुकुट सम्बन्धी मणियोंकी किरणोंसे मेघशून्य आकाशमें भी इन्द्रधनुषकी शोभाको

२५

३०

३५

§ ४१) साधु देव ! हृदि साधु चिन्तितं संसृतिप्रकटदुःखमञ्जनम् ।
येन नाथ ! भवतो न केवलं किन्तु सर्वजगतां हितं कृतम् ॥२९॥

§ ४२) परिनिष्क्रमणस्य काललब्धिस्त्रिजगन्नाथ ! समीपमागता ते ।
अनुरक्तया समागमाय प्रियदूतो प्रहिता तपःश्रियेव ॥३०॥

५ § ४३) स्वयं सम्यग्ज्ञातत्रिविधहितमार्गोऽसि भगवन् !
न बोध्यो मादृक्षैरिति विदितमेव स्फुटतरम् ।
अथाप्याचारोऽयं चिरपरिचितो बोधनविधौ
तवाभ्यर्णोऽप्यस्मान्मुखरयति नाथ ! त्रिजगताम् ॥३१॥

§ ४४) धीरसस्य महावृद्धिं तन्वतो जलदस्य ते ।

१० प्रोयन्तां धर्मवृष्ट्याद्य भव्यचातकपोतकाः ॥३२॥

वक्ष्यमाणां वाचं वाणीम् उवाच जगाद । § ४१) साध्विति—हे देव ! हे नाथ ! साधु श्रेष्ठं, संसृतिप्रकट-
दुःखानां भञ्जनं नाशकरं यथा स्यात्तथा हृदि चेतसि साधु श्रेष्ठं चिन्तितं विचारितं येन चिन्तनेन हे नाथ !
हे स्वामिन् ! न केवलं मात्रं भवतस्तव हितं कल्याणं कृतं किन्तु सर्वजगतां निखिललोकानां हितं श्रेयः कृतं
विहितम् । रथोद्धतावृत्तम् ॥२९॥ § ४२) परिनिष्क्रमणस्येति—हे त्रिजगन्नाथ ! हे त्रिभुवनवल्लभ !
१५ समागमाय संयोगाय अनुरक्तया अनुरक्तताहेतोः तपःश्रिया तपोलक्ष्म्या प्रहिता प्रेषिता प्रियदूतोव प्रियदूतो
यथा परिनिष्क्रमणस्य तपःकल्याणस्य काललब्धिः तदर्थसमयप्राप्तिः ते तव समीपं निकटम् आगता समायाता ।
उत्प्रेक्षा ॥३०॥ § ४३) स्वयमिति—हे भगवन् ! त्वं स्वयं स्वतः सम्यक् स्फुटं ज्ञातो विदितः त्रिविधस्त्रि-
प्रकारो हितमार्गो कल्याणवर्त्म येन तथाभूतोऽसि मादृक्षैर्मादृशैः संयमानर्हेः बोध्यो बोधयितुं योग्यो नासि इति
स्फुटतरं स्पष्टतरं विदितमेव ज्ञातमेव, अथापि तथापि हे त्रिजगतां त्रिभुवनानां नाथ ! बोधनविधौ संबोधन-
२० कार्यं चिरपरिचितः चिराभ्यस्तः अयमाचारो व्यवहारः तव भवतः अभ्यर्णोऽपि निकटोऽपि अस्मान् लोकान्तिका-
मरान् मुखरयति वाचालयति । शिलरिणो छन्दः ॥३१॥ § ४४) धीरेति—धीरसस्य बुद्धिजलस्य महावृद्धिं
दीर्घविस्तारं तन्वतो विस्तारयतः अथवा धीरा गम्भीरा एव सस्यानि धान्यानि तेषां महावृद्धिं प्रभूतवृद्धिं
तन्वतो जलदस्य मेघस्य ते तव धर्मवृष्ट्या धर्मवर्षणेन अद्येदानीं भव्या एव चातकपोतका इति भव्यचातक-

प्रकट करती हुई हाथ जोड़कर त्रिलोकीनाथके पास आयी और प्रणाम कर निम्नप्रकार
२५ वचन कहने लगी । § ४१) साध्विति—हे देव ! ठीक, संसारके प्रकट दुःखोंको नष्ट करने-
वाला आपने हृदयमें ठीक विचार किया है, जिस विचारने हे नाथ ! न केवल आपका
हित किया है किन्तु समस्त जगत्का हित किया है ॥२९॥ § ४२) परिनिष्क्रमणस्येति—हे
त्रिलोकीनाथ ! दीक्षा कल्याणककी काललब्धि आपके समीप आयी है सो ऐसी जान पड़ती
है मानो समागमके लिए अनुरक्त होनेसे तपरूपी लक्ष्मीके द्वारा भेजी हुई मानो प्रियदूती
३० ही हो ॥३०॥ § ४३) स्वयमिति—हे भगवन् ! यद्यपि आप तीन प्रकारके हितकारी मार्गको
स्वयं ही अच्छी तरह जानते हैं अतः हमारे जैसे लोगोंके द्वारा सम्बोधनेके योग्य नहीं हैं यह
अच्छी तरह विदित ही है तो भी सम्बोधनेके विषयमें चिरकालसे परिचित यह आचार-
व्यवहार हे त्रिभुवनपते ! आपके निकटमें भी हम लोगोंको वाचालित कर रहा है ॥३१॥
§ ४४) धीरसस्येति—हे भगवन् ! आप बुद्धिरूपी जल अथवा गम्भीर मनुष्यरूपी धान्यकी
३५ अत्यधिक वृद्धिको करते हुए मेघस्वरूप हैं । आज आपकी धर्मवृष्टिसे भव्य जीवरूपी चातक-

§ ४५) परीषहभटोद्भूटां प्रबलकर्मसेनामिमां

विमोहपरिपालितां विमलसत्तपोवैभवात् ।

सुखेन जगतां पते ! जयतु जातरूपो भवान्

भजस्व च सुखोत्तरां विशदमोक्षलक्ष्मीं ततः ॥३३॥

§ ४६) इति बोधयित्वा कृतार्थेषु लौकान्तिकसुरसार्थेषु हंसेष्विव गगनाङ्गणमुत्पतितेषु १
कम्पितविष्टराः पुरंदरपुरःसराः सर्वेऽपि सुराः विलोकनलालसनिनिमेषलोचनं प्रासादविलसमान-
ललनाजनं निजवधूविशङ्कया विलोकमानाः साकेतपुरं प्रविश्य पुरुदेवस्य पयःपारावारनोराभिषेक-
पुरःसरं परिनिष्क्रमणकल्याणारम्भं विजृम्भयामासुः ॥

§ ४७) ततो देवः श्रीमान् महिबलयसाम्राज्यसरणी

तनूजानामाद्यं भरतमभिषिच्य प्रमदतः ।

युवाधीशं कृत्वा भुजबलिमुतं कीर्तिमहितं

समस्तैर्भूपालैः सह समतनोदुत्सवकलाम् ॥३४॥

१०

पोतका भव्यसारङ्गशिखरः प्रीयन्तां संतुष्टा भवन्तु ॥३२॥ § ४५) परीषहेति—हे जगतां पते ! लोकेश्वर !
जातस्यैव रूपं यस्य तथाभूतो दिग्म्बरो भवान् विमलसत्तपोवैभवात् निर्मलसमीचीनतपश्चरणसामर्थ्यात् १५
परीषद्वा एव भटा योद्धारस्तैर्दृष्टा बलिष्ठा तां, विमोहेन मिथ्यात्वेन परिपालितां परिरक्षिताम् इमामेतां
प्रबलकर्मसेनां बलवत्तरकर्मपूतनां सुखेन अनायासेन जयतु ततस्तदनन्तरं सुखोत्तरां सातप्रधानां विशदमोक्ष-
लक्ष्मीं निर्मलमोक्षश्रियं भजस्व सेवस्व । पृथ्वीछन्दः ॥३३॥ § ४६) इतीति—इतीत्यर्थं बोधयित्वा संबोध्य
कृतार्थेषु कृतकृत्येषु लौकान्तिकसुरसार्थेषु लौकान्तिकामरसमूहेषु हंसेष्विव मरालेष्विव गगनाङ्गणं नभोऽजिरम्
उत्पतितेषु समुद्भूतेषु सत्सु कम्पितविष्टरा वेपितासनाः पुरंदरपुरःसरा इन्द्रप्रमुखाः सर्वेऽपि निखिला अपि
सुरां निर्जराः विलोकनलालसनिनिमेषलोचनं दर्शनाभिलाषनिःस्पन्दनयनं प्रासादेषु हर्म्येषु विलसमानः २०
शोभमानो यो ललनाजनो नारोनिचयस्तं निजवधूविशङ्कया निजनारीसंदेहेन विलोकमानाः पश्यन्तः साकेत-
पुरमथोप्यानगरं प्रविश्य पुरुदेवस्य वृषभजिनेन्द्रस्य पयःपारावारस्य क्षीरसागरस्य नीरेण सलिलेन योऽभिषेको-
ऽभिषेकः स पुरस्सरो यस्मिस्तं परिनिष्क्रमणकल्याणारम्भं तपःकल्याणकारम्भं विजृम्भयामासुः वर्धयामासुः ।
§ ४७) तत इति—ततस्तदनन्तरं श्रीमान् श्रीसंपन्नो देवो वृषभजिनेन्द्रः, प्रमदतो हर्षात् 'मुत्प्रीतिः प्रमदो
हर्षः प्रमोदामोदसंमदाः' इत्यमरः । महोबलयस्य भूमण्डलस्य साम्राज्यसरणी साम्राज्यपथे तनूजानां पुत्राणाम् २५
आद्यं प्रथमं भरतम् अभिषिच्य कीर्तिमहितं यशस्विनं भुजबलिमुतं बाहुबलिनं युवाधीशं युवराजं कृत्वा

पक्षीके शिशु प्रसन्नताको प्राप्त ह्रीं ॥३२॥ § ४५) परीषहेति—हे जगत्पते ! आप निर्विकार
दिग्म्बर मुद्राके धारक होकर अत्यन्त निर्मल समीचीन तपके वैभवसे परीषद् रूपी योद्धाओं-
से बलिष्ठ तथा मिथ्यात्वके द्वारा सुरक्षित इस प्रबल कर्मरूपी सेनाको सुखसे जीतो और
उसके बाद सुखदायक निर्मल मोक्षरूपी लक्ष्मीका सेवन करो ॥३३॥ § ४६) इतीति—इस १०
प्रकार समझाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए लौकान्तिक देवोंके समूह जब हंसोंके समान
गगनांगणमें उड़ गये तब जिनके आसन कम्पित हो रहे थे ऐसे इन्द्र आदि सभी देव, देखने-
की इच्छासे टिमकाररहित नेत्रोंवाली, महलोंपर सुशोभित स्त्रियोंको अपनी स्त्रियोंकी शंकासे
देखते हुए अयोध्या नगरमें प्रविष्ट हुए और भगवान् वृषभदेवका क्षीरसागरके जलसे होने-
वाले अभिषेकको आदि लेकर दीक्षा कल्याणकका आरम्भ करने लगे । § ४७) तत इति— ३५
तत्पश्चात् श्रीमान् वृषभ जिनेन्द्रने भूमण्डलके साम्राज्य पथमें प्रथम पुत्र भरतका राज्याभिषेक

§ ४८) वितोर्णराज्यभारस्य विभोर्निजतनूजयोः ।

परिनिष्क्रमणोद्योगस्तदा जज्ञे निराकुलः ॥३५॥

§ ४९) तत्रोत्सवद्वन्द्वविजृम्भमाणकोलाहलोत्तालदिगन्तराले ।

शेषात्मजेभ्यश्च महीं विभज्य विश्राणयामास विभुः प्रहृष्टः ॥३६॥

५ § ५०) तदनु त्रिभुवनपतिः प्रसन्नमतिर्नाभिराजादीनापृच्छ्य नाकराजदत्तहस्तावलम्बो,
दीक्षाङ्गनापरिष्वङ्गमङ्गलशयनायमानं याप्ययानमारूढः सप्तपदानि भुवि भूपालैस्तथा सप्त पदानि

समस्तीनिखिलैः भूपालैर्नृपतिभिः सह उत्सवकलां उद्ववकलां समतनोत् विस्तारयामास । शिखरिणी छन्दः
॥३४॥ § ४८) वितोर्णति—तदा तस्मिन् काले निजतनूजयोः स्वसुतयोः भरतबाहुबलिनोः वितोर्णो राज्यभारो

येन तथाभूतस्य विभोरादिराजस्य परिनिष्क्रमणोद्योगः प्रव्रज्याप्रयासः निराकुलो व्यग्रतारहितः जज्ञे बभूव
१० ॥३५॥ § ४९) तत्रेति—उत्सवयोर्दीक्षाकल्याणकराज्याभिषेकमहयोर्वन्द्यं युगलं तस्मिन् विजृम्भमाणेन वर्ध-

मानेन कोलाहलेन कलकलशब्देन उत्तालानि उत्कटशब्दयुक्तानि दिगन्तरालानि काष्ठान्तराणि यस्मिन् तस्मिन्
तत्रायोध्यमानगरे प्रहृष्टः प्रकृष्टहर्षपितः विभुः शेषात्मजेभ्यः अवशिष्टान्यसुतेभ्यः विभज्य विभागं कृत्वा महीं
भूमिं विश्राणयामास ददौ । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥३६॥ § ५०) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं प्रसन्ना निर्मला

मतिर्मनीषा यस्य तथाभूतः त्रिभुवनपतिः लौकत्रयाधीश्वरो जिनेन्द्रः नाभिराजादीन् नाभिराजप्रभृतोन् आपृच्छ्य
१५ पृष्ट्वा नाकराजेन देवेन्द्रेण दत्तो हस्तावलम्बः कराभयो यस्य तथाभूतः सन्, दीक्षाङ्गनायाः प्रव्रज्यापुरन्ध्रयाः

परिष्वङ्गाय समालिङ्गनाय मङ्गलशयनायमानं मङ्गलशय्यावदाचरत्, याप्यमानं शिविकाम् आरूढः, सप्त
पदानि सप्तपदपर्यन्तं भुवि पृथिव्यां भूपालैः राजभिः तथा सप्तपदानि सप्तपदपर्यन्तं नभसि व्योमनि नभश्चरै-
विद्याधरैः, तदनु तदनन्तरं प्रेमवन्धुरैः प्रीतिनिभूतैः सुरासुरैश्च देवधरणेन्द्रैश्च निरुह्यमानो नोयमानः, तारा-
पथात् व्योमनः आपतन्त्या दीक्षाङ्गनायाः प्रव्रज्याकामिन्याः कटाक्षधारानुकारिण्या अपाङ्गसंततिविडम्बिन्या

२० सौरभ्यैः सौगन्ध्येन समाकृष्टा भृङ्गश्रेणिभ्रमरपङ्क्तिर्यया तथाभूतया पुष्पवृष्ट्या सुमनोवृष्ट्या व्याकीर्णो
व्याप्तः, सुरवन्दिसंदोहैरमरमागधमण्डलैः पापठचमाताः पुनःपुनरुच्चार्यमाणा ये मङ्गलारावाः मङ्गलशब्दास्तेः

करयशस्वी बाहुबलीको युवराज निश्चित किया तथा समस्त राजाओंके साथ उत्सवको
वृद्धिगत किया ॥३५॥ § ४८) वितोर्णति—उस समय अपने दोनों पुत्रोंपर जिन्होंने राज्यका

भार अर्पित कर दिया था ऐसे भगवान् प्रथम जिनेन्द्रका दीक्षा धारण सम्बन्धी उद्योग
२५ आकुलता रहित हुआ था ॥३५॥ § ४९) तत्रेति—दोनों उत्सवोंमें वृद्धिको प्राप्त होते हुए

कोलाहलसे जिसमें दिशाओंके अन्तराल अत्यन्त शब्दायमान हो रहे थे ऐसे उस अयोध्या
नगरमें बहुत भारी हर्षसे युक्त भगवान्ने विभाग कर शेष पुत्रोंके लिए भी पृथिवी प्रदान
की ॥३६॥ § ५०) तदन्विति—तदनन्तर निर्मल बुद्धिके धारक वृषभ जिनेन्द्र नाभिराजा
आदिसे पूछकर दीक्षारूपी स्त्रीके आलिङ्गनके लिए मंगलशय्याके समान आचरण करनेवाली

३० पालकीपर आरूढ़ हुए । पालकीपर चढ़ते समय इन्द्रने उन्हें अपने हाथका सहारा दिया
था । पालकीपर बैठते ही उन्हें सात कदम भूमिगोचरी राजा पृथिवीपर तथा आकाशमें
चलनेवाले विद्याधर सात कदम आकाशमें और उसके बाद प्रेमसे भरे हुए देव और
धरणेन्द्र उन्हें आकाशमें ले चले । उस समय वे आकाशसे पड़ती हुई उस पुष्प वृष्टिसे व्याप्त
हो रहे थे जो दीक्षारूपी स्त्रीकी कटाक्षपंक्तिका अनुकरण कर रही थी तथा सुगन्धिसे जिसने

३५ भ्रमरोंकी पंक्तिको आकृष्ट किया था । देववन्दियोंके समूहके द्वारा बार-बार तथा अत्यधिक
मात्रामें पढ़े गये मंगल शब्दोंसे युक्त प्रस्थान भेरीके भाँकार शब्दसे यह सूचित हो रहा था
मानो उन्होंने मोहरूपी शत्रुको जीतनेके लिए विजययात्रा ही प्रारम्भ की हो । आकाशमें उड़े

नभसि नभश्चरैस्तदनु प्रेयबन्धुरैः सुरासुरैश्च निरुह्यमानस्तारापथादापतन्त्या दीक्षाङ्गनाकटाक्ष-
धारानुकारिण्या सौरभ्यसमाकृष्टभृङ्गश्रेण्या पुष्पवृष्ट्या व्याकीर्णः, सुरवन्दिसंदोहपापठयमानमङ्गला-
रावसंगतप्रस्थानभेरीभाङ्कारेण संसूचितमोहारिविजययात्रः, नभःस्थलोड्डीनहंससहस्रशङ्काकरैः
सुरनिकरव्याधूयमानचामरैर्निलिम्पकरपङ्कजविधूतधवलातपत्रेण परिनिष्क्रमणविलोकनकौतुक-
समायातपूर्णन्दुबिम्बप्रतिबिम्बेन च सेव्यमानः, शोकानिलसमाघातवेपमानतनुलताभिः स्खलत्पद-
न्यासमनुव्रजन्तीभिः मूर्च्छामीलितनयनमधिधरणोपृष्ठं निपत्य कथंचिद्वृद्धधात्रीजनेन समुद्धृताभि-
रुत्कम्पस्तनयुगलावसस्तांशुकाभिर्विगलत्कचनिचयनिष्पतत्पुष्पमालाभिर्देवीभिर्मध्येमार्गं महत्तरैः
कञ्चुकिवरैर्निरुद्धाभिर्दूरादुदगतग्रीवं निरोक्ष्यमाणः शुद्धान्तमुख्याभिः परिवारिताभ्यां भर्तुरिच्छानु-
वर्तिनीभ्यां यशस्वतीसुनन्दाभ्यां मरुदेव्या चान्वीयमानो, नाभिराजभरतेश्वरबाहुबलिकच्छ-

संगतः सहितः प्रस्थानभेरीणां प्रयाणदुन्दुभीनां यो भाङ्कारोऽव्यक्तशब्दविशेषस्तेन संसूचिता सम्यग्निवेदिता १०
मोहारिविजययात्रा मोहशत्रुविजययात्रा येन तथाभूतः, नभःस्थले गगनतले उड्डीनानि समुत्पतितानि यानि हंस-
सहस्राणि मरालसहस्राणि तेषां शङ्काकरैः संशयोत्पादकैः सुरनिकरेण देवसमूहेन व्याधूयमानाः कम्प्यमाना ये
चामरा बालव्यजनानि तैः, परिनिष्क्रमणस्य दीक्षाकल्याणकस्थ विलोकनकौतुकेन दर्शनकुतूहलेन समायातं
समागतं यत् पूर्णन्दुबिम्बं पूर्णचन्द्रमण्डलं तस्य प्रतिबिम्बं सदृशं तेन निलिम्पकरपङ्कजेन देवपाणिपद्मेन विधूतं
यद् धवलातपत्रं शुक्लच्छत्रं तेन च सेव्यमानः समाराध्यमानाः, शोकानिलस्य शोकपवनस्य समाघातेन १५
वेपमाना कम्प्यमाना तनुलता शरीरवल्ली यासां ताभिः, स्खलन्तः पदन्यासाः चरणनिक्षेपा यस्मिन्कर्मणि यथा
स्यात्तथा अनुव्रजन्तीभिरनुगच्छन्तीभिः, मूर्च्छया मीलिते नयने यस्मिन्कर्मणि यथा स्यात्तथा मूर्च्छामीलितनयनं
अधिधरणोपृष्ठे महीतले निपत्य नितरां पतित्वा, कथंचित् केनापि प्रकारेण वृद्धधात्रीजनेन स्थविरोपमात्-
समूहेन समुद्धृताभिः समुत्थापिताभिः, उत्कम्पं कम्पनशीलं यत् स्तनयुगलं तस्मादवसस्तमवः पतितं अंशुकं
यासां ताभिः, विगलतः शिथिलोभवतः कचनिचयात् केशसमूहात् निष्पतन्त्यः पुष्पमालाः कुसुमस्रजो यासां २०
ताभिः, मध्ये मार्गं मार्गस्य मध्ये महत्तरैः प्रधानैः कञ्चुकिवरैः श्रेष्ठसौविदलैः निरुद्धाभिः अग्रे गन्तुं प्राप्त-
निषेधाभिः देवीभिः प्रधानराज्ञीभिः उदगता समुत्पातिता ग्रीवा गलो यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा निरोक्ष्य-
माणः समवलोक्यमानः, शुद्धान्तमुख्याभिः अन्तःपुरप्रधानाभिः परिवारिताभ्यां परिवेष्टिताभ्यां भर्तुः स्वामिनः
इच्छानुवर्तिनीभ्यां इच्छानुकूलप्रवर्तिनीभ्यां, यशस्वतीसुनन्दाभ्यां तन्नामपत्नीभ्यां मरुदेव्या नाभिराजपत्न्या च
अन्वीयमानः अनुगम्यमानः, नाभिराजश्च भरतेश्वरश्च बाहुबली च कच्छश्च महाकच्छश्चेति नाभिराज- २५

हुए हजारों हंसोंकी शंका करनेवाले, देव समूहके द्वारा कम्पित चामरों और देव समूहके
हस्तकमलके द्वारा धारण किये हुए उस सफेद छत्रसे जो कि दीक्षाकल्याणकको देखनेके
कौतूहलसे आये हुए पूर्ण चन्द्रबिम्बके समान जान पड़ता था, उनकी सेवा हो रही थी।
शोकरूपी वायुके आघातसे जिनकी शरीररूपी लता कम्पित हो रही थी, जो लड़खड़ाते
कदम रखती हुई पीछे-पीछे चल रही थीं, मूर्च्छासे नेत्र बन्द हो जानेके कारण जो पृथिवीतल ३०
पर गिर पड़ी थीं तथा वृद्ध धात्रीजनोंने जिन्हें किसी तरह ऊपर उठाया था, काँपते हुए स्तन
युगलसे जिनका वस्त्र नीचेकी ओर खिसक गया था, जिनके खुले हुए केशोंके समूहसे
फूलोंकी मालाएँ गिर रही थीं तथा प्रधान कञ्चुकियोंने जिन्हें बीच मार्गमें ही रोक दिया था
ऐसी रानियाँ उन्हें गर्दन उठाकर देख रही थीं। अन्तःपुरकी मुख्य स्त्रियाँ जिन्हें घेरे हुई
थीं तथा जो पतिको इच्छानुसार प्रवृत्ति करती थीं ऐसी यशस्वती और सुनन्दा तथा माता ३५
मरुदेवी उनके पीछे-पीछे चल रही थीं। इस तरह नाभिराज, भरतेश्वर, बाहुबली, कच्छ तथा

महाकच्छप्रधानपार्थिवैश्च निरीक्ष्यमाणपरिनिष्क्रमणः, साकेतपुरस्य नातिदूरे सिद्धार्थकवनोद्देशे, निरन्तरनिचिततरुनिकरनिष्पतत्पुष्पोपहारशोभिते, पुरंदरसुन्दरीकरारविन्दकल्पितरत्नचूर्णरङ्ग-
वलिविराजिते, सुरवाराङ्गनारब्धमङ्गलसंगीतमनोहरे, विशङ्कटपटपरिकल्पितमण्डपमण्डिते, पर्यन्त-
निहितविविधमङ्गलद्रव्यसंगते, पाण्डुकशिलातलविलासोपहासिनि, कस्मिंश्चित्चन्द्रकान्तशिलातले
५ गोर्वाणैर्दूर्वाभिवतारिताद्यानादवततार ।

§ ५१) क्षणं तत्र स्थित्वा नरसुरसभां स्निग्धमधुरैः

कटाक्षैः संभाव्य स्वजनमयमापृच्छद्य सहसा ।

सुरेन्द्रे संनद्धे परिचरति मध्येयवनिकं

स नैःसङ्ग्यं भेजे वसनमणिमाल्यानि विसृजन् ॥३८॥

१० § ५२) ततः पूर्वमुखं स्थित्वा कृतसिद्धनमस्क्रियः ।

तत्सर्वं विभुरत्याक्षीन्निर्व्यपेक्षं त्रिसाक्षिकम् ॥३९॥

- भरतेस्वरवाहुबलिकच्छमहाकच्छाः ते प्रधानाः प्रमुखा येषु तथाभूता ये पार्थिवा राजानस्तैः निरीक्ष्यमाणं
समवलोक्यमानं परिनिष्क्रमणं विरज्य निर्गमनं यस्य तथाभूतः, सन्, साकेतपुरस्य अयोध्यानगरस्य नातिदूरे
समीपस्थे सिद्धार्थकवनोद्देशे सिद्धार्थकाभिधानवनमध्ये, निरन्तरनिचितात् निर्व्यवधानसंगतात् तरुनिकरात्
१५ वृक्षसमूहात् निष्पतता पुष्पोपहारेण कुसुमोपायनेन शोभिते समलंकृते, पुरंदरसुन्दरीणामिन्द्राणीनां करारविन्दैः
पाणिपद्मैः कल्पिता रचिता या रत्नचूर्णरङ्गबलिस्तया विराजिते शोभिते, सुरवाराङ्गनाभिरप्सरोभिरारब्धं
प्रक्रान्तं यत् मङ्गलसंगीतं तेन मनोहरे रमणीये, विशङ्कटपटैर्धिशालवस्त्रैः परिकल्पितेन रचितेन मण्डपेन
आस्थानेन मण्डिते शोभिते, पर्यन्ते समीपे निहितानि स्थापितानि यानि विविधमङ्गलद्रव्याणि नानामङ्गल-
वस्तूनि तैः संगते सहिते, पाण्डुकशिलातलस्य विलासं शोभां उपहसतोत्येवं शीले कस्मिंश्चित् चन्द्रकान्तशिलातले
२० चन्द्रकान्तदृष्टले गोर्वाणैरमरैः उर्वीं पृथिवीम्, अवतारितात् प्रापितात् यानात् शिविकायाः अवततार अवतरति
स्म ॥ § ५१) क्षणमिति—सोऽयं जिनः तत्र शिलातले क्षणं स्थित्वा स्निग्धमधुरैः स्नेहपूर्णमनोहरैः कटाक्षैर-
पाङ्गैः नरसुरसभां मनुजामरसमिति संभाव्य संमान्य स्वजनमात्मीयजनं नाभिराजादिकमित्यर्थः आपृच्छद्य
आमन्त्र्य संनद्धे तत्परे सुरेन्द्रे सोधमन्त्रे परिचरति परिचर्यां कुर्वाणे सति, सहसा झटिति मध्येयवनिकं यवनिक-
काया मध्ये वसनमणिमाल्यानि वस्त्ररत्नसज्जो विसृजन् त्यजन् नैःसङ्ग्यं नैर्ग्रन्थं भेजे प्राप । शिखरिणी
२५ छन्दः ॥३८॥ § ५२) तत इति—ततस्तदनन्तरं पूर्वमुखं यथा स्यात्तथा स्थित्वा कृता सिद्धेभ्यो नमस्क्रिया

- महाकच्छ आदि राजा जिनके दीक्षाकल्याणकको देख रहे थे ऐसे भगवान् वृषभदेव,
अयोध्या नगरके समीपवर्ती सिद्धार्थकवनके मैदानमें चन्द्रकान्त मणिके किसी शिलातलपर
देवों द्वारा पृथिवीपर उतारी हुई पालकीसे नीचे उतरे । जिस शिलातलपर भगवान् उतरे
थे वह व्यवधान रहित एक दूसरेसे मिले हुए वृक्षसमूहसे गिरनेवाले फूलोंके उपहारसे
३० सुशोभित हो रहा था, इन्द्राणी द्वारा अपने करकमलसे रचित रत्नोंके चूर्णकी रंगबलिसे
शोभायमान था, अप्सराओंके द्वारा प्रारब्ध संगलमय संगीतसे मनोहर था, विशाल वस्त्रोंसे
निर्मित मण्डपसे सुशोभित हो रहा था, समीपमें रखे हुए नाना प्रकारके मंगलद्रव्योंसे सहित
था, और पाण्डुक शिलातलकी शोभाका उपहास कर रहा था । § ५१) क्षणमिति—वृषभ
जिनेन्द्रने वहाँ क्षणभर ठहर कर स्नेहपूर्ण मनोहर कटाक्षोंसे मनुष्य और देवोंकी सभाको
३५ सम्मानित किया तदनन्तर आत्मीयजनोंसे पूछकर सावधान इन्द्रके परिचर्यामें लीन रहते हुए
परदाके भीतर वस्त्र मणि तथा मालाओंका त्याग कर उन्होंने शीघ्र ही निर्ग्रन्थमुद्रा धारण कर

§ ५३) कर्मक्षमार्हमूलजालसदृशान्केशोत्करान्पञ्चधा

देवः कोमलपञ्चमुष्टिभिरसावुत्त्राय सदभावनः ।

चैत्रे मेचकपक्षके सुसमये शस्तोत्तराषाढमे

सायाह्ने नवमीदिने शुभगुणे जग्राह दीक्षां प्रभुः ॥४०॥

§ ५४) तदनु कुलिशायुधः कुतुकितमानसस्त्रिजगद्गुरोर्मूर्ध्नि निवासेन पावनान्विमल-
दुकूलप्रतिच्छन्ने पृथुलनूतनरत्नसमुद्गके स्थापितान् शशाङ्कबिम्बविलसितकलङ्कलेशसंकाशान्वितत-
पुण्डरीकसंगतभृङ्गसङ्घनिकाशान् श्यामलकोमलकेशानतिविभवेन नीत्वा पयःपायावारे समर्प-
यामास ।

§ ५५) तत्र किल सैवालकावलिर्विततया हिमालया विलसितमेचकरुचिरचिरा पूर्वतन-
सुवर्णवर्णशसंगात् कलशवाराशिसलिले सैवालकावलिर्बभूवेति न विचित्रमेतत् ॥

येन तथाभूतः कृतसिद्धपरमेष्ठिनमस्कारः विभुः वृषभजिनेन्द्रः त्रिसाक्षिकम् इन्द्रसिद्धात्मसाक्षिकं निर्व्यपेक्षं
निःस्पृहं यथा स्यात्तथा तत् पूर्वोक्तं सर्वं वस्त्रादिकम् अत्यासीत् तस्याज ॥३९॥ ५३) कर्मेति—सती
प्रशस्ता भावना यस्य तथाभूतः प्रभुः सामर्थ्यवान् असौ देवो वृषभो जिनेन्द्रः कर्मक्षमार्हस्य कर्मवृक्षस्य मूलजाल-
सदृशान् जटासमूहसंनिभान् पञ्चधा पञ्चप्रकारेण स्थितान् केशोत्करान् कचसमूहान् कोमलपञ्चमुष्टिभिः मृदुल-
पञ्चमुष्टिभिः उत्त्राय उत्पाट्य चैत्रे मासे मेचकपक्षके कृष्णपक्षे सुसमये प्रशस्तकाले शस्तोत्तराषाढमे शुभो-
त्तराषाढनक्षत्रे सायाह्ने सायंकाले शुभगुणे शुभगुणसहिते नवमीदिने नवमीतिथौ दीक्षां प्रव्रज्यां जग्राह
स्वीचक्रे ॥ शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥४०॥ § ५४) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं कुतुकितं कुतूहलाक्रान्तं मानसं
चित्तं यस्य सः कुलिशायुधो वज्रायुधः इन्द्र इत्यर्थः, त्रिजगतां गुरुस्त्रिजगद्गुरुस्तस्य भगवज्जिनेन्द्रस्य मूर्ध्नि
शिरसि निवासेन पावनान् पवित्रान् विमलदुकूलेन निर्मलक्षौमेण प्रतिच्छन्ने पिहिते पृथुलनूतनरत्नसमुद्गके
विशालनूतनरत्नकरण्डके स्थापितान् निवेशितान् शशाङ्कबिम्बे चन्द्रमण्डले विलसितः शोभितो यः कलङ्कलेशो
लाञ्छनलेशस्तस्य संकाशान् सदृशान् विततपुण्डरीके विकसितश्वेतसरोजे संगतो यो भृङ्गसङ्घो भ्रमरसमूह-
स्तस्य निकाशान् सदृशान् श्यामलकोमलकेशान् मेचकमृदुलमूर्धंरूहान् अतिविभवेन महतीत्सवेन नीत्वा पयः-
पायावारे क्षीरसागरे समर्पयामास चिक्षेप ॥ § ५५) तत्रेति—तत्र किल पयःपायावारे विततया विस्तृतया
अहिमालया सर्पपङ्क्त्या विलसिता शोभिता या मेचकरुचिः कृष्णकान्तिस्तया रुचिरा मनोहरा सा पुरंदरेण
निक्षिप्ता अलकावलिरिव केशपङ्क्तिरेव पूर्वतनः प्राक्कालिकः सुवर्णवर्णशस्य काञ्चनवर्णभगवतो यः सङ्गस्तस्मात्

ली ॥३८॥ § ५२) तत इति—तदनन्तरं पूर्वाभिमुख होकर उन्होंने सिद्धपरमेष्ठीको नमस्कार
किया फिर इन्द्र, सिद्ध तथा आत्माकी साक्षीपूर्वक बिना किसी इच्छाके समस्त परिग्रहका
त्याग किया ॥३९॥ § ५३) कर्मेति—प्रशस्त भावनासे सहित, सर्वसामर्थ्यवान् भगवान्
वृषभजिनेन्द्रने कर्मरूपी वृक्षकी जड़ोंके समान पाँच प्रकारके केशोंके समूहको कोमल
पंचमुष्टियोंसे उखाड़कर उत्तम उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें चैत्रकृष्ण नवमीके शुभदिन सायंकालके
समय दीक्षा ग्रहण की ॥४०॥ § ५४) तदन्विति—तदनन्तरं जिसका मन कुतूहलसे युक्त हो
रहा था ऐसे इन्द्रने त्रिलोकीनाथके मस्तकपर निवास करनेसे पवित्र, निर्मल रेशमी वस्त्रसे
आच्छादित विशाल नवीन रत्नमय पिटारेमें रखे हुए, चन्द्रमाके बिम्बमें स्थित कलंकके
खण्डोंके समान अथवा विकसित श्वेत कमलपर एकत्रित भ्रमर समूहके समान काले और
कोमल केशोंको बहुत भारी वैभवके साथ ले जाकर क्षीरसमुद्रमें समर्पित कर दिया ।
§ ५५) तत्रेति—जान पड़ता है कि विस्तृत सर्पोंकी मालाके समान सुशोभित काली कान्तिसे
सुन्दर बहू केशोंकी पंक्ति ही पहले सुवर्णके समान कान्तिवाले भगवान्का संग करनेसे

§ ५६) तत्रापितं कचकुलं कलशाम्बुराशिर्वीचीकरेण परिगृह्य तदादरेण ।

डिण्डीरखण्डकपटेन कृतादृहासो मोदाच्चलल्लहरिबाहुरयं ननर्त ॥४१॥

§ ५७) तत्र कौतुकेन विलोकमानानां नाकलोकजनानां मेचकरुचिरुचिरतत्कचनिचयेन कुत्रचित् शैवालपुञ्जपञ्जरित इव, क्वचिद्वातानीतजलधरखण्डमण्डित इव, एकत्र समुन्मीलित-

५ कुवलयकोरकित इव, परत्र पुरंदरमणिप्रभापरीत इव, अन्यत्रान्तःसंचरज्जलदेवताकबरीभरपरीत इव, कुत्रचन श्यामलपद्मगमेचकित इव कलशतटिनीविटश्चकासामास ।

§ ५८) ततः समागत्य मुदा मरुत्वान्स्तुत्वा च नत्वा च जिनेन्द्रपादौ ।

निलिम्पवर्गेः सह नाकलोकं जगाम सम्यक् स्मृततद्गुणौघः ॥४२॥

- कलशवाराशिसलिले क्षीरसागरजले शैवालिकावलिः जलनीलीपङ्क्तिः बभूव इति एतत् विचित्रं विस्मयावहं
- १० न ॥ § ५६) तत्रेति—तत्र पूर्वोक्तावसरे अपितं पुरंदरनिक्षिप्तं तत् कचकुलं केशसमूहं वीचीकरेण तरङ्गहस्तेन आदरेण सन्मानेन परिगृह्य स्वीकृत्य डिण्डीरखण्डकपटेन फेनशकलव्याजेन कृतादृहासः विहितसशब्दहासः अयं कलशाम्बुराशिः क्षीराग्निः मोदात् प्रमदात् चलल्लहरिबाहुः चलत्तरङ्गहस्तः सन् ननर्त नृत्यतिस्म । रूपकोत्प्रेक्षा ॥ वसन्ततिलका छन्दः ॥४०॥ § ५७) तत्र कौतुकेनेति—तत्रावसरे कौतुकेन कुतूहलेन विलोकमानानां पश्यतां नाकलोकजनानां देवानां कलशतटिनीविटः क्षीरसागरः, मेचकरुच्या श्यामलकान्त्या रुचिरो
- १५ मनोहरो यस्तत्कचनिचयो जिनेन्द्रकेशकलापस्तेन कुत्रचित्क्वापि शैवालपुञ्जेन जलनीलोसमूहेन पञ्जरित इव व्याप्त इव, क्वचित् कुत्रचित् वातानीतेन समीराकृष्टेन जलधरखण्डेन मेघशकलेन मण्डितः शोभित इव, एकत्र एकस्मिन् स्थले समुन्मीलितकुवलयकोरकित इव प्रकटितोत्पलकुड्मलव्याप्त इव, परत्र अन्यस्मिन् स्थाने पुरंदरमणौनामिन्द्रनीलमणीनां प्रभाभिः परीत इव व्याप्त इव, अन्यत्र अन्तर्मध्ये संचरन्तीनां जलदेवतानां कबरीभरेण घमिलसमूहेन परीत इव व्याप्त इव, कुत्रचन क्वापि श्यामलपद्मगमेः कृष्णसर्पेः मेचकित इव
- २० कृष्णवर्ण इव च चकासामास शुशुभे । उत्प्रेक्षा । § ५८) तत इति—मरुत्वानिन्द्रः मुदा हर्षेण ततः क्षीरसागरात् प्रत्यावर्त्य समागत्य जिनेन्द्रपादौ जिनराजचरणौ स्तुत्वा नत्वा नत्वा च नमस्कृत्य च सम्यक् सुष्ठु स्मृतोऽनुष्यातः तद्गुणौघो भगवद्गुणसमूहो येन तथाभूतः सन् निलिम्पवर्गेरमरसमूहः सह सार्धं नाकलोकं

क्षीरसमुद्रके जलमें शैवालकी माला हो गयी थी इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है ।

- § ५६) तत्रेति—उस समय इन्द्रके द्वारा समर्पित उस केशसमूहको आदरपूर्वक तरंगरूपी
- २५ हाथसे स्वीकृतकर फेनखण्डोंके कपटसे अदृहास करता हुआ यह क्षीरसागर हर्षवश चंचल-तरंग रूप भुजाओंसे मानो नृत्य ही कर रहा था ॥४१॥ § ५७) तत्र कौतुकेनेति—उस समय कुतूहलवश देखनेवाले देवोंके सामने यह क्षीरसागर, उस श्यामल केशोंके समूहसे कहीं तो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो शैवालके समूहसे व्याप्त हो हो, कहीं ऐसा जान पड़ता था मानो वायुके द्वारा लाये हुए मेघके खण्डोंसे ही सुशोभित हो रहा हो, कहीं ऐसा लगता
- ३० था मानो प्रकट हुई नील कमलोंकी बोंडियोंसे ही युक्त हो, कहीं ऐसा प्रतिभासित होता था मानो इन्द्रनील मणियोंकी प्रभासे ही व्याप्त हो, कहीं ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भीतर चलते हुए जलदेवताओंके केशपाशसे ही व्याप्त हो, और कहीं ऐसा मालूम होता था मानो काले सर्पोंसे ही काळा काला हो रहा हो । § ५८) तत इति—वहाँसे लौटकर इन्द्रने हर्षपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंकी स्तुति की, नमस्कार किया । तदनन्तर वह उन्हींके गुण समूहका

§ ५९) तदा किल कच्छमहाकच्छप्रमुखाश्चतुःसहस्रसंख्याता नरपालास्तरङ्गितकेवलद्रव्य-
लिङ्गाः परिवर्धितस्वामिभक्तिपरिष्वङ्गाः केवलं स्वामिभक्त्यैव दीक्षामभजन्त ।

§ ६०) अव्यक्तसंयममहीरमणैः परोतो

दीक्षालताविलसितो वृषभेश्वरोऽयम् ।

बालाङ्घ्रिपैः परिवृतस्य सुरद्रुमस्य

लक्ष्मीमसौ त्रिभुवनेकगुरुर्बभार ॥४३॥

§ ६१) अथ भरतनरेन्द्रो भक्तिसान्द्रो मुनीन्द्रं

सह भुजबलिमुख्यैः सोदरैः पूजयित्वा ।

तदनु तपनबिम्बे पश्चिमाशा प्रलम्बे

प्रभुरविशदयोध्यां स्वामिवाज्ञामलङ्घयाम् ॥४४॥

इत्यर्हद्वासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे सप्तमः स्तवकः ॥७॥

स्वर्गलोकं जगाम ययौ ॥४२॥ § ५९) तदेति—तदा किल भगवद्दीक्षाकल्याणकावसरे कच्छमहाकच्छो प्रमुखौ प्रषानी येषां तथाभूताः चतुःसहस्रसंख्याता नरपाला राजानः तरङ्गितं प्रकटितं केवलद्रव्यलिङ्गं मात्रद्रव्यवेषो यैस्तथाभूताः, परिवर्धितः समेधितः स्वामिभक्तिपरिष्वङ्गः प्रभुभक्तिसमाश्लेषो येषां ते, केवलं मात्रं स्वामिभक्त्यैव प्रभुभक्त्यैव दीक्षां प्रव्रज्याम् अभजन्त सिधेविरे दीक्षिता बभूवुरिति भावः । § ६०) अव्यक्तेति—अव्यक्तोऽप्रकटितः संयमो भावसंयमो येषां तथाभूता ये महोरमणा राजानस्तैः परोतः परिवृतः दीक्षा प्रव्रज्या एव लता वल्ली तथा विलसितो विशोभितः त्रिभुवनेकगुरुः त्रिजगदेकनाथः अयमसौ वृषभेश्वरः प्रथमतीर्थकरः बालाङ्घ्रिपैः बालवृक्षैः परिवृतस्य परिवेष्टितस्य सुरद्रुमस्य कल्पवृक्षस्य लक्ष्मीं शोभां बभार दधार । उपमा । वसन्ततिलका ॥४३॥ § ६१) अथेति—अथानन्तरं भक्तिसान्द्रो भक्तिनिबिडः भरतनरेन्द्रः भरतराजः भुजबलिमुख्यैर्बाहुबलिप्रधानैः सोदरैः सहोदरैः सह सार्धं मुनीन्द्रं मुनिराजं वृषभजिनेन्द्रमित्यर्थः पूजयित्वा समर्च्य तदनु तत्पश्चात् तपनबिम्बे सूर्यमण्डले पश्चिमाशाप्रलम्बे वरुणदिगवलम्बमाने सति स्वां स्वकीयाम् आज्ञामिव अलङ्घयामलङ्घनीयाम्, अयोध्याम् अविशत् साकेतं प्रविष्टवान् । मालिनोच्छन्दः ॥४४॥

इत्यर्हद्वासकृतेः पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती' समाख्यायां संस्कृतव्याख्यायां

सप्तमः स्तवकः समाप्तः ॥७॥

अच्छो तरह स्मरण करता हुआ देवनिकायोंके साथ स्वर्ग चला गया ॥४२॥ § ५९) तदेति—उस समय जिन्होंने पात्र द्रव्य लिंग धारण किया था और स्वामिभक्तिका आलिंगन जिनका बढ़ रहा था ऐसे कच्छ, महाकच्छ आदि चार हजार राजाओंने मात्र स्वामिभक्तिसे ही दीक्षा धारण की थी ॥ § ६०) अव्यक्तेति—जिनके भावसंयम प्रकट नहीं हुआ है ऐसे राजाओंसे घिरे हुए तथा दीक्षा रूपी लतासे सुशोभित, त्रिलोकीनाथ भगवान् वृषभ जिनेन्द्र छोटे-छोटे वृक्षोंसे परिवृत कल्पवृक्षकी शोभाको धारण कर रहे थे ॥४३॥ § ६१) अथेति—तदनन्तर प्रगाढ़ भक्तिसे युक्त राजा भरत बाहुबली आदि भाइयोंके साथ भगवान्की पूजा-कर जब सूर्य पश्चिम दिशाकी ओर ढल गया तब अपनी आज्ञाके समान अलङ्घनीय अयोध्यानगरीमें प्रविष्ट हुए ॥४४॥

इस प्रकार अर्हद्वासकी कृति पुरुदेवचम्पू प्रबन्धकी हिन्दी टीकामें

सप्तम स्तवक समाप्त हुआ ॥७॥

अष्टमः स्तवकः

§ १) तदनु कलितकायोत्सर्गः, प्रतिज्ञातषण्मासानशनः, समग्रैकाग्रतानिरुद्धान्तर्बाह्यकरण-
व्यापारः साकार इव धैर्यगुणो, मूर्त इव शमः, सुस्थिरनिश्चलाङ्गतयालेख्यलिखित इव विलसमानो,
निगूढाक्षरं किञ्चिदन्तर्जल्पाकारतया निगूढनिर्झरमुखरकन्दरो धराधर इव, सुगन्धिनिर्गतनिःश्वास-
गन्धाहृतपुष्पंधयपरीतलपनसविधप्रदेशतया बहिर्निष्कासिताशुद्धलेश्यांश इव दीक्षान्तरसमुद्भूत-
५ ज्ञानचतुष्टयजुष्टतया प्रदीपविशिष्टो मणिमयनिलय इव च लक्ष्यमाणः, संत्यक्तसर्वपरिग्रहोऽपि

§ १) तदन्विति—तदनु दीक्षाग्रहणानन्तरं कलितो धृतः कायोत्सर्गो येन तथाभूतः, प्रतिज्ञातः
षण्मासानशनः षण्मासोपवासो येन सः, समग्रा संपूर्णा या एकाग्रता तथा निरुद्धः स्थगितः अन्तर्बाह्यकरणानां
बाह्याभ्यन्तरेन्द्रियाणां व्यापारो येन सः, साकारः सशरीरः धैर्यगुण इव, मूर्तः साकृतिः शमः शान्तिगुण इव,
सुस्थिरं निश्चलं च अङ्गं यस्य तस्य भावस्तया आलेख्यलिखितचित्राङ्कित इव विलसमानः शोभमानः,
१० निगूढाक्षरमन्तर्निहितवर्णं यथा स्यात्तथा किञ्चित् मनाग् अन्तर्जल्पाकारतया अव्यक्तशब्दोच्चारणतत्परतया
निगूढनिर्झरेण गुप्तवारिप्रवाहेण मुखरा वाचाला कन्दरा गुहा यस्य तथाभूतो धराधर इव पर्वत इव, सुगन्धिः
शोभनगन्धयुक्तो यो निर्गतनिःश्वासस्तस्य गन्धेन आहूता आकारिता ये पुष्पंधया भ्रमरास्तीः परीतो व्याप्तो
लपनसविधप्रदेशो मुखाम्भर्णप्रदेशो यस्य तस्य भावस्तया बहिर्निष्कासिता या अशुद्धलेश्या कृष्णलेश्या तस्या
अंश इव, दीक्षान्तरं प्रव्रज्यानन्तरं समुद्भूतं समुत्पन्नं यज्ज्ञानचतुष्टयं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययरूपं तेन जुष्टतया
१५ सेविततया प्रदीपविशिष्टो दीपकसहितः मणिमयनिलय इव च रत्नमयभवनमिव च लक्ष्यमाणो दृश्यमाणः,
संत्यक्तः सर्वपरिग्रहो येन तथा भूतोऽपि सन् मुक्ताहारः मुक्तानां हारो यस्य तथाभूत इति विरोधः, सर्वदः
सर्वदायकः, अपत्यकान्तासक्तः पुत्रस्त्रीमोहयुत इति विरोधः स्वीकृतानि अनन्तवसनानि वस्त्राणि येन स
इति विरोधः विश्रुत्यता रणोत्थिता येऽरातयः शत्रवस्तेषां निग्रहे दमने तत्परश्च समुद्युक्तश्चेति विरोधः ।

§ १) तदन्विति—तदनन्तरं जिन्होंने कायोत्सर्ग मुद्रा धारण की थी, छह माहके
२० उपवासकी प्रतिज्ञा ली थी, समस्त प्रकारकी एकाग्रताके द्वारा जिन्होंने अन्तरंग और बहिरंग
इन्द्रियोंके व्यापारको रोक दिया था, जो आकार सहित धैर्य गुणके समान अथवा शरीर-
धारी शमगुणके समान जान पड़ते थे, समस्त शरीरके निश्चल होनेसे जो चित्रलिखितके
समान सुशोभित हो रहे थे, जो अक्षरोंको निगूढ़कर भीतर ही भीतर कुछ उच्चारण करनेसे
उस पर्वतके समान जान पड़ते थे जिसकी गुफा किसी गुप्त झरनेसे शब्दायमान हो रही हो,
२५ निकले हुए सुगन्धित श्वासकी गन्धसे आमन्त्रित भ्रमरोंसे मुखका समीपवर्ती स्थान व्याप्त
होनेसे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो अशुद्ध लेश्या—कृष्ण लेश्याके अंशोंको ही उन्होंने बाहर
निकाल दिया हो, दीक्षा लेनेके बाद ही प्रकट हुए चार ज्ञानोंसे युक्त होनेके कारण जो
उत्तम दीपोंसे सहित मणिमय भवनके समान जान पड़ते थे, समस्त परिग्रहका त्याग कर
देनेपर भी जो मुक्ताहार—मोतियोंके हारसे सहित थे (परिहार पक्षमें आहारके त्यागी थे),

मुक्ताहारः, सर्वदोषत्यकान्तासक्तः स्वीकृतानन्तवसनो विग्रहोत्थितारातिनिग्रहतत्परश्चेति राज्य-
लक्ष्मीपरिष्वक्त इव तपःश्रीवल्लभस्त्रिभुवनवल्लभः प्रचुराश्चर्यं दुश्चरं तपश्चचार ।

§ २) अयमथ तपःसिद्ध्या दृश्येतरातपवारण-

प्रकटितघनच्छायाऽप्युद्यत्परिच्छदनिःस्पृहः ।

वनघनतरुश्रेणोस्पन्दत्समोरणचञ्चल-

अवकिसलयै रेजे सच्चामरैरिव वीजितः ॥१॥

§ ३) एवं द्वित्रमासेषु किञ्चिद्दूनेषु गतेषु परोषहप्रभञ्जनप्रभञ्जितधृतयस्ते मुनिमानिनो
राजर्षयस्तस्य गुरोर्गंरोयसीं पदवीं, सिंहस्येव मृगशावकाः, गरुडस्येवेतरविहङ्गमाः, गन्तुमक्षमाः,

संयुक्तसर्वपरिग्रहस्य मुक्ताहारप्रभृतीनि विरुद्धानीति भावः, परिहारपक्षे मुषतस्त्यक्त आहारो भोजनं येन
तथाभूतः, सर्वदा सदा उपत्यकान्तेषु पर्वतासन्नप्रसुधान्तेषु आसक्तः, स्वीकृतमङ्गीकृतमनन्तमेव गगनमेव १०
वसनं वस्त्रं येन तथाभूतः, विग्रहोत्थिता शरीरोद्भूता येऽरातयः कामक्रोधादयस्तेषां निग्रहे तत्परश्चेति ।
राजलक्ष्म्या राज्यश्रिया परिष्वक्त इव समालिङ्गित इव तपःश्रीवल्लभस्तपोलक्ष्मीपतिः त्रिभुवनवल्लभ-
स्त्रिजगदधीश्वरो वृषभजिनेन्द्रः प्रचुराश्चर्यं विपुलाश्चर्ययुक्तं दुश्चरं दुःखेन चरितुं शक्यं दुश्चरं कठिनं तपः
चचार चरति स्म । § २) अयमिति—अथानन्तरं तपःसिद्ध्या तपश्चरणसमुद्भूतद्विप्रभावेण दृश्येतरा-
ऽदृश्यो य आतपवारणः छत्रं तेन प्रकटिता प्रादुर्भूता घनच्छाया तीव्रानातपो यस्य तथाभूतोऽपि उद्यत्परिच्छदे १५
प्रकटीभवत्परिकरे निःस्पृहः प्रीतिरहितः, अयं वृषभजिनेन्द्रः वनस्य गहनस्य घनतरुश्रेण्या सान्द्रमहीरुहसंतत्या
स्पन्दन् संचलन् यः समोरणो वायुस्ते वञ्चलन्तो नितरां संचलन्तो ये नवकिसलया नूतनपल्लवास्तैः सच्चामरैः
प्रशस्तबालव्यजनेः वीजितो व्याधूत इव रेजे शुशुभे । उत्प्रेक्षा । हरिणो छन्दः ॥१॥ § ३) एवमिति—
एवमित्यम् किञ्चिद्दूनेषु द्वौ वा त्रयो वा इति द्वित्राः ते च ते मासाश्चेति द्वित्रमासेषु गतेषु ससु परोषह एव
प्रभञ्जनस्तीव्रपवनस्तेन प्रभञ्जिता धृतियेषां तथाभूताः ते कच्छमहाकच्छादयो मुनिमानिनः आत्मानं मुनि २०
मन्यन्त इति मुनिमानिनः कृत्रिममुनयः राजर्षयः, गुरोर्वृषभेश्वरस्य शरीयसीं गरिष्ठां पदवीं पद्भति, मृगशावका
हरिणशिशवः सिंहस्येव मृगेश्वरस्येव, इतरविहङ्गमा अन्यपक्षिणो गरुडस्येव पक्षिराजस्येव, गन्तुं यातुम्

सर्वदोषत्यकान्तासक्त—सब कुछ देनेवाले तथा पुत्र और स्त्रियोंमें आसक्त थे (परिहारपक्षमें
सर्वदा—सदा पर्वतकी तलहट्टियोंमें आसक्त थे), स्वीकृतानन्तवसन—अनन्त वस्त्रोंको स्वीकृत
करनेवाले थे (परिहारपक्षमें आकाशरूपी वस्त्रको स्वीकृत करनेवाले थे) और विग्रहोत्थि- २५
तारातिनिग्रहतत्पर—युद्धमें खड़े हुए शत्रुओंका दमन करनेमें तत्पर थे (परिहारपक्षमें
शरीरमें उत्पन्न काम क्रोध आदि शत्रुओंका दमन करनेमें तत्पर थे) इस प्रकार जो राज्य-
लक्ष्मीसे आलिङ्गित हुएके समान जान पड़ते थे, तथा जो तपरूपी लक्ष्मीके स्वामी थे ऐसे
तीन जगत्के स्वामी भगवान् वृषभ जिनेन्द्रने बहुत भारी आश्चर्योंसे सहित कठिन तप किया
§ २) अयमिति—तदनन्तर तपकी सिद्धिके कारण अदृश्य छत्रके द्वारा बहुत भारी छायाके ३०
प्रकट होनेपर भी जो प्राप्त होनेवाले परिकरमें निःस्पृह थे ऐसे वे भगवान् वृषभ जिनेन्द्र,
वनकी सघन वृक्षावलीसे चलनेवाली वायुके द्वारा अत्यन्त चञ्चल पल्लवसे ऐसे सुशोभित हो
रहे थे मानो उत्तम चामरोंसे वीजित ही हो रहे हों अर्थात् उन पर उत्तम चामर ही ढोरे जा
रहे हों ॥२॥ § ३) एवमिति—इस प्रकार कुछ कम दो तीन माहोंके व्यतीत होने पर परोषह
रूपी आँधीके द्वारा जिनके धैर्य टूट गये थे ऐसे वे अपने आपको मुनि मानने वाले कच्छ, ३५
महाकच्छ आदि राजर्षि वृषभ जिनेन्द्रके मार्ग पर चलनेके लिए उस प्रकार असमर्थ हो
गये जिस प्रकार कि सिंहके मार्गपर चलनेके लिए हरिणके बच्चे और गरुडके मार्ग पर

नदीजलफलमूलाद्याहाराय प्रवृत्ताः, वनदेवताभिर्निषिद्धदिग्गम्बरवेषाः, केचन वल्कलवसनाः, केचन कौपीनधराः, परे भस्मोद्धूलिताङ्गाः, कतिचन जटाजटिलमस्तकाः, एकदण्डिनस्त्रिदण्डिनश्च भूत्वा, भरतराजर्षिभयेन तद्देशाभिवृत्य वनेषु कृतोत्तजाः प्रतिदिनं पुष्पादिभिर्विभूषितमेनं पुरुदेवं पूजयामासुः ।

५ § ४) मरीचिश्च श्रीमद्भरतनृपपुत्रो मुनिनिभ-

श्चिकीर्षुमिथ्यात्वप्रबलतरवृद्धिं गतमतिः ।

तदा योगं शास्त्रं कपिलमततन्त्रं च विदधे

जनोऽयं येनाद्य प्रभजति महामोहसरणीम् ॥३॥

§ ५) एवमेतेषु संवृत्तेषु निलिम्पगिरिरिव निष्कम्पः, पारावार इवाक्षोभो, वायुरिव निःसङ्गः,

१० आकाश इव निर्लेपस्तपोवैभवजृम्भितकान्तिनिराकृतनिशाकरदिवाकरः पुरुदेवः प्रकटसंयमकंकटक-स्त्रिगुप्तिपरिगुप्तो गुणसैनिकपरोतः कर्मारिविजिगीषुरासामास ।

अक्षमाः असमर्थाः सन्तः, नदीजलं च फलं च मूलं चेति नदीजलफलमूलानि तान्यादौ यस्य तथाभूतो य आहारस्तस्मै प्रवृत्तास्तत्पराः वनदेवताभिः वनाधिष्ठातृदेवैः निषिद्धो दिग्गम्बरवेषो येषां तथाभूताः, केचन केऽपि वल्कलवसना वृक्षत्वग्वस्त्राः, केचन कौपीनधरा लिङ्गवस्त्रधारकाः, परे भस्मना भूत्वा उद्धूलितमङ्गं

१५ येषां तथाभूताः, कतिचन जटाभिर्जटिलं व्याप्तं मस्तकं शिरो येषां तथाभूताः, एकदण्डिन एकदण्डयुक्ताः, त्रिदण्डिनः त्रिदण्डयुक्ता भूत्वा भरतराजाद्वयं तेन भरतेश्वरभीत्या तद्देशात् भरतपालितप्रदेशात् निवृत्य प्रत्यावृत्य वनेषु काननेषु कृतोत्तजा रचितपर्णशालाः, प्रतिदिनं प्रतिदिवसं विभूषितं वर्धमानशोभम् एनं पुरुदेवं वृषभनाथं पुष्पादिभिः कुसुमप्रभृतिभिः पूजयामासुः आनर्चुः । § ४) मरीचिश्चेति—श्रीमद्भरतनृपपुत्रः श्रीमद्भरतेश्वरसुतः, मुनिनिभो मुनिसदृशः, गतमतिर्गतबुद्धिः अतएव मिथ्यात्वस्य मिथ्यादर्शने या प्रबलतरा

२० सातिशया वृद्धिस्तां चिकीर्षुः कर्तुमिच्छुः मरीचिश्च तन्नामा च तदा भगवत्पञ्चरणकाले योगं शास्त्रं ध्यान-शास्त्रं कपिलमततन्त्रं च सांख्यसिद्धान्तं च विदधे चकार येन अयं जनो लोकः अद्येदानीं महामोहसरणीं तीव्रमिथ्यात्वमार्गं प्रभजति प्रकर्षेण सेवते । शिखरिणी छन्दः ॥२॥ § ५) एवमेतेष्विति—एतेषु कच्छमहा-कच्छादिषु एवं पूर्वोक्तप्रकारेण संवृत्तेषु सत्सु निलिम्पगिरिरिव सुमेरुरिव निष्कम्पो निश्चलः, पारावारः सागर इव अक्षोभः क्षोभरहितः, वायुरिव समोर इव निःसङ्गो निष्परिग्रहः, आकाश इव गगनमिव निर्लेपः

२५ चलनेके लिए अन्य पक्षी असमर्थ हो जाते हैं । वे नदियोंका जल तथा फल और मूल आदिक आहारके लिए प्रवृत्त हुए तो वनदेवताओंने उन्हें दिग्गम्बर वेषमें यह सब करनेके लिए मना कर दिया । तब कोई वल्कलोंको धारण करने वाले हो गये, कोई लंगोटको धारण करने वाले हो गये, किन्हींने शरीरको भस्मसे युक्त कर लिया, कितने ही जटाधारी बन गये, कोई एक दण्डके धारक हो गये और कोई तीन दण्डोंको धारण करनेवाले बन गये । भरतराजके

३० भयसे वे उनके देशसे वापस लौट कर वनोंमें ही शोषणियाँ बना कर रहने लगे और जिनकी शोभा निरन्तर बढ़ती जाती थी ऐसे इन भगवान् पुरुदेवकी पुष्प आदिके द्वारा प्रतिदिन पूजा करने लगे । § ४) मरीचिश्चेति—श्रीमान् भरत राजाका पुत्र मरीचि, जो मुनिके समान था वह बुद्धिसे अग्र हो जानेके कारण मिथ्यात्वकी अत्यधिक वृद्धिकी इच्छा करने लगा । फल-स्वरूप उसने उस समय उस योगशास्त्र और सांख्य सिद्धान्तकी रचना की जिसके कि द्वारा ३५ यह लोक आज भी महामोह—तीव्र मिथ्यात्वके मार्गको प्राप्त हो रहा है ॥२॥ § ५) एव-मिति—इस प्रकार इन सबका जब यह हाल रहा तब जो सुमेरुके समान निश्चल थे, समुद्र-

§ ६) जटीभूताः केशा विभुशिरसि संस्कारविरहा-
त्तदानीं ध्यानाग्निप्रतपनविशुद्धस्य बहुधा ।
स्वजीवस्वर्णस्योद्गतमलिनदोषा इव तथा
विरेजुर्निर्दग्धप्रसवशरधूमा इव च ते ॥३॥

§ ७) तदानीं तद्वनं वृषभेश्वरतपःप्रभावेण प्रशान्तपावनं बभूव ।

§ ८) कण्टकालग्नवालाग्रान् कोमलांश्चमरीमृगान् ।
कण्ठीरवाः स्वनखरैः कौतुकेन व्यमोचयन् ॥४॥

§ ९) पञ्चाननसुतं तत्र पिबन्तं जननीस्तनम् ।
करेणुपोताः कर्षन्ति क्रीडितुं कुतुकाञ्चिताः ॥५॥

संपर्करहितः तपोवैभवेन तपश्चरणसामर्थ्येन जूम्भिता वर्धिता या कान्तिर्दीप्तिस्तया निराकृतौ तिरस्कृतौ १०
निशाकरदिवाकरी चन्द्रसूर्यौ येन तथाभूतः पुरुषदेवो वृषभेश्वरः प्रकटसंयम एव कङ्कटकः कवचो यस्य सः,
त्रिगुप्तिभिर्मनोगुप्तिप्रभृतिभिः परिगुप्तः परिरक्षितः, गुणा एव सैनिकास्तैः परीतः परिवृतः सन्, कर्मारिविजि-
गीषुः कर्मशत्रुविजयोद्यतः आसामास आस्ते स्म । § ६) जटीभूता इति—तदानीं ध्यानावसरे विभुशिरसि
भगवन्मूर्धनि संस्कारस्य तैलकङ्कृतिकादिक्रियाजन्यस्य विरहादभावात् जटीभूता जटाकारेण परिणताः ते
प्रसिद्धाः केशाः कचाः बहुधा नैकधा ध्यानाग्नेर्ध्यानलस्य प्रतपनेन प्रकृष्टतापेन विशुद्धं निर्मलं तस्य १५
स्वजीव एव स्वर्णं भर्म तस्य उद्गता उत्थिता मलिना मलिनाकारा ये दोषास्तद्वत्, तथा अथवा निर्दग्धो
मस्मोक्तो यः प्रसवशरः कामस्तस्य धूमा इव धूमा इव च विरेजुः शुशुभिरे । रूपकोत्प्रेक्षा । शिखरिणी
छन्दः ॥३॥ § ७) तदानीमिति—तदानीं तस्मिन् काले तद्वनं तत्काननं वृषभेश्वरस्य तपसः प्रभावस्तेन
प्रशान्तं च तत् पावनं चेति प्रशान्तपावनं प्रशान्तपवित्रं बभूव । § ८) कण्टकेति—कण्ठीरवाः सिंहाः कण्ट-
काग्रेषु लग्ना, संसक्ता बालाग्राः कचाग्रभागा येषां तथाभूतान् चमरीमृगान् कौतुकेन कुतूहलेन स्वनखरैः २०
स्वनखैः व्यमोचयन् विमोचयामासुः ॥४॥ § ९) पञ्चाननेति—तत्र वने कुतुकाञ्चिताः कुतूहलमुक्ताः करेणु-
पोताः कलभाः जननीस्तनं मातृपयोधरं पिबन्तं घयन्तं पञ्चाननसुतं सिंहधावकं क्रीडितुं कर्षन्ति स्वाभिमुखं

के समान क्षोभ रहित थे, वायुके समान परिग्रह रहित थे, आकाशके समान निर्लेप थे, और
तपके वैभवसे बढ़ती हुई कान्तिके द्वारा जिन्होंने चन्द्रमा और सूर्यको तिरस्कृत कर दिया
था ऐसे भगवान् वृषभदेव, कर्मरूपी सेनाको जीतनेके लिए उत्सुक हो रहे थे । उस समय २५
प्रकट हुआ संयम ही उनका कवच था, वे तीन गुप्तियोंसे सुरक्षित थे तथा गुणरूपी सैनिकोंसे
घिरे हुए थे । § ६) जटीभूता इति—उस समय तैल, कंधी आदि संस्कारका अभाव होनेसे
जटारूपमें परिणत भगवान्के सिरके केश ऐसे जान पड़ते थे मानो अनेक प्रकारसे ध्यानरूपी
अग्निके संतापके द्वारा अत्यन्त शुद्ध हुए स्वकीय आत्मारूपी स्वर्णके ऊपरकी ओर उठे काले-
काले दोष ही हों अथवा जलाये हुए कामदेवके धूम ही हों ॥३॥ § ७) तदानीमिति—उस ३०
समय वह वन वृषभ जिनेन्द्रके तपके प्रभावसे अत्यन्त शान्त और पवित्र हो गया था
§ ८) कण्टकेति—जिनके बालोंके अग्रभाग काँटोंमें उलझ गये थे ऐसे कोमल चमरी मृगोंको
सिंह कुतूहल पूर्वक अपने नखोंसे छुड़ा रहे थे ॥४॥ § ९) पञ्चाननेति—वहाँ कौतूहलसे
सुशोभित हाथीके बच्चे माताका स्तन पीते हुए सिंहके पुत्रको खेलने के लिए खींच रहे थे

§ १०) एवं प्रशान्तपावने वने तपस्यतो भगवतः पादमूलमुपाश्रितौ सकलभुवनकमन ! त्वया पुत्रनप्त्रादिभ्यः साम्राज्यसंविभागकाले विस्मृतावावामद्य भोगप्रदानेनानुग्राह्याविति भगवन्त-
मनुबध्नन्तौ नमिविनमिनामधेयौ कच्छमहाकच्छनरपतितनयौ स्वासनकम्पविदितभगवद्वचानान्त-
रायो धरणेन्द्रः समागत्य, सोपायमिमौ समाश्वास्य, ताभ्यां सह विमानमारूढस्तापप्रकाशाभ्यां
५ तपन इव व्योममार्गेण प्रस्थितौ भगवत्कीर्तिपुञ्जमिव मूर्तिमन्तं रजतसानुमन्तमुपजगाम ।

§ ११) जम्बूद्वीपमहाम्बुजस्य लवणाम्भोराशिमध्येस्थिते-

स्तत्तत्क्षेत्रदलोज्ज्वलस्य सततं यो हंसवद्भासते ।

तस्याण्डा इव गण्डशैलनिकरा राजन्ति तत्राभितः

सानूविद्रुमवल्लिकाविलसितौ तद्रक्तपादाविव ॥६॥

- १० कर्तुं चेष्टन्ते ॥५॥ § १०) एवमिति—एवमित्थं प्रशान्तपावने वने तपस्यतः तपश्चरणं कुर्वतो भगवतो वृषभजिनेन्द्रस्य पादमूलं चरणमूलम् उपाश्रितौ प्राप्ता सकलभुवनकमन ! हे निखिलजगत्पते ! त्वया भवता पुत्रनप्त्रादिभ्यः पुत्रपौत्रप्रभृतिभ्यः साम्राज्यस्य संविभागकाले संविभागावसरे विस्मृतौ स्मृतिपथानागतौ आवाम् अद्य साम्प्रतं भोगप्रदानेन भोगसामग्रीदानेन अनुग्राह्यौ अनुग्रहोत्तुमर्हौ स्व इति शेषः, इतीत्थं भगवन्तं जिनेन्द्रम् अनुबध्नन्तौ पुनःपुनः प्रार्थयन्तौ नमिविनमिनामधेयौ कच्छमहाकच्छनरपतितनयौ स्वासनस्य निजविष्टरस्य कम्पेन कम्पनेन विदितो जातो भगवद्वचानस्यान्तरायो विष्टो येन तथाभूतो धरणेन्द्रो भवनामरेन्द्रः समागत्य सोपायं
१५ यथा स्यात्तथा इमौ नमिविनमौ समाश्वास्य संबोध्य, ताभ्यां सह विमानं व्योमयानम् अधिरूढोऽविष्टितः तापप्रकाशाभ्यां घर्मलोकाम्भ्यां तपन इव सूर्य इव व्योममार्गेण गगनवर्त्मना प्रस्थितः प्रयातः, मूर्तिमन्तं सशरीरं भगवत्कीर्तिपुञ्जमिव जिनेन्द्रयशोराशिमिव रजतसानुमन्तं विजयार्धगिरिम् उपजगाम ययौ ।
§ ११) जम्बूद्वीपेति—यो रजतसानुमान् लवणाम्भोराशिमध्ये स्थितिर्यस्य तस्य गालवमते वैभषिकपुंजद्भावः लवणोदमध्यः स्थितस्य तत्तत्क्षेत्राण्येव दलानि पत्राणि तैर्ज्ज्वलस्य शोभितस्य जम्बूद्वीपमहाम्बुजस्य जम्बूद्वीप-
२० महाकमलस्य सततं सदा हंसवद् मराल इव भासते शोभते, तत्र रजतसानुमति अभितः परितः गण्डशैलनिकराः स्थूलोपलसमूहाः, तस्य हंसस्य अण्डा इव राजन्ति शोभन्ते, विद्रुमवल्लिकाभिः प्रवाललतामिविलसितौ शोभितौ सानू दक्षिणोत्तरश्रेण्यौ तस्य हंसस्य रक्तपादाविव लोहितचरणाविव रेजाते । रूपकोपमालंकारः । शार्ङ्गल-

- ॥५॥ § १०) एवमिति—इस प्रकार प्रशान्त और पवित्र वनमें तपश्चरण करनेवाले भगवान्-
के चरणमूलमें आकर जो बार-बार प्रार्थना कर रहे थे कि 'हे सकल संसारके स्वामी ! पुत्र
२५ और पौत्रोंके लिए साम्राज्यका विभाग करते समय आपने हम दोनोंको बिलकुल मुला दिया । अब भोग प्रदान कर हम दोनोंको अनुगृहीत कीजिए' इस प्रकार भगवान्से अनुरोध करने-
वाले नमि और विनमि नामके धारक, कच्छ और महाकच्छ राजाके पुत्रोंको, अपने आसनके कम्पायमान होनेसे जिसने भगवान्के ध्यानमें विघ्न आया है यह जान लिया था ऐसे धरणेन्द्रने आकर उपाय पूर्वक समझाया तथा उनके साथ विमानपर आरूढ होकर ताप और
३० प्रकाशके साथ सूर्यके समान आकाशमार्गसे चलकर वह उस विजयार्ध पर्वतके समीप पहुँचा जो कि भगवान् जिनेन्द्रके मूर्तिधारी यशःसमूहके समान जान पड़ता था ।
§ ११) जम्बूद्वीपेति—वह विजयार्धपर्वत निरन्तर लवण समुद्रके मध्यमें स्थित तथा तत्तत् क्षेत्ररूपी कलिकाओंसे सुशोभित जम्बूद्वीप रूपी महाकमलके हंसके समान सुशोभित हो रहा था, उस पर्वतपर जो चारों ओर गोलाकार बड़े-बड़े पाषाणोंके समूह विद्यमान थे वे उस
३५ हंसके अण्डोंके समान सुशोभित हो रहे थे और मूँगाकी लताओंसे सुशोभित उत्तर दक्षिण

§ १२) तद्भूधरशिखरालंकारं परार्ध्यपुरं प्रविश्य फणीश्वरः सकलविद्याधरभूपालानाम-
नयोर्विद्याधरराज्यलक्ष्मीसमर्पणे भगवदनुमतिरिति प्रकटयित्वा; दक्षिणश्रेणिसाम्राज्ये नमिमुत्तर-
श्रेणिसाम्राज्ये च विनमि विद्याधरोकरधृतैः कनककुम्भैरभिषेच ।

§ १३) एतौ खचरभूमिशमुकुटारूढशासनौ ।

शासतः स्म धरां धीरो विद्यासिद्धिमुपेयुषौ ॥७॥

§ १४) ततः श्रीमान् लेखाचल इव परं निश्चलतनू-

रतीतः षण्मासांश्चिरविहितयोगात्तु विरमन् ।

शरीरस्थित्यर्थं विहितमतिराहारममलं

समाहृतुं प्रायात्प्रयितयतिचर्याप्रकटनः ॥८॥

§ १५) तदनु देवदेवे निर्दोषविष्वगणान्वेषणाय पुराकरग्राममडम्बादिषु विहरमाणे, भगवत्पाद-
पयोजविन्यासस्थलीं शिरसा प्रणमन्तः केचन देव ! प्रसोद किं कृत्यमिति पृच्छां चक्रुः, परे च

विक्रीडितं छन्दः ॥६॥ § १२) तद्भूधरेति—तद्भूधरशिखरस्य विजयार्धमहोदधेश्चक्रस्थालंकारं भूषण-
स्वरूपं परार्ध्यपुरं तन्नामनगरं प्रविश्य फणीश्वरो धरणेन्द्रः सकलविद्याधरभूपालानां निखिलखगेश्वराणां अग्रे,
अनयोर्नमिवितम्योः विद्याधरराज्यलक्ष्म्याः समर्पणे प्रदाने भगवदनुमतिर्वृषभजिनेन्द्राज्ञा अस्ति इति प्रकटयित्वा
निवेद्य दक्षिणश्रेणिसाम्राज्ये नमिम्, उत्तरश्रेणिसाम्राज्ये च विनमि विद्याधरोकरधृतैः खचरोकरस्थापितैः
कनककुम्भैः काञ्चनकलशैः अभिषेच स्वपयामास । § १३) एताविति—खचरभूमिशानां विद्याधर-
नरेन्द्राणां मुकुटारूढं शासनं यद्योस्तौ, विद्यासिद्धिम् उपेयुषौ प्राप्ता एतौ धीरो नमिवितमो धरां भूमिं शासतः
स्म पालयतः स्म 'शासतः' इति प्रयोगोऽपाणिनीयः ॥७॥ § १४) तत इति—ततस्तदनन्तरं लेखाचल इव
सुमेरुरिव परं सातिशयं निश्चला स्थिरा तनूः शरीरं यस्य तथाभूतः, षण्मासान् अतीतः अतिक्रान्तः चिर-
विहितयोगात् दीर्घकालकृतध्यानात् विरमन् विरतो भवन्, शरीरस्थित्यर्थं देहस्थितिप्रयोजनात् विहिता मतिर्येन
स कृतविचारः, प्रथिता प्रसिद्धा या यतिचर्या मुनिचर्या तस्याः प्रकटनः प्रकटयिता श्रीमान् वृषभेश्वरः अमलं
निर्दोषम् आहारं समाहृतुं प्राप्तुं प्रायात् प्रययौ । शिखरिणी छन्दः ॥८॥ § १५) तदन्विति—ततस्तदनन्तरं
देवदेवे भगवति निर्दोषविष्वगणस्य निर्दोषाहारस्यान्वेषणं मार्गणं तस्मै पुराकरग्राममडम्बादिषु विहरमाणे
विहरति सति, भगवतो वृषभेश्वरस्य पादपयोजयोज्येश्वरकमलयोज्यविन्यासस्य निक्षेपस्य स्थलीं भूमिं शिरसा

श्रेणियाँ उस हंसके लाल-लाल पैरोंके समान जान पड़ती थीं ॥६॥ § १२) तद्भूधरेति—
धरणेन्द्रेने उस पर्वतके शिखरके अलंकार स्वरूप परार्ध्यपुर नामक नगरमें प्रवेश कर समस्त
विद्याधरोंके आगे यह प्रकट किया कि इन दोनोंके लिए विद्याधरसम्बन्धी राज्यलक्ष्मीके समर्पण
करनेमें भगवान्की अनुमति है । इस प्रकार प्रकट कर उसने दक्षिणश्रेणीके साम्राज्यमें नमिका
और उत्तर श्रेणीके साम्राज्यमें विनमिका विद्याधरियोंके हाथोंमें स्थित सुवर्णकलशोंके द्वारा
अभिषेक किया । § १३) एताविति—जिनका शासन विद्याधरराजाओंके मुकुटोंपर आरूढ था
तथा जो विद्याओंकी सिद्धिको प्राप्त थे ऐसे धीर-धीर नमि और विनमि पृथिवीका पालन करने लगे
॥७॥ § १४) तत इति—तदनन्तर सुमेरु पर्वतके समान जिनका शरीर अत्यन्त निश्चल था
ऐसे भगवान् वृषभजिनेन्द्र छह मास व्यतीत कर चिरकालसे धारण की हुई ध्यान मुद्रासे विरत
हुए, शरीरकी स्थितिके लिए उन्होंने विचार किया और प्रसिद्ध मुनिचर्याको प्रकट करते हुए
वे निर्दोष आहार प्राप्त करनेके लिए गमन करने लगे । § १५) तदन्विति—तदनन्तर देवाधि-
देव भगवान् जब निर्दोष आहारको प्राप्त करनेके लिए पुर, आकर, ग्राम तथा मडम्ब आदिमें

परार्ध्यरत्नानि समानीय पुरतः परिकल्पयामासुः, अन्ये च वस्तु, वाहनादिकं विभोरढौकयन्त, परे तु भूषणगणललिताङ्गीर्लताङ्गीः परिणाययितुं देवं प्रार्थयामासुः, केचन स्वादुतरमाहारं मज्जन-सामग्रा सह समानीय संगृहाणेति विज्ञापयामासुः ।

§ १६) एवं मोहवशाद्यथामति जनेष्वारम्भमाणेष्वयं

५

तूष्णींभावमुपाश्रितो मुनिवरश्चर्या परामाश्रितः ।

विघ्ने तत्र विजृम्भितेऽप्यविकृतप्राज्यप्रसीदन्मनाः

षण्मासानतिवाह्य पूर्णमकरोत्संवत्सरान्तं प्रभुः ॥१॥

§ १७) तदा खलु कुहजाङ्गलविषयविशेषकायमाणहस्तिनापुरपालककुरुवंशतिलकसोम-प्रभानुजः स्वयंप्रभाश्रीमत्यायास्वयंप्रभदेवकेशवमहोशाच्युतप्रतीन्द्रघनदेवचरः सर्वार्थसिद्धितः

- १० मूर्ध्ना प्रणमन्तो नमस्कुर्वन्तः केचन हे देव ! हे स्वामिन् ! प्रसीद प्रसन्नो भव, किं कृत्यं कार्यमस्ति । इति पृच्छन् चक्रुः प्रश्नं विदधुः । परे च परार्ध्यरत्नानि श्रेष्ठरत्नानि समानीय पुरतः अग्रे परिकल्पयामासुः निदधुः, अन्ये च वाहनादिकं यानादिकं वस्तु सामग्रीं विभोः स्वामिनः अढौकयन्त प्रापयन्ति स्म, परे तु अन्ये तु भूषणगणनालंकारनिचयेन ललितं मनोहरमङ्गं यासां ताः लताङ्गीर्वधूः परिणाययितुं विवाहयितुं देवं प्रार्थयामासुः केचन स्वादुतरमतिस्वादिष्टम् आहारं भोजनसामग्रीं मज्जनसामग्र्या स्नानोपकरणैः सह समानीय संगृहाण स्वीकुरु इति विज्ञापयामासुः निवेदयन्ति स्म । § १६) एवमिति—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जनेषु लोकेषु मोहवशादज्ञानवशात् ययामति स्वनुद्वचनुसारम् आरम्भमाणेषु आरम्भं कुर्वाणेषु अत्र घातोर्नुमागम-विचिन्त्यः । तूष्णींभावं मौनवृत्तिम् उपाश्रितः प्राप्तः परां श्रेष्ठां चर्यां यतिप्रवृत्तिम् आश्रितः प्राप्तवान्, तत्र चर्यायां विघ्नेऽन्तराये विजृम्भितेऽपि वधितेऽपि अविकृतं विकाररहितं प्राज्यप्रसीदच्च मनश्चित्तं यस्य तथाभूतः मुनिवरो यतिश्रेष्ठः अयं प्रभुः वृषभेश्वरः षण्मासान् अतिवाह्य व्यपगमय्य संवत्सरान्तं वर्षान्तं पूर्णम् अकरोत् ।
- २० षण्मासावधिर्योगो धृतः षण्मासाश्च भ्रमतो व्यतीता इत्यमेको वर्षः पूर्णोऽभवदित्यर्थः । § १७) तदेति—तदा खलु तस्मिन्काळे कुहजाङ्गलविषयस्य कुहजाङ्गलदेशस्य विशेषकायमाणं तिलकायमाणं यद् हस्तिनापुरं तस्य पालको रक्षकः कुरुवंशतिलको यः सोमप्रभस्तस्यानुजो लघुसहोदरः स्वयंप्रभाललिताङ्गदेवी, श्रीमती वज्रजङ्घभार्या, आर्या भोगभूमिजा, स्वयंप्रभदेवः केशवमहोशः, अच्युतप्रतीन्द्रः घनदेवः इत्येषां द्वन्द्वस्ततो

- २५ विहार करने लगे तब भगवान्के चरणकमलोंकी निक्षेपभूमिको अर्थात् जहाँ भगवान्के चरण पड़ते थे उस भूमिको सिरसे प्रणाम करते हुए कितने ही लोग यह पूछते थे कि हे देव ! प्रसन्न होइए, क्या कार्य है । कितने ही लोग श्रेष्ठ रत्न लाकर उनके सामने रखने लगे । कितने ही लोग सवारी आदि वस्तुएँ लाकर उनके सामने रखने लगे । कितने ही लोग आभूषणोंके समूहसे अलंकृत शरीरवाली वधुओंको विवाहनेकी प्रार्थना करने लगे और कितने ही लोग स्नानकी सामग्रीके साथ अत्यन्त स्वादिष्ट आहार लाकर कहने लगे कि
- ३० इसे स्वीकृत कीजिए । § १६) एवमिति—इस प्रकार अज्ञानवश जब लोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार आरम्भ कर रहे थे तब उत्कृष्ट चर्याको प्राप्त हुए यह मुनिराज मौन धारण कर विहार करते थे । चर्यामें विघ्न आनेपर भी जिनका मन विकार रहित तथा अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था ऐसे भगवान्ने छह मास व्यतीत कर एक वर्ष पूर्ण किया । अर्थात् छह मासका योग उन्होंने लिया था और छह मास भ्रमण करते हुए व्यतीत हो गये इस प्रकार
- ३५ आहारका त्याग किये हुए उन्हें एक वर्ष हो गया ॥१॥ § १७) तदेति—उस समय जो कुरु-जांगल देशके तिलकके समान आचरण करनेवाले हस्तिनापुर नगरके रक्षक तथा कुरुवंशके तिलक राजा सोमप्रभका छोटा भाई था तथा वर्तमान भवके पूर्व जो स्वयंप्रभा, श्रीमती,

समागत्यात्र संजातः परमश्रेयो निदानतया श्रेयानिति विख्यातः सोऽयं निशायाः पश्चिमे यामे समुत्तुङ्गसुमेरुं, शाखाग्रलम्बिभूषणभूषितं कल्पतरुं, विद्रुमपल्लवारुणकेसरं केसरिणं, शृङ्गाग्र-लग्नमृत्स्रं वृषं, स्फुरत्कान्तिमनोहरौ दिवाकरनिशाकरो, चलाचलवीचिविशालं पारावारं, अष्टमङ्गलधारीणि भूतरूपाणि च स्वप्ने विलोकयामास ।

§ १८) ततः प्रभाते परितुष्टचित्तः श्रेयानयं संसदि वर्तमानम् ।

सोमप्रभं प्राप्य सुरेशतुल्यं स्वप्नान्यथावत्कथयांबभूव ॥१०॥

§ १९) तदनु सोमप्रभेण वीक्षितवदनारविन्दः सुरगुरुप्रतिच्छन्दः पुरोधाः सुराद्रिदर्शनेन तद्वदुत्तुङ्गः परमपुरुषो भवत्सदनमलंकरिष्यत्यन्ये च स्वप्नास्तद्गुणोन्नतिं सूचयन्त्यस्माकं तु महत्तरकीर्तिलाभादिसंपदां निदानभूतः पुण्योदयः कुमारश्चायं तत्त्वविदिति प्रतिपादयास ।

भूतपूर्वार्थे चरट् प्रत्ययः सर्वार्थसिद्धितः तन्नामानुत्तरविमानात् समागत्य अत्र हस्तिनापुरे संजातः समुत्पन्नः १०
परमश्रेयसः परमकल्याणस्य निदानतया प्रधानकारणतया 'श्रेयान्' इति विख्यातः प्रसिद्धः, सोऽयं श्रेयान् निशायाः रजःश्रेयः पश्चिमेऽन्तिमे यामे प्रहरे समुत्तुङ्गसुमेरुं सूनतसुमेरुपर्वतं, शाखाग्रलम्बिभूषणभूषितं कल्पतरुं सुरद्रुमं, विद्रुमश्च प्रवालश्च पल्लवश्च किसलयश्चेति विद्रुमपल्लवौ तद्वद् अरुणा रक्ताः केसराः सटा यस्य तथाभूतं केसरिणं सिंहं, शृङ्गाग्रयोर्लग्ना मृत्स्रा प्रशस्तमृत्तिका यस्य तथाभूतं वृषं वृषभं, स्फुर- १५
त्कान्तिमनोहरौ देदीप्यमानकान्तिकमनीयो दिवाकरनिशाकरो सूर्याचन्द्रमसौ, चलाचला अतिचपला वीचयो लहरीस्ताभिर्विशालं पारावारं सागरं अष्टमङ्गलधारीणि दर्पणाद्यष्टविधमङ्गलद्रव्यधारकाणि भूतरूपाणि च व्यन्तरदेवाश्च स्वप्ने विलोकयामास ददर्श । § १८) तत इति—ततस्तदनन्तरं प्रभाते प्रत्युषे सति परितुष्ट-चित्तः संतुष्टस्वान्तः 'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः, अयं श्रेयान् सोमप्रभानुजः संसदि सभायां वर्तमानं विद्यमानं सुरेशतुल्यं देवेन्द्रसंनिभं सोमप्रभं प्राप्य लब्ध्वा यथावत् यथादृष्टस्वप्नान् कथयांबभूव निवेदयामास । उपजातिवृत्तम् ॥१०॥ § १९) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं सोमप्रभेण हस्तिनापुरनरेन्द्रेण २०
वीक्षितं समवलोकितं वदनारविन्दं मुखकमलं यस्य तथाभूतः, सुरगुरुप्रतिच्छन्दो बृहस्पतिस्तुल्यः पुरोधाः पुरोहितः सुराद्रिदर्शनेन सुमेरुशैलविलोकनेन तद्वत् सुमेरुवत् उत्तुङ्गः समुन्नतः परमपुरुषः श्रेष्ठपुरुषः भवत्सदनं भवदीय-भवनम् अलंकरिष्यति विभूषयिष्यति, अन्ये इतरे च स्वप्नाः तस्य परमपुरुषस्य गुणोन्नतिं सूचयन्ति प्रकटयन्ति । अस्माकं तु महत्तरकीर्तिलाभादिसंपदां विपुलतरकीर्तिप्राप्तिप्रभृतिविभूतीनां निदानभूतः कारणभूतः पुण्योदयः सुकृतोदयः अस्तीति शेषः । अयं कुमारश्च श्रेयान्कुमारश्च तत्त्वविद् तत्त्वज्ञः अस्तीति शेषः इति प्रति- २५

आर्या, स्वयंप्रभदेव, केशवराजा, अच्युतस्वर्ग का प्रतीन्द्र और धनदेवकी पर्याय धारण कर सर्वार्थसिद्धि गया था वहाँसे आकर जो हस्तिनापुरमें उत्पन्न हुआ और परमश्रेय—उत्कृष्ट कल्याणका कारण होनेसे जो श्रेयान् इस नामसे प्रसिद्ध था उसने रात्रिके पिछले पहरमें अत्यन्त ऊँचा सुमेरुपर्वत, शाखाओंके अग्रभागमें लटकते हुए आभूषणोंसे सुशोभित कल्प-वृक्ष, मूंगा और नयी कोंपलके समान लालजटाओंसे युक्त सिंह, सींगोंके अग्रभागमें लगी हुई उत्तम मिट्टीसे युक्त बैल, देदीप्यमान कान्तिसे सुन्दर सूर्य और चन्द्रमा, अत्यन्त चंचल लहरोंसे परिपूर्ण समुद्र तथा आठ मंगल द्रव्योंको धारण करनेवाले व्यन्तरदेव स्वप्नमें देखे । § १८) तत इति—तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर सन्तुष्टचित्तसे युक्त इस श्रेयांसने समामें विद्यमान इन्द्रतुल्य सोमप्रभके पास जाकर उ्योंके-त्यों सब स्वप्न कह सुनाये ॥१०॥ § १९) तदन्विति—तदनन्तर सोमप्रभने जिसके मुखकी ओर देखा था तथा जो बृहस्पतिके तुल्य था ऐसे पुरोहितने कहा कि सुमेरु पर्वतके देखनेसे उसीके समान ऊँचा कोई परम पुरुष तुम्हारे भवनको अलंकृत करेगा और शेष स्वप्न उसी परम पुरुषके गुणोंकी उन्नतिको सूचित करते ३५

§ २०) तदानीं योगीन्द्रे प्रविशति पदा हास्तिनपुरं

तमेनं संद्रष्टुं कुतुकितहृदां संभ्रमवताम् ।

जनानां संमर्द्धान्निबिडतररथ्याङ्गणजुषां

पुपुरे व्योमाध्वा प्रबलतरकोलाहलरवैः ॥११॥

- ५ § २१) तदात्वे किल संवेगवैराग्यसिद्धयर्थं बद्धपरिच्छदं, जगत्कायस्वभावादितत्त्वान्यनु-
ध्यायन्तं, सत्त्वगुणाधिकविलक्ष्यमानाविनयेषु मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि भावयन्तं, युगप्रमित-
देशे पुरःप्रदेशे दृष्टि प्रसार्यं शनैः पादाम्बुजं गन्धसिन्धुरलीलया विन्यस्यन्तं राजमन्दिरसमीपमाप-
तन्तं भगवन्तं सिद्धार्थनामकाद्दोवारिकाच्छ्रुत्वाधिराजयुवराजौ सोमप्रभश्चेत्यान्सौ, अन्तःपुरामात्य-
सेनानी प्रमुखैर्निबिडितपाश्वर्भाणौ ससंभ्रमं प्रत्युदगम्य प्रणम्य च ततश्चरणाम्बुजं निवेद्य चाध्यं-
१० पाद्यादिकं प्रमोदस्य परां काष्ठाभुपजग्मतुः ।

- पादयामास कथयामास । § २०) तदानीमिति—तदानीं तस्मिन् काले योगीन्द्रे वृषभजिनेन्द्रे पदा चरणेन
हास्तिनपुरं कुरुजाङ्गलजनपदराजधानीं प्रविशति सति, एनं तं योगीन्द्रं संद्रष्टुं समवलोकितुं कुतुकितहृदां
कुतूहलाकुलचेतसां संभ्रमवतां त्वरायुक्तानां निबिडतराणि सान्द्रतराणि यानि रथ्याङ्गणानि राजमार्गजिराणि
तानि जुषन्ते प्रीत्या सेवन्ते तेषां जनानां लोकानां सम्मर्दात् समाघातात् प्रबलतरा अतिप्रबला ये कोलाहलरवाः
१५ कलकलशब्दास्तैः व्योमाध्वा गगनमार्गः पुपुरे संपूर्णः । शिखरिणी छन्दः ॥११॥ § २१) तदात्वे इति—
तदात्वे तदानीं किल संवेगश्च वैराग्यं चेति संवेगवैराग्ये तयोः सिद्धयर्थं बद्धपरिच्छदं बद्धपरिकरं समुद्यतमिति
भावः । जगच्च कायश्चेति जगत्कायौ संसारशरीरे तयोः स्वभावस्तदादितत्त्वानि अनुध्यायन्तं भूयोभूयश्चिन्तयन्तं
'जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम्' इति प्ररूपितत्वात्, सत्त्वाश्च गुणाधिकाश्च विलक्ष्यमानाश्च अविनयाश्च
तेषु सत्याः सामान्यप्राणिनः गुणाधिका ज्ञानादिगुणसंपन्नाः विलक्ष्यमाना दुःखभाजः अविनया उद्दण्ड-
प्रकृतिका एतेषु क्रमेण मैत्री च प्रमोदश्च कारुण्यं च माध्यस्थ्यं चेति मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि भावयन्तं
२० 'मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकविलक्ष्यमानाविनयेषु' इति निरूपितत्वात्, भावयन्तं चिन्तयन्तं,
युगः शकटबाह्वृषभयोः स्कन्धोपरिधृतश्चतुर्हस्तप्रमाणोदाहविशेषः तेन प्रमितो युगप्रमितः स चासौ देशश्च
तस्मिन् पुरःप्रदेशे अग्रस्थाने दृष्टिं दृष्ट्वा प्रसार्यं विस्तार्यं शनैर्मन्दं गन्धसिन्धुरलीलया मत्तमतङ्गजलीलया
पादाम्बुजं चरणकमलं विन्यस्यन्तं निक्षिपन्तं, राजमन्दिरसमीपं राजभवनाभ्यर्णम् आपतन्तं समागच्छन्तं
भगवन्तं जिनेन्द्रं सिद्धार्थनामकाद् दोवारिकात् सिद्धार्थभिषानद्वारपालात् श्रुत्वा निशम्य अधिराजश्च युवराजश्चेति
२५ अधिराजयुवराजौ सोमप्रभश्चेत्यान्सौ तन्नामानौ अन्तःपुरामात्यसेनानीप्रमुखैः शुद्धान्तसचिवसेनापतिप्रधानैर्जनेः

- हैं । इस समय हम लोगोंके बहुत भारी कीर्तिकी प्राप्ति आदि संपदाओंका कारणभूत पुण्यका
उदय है तथा यह श्रेयांसकुमार तत्त्वोंका ज्ञाता है । § २०) तदानीमिति—उस समय
योगिराज वृषभजिनेन्द्रने ज्योंही चरणोंके द्वारा हस्तिनापुरमें प्रवेश किया त्योंही उन्हें
देखनेके लिए कुतूहलसे युक्त, शीघ्रता करनेवाले तथा राजमार्गके मैदानमें एकत्रित
३० मनुष्योंकी धक्का-मुक्कीसे उत्पन्न बहुत भारी कोलाहलके शब्दसे आकाशमार्ग भर गया ॥११॥
§ २१) तदात्वे इति—उस समय जो संवेग और वैराग्यकी सिद्धिके लिए बद्धपरिकर—पूर्ण-
उद्यत थे, संसार और शरीरके स्वभाव आदि तत्त्वोंका बार-बार ध्यान करते थे, सत्त्व,
गुणाधिक, दुःखी तथा उद्दण्ड मनुष्योंमें क्रमसे मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य भावकी
भावना रखते थे, तथा युगप्रमाण भूमिमें आगे दृष्टि पसारकर मत्तहाथीकी लीलासे धीरे-
३५ धीरे चरण कमलको रख रहे थे, ऐसे भगवान्को सिद्धार्थक नामक द्वारपालसे राजभवनके
समीप आते हुए सुनकर अधिराज और युवराज पदके धारक सोमप्रभ और श्रेयांस, अन्तः-

§ २२) संप्रेक्ष्य भगवद्रूपं श्रेयान् जातिस्मरोऽभवत् ।

ततो दाने मतिं चक्रो तत्संस्कारेण संगतः ॥१२॥

§ २३) तदनु श्रीमतीवज्रजङ्घादिवृत्तान्तं चारणवृत्तमात्रं दत्तदानं च स्मृत्वा मत्वा च गोचरवेलेयं दानयोग्येति, श्रद्धादिगुणसंपन्ना नवपुण्यान्वितः श्रेयान् दानादितोऽर्थकर्ता, भगवते प्रासुकाहारकल्पितं दानं विततार ।

§ २४) सोमप्रभेण सममुज्ज्वलपुण्यकीर्ति-

लक्ष्मीमतीसहित एष विबुधवृत्तिः ।

पुण्ड्रेक्षुकाण्डवरनूतनरसस्य धारां

श्रेयान् ददे भगवतः क्लृप्ता पाणिपात्रे ॥१३॥

§ २५) तदनु सुरनिकरकरमलितमणिविसरस्यवर्णरत्नपरिभरेण, सममुपतदमरतरुसुरभितमः १०

निबिडितः सान्द्रीकृतः पाश्वभागे ययोस्तथाभूती सन्ती कर्षाभ्रमं चत्वरं श्रयुद्धमयं तन्मुखं गत्वा ततस्तदनु चरणाभ्रजं पादारविन्दं प्रणम्य च नमस्कृत्य च कर्षपाद्यादिकं कर्षपादोदकप्रभृतिकं निवेश समर्प्य च प्रमोदस्य हर्षरूपस्य परामृच्छां काऽऽतां सोमानम् उपजगमसुः प्रापसुः । § २२) संप्रेक्ष्येति—भगवतो रूपं भगवद्रूपं जिनेन्द्ररूपं संप्रेक्ष्य समवलोक्य श्रेयान् सोमप्रभानुजः जाति पूर्वजन्म स्मरतीति जातिस्मरः अभवत् । ततस्तदनन्तरं तत्संस्कारेण पूर्वजन्मसंस्कारेण संगतः सहितः सन् दाने मतिं बुद्धिं चक्रे विषये ॥१२॥ § २३) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं श्रीमतीवज्रजङ्घादिवृत्तान्तं चारणपुण्याय चारणविबुधलाय दत्तदानं प्रदत्ताहारदानं च स्मृत्वा इयं गोचरवेला प्रातर्वेला दानयोग्या दानार्हंति मत्वा च श्रद्धादिगुणसंपन्नः श्रद्धातुष्टिभक्तिप्रभृतिसमगुणसहितः नवपुण्यैर्नवधाभक्त्यभिवानरन्वितः सहितः दानादितोऽर्थकर्ता दानतीर्थप्रथमप्रवर्तकः श्रेयान् भगवते वृषभाय प्रासुकाहारेण निशिषताहारेण कल्पितं कृतं दानं विततार वदी । § २४) सोमप्रभे- २०
जेति—उज्ज्वला निर्मला पुण्यकीर्तिः पवित्रयशो यस्य सः लक्ष्मीकृत्या सीमप्रभस्त्रिया सहिती युक्तः, विबुधा निर्दोषा वृत्तियस्य तथाभूतः, एष श्रेयान् सोमप्रभेण लक्ष्मीवज्रजङ्घा सह सह भगवतो जिनेन्द्रस्य पाणिपात्रे हस्तभाजने खलु निश्चयेन पुण्ड्रेक्षुकाण्डानां पुण्ड्रसालदण्डानां वरः वीष्ठी मूली मवीनश्च यो रसस्तस्य धारां ददे दत्तवान् । वसन्ततिलका छन्दः ॥१३॥ § २५) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं सुरनिकरस्य देवसमूहस्य करेभ्यो हस्तेभ्यो गलितः पतितो यो मणिविसरो रत्नसमूहस्तस्य वणवणरसस्य वणवणेत्याकारकशब्दस्य यः २५

पुरकी स्त्रियों, मन्त्रियों और सेनापति आदि प्रमुख जनोके द्वारा लक्ष्मीपवर्ती प्रदेशको व्याप्त करते हुए शीघ्रतासे उनके संमुख गये तथा उनके चरणकमलोंकी प्रणाम करनेके बाद अर्घ और पादोदक आदि प्रदान कर हर्षकी परम सीमाको प्राप्त हुए । § २२) संप्रेक्ष्येति—भगवान्के रूपको देखकर श्रेयांस जातिस्मरणसे युक्त हो गया जिससे पूर्वभक्तके संस्कारोंसे युक्त होकर उसने दान देनेमें बुद्धि लगायी ॥१२॥ § २३) तदन्विति—तदनन्तरं श्रीमती और वज्रजङ्घा आदिके वृत्तान्त तथा चारणश्रद्धिके धारक मुनियुगलके लिए दिये हुए दानका स्मरण कर उसने विचार किया कि यह प्रातःकालका समय दान देनेके योग्य है । तत्पश्चात् श्रद्धादि गुणोंसे सहित नवधा भक्तिसे युक्त श्रेयांसने दानतीर्थका प्रथम कर्ता बनकर भगवान्के लिए प्रासुक आहारसे निर्मित दान दिया । § २४) सीमप्रभेजेति—उज्ज्वल और प्रवित्र कीर्तिसे युक्त, लक्ष्मीमतीसे सहित एवं निर्दोषवृत्तिके धारक इस श्रेयांसने, राजा सीमप्रभके साथ भगवान्के हस्तरूपी पात्रमें पौंडा और ईश्वरोंके उत्कृष्ट तथा मवीन रसकी धारा दी थी ॥१३॥ ३५
§ २५) तदन्विति—तदनन्तरं देवसमूहके हाथोंसे गिरे मणिसमूह सन्तान्मयी वण-वण शब्दोंके ३७

कुसुमकुलसमनुसृतमधुकरनिचयमधुरतरविस्तेन, विबुधजनकरनिहतपटहपटुनिनदेन, त्रिदिवपति-
सुभगवनचिरनिवसदतिसुरभिमुपवनललितगतिसमनुसरदलिजालकोलाहलेन, अहो दानमहो पात्र-
महो दातेति गगनतलविलसितदिविजततिहृदयसरसिजसमुदयपरिकलितवचनभरेण चाकाशं
निरवकाशमासीत् ।

५ § २६) कृतार्थं स्वात्मानं सममनुत तदभ्रातृयुगलं

कृतार्थोऽयं यस्मात्स्वगृहमपुनाल्लोकमहितः ।

परे दानस्यास्य प्रगुणमनुमोदेन बहवः

मुखेनैव प्रापुः प्रचुरतरपुण्यस्य सरणिम् ॥१४॥

§ २७) तदनु कृतपारणं निखिलपौरसंदोहवन्दितचरणं गमनविलासंविजितवारणं,

१० त्रिभुवनरमणं वनाय व्रजन्तं किञ्चिदन्तरमनुव्रज्य प्रत्यावृत्तो तद्गुणमणीनेव मुहुर्मुहुः प्रस्तुवानो

परिभरः समूहस्तेन, सन्ननुपतन्ति वर्धन्ति अमरतरुणां कल्पवृक्षाणां सुरभितमानि सुगन्धितमानि यानि कुसुम-
कुलानि प्रसूतनिकुरम्बाणि तानि समनुसृताः समनुगता ये मधुकरनिचया भ्रमरसमूहास्तेषां मधुरतरं मिष्टतरं
यद् विस्तं शब्दस्तेन, विबुधजनानां देवानां करैः पाणिभिनिहतास्ताडिता ये पटहा ढक्कास्तेषां पटुनिनदेन
तीव्रशब्देन, त्रिदिवपतेः पुरंदरस्वयत् सुभगवनं सुन्दरोद्यानं तस्मिन् चिरनिवसन् चिरकालेन निवासं कुर्वन्
अतिसुरभिः सातिशयसुगन्धयुक्तो मृदुर्मन्यरक्षयः पवनः समोरस्तस्य ललितगति सुन्दरगति समनुसरन्तः
समनुगच्छन्तो येऽल्यो भ्रमरास्तेषां जालस्य समूहस्य कोलाहलेन कलकलशब्देन, 'अहो दानम् अहो पात्रम्
अहो दाता' इतीत्यं गगनतले नभस्तले विलसितानि यानि दिविजततेर्देवसमूहस्य हृदयसरसिजानि मानस-
तामरसानि तेषां समुदयेन समूहेन कलितानि कृतानि यानि वचनानि तेषां भरः समूहस्तेन च आकाशं गगनं
निरवकाशमवकाशशून्यमासीत् । § २६) कृतार्थमिति—यस्मात् कारणात् कृतार्थः कृतकृत्यः लोकमहितः

२० जगदम्पचितः अयं भगवान् स्वगृहं स्वभवनम् अपुनात् पवित्रं चकार तस्मात् कारणात् तत् पूर्वोक्तं भ्रातृयुगलं
सहोदरयुगं सोमप्रभश्रेयसोर्भुगलमित्यर्थः स्वात्मानं कृतार्थं कृतकृत्यं सममनुत सम्भवप्रकारेण मन्यते स्म ।
अस्य दानस्य प्रगुणं प्रकृष्टं यथा स्यात्तथा अनुमोदेन समर्थनेन बहवः प्रभूताः परे अन्ये जनाः मुखेनैव अनायासेनैव
प्रचुरतरपुण्यस्य विपुलतरमुकृतस्य सरणिं मार्गं प्रापुः । शिखरिणीछन्दः ॥१४॥ § २७) तदन्विति—तदनु
तदनन्तरं कृतपारणं कृतव्रतात्तभोजनं निखिलपौरसंदोहेन निखिलनगरनरनिचयेन वन्दितो चरणो यस्य
२५ तथाभूतं गमनविलासेन मन्दगमनलीलया विजितो वारणो गजो येन तं, त्रिभुवनरमणं जगत्त्रयाधीश्वरं वनाय

भारसे पड़ते हुए कल्पवृक्षोंके सुगन्धित पुष्प समूहका पीछा करनेवाले भ्रमर समूहके अत्यन्त
मधुर शब्दसे, देवोंके हाथोंसे ताड़ित नगादोंके जोरदार शब्दसे, इन्द्रके सुन्दर वनमें चिर-
कालसे निवास करनेवाले, अत्यन्त-सुगन्धित एवं कोमल पवनकी सुन्दर गतिका अनुसरण
करतेवाले भ्रमर समूहके कोलाहलसे और 'अहो दान अहो पात्र अहो दाता' इस प्रकार आकाश-

१० तलमें सुशोभित देवसमूहके हृदयरूपी कमलोंके समूहसे उत्पन्न वचनोंके समूहसे आकाश
अवकाशहीन हो गया था अर्थात् भर गया था । § २६) कृतार्थमिति—क्योंकि कृतकृत्य तथा
लोकपूजित भगवान्ने अपना गृह पवित्र किया है इसलिए उन भाइयोंके युगलने अपने-
आपको अच्छी तरह कृतकृत्य माना था । इस दानकी बहुत भारी अनुमोदना करनेसे अन्य
बहुतसे लोगोंने अनायास ही विपुल पुण्यका मार्ग प्राप्त किया था ॥ § २७) तदन्विति—
३५ तदनन्तर जिन्होंने पारणा की थी, समस्त नगरवासियोंके समूहने जिनके चरणोंको वन्दना

१. विजितमदवारणं क० ।

सकलजनविस्मयनीयप्रज्ञाप्रभावो विमलयशोविशोभितदिगन्तो कुरुकुमुदिनीकान्तौ सानन्दं पुरं प्राविशताम् ।

§ २८) तदादि तदुपज्ञं तद्दानं जगति पप्रथे ।

येन विस्मयमासेदुर्भूमिपा भरतादयः ॥१५॥

§ २९) सुराश्च विस्मयानन्दसंभूतनवकौतुकाः ।

प्रतीताः कुरुराजं तं पूजयामासुरादरात् ॥१६॥

§ ३०) तदनु भरतराजेन सबहुमानमिमं दानोदन्तं पृष्ठः श्रेयान् श्रीमतीवज्रजङ्घभवपरिकलितचारणयुग्मदानवैभवकथनपुरःसरं दानशुद्धिमित्यमचोक्तयत् ।

§ ३१) दानं स्वस्यातिसर्गो भवति नरवरानुग्रहार्थं विशुद्धि-

प्रोद्भूतं तत्पुनाति प्रचुरतरफलं कीर्तिलक्ष्मीनिद्रानम् ।

काननाय व्रजन्तं गच्छन्तं भगवन्तं किंचिदन्तरं किंचिद्दूरं यावत् अनुव्रज्य अनुगत्य प्रत्यावृत्तो प्रतिनिवृत्तो तद्गुणमणीनेव तदीयगुणरत्नान्येव मुहुर्मुहुः भूयोभूयः प्रस्तुवानो स्तुतिविषयीकुर्वाणौ सकलजनानां निखिलनराणां विस्मयनीयो आश्चर्यकरो प्रज्ञाप्रभावो ययोस्तौ, विमलयशो निर्मलकीर्त्या विशोभिताः समलंकृता दिगन्ता याम्यां तौ, कुरुकुमुदिनीकान्तौ कुर्वंश्चन्द्रमसौ सोमप्रभश्रेयान्सौ सानन्दं यथा स्यात्तथा पुरं हस्तिनापुरं प्राविशताम् प्रविशतुः । § २८) तदादीति—तद् आदौ यस्य तदादि, तेनादावुपज्ञातं तदुपज्ञं 'उपज्ञा ज्ञान-माद्यं स्यात्' इत्यमरः । तत् श्रेयःप्रदत्तं दानं जगति भुवने पप्रथे प्रथितमभवत् येन दानेन भरतादयो भूमिपा राजानो विस्मयं चित्रम् आसेदुः प्रापुः ॥१५॥ § २९) सुराश्चेति—विस्मयानन्दाम्या चित्रप्रमोदाम्यां संभूतं समुत्पन्नं नवकौतुकं नूतनकौतुकं येषां तथाभूताः सुरा अमराश्च प्रतीता विश्वस्ताः सन्तः तं कुरुराजं सोमप्रभं श्रेयांसं च आदरात् पूजयामासुः आनर्चुः ॥१६॥ § ३०) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं भरतराजेन भरतेवरेण सबहुमानं यथा स्यात्तथा इममेतं दानोदन्तं दानवृत्तान्तं पृष्ठः श्रेयान् श्रीमतीवज्रजङ्घयोर्भवे परिकलितं प्राप्तं यत् चारणयुग्माय चारणद्विधारकमुनियुगलाय दानवैभवं तस्य कथनपुरःसरं दानशुद्धिम् इत्यमनेन प्रकारेण अचोक्तयत् कथयामास । 'अचोक्तयत्' इति प्रयोगोऽपि नित्यः । § ३१) दानमिति—हे नरवर ! हे नरश्रेष्ठ ! अनुग्रहार्थं स्वपरयोस्कारार्थम् अथवा नरवरा मुनयस्तेषामनुग्रहार्थमुपकारार्थं स्वस्य स्वकीयवस्तुनः अतिसर्गस्त्यागो दानं भवति । तच्च दानं विशुद्धिभिर्मनोवाक्यशुद्धिभिः प्रोद्भूतं समुत्पन्नं

की थी, गमनके विलाससे जिन्होंने हार्थीकी जीता था तथा लो वनकी ओर जा रहे थे ऐसे त्रिभुवनपति भगवान्को कुछ दूर तक भेजकर जो वापस लौटे थे, जो बार-बार उन्हींके गुणरूपी रत्नोंकी स्तुति कर रहे थे, जिनकी प्रज्ञा और प्रभाव समस्त लोगोंको आश्चर्यमें डाल रहे थे, तथा निर्मल यशके द्वारा जिन्होंने दिशाओंके अन्तको सुशोभित कर दिया था ऐसे कुरुवंशके चन्द्र—राजा सोमप्रभ और युवराज श्रेयान्सने हर्ष सहित नगरमें प्रवेश किया । § २८) तदादीति—सर्वप्रथम राजा श्रेयान्सके द्वारा जाना हुआ वह दान संसारमें प्रसिद्ध हो गया जिसके द्वारा भरत आदि राजा आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१५॥ § २९) सुराश्चेति—आश्चर्य और हर्षके कारण जिन्हें मनीष कुतूहल उत्पन्न हो रहा है ऐसे देवोंने विश्वस्त होकर उस कुरुराजकी आदर पूर्वक पूजा की ॥१६॥ § ३०) तदन्विति—तदनन्तर राजा भरतने बहुत सम्मानके साथ श्रेयान्ससे दानका समाचार पूछा तो उसने श्रीमती और वज्रजङ्घके भवमें दिये हुए चारणद्विके धारक मुनि युगलके दानका वैभव बतलाते हुए इस प्रकार दानकी शुद्धिका कथन किया । § ३१) दानमिति—हे नरश्रेष्ठ ! निज और परके उपकारके लिए आत्मीय वस्तुका त्याग करना दान है । वह दान मनशुद्धि, वचनशुद्धि और कर्माशुद्धि

दाता श्रद्धादिसम्यग्गुणमणिनिलयो देयमाहारशास्त्रे

भेषज्यं चाभयं चेत्युदितमथ मतं रागशून्यं तु पात्रम् ॥१७॥

§ ३२) पात्रं त्रिधा जघन्यादिभेदेभेदमुपेयिवत् ।

जघन्यं शीलवान्मिथ्यादृष्टिश्च पुरुषो भवेत् ॥१८॥

§ ३३) सदृष्टिमध्यमं पात्रं निःशीलव्रतभावनः ।

सदृष्टिः शीलसंपन्नः पात्रमुत्तममुच्यते ॥१९॥

§ ३४) इत्यादिवाचंमवकर्ण्यं नृपोत्तमोऽयं

भर्तुर्भवान्भुविभवांस्त्व निशम्य धीरः ।

संपूज्य तं कुरुपतिं कुतुकेन भूयो

ध्यायन्नुरोगुणगणं स्वपुरं जगाम ॥२०॥

§ ३५) तदनु निखिलगुणसान्द्रो वृषभयोगोन्द्रः साकलसावद्यातिदूरं जिनकल्पिताचारं

प्रचुरतरफलं सातिशयफलयुक्तं कीर्तिलक्ष्मोनिदानं यशःश्रीकारणं सत् पुनाति पवित्रं करोति । श्रद्धादय एव सम्यग्गुणमणयस्तेषां निलयो गृहं श्रद्धातुष्टिभक्तिप्रभृतिसमोचोत्तमगुणमणिसहितो नरो दाता भवति, आहारश्च शास्त्रं चेत्याहारशास्त्रे भेषज्यमौषधं अभयं च भयनिवारणं च इत्येतत् देयं दातुं योग्यमुदितं कथितम्, तु किं तु रागशून्यं रागादिदोषरहितं पात्रं दानभाजनं मतं स्वीकृतम् । स्रग्धराछन्दः ॥१७॥

§ ३२) पात्रमिति—जघन्यादिभेदेः भेदम् उपेयिवत् प्राप्तवत् पात्रं त्रिधा त्रिप्रकारं भवति । तत्र शीलवान् मिथ्यादृष्टिः पुरुषो जघन्यं पात्रं भवेत् ॥१८॥ § ३३) सदृष्टिरिति—शीलव्रतभावनारहितः सम्यग्दृष्टिः मध्यमं पात्रं भवेत् । शीलसंपन्नः सम्यग्दृष्टिश्च उत्तमं पात्रम् उच्यते ॥१९॥ § ३४) इत्यादीति—नृपोत्तमो राजाश्रेष्ठः धीरो धीरप्रकृतिकः अयं भरत इत्यादिवाचं पूर्वोक्तवाणीम् अवकर्ण्य श्रुत्वा

भर्तुः स्वामिनो भवान् पूर्वपर्यायान् सुविभवान् समोचोत्तमैस्त्वयाणि च निशम्य श्रुत्वा कुतुकेन तं कुरुपतिं सोमप्रभं श्रेयान्सं च भूयः पुनरपि संपूज्य समर्च्य गुरोः पितुः गुणगणं गुणसमूहं ध्यायन् चिन्तयन् स्वपुरं स्वनगरं जगाम ययौ । वसन्ततिलकाछन्दः ॥२०॥ § ३५) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं निखिलगुणैः समप्रगुणैः सान्द्रो निबिडितः वृषभयोगोन्द्रो वृषभमुनीन्द्रः सकलसावद्यैर्मयो निखिलपापारम्भैर्मयोऽतिदूरं विप्रकृष्टतरं जिनकल्पिता-

इन तीन मुद्रियोंसे उत्पन्न हो तो बहुत भारी फलको देनेवाला तथा कीर्ति और लक्ष्मीका कारण होता हुआ पवित्र करता है । जो श्रद्धा आदि लक्ष्मीचीन गुणरूपी मणियोंका घर है वह दाता कहलाता है । आहार, शास्त्र, औषध और अभय ये चार देय कहलाते हैं और रागसे रहित मनुष्य पात्र मान्य कहा है ॥१७॥ § ३२) पात्रमिति—जघन्य आदिके भेदसे भेदको प्राप्त होता हुआ पात्र तीन प्रकारका होता है उनमें शीलवान् मिथ्यादृष्टि पुरुष जघन्य पात्र होता है ॥१८॥ § ३३) सदृष्टिरिति—शील तथा व्रतकी भावना से रहित सम्यग्दृष्टि मध्यमपात्र

और शीलसहित सम्यग्दृष्टि उत्तम पात्र कहा जाता है । विशेष—अन्यत्र अविरत सम्यग्दृष्टिको जघन्यपात्र, आकृष्टके व्रत सहित सम्यग्दृष्टिको मध्यम पात्र और सकल चारित्रिके धारक मुक्तिको उत्तम पात्र कहा गया है ॥१९॥ § ३४) इत्यादीति—इत्यादि वचन सुनकर धीर-वीर राजाधिराज भरतने भगवान्के पूर्वभव तथा उनके उत्तम वैभवका वर्णन सुना, कुतूहल पूर्वक कुम्भराजकी पुनः पूजा की और पश्चात् पिताके गुणसमूहका

ध्यान करते हुए अपने नगरकी ओर मनन किया ॥२०॥ § ३५) तदन्विति—तदनन्तर जो समस्त गुणोंसे परिपूर्ण थे, समस्त पापारम्भसे दूर रहनेवाले जिनकल्पी आचारको स्वीकृत कर

स्वीकुर्वाणो योगयोग्यप्रदेशेष्ववहितध्यानाधीनमानसो विहरमाणः क्रमेणातिवाहितसंवत्सरसहस्रः पुरिमतालविदितनगरनिकटविलसितशकटसमाह्वयोपवनन्यग्रोधविटपिमूलतलविलसमाननिराकुल - निर्जन्तुकविमलशिलापट्टे निबद्धपल्यङ्कासनः, पूर्वाभिमुखः प्रहितध्यानोन्मुखमानसः, परां लेख्याशुद्धि दधानश्चेतसा परंपदमनुसंदधानः, सम्यग्दर्शनज्ञानानन्तवीर्यसौख्यसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वावगाहान्या- बाधारूपानष्टसिद्धगुणान्प्रथममनुध्यायन्, अधुवादिद्वादशानुप्रेक्षाभावनाभावितान्तःकरणः, तदनन्त- ५ रमाज्ञाविचयविपाकविचयापायविचयसंस्थानविचयविख्यातानि धर्मध्यानानि भजमानो, ज्ञानादि- परिणामेषु निरतिशयशुद्धि संगृह्णानः, क्रमाच्छुक्लध्यानपरिणतो, धातिकर्माणि निःशेषयित्वा, फाल्गुनकृष्णैकादशीदिने संप्राप्तोत्तराषाढनक्षत्रे सकलद्रव्यपर्यायस्वभावोद्भासनप्रवीणं भव्यसरोज- तल्लजसमुल्लसननिपुणं केवलज्ञानतरणिमुद्बोधयामास ।

चारं जिनकल्पाभिधानं निर्ग्रन्थाचारं स्वीकुर्वाणोऽङ्गीकुर्वन्, योगयोग्यप्रदेशेषु ध्यानाहंस्थानेषु अवहितध्यानस्य १० सावधानध्यानस्याधीनं निष्कृतं मानसं यस्य तथाभूतः विहरमाणो विहारं कुर्वन् क्रमेण अतिवाहितमतिलङ्घितं संवत्सरसहस्रं वर्षसहस्रं येन तथाभूतः, पुरिमतालेति नाम्ना विदितं प्रसिद्धं यन्नगरं पुरं तस्य निकटे समीपे विलसितं शोभितं शकटसमाह्वयं शकटनामधेयं उपवनमृशानं तस्य न्यग्रोधविटपिनो वटवृक्षस्थ मूलतलेऽवस्तात् विलसमानः शोभमानो निराकुलो व्यग्रताकारणरहितो निर्जन्तुको जन्तुरहितो विमलः स्वच्छश्च यः शिलापट्टः पाषाणफलकस्तस्मिन् निबद्धं पल्यङ्कासनं येन तथाभूतो बद्धपद्यासनः, पूर्वाभिमुखः प्रहितं प्रकृष्टहितकरं यद् १५ ध्यानं तस्योन्मुखं संमुखं मानसं यस्य सः, परामुत्कृष्टां लेख्याशुद्धि कषायोदयेनानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्लेख्या कथ्यते लेख्यायाः शुद्धिस्तां दधानः, चेतसा हृदयेन परं पदं मोक्षस्थानम् अनुसंदधानः भूयोभूयः संदधत् मोक्षप्राप्तिर्मम भवत्विति चेतसा चिन्तयन्निति यावत्, सम्यग्दर्शनादिरूपान् अष्टसिद्धगुणान् ज्ञानावरणादिकर्मणा- मभावे प्रकटितानष्टगुणान् प्रथमं प्राक् अनुध्यायन् चिन्तयन्, अधुवादिद्वादशानुप्रेक्षाणां भावनया भावितं मुक्तमन्तःकरणं चित्तं यस्य तथाभूतः, तदनन्तरं तदनु आज्ञाविचयादिविख्यातानि धर्मध्यानानि भजमानः २० सेवमानः, ज्ञानादिपरिणामेषु निरतिशयशुद्धि विपुलतरशुद्धि संगृह्णानः स्वीकुर्वाणः, क्रमात् शुक्लध्यानेन पृथक्त्ववितर्कादिचतुर्विधशुक्लध्यानेन परिणतः सन्, धातिकर्माणि मोहज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायनामानि निःशेषयित्वा निःशेषाणि कृत्वा क्षपयित्वैतपर्यः, फाल्गुनकृष्णैकादशीदिने संप्राप्तोत्तराषाढनक्षत्रे सकलद्रव्य- पर्यायाणां स्वभावस्योद्भासने प्रकटने प्रवीणं निपुणं भव्या एव सरोजतल्लजानि श्रेष्ठकमलानि तेषां समुल्लसने

रहे थे, ध्यानके योग्य स्थानोंमें जिनका मन सावधान होकर ध्यान धारण करता था, तथा २५ विहार करते हुए जिन्होंने क्रमसे एक हजार वर्ष व्यतीत कर दिये थे ऐसे मुनिराज वृषभ, एक दिन पुरिमताल नामसे प्रसिद्ध नगरके निकट शोभायमान शकट नामक उपवनमें वट वृक्षके नीचे सुशोभित आकुलताके कारणोंसे रहित चिड़टी आदि जन्तुओंसे शून्य निर्मल शिलातलपर पर्यकासनसे पूर्वाभिमुख होकर विराजमान हुए । वहाँ जिन्होंने श्रेष्ठ ध्यानके सम्मुख चित्त किया है, जो लेख्याकी परम विशुद्धताको धारण कर रहे थे, हृदयसे जो परम- ३० पद—मोक्षका ही विचार करते थे ऐसे भगवान्ने पहले सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त सौख्य, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व, अवगाह और अव्यावाधा इन सिद्धोंके आठ गुणोंका चिन्तन किया, फिर अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षाओंकी भावनासे अन्तःकरणको युक्त किया, तदनन्तर आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय इन नामोंसे प्रसिद्ध चार धर्म्य ध्यानोंको धारण किया, ज्ञानादि परिणामोंमें अत्यधिक विशुद्धिको प्राप्त ३५ किया, पश्चात् क्रमसे शुक्लध्यानरूप परिणत हो धातिया कर्मोंका क्षय कर फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन उत्तराषाढ नक्षत्रमें उस केवलज्ञानरूपी सूर्यको प्रकट किया जो कि समस्त

§ ३६) वृषभजिनपर्यायतप्राच्याचले प्रविजृम्भिते

सुरपरिषदां संतोषाम्भोधिवर्धनतत्परः ।

विहृतबलवद्धातिध्वान्ते च केवलबोधस-

न्नवसितकरे चित्रं दोषोद्गमो न हि पप्रथे ॥११॥

५ § ३७) पुष्पैर्देवौघवृष्टैः सुरपटहपटुप्रस्फुरदध्वानपूरै-

र्गीर्वाणस्त्रैणलास्यैरमरवरमुखोद्भूतसंस्तोत्रशब्दैः ।

मन्दारोद्यानवाटीमृदुसुरभिसम्बन्धमन्दप्रचारे-

रासीत्कैवल्यबोधोदयमहिमहो विश्वपाश्चर्यभूतः ॥२२॥

§ ३८) तदानीं विमलकेवलज्ञानसंपूर्णचन्द्रबिम्बोदयोज्ज्वलितभुवनत्रयाम्भोधिनिर्लोल-

१० कल्लोलकोलाहलानुकारिघण्टाघणघण्टाकारकण्ठीरवराव-पटहप्रगाढ-शङ्खस्वनसमुत्पन्नबोधानेकयान-

विकसने निपुणं प्रवीणं केवलज्ञानतरणिं केवलज्ञानसूर्यम् उद्बोधयामास प्रकटयामास । ३६) वृषभेति—वृषभजिनपो वृषभजिनेन्द्र एव ध्यातः प्रसिद्धः प्राच्याचल उदयाद्रिस्तस्मिन् सुरपरिषदां देवतिकायानां संतोष एवाम्भोधिः सागरस्तस्य वर्धनमुद्वेलनं तस्मिन् तत्परः समुद्यतस्तस्मिन्, विहृतं विनष्टं बलवद्धातीत्येव बलिष्ठ-धातिकर्माण्येव ध्वान्तामि तिमिराणि येन तस्मिन्, केवलबोधः केवलज्ञानमेव सन् प्रशस्तः नवो नूतनोदितः

१५ सितकरश्चन्द्रस्तस्मिन् प्रविजृम्भिते समुदिते दोषोद्गमः दोषाया रजस्या उद्गमः प्रादुर्भावो न हि नैव पप्रथे न प्रयितोऽभूत् इति चित्रं विस्मयस्थानं परिहारपक्षे दोषाणां रागाद्यवगुणानामुद्गमो नैव पप्रथे । रूपकश्लेष-विरोधाभासाः । • हरिणीच्छन्दः ॥२१॥ § ३७) पुष्पैरिति—देवौघवृष्टैः सुरसमूहवृष्टैः पुष्पैः कुसुमैः, सुरपटहानां देवदुन्दुभ्यानां पटु यथा स्यात्तथा प्रस्फुरन्तः प्रकटीभवन्तो ये ध्वानपूराः शब्दप्रवाहास्तैः, गीर्वाण-स्त्रैणानां देवाङ्गनानां लास्यैर्नृत्यैः, अमरवराणां श्रेष्ठसुराणां मुखेभ्यो वक्त्रेभ्य उद्भूताः प्रकटिता ये संस्तोत्र-शब्दाः संस्तुतिरवास्तैः, मन्दारोद्यानवाट्या कल्पवृक्षोपवनबोधया यो मृदुः कोमलः सुरभिः सुगन्धिश्च

२० मस्त्यवनस्तस्य मन्दमन्दप्रचाराः शनैः शनैः संचरणानि तैः कैवल्यबोधोदयमहिम्नः केवलज्ञानप्राप्तिकल्याणस्य मह उत्सवः विश्वपाश्चर्यभूतो लोकेशविस्मयास्पदम् आसीद् बभूव । अश्वराछन्दः ॥२२॥ § ३८) तदानीमिति—तदानीं तस्मिन् काले विमलकेवलज्ञानमेव संपूर्णचन्द्रबिम्बं तस्योदयेन उज्ज्वलितः समुद्वेलितो यो भुवनत्रयाम्भोधिः लोकत्रयपारावारस्तस्य निर्लोलकल्लोलानां चपलतरतरङ्गाणां यः कोलाहलः कलकल-

२५ द्रव्य और पर्यायों के स्वभाव प्रकट करनेमें प्रवीण था और भव्यजीव रूपी श्रेष्ठ कमलोंको विकसित करनेमें निपुण था । § ३६) वृषभेति—वृषभ जिनेन्द्ररूपी उदयाचल पर देव-निकायोंके सन्तोषरूपी समुद्रकी वृद्धि करनेमें तत्पर तथा अतिशय बलवान् धातिया कमरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले केवलज्ञानरूपी प्रशस्त एवं नूतन चन्द्रमाके उदित होनेपर दोषोद्गम—रात्रिका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था यह आश्चर्यकी बात थी (परिहारपक्षमें

३० दोषोंका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था ॥२१॥ § ३७) पुष्पैरिति—देवसमूहके द्वारा वर्षाये हुए पुष्पों, देव दुन्दुभियोंके ओरदार शब्दों, देवांगनाओंके नृत्यों, श्रेष्ठ देवोंके मुखसे प्रकट हुए समीचीन स्तोत्रोंको शब्दों तथा कल्पवृक्षोंकी उद्यान वाटिका सम्बन्धी कोमल और सुगन्धित वायुके मन्द-मन्द संचारोंसे केवलज्ञानकी प्राप्ति रूप कल्याणकका वह उत्सव समस्त जगत्के स्वामियोंके लिए आश्चर्य स्वरूप हुआ था ॥२२॥ § ३८) तदानीमिति—उस समय

३५ निर्मल केवलज्ञान रूप पूर्णचन्द्र बिम्बके उदयसे लहराते हुए लोकत्रय रूप समुद्रकी अत्यन्त चंचल लहरोंके कोलाहलका अनुकरण करने वाले घण्टाओंके घण-घण शब्द, सिंहोंके कृण्ड-

विमानारूढकल्पज-ज्योतिष्क-व्यन्तर-भवनवासिरूपचतुर्णिकायामरपरिवेष्टितः, प्रचुरतरप्रसृतनिजा-
ङ्गकान्तिकल्लोलेभूषणरत्नप्रभाभिश्च गगनतलमलंकुर्वाणो, नागदत्तनामधेयाभियोग्येशकल्पित-
मैरावतमारूढः पुलोमजापरिष्कृतपाश्वर्गभागः सौधर्मपुरंदरः भगवतः केवल्यपूजार्थं निश्चक्राम ।

§ ३९) हारांशुस्वच्छनीरे सुरयुवतिमुखाम्भोजनेत्रोत्पलश्री-

सारे काश्मीररागारुणितकुचरथाङ्गाह्वयैः शोभमाने ।

स्फारप्रोद्धूतचञ्चमरजकलहंसास्पदे व्योमवाद्धौ

नाकेशानां विमाना मणिगणरुचिरा नावमेतेऽन्वकुर्वन् ॥२३॥

शब्दस्तस्यानुकारिणो ये घण्टाघणघणात्कारः कल्पामरविमानोत्पन्नशब्दविशेषः, कण्ठोरवरावो ज्योतिष्कदेव-
विमानोद्भूतमृगेन्द्रकण्ठध्वनिविशेषः, पटहप्रणादो व्यन्तरनिवासगृहोत्पन्नदुन्दुभिः शब्दविशेषः, शङ्खस्वनश्च
भवनामरभवनोद्भूतशङ्खशब्दविशेषश्च, तैः समुत्पन्नो बोधो भगवत्केवल्यप्राप्त्यवगमो येषां तथाभूताः, १०
अनेकयानविमानारूढा नानावाहनव्योमयानाधिष्ठिताः कल्पज-ज्योतिष्क-व्यन्तर-भवनवासिरूपा ये चतुर्णि-
कायामराश्चतुर्विधदेवास्तैः परिवेष्टितः परिवृतः, प्रचुरतरं यथा स्यात्तथा प्रसूता विस्तृता ये निजाङ्गकान्ति-
कल्लोला निजकायकान्तितरङ्गास्तैः भूषणरत्नप्रभाभिश्च भूषणमणिमरोचिभिश्च गगनतलं नभस्तलम्
अलंकुर्वाणः, शोभयन्, नागदत्तनामधेयेन आभियोग्येशेन देवविशेषेण कल्पितं रचितम् ऐरावतं तन्नामगजम्
आरूढः, पुलोमजया शय्या परिष्कृतः शोभितः पाश्वर्गभागः सविषप्रदेशो यस्य तथाभूतः सौधर्मपुरंदरः प्रथम- १५
स्वर्गाधिपतिः, भगवतो वृषभदेवस्य केवल्यपूजार्थं केवलज्ञानकल्याणकसपर्यार्थं निश्चक्राम निर्जगाम । § ३९)
हारेति—हाराणां मुक्ताघट्टीनामंशवः किरणा एव स्वच्छनीरं निर्मलसलिलं यस्मिंस्तस्मिन्, सुरयुवतीनां
निलम्पतरुणीनां मुखान्येव अम्भोजानि मुखाम्भोजानि वदनवारिजानि, नेत्राण्येवोत्पलानि नेत्रोत्पलानि नयन-
कुवलयानि च तेषां श्रिया शोभया सारे श्रेष्ठे, काश्मीररागेण कुङ्कुमद्वयेण अरुणिता रक्तवर्णीकृताः कुचाः
स्तदा एव रथाङ्गाह्वयाश्चक्रवाकास्तैः शोभमाने, स्फारं प्रचुरं यथा स्यात्तथा प्रोद्धूताः उन्नमिताः चञ्च- २०
मरजाः शुम्भद्वालव्यज्रना एव कलहंसाः कादम्बास्तेषाम् आस्पदे स्थाने व्योमवाद्धौ गगनार्णवे एते दृश्यमानाः
मणिगणरुचिरा रत्नराजिरमणीयाः नाकेशानां देवानां विमाना व्योमयानाः नावं तरणिम् अन्वकुर्वन् विडम्ब-
यामासुः देवानां विमाना गगनार्णवे नौका इव बभूवुरिति भावः । रूपकोपमा । स्रग्धराछन्दः ॥२३॥

नाद, दुन्दुभियोंके शब्द तथा शंखोंके शब्दसे जिन्हें भगवान्के केवलज्ञान उत्पन्न होनेका
ज्ञान हो गया था तथा जो नाना प्रकारके वाहन और विमानोंपर चढ़कर आ रहे थे ऐसे २५
कल्पवासी ज्योतिष्क व्यन्तर और भवनवासी इन चार निकायके देवोंसे घिरा हुआ
सौधर्मेन्द्र भगवान्के केवलज्ञानकी पूजाके लिए निकला। उस समय वह सौधर्मेन्द्र, अत्यधिक
मात्रामें फैली हुई अपने शरीरकी कान्तिरूप तरंगोंसे तथा आभूषणोंमें लगे रत्नोंकी प्रभासे
आकाशतलको अलंकृत कर रहा था, नागदत्तनामक आभियोग्य जातिके देवोंके स्वामीके द्वारा
निर्मित ऐरावत हाथीपर बैठा हुआ था तथा इन्द्राणीसे उसका पाश्वर्गभाग सुशोभित हो रहा
था । § ३९) हारेति—जिसमें हारोंकी किरणें ही स्वच्छ जल था, जो देवांगनाओंके मुखरूपी ३०
कमल और नेत्ररूपी उत्पलोंकी शोभासे श्रेष्ठ था, जो केशरके रंगसे लाल-लाल स्तनरूपी
चक्रवाक पक्षियोंसे सुशोभित था तथा अविशय रूपसे ऊपरकी ओर उठाने हुए चञ्चल
चमररूपी कलहंस पक्षियोंका स्थान था ऐसे आकाशरूपी समुद्रमें मणिमण्डलसे सुशोभित

§ ४०) शश्वद्वादितदेवदुन्दुभिरवैरापूरिताशान्तरा-

लेखास्तुङ्गकिरीटरश्मिरचितानेकेन्द्रचापभ्रमाः ।

उन्मीलितनुकान्तिभिर्विदधतो दिग्भित्तिचित्रभ्रमं

देवास्थानमवातरन् धनदसंनिर्माणमिन्द्राज्ञया ॥२४॥

- ५ § ४१) यत्किल समवसरणस्थानं भूमिभागात्पञ्चसहस्रदण्डादुपरिवर्तमानं, द्वादशयोजन-
समवृत्तेकेन्द्रनीलशिलाघटितमसृणतलविलसिततया नीराकृताम्बरोऽप्यसौ देवो मया सेवितः सन्
अनन्तसौख्यानन्तसूरिति मत्वा समागतेन विनयसंकुचिताङ्गेन व्योमस्थलेनेव विलसमानं, दिवचतु-
ष्टयव्यवस्थितदेवमानवतिर्यग्भिनेयजनसुखारोहणहेतुभूतमणिमयविंशतिसहस्रसोपानविराजमानं, भुवन-
त्रयलक्ष्मीलपनविलोकनमणिदर्पणायमानं, वलयितवलरिपुचापशङ्काकरेण, मोक्षलक्ष्मीमणिमय-

- १० § ४०) शश्वदिति—शश्वद् निरन्तरं वादितास्ताडिता ये देवदुन्दुभयः सुरानकास्तेषां रवैः शब्दैः आपूरितानि
संभरितानि आशान्तराणि दिगन्तराणि यैस्ते, तुङ्गकिरीटानामुन्नतमुकुटानां रश्मिभिर्मरीचिभिः रचितः समु-
त्पादितः अनेकेन्द्रचापानां नानाशक्रशरानानां भ्रमः संदेहो यैस्ते, उन्मीलन्यः प्रकटीभवन्त्यो यास्तनुकान्तयो
देहदोमयस्ताभिः दिग्भित्तिषु काष्ठाकुड्येषु चित्रभ्रमम् आलेख्यसंशयं विदधतः कुर्वन्तः लेखा अमराः इन्द्राज्ञया
सौधमेन्द्रादेशेन धनदेन कुबेरेण संनिर्माणं यस्य तत् कुबेररचितं देवास्थानं देवस्य भगवतो वृषभस्य आस्थानं
१५ समवसरणम् अवातरन् अवतरन्ति स्म : शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥२४॥ § ४१ यदिति—यत् किल समव-
सरणस्थानं देवास्थानं भूमिभागात् भूपृष्ठात् पञ्चसहस्रदण्डात् पञ्चसहस्रपरिमितदण्डात् उपरि वर्तमानं
विद्यमानं, द्वादशयोजनसमवृत्ता द्वादशयोजनविस्तारयुक्ता समवृत्ता समा उच्चावचप्रदेशरहिता वृत्ता वर्तुला च
या एकेन्द्रनीलशिला अखण्डनीलमणिशिला तथा घटितं रचितं यन्मसृणतलं सचाकचव्यपृष्टं तस्मिन् विल-
सिततया शोभिततया असौ देवोऽयं भगवान् निराकृताम्बरोऽपि तिरस्कृताकाशोऽपि पक्षे तिरस्कृतवस्त्रोऽपि
२० मया अम्बरेण नभसेत्यर्थः सेवितः सन् अनन्तं सौख्यं यस्मिन् सः अनन्तसौख्यः अनन्तसौख्यश्चासावनन्तश्च
मोक्षश्चेति अनन्तसौख्यानन्तस्तं सूत उत्पादयतीति अनन्तसौख्यानन्तसूः इति मत्वा समागतेन समाधातेन
विनयेन संकुचितमङ्गं यस्य तेन तथाभूतेन व्योमस्थलेन गगनस्थलेनेव विलसमानं शोभमानं, दिवचतुष्टय-
व्यवस्थितः देवमानवतिर्यग्भिनेयजनसुखारोहणहेतुभूतः मणिमयविंशतिसहस्रसोपानैः विराजमानं, भुवनत्रय-
लक्ष्म्या जगत्त्रयश्चिया लपनविलोकनाय मुखदर्शनाय यो मणिदर्पणस्तद्वाचरत्, धूलिसालेन रत्नधूलिनिमित्त-
२५ प्राकारेण परीतं वेष्टितं, अथ च तमेव धूलिसालं वर्णयति—वलयितो मण्डलाकारोऽकृतो यो बलरिपुष्पाप

- देवोंके ये विमान नौकाओंका अनुकरण कर रहे थे ॥३२॥ § ४०) शश्वदिति—निरन्तर
बजाये हुए देवदुन्दुभियोंके शब्दोंसे जिन्होंने दिशाओंके अन्तरालको भर दिया था, ऊँचे-
ऊँचे मुकुटोंकी किरणोंसे जिन्होंने अनेक इन्द्रधनुषोंका भ्रम उत्पन्न किया था, तथा जो प्रकट
होती हुई शरीरकी कान्तिके द्वारा दिशारूप दीवालोंपर चित्रोंका भ्रम उत्पन्न कर रहे थे ऐसे
१० देव, इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरके द्वारा निर्मित भगवान्के समवसरणमें उतरे ॥२४॥ § ४१)
यदिति—वह समवसरण पृथिवीतलसे पाँच हजार दण्ड ऊपर विद्यमान था, बारह योजन
प्रमाण सम तथा गोल इन्द्र नीलमणिकी एक शिलासे निर्मित सचिक्रण तलपर सुशोभित
होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो यह भगवान् निराकृताम्बर—आकाशका तिरस्कार
करनेवाले (पक्षमें वस्त्रका त्याग करनेवाले) होकर भी मेरे द्वारा सेवित होते हुए अनन्त
१५ सुखसे युक्त मोक्षको उत्पन्न करनेवाले हैं ऐसा मानकर आये हुए तथा विनयसे संकुचित
शरीरको धारण करनेवाले नभस्थलसे ही सुशोभित हो रहा था । चारों दिशाओंमें स्थिर,
क्षिप्त मनुष्य तथा तिर्यंच सत्तिके शिष्य जनोंके सुखपूर्वक चढ़नेमें कारणभूत मणिमय मोक्ष

कङ्कणायमानेन, सभालक्ष्मीमणिघटितकटिसूत्रसदृशेन, पञ्चरत्नपांसुमयेन, क्वचिज्जाज्वल्यमान-
पद्मरागप्रभाभेदुरतया देवसद्धानाग्निकोलकलापसंवलितेनेव, परत्र विमलतरमुक्ताकान्तिमनोरम-
तया तन्मुखचन्द्रचन्द्रिकाविभ्रमं वितन्वता, क्वचन पद्मरागेन्द्रनीलरुचिरुचिरतया देवापरागसात्कृत-
कामक्रोधांशसंश्रितेनेव परिशोभमानेन, रजःश्रीविराजितेनापि नीरजश्रीविराजितेन, परागशोभि-
तेनापि अपरागशोभितेन, घनाशामलकान्तिनाप्यघनाशामलकान्तिना धूलिसालेन परीतं, चतुर्दिक्षु ५
शातकुम्भमयस्तम्भाग्रलम्बितमणिमयमकरतोरणरमणीयज्योतिरमरदोवारिकपरिपालितजातरूप -
मयगोपुराभ्यन्तरमहावीथिमध्यपरिशोभमानेन मूर्तिमुपगतेनेव भर्तुरनन्तचतुष्टयेन, पुरुषार्थचतुष्टय-

इन्द्रधनुस्तस्य शङ्काकरेण संदेहोत्पादकेन, मोक्षलक्ष्म्या मुक्तिश्रिया यो मणिमयकङ्कणस्तद्वदाचरता, सभा-
लक्ष्म्या समवसरणश्रिया यत् मणिघटितं रत्नस्रवितं कटिसूत्रं मेखलासूत्रं तस्य सदृशेन, पञ्चरत्नपांसुमयेन
पञ्चविधमणिधूलिनिर्मितेन, क्वचित् क्वापि जाज्वल्यमानानां देदीप्यमानानां पद्मरागाणां लोहितमणीनां प्रभाभिः १०
कान्तिभिर्मदुरतया मिलिततया देवस्य भगवतो यत् सद्धानाग्निः प्रशस्तध्यानपावकस्तस्य कोलकलापो
ज्वालासमूहस्तेन संवलितेनेव व्याप्तेनेव, परत्र अन्यत्र विमलतरमुक्तानामतिनिर्मलमुक्ताफलानां कान्त्या दीप्या
मनोरमतया मनोज्ञतया तन्मुखमेव भगवद्भदनमेव चन्द्रो विधुस्तस्य चन्द्रिकाया ज्योत्स्नाया विभ्रमं संदेहं
वितन्वता विस्तारयता, क्वचन क्वापि पद्मरागेन्द्रनीलयोलोहितनीलमण्यो रुचा कान्त्या रुचिरतया मनोहरतया १५
देवेन भगवता परागसात्कृता धूल्यघनीकृता ये कामक्रोधांशास्तैः संश्रितेनेव सेवितेनेव परिशोभमानेन
विराजमानेन, रजःश्रीविराजितेनापि धूलिश्रीविशोभितेनापि नीरजश्रीविराजितेन न धूलिश्रीविराजितेनेति
विरोधः पक्षे कमलश्रीविराजितेन, परागशोभितेनापि धूलिशोभितेनापि अपरागशोभितेन अधूलिशोभितेनेति
विरोधः पक्षे अपगतो रागो यस्य सोऽपरागो वीतरागो जिनेन्द्रस्तेन शोभितेन, घना आशा दिशस्तासु अमल-
कान्तिनापि तथा न भवतीति अघनाशामलकान्तिना इति विरोधः पक्षे अघनाशेन पापनाशेन अमला २०
कान्तिर्यस्य तेन । चतुर्दिक्षु शातकुम्भमयस्तम्भानां सौवर्णस्तम्भानामग्रेषु लम्बिता ये मणिमयमकरतोरणास्तैः
रमणीयानि, ज्योतिरमरदोवारिकैर्ज्योतिष्कदेवद्वारपालैः परिपालितानि रक्षितानि यानि जातरूपमयगोपुराणि
सुवर्णमयगोपुराणि तेषामभ्यन्तरमहावीथीनां मध्ये परिशोभमानेन, मूर्तिमाकृतिमुपगतेन प्राप्तेन भर्तुः

हजार सीढ़ियोंसे सुशोभित था तथा भुवनत्रयकी लक्ष्मीका मुख देखनेके लिए मणिमय
दर्पणके समान आचरण करता था । वह समवसरण जिस धूलिसालसे घिरा हुआ था वह २५
गोलाकार इन्द्रधनुषकी शंका कर रहा था, मोक्षलक्ष्मीके मणिमय कंकणके समान जान
पड़ता था, अथवा सभालक्ष्मीके मणिनिर्मित कटिसूत्रके समान था, पंचरत्नोंकी धूलिसे
तन्मय था, कहींपर देदीप्यमान पद्मरागमणियोंकी प्रभासे युक्त होनेके कारण ऐसा प्रतिभा-
सित होता था, मानो भगवान्के प्रशस्त ध्यानरूपी अग्निकी ज्वालाओंके समूहसे ही व्याप्त
हो रहा हो, कहीं निर्मल मोतियोंकी कान्तिसे मनोहर होनेके कारण भगवान्के मुखरूपी
चन्द्रमाकी चाँदनीके विभ्रमको विस्तृत कर रहा था, कहींपर पद्मराग और इन्द्रनील ३०
मणियोंकी कान्तिसे सुन्दर होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान्के द्वारा धूलिके
आधीन किये हुए काम और क्रोधके अंशोंसे ही सेवित हो रहा हो । रजःश्रीधूलिकी
शोभासे शोभित होकर भी निरजश्री—धूलिकी शोभासे शोभित नहीं था (पक्षमें कमलों
जैसी शोभासे सुशोभित था) परागशोभित—धूलिसे सुशोभित होकर भी अपरागशोभित—
धूलिसे सुशोभित नहीं था (परिहार पक्षमें वीतराग भगवान्से सुशोभित था) । घनाशामल- ३५
कान्ति—सघन दिशाओंमें निर्मल कान्तिका धारक होकर भी अघनाशामलकान्ति—सघन
दिशाओंमें निर्मल कान्तिका धारक नहीं था (परिहार पक्षमें पापोंके नाशसे निर्मल कान्तिको

प्रदानाय संसल्लक्ष्म्याः समुदस्तभुजदण्डचतुष्टयसंभावनासंपादकेन जातरूपधरेणाप्यम्बरस्पर्शन-
विलोलध्वजविराजितेन मानस्तम्भचतुष्टयेन जुष्टं चकासामास ।

§ ४२) विमलसलिलान्यस्य प्रान्ते सरांसि निरेजिरे

जिनदिनमणेर्भासा यत्रत्यकोकपरम्परा ।

५

निशि न विरहं भेजे भेजे च वारिजमण्डलं

मधुरसपरीवाहैर्मत्तद्विरेफमनोज्ञताम् ॥२३॥

§ ४३) त्रिविधगतिषु भ्रान्त्वा खिन्ना सुराधिकतोषिणी

बहुतरपरीतापि सा पङ्कजातसदोदयैः ।

- प्रभोः अनन्तचतुष्टयेनेव अनन्तज्ञानदर्शनमुखबोध्यरूपेणेव, पुरुषार्थानां धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुष्टयं तस्य
- १० प्रदानाय वितरणाय संसल्लक्ष्म्याः समवसरणश्रियाः समुदस्ताः समुन्नमिता ये भुजदण्डा बाहुदण्डास्तेषां चतुष्टयस्य संभावनायाः संपादकेन, जातरूपधरेणापि दिगम्बरमुद्राधरेणापि पक्षे सुवर्णधरेणापि अम्बरस्पर्शने वस्त्रस्पर्शने पक्षे गगनस्पर्शने विलोलाः सत्पूणाः पक्षे चपला ये ध्वजास्तैर्विराजितेन शोभितेन मानस्तम्भचतुष्टयेन जुष्टं सहितं चकासामास शुशुभे । श्लेषोत्प्रेक्षाविरोधाभासाः ।
- § ४२) विमलेति—अस्य मानस्तम्भचतुष्टयस्य प्रान्ते समीपे विमलसलिलानि निर्मलनीराणि तानि सरांसि
- १५ कासाराः विरेजिरे शुशुभिरे यत्रत्यकोकपरम्परा यत्र भवा यत्रत्या सा चासौ कोकपरम्परा च चक्रवाकसंतति-
श्चेति तथाभूता जिनदिनमणेर्जिनेन्द्रदिवाकरस्य भासा कान्त्या निशि रजन्यां विरहं चक्रवाकीभिः सह वियोगं न भेजे प्राप वारिजमण्डलं च कमलसमूहश्च मधुरसस्य मकरन्दस्य परीवाहैः प्रवाहैः मत्तद्विरेकैः मत्तभ्रमरैः मनोज्ञतां सुन्दरतां भेजे प्राप । रूपकालंकारः । हरिणीछन्दः ॥२४॥ § ४३) त्रिविधेति—त्रिविधगतिषु त्रिपथेषु पक्षे नारकतिर्यङ्मनुष्यपथीयेषु भ्रान्त्वा भ्रमणं कृत्वा खिन्ना प्राप्तखेदा सुराधिकतोषिणी सुरया
- २० मदिरया अधिकं यथा स्यात्तुष्यतीत्येवं शीला तथा पक्षे सुरान् देवान् अधिकं तोषयतीत्येवं शीला, पङ्कजात-
सदोदयैः पङ्कजानां पापानां जातस्य समूहस्य ये सदा शश्वत् उदया विपाकास्तैः बहुतरः प्रभूतः परीतापः संतापो यस्याः सा पक्षे पङ्कजातानां कमलानां सदा सर्वदा उदया विकासास्तैः बहुतरं प्रचुरं यथा स्यात्तथा

- धारण करनेवाला था) । वह समवसरण चारों दिशाओंमें जिन चार मान स्तम्भोंसे सहित था वे सुवर्णमय स्वम्भोंके अग्रभागमें लटकते हुए मणिमय मकराकर तोरणोंसे रमणीय तथा
- २५ ज्योतिष्क देवरूपी द्वारपालोंसे सुरक्षित सुवर्णमय गोपुरोंके भीतर महावीथियोंके मध्यमें सुशोभित थे । तथा ऐसे जान पड़ते थे मानो शरीरको प्राप्त हुए भगवान्के अनन्तचतुष्टय ही हों, अथवा चार पुरुषार्थोंको देनेके लिए समवसरणकी लक्ष्मीके ऊपर उठे हुए चार भुज-
दण्ड ही हों । वे मानस्तम्भ जातरूपधर—दिगम्बर वेषको धारण करनेवाले होकर भी अम्बर स्पर्शन विलोल ध्वजविराजित—वस्त्रके स्पर्श करनेमें सत्पूण ध्वजाओंसे सुशोभित
- ३० थे (परिहार पक्षमें सुवर्णके धारक होकर भी आकाशका स्पर्श करनेवाली चंचल ध्वजाओंसे सुशोभित थे) । § ४२) विमलेति—उन मानस्तम्भोंके समीप निर्मल जलसे भरे हुए ऐसे सरो-
वर सुशोभित ही रहे थे जिनमें रहनेवाले चक्रवर्त्तका समूह जिनेन्द्ररूपी सूर्यकी कान्तिके कारण रात्रिके समय वियोगको प्राप्त नहीं होता था और कमलोंका समूह मधुररसके प्रवाहोंसे मत्त भ्रमरोंके द्वारा सुन्दरताको प्राप्त होता रहता था ॥२५॥ § ४३) त्रिविधेति—जो आकाश
- ३५ मध्य और पातालके भेदसे तीन प्रकारकी गतियोंमें (पक्षमें नरक, तिर्यच और मनुष्य इन तीन गतियों में) भ्रमण कर खेदको प्राप्त हुई थी, जो मदिरासे अधिक सन्तोषको प्राप्त करती थी (पक्षमें जो देवोंको अधिक सन्तुष्ट करनेवाली थी) और पङ्कजात—पापसमूहका सद उदय

परिहृतभवासङ्गा गङ्गा जिनेन्द्रमुपासितुं

कलितकुतुका संसत्प्रान्तेऽभवज्जलखातिका ॥२४॥

§ ४४) सुराधिकासक्तिसमात्तपापं संत्यक्तुकामा शुनदी जिनस्य ।

सभान्तराले जलखातिकाभूदथाप्यपापा न बभूव चित्रम् ॥२५॥

§ ४५) तदभ्यन्तरभूभागे विमलविकचविविधकुसुमनिकरविगलितमधुरसनिरतमधुकरमधुर- ५
तररवमुखरितदिगन्तरा, मधुमदोपरक्तकामिनीकपोलकोमलच्छविना वनदेवताचरणालक्तकरस-
रञ्जितेनेव पल्लवप्रचयेन संछादिता, सुमनःसेविताप्यबोधा, अपरिमितपर्णसंचयापि सप्तपर्णोप-
शोभिता, पुष्पवत्यपि पवित्रा पुष्पवाटी चकासामास ।

परीता व्याप्ता आपो जलानि यस्यां सा गङ्गा त्रिपथगा परिहृतस्त्यक्तो भवस्य संसारस्य आसङ्गो यया पक्षे १०
परिहृतो भवस्य शिवस्य आसङ्गो यया तथाभूता जिनेन्द्रं वृषभेश्वरम् उपासितुं सेवितुं कलितकुतुका धृतकुतू-
हला सती संसत्प्रान्ते समवसरणप्रान्ते जलखातिका पथःपरिखा अभवत् । श्लेषः ॥२६॥ § ४४) सुरेति—
सुरायां मदिरायां या अविकासक्तिः प्रभूतलीनता तथा समस्तं गृहीतं यत्पापं तत् पक्षे सुरेषु देवेषु अविकासक्त्या
समात्तं यत्पापं तत् संत्यक्तुकामा मोक्षतुमनाः शुनदी विषद्गङ्गा जिनस्य भगवतः सभान्तराले सभामध्ये
जलखातिका पानीयपरिखा उदभूत् समुदपद्यत अथापि एतावतापि सा अपापा पापरहिता न बभूवेति चित्रं
पक्षे अपापा जलरहिता न बभूव । श्लेषः । उपजातिवृत्तम् ॥२७॥ § ४५) तदभ्यन्तरेति—तस्याः खाति- १५
काया अभ्यन्तरभूभागे पुष्पवाटी पुष्पोपवनी चकासामास शुशुभे । अथ तामेव पुष्पवाटीं विशेषयति—विम-
लानि समुज्ज्वलानि विकचानि विकसितानि विविधानि नानाप्रकाराणि यानि कुसुमानि पुष्पाणि तेषां निकरेभ्यः
समूहेभ्यो विगलितो निष्पतितो यो मधुरसः पुष्परसस्तस्मिन् निरता लीना ये मधुकरा भ्रमरास्तेषां मधुरतरा
अतिमधुरा ये रवाः शब्दास्तैर्मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि काष्ठान्तरालानि यस्यां तथाभूता, मधुमदेन
मधुमदेन उपरक्ता अरुणिता ये कामिनीनां स्त्रीणां कपोला गण्डस्थलानि तेषामिव कोमला मृदुला छविर्यस्य २०
तेन, वनदेवताचरणानां वनदेवीपादानामलक्तकरसेन यावकरङ्गेण रञ्जितेनेव पल्लवप्रचयेन किसलयकलापेन
संछादिता व्याप्ता, सुमनःसेवितापि विद्वत्सेवितापि अबोधा ज्ञानशून्येति विरोधः पक्षे सुमनःसेवितापि पुष्प-
सेवितापि अबोधा ज्ञानरहिता, अपरिमितानां पर्णानां पत्राणां संचयः संग्रहो यस्यां तथाभूतापि सप्तपर्णः
सप्तसंख्याकपत्रैरुपशोभितेति विरोधः पक्षे सप्तपर्णः विषमच्छदैः उपशोभिता 'सप्तपर्णी विशालत्वक् शारदो

रहनेसे बहुत भारी सन्तापसे युक्त थी (पक्षमें कमलोंका सदा विकास रहनेसे जो बहुत २५
भारी जलसे युक्त थी) वह गंगा नदी भव—शिवजी (पक्षमें) संसारकी आसक्तिको
छोड़कर जिनेन्द्र भगवान्की उपासना करनेके लिए कुतूहल वश समवसरणके समीप जलकी
परिखा बन गयी थी ॥२६॥ § ४४) सुरेति—सुराधिकासक्ति—मदिराकी अत्यन्त आसक्तिसे
(पक्षमें देवोंकी अत्यधिक आसक्तिसे) संचित पापको छोड़नेकी इच्छा करती हुई आकाश-
गंगा जिनेन्द्र देवके समवसरणके बीचमें जलकी परिखा बन गयी थी परन्तु वह उतनेपर भी ३०
अपापा—पापसे रहित (पक्षमें जलसे रहित) नहीं हुई थी यह आश्चर्यकी बात थी ॥२७॥
§ ४५) तदभ्यन्तरेति—उस परिखाके आगेकी भूमिमें ऐसी पुष्पवाटिका सुशोभित हो रही
थी जिसमें निर्मल तथा खिले हुए नाना प्रकारके पुष्पसमूहसे पतित मधुरसमें आसक्त
भ्रमरोंके अत्यन्त मधुर शब्दोंसे दिशाओंके अन्तराल शब्दायमान हो रहे थे, मदिराके नशासे ३५
लाल-लाल दिखनेवाले स्त्रीके गालोंके समान कोमल कान्तिसे युक्त अथवा वनदेवियोंके चरण
सम्बन्धी महावरसे रंगे हुएके समान लाल दिखनेवाले पल्लवोंके समूहसे जो आच्छादित
थी, बिद्वानोंसे सेवित होनेपर भी जो ज्ञानसे रहित थी (पक्षमें देवोंसे सेवित होनेपर

§ ४६) सालः स्वर्णमयस्ततः परमभूद्रौप्यैश्चतुर्गोपुरैः-

प्रत्युप्तः शिखरोल्लसन्मणिगणैर्नक्षत्रशङ्काकरः ।

सुस्वच्छैश्चतुरम्बुदैरुपगतः सुत्रामचापोत्करो

देवं सेवितुमेतमागत इति व्योमाध्वगैः शङ्कितः ॥२८॥

५ § ४७) सत्यं सुरेन्द्रचापः सालोऽभूदिति न संशयः कश्चित् ।

धनचापलताख्यातः सुमनोधर्मत्वमाप सपदि यतः ॥२९॥

§ ४८) द्वारेषु मङ्गलद्रव्याण्यष्टोत्तरशतं बभूवुः ।

भृङ्गारादीनि निधयो नवशङ्खादयस्तथा ॥३०॥

§ ४९) ततः परं दौवारिकयक्षपालिततद्गोपुरप्रान्तविलसितेन मृदुमृदङ्गनिनादगर्जनशोभि-

- १० विषमच्छदः' इत्यमरः, पुष्पवत्यपि रजस्वलापि पवित्रा शुचिरिति विरोधः पक्षे पुष्पवत्यपि कुसुमसहितापि पवित्रा । § ४६) साल इति—ततः परं पुष्पवाट्या अग्रे रौप्यै रजतमयैः चतुर्गोपुरैश्चतुःप्रधानद्वारैः प्रत्युक्तो युक्तः शिखरोल्लसन्मणिगणैः शृङ्गोल्लसद्गन्धराशिभिः नक्षत्रशङ्काकरस्तारिकाविधायकः स्वर्णमयः कनकमयः सालः प्राकारः अभूत् । यः सालः सुस्वच्छैरतिधवलैः चतुरम्बुदैश्चतुर्मेधैः उपगतः सहितः सुत्रामचापोत्करः शक्रशरासनसमूहः एतं देवं वृषभजिनेन्द्रं सेवितुमुपासितुम् आगतः समायत्त इतीत्थं व्योमाध्वगैः तारापथ-
१५ पथिकैः देवविद्याधरैरित्यर्थः शङ्कितः, संदिग्धः । संशयालंकारः । शार्ङ्गलविक्रीडितम् ॥२८॥ § ४७) सत्य-
मिति—सत्यं परमार्थतया सुरेन्द्रचापः इन्द्रधनुः सालः प्राकारः अभूत् इति कश्चित् कोऽपि संशयः संदेहो नाभूत् । यतो यस्मात्प्राकारात् स घनेषु, मेघेषु चपलता धनुर्वल्ली इति ख्यातः प्रसिद्धः पक्षे चपल एव चापल-
स्तस्य भावश्चापलता घना चासी चापलता चेति घनचापलता सातिशयचञ्चलता तथा ख्यातः प्रसिद्धः सन् सपदि शीघ्रं सुमनो धर्मत्वं सुमनसां देवानां धर्मत्वं कोदण्डत्वम् आप प्राप पक्षे देवस्वभावत्वम् आप । श्लेषः ।
२० आर्या ॥२९॥ § ४८ द्वारेष्विति—तथा किं च द्वारेषु प्रवेशमार्गेषु भृङ्गारादीनि भृङ्गारप्रभृतीनि अष्टोत्तरशतं अष्टोत्तरशतसंख्याप्रमितानि मङ्गलद्रव्याणि शङ्खादयश्च नवविधयो बभूवुः शुशुभिर । भृङ्गारादीनि मङ्गलद्रव्याणि अष्ट सन्ति, तानि च प्रत्येकम् अष्टोत्तरशतसंख्याप्रमितान्यासन् ॥३०॥ § ४९) तत इति—ततः परं सुवर्ण-
सालादनन्तरं दौवारिकयक्षद्वारपालयक्षनामकव्यन्तरदेवैः पालितानां रक्षितानां तद्गोपुराणां पूर्वोक्तप्रधान-

- ज्ञानसे रहित थी) अपरिमित पत्रोंके समूहसे युक्त होकर भी जो सप्तपर्ण—सात पत्रोंसे
२५ शोभित थी (पक्षमें सप्तपर्ण नामक वृक्षोंसे सुशोभित थी) और पुष्पवती—रजस्वला होकर भी जो पवित्र थी (पक्षमें फूलोंसे युक्त होकर भी उज्ज्वल थी) । § ४६) स्तल इति—उस पुष्पवाटिकाके आगे सुवर्णमय कोट था । वह कोट चाँदीसे बने हुए चार गोपुरोंसे युक्त था, उस कोटके शिखरोंपर जो मणियोंके समूह चमक रहे थे उनसे वह नक्षत्रोंकी शंका करता था तथा आकाशमें चलनेवाले देव विद्याधर उसके विषयमें ऐसी शंका करते थे कि अत्यन्त
३० स्वच्छ चार मेघोंसे सहित इन्द्रधनुषोंका समूह ही क्या इन वृषभ देवकी सेवा करनेके लिए आया है ? ॥२८॥ § ४७) सत्यमिति—सचमुच इन्द्रधनुष ही वह कोट बन गया था इसमें कुछ भी संशय नहीं है क्योंकि वह घन चापलताख्यात—मेघसम्बन्धी धनुषरूपी लता इस नामसे प्रसिद्ध था (पक्षमें अत्यधिक चंचलतासे प्रसिद्ध था) और उसने शीघ्र ही सुमनोधर्मत्व—देवोंके धनुषपनेको प्राप्त कर लिया था (पक्षमें देवस्वभावताको प्राप्त कर
३५ लिया था) ॥२९॥ § ४८) द्वारेष्विति—प्रत्येक द्वारोंपर एक सौ आठकी संख्यामें भृङ्गार आदि मंगल द्रव्य तथा शंख आदि नौ निधियाँ सुशोभित हो रही थीं ॥३०॥ § ४९) तत इति—उस सुवर्णमय कोटके आगे वह समवसरण सभा चाँदीसे बनी हुई नाट्यशालाओंके

तेन शम्पालतासंकाशनिलिम्पनटीसंगतेन राजतविराजितनाट्यशालायुगलेन वलितविद्युल्लता-
कलितस्तनितमुखरितशारदनीरदयुगलेनेव विराजमाना, ततश्च तदानीमुदारतपसा भगवता
निरस्तकर्मश्यामिकाशङ्काकरीं सौरभ्यलुब्धमधुकरश्रेण्या मञ्जुलमुञ्जितव्यञ्जितभेदां धूपधूम-
परम्परां जनयता प्रतिमार्गं परिलसता शातकुम्भकुम्भयुगेन संभाविता, ततः परं कामिनीजनेनेव
तरुणाञ्चितेन परिशोभितरूपगतेन पयोधरोज्ज्वलसरस्थितरमणीयेन सद्यस्तनस्तवकभरभरितेन ५

द्वाराणां प्रान्तशोभयत्तथोविलसितेन शोभितेन, मृदुमृदङ्गनिनाद एव कोमलमुरजशब्द एव गर्जनं स्तनितं तेन
शोभितेन समलङ्कृतेन, शम्पालतासंकाशा विद्युद्वल्लीसदृश्यो या निलिम्पवटयो देवर्तव्यस्ताभिः संगतेन
सहितेन, राजतेन रौप्येण विराजितं शोभितं यन्नाट्यशाला युगलं नाट्यभवनयुगं तेन वलिताः स्फुरन्त्यो या
विद्युल्लताः तद्विद्वल्यस्ताभिः कलितं सहितं स्तनितेन गर्जितेन मुखरितं शब्दायमानं च यत् शारदनीरदयुगलं
शरदृतुसंबन्धिवारिदयुगं तद्वत् तेन विराजमाना शोभमाना, ततश्च नाट्यशालानन्तरं च तदानो तस्मिन् १०
काले उदारतपसा महातपश्चरणेन भगवता वृषभेण निरस्ता दूरीकृता या कर्मश्यामिका कर्मकालिमा तस्याः
शङ्काकरीं संदेहोत्पादिकां सौरभ्यलुब्धा सौगन्ध्यलुब्धा या मुखमधुकराणां सुन्दरवटपदानां श्रेणीः पङ्क्तिस्तया
मञ्जुलमुञ्जितेन मनोहरगुञ्जनशब्देन व्यञ्जितः प्रकटितो भेदो वैशिष्ट्यं यस्यास्तां धूपधूमस्य सुगन्धितचूर्ण-
धूमस्य परम्परा संततिस्तां जनयता समुत्पाद्यता प्रतिमार्गं प्रतिसरणिं परिलसता शोभमानेन शातकुम्भकुम्भ-
युगलेन सुवर्णकलशयुगमेव संभाविता शोभिता, ततः परं धूपधट्युगलानन्तरं क्रीडोद्यानचतुष्टयेन केत्युपवन- १५
चतुष्टयेन जुष्टा सहिता तस्य भगवतः सभा विभाति स्म शोभते स्म । अथ तदेव क्रीडोद्यानचतुष्टयं विशेषयितु-
माह—कामिनीजनेनेव वनितावन्दनेन, उभयोः सादृश्यं यथा—तरुणाञ्चितेन तरुणा वृक्षेण जातित्वादेकवचनं
अञ्चितेन शोभितेन कामिनीपक्षे तरुण्युवभिरञ्चितेन शोभितेन, परिशोभितरूपगतेन—परिशोभिनो ये तरवो
वृक्षास्तैरूपगतेन सहितेन कामिनीपक्षे परिशोभितं यद् रूपं सौन्दर्यं तद् गतेन प्राप्तेन, पयोधरोज्ज्वलसरस्थिति-
रमणीयेन पयोधराणि जलधराणि उज्ज्वलानि निर्मलानि यानि सरांसि सरोवरास्तेषां स्थित्या सद्भावेन २०
रमणीयं तेन कामिनीपक्षे पयोधरेषु स्तनेषु उज्ज्वला देदोप्यमाना ये सरा हारास्तेषां स्थित्या रमणीयेन,
सद्यस्तनस्तवकभरविराजितेन सद्योभवाः सद्यस्तनाः तै च ते स्तवकाश्च गुच्छकाश्च तेषां भरेण समूहेन विरा-

उस युगलसे सुशोभित हो रही थी जो द्वारपाल रूप यक्ष जातिके देवोंसे सुरक्षित गोपुरोंके
समीपमें सुशोभित थे, जो मृदङ्गोंके कोमल शब्दरूप गर्जनासे युक्त थे, जिनमें बिजली रूपी
लताओंके समान देव नर्तकियाँ नृत्य कर रही थीं और जो कौंदती हुई बिजलीरूपी लताओंसे २५
युक्त तथा गर्जनासे शब्दायमान शरदृत्तुके मेघ युगलके समान जान पड़ते थे । नाट्य-
शालाओंसे आगे चलकर वह सभा प्रत्येक मार्गमें सुशोभित सुवर्णमय धूपघटोंके उस युगलसे
सुशोभित हो रही थी जो उस समय उत्कृष्ट तपसे युक्त भगवान्के द्वारा दूर की हुई कर्म
कालिमाकी शंकाको करनेवाली सुगन्धित धूपके धूमकी परम्पराको उत्पन्न कर रहे थे उस
धूमकी परम्परापर सुगन्धके लोभी सुन्दर भ्रमरोंकी पंक्ति भी मँडरा रही थी, उसकी मनोहर ३०
गुंजारसे धूमपरम्परा और भ्रमर पंक्तिमें भेद प्रकट हो रहा था । धूप घटोंसे आगे चलकर
वह सभा क्रीड़ाके उन चार उपवनोसे सुशोभित हो रही थी जो ठीक स्त्री समूहके समान थे,
क्योंकि जिस प्रकार स्त्रीसमूह तरुणांचित—तरुण पुरुषोंसे अंचित होता है उसी प्रकार
उपवन भी तरुणांचित—वृक्षोंसे अंचित सुशोभित थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह परिशोभित-
रूपगत—अत्यन्त शोभायमान रूपसे सहित होता है उसी प्रकार उपवन भी परिशोभित ३५
तरूपगत—अत्यन्त शोभायमान वृक्षोंसे सहित थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह पयोधरोज्ज्वल

गगनमध्यजघनक्रीडाशैलविलसितेन कर्णिकारचितोदयेन घनामलकावलिं बिभ्राणेन विभ्रमोज्ज्वलेन च, सरागजनेनेव लताङ्गीकृतप्रणयेन पल्लवाभिख्याञ्चितेन च, वनीविख्यातेनाप्यवनीविख्यातेन, सुरसुन्दरीजनसंदोहानन्दकरशालाशोभितेनापि विशालेन, त्रिमेखलापीठाधिष्ठितगगनचुम्बिचैत्य-तश्शोभितमध्यभागेन क्रीडोद्यानचतुष्टयेन जुष्टा तस्य सभा विभाति स्म ।

- ९ जितेन शोभितेन कामिनीपक्षे सद्यो क्षतिरिति स्तनाः कुचाः स्तवकभरा इव गुच्छसमूहा इव तैर्भरितेन सहितेन, गगनमध्यजघनक्रीडाशैलविलसितेन गगनमध्यजा आकाशमध्योत्पन्ना ये घना मेघास्तद्वत् ये क्रीडाशैलाः क्रीडा-चलास्तैर्विलसितेन शोभितेन कामिनीपक्षे गगनमिव मध्यं गगनमध्यं कुशतरकटिप्रदेशः जघनं नितम्बं क्रीडाशैल इव इति जघनक्रीडाशैलः गगनमध्यं च जघनक्रीडाशैलश्चेति गगनमध्यजघनक्रीडाशैली तान्यां विलसितेन, कर्णिकारचितोदयेन कर्णिकारैः 'कनेर' इति प्रसिद्धवृक्षैश्चितो व्याप्त उदयो यस्य तेन कामिनीपक्षे कर्णिकाभिः
- १० कर्णाभरणे रचित उदयो यस्य तेन घनामलकावलिं घनाः प्रचुरा ये आमलका घातकोवृक्षास्तेषामावलिं पङ्क्तिं कामिनीपक्षे घनां सान्द्राम् अलकावलिं कुन्तलसमूहं बिभ्राणेन दवानेन, विभ्रमोज्ज्वलेन च वीणां पक्षिणां भ्रमेण संचारेण उज्ज्वलं तेन कामिनीपक्षे विभ्रमा विलासास्तैरुज्ज्वलेन, सरागजनेनेव रागिगणेष्वेव लताङ्गीकृतप्रण-येन लताभिर्वल्लीभिरङ्गीकृतः प्रणयो विस्तारो यस्य तेन सरागजनपक्षे लताङ्गीषु स्त्रीषु कृतः प्रणयः स्नेहो येन तेन, पल्लवाभिख्याञ्चितेन पल्लवानां किसलयानामभिख्या शोभा तयाञ्चितेन सहितेन सरागजनपक्षे पल्लवो
- १५ विट इति अभिख्या नाम तेनाञ्चितेन सहितेन च वनीविख्यातेनापि वनी वाटिका इति विख्यातेन प्रसिद्धेनापि अवनीविख्यातेन तद्विरुद्धेनेति विरोधः पक्षे अवनीविख्यातेन पृथिवीप्रसिद्धेन, सुरसुन्दरीजनानां देवाङ्गनानां संदोहः समूहस्तस्य आनन्दकरा हर्षोत्पादिका याः शाला भवनानि ताभिः शोभितेनापि विशालेन विगता शाला यस्मिन्नेति विरोधः पक्षे विशालेन विस्तृतेन त्रिमेखलाभिरुपलक्षिताः पीठास्त्रिमेखलापीठास्तत्राधि-

- सरस्थितिरमणीय—स्तनोंपर देदीप्यमान निर्मल हारोंकी स्थितिसे सुन्दर होता है उसी
- २० प्रकार उपवन भी पयोधरोज्ज्वल सरस्थिति-रमणीय—जलको धारण करनेवाले निर्मल सरोवरोंकी स्थितिसे सुन्दर थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह सद्यस्तनस्तवकभरभरित—शीघ्र ही गुच्छोंके समान स्तनोंके भारसे युक्त होता है उसी प्रकार उपवन भी तत्काल विकसित गुच्छोंके समूहसे युक्त थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह गगनमध्य-जघनक्रीडाशैलविलसित—आकाशके समान कुश कमर और क्रीडाचलके समान स्थूल नितम्बोंसे सुशोभित होता है
- २५ उसी प्रकार उपवन भी गगनमध्यजघन-क्रीडाशैलविलसित—आकाशके मध्यमें उत्पन्न मेघोंके समान क्रीडाचलोंसे सुशोभित थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह कर्णिकारचितोदय—कानके आभूषणोंसे रचित वैभवसे युक्त होता है उसी प्रकार उपवन भी कर्णिकारचितोदय-कनेरके वृक्षोंसे व्याप्त अभ्युदयसे युक्त थे, जिस प्रकार स्त्रीसमूह घनामलकावलिं बिभ्राणः—सघन केशोंकी पंक्तिको धारण करता है उसी प्रकार उपवन भी सघन आवलोंकी पंक्तिको
- ३० धारण करते थे, और जिस प्रकार स्त्री समूह विभ्रमोज्ज्वल—हाव-भावोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार उपवन भी विभ्रमोज्ज्वल—पक्षियोंके संचारसे सुशोभित थे। अथवा जो उपवन रागी मनुष्यके समान थे क्योंकि जिस प्रकार रागी मनुष्य लताङ्गीकृतप्रणय—स्त्रियोंमें प्रेम करनेवाला होता है उसी प्रकार उपवन भी लताङ्गीकृतप्रणय—लताओंके द्वारा स्वीकृत विस्तारसे सहित थे और जिस प्रकार रागी मनुष्य पल्लवाभिख्याञ्चित—पल्लव-
- ३५ विट इस नामसे सहित होता है उसी प्रकार उपवन भी पल्लवाभिख्याञ्चित—नये-नये पत्तोंकी शोभासे सहित थे। जो उपवन वनीविख्यात—वनी इस नामसे प्रसिद्ध होकर भी अवनी-विख्यात—वनी इस नामसे प्रसिद्ध नहीं थे (परिहार पक्षमें अवनी-पृथिवीपर प्रसिद्ध थे) तथा देवाङ्गनाओंके समूहको हर्ष उत्पन्न करनेवाली शालाओंसे सुशोभित होकर भी विशाल-

§ ५०) रत्नस्तम्भोरुलक्ष्मीस्तदनु मणिगणैर्भूषितां स्वर्णवेदीं

बिभ्राणेषा सदा मङ्गलमुखजघनश्रीपरीताभ्रमध्या ।

लोलाक्षीवद्विरेजे प्रकटितसुमनोजातपुष्पद्विलासा

चञ्चत्स्वर्णाशुकान्ता सकलजनदृशां तृप्तिहेतुर्मनोज्ञा ॥३१॥

§ ५१) गजवृषभवस्त्रचक्राम्बुजमुख्यैरञ्जिता ध्वजश्रेणी ।

वोध्यन्तरालभूमौ स्वर्णस्तम्भाग्रलम्बिता रेजे ॥३२॥

छिताः स्थिता गगनचुम्बिनः अत्युन्नता ये चैत्यतटवः चैत्यवृक्षास्तैः शोभितो मध्यभागो यस्य तेन क्रीडोद्यान-
चतुष्टयेन । § ५०) रत्नेति—तदनु तदनन्तरम्, एषा वर्णयमाना सभा लोलाक्षीवत् ललनावत् विरेजे शुशुभे ।
अथोभयोः सादृश्यमाह—रत्नस्तम्भोरुलक्ष्मीः रत्नस्तम्भैर्मणिमयस्तम्भैः उरुर्महती लक्ष्मीः शोभा यस्याः सा
लोलाक्षीपक्षे रत्नस्तम्भा एव ऊरवः सक्शोनि तेषां लक्ष्मीर्यस्याः सा, मणिगणै रत्नसमूहैः भूषितां समलंकृतां १०
स्वर्णवेदीं सदा सर्वदा मङ्गलं मङ्गलरूपां बिभ्राणा दधाना लोलाक्षीपक्षे मणिगणभूषितस्वर्णवेदीरूपां सदामं
दामसहितं गलं कण्ठं बिभ्राणा, उरुजा प्रभूतोत्पन्ना या घनश्री मेघशोभा तथा परीतं व्याप्तं अभ्रमव्यं गगनमध्यं
यस्यां सा, लोलाक्षीपक्षे उरुजघनस्य स्थूलनितम्बस्य त्रिया शोभया परीता व्याप्ता, अभ्रमिव गगनमिव मध्यं
यस्याः सा कृशमध्येत्यर्थः, प्रकटिता प्रादुर्भाविताः सुमनोजातानां पुष्पसमूहानां पुष्पद्विलासाः प्रकृष्टशोभा यस्यां
सा लोलाक्षीपक्षे प्रकटिताः सुमनोजातस्य सुमदनस्य विलासा बिभ्रमा यया सा, चञ्चद् देदीप्यमानं यत्स्वर्णं १५
काञ्चनं तस्य अंगुलिः किरणैः कान्ता मनोहरा लोलाक्षीपक्षे चञ्चन् शोभमानः स्वर्णाशुकस्य स्वर्णवस्त्रस्यान्तो
यस्याः सा, सकलजनदृशां निखिलजननयनानां तृप्तिहेतुः संतोषकारणम्, मनोज्ञा मनोहारिणी इति विशेषण-
द्वयमुभयत्र समानम् । श्लेषोपमा । स्रग्धराछन्दः ॥३१॥ § ५१) गजेति—वीथीनां प्रधानमार्गाणां अन्तराल-
भूमौ मध्यभूमौ स्वर्णस्तम्भाग्रेषु लम्बिता समारोपिता स्वर्णस्तम्भाग्रलम्बिता गजश्च वृषभश्च वस्त्रं च चक्रं च
अम्बुजं चेति गजवृषभवस्त्रचक्राम्बुजानि तान्येव मुख्यानि तैः अञ्जिता शोभिता ध्वजश्रेणी पताकापङ्क्तिः रेजे २०
शुशुभे । समवसरणे ध्वजा दशप्रकारा भवन्ति तथाहि—‘स्रग्वस्त्रसहस्रानाञ्जहंसवीनमृगेशिनाम् । वृषभेभ्योऽद्रचक्राणां

शालाओंसे रहित थे (परिहार पक्षमें विस्तृत थे) और जिन उपवनोंका मध्यभाग तीन
कटनियोंसे युक्त पीठोंपर स्थित गगनचुम्बी चैत्य वृक्षोंसे सुशोभित हो रहा था । § ५०)
रत्नेति—तदनन्तर—उपवनोंके आगे सदा मंगल स्व-स्वरूप स्वर्णवेदीको धारण करती हुई
वह सभा स्त्रीके समान सुशोभित हो रही थी क्योंकि जिस प्रकार स्त्री रत्नोंके खम्भोंके २५
समान ऊरुओं—जाँघोंको शोभासे सहित होती है उसी प्रकार वह सभा भी रत्नमय खम्भोंकी
बहुत भारी शोभासे सहित थी, जिस प्रकार स्त्री सदा मंगलमाला सहित कण्ठको धारण
करती है उसी प्रकार वह सभा भी मणिगणोंसे विभूषित सदा मंगलस्वरूप स्वर्णवेदीको
धारण कर रही थी, जिस प्रकार स्त्री स्थूल नितम्बोंकी शोभासे सहित तथा आकाशके समान
पतली कमरसे युक्त होती है उसी प्रकार सभा भी अत्यधिक मात्रामें उत्पन्न मेघोंकी शोभासे ३०
आकाशके मध्यको व्याप्त करनेवाली थी, जिस प्रकार स्त्री सुमनोजात—कामदेवके सुन्दर
विलासोंको प्रकटित करती है उसी प्रकार सभा भी सुमनोजात—पुष्प समूहकी अत्यधिक
शोभाको प्रकट कर रही थी, जिस प्रकार स्त्री शोभायमान स्वर्णमय वस्त्रके अंचलसे सहित
होती है उसी प्रकार सभा भी देदीप्यमान स्वर्णकी किरणोंसे सुन्दर थी, जिस प्रकार स्त्री समस्त
मनुष्योंके नेत्रोंकी तृप्तिका कारण तथा मनोहर होती है उसी प्रकार सभा भी समस्त ३५
मनुष्योंकी तृप्तिका कारण तथा मनोहर थी ॥३१॥ § ५१) गजेति—वीथियोंकी अन्तराल
भूमिमें स्वर्णमय खम्भोंके ऊपर अवलम्बित हाथी, बैल, वस्त्र, चक्र तथा कमल आदिके

§ ५२) ततः परमष्टमङ्गलनवनिधिसमेतनाट्यशालाधूपघटध्वजाभिरामनागकुमारद्वार-
पालकविराजितेन, रजतमयगोपुरचतुष्टयसंगतेन देवेन करिष्यमाणां धर्मव्याख्यां श्रोतुमागत्य वलया-
कृतिमुपेतनेन मानुषोत्तरपर्वतेन, शुभरुचिरसालेनापि कनकाभिख्याञ्चितेन अद्वितीयेनापि द्वितीयेन

५ वनेन विलसमाना, ततश्चतुरगोपुरविराजमानया सादरैः सुरैः समानीय निवेशितमेव कैलासाचला-
धित्यकया वज्रमयवेदिकया सुरतरुकुसुमकिसलयनिचयविरचितवन्दनमालासुन्दरैर्दशभी रत्नतोरणः
प्रकाशमाना, ततः पद्मरागनयेर्मूर्तेरिव जनानुरागैः सुरनिकरनिरन्तरसेव्यमानैस्ताद्रूप्यभुगता-

ध्वजाः स्फुटशभेदकाः । अष्टोत्तरशतं ज्ञेयाः प्रत्येकं पालिकेतनाः । एकैकस्यां दिशि प्रोच्चास्तरङ्गास्तोयधेरिव ।'
इत्यादिपुराणे जिनसेनोक्तत्वात् । आर्याच्छन्दः ॥३२॥ § ५२) तत इति—ततः परं ध्वजभूमिमतिक्रम्याग्रे

- १० अष्टमङ्गलनवनिधिमिः समेतः नाट्यशालाधूपघटध्वजाभिरामः नागकुमारद्वारपालकविराजितश्च तेन, रजत-
मयगोपुराणां चतुष्टयेन संगतस्तेन, देवेन वृषभजिनेन्द्रेण करिष्यमाणां विधास्यमानां धर्मव्याख्यां श्रोतुं
निशामयितुम् आगत्य वलयाकृति कङ्कणाकारम् उपगतेन प्राप्तेन मानुषोत्तरपर्वतेनैव, शुभरुच्या प्रशस्तकान्त्या
रसालेनापि आभ्रेणापि कनकाभिख्याञ्चितेन घटूरकवृक्षनामधेयसहितेन, पक्षे शुभरुचिरश्चासौ सालः परिधिरचेति
शुभरुचिरसालस्तेन तथाभूतेनापि कनकस्य सुवर्णस्य अभिख्या शोभा तयाञ्चितेन सहितेन, अद्वितीयेनापि प्रथमे-
१५ नापि द्वितीयेन पक्षे अद्वितीयेनापि निरुपसेणापि द्वितीयेन द्वितीयसंख्याकेन प्राकारेण सालेन परिगता परिवृता,
ततश्च द्वितीयसालानन्तरं च सिद्धार्थाभिः सिद्धप्रतिमाभिः सनाथः सहितो यः सिद्धार्थवृक्षः सिद्धार्थनामधेयवृक्ष-
स्तेनाङ्कितो मध्यभागो यस्य तेन, कल्पेश्वरेण कल्पवासिदेवेन्द्रेण सेवितं यत् कल्पद्रुमवर्नं कल्पतरुधानं तेन
विलसमाना शोभमाना, ततः कल्पद्रुमवनादग्रे चतुर्गोपुरैः विराजमानया शोभमानया सादरैः सुरैः समानीय
निवेशितया स्थापितया कैलासाचलस्याधित्यका उपरितनभूमिस्तयेव वज्रमयवेदिकया, सुरतरुणां कल्पानो-
२० कहानां कुसुमकिसलयनिचयेन पुष्पपल्लवसमूहेन विरचिता या वन्दनमालास्ताभिः सुन्दरै रम्यैः दशभि रत्न-
तोरणैः प्रकाशमाना, ततः पद्मरागमयैर्लोहितमणिनिर्मितैः मूर्तैः साकारैः जनानुरागैरिव लोकप्रोतिभिरिव,

चिह्नोसे युक्त ध्वजाओंकी पंक्ति सुशोभित हो रही थी ॥३२॥ § ५२) ततः परमिति—

- ध्वजाओंकी भूमिसे आगे चलकर वह सभा उस प्रकारसे परिवृत थी जो अष्ट मंगल द्रव्य
तथा नव निधियोंसे सहित नाट्यशालाओं, धूपघट और ध्वजाओंसे सुन्दर तथा नागकुमार
२५ नामक द्वारपालोंसे सुशोभित, चाँदीसे निर्मित चार गोपुरोंसे युक्त था, जो ऐसा जान पड़ता
था मानो भगवान्‌के द्वारा की जानेवाली धर्मकी व्याख्याको सुननेके लिए आकर बलयके
आकारको प्राप्त हुआ मानुषोत्तर पर्वत ही हो, जो शुभ कान्तिके द्वारा रसाल—आम्ररूप
होकर भी कनक—धतूरा इस नामकी प्राप्त हो रहा था (पक्षमें शुभ तथा सुन्दर साल—
प्राकार होकर भी कनकाभिख्या—स्वर्णकी शोभासे सहित था,) तथा अद्वितीय—द्वितीयसे
३० भिन्न होकर भी द्वितीय था (पक्षमें अनुपम होकर भी संख्यामें द्वितीय था) । उस द्वितीय
प्राकारसे आगे चलकर वह सभा उस कल्पवृक्षोंके वनसे सुशोभित हो रही थी जिसका
मध्यभाग सिद्धप्रतिमाओंसे सहित सिद्धार्थ वृक्षोंसे युक्त था, तथा कल्पवासी देवोंके इन्द्रके
द्वारा जो सेवित था । उससे आगे चलकर उस वज्रमय वेदिकासे घिरी हुई थी जो चार
गोपुरोंसे सुशोभित थी तथा देवोंके द्वारा लाकर रखी हुई कैलास पर्वतकी अधित्यका—
३५ उपरितन भूमिके समान जान पड़ती थी । उस वेदिकामें कल्प वृक्षोंके फूलों और पल्लवोंके
समूहसे निर्मित वन्दन-मालाओंसे सुन्दर दश रत्नमय तोरण थे उनसे वह सभा प्रकाशमान
हो रही थी । आगे चलकर उन नौ स्तूपोंसे सुशोभित थी जो पद्मरागमणियोंसे निर्मित थे तथा

भिरिव भगवतो नवकेवललब्धिभिरिव जिनपतिसेवाहेवाकभावेन प्रादुर्भूतैरिव नवपदार्थगंगतल-
चुम्बिभिरर्चासनाथैर्नवभिः स्तूपैः परिष्कृता समवसृतिधरा विरराज ।

§ ५३) आकाशो बहुधातपःस्थितियुतस्त्यक्तुं निराकारतां

देवस्यास्य सभान्तरे स्फटिकसत्प्राकाररूपोऽभवत् ।

सत्यं किं तु पुरा सुमेषु विलसत्संसर्गशून्योऽधुना-

प्येवं युक्तमिदं तु चित्रमधिकं सालोऽप्यवन्पुञ्ज्वलः ॥३३॥

§ ५४) अथवा विजयार्धमहीधरः किल दुर्वर्णधर इत्यपरख्यातिं परिमाण्डुं उत्तमवर्णसेव्यतां
प्राप्तुं कृतादरतया, यद्वा महाबलभवप्रभृतिसंजातप्रणयेन, यदि वा सुमेरुहि पुरा जन्माभिषेकाधिकरण-

सुरनिकरेण वृन्दारकवृन्देन निरन्तरं शश्वत् सेव्यमानैः, ताद्रूप्यं नवस्तूपाकारम् उपगताभिः प्राप्ताभिः भगवतो
जिनेन्द्रस्य नवकेवल लब्धिभिरिव ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्यसम्पत्त्वचारित्र्याणि नवकेवललब्धयः १०
कथ्यन्ते, यद्वा अथवा जिनपतिसेवाहेवाकभावेन जिनेन्द्रोपासनान्नभावेन प्रादुर्भूतैः प्रकटितैः नवपदार्थैरिव
जीवाजीवास्त्रवन्धसंवरनिर्जराभोक्षपुण्यपापानि जैनागमे नवपदार्थाः कथ्यन्ते । गगनतलचुम्बिभिर्नभस्तल-
चुम्बनशीलैः समुत्तुङ्गैरिति यावत्, अर्चासनाथैः जिनप्रतिमासहितैः नवभिः स्तूपैः परिष्कृता शोभिता समवसु-
तिधरा समवसरणभूमिः विरराज शुशुभे । श्लेषविरोधाभासोत्प्रेक्षाः । § ५३) आकाश इति—आकाशो गगनं
बहुधा नानाप्रकारस्यातपस्य धर्मस्य स्थित्या युतः पक्षे बहुधानानाप्रकाराणि यानि तपांसि तपस्वरणानि तेषां १५
स्थित्या युतः सन् निराकारतां स्वकीयामाकृतिहीनतां त्यक्तुम् अस्य देवस्य भगवतः सभान्तरे सभामध्ये,
स्फटिकस्य सितोपलस्य सत्प्राकाररूपः प्रशस्तसालाकारः अभवत्, इति सत्यम्, किंतु पुरा पूर्वं सुमेषोः कामस्य
विलसत्संसर्गेण शोभमानसंपर्केण शून्योऽभवत् तथा अधुनापि साम्प्रतं सुमेषु पुष्पेषु विलसत्संसर्गेण शोभमान-
संपर्केण शून्योऽभवत् एवं युक्तमुचितं । तु किंतु इदमेतत् अधिकं चित्रं विस्मयास्पदं यत् स सालोऽपि वृक्षोऽपि
सन् न वन्यां वने उज्ज्वल इति अवन्पुञ्ज्वलः परिहारपक्षे सालोऽपि प्राकारोऽपि अवन्त्यां पृथिव्यामुज्ज्वलो २०
देदीप्यमानः । 'सालः पादपमात्रे स्यात्प्राकारे सर्जपादपे' इति मेदिनी । श्लेषविरोधाभासोत्प्रेक्षाः । शार्दूलवि-
क्रीडितच्छन्दः ॥३३॥ § ५४) अथवेति—अथवा उत्प्रेक्षणान्तरमाह—विजयार्धमहीधरो रजताचलः किल
दुर्वर्णधरो दुष्टो वर्णो दुर्वर्णो हीनवर्णस्तस्य घर इति अपरख्यातिम् अपरनामपक्षे रजताचलः परिमाण्डुं
दूरीकर्तुम्, उत्तमवर्णेन उच्चवर्णेन सेव्यता तां प्राप्तुं कृतादरतया पक्षे उत्तमवर्णः सेव्यो यस्य तस्य भावस्तां

ऐसे जान पड़ते थे मानो मूर्तिधारी मनुष्योंका अनुराग ही हो, जो देव समूहके द्वारा २५
निरन्तर सेवित थे, अथवा जो ऐसे जान पड़ते थे मानो तद्रूपपनेको प्राप्त हुई भगवान्की
नौ केवललब्धियाँ ही हों, अथवा जिनेन्द्र भगवान्की सेवाके नम्र भावसे प्रकट हुए जीवा-
जीवादि नौ पदार्थ ही हों, जो गगनतलका चुम्बन कर रहे थे अर्थात् अत्यन्त ऊँचे थे और
प्रतिमाओंसे सहित थे । § ५३) आकाश इति—बहुत प्रकारके तपस्वरणकी स्थितिसे सहित
(पक्षमें बहुत भारी धामकी स्थितिसे सहित) आकाश निराकारपनेको छोड़नेके लिए इन ३०
वृषभजिनेन्द्रकी सभाके भीतर स्फटिकका समीचीन प्राकार बन गया था यह सत्य है किन्तु
जिस प्रकार वह पहले सुमेषु विलसत्संसर्गशून्य—कामके शोभायमान संसर्गसे शून्य था
उसी प्रकार अब भी सुमेषु—पुष्पोपर विलसत्संसर्गशून्य—शोभायमान संसर्गसे शून्य था
यह सही बात है परन्तु सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि वह साल—वृक्ष
होकर भी अवन्पुञ्ज्वल—वनमें शोभायमान नहीं था (पक्षमें प्राकार होकर अवन्ती—
पृथिवीमें शोभायमान था) । § ५४) अथवेति—अथवा ऐसा जान पड़ता है कि विजयार्ध ३५
पर्वत ही आकाश स्फटिकसे निर्मित प्राकारके रूपमें वहाँ उत्पन्न हो गया था, विजयार्ध

तयाअधुना तु भगवतः पादस्पर्शनक्षमसिंहासनरूपेण च सेवां विधाय, विहाय च सुरासक्तिं, दोषाकर-संसर्गमनुदिनं पङ्कजातसहचरतया भ्राम्यतः स्वयं वसुमतोऽपि सद्बृन्दवसुमोषकस्य, भूमौ वर्तमानानां स्वर्णस्थितिं करेरपहरतः, तथा चरमाचलयोगं प्राप्तस्यापि पूर्वाशावशेन महोदयभूभृत्सेवां कुर्वतो जडबन्धोः सख्यं च परिहृत्य सकलभूधरश्रेष्ठतां कल्याणसंपदा जातरूपधरत्वेन भगवतः

- ५ प्राप्तुं कृतादरतया, यद्वा महाबलभवप्रभृतिषु संजातः समुत्पन्नो यः प्रणयः स्नेहस्तेन नूनमित्युत्प्रेक्षायां आकाशस्फटिकघटितश्चासीत् तत्सालश्चेत्याकाशस्फटिकघटिततत्सालस्तस्यात्मना तद्रूपेण समजायत समुद-पद्यत । यदि वा अथवा उत्प्रेक्षणान्तरमाह—सुमेरुहि मेरुः खलु पुरा प्राक् जन्मवेलायां जन्माभिषेकस्य अधिकर-णतया आधारत्वेन अधुना तु ज्ञानकल्याणकावसरे भगवतो वृषभस्य पादस्पर्शने चरणस्पर्शने क्षमं समर्थं यत्सिंहासनं तस्य रूपेण च सेवां विधाय कृत्वा, सुरासक्तिं सुरेषु देवेषु आसक्तिस्तां पक्षे सुरायां मदिरादामा-
१० सक्तिस्तां दोषाकरसंसर्गं च दोषाकरस्य चन्द्रस्य संसर्गस्तं पक्षे दोषाणामवगुणानामाकरः खनिस्तस्य संसर्गं च विहाय त्यक्त्वा, अनुदिनं प्रतिदिवसं पङ्कजातसहचरतया कमलमित्रतया पक्षे पापसमूहसहगमितया, भ्राम्यतो भ्रमणं कुर्वतः, स्वयं वसुमतोऽपि धनवतोऽपि सद्बृन्दवसुमोषकस्य सज्जनसमूहघनापहारकस्य पक्षे स्वयं किरणवतोऽपि सद्बृन्दस्य नक्षत्रसमूहस्य वसुमोषकः किरणापहारकस्तस्य, भूमौ पृथिव्यां वर्तमानानां भूमिष्ठ-जनानां स्वर्णस्थितिं काञ्चनसङ्कावं करे राजस्वैः अपहरतः पक्षे भूमिष्ठपदार्थानां स्वर्णस्थितिं जलस्थितिं
१५ करेः किरणैः अपहरतः, तथा चरमाचलयोगं अन्तिमाविनश्वरोपायं प्राप्तस्यापि 'योगः संनह्नोपायध्यानसंगति-युक्तिषु' इत्यमरः पूर्वाशावशेन प्राक्कालिकतृष्णावशेन महोदया महाम्युदययुक्ता ये भूभृतो राजानस्तेषां सेवां शुश्रूषां कुर्वतः पक्षे अस्ताचलसंगं प्राप्तस्यापि पूर्वाशावशेन पूर्वदिशानिघ्नत्वेन महोदया उदयभूभृच्चेति महाम्युदयभूभृत् महोदयाचलस्तस्य सेवां कुर्वतो कुतपतेः विशेषणात्साम्यात् सूर्यस्य, जडबन्धोः मूर्खबन्धोः पक्षे अजलबन्धोः जलशत्रोः सख्यं मैत्रीं च परिहृत्य त्यक्त्वा सकलभूधरश्रेष्ठतां सकलपर्वतश्रेष्ठतां सकलनृपतिश्रेष्ठतां
२० पर्वतके उस रूप होनेमें कारण यह था कि वह अभी दुर्वर्णधर इस दूसरे नामसे प्रसिद्ध है अर्थात् हीन वर्णको धारण करनेवाला कहलाता है अतः इस अपमानजनक नामको वह छोड़ना चाहता था और उत्तमवर्णकी सेव्यताको प्राप्त करनेके लिए आदरशील था (पक्षमें दुर्वर्णधरका अर्थ चाँदीका पर्वत और उत्तमका अर्थ उत्कृष्टरूप ग्रहण करना चाहिए) अथवा उस विजयार्थ पर्वतका भगवान्‌के महाबल आदि भवोंमें स्नेह था इसीलिए वह प्राकार बन
२५ गया था। अथवा उस विजयार्थ पर्वतने यह विचार किया कि सुमेरु पर्वतने पहले जन्माभि-षेकका आधार बनकर और वर्तमानमें उनके चरणोंका स्पर्श करनेमें समर्थ सिंहासन बनकर भगवान्‌की सेवा की है तथा सुरासक्ति—मदिराकी आसक्ति (पक्षमें देवोंकी आसक्ति और दोषाकर—अवगुणोंकी खान स्वरूप दुष्टजनोंकी संगति (पक्षमें निशाकर—चन्द्रमाकी संगति) को छोड़कर उस दुष्टराजाकी (पक्षमें सूर्यकी) मित्रताका परित्याग किया है जो प्रतिदिन
३० पङ्कजात—पापसमूहका सहगामी होनेसे (पक्षमें कमलोंका मित्र होनेसे) भ्रमण करता रहता है, स्वयं वसुमान्—धनवान् होकर भी सद्बृन्दवसुमोषक—सज्जन समूहके धनको चुरानेवाला है, (पक्षमें स्वयं किरणोंसे सहित होकर भी सद्बृन्दवसुमोषक—नक्षत्रसमूहकी किरणोंका अपहरण करनेवाला है), पृथिवीपर रहनेवाले लोगोंके स्वर्णकी स्थितिका टक्कोंके द्वारा अपहरण करता रहता है (पक्षमें अपनी किरणोंके द्वारा भूमिपर स्थित वस्तुओं-
३५ की जलकी स्थितिका अपहरण करता रहता है), तथा चरमाचलयोग धन प्राप्तिके अन्तिम एवं अविनाशी उपायको प्राप्त होकर भी पूर्वाशा—पहलेकी तृष्णाके वशसे महोदय भूभृत्—बहुत भारी अभ्युदयसे युक्त राजाकी सेवा करता है (पक्षमें चरमाचलयोग—अस्ताचलके संगको प्राप्त होकर भी अर्थात् अस्त होकर भी पूर्वाशा—पूर्वदिशाके वशसे महोदयभूभृत्

सौरूप्यं च प्राप्तवानिति स्वयमपि भगवन्निकट एव सेवां विधातुमुदितमनीषया नूनमाकाशस्फटिक-
घटिततत्सालात्मना समजायत ।

§ ५५) तन्मध्ये रेजिरे नूत्तरचना द्वादशकोष्ठकाः ।

गणैर्द्वादशभिर्जुष्टाश्चन्द्रकान्तप्रतिष्ठिताः ॥३४॥

§ ५६) ततः परं क्रमेण वैडूर्यहेमसर्वरत्नमयानां धर्मचक्रधरयक्षाधिष्ठितमहाध्वजमङ्गलद्रव्य-
संगतप्रथमद्वितीयतृतीयपीठानामुपरि विराजमाने सुरभिसुरतस्कुसुमकालागुरुधूपोद्दामसौरभ-
परिवेष्टिते जिनतनुवन्धुरगन्धसमृद्धे गन्धकुटीमध्ये भ्राजमानं माणिक्यदोषसरूपं मणिमयसिंहासन-
मधिष्ठाय चतुरङ्गुलगगनतले देवश्चकासामास ।

च कल्याणसंपदा गर्भादिकल्याणकरूपत्वा पक्षे सुवर्णसंपत्त्या, जातरूपधरत्वेन दिगम्बरमुद्राधरत्वेन सुवर्ण-
धरत्वेन च भगवतो जिनेन्द्रस्य सौरूप्यं सौन्दर्यं सादृश्यं च प्राप्तवान् इति हेतोः स्वयमपि भगवन्निकट एव सेवां
विधातुं उदितमनीषया समुत्पन्नबुद्ध्या विजयार्थमहीधरः समवसरणसभायां सालात्मना परिणतोऽभूत् ।
उत्प्रेक्षाश्लेषो । § ५५) तन्मध्ये इति—तन्मध्ये स्फटिकसालस्य मध्येऽस्म्यन्तरे नूत्तरत्ना नवीनरत्नयुक्ताः
द्वादशभिर्गणैः जुष्टाः सहिताः चन्द्रकान्तप्रतिष्ठिताः चन्द्रकान्तमणितलस्थिताः द्वादशकोष्ठकाः द्वादशसभाः
रेजिरे शुशुभिरे । द्वादशकोष्ठेषु ऋषिप्रभृतीनामावासो भवति । तथाहि—‘ऋषिकल्पजवनितार्याज्यो-
तिर्वनभवनयुवतिभावनजाः । ज्योतिष्ककल्पदेवा नरतिर्यञ्चो वसन्ति तेष्वनुपूर्वम् ।’ इति समवसरणस्तोत्रे ।
§ ५६) ततः परमिति—ततः परं ततोऽप्ये क्रमेण वैडूर्यं नीलमणिः हेमस्वर्णं सर्वरत्नानि च तेषां विकारस्तेषां
नीलमणिस्वर्णसर्वरत्नरचितानां, धर्मचक्रधरा धर्मचक्रधारका ये यक्षा व्यन्तरविशेषास्तैरधिष्ठिताः सहिताः
महाध्वजमङ्गलद्रव्यसंगताश्च ये प्रथमद्वितीयतृतीयपीठास्तेषामुपरि विराजमाने शोभमाने सुरभिसुरतस्-
कुसुमानि सुगन्धितकल्पवृक्षपुष्पाणि कालागुरुधूपाश्च कृष्णागुरुचूर्णाश्च तेषामुद्दामसौरभेण उत्कट सौगन्धेन
परिवेष्टिते परिवृते जिनतनोर्भगवच्छरीरस्य बन्धुरो मनोहरो यो गन्धस्तेन समृद्धे संपन्ने गन्धकुटीमध्ये
भ्राजमानं देदोप्यमानं माणिक्यदोषैर्मणिमयदोषैः सरूपं शोभितं सिंहासनं सिंहविष्टरम् अधिष्ठाय तत्र स्थित्वा

बहुत विशाल उदयाचलकी सेवा करता है और जो जड़बन्धु—मूर्खोंका बन्धु है (पक्षमें
अजलबन्धोः—जलका बन्धु नहीं है) । यह सब करके वह सुमेरु पर्वत सकलभूधरश्रेष्ठता—
समस्त पर्वतोंमें श्रेष्ठताको (पक्षमें समस्त राजाओंमें श्रेष्ठताको) तथा कल्याणसम्पदा—
स्वर्णरूप सम्पत्तिके द्वारा (पक्षमें गर्भादिकल्याणकरूप सम्पत्तिके द्वारा) एवं जातरूपधर—
स्वर्णका धारक (पक्षमें दिगम्बर मुद्राका धारक होनेसे) भगवान्की सुरुपता—सुन्दरता
(पक्षमें सदृशता) को प्राप्त हो चुका है इसलिए सुमेरु भी स्वयं भगवान्के निकट रहकर ही
उनकी सेवा करना उचित है इस बुद्धिसे ही मानो विजयार्थ पर्वत उस समवसरण सभामें
स्फटिकमणिका प्राकार बन गया था । § ५५) तन्मध्ये इति—उस स्फटिकसालके भीतर
नवीन रत्नोंसे निर्मित, बारह गणोंसे सेवित तथा चन्द्रकान्तमणिके शिलातलपर अधिष्ठित
बारह सभाएँ सुशोभित हो रही थीं ॥३४॥ § ५६) ततः परमिति—उसके आगे क्रमसे जो
वैडूर्यमणि तथा सुवर्ण, सर्वरत्न और सुवर्णसे निर्मित, धर्मचक्रको धारण करनेवाले यक्षोंसे
अधिष्ठित एवं महाध्वजाओं और मंगलद्रव्योंसे संगत प्रथम द्वितीय तथा तृतीय पीठके ऊपर
विराजमान थी, सुगन्धित कल्पवृक्षोंके पुष्प तथा कृष्णागुरुचन्दनकी धूप सम्बन्धी बहुत भारी
सुगन्धसे व्याप्त थी तथा जिनेन्द्र भगवान्के शरीर सम्बन्धी सुगन्धसे जो समृद्धिमान् थी
ऐसी गन्धकुटीके मध्यमें शोभायमान, मणिमय दीपोंसे सुन्दर मणिमय सिंहासनपर चार

§ ५७) समवसरणभूमि सारसौन्दर्यभूमि

बलरिपुमुखदेवा वीक्ष्य सद्भक्तिभावाः ।

परिगतिमथ कृत्वा तत्सभान्तश्च गत्वा

सपदि नवमुदारं भेजिरे हर्षपूरम् ॥२५॥

५ § ५८) तत्र किल विचित्रमणिगणघृणिहचिरमसृणतलसुरगिरिशिखरसदृशविजितदिनकर-
हचिहचिविसरभरभरितगगनतलविलसितविवृतवदनगजरिपुविधूतविष्टरमधितिष्ठन्तमानन्दमन्थरवृ-
न्दारकसंदोहकरनिकरसमुन्मुक्तया, मुक्तयेव स्वच्छकान्तिमनोरमया, मनोरमयेव वियन्मध्यविराज-
मानलक्ष्म्या लक्ष्म्येवातिचञ्चलया, चञ्चलयेव कलितघनपुष्टवृष्ट्या, वृष्टयेव बहुधा मानसस्य

- चतुरङ्गुलगनतले सिंहासनाच्चतुरङ्गुलोपरि गगने देवो भगवान् चकासामास शुशुभे । § ५७) समव-
१० सरणेति—अथानन्तरं सद्भक्तिभावाः समीचीनभक्तिभावसहिता बलरिपुमुखदेवा इन्द्रप्रभृतिपुराः सारसौन्दर्य
श्रेष्ठसौन्दर्ययुक्ता भूमिर्यस्यां तां समवसरणभूमि समवसरणवसुधां वीक्ष्य समवलोक्य परिगतिं प्रदक्षिणां कृत्वा
विधाय तत्सभान्तश्च तत्सभामध्यं च गत्वा सपदि शीघ्रं नवं नूतनं उदारं समुत्कृष्टं हर्षपूरं प्रमोदप्रवाहं भेजिरे
प्रापुः । समवसरणसभां दृष्ट्वा इन्द्रादयः परमदृष्ट्वा बभूवुरिति भावः । मालिनीछन्दः ॥२५॥ § ५८)
तत्रेति—अथाष्टप्रातिहार्योपेतं जिनेन्द्रं वर्णयितुमाह—तत्र किल गन्धकुट्ट्यां विचित्राणां विविधवर्णानां मणिगणानां
१५ रत्नसमूहानां घृणिभिः किरणै हचिरं मनोहरं मसृणतलं स्निग्धतलं यस्य तथाभूतं, सुरगिरेः सुमेरोः शिखरेण
सदृशं, विजितदिनकरहविना पराभूतप्रभाकरप्रभेण हचिविसरभरेण कान्तिसमूहभरेण भरितं यद् गगनतलं
तस्मिन् विलसितं शोभितं, विवृतवदना उद्वाटितमुखा ये गजरिपवो मृगेन्द्रास्तेर्विधूतं च यद् गरिष्ठविष्टरं
श्रेष्ठसिंहासनं तत् अधितिष्ठन्तं तत्र विद्यमानम् । अथ पुष्पवृष्ट्या शोभमानं, कथंभूता पुष्पवृष्टिरिति तामेव
विशेषयति—आनन्देन हर्षेण मन्थरा मन्दगतिशोला ये वृन्दारका देवास्तेषां संदोहस्य समूहस्य करनिकरात्
२० हस्तसमूहात् समुन्मुक्ता संपातिता तथा, मुक्तयेव मुक्ताफलेनेव स्वच्छकान्त्या निर्मलरुच्या मनोरमया मनोहरया,
मनोरमयेव स्त्रियेव वियन्मध्ये गगनमध्ये विराजमाना शोभमाना लक्ष्मीः शोभा यस्यास्तया स्त्रीपक्षे वियदिव
मध्ये वियन्मध्ये गगनवत्कुशकट्या विराजमाना लक्ष्म्यास्यास्तया, लक्ष्म्येव त्रियेव अतिचञ्चलया अतिचपलया
सशीघ्रं पतन्त्येत्यर्थः पक्षेऽतिभङ्गुरया, चञ्चलयेव विद्युतेव कलिता कृता घनपुष्पाणां प्रभूतकुसुमानां वृष्टिर्यस्यां

- अङ्गुल अन्तरीक्षमें भगवान् वृषभदेव सुशोभित हो रहे थे । § ५७) समवसरणेति—समीचीन
२५ भक्तिभावसे भरे हुए इन्द्रादि देवोंने श्रेष्ठसौन्दर्यपूर्ण भूमिसे युक्त समवसरण भूमिको देखकर
प्रथम ही उसकी प्रदक्षिणा की । तदनन्तर सभाके भीतर जाकर शीघ्र ही नूतन तथा बहुत भारी
हर्षके समूहको प्राप्त किया ॥२५॥ § ५८) तत्रेति—उस गन्धकुटीमें भगवान् ऐसे उत्कृष्ट
सिंहासनपर विराजमान थे जिसका कि तलभाग नाना प्रकारके मणिसमूहकी किरणोंसे सुन्दर
तथा चिकना था, जो सुमेरु पर्वतके शिखरके समान था, जो सूर्यकी किरणोंको जीतनेवाली
३० कान्तिके समूहसे भरे हुए आकाशमें सुशोभित हो रहा था और जो खुले हुए मुखोंसे युक्त
सिंहोंके द्वारा धारण किया हुआ था । भगवान् ऐसी पुष्पवृष्टिसे सुशोभित हो रहे थे जो
आनन्दसे मन्द-मन्द चलते हुए देव समूहके हाथोंके समूहसे छोड़ी गयी थी, जो मोतीके
समान स्वच्छ कान्तिसे मनोहर थी, मनोरमा—स्त्रीके समान आकाशके मध्यभागमें विराज-
मान लक्ष्मीसे सहित थी (पक्षमें जो आकाशके समान पतली कमरसे सुशोभित थी), जो
३५ लक्ष्मीके समान चञ्चल थी—जल्दी-जल्दी पड़ रही थी (पक्षमें क्षणविनश्वर थी), जो
विजलीके समान घनपुष्प—अत्यधिक फूलोंकी वर्षासे सहित थी (पक्षमें जो घनपुष्प—जल-

समुल्लासनप्रवीणया, वीणयेव संपादितालिकुलमधुरस्वश्रिया, मधुरस्वरश्रियेव सुरागोद्भूतिसुन्दर्या, सुन्दर्येव सकलकलया, कलयेव शीतरुचिविलसमानया, परागरुच्युज्ज्वलयाप्यपरागरुच्युज्ज्वलया, सुरागोद्भूततयासुराधिकरुचिकरतया, सततसंजातमधुपसंसर्गतया मधुरुचिरुचिरतया लताङ्गीकृत-प्रणयतया सदारामानुरक्ततया च मे बन्धनस्थितिरासीद्भगवतः सेवोन्मुख्यमात्रेण बन्धो मुक्त इति

तथा पक्षे कलिता कृता घनपुष्पस्य जलस्य वृष्टिर्यया तथा, वृष्टयेव वर्षयेव बहुधा अनेकधा मानसस्य हृदयस्य ५
समुल्लाससंपादने हर्षोत्पादने प्रवीणया निपुणया पक्षे मानसस्य मानसरोवरस्य समुल्लाससंपादने वृद्धिकरणे प्रवीणया निपुणया, वीणयेव परिवादिन्येव संपादिता कृता अलिकुलस्य भ्रमरसमूहस्य मधुरस्वरश्रियया तथा पक्षे संपादिता अलिकुलस्य सखीसमूहस्य मधुरस्वरश्रियया तथा, मधुरस्वरस्य मनोहरालापस्य श्रीः शोभा तयेव सुरागोद्भूतिसुन्दर्या सुराणां देवानामगा वृक्षाः कल्पवृक्षास्तेभ्यः उद्भूतिः समुत्पत्तिस्तथा सुन्दर्या मनोहरया पक्षे सुष्ठु रागा गान्धाररागः सुरागास्तेषामुद्भूत्या सुन्दर्या, सुन्दर्येव ललनयेव सकलकलया कलकलेन सहिता १०
सकलकला तथा पक्षे सकलाः समस्ताः कला यस्यां सा सकलकला तथा, कलयेव शशिषोडशभागेनेव शीतरुचिविलसमानेन शीता शिशिरा या रुचिः कान्तिस्तथा विलसमानया पक्षे शीता रुचयः किरणा यस्य स शीतरुचिश्चन्द्रस्तस्मिन् विलसमानया शोभमानया, परागस्य पुष्परेणो रुचिः कान्तिस्तथा उज्ज्वलयापि तथा न भवतीत्यपरागरुच्युज्ज्वलया परिहारपक्षे अगगतो रागो यस्य तथाभूतोऽपरागो वीतराग इत्यर्थः तस्मिन् या रुचिरभिलाषस्तेन उज्ज्वलया, सुरागोद्भूततया सुष्ठु रागः सुरागस्तस्मादुद्भूततया समुत्पन्नतया १५
पक्षे सुराणां देवानामगा वृक्षाः सुरागाः कल्पतरवस्तेभ्य उद्भूततया, सुराधिकरुचिकरतया सुरायां मदिरायां याविका प्रभूता रुचिरिच्छा तस्याः करतया कर्तृत्वेन पक्षे सुराणां देवानामधिकरुच्याः प्रभूतेच्छायाः करतया, सततसंजातमधुपसंसर्गतया सततं शभवत् संजातः समुत्पन्नो मधुपानां मद्यपायिनां संसर्गो यस्यास्तस्या भावस्तथा, पक्षे सततं संजातो मधुपानां भ्रमराणां संसर्गो यस्यास्तस्या भावस्तथा, मधुरुचिरुचिरतया मधुनो मद्यस्य रुचिरभिलाषस्तथा रुचिरतया सुन्दरतया पक्षे मधुनो मकरन्दस्य रुचिः कान्तिस्तथा २०
रुचिरतया सुन्दरतया, लताङ्गोषु स्त्रीषु कृतप्रणयतया कृतस्नेहतया पक्षे लतासु व्रततिषु अङ्गीकृतः प्रणयो विस्तारो यस्यास्तस्याभावस्तथा, सदारामानुरक्ततया च सदा सर्वदा रामासु स्त्रीषु अनुरक्ततया च

की वृष्टिसे सहित थी), जो वृष्टिके समान अनेक प्रकारसे मानस—हृदयके उल्लासको उत्पन्न करनेमें समर्थ थी (पक्षमें जो मानस—मानसरोवरकी वृद्धिको करनेमें निपुण थी), जो वीणाके समान अलिकुल—भ्रमर समूहके मधुर स्वरसे सहित थी (पक्षमें जो २५
अलिकुल—सखीसमूहके मधुर स्वरसे संगत थी) जो मधुर स्वरकी लक्ष्मीके समान सुरागोद्भूतिसुन्दरी—कल्पवृक्षसे होनेवाली उत्पत्तिसे सुन्दर थी (पक्षमें—उत्तम राग-रागिनियोंकी उत्पत्तिसे सुन्दर थी), जो सुन्दरी—स्त्रीके समान सकलकला—कलकल शब्दसे सहित थी (पक्षमें सकल कलाओंसे सहित थी), जो कलाके समान शीतरुचि विलसमान—शीतल कान्तिसे सुन्दर थी (पक्षमें चन्द्रमामें सुशोभित थी), जो परागरुचि—पुष्पधूलिकी ३०
कान्तिसे उज्ज्वल होकर भी पराग—पुष्पधूलिकी कान्तिसे उज्ज्वल नहीं थी (परिहार पक्षमें अपरागरुचि—वीतराग विषयकरुचि—इच्छासे उज्ज्वल थी), उस समय पुष्पवृष्टि बन्धनमुक्त होकर 'मैं पहले पड़ूँ मैं पहले पड़ूँ' इस अभिप्रायसे पहल करती हुई पड़ रही थी जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो उसने ऐसा विचार किया हो कि सुरागोद्भूतता—उत्तमरागसे उत्पन्न होनेके कारण (पक्षमें कल्पवृक्षसे उत्पन्न होनेके कारण), सुराधिक- ३५
रुचिकरता—मदिराकी अधिक इच्छा करनेसे (पक्षमें देवोंकी अधिक रुचि करनेसे), निरन्तर होनेवाली मधुपों—मद्य पीनेवालोंकी संगतिसे (पक्षमें निरन्तर होनेवाली भ्रमरोंकी संगतिसे) मधुरुचि—मदिराविषयक इच्छासे सुन्दर होनेसे (पक्षमें मकरन्दकी कान्तिसे

कुतुकेनाहमहमिकया स्वयमनुपतन्त्येव पुष्पवृष्ट्या शोभमानं, देवस्य चिन्ताम्रिकासितेन रागेणेवो-
पगूढस्य मरकतहरितदलविलसितमदकलमधुरविरुतमधुकरनिचयमुखरितमणिमयकुसुमविततकिस-
लयकुलविलसितस्य रक्ताशोकतरोर्मूलमुपाश्रितं, भुवनत्रयाधिपत्यं प्रकटीकुर्वाणेन, हासेनेव त्रिज-
गल्लक्ष्म्याः, यशोमण्डलेनेव भगवतः, स्मितोल्लासेनेव धर्मनृपस्य, सेवार्थमुपागतेनेव चन्द्रबिम्बेनायं
५ किल विमुक्ताम्बरस्त्यक्तचञ्चलानन्दः सदा मरालीसंतोषकरो विचित्रबलाहको धीरसस्यवृद्धि
करोतीति कुतूहलेन संद्रष्टुमुपागत्य विस्मयवशात्तत्रैव निश्चलतामुपगतेनेव शारदनीरदत्रयेण, चन्द्रे

- प्रतितया च पक्षे सन् चासावारा मश्चेति सदारा मः समो बोधोपवनं तस्मिन् अनुरक्ततया च मे पुष्पस्य बन्धन-
स्थितिः कर्मबन्धस्थितिः पक्षे मालारूपेण बन्धस्थितिः आसीत् भगवतो वृषभजिनेन्द्रस्य सेवोन्मुख्यमात्रेण
सेवायामुन्मुख्यं सेवोन्मुख्यं सेवोन्मुख्यमेव सेवोन्मुख्यमात्रं तेन सेवातत्परत्वेनैव बन्धो मुक्तः कर्मबन्धः स्रस्तः
१० पक्षे मालाबन्धो मुक्त इतीत्यं कुतुकेन कुतूहलेन अहमहमिकया अहं पूर्वमहपूर्वमिति भावेन स्वयं स्वतः
अनुपतन्त्येव अनुगच्छन्त्येव पुष्पवृष्ट्या सुमनोवर्षया शोभमानं, देवस्य भगवतः चित्तात् निष्कासितेन दूरीकृतेन
रागेणेवोपगूढस्य रागेण प्रेम्णा पक्षे लोहितवर्णेन उपगूढस्येव समालिङ्गितस्येव मरकतहरितदलैः मरकत-
मणिमयहरितपत्रैर्विलसितः शोभितः, मदकलं मधुरं च विरुतं विरावो येषां तथाभूता ये मधुकरा भ्रमरा-
स्तेषां निचयेन मुखरितो वाचालितः, मणिमयैः कुसुमैः पुष्पैर्व्रिततो व्याप्तः, किसलयकुलेन पल्लवप्रचयेन
१५ विलसितश्च शोभितश्चेति तथाभूतस्य रक्ताशोकतरोः लोहितकङ्कलिवृक्षस्य मूलं उपाश्रितं प्राप्तम् अशोक-
तरोरधस्तात् सिंहासनासीनमित्यर्थः धवलातपत्रत्रितयेन शुक्लच्छत्रत्रयेण विशोभमानं विराजमानम्, कथंभूतेन
धवलातपत्रत्रितयेनेत्याह—भुवनत्रयाधिपत्यं लोकत्रयाधीश्वरत्वं प्रकटीकुर्वाणेन प्रकटयता, त्रिजगल्लक्ष्म्याः
त्रिभुवनश्रियाः हासेनेव हसितेनेव, भगवतो जिनेन्द्रस्य यशोमण्डलेनेव कीर्तिपुञ्जेनेव, धर्मनृपस्य धर्माधिराजस्य
स्मितोल्लासेनेव मन्दहास्यविशासेनेव, सेवार्थं शुश्रूषार्थम् उपागतेन प्राप्तेन चन्द्रबिम्बेनेव चन्द्रमण्डलेनेव, अयं
२० किल एष खलु भगवद्रूपो नीरदः विमुक्ताम्बरः त्यक्ताकाशः पक्षे त्यक्तवस्त्रः त्यक्तचञ्चलानन्दो मुक्तविद्युद्विस्फुरणः
पक्षे मुक्तभङ्गुरमुखः, सदा सर्वदा मरालीनां हंसीनां संतोषकरः पक्षे सदा सर्वदा अमरालीनां देवपङ्क्तीनां
संतोषकरः इत्थं विचित्रबलाहको वर्तमानबलाहकविलक्षणः धीरसस्य वृद्धि धीरा एव सस्यानि ब्रीहयस्तेषां

- मनोहर होनेसे), लतांगी—स्त्रियोंमें प्रेम करनेसे (पक्षमें लताओंमें विस्तारके स्वीकृत करने-
से), और सदारामानुरक्तता—निरन्तर स्त्रीविषयक रागके कारण (पक्षमें उत्तम उद्यानोंमें
२५ अनुराग होनेसे) मैं बन्धनमें पड़ी थी अब भगवान्की सेवाके लिए सन्मुख होने मात्रसे
मेरा बन्धन छूट गया है—मैं बन्धन मुक्त हो गयी हूँ इस कुतूहलसे ही वह पुष्प वृष्टि स्वयं
पहल करती हुई पड़ रही थी। वे भगवान् उस लाल अशोक वृक्षके मूलमें विद्यमान थे।
जो उनके हृदयसे निकाले गये रागसे ही मानो आलिङ्गित था, मरकतमणियोंके हरे हरे
पत्तोंसे सुशोभित था, मदसे अव्यक्त मधुर शब्द करनेवाले भ्रमर समूहकी झंकारसे झंकृत
३० था, मणिमय फूलोंसे व्याप्त था तथा पल्लवोंके समूहसे सुशोभित था। जिनेन्द्र भगवान्
शुक्लवर्णके उस छत्रत्रयसे सुशोभित हो रहे थे जो अपनी तीन संख्यासे ऐसा जान पड़ता
था मानो उनके तीन लोकके आधिपत्यको प्रकट कर रहा था, जो तीनों जगत्की लक्ष्मीके
हासके समान जान पड़ता था, भगवान्के कीर्तिपुंजके समान शोभा देता था, धर्मरूपी राज-
की मुसकानके समान सुशोभित था, अथवा सेवाके लिए समीपमें आया हुआ चन्द्रमाका
३५ मण्डल ही था। अथवा वह छत्रत्रय ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् एक विचित्र मेघ
हैं इसलिए कुतूहल वश उन्हें देखनेके लिए शरद्ऋतुके तीन बादल ही आये हों जो कि
विस्मयके कारण वहीं स्थिर हो गये थे। भगवान्के विचित्र मेघ होनेका कारण यह था कि

कलङ्कोत्पादनेन, सूर्ये संतापजननेन च संजातापकीर्ति परिमाण्डुं तदुभयमेकीकृत्य वेधसा निर्मितेनेव विम्बत्रयेण रत्नकान्तिमनोहरेण धवलातपत्रत्रितयेन विशोभमानं, गाम्भीर्यविजितेन पयःपारावारेण द्विपदरहिततया अधिकतरजरसाश्लिष्टतयातिवृद्धतया च सेवार्थं स्वयमागन्तुमक्षमतया प्रहितैरिव वीचि-
निकरैर्यद्वा यशोविजिततया सेवार्थमागतैरिव सुधापूरैरथवा निखिलसुरसेव्यपारोऽयं हिमालय इति मत्वानुपतद्भिरिव गङ्गातरङ्गैः सुरनिकरवदनपयोजपरिष्कृते भगवतो विमलतरदिव्यदेहकान्तिपूरे ५
सरोवरशङ्कया संपतद्भिरिव हंसैः, ईश्वरादुत्पतद्भिरिव यशोविसरैर्यक्षकरसरोजवीज्यमानचामरै-

वृद्धि पक्षे षोः बुद्धिः रस इव जलमिव धीरसः तस्य वृद्धिं करोतीति कुतुहलेन संद्रष्टुं समवलोकितुमुपागत्य समोपमागत्य विस्मयवशात् आश्चर्यवशात् तत्रैव निश्चलतां स्थिरताम् उपगतेन प्राप्तेन शारदनीरदत्रयेणेव शारदवारिदत्रितयेणेव, चन्द्रे कलङ्कस्योत्पादनेन, सूर्ये दिवाकरे संतापसंजननेन च संतापोत्पादकत्वेन च संजातापकीर्ति समुत्पन्नदुर्यशः परिमाण्डुं प्रोक्षितुं तदुभयं सूर्याचन्द्रमसौ एकीकृत्य वेधसा विधात्रा निर्मितेन १०
रचितेन विम्बत्रयेणेव, रत्नकान्तिमनोहरेण मणिमरीचिमनोज्ञेन धवलातपत्रत्रितयेन विशोभमानं, यक्षकर-
सरोजवीज्यमानचामरैः यक्षाणां व्यन्तरदेवविशेषाणां करसरोजैः करकमलैः वीज्यमानाः प्रकीर्यमाणा ये चामरास्तैः उपशोभमानं विराजमानम्, अथ कथंभूतैः चामरैरिति तानेव विशेषयितुमाह—गाम्भीर्येण धैर्येण विजितेन पराभूतेन, पयःपारावारेण क्षीरनीरविना द्विपदरहिततया चरणद्वयरहिततया पक्षे त्रसजीवरहिततया, अधिकतरजरसा अतिशयवार्धव्येन आश्लिष्टतया समालिङ्गिततया पक्षे अधिकतरजेन बहुलोत्पन्नेन रसेन जलेन १५
आश्लिष्टतया, अतिवृद्धतया च अतिस्थविरतया च पक्षेऽतिविस्तृततया च सेवार्थं शुश्रूषार्थं स्वयं स्वतः
आगन्तुं समायातुम् अक्षमतया असमर्थतया प्रहितैः प्रेषितैः वीचिनिकरैरिव तरङ्गसमूहैरिव, यद्वा यशोविजित-
तया कीर्तिविजिततया सेवार्थम् आगतैः सुधापूरैरिव पीयूषप्रवाहैरिव, अथवा निखिलसुरैः सर्वदेवैः सेव्याः सेवनीयाः पादाः प्रत्यन्तपर्वता यस्य तथाभूतः अयं हिमालयो हिमवान् पर्वत इति मत्वा पक्षे निखिलसुरैः २०
समग्रदेवैः सेव्यो समाराधनीयो पादौ चरणौ यस्य तथाभूतः अयं जिनेन्द्रो हि निश्चयेन मालयः माया लक्ष्या
आलयः स्थानम् इति मत्वा अनुपतद्भिरनुगच्छद्भिः गङ्गातरङ्गैरिव भागीरथीभङ्गैरिव, सुरनिकरस्य देवसमूहस्य
वदनपयोजैः मुखकमलैः परिष्कृते सहिते भगवतो जिनेन्द्रस्य विमलतरा चासौ दिव्यदेहकान्तिश्चेति विमलतर-
दिव्यदेहकान्तिस्तस्याः पूरे प्रवाहे सरोवरशङ्कया कासारसंदेहेन संपतद्भिः समागच्छद्भिः हंसैर्मरालैरिव,

वह विमुक्ताम्बर—आकाशको छोड़नेवाला था जब कि अन्य मेघ अविमुक्ताम्बर—आकाश-
को छोड़नेवाला नहीं था (पक्षमें विमुक्ताम्बर—वस्त्र रहित था), वह त्यक्तचंचलानन्द— २५
विजलीके आनन्दको छोड़नेवाला था जब कि अन्य मेघ अत्यक्तचंचलानन्द—विजलीके
आनन्दको छोड़नेवाला नहीं था (पक्षमें क्षणभंगुर आनन्दको छोड़नेवाला था), वह सदा-
मरालीसंतोषकर—हमेशा हंसियोंको सन्तोष उत्पन्न करनेवाला था जब कि अन्य मेघ
हंसियोंको सन्तोष उत्पन्न करनेवाला नहीं होता था (पक्षमें सदा अमराली—देवोंके समूह-
को सन्तोष उत्पन्न करनेवाला था) वह विचित्र मेघ अन्य मेघोंके समान ही धीरसस्य— ३०
धीर मनुष्यरूपी धान्यकी वृद्धिको करता था (पक्षमें बुद्धिरूप जलकी वृद्धिको करता था) ।
वह भगवान् यक्षोंके करकमलोंसे ढोरे जानेवाले उन चामरोंसे सुशोभित हो रहे थे जो ऐसे
जान पड़ते थे मानो गम्भीरताके द्वारा पराजित हुए क्षीरसमुद्रके द्वारा द्विपदरहितता—दो
पाँवोंसे रहित होनेके कारण (पक्षमें त्रस जीवोंसे रहित होनेके कारण), अधिकतरजरसा
श्लिष्टता—अत्यधिक बुढ़ापासे युक्त होनेके कारण (पक्षमें अत्यधिक जलसे सहित होनेके ३५
कारण) तथा अतिवृद्ध—अत्यन्त वृद्ध (पक्षमें अत्यन्त विस्तृत) होनेसे स्वयं आनेमें
असमर्थ होनेके कारण भेजे हुए तरंगोंके समूह ही हों, अथवा यक्षके द्वारा पराजित होनेसे

- रूपशोभमानं, जिनचन्द्रोदयवर्धभोजनपयोधिध्वनिमनुकुर्वता सुरदुन्दुभिनिध्वानेन प्रकटितमहिमानं, भव्यजनसप्तभवावलोकनमणिमुकुरायमाणेनान्तरारातिचक्रनिराकरणनिपुणचक्रायुधायमानेन ज्ञान-
श्रीमणिदर्पणायमानेन यद्वा धवलातपत्ररूपेण भगवतः सेवां विधाय कृतकृत्यतामापन्नं चन्द्रमव-
लोक्य स्वयमपि सेवार्थमागतेनेव प्रभाकरेण भामण्डलेन बाभास्यमानदिव्यदेहं, मृदुमधुरगम्भीर-
५ सर्वभाषामयदिव्यध्वनिदिनकरेण भव्यजनमनोदुर्गध्वान्तं विध्वंसयन्तं मूर्तेनेव ज्ञानदर्शनचरित्रत्रित-
येनान्येन वदनत्रयेण परिशोभमानं तं देवदेवमवलोक्य विस्मयविस्तृताक्षाः सहस्राक्षप्रमुखसुराध्यक्षा
भक्त्या प्रणम्यार्चयित्वा चैवं स्तोतुमारभन्त ।

- ईश्वराद् भगवतः उत्पत्तिद्विरुद्गच्छद्भिः यशोविसरैरिव कीर्तिसमूहैरिव, यक्षकरसरोजवीज्यमान चामरैरुप-
शोभमानं, जिन एव चन्द्रो जिनचन्द्रस्तस्य उदय एवाभ्युदय एव उदय उदगमस्तेन वर्धमानो यः पयोधिः
१० सागरस्तस्य ध्वनि शब्दं अनुकुर्वता विडम्बयता सुरदुन्दुभिनिध्वानेन देवदुन्दुभिनिनादेन प्रकटितो महिमा यस्य
तम्, भामण्डलेन द्युतिवलयेन भामण्डलाभिधानप्रातिहार्येणेत्यर्थः बाभास्यमानः शोशुभ्यमानो दिव्यदेहो यस्य
तं, अथ कथंभूतेन भामण्डलेनेत्याह—भव्यजनानां भव्यजीवानां सप्तभवानां सप्तपर्यायाणामवलोकनं दर्शनं
तस्मै मणिमुकुरायमाणेन रत्नादशंवदाचरता, आन्तरारातीनामभ्यन्तरशत्रूणां चक्रः समूहस्तस्य निराकरणे
तिरस्करणे निपुणं दक्षं यत् चक्रायुधं चक्राभिधानशस्त्रं तद्वदाचरता, ज्ञानश्रिया ज्ञानलक्ष्म्या मणिदर्पणायमानेन
१५ रत्नमुकुरन्दायमानेन यद्वा धवलातपत्ररूपेण धवलच्छत्राकारेण भगवतः सेवां विधाय कृत्वा कृतकृत्यतां
कृतार्थताम् आपन्नं प्राप्तं चन्द्रं शशिनम् अवलोक्य स्वयमपि स्वतोऽपि सेवार्थं शुश्रूषार्थं आगतेन प्रभाकरेणैव
सूर्येणैव भामण्डलेन बाभास्यमानदिव्यदेहं, मृदुः मधुरो गम्भीरः सर्वभाषामयश्च यो दिव्यध्वनिः स एव दिनकरः
सूर्यस्तेन भव्यजनमनोदुर्गणां भव्यजनहृदयकान्ताराणां ध्वान्तं अज्ञानतिमिरं विध्वंसयन्तं नाशयन्तं, मूर्तेन
साकारेण ज्ञानदर्शनचारित्रित्रितयेनेव सम्यग्दर्शनादिरत्नत्रयेणैव, अन्येन निजमुखातिरिक्तेन वदनत्रयेण मुख-
२० त्रयेण परिशोभमानं तं देवदेवं वृषभजिनेन्द्रम् अवलोक्य दृष्ट्वा विस्मयेन विस्तृतानि अक्षीणि येषां तथाभूताः

- सेवाके लिए आये हुए अमृतके पूर ही हों, अथवा यह भगवान् समस्त देवोंके द्वारा सेव्यमान
पादों—चरणों (पक्षमें प्रत्यन्त पर्वतों) से युक्त होनेके कारण हिमालय—हिमवान् पर्वत
हैं (पक्षमें निश्चयसे लक्ष्मीके घर हैं) ऐसा मानकर उनके पास आनेवाली गंगाकी लहरें
ही हों, अथवा देव समूहके मुखरूपी कमलोंसे सुशोभित भगवान्के दिव्य शरीरकी कान्तिके
२५ पूरमें सरोवरकी शंका होनेसे आते हुए मानो हंस ही हों, अथवा भगवान्से ऊपरकी ओर
उठते हुए उनके यशके समूह ही हों । जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमाके उदयसे बढ़ते हुए समुद्रकी
ध्वनिका अनुकरण करनेवाले देवदुन्दुभियोंके शब्दसे उन भगवान्की महिमा प्रकट हो
रही थी । उस भामण्डलके द्वारा उनका दिव्य शरीर सुशोभित हो रहा था जो भव्य जीवोंके
सात भव देखनेके लिए मणिमय दर्पणके समान आचरण करता था, जो अन्तरंग शत्रुओंके
३० समूहका निराकरण करनेवाले चक्रायुधके समान ज्ञान पड़ता था, जो ज्ञानरूपी लक्ष्मीके
मणिमय दर्पणके समान मालूम होता था अथवा धवलछत्रत्रयके रूपमें भगवान्की सेवा कर
कृतकृत्यताको प्राप्त हुए चन्द्रमाको देखकर स्वयं सेवाके लिए आया हुआ मानो सूर्य ही हो ।
वे भगवान् कोमल, मधुर, गम्भीर, और सर्वभाषा रूप परिणत होनेवाली दिव्यध्वनिरूपी सूर्य
के द्वारा भव्य जीवोंके मनरूपी अटवीके अन्धकारको नष्ट कर रहे थे, तथा वे मूर्तिधारी ज्ञान,
३५ दर्शन और चारित्रिके त्रिकके समान अपने तीन अन्य मुखोंसे सुशोभित हो रहे थे अर्थात् वे
चतुर्मुख दिखाई देते थे । देवाधिदेव उन वृषभ जिनेन्द्रके दर्शन कर जिनके नेत्र आश्चर्यसे

§ ५९) गुणश्रेणी देव ! त्रिभुवनपते ! ते गणधर-
प्रसिद्धद्वानीनामपि न विषयास्मत्स्तुतिगिराम् ।
कथं भूमिः सा स्यादिह जलधिमौर्वानलमुखे-
रपेयं पातुं किं मशकशिशुकाली प्रभवति ॥३६॥

§ ६०) क्व तावकगुणाम्बुधिः क्व मितशेमुषीका वयं
क्व नो वचनवैखरी क्व खलु ते यशोमाधुरी ।
इति स्तुतिपथाज्जिनाधिप ! निवृत्तिभाजः पुनः
प्रवर्तयति देव ! नस्तव पदाब्जभक्तिध्रुवा ॥३७॥

§ ६१) अनुगृह्णानः सुमनोजातं त्वं देवदेव भुवनपते ! ।
सुमनोजातं सहसा नाशयति स्मेति जिनप ! चित्रमिदम् ॥३८॥

सहस्राक्षप्रमुखसुराध्यक्षाः सौधमैन्द्रादिवेन्द्राः भक्त्या प्रणम्य अर्चयित्वा पूजयित्वा च एवं वक्ष्यमाणतया स्तोतुम् आरभन्त तत्परा अभूवन् । श्लेषरूपकोटप्रेक्षाः शृङ्खलायमकवच । § ५९) गुणेति—हे देव ! हे त्रिभुवनपते ! हे त्रिलोकीनाथ ! ते तव गुणश्रेणी गुणपङ्क्तिः गणधराणां चतुर्जानधारिणां याः प्रसिद्धगन्धो वाण्यो भारत्यस्तासामपि न विषया न गोचरा अस्मत्स्तुतिगिराम् मस्तवनवाचां भूमिः पात्रं सा कथं स्यात् ? तदेवोदाह्रियते—इहास्मिन् लोके और्वानलमुखैर्वडवानलधनैः अपेयं न पातुं योग्यं जलधि सागरं पातुं किं मशकशिशुकानां दंशशावकानामाली पङ्क्तिः किं प्रभवति ? अपि तु न प्रभवति । शिखरिणी छन्दः ॥३६॥
§ ६०) क्वेति—हे जिनाधिप ! हे जिनेन्द्र ! तावकगुणाम्बुधिः त्वदीयगुणसागरः क्व कुत्र, मित परिमिता शेमुषी बुद्धियेषां तथाभूता वयं क्व कुत्र, द्वौ वचनवैखरी महदन्तरं सूचयतः । नोऽस्माकं वचनवैखरी वाग्विन्यासः क्व, ते तव यशोमाधुरी कीर्तिमाधुरी क्व कुत्र खलु इतीत्यं पुनः स्तुतिपथात् स्तुतिमार्गात् निवृत्तिभाजो द्वीरीभूतान् नोऽस्मान् हे देव ! तव ध्रुवा स्थिरा पदाब्जभक्तिः चरणकमलभक्तिः प्रवर्तयति प्रेरयति । पृथ्वीछन्दः ॥३७॥
§ ६१) अनुगृह्णान इति—हे देवदेव ! हे देवाधिदेव ! हे भुवनपते हे जगन्नाथ ! हे जिनप हे जिनेन्द्र ! सुमनोजातं देवसमूहं विद्वत्समूहं वा अनुगृह्णानः उपकुर्वन् त्वं सुमनोजातं देवसमूहं विद्वत्समूहं वा सहसा नाशयसि स्मेति इदं चित्रमाश्चर्यं पक्षे सुमनोजातं कामं सहसा अगिति नाशयसि स्म । श्लेषः । आर्या

विस्तृत हो रहे थे ऐसे सौधमैन्द्र आदि इन्द्र भक्तिपूर्वक प्रणाम कर तथा पूजा कर इस प्रकार स्तुति करनेके लिए तत्पर हुए । § ५९) गुणश्रेणीति—हे देव ! हे त्रिजगन्नाथ ! आपके गुणोंकी पंक्ति गणधरोंकी प्रसिद्ध वाणीका भी विषय नहीं है फिर हमारी स्तुति विषयक वाणीका विषय कैसे हो सकती है ? जो समुद्र बड़वानलके मुखोंसे अपेय है उसे क्या मच्छरोंके बच्चोंकी पंक्ति पीनेके लिए समर्थ हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती ॥३६॥ § ६०) क्वेति—हे जिनेन्द्र ! हे देव ! आपके गुणोंका सागर कहाँ ? और सीमित बुद्धिके धारक हम लोग कहाँ ? आपके यशको मधुरता कहाँ और हमारे वचनोंका विन्यास कहाँ ? इस तरह हम स्तुतिके मार्गसे दूर हैं हम लोगोंको तो मात्र आपके चरण-कमलोंकी स्थायी भक्ति ही स्तुति करनेके लिए प्रवृत्त कर रही है ॥३७॥ § ६१) अनुगृह्णान इति—हे देवाधिदेव ! हे भुवनपते ! हे जिनेन्द्र ! आप सुमनोजात—विद्वानों अथवा देवोंके समूहपर अनुग्रह करनेवाले हैं फिर उसी सुमनोजातको आपने सहसा नष्ट कर दिया यह आश्चर्यकी बात है (पक्षमें

§ ६२) देव तव वैभवं यो जानाति पुमान् जिनेन्द्र ! भुवनपते ! ।

भजति त्यजति च वैभवमेव इति श्रीपते ! चित्रम् ॥३९॥

§ ६३) अमलसद्गुणवारिधिरप्यहो जिनप ! नामलसद्गुणवारिधिः ।

निखिललोकनुतोऽप्यभवः कथं त्रिदशलोकनुतो जगतां पते ! ॥४०॥

§ ६४) अवदातमूर्तिमहितोऽप्यधिकारुण्यं वहस्यहो चित्रम् ।

व्याकीर्णकल्पकुसुमो न व्याकीर्णद्विकल्पकुसुमोऽपि ॥४१॥

§ ६५) इत्याद्यनेकस्तोत्रपवित्रीकृतमुखारविन्दः पुरंदरप्रमुखवृन्दारकसंदोहः संतत-

- ॥३८॥ § ६२) देवेति—हे देव ! हे जिनेन्द्र ! हे त्रिभुवनपते ! हे श्रीपते ! यः पुमान् पुरुषः तव भवतो वैभवं समृद्धिं जानाति एष वैभवं समृद्धिं भजति प्राप्नोति त्यजति मुञ्चति च इति चित्रमाश्चर्यम् । पक्षे वै
- १० निश्चयेन भवं संसारं त्यजतीति व्याख्या कार्या ॥ आर्या ॥३९॥ § ६३) अमलेति—हे जिनप ! हे जिनेन्द्र ! हे जगतांपते ! जगत्स्वामिन् ! त्वम् अमला निर्मला ये सद्गुणाः प्रशस्तगुणास्तेषां वारिधिः सागरोऽपि सन् न अमलसद्गुणवारिधिरिति चित्रं परिहारपक्षे नाम इति पृथक्पदं संभावनायाम् अथवा नाम्ना लसतां गुणानां वारिधिरिति । निखिललोकनुतोऽपि सकललोकस्तुतोऽपि सन् त्रिदशलोकनुतः त्रिगुणितदशलोकनुतः । कथमभव इति विरोधः परिहारपक्षे त्रिदशलोकनुतो देवसमूहस्तुतः इति । विरोधाभासः । द्रुतविलम्बित-
- १५ वृत्तम् ॥४०॥ § ६४) अवदातेति—अवदाता उज्ज्वला धवला च या मूर्तिः शरीरं तथा महितोऽपि प्रशस्तोऽपि सन् अधिकारुण्यं अधिकं च तत् आरुण्यं चेति अधिकारुण्यं सातिशयरक्तवर्णत्वं वहसि दधासि इत्यहो चित्रम् परिहारपक्षे अधिगतं प्राप्तं कारुण्यं दयालुत्वं वहसि । एवं व्याकीर्णानि विस्तृतानि कल्पकुसुमानि कल्पतरुपुष्पाणि येन तथाभूतः सन् न व्याकीर्णानि द्विकल्पानां पृथिवीस्थस्वर्गस्थभेदेन द्विविधकल्पवृक्षाणां कुसुमानि येन तथाभूत इति चित्रं परिहारपक्षे नव्यं नूतनं यथा स्यात्तथा आकीर्णानि व्याप्तानि द्विकल्प-
- २० कुसुमानि येन तथाभूतः असीति शेषः, इलेपविरोधाभासो । आर्या ॥४१॥ § ६५) इत्यादीति—इत्यादिभि-
रनेकस्तोत्रैर्विविधस्तवनैः पवित्रीकृतं मुखारविन्दं वदनवारिजं यस्य तथाभूतः पुरंदरप्रमुखवृन्दारकाणां

- सुमनोजात—कामको नष्ट कर दिया) ॥३८॥ § ६२) देवेति—हे देव ! हे जिनेन्द्र ! हे भुवनपते ! हे श्रीपते ! जो मनुष्य आपके वैभवको जानता है वह वैभवको छोड़ देता है तथा प्राप्त भी होता है यह बड़े आश्चर्यकी बात है । (परिहार पक्षमें वे निश्चयसे
- २५ भव—संसारको छोड़ देता है और वैभव—ऐश्वर्यको प्राप्त होता है) ॥३९॥ § ६३) अमलेति—हे जिनेन्द्र ! आप निर्मल समीचीन गुणोंके सागर होकर भी अमलसद्गुण-
वारिधिः न—निर्मल समीचीन गुणोंके सागर नहीं हैं (परिहार पक्षमें आप नामलसद्गुण-
वारिधिः—नामसे शोभायमान समीचीन गुणोंके सागर हैं) इसी प्रकार हे जगत्पते ! आप समस्त लोकके द्वारा स्तुत होकर भी त्रिदशलोकनुत—तीस लोगोंके द्वारा स्तुत कैसे हुए ?
- ३० (परिहारपक्षमें त्रिदशलोकनुत—देवोंके द्वारा स्तुत हुए) ॥४०॥ § ६४) अवदातेति—
हे भगवन् ! आप उज्ज्वल मूर्तिसे पूजित होकर भी अधिकारुण्यं—अधिक लालिमाको धारण करते हैं यह आश्चर्यकी बात है (परिहारपक्षमें अधिकारुण्यं—अधिक दयालुताको धारण करते हैं) इसी प्रकार आप व्याकीर्णकल्पकुसुम—कल्पवृक्षके फूलोंको विस्तृत करनेवाले होकर भी न व्याकीर्णद्विकल्पकुसुमः—पृथिवी तथा स्वर्गसम्बन्धी भेदसे द्विविध कल्पवृक्षके
- ३५ फूलोंको विस्तृत करनेवाले नहीं हो यह आश्चर्यकी बात है (परिहारपक्षमें नवीन रूपसे द्विविध कल्पवृक्षोंके फूलोंको व्याप्त करनेवाले हैं) ॥४१॥ § ६५) इत्यादीति—इत्यादि अनेक स्तोत्रोंसे जिसका मुखकमल पवित्र हो रहा था ऐसा इन्द्रादि देवोंका समूह निरन्तर प्रति-

संगतनिजनयनपरम्पराभिजिनराजस्य कनकामलदिग्देहं चञ्चलचञ्चरीकसंचयकल्पतरुकल्पं कुर्वाणो भगवदभिमुखीकृतमुखो यथोचितं निषसाद ।

§ ६६) श्रीमान् भरतराजर्षिर्बुधे युगपदत्रयम् ।

गुरोः कैवल्यसंभूतिं सूति च सुतचक्रयोः ॥४२॥

§ ६७) कैवल्यं वृषभस्य धार्मिकमुखात्सत्कञ्चुकीयात्सुतो-

त्पत्तिं चक्रसमुद्भवं च कलयन्द्राक् शस्त्रपालाद्विभुः ।

किंचिद्व्याकुलमानसः किमिह मे प्राक्कार्यमित्यादरात्

तीर्थं धर्मफलं तदा भगवतः प्राप्तुं मतिं व्यातनोत् ॥४३॥

§ ६८) तदनु गुरुभक्तिभरनिरतो भरतराजः कौतुकितहृदयैरनुजपूरजनपरिजनान्तःपुर-
पुरःसरैः परिवृतः पटुपटहमन्द्रतमनिधाननिरुद्धदशदिशावकाशं प्रचलितमिवाम्भोधि षडङ्गतरङ्गित- १०

पुरुहूतप्रधानदेवानां संदोहः समूहः सततं संगतानि प्रतिफलितानि यानि निजनयनानि स्वकीयसहस्रचेष्टाणि तेषां परम्पराभिः संततिभिः जिनराजस्य जिनेन्द्रस्य कनकमिव स्वर्णमिव अमलदेहं निर्मलशरीरं चञ्चलः शोभमानाः चञ्चरीकसंचया भ्रमरसमूहा यस्मिन् तथाभूतो यः कल्पतरुस्तत्कल्पं सदा कुर्वाणो विदधानो भगवतो जिनेन्द्रस्याभिमुखीकृतं मुखं वक्त्रं यस्य तथाभूतः सन् यथोचितं यथायोग्यं स्वस्वकोष्ठेष्वित्यर्थः निषसाद समुपविष्टोऽभूदित्यर्थः । § ६६) श्रीमानिति—श्रीमान् प्रकृष्टराज्यलक्ष्मणयुक्तः भरतराजर्षिः १५
युगपत् एककालावच्छेदेन गुरोः पितुः कैवल्यसंभूतिं केवलज्ञानोत्पत्तिं सुतश्च चक्रं चेति सुतचक्रे तयोः पुत्र-
चक्ररत्नयोः सूतिं समुत्पत्तिं च इति त्रयं त्रितयं बुधे ज्ञानवान् ॥४२॥ § ६६) कैवल्यमिति—धर्मं चरति धार्मिकस्तस्य मुखात् धार्मिकजनवचनात् वृषभस्य जिनेन्द्रस्य कैवल्यं केवलज्ञानोत्पत्तिं, सत्कञ्चुकीयात् प्रशस्त-
सोविदत्वात् सुतोत्पत्तिं पुत्रजन्म, शस्त्रपालाच्चायुधरक्षकाच्च द्राक् हठिति चक्रसमुद्भवं चक्ररत्नोत्पत्तिं च कलयन् ज्ञानं विभुः भरतः इह त्रिषु कार्येषु प्राक् पूर्वं मे मम किं कार्यमितोत्थं किंचिन्मनां व्याकुलमानसो २०
व्यग्रचेतस्कः सन् तदा तस्मिन् काले आदरात् विनयात् भगवतो जिनेन्द्रस्य धर्मफलं धर्मोद्देश्यकं तीर्थं प्राप्तुं मतिं बुद्धिं व्यातनोत् विस्तारयामास । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥४३॥ § ६८) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं गुरुभक्त्या भरेव निरतस्तत्परः भरतराजः भरतश्चासौ राजा चेति भरतराजः 'राजाहःसखिभ्यश्च' इति टच् समासान्तः, कौतुकितानि हृदयानि येषां तैः अनुजाश्च पुरजनाश्च परिजनाश्च अन्तःपुरं च एषां द्वन्द्वः ते पुरःसरा येषां तैर्जनैः परिवृतः परिवेष्टितः, पटुपटहानां विशालदुन्दुभीनां मन्द्रतमनिव्वानेन गम्भीरतम- २५

बिम्बित होनेवाले अपने नेत्रोंके समूहसे भगवान्के सुवर्णके समान निर्मल शरीरको सुशोभित भ्रमर समूहसे युक्त कल्पवृक्षके समान करता हुआ भगवान्के सामने मुख कर यथायोग्य रीतिसे बैठ गया । § ६६) श्रीमानिति—तदनन्तर श्रीमान् राजर्षि भरतने पिताको केवलज्ञान-
की प्राप्ति तथा पुत्र और चक्ररत्नकी उत्पत्ति इन तीन कार्योंको एक साथ जाना ॥४२॥
§ ६७) कैवल्यमिति—धार्मिक मनुष्यके मुखसे भगवान्को केवलज्ञानकी उत्पत्ति, उत्तम ३,
कञ्चुकीयके मुखसे पुत्रकी उत्पत्ति और शस्त्ररक्षकसे चक्ररत्नकी उत्पत्तिके समाचारको शीघ्र ही जानकर भरतमहाराज, इन कार्योंमें मुझे पहले कौन कार्य करना चाहिए इस प्रकार कुछ व्यग्र चित्त हुए परन्तु उस समय उन्होंने आदरपूर्वक तीर्थधर्मकी प्रवृत्तिरूप फलसे युक्त भगवान्के केवलज्ञानोत्सवकी प्राप्त करनेका विचार कर लिया ॥४३॥ § ६८) तदन्विति—तद-
नन्तर गुरुभक्तिके समूहमें लीन सम्राट् भरत, कुतूहलसे युक्त हृदयवाले छोटे भाइयों, परिवार- ३५
के अन्य लोगों तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे परिवृत होता हुआ विशाल दुन्दुभियोंके जोरदार

- बलं पुरोधाय पुरतश्चलितः, पुरतः परिशोभमानमेकत्र युगपदुदितदिनकरबिम्बसहस्रशङ्काकरं पुञ्जोभूतमिव कान्तिसारं भगवदास्थानमण्डपं प्रवीक्ष्य प्रविश्य चान्तः क्रमेण प्रथमद्वितीयसाला-
वुत्क्रम्य, तत्र संभ्राम्यद्विद्वारिकैः प्रवेशितः त्रिदशभुवनसौभाग्यजित्वरीं श्रीमण्डपशोभावैखरीं
विलोक्य विस्मितमानसः प्रदक्षिणीकृत्य प्रथमपीठे धर्मचक्रचतुष्टयं, द्वितीयपीठे महाध्वजांश्चाचंयित्वा,
५ गन्धकुटीमध्यसमिद्धसिंहासनोपरि विराजमानतया पूर्वाचलशिखरशोशुभ्यमानं दिनमणिमनुकुर्वाणं,
चलच्चामरनिकरवीज्यमानतया पुष्पवृष्टिपरीततया च प्रपतन्निर्झरं त्रिधाभूतविधुबिम्बावलम्बिताम्बु-
धरचुम्बितं मन्दारतरुगलितप्रसूनपरिमेदुरं मन्दरगिरि तुलयन्तं भगवन्तमवलोक्य प्रणम्य चाति-
विभवेन पूजयामास ।

- शब्देन निरुद्धा दशदिशावकाशा येन तत् प्रचलितम् अम्भोविमिव सागरमिव, षडङ्गैस्तरङ्गितं यद् बलं सैन्यं
१० तत् पुरोधाय अग्रे कृत्वा पुरतो नगरात् चलितः पुरतोऽग्रे शोभमानं विराजमानं, एकत्र एकस्मिन् स्थाने युगपद्
एकसार्धम् उदितानि यानि दिनकरबिम्बसहस्राणि तेषां शङ्काकरं संवेहोत्पादकं पुञ्जोभूतं राशिकृतं कान्तिसार-
मिव भगवदास्थानमण्डपं जिनेन्द्रसमामण्डपं प्रवीक्ष्य दृष्ट्वा प्रविश्य च अन्तः, क्रमेण प्रथमद्वितीयसाली उत्क्रम्य
समुल्लङ्घ्य तत्र संभ्राम्यद्विः द्वारिकैर्द्वाररक्षकैः प्रवेशितः प्रापितप्रवेशः सन् त्रिदशभुवनस्य स्वर्गस्य सौभाग्यं
शोभा जित्वरीं जयनशीलां श्रीमण्डपस्य शोभावैखरीं तां श्रीमण्डपमुपमाविस्तुतिं विलोक्य विस्मितमानसः
१५ चकितचेताः प्रदक्षिणीकृत्य परिक्रम्य प्रथमपीठे धर्मचक्राणां चतुर्दिक्स्थितानां चतुष्टयं चतुष्कं, द्वितीयपीठे
महाध्वजान् बृहत्पताकाश्च अचंयित्वा गन्धकुटीमध्ये समिद्धस्य देदीप्यमानस्य सिंहासनस्य हरिविष्टरस्योपरि
विराजमानतया शोभमानतया पूर्वाचलशिखरे शोशुभ्यमानमतिशयेन शुभ्रन्तं दिनमणिं सूर्यम् अनुकुर्वाणं,
चलच्चामराणां निकरेण वीज्यमानतया पुष्पवृष्टिपरीततया च सुमनोवृष्टिव्याप्ततया च प्रपतन्तो निर्झरा
वारिप्रवाहा यस्मिन्तं, त्रिधाभूतेन विधुबिम्बेनावलम्बितः सहितो योऽम्बुधरो मेघस्तेन चुम्बितं मन्दारतरुमयः
२० कल्पवृक्षेभ्यो गलितैः प्रसूनैः पुष्पैः परिमेदुरं व्याप्तं मन्दरगिरिं सुमेरसानुमन्तं तुलयन्तं भगवन्तं वृषभ-
जिनेन्द्रम् अवलोक्य प्रणम्य च तमस्कृत्य च अतिविभवेन विपुलसमृद्ध्या पूजयामास । § ६९)
पूजान्तं इति—पूजान्ते सपर्यावसाने भरतनुपतिः भरतेश्वरः त्रिभुवनतिलकं त्रिलोकोश्रेष्ठं सकल-
गुणनिधिं निखिलगुणसागरं विश्वेषां सकलपदार्थानां याथात्म्यस्य पारमार्थ्यस्य बोधो ज्ञानं यस्य तं
तथाभूतं देवदेवं जिनेन्द्रं संप्रणम्य अतिभक्त्या तीव्रानुरागेण स्तुत्वा नत्वा च भूयः पुनः श्रीमण्डपाग्रधं
२५ गत्वा तत्र सभ्यानामन्यसभासदानामन्तराले मध्ये देवाङ्गे जिनेन्द्रशरीरे दत्तदृष्टिः प्रदत्तनयनः मुकुलिते

- शब्दोंसे दर्शों दिशाओंके अवकाशको रोकनेवाली तथा लहराते हुए समुद्रके समान छह
अंगोंसे व्याप्त सेनाको आगे कर नगरसे चला । आगे शोभायमान तथा एक स्थानपर एक
साथ उदित हुए हजार सूर्यबिम्बोंकी शंका करनेवाले अथवा इकट्ठे हुए कान्तिके सारके समान
भगवान्‌के सभामण्डपको देखकर उसने भीतर प्रवेश किया । क्रम-क्रमसे पहले और दूसरे
३० कोटको उल्लंघन कर वहाँ घूमनेवाले द्वारपालोंके द्वारा भीतर प्रविष्ट होता हुआ आगे बढ़ा ।
सर्वप्रथम स्वर्गकी शोभाको जीतनेवाली श्रीमण्डपकी विचित्र शोभाको देखकर उसका मन
आश्चर्यसे चकित हो गया । तदनन्तर प्रथम पीठपर विद्यमान चार धर्मचक्रोंकी प्रदक्षिणा
देकर तथा द्वितीय पीठपर स्थित महाध्वजाओंकी पूजा कर उसने भगवान्‌के दर्शन कर
प्रणाम किया और बहुत वैभवके साथ उनकी पूजा की । उस समय भगवान्‌ गन्धकुटीके
३५ मध्यमें देदीप्यमान सिंहासनके ऊपर विराजमान होनेसे उदयाचलके शिखरपर शोभायमान
सूर्यका अनुकरण कर रहे थे । चलते हुए चामरोंके समूहसे वीज्यमान तथा पुष्पवृष्टिसे
व्याप्त होनेके कारण वे उस मन्दरगिरिकी तुलना कर रहे थे जिसपर अनेक निर्झर पड़ रहे

§ ६९) पूजान्ते देवदेवं त्रिभुवनतिलकं संप्रणम्यातिभक्त्या

स्तुत्वा नत्वा च भूयः सकलगुणनिधिं विश्वयाथात्म्यबोधम् ।

गत्वा श्रीमण्डपाग्र्यं भरतनरपतिस्तत्र सभ्यान्तराले

देवाङ्गे दत्तदृष्टिर्मुकुलितविलसत्पाणिपद्मोऽवतस्थे ॥४४॥

§ ७०) तदनु भव्यपुण्डरीकषण्डमार्तण्डं केवलज्ञानलक्ष्मीमनुभवन्तं भगवन्तं धर्मं पृष्ठवति ५
भरतराजे, भूतभविष्यद्वर्तमानपदार्थसाध्यव्यक्तीकरणसाक्षिणी, निर्मुक्ताशेषदोषा, मिथ्यात्वजालतूल-
वातूललोला, विपक्षगर्वसर्वस्वपर्वतदम्भोलिः, अपारसंसारसागरकर्णधारायमाणा, स्याद्वादलक्ष्मी-
विहरणप्रासादपाली, धर्मनृपसाम्राज्यप्रतिष्ठाभूमिः, ताल्वोष्ठस्पन्दादिर्वजिता, वर्णविन्यासरहितापि
वस्तुबोधविधानचतुरा, स्वयमेकापि पृथक्पृथग्भिप्रायवचनानां देहिनां स्पष्टमिष्टार्थसाधनप्रवीणा
सुधामयी वृष्टिरिव दिव्यवाणी भगवन्मुखारविन्दात्प्रादुर्बभूव । १०

विलसत्पाणिपक्षे यस्य यथाभूतः सन् अवतस्थे अवस्थितोऽभूत् । स्रग्धरा छन्दः ॥४४॥ § ७०) तदन्विति—
तदनु तदनन्तरं भव्यपुण्डरीकषण्डमार्तण्डं भव्यारविन्दवृन्दविभाकरं केवलज्ञानलक्ष्मीमनुभवन्तं केवल-
ज्ञानरहितं भगवन्तं वृषभजिनेन्द्रं भरतराजे धर्मं पृष्ठवति सति भगवन्मुखारविन्दात् भगवद्भवनवारिजात्
दिव्यवाणी दिव्यध्वनिः प्रादुर्बभूव । अथ कथंभूता सा दिव्यवाणीत्याह—भूतभविष्यद्वर्तमानपदार्थानां कालत्रय-
वतिपदार्थानां सार्थः समूहस्तस्य व्यक्तीकरणस्य प्रकटकरणस्य साक्षिणी, निर्मुक्तास्त्यक्ता अशेषदोषा १५
यस्यास्तथाभूता, मिथ्यात्वजालमेव तूलं तस्य वातूलस्य वात्याया इव लीला यस्यास्तथाभूता, विपक्षाणां
प्रतिषादिनां गर्वसर्वस्वमेव पर्वतः सानुमान् तस्य दम्भोलिः पविः, अपारसंसार एव सागरस्तस्मिन् कर्णधार
इवाचरतीति तथा, स्याद्वादलक्ष्मीरनेकान्तश्रीस्तस्या विहरणाय प्रासादपाली सौधसंततिः धर्मनृपस्य
धर्ममहीभूतो यत् साम्राज्यं तस्य प्रतिष्ठाभूमिः, ताल्वोष्ठस्य स्पन्दादिना वर्जिता त्यक्ता, वर्णविन्यासरहितापि
अक्षराकारपरिणमनरहितापि वस्तुबोधस्य वस्तुज्ञानस्य विधाने करणे चतुरा विदग्धा, स्वयं स्वतः एकापि २०
अद्वितीयापि पृथक्पृथग्भिप्रायवचनानां पृथक्पृथग्भिप्रायवादिनां देहिनां प्राणिनां स्पष्टं यथा स्यात्तथा इष्टार्थ-
साधने प्रवीणा समर्था सुधामयी पीयूषमयी वृष्टिरिव दिव्यवाणी दिव्यध्वनिर्भगवन्मुखारविन्दात् प्रादुर्बभूव

थे, जो तीन रूपमें परिणत चन्द्रमण्डलसे अवलम्बित मेघसे चुम्बित हो रहा था तथा कल्प-
वृक्षोंसे घिरे हुए पुष्पोंसे व्याप्त था । § ६९) पूजान्त इति—पूजाके अन्तमें भरतेश्वरने
त्रिलोकके तिलक समस्त गुणोंके सागर एवं सर्वज्ञ देवाधिदेव वृषभजिनेन्द्रको प्रणाम किया, २५
भक्तिपूर्वक स्तुति की, नमस्कार किया और उसके बाद श्रीमण्डपमें जाकर वहाँ भगवान्‌के
शरीरपर दृष्टि लगाता हुआ वह दोनों हाथ जोड़कर सभासदोंके बीचमें बैठ गया ॥४४॥
§ ७०) तदन्विति—तदनन्तर भव्यजीवरूपी कमलसमूहको विकसित करनेके लिए सूर्य एवं
केवलज्ञानरूपी लक्ष्मीका अनुभव करनेवाले भगवान्‌से भरतेश्वरने धर्मका स्वरूप पूछा ।
उसके फलस्वरूप भगवान्‌के मुखारविन्दसे दिव्यध्वनि प्रकट हुई । वह दिव्यध्वनि भूत, ३०
भविष्यत् और वर्तमान पदार्थोंके समूहको प्रकट करनेके लिए साक्षीस्वरूप थी, समस्त
दोषोंसे रहित थी, मिथ्यात्वके समूह रूप रईको उड़ानेके लिए तीव्रवायुके समान थी, प्रति-
वादियोंके गर्वरूपी पर्वतोंको नष्ट करनेके लिए वज्रके समान थी; अपार संसाररूपी सागरसे
पार करनेके लिए कर्णधारके समान थी, स्याद्वादरूपी लक्ष्मीकी क्रीडाका प्रासाद थी, धर्म-
रूपी राजाके साम्राज्यकी प्रतिष्ठाभूमि थी, तालु तथा ओष्ठके हलन-चलन आदिसे रहित ३५
थी, अक्षरोंके विन्याससे रहित होकर भी वस्तुके ज्ञान करानेमें चतुर थी, स्वयं एक होकर
भी पृथक्-पृथक् अभिप्रायको प्रकट करनेवाले प्राणियोंके इष्ट अर्थको स्पष्ट रूपसे सिद्ध करनेमें

§ ७१) निशम्य भरताधिपो मधुरदिव्यवाणीं विभो-

स्तदाभजत दर्शनव्रतविशुद्धिमुद्यद्बुचिः ।

सुरासुरमुनीश्वरप्रभृतिभिः परीता सभा-

परां धृतिमवाप सा परमशर्मधर्माभूतैः ॥४५॥

- ५ § ७२) तदानो कुरुकुलचूडामणिः सोमप्रभनरमणिर्दानतीर्थप्रवर्तकः श्रेयान् भरतेश्वरानुजो वृषभसेनश्च भगवत्पादमूले दीक्षित्वा गणधरा बभूवुः । ब्राह्मीसुन्दर्यौ च संसारनिर्वेदनधृतविवाह-चिन्ते भट्टारकपादमूले दीक्षामासाद्य गणिनीगणप्रधाने बभूवतुः । श्रुतकीर्तिश्च गृहीतोपासकव्रतः श्रावकाप्रणीर्बभूव । प्रियव्रता च गृहीताणुव्रता श्राविकाग्रेसरी बभूव । पुराभग्नतपस्काः कच्छमहा-कच्छप्रमुखाश्च भरतराजपुत्रं मरीचिं विना सर्वेऽपि महाप्रव्रज्यामासेदुः अनन्तवीर्यश्च गुरुपादमूल-
- १० प्राप्तदीक्षः सुरासुरैः पूजितो मोक्षलक्ष्मीमाससाद ।

§ ७३) वन्दित्वा भरताधिपो भगवतः पादाम्बुजं सानुज-

स्तच्चक्रायुधपूजने कृतमतिः संपूज्य लोकेश्वरम् ।

आस्थानाद्बहिरागतः पृतनया जुष्टश्च सौधोल्लसत्

केतुव्रातनिरस्तभास्करकरं नैजं पुरं प्राविशत् ॥४६॥

- १५ प्रकटितासीत् । § ७१) निशम्येति—तदा तस्मिन् काले उद्यन्ती वर्धमाना रुचिः प्रतीतिर्यस्य तथाभूता भरताधिपः भरतेश्वरः विभोर्भगवतो मधुरदिव्यवाणीं मधुरदिव्यध्वनिं निशम्य श्रुत्वा दर्शनव्रतविशुद्धिं सम्यक्त्वव्रतयोः—विशुद्धिं निर्मलताम् अभजत प्रापत् । सुराश्च असुराश्च मुनीश्वराश्चेति सुरासुरमुनीश्वरास्ते प्रभृतयो येषां तैः परीता व्याप्ता सा सभा समवसरणपरिषद् परमशर्मधर्माभूतैः उत्कृष्टसुखदायकधर्मोपयुषैः परां सातिशयां धृतिं संतुष्टिम् अवाप प्राप्तवती । पृथ्वील्लसद् ॥४५॥ § ७२) तदानीमिति—सुगमम् ।
- २० § ७३) वन्दित्वेति—भरताधिपो भरतेश्वरः भगवतो वृषभस्य पादाम्बुजं चरणकमलं वन्दित्वा नमस्कृत्य सानुजसकनिष्ठभ्रातृकः तच्चक्रायुधपूजने तच्चक्ररत्नसमर्चायां कृतमतिः कृतबुद्धिः सन् लोकेश्वरं जिनेन्द्रं

- प्रवीण थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो अमृतको वृष्टि ही हो । § ७१) निशम्येति—जिसकी श्रद्धा बढ़ रही थी ऐसे भरतेश्वरके भगवान्की मधुर दिव्य ध्वनि सुनकर दर्शन और व्रतमें विशुद्धता प्राप्त की तथा सुर, असुर और मुनि आदिसंख्या वहा सभा उत्कृष्ट सुखदायक धर्मरूपी अमृतके द्वारा परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥४५॥ § ७२) तदानीमिति—उस समय कुरु वंशके शिखामणि राजा सोमप्रभ, दान तीर्थके प्रवर्तक श्रेयांस, और भरतेश्वरके छोटे भाई वृषभसेन भगवान्के पादमूलमें दीक्षित होकर गणधर हो गये । संसारसे वैराग्य होनेके कारण जिन्होंने विवाहको चिन्ता दूर कर दी थी ऐसी ब्राह्मी और सुन्दरी भी भगवान्के पादमूलमें दीक्षा प्राप्त कर गणिनियोंके समूहमें प्रधान हो गयीं । श्रुतकीर्ति, श्रावकके व्रत
- २५ ग्रहण कर श्रावकोंमें अग्रेसर हो गया और प्रियव्रता, अनुव्रत ग्रहण कर श्राविकाओंमें श्रेष्ठ बन गयी । पहले जिन्होंने तप छोड़ दिया था ऐसे कच्छ, महाकच्छ आदि राजा तथा भरतेश्वरके पुत्र मरीचिको छोड़कर अन्य सभी लोगोंने दिगम्बर दीक्षाको प्राप्त किया था । और पिताके पादमूलमें जिसने दीक्षा प्राप्त की थी ऐसे अनन्तवीर्यने सुर-असुरोंसे पूजित हो मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त किया । § ७३) वन्दित्वेति—भरतेश्वरने भगवान्के चरण-कमलोंकी वन्दना
- ३५ की तदनन्तर छोटे भाइयों सहित चक्ररत्नकी पूजाकी इच्छा करता हुआ भगवान्की पूजा

§ ७४) तदनु देवदेव ! त्रिभुवनरक्षणविचक्षण ! पापावग्रहविशेषविशेषितभव्यसस्य-
समुल्लासक ! धर्मामृतसेकाय दयाध्वजविराजमानां भव्यवरूथिनीं जयोद्योगसाधनं सज्जनधर्मचक्रं
च पुरस्कृत्य मुक्तिमार्गावस्कन्दननिपुणायामोहपृतनाया निःशेषनिर्मूलनाय च कालोऽयमुपस्थित
इति सविनयं पुरुहूतेन विज्ञापितस्तोत्रार्थकरपुण्यसारथिबोधितः, समोरकुमारसंमार्जितयोजनान्तर-
रम्यभूभागः, स्तनितसुरविरचितविमलसुरभिसलिलसंसेकविरहितरजःप्रसरमहीतलः, सकलर्तुकुसुम- ५
पल्लवितसमुल्लसितवल्लिकामतल्लिकाफलविलसिततरुनिकरनिरन्तरितमणिदर्पणप्रतिमावनीतल-
विलासः समनुस्रुतशिशिरसुरभिमन्दानिलः परस्पराह्वाननिरतदिविजजननिनदपूरितगगनतलः,
पुरस्कृताष्टमङ्गलसंगतध्वजमालावितानविचित्रिताम्बरसहस्रादिनकरस्पर्द्धिसहस्रारधर्मचक्रपुरःसरः ,

संपूज्य समर्च्य आस्थानात् सभामण्डपात् बहिरागतः पृतनया सेनया जुष्टः सेवितश्च सन् सौधेषु हर्म्येषूल्लसतां
स्फुरतां केतूनां पताकानां घ्रातेन समूहेन निरस्ता दूरीकृता भास्करकरा रविरश्मयो यस्मिंस्तत् नैजं स्वकीयं १०
पुरं नगरं प्राविशत् प्रविष्टवान् । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥४६॥ § ७४) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं
हे देवदेव ! हे देवाधिदेव ! हे त्रिभुवनस्य रक्षणे त्राणे विचक्षणो विद्वान् तत्संबुद्धौ, पापमेव अवग्रहविशेषो
वृष्टिप्रतिबन्धविशेषस्तेन विशेषितानि यानि भव्यसस्यानि भव्यजनत्रोहयस्तेषां समुल्लासकस्तत्संबुद्धौ,
धर्मामृतसेकाय धर्मसुकृतसेचनाय दयाध्वजैः कृपाकेतुभिर्विराजमानां शोभमानां भव्यवरूथिनीं भव्यसेनां जयोद्यो- १५
गस्य विजयप्रयासस्य साधनं सज्जधर्मचक्रं कार्यरतधर्मचक्रं च पुरस्कृत्य अग्रेकृत्य मुक्तिमार्गं मोक्षमार्गं यद्
अवस्कन्दनं लुण्ठनं तस्मिन् निपुणाय दक्षायामोहपृतनायामोहसेनाया निःशेषनिर्मूलनाय च समग्रभावेन
समुत्पाटनाय च अयं कालः समय उपस्थितः संप्राप्तः इति सविनयं सादरं यथा स्यात्तथा पुरुहूतेन पुरंदरेण
विज्ञापितः प्रार्थितः, तीर्थकरपुण्यमेव सारथिस्तेन बोधितः सावधानीकृतः, समोरकुमारैर्वायुकुमारैः संमार्जितः
स्वच्छीकृतः योजनान्तररम्यभूभागो यस्य सः, स्तनितसुरैर्मेषकुमारदेवैर्विरचितः कृतः यो विमलसुरभिसलिल-
संसेकनिर्मलसुगन्धितजलसेचनं तेन विरहितरजःप्रसरं दूरीकृतरणुविस्तारं महीतलं यस्य सः सकलर्तु- २०
कुसुमैर्निखिलतुण्डैः पल्लवितः रिसलयिताः समुल्लसिताः शोभिता या वल्लिकामतल्लिका श्रेष्ठलतास्तासां
फलैर्विलासिताः शोभिता ये तरुनिकरा वृक्षसमूहास्तैः निरन्तरितः सान्द्रितो मणिदर्पणप्रतिमावनीतलस्य
रत्नादर्शतुल्यमहीतलस्य विलासो यस्य सः, समनुस्रुतः शिशिरः शीतः सुरभिः सुगन्धिमन्दश्चानिलो यस्य सः,
परस्पराह्वाने निरता लीना ये दिविजजना देवास्तेषां निनदेन शब्देन पूरितं गगनतलं नभस्तलं यस्य सः,
पुरस्कृताष्टमङ्गलैः संगता सहिता ध्वजमाला केतुपङ्क्तिः वितानश्चन्द्रोपकश्च तैर्विचित्रितं यदम्बरं नभस्तलं २५

कर समवसरणसे बाहर आया और सेनासे युक्त होता हुआ महलोंपर फहराती हुई पता-
काओंके समूहसे जिसमें सूर्यकी किरणें दूर हट गयी थीं ऐसे अपने नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥४६॥
§ ७५) तदन्विति—तदनन्तरं हे देवोंके देव ! हे तीन लोककी रक्षा करनेमें निपुण ! हे पाप-
रूपी वर्षाके प्रतिबन्ध-विशेषसे सूखती हुई भव्यजीवरूपी धान्यको हरा-भरा करनेवाले !
धर्मरूपी अमृतको सींचनेके लिए और दयारूपी ध्वजासे सुशोभित भव्य जीवोंकी सेना ३०
तथा जयरूपी उद्योगके साधन समुत्पन्न धर्मचक्रको आगे कर मोक्षमार्गके लूटनेमें निपुण
मोहकी सेनाको समस्त रूपसे निर्मूलित करनेके लिए यह समय उपस्थित हुआ है इस
प्रकार इन्द्रने जब विनय सहित प्रार्थना की तब समस्त देशोंमें विहार करते हुए भगवान्
क्रम-क्रमसे अपने यशकी शोभाका अनुकरण करनेवाले कैलास पर्वतपर पहुँचे । विहार
करते समय तीर्थकर नामक पुण्य प्रकृति रूपी सारथि उन्हें प्रेरित कर रहा था, वायुकुमार ३५
देवोंके द्वारा एक योजनके भीतरका रमणीय भू-भाग साफ कर दिया गया था, स्तनित-
कुमार देवोंके द्वारा किये हुए निर्मल सुगन्धित जलके सेकसे पृथिवीतल धूलि रहित कर दिया

पुरस्तात् पृष्ठतश्च व्योमतलविन्यस्तसप्तसप्तहेमाम्बुजरुचिरञ्जितचरणयुगलतया विजितेन राग-
मल्लेन भयादुपाश्रितपद इव नभःस्थले कलितयानः सकलजगदानन्दनः जिनराजः सर्वदेशेषु
विहरमाणः क्रमेणानुकृतनिजयशोलीलं कैलासशैलमुपजगाम ।

इति श्रीमदहर्दासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धेऽष्टमः स्तवकः ॥८॥

- ५ तस्मिन् सहस्रदिनकराणां सहस्रसूर्याणां स्पष्टं यत् सहस्रारधर्मचक्रं सहस्रारसहितधर्मचक्रं तत्पुरःसरं यस्य सः,
पुरस्तादग्रे पृष्ठतश्च पश्चाच्च व्योमतले गगनतले विन्यस्तानि निक्षिप्तानि यानि सप्तसप्तहेमाम्बुजानि तेषां स्रष्ट्या
कांस्था रञ्जितं रक्तवर्णीकृतं चरणयुगलं यस्य तस्य भावस्तया विजितेन पराभूतेन रागमल्लेन भयात् उपा-
श्रितपद इव सेवितचरण इव, नभःस्थले गगने कलितयानः कृतगमनः, सकलजगदानन्दनो निखिललोकानन्द-
करः जिनराजो वृषभजिनेन्द्रः सर्वदेशेषु समप्रजनपदेषु विहरमाणो विहारं कुर्वन् क्रमेण क्रमशः अनुकृता
१० निजयशोलीला स्वकीतिशोभा येन तं तथाभूतं कैलासशैलं कैलासपर्वतम् उपजगाम प्रापत् ।

इति श्रीमदहर्दासकृतेः पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती'समाख्यायां संस्कृत-
व्याख्यायामष्टमः स्तवकः समाप्तः ॥८॥

- गया था, परस्परके बुलानेमें लीन देवोंके शब्दोंसे आकाशतल भर गया था, आगे किये
हुए आठ मंगल द्रव्योंसे सहित ध्वजाओंकी पंक्ति और चँदोवासे चित्रित आकाशमें
१५ उदित हजार सूर्योंके साथ स्पर्धा करनेवाला एक हजार अरोंसे युक्त धर्मचक्र उनके आगे-
आगे चल रहा था, आगे और पीछे आकाशतलमें विरचित सात-सात स्वर्ण कमलोंकी
कान्तिसे उनके चरण युगल रंगे हुए थे जिनसे ऐसा जान पड़ता था मानो पराजित हुआ
रागरूपी मल्ल भयसे उनके चरणोंमें आ पड़ा हो, वे आकाशमें अधर गमन कर रहे थे
और समस्त जगत्को आनन्द उत्पन्न कर रहे थे ।

इस प्रकार श्रीमान् अहर्दास कविकृत पुरुदेवचम्पूप्रबन्धमें
आठवाँ स्तवक समाप्त हुआ ॥८॥

नवमः स्तवकः

§ १) चक्रे चक्रस्य पूजां तदनु निधिपतिर्जातकर्मापि सूनोः

पुञ्जीभूतानि रत्नान्युत्तरकुतुकादर्थिनां संददानः ।

यत्र स्वः पारिजातावलिरधिकमदोन्मत्तभूपारिजात-

श्रेणी च व्रीडशोकावभजत युगपद्वीतवेलोत्सवाग्रे ॥१॥

§ २) ततश्चक्रधरस्यास्य दिग्जयारम्भसंभ्रमे ।

उपतस्थे शरलक्ष्मीर्जयश्रीरिव सादरा ॥२॥

§ ३) विशालविमलाम्बरस्फुटपयोधरोद्यन्मरु-

च्छरासननखक्षता मधुकरालिनीलालका ।

§ १) चक्र इति—तदनु तदनन्तरं, निधिपतिर्भरतेश्वरः चक्रस्य चक्ररत्नस्य पूजां नमस्यां 'पूजा नमस्यापचित्तिः सपर्याचिर्हिणाः समाः' इत्यमरः, चक्रे विदधे, उत्तरकुतुकात् विशालकौतुहलात् अर्थिनां याच- १०
कानां पुञ्जीभूतानि राशीकृतानि रत्नानि संददानो वितरन् सूनोः पुत्रस्य जातकर्मापि जन्मसंस्कारमपि चक्रे विदधे, यत्र यस्मिन् युगपद् एककालावच्छेदेन बीतातिक्रान्ता वैला सीमा यस्य तथाभूतस्योत्सवस्य समुद्धवस्य अग्रे पुरस्तात् स्वःपारिजातानां स्वर्गस्थकल्पवृक्षाणामावलिः पङ्क्तिः अधिकमदोन्मत्ता विपुलगर्वगविता ये भूपारयः शत्रुराजाः तेषां जातस्य समूहस्य श्रेणी व्रीडशोको लज्जाशोको अभजत प्रापत् । निधिपतेर्दानं दृष्ट्वा स्वःपारिजातावलिः लज्जां लेभे भरतपुत्रोत्पत्तिं च श्रुत्वा शत्रुराजसंततिः शोकमभजत । युगपदित्यस्य १५
अभजतेति क्रिययापि संबन्धो युज्यते । स्रग्धराछन्दः ॥१॥ § २) तत इति—ततस्तदनन्तरं अस्य चक्र-
धरस्य दिग्जयारम्भसंभ्रमे विजययात्राजन्यहर्षत्वरयां सादरा आदरसहिता जयश्रीरिव विजयलक्ष्मीरिव शरलक्ष्मीः शरच्छ्रीः उपतस्थे उपस्थिताभूत् ॥२॥ § ३) विशालेति—शरद् शरदृतुः विशेषणसाम्यात्
काचित्कामिनी च अराजत शुशुभे । अयोभयोः सादृश्यमाह—विशालविमलाम्बरे विस्तृतस्वच्छाकाशे स्फुटाः प्रकटिता ये पयोधरा भेषास्तेषु उद्यन्ति प्रकटीभवन्ति मरुच्छरासनानि शक्रधनूषि नखक्षतानीव यस्यां २०

§ १) चक्र इति—निधियोंके स्वामी भरतने चक्ररत्नकी पूजा की । तदनन्तर बहुत भारी कुतूहलवश याचकोंके लिए एकत्रित रत्न प्रदान करते हुए उन्होंने पुत्रका जन्म संस्कार भी किया ऐसा संस्कार कि जिसके निर्मर्याद उत्सवके आगे स्वर्गके पारिजात—कल्पवृक्षोंकी पंक्ति और अधिक सदसे उन्मत्त भू-पारिजातों—शत्रुराजाओंके समूहकी पंक्ति एक साथ लज्जा और शोक को प्राप्त हुई थी अर्थात् भरतेश्वरके दानको देखकर स्वर्गके पारिजात— २५
कल्पवृक्ष लज्जाको प्राप्त हो गये और भू-पारिजात—पृथिवीके पारिजात (पक्षमें शत्रु राजाओंके समूह भरतके पुत्रोत्पत्तिका समाचार पाकर) शोकको प्राप्त हो गये ॥१॥ § २) तत इति—तदनन्तर इस चक्रवर्तीकी उयोंही दिग्बिजयकी तैयारियाँ शुरू हुई त्योंही आदर-
सहित विजय लक्ष्मीके समान शरद् ऋतुकी लक्ष्मी आकर उपस्थित हो गयी ॥२॥ § ३) विशालेति—वह शरद् ऋतुकी लक्ष्मी किसी स्त्रीके समान सुशोभित हो रही थी क्योंकि ३०
जिस प्रकार स्त्रीके स्वच्छ अम्बर-वस्त्रके भीतर प्रकट स्थूल स्तनोंके ऊपर इन्द्रधनुषके समान

वियत्तलपतत्सितच्छदपरम्पराकण्ठिका

शशाङ्कविलसन्मुखो शरदराजताम्भोजदृक् ॥३॥

- § ४) तदानीं विकचकञ्जपुञ्जकिञ्जल्कपिञ्जरया कनककलितमणिबद्धशरलक्ष्मी-
कण्ठिकयेव, मदमत्तमदनगजसंश्रुटितसुवर्णशृङ्खलयेव, मधुकरपरम्परया विराजमाने, मनसिजमद-
५ गजमदवारिसौरभशङ्काकरससच्छदपरिमलपरिमिलितदिगन्तरे, गगनतललक्ष्मीवक्षःस्थलविलसित-
हरिन्मणिकण्ठिकानुकारिणीभिः, निरावरणं प्रकाशमानं विकर्तनं निजपितरमुपसेवितुमागतायाः

- तथाभूता शरद् कामिनीपक्षे विशालो बृहदाकारो विमलाम्बरे स्वच्छवस्त्रे स्फुटी प्रकटो यो पयोधरो स्तनौ
तयोर्वहन्ति मरुच्छरासनानीव इन्द्रधनुषीव नखक्षतानि नखराघाता यस्यास्तथाभूता, मधुकरालिभ्रमरपङ्क्ति-
नीलालका इव यस्यां सा शरद् कामिनीपक्षे मधुकरालिरिव नीलालकाः श्यामलकचा यस्याः सा, वियत्तले
१० गगनतले पतन्तः समूहोयमाना ये सितच्छदा हंसास्तेषां परम्परा संततिः कण्ठिकेव ग्रीवाभरणमिव यस्यां
तथाभूता शरद् कामिनीपक्षे वियत्तलपतत्सितच्छदपरम्परेव कण्ठिका यस्याः सा, शशाङ्कचन्द्रो विलसन्मुख-
मिव यस्यां तथाभूता शरद् कामिनीपक्षे शशाङ्क इव विलसन्मुखं शोभमानवदनं यस्याः सा, अम्भोजदृक्
अम्भोजानि कमलानि दृश इव नेत्राणि यस्यास्तथाभूता शरद् कामिनीपक्षे अम्भोजे इव दृशौ नयने यस्याः
सा । श्लेषरूपकोपमाः । पृथ्वीलन्दः ॥३॥ § ४) तदानीमिति—तदानीं तस्मिन् काले, विकचानि विकसि-
१५ तानि यानि कञ्जानि कमलानि तेषां पुङ्खस्य समूहस्य किञ्जल्केन केसरेण पिञ्जरा पीतवर्णा तया कनक-
कलिता स्वर्णनिर्मिता मणिबद्धा रत्नखचित्ता च या शरलक्ष्म्याः कण्ठिका ग्रीवाभरणं तयेव, मदमत्तमदन-
गजेन संश्रुटिता खण्डिता सुवर्णशृङ्खलयेव हाटकहिञ्जीरकियेव, मधुकरपरम्परया भ्रमरसंतत्या विराजमाने
शोभमाने, मनसिजमदगजस्य कामोन्मत्तकरिणो मदवारिणो दानसलिलस्य यत् सौरभं सौगन्ध्यं तस्य
शङ्काकराः ये ससच्छदाः ससपर्वणवृक्षास्तेषां परिमलेन विमर्दोत्थगन्धेन परिमिलितानि व्यासानि दिगन्तराणि
२० यस्मिस्तस्मिन्, गगनतललक्ष्म्या नभस्तलश्रिया वक्षःस्थले विलसिताः शोभिता या हरिन्मणिकण्ठिकास्तासा-
मनुकारिणीभिः, निरावरणं यथा स्यात्तथा प्रकाशमानं विभ्राजमानं विकर्तनं मार्तण्डं 'विकर्तनार्कमार्तण्ड-
द्वादशात्मदिवाकराः' इत्यमरः, निजपितरं स्वजनकम् उपसेवितुं समीपमागत्य सेवितुम् आगतायाः समायातायाः

- नखक्षत सुशोभित होते हैं उसी प्रकार उस शरद् ऋतुके विशाल तथा निर्मल आकाशमें प्रकट
मेघों के ऊपर नखक्षतके समान इन्द्रधनुष सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार स्त्रीके भ्रमरा-
२५ वलिके समान काले-काले केश होते हैं उसी प्रकार शरद् ऋतुके भी काले केशोंके समान
भ्रमरावलि सुशोभित हो रही थी, जिस प्रकार स्त्रीके कण्ठमें आकाशतलमें उड़ते हुए
हंसोंकी सन्ततिके समान कंठी सुशोभित होती है उसी प्रकार शरद् ऋतुके भी कण्ठीके
समान आकाशतलमें हंसोंकी पंक्ति उड़ रही थी, जिस प्रकार स्त्रीका चन्द्रमाके समान मुख
सुशोभित होता है उसी प्रकार शरद् ऋतुके भी मुखके समान चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था
३० और जिस प्रकार स्त्री कमलोंके समान नेत्रोंसे सहित होती है उसी प्रकार शरद् ऋतु भी
नेत्रोंके समान कमलोंसे सहित थी ॥३॥ § ४) तदानीमिति—उस समय वह शरद् ऋतु
भ्रमरोंकी जिस परम्परासे सुशोभित हो रही थी वह खिले हुए कमल समूहकी केशरसे
पीली-पीली हो रही थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो स्वर्णनिर्मित एवं मणियोंसे
जड़ी शरद् ऋतुकी लक्ष्मीकी कण्ठी ही हो अथवा मदसे मत्त कामदेवरूपी हाथीके द्वारा
३५ तोड़ी हुई सुवर्णकी सांकल ही हो । उस समय दिशाओंके अन्तराल कामरूपी मदोन्मत्त
हाथीके मद जल सम्बन्धी सुगन्धिकी शंका करनेवाले सप्तपर्वणकी सुगन्धिसे मिल रहे थे ।
उस समय आकाश शुकोकी जिन पंक्तियोंसे व्याप्त हो रहा था वे ऐसी जान पड़ती थीं

कलिन्दगिरिनन्दिन्याः परितः प्रसृताभिरिव वीचिपरम्पराभिः, सुरगजोन्मूलितनिर्गलदाकाशगङ्गा-
कमलिनीमिव दर्शयन्तीभिः, दिनकररथतुरगतनुप्रभानुलसितश्याममिव गगनतलमुत्पादयन्तीभिः, संचा-
रिणीमिव मरकतस्थलीं विडम्बयन्तीभिः, अन्तरीक्षाकूपारशैवालावलिमिव स्मारयन्तीभिः, गगन-
तलविततैः पक्षपुटैः कदलीदलैरिव दिवसकरखरकिरणपरिखेदितान्याशामुखानि बीजयन्तीभिः,
वियतिसंचारिणीं शाद्वलमालामिवाचरन्तीभिः शुकराजिभिर्दन्तुरिततारापथे पम्फुल्यमानमल्लिका-
मतल्लिकाजाले तस्मिन् शरत्काले रचितदिग्जयोद्योगो भरतराजः पुरस्कृतचक्रायुधः प्रस्थानभेरी-
भाङ्कारैर्वनस्तनितशङ्कया कलापिकलापमुद्गोवं विदधानैर्दिगन्तराणि पूरयामास ।

कलिन्दगिरिनन्दिन्या यमुनायाः परितः समन्तात् प्रसृताभिः विस्तृताभिः वीचिपरम्पराभिस्तरङ्गसंततिभिरिव,
सुरगजैर्देवद्विपैरुन्मूलिता उत्पादिता निर्गलन्ती पतन्ती आकाशगङ्गाया मन्दाकिन्या कमलिनी सरोजिनी तां
दर्शयन्तीभिरिव, दिनकररथस्य सूर्यस्यन्दनस्य ये तुरगा हयास्तेषां तनुप्रभया देहदीप्त्या अनुलसं सत् श्यामं
श्यामवर्णं गगनतलं नभस्तलम् उत्पादयन्तीभिः, संचारिणीं संचरणशीलां मरकतस्थलीं हरितमणिमयभूमिं
विडम्बयन्तीभिरिव अनुकुर्वन्तीभिरिव, अन्तरीक्षा कूपारस्य गगनार्णवस्य शैवालावलिं जलनीलीपङ्क्तिं स्मार-
यन्तीभिः, गगनतलविततैर्नभस्तलव्याप्तैः पक्षपुटैः गह्वरपुटैः कदलीदलैः मोचातरुपत्रैः दिवसकरस्य सूर्यस्य
खरकिरणैस्तोक्ष्णरश्मिभिः परिखेदितानि आशामुखानि दिङ्मुखानि बीजयन्तीभिरिव, पवनं कुर्वन्तीभिरिव,
वियतिं विहायसि संचारिणीं संचरणशीलां शाद्वलमालां हरितशष्पसंततिमिव आचरन्तीभिः, शुकराजिभिः
कोरपङ्क्तिभिः दन्तुरितं व्याप्तं तारापथं गगनं यस्मिस्तस्मिन्, प्रशस्ता मल्लिका मल्लिकामतल्लिकाः तासां
जालानि समूहाः पम्फुल्यमानानि मल्लिकामतल्लिकाजालानि यस्मिस्तस्मिन्, शरत्काले जलदान्तसमये
रचितः कृतो दिग्जयद्योगः प्रयासो येन तयोभूतः भरतराजो निधीश्वरः पुरस्कृतमग्रे कृतं चक्रायुधं येन तथा
सन् प्रस्थानभेरीभाङ्कारैः प्रयाणदुन्दुभिर्मभाशब्दैः घनस्तनितशङ्कया मेघगर्जनसंदेहेन कलापिकलापं मयूर-
मण्डलम् उद्गोवं समुन्नमितकण्ठं विदधानैः कुर्वाणैः, दिगन्तराणि काष्ठान्तरालानि पूरयामास संभूतानि

मानो आकाशतलकी लक्ष्मीके वक्षःस्थलपर सुशोभित हरे मणियों की कंठीका अनुकरण ही
कर रही हो, अथवा निराचरण रूपसे प्रकाशमान अपने पितारूपी सूर्यकी उपासना करनेके
लिए आयी हुई यमुना नदीकी सब ओर फैली तरंगों की परम्पराएँ ही हो, अथवा देवों के
हाथियों द्वारा उखाड़ी जाकर गिरती हुई आकाशगंगाकी कमलिनियों को ही मानो दिखला
रही थी, आकाश तलको सूर्य सम्बन्धी रथके घोड़ोंके शरीरकी प्रभासे लिप्त किये हुएके समान
श्यामवर्ण कर रही थी, अथवा चलती-फिरती मरकत मणियोंकी भूमिका अनुकरण कर रही
थी, अथवा आकाशरूपी समुद्रके शैवाल समूहका स्मरण करा रही थी, अथवा केलेके
पत्तोंके समान आकाशतलमें विस्तृत पंखोंकी पुटोंसे ऐसी जान पड़ती थी मानो सूर्यकी
तीक्ष्ण किरणोंके द्वारा खिन्न दिशाओंके मुखको हवा ही कर रही थी अथवा आकाशमें
चलती-फिरती हरी-हरी घासके समूहका आचरण करती थी। उस शरद् ऋतुके समय श्रेष्ठ
मालतियोंका समूह अत्यन्त विकसित हो रहा था। ऐसे शरद् ऋतुके समय जिसने दिग्वि-
जयका उद्योग किया था, तथा जिसने चक्ररत्नरूपी शस्त्रको आगे किया था ऐसे भरतने
प्रयाण कालमें बजनेवाली भेरियोंके भांकार शब्दोंसे दिशाओंके अन्तरालको भर दिया
था। भेरियोंके वह भांकार मयूरोंके समूहको मेघ गर्जनाकी शंकासे उद्गोव—उन्मुख कर

§ ५) दृष्टारातिमदेभकेसरिरवस्तत्सैन्यवीरावली-

केकित्रातघनारवस्त्रिभुवनाभोगे नटन्त्यादिवरम् ।

उद्यच्चक्रधरस्य कीर्तिसुदृशो मञ्जोरशिञ्जारवो

व्योमाध्वन्युदियाय मन्द्रविजयप्रस्थानभेरीरवः ॥४॥

§ ६) उद्यन्मन्दजयानकध्वनिभरः संत्रस्तदिवकुम्भिराट्-

फिट्कारैः कुलभूधराग्रिमगुहासंसुप्तपद्मोद्विषाम् ।

कोपोदबुद्धवतां च गजितरवैर्जुष्टो दिशो जेष्यत-

श्चक्रेशात्प्रथमं दिगन्तवलयान्याक्रान्तवांस्तत्क्षणम् ॥५॥

§ ७) तदानीमुदारपराक्रमश्चक्रधरः शत्रुबलजलधिशोषणवडवाग्निकल्पेन मूर्तेनेव प्रताप-

१० पुञ्जेन सुदर्शननाम्ना चक्ररत्नेन, विचित्रमणिमयूखचित्रितेन सूर्यप्रभनाम्ना छत्ररत्नेन, समुत्खात-

विदधे । § ५) इप्तेति—उद्यंश्चासी चक्रधरश्चेति उद्यच्चक्रधरस्तस्य विजयोद्योगवत्श्चक्रवर्तिनः मन्द्रो गम्भीरो यो विजयप्रस्थानभेरीणां रवो विजयप्रयाणदुन्दुभिनादः स व्योमाध्वनि गगनमार्गे उदियाय उज्जगाम । अथ तमेव रवं विशेषयितुमाह—दृष्टारातय एव सगर्वशत्रव मदेभा मत्तमतङ्गजास्तेषां केसरिरवो मृगेन्द्रशब्दः, तत्सैन्य-वीरावली भरतपूतनावोरध्वेणो एव केकित्रातं मयूरसमूहस्तस्य घनारवो मेघशब्दः, त्रिभुवनाभोगे त्रिजगदजिरे

१५ चिरं दीर्घकालेन नटन्त्या नृत्यन्त्याः कीर्तिसुदृशो यशःस्त्रिया मञ्जोरशिञ्जारवो नूपुरशिञ्जितरवः । रूपकालंकारः । शार्ङ्गलविक्रीडितच्छन्दः ॥४॥ § ६) उद्यन्निति—उद्यन् उदग्च्छन् मन्द्रो गम्भीरो यो जयानकध्वनिभरो विजयदुन्दुभिः शब्दसमूहः स संत्रस्तानां भीतानां दिक्कुम्भिराजां दिग्गजराजानां फिट्कारैरव्यक्तशब्द-विशेषः, कोपेन क्रोधेन उद्वुद्धवन्तो जागृतास्तेषां कुलभूधराणां कुलाचलानाम् अग्रिमगुहासु संसुप्ताः कृतशयना ये पद्मोद्विषाः सिंहास्तेषां गजितरवैश्च गर्जनध्वनिभिश्च जुष्टः सेवितः सन् दिशो हरितः 'दिशस्तु कुकुभः

२० काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः, जेष्यतः चक्रेशात् चक्रपतेः प्रथमं पूर्वं तत्क्षणं तत्कालं यथा स्यात्तथा दिगन्तवलयानि काष्ठान्तमण्डलानि आक्रान्तवान् व्यासवान् । शार्ङ्गलविक्रीडितच्छन्दः ॥५॥ § ७) तदानीमिति—तदानीं तस्मिन्काले उदारो महान् पराक्रमो यस्य तथाभूतः 'उदारो दातृमहतोः' इत्यमरः, चक्रधरो भरतः शत्रुबलं रिपुसैन्यमेव जलधिः सागरस्तस्य शोषणाय वडवाग्निकल्पेन वडवानलसदृशेन मूर्तेन साकारेण प्रतापपुञ्जेनेन तेजोराशिनेव सुदर्शननाम्ना चक्ररत्नेन, विचित्रमणीनां नैकविधरत्नानां मयूखचित्रितं

२५ रहा था । § ५) इप्तेति—उद्यमशील चक्रधर्तीकी विजययात्राके समय बजनेवाली भेरियोंका जो जोरदार शब्द आकाशमार्गमें गूँज उठा था वह अहंकार शत्रुरूपी मदनोन्मत्त हाथियोंके लिए सिंहकी गर्जना था, उनकी (भरतकी) सेनाके योद्धाओंकी पंक्तिरूपी मयूर समूहके लिए मेघोंका शब्द था और चिरकालसे त्रिभुवनके मैदानमें नृत्य करनेवाली कीर्तिरूपी स्त्रीके नूपुरोंका मनोहर शब्द था ॥४॥ § ६) उद्यन्निति—ऊपरकी ओर उठता हुआ विजय-

३० सम्बन्धी नगाड़ोंका जोरदार शब्दसमूह, भयभीत दिग्गजोंकी फिट्कार तथा क्रोधसे जागृत कुलाचलोंके आगेकी गुहाओंमें सोये हुए सिंहोंकी गर्जना सम्बन्धी शब्दोंके साथ मिलकर दिशाओंको जीतनेवाले चक्रवर्तीसे पूर्व ही दिशाओंको तत्काल व्याप्त कर गया था ॥५॥ § ७) तदानीमिति—उस समय जो महान् पराक्रमका धारक था, शत्रुओंकी सेनारूपी समुद्रको सुखानेके लिए वडवानलके समान अथवा मूर्तिधारी प्रतापके पुंजके

३५ समान सुदर्शन नामक चक्ररत्नसे नाना प्रकारके मणियोंकी कान्तिसे चित्र-विचित्र सूर्यप्रभ

मात्रवित्रस्तसमस्तरिपुमण्डलेन, वीरलक्ष्मीकर्णपूरनीलेन्दीवरश्यामलेन सौनन्दकनाम्ना खड्गेरत्नेन, विजयार्धगिरिगुहागह्वरवज्रकवाटपुटविघटनपटुना चण्डवेगनाम्ना दण्डरत्नेन, अतिविषमजलदुर्ग-समुत्तरणनिरतसकलशिविरसंधारणधुरीणवज्रमयचर्मरत्नेन, चक्रवर्तिमणिमुकुटशिखरायमाणचूडानाममणिरत्नेन, महागुहागह्वरान्तरसूचीभेद्यतमस्ततिनिरसनप्रभाप्रभूतगुणोपेतेन चिन्ताजननीनामधेयेन काकिणीरत्नेन, नामग्रहणमात्रेणान्तर्निहितसमस्तवस्तुसमर्पणप्रवीणकामवृष्टिनामगृहपति- ५
रत्नेन, अतिपराक्रमशालिना षड्विधसेनापालनपरायणेन अयोध्यनाम्ना सेनापतिरत्नेन, अनुस्मरण-मात्रनिर्वर्तितसप्तलादिप्रासादप्रकरेण भद्रमुखनाम्ना तक्षकरत्नेन, शान्तिपौष्टिकादिक्रियाकुशल-धर्मकार्याधिकृतेन बुद्धिसागरनामधेयेन पुरोहितरत्नेन, कामरूपिणा कामचारिणा विजयार्धपर्वता-भिधानेन यागहस्तिरत्नेन, विजितपवनवेगेन द्वादशयोजनोल्लङ्घनरंहोनिवासभूतेन पवनजय-

विविधवर्णोक्तं तेन सूर्यप्रभनाम्ना छत्ररत्नेन, समुत्खातमात्रेण समुन्नमनमात्रेण वित्रस्तं भयभीतं समस्त- १०
रिपुमण्डलं सर्वशत्रुसमूहो येन तेन वीरलक्ष्म्या वीरश्रिया कर्णपूरं कर्णाभरणीभूतं यत् नीलेन्दीवरं नीलोत्पलं तद्वत् श्यामलेन कृष्णेन सौनन्दकनाम्ना खड्गरत्नेन, विजयार्धगिरे रजताचलस्य गुहागह्वरस्य गुहाविवरस्य यद् वज्रकवाटपुटं तस्य विघटने विदारणे पटुं दक्षं तेन चण्डवेगनाम्ना दण्डरत्नेन, अतिविषमं विषमतरं यत् जलदुर्गं तस्य समुत्तरणे निरतं लीनं यत् सकलशिविरं तस्य संधारणे धुरीणं निपुणं यद् वज्रमयचर्मरत्नं तेन, चक्रवर्तिनो मणिमुकुटस्य रत्नमयमौलेः शिखरायमाणं यत् चूडामणिनामकं मणिरत्नं तेन, महागुहागह्वरस्य १५
विशालगुहाविवरस्य अन्तरे मध्ये या सूचीभेद्या सघनतमा तमस्ततिस्तिमिरश्रेणी तस्या निरसनी दूरीकरण-दक्षा या प्रभा कान्तिः सैव प्रभूतगुणः प्रकृष्टगुणस्तेन उपेतेन सहितेन चिन्ताजननीनामधेयेन काकिणीरत्नेन, नामग्रहणमात्रेण अन्तर्निहितानि मध्ये स्थितानि, यानि समस्तवस्तूनि निखिलपदार्थास्तेषां समर्पणे प्रदाने प्रवीणं निपुणं यत् कामवृष्टिनाम गृहपतिरत्नं तेन, अतिपराक्रमेण प्रभूतविक्रमेण शालते शोभत इत्येवंशीलेन षड्विध- २०
सेनायाः पालने रक्षणे परायणं तेन अयोध्यनाम्ना सेनापतिरत्नेन, अनुस्मरणमात्रेण चिन्तनमात्रेण निर्वर्तितो रचितः सप्तलादिप्रासादानां सप्तखण्डादिभवनाणां प्रकारः समूहो येन तेन भद्रमुखनाम्ना तक्षकरत्नेन स्थपति-रत्नेन, शान्तिपौष्टिकादिक्रियासु कुशलश्चतुरः धर्मकार्येष्वधिकृतश्च तेन बुद्धिसागरनामधेयेन पुरोहितरत्नेन, कामरूपिणा इच्छानुसाररूपयुक्तेन कामचारिणा इच्छानुसारचारिणा विजयार्धपर्वताभिधानेन यागहस्तिरत्नेन

नामक छत्ररत्नसे, उभारने मात्रसे समस्त शत्रुदलोंको भयभीत कर देनेवाले तथा वीर- २५
लक्ष्मीके कर्णाभरण स्वरूप नील कमलके समान श्यामल सौनन्दक नामक खड्गरत्नसे, विजयार्ध पर्वतके गुहाविवर सम्बन्धी वज्रमय किवाड़ोंके तोड़नेमें समर्थ चण्डवेग नामक दण्डरत्नसे, अत्यन्त विषम जलरूपी दुर्गम स्थानोंसे पार करनेमें निपुण तथा समस्त सेनाके धारण करनेमें समर्थ वज्रमय चर्मरत्नसे, चक्रवर्तीके मणिमय मुकुटकी कलंगीके समान आचरण करनेवाले चूडामणि नामक मणिरत्नसे, बड़े-बड़े गुहाविवरोंके भीतर विद्यमान घनघोर अन्धकारके समूहको दूर करनेवाली प्रभाके बहुत भारी गुणोंसे सहित चिन्ता जननी १०
नामवाले काकिणीरत्नसे, नाम लेने मात्रसे भीतर रखी हुई समस्त वस्तुओंके देनेमें समर्थ कामवृष्टि नामक गृहपतिरत्नसे, अत्यधिक पराक्रमसे सुशोभित तथा छह प्रकारकी सेनाके पालन करनेमें निपुण अयोध्य नामक सेनापतिरत्नसे, स्मरण करने मात्रसे सप्तादि खण्डोंसे युक्त भवन समूहकी रचना करनेवाले भद्रमुख नामक तक्षकरत्नसे, शान्ति तथा पौष्टिक आदि क्रियाओंके करनेमें कुशल तथा धार्मिक कार्योंके अधिकारी बुद्धिसागर नामक पुरोहित- ३५
रत्नसे, मनचाहे रूप और मनचाही चालसे चलनेवाले विजयार्ध पर्वत नामक यागहस्ति-

विख्याततुरङ्गरत्नेन, मनोहरस्त्रीरत्नेन च प्रत्येकं सहस्रयक्षयक्षोरक्षितेन यथोचितमनुगम्यमानः शारदनीरदानुकारिविमलदुकूलः चन्द्रातपपाण्डुरहरिचन्दनानुलितशरीरः, स्फुरन्मल्लिकामाला-परिष्कृतमुकुटतटस्तारातरलमुक्ताफलकलिताजानुविलम्बिब्रह्मसूत्रो जयलक्ष्मीपरिणयमङ्गलमणि-मयदीपायमानकौस्तुभमणिघृणिभासुरवक्षःस्थलः । समुद्दण्डभुजदण्डवास्तव्यचञ्चलराज्यलक्ष्मीकनक-

५ निगलशङ्काकराङ्गदशोभितः सुरचापविलासोपहासिरुन्द्रेन्द्रच्छन्दहारभिरामो, निजस्थपतिरत्न-निमित्तं मनःपवनपत्रिपत्रिपतिचतुष्टयविनयसंजातकीर्तिपुञ्जैरिव चतुर्भिः शशिश्वेतैर्वाजिभिर्योजित-मजितंजयनामधेयं स्यन्दनमधिरूढः सान्द्रमन्दजयदुन्दुभिध्वानपुरःसरजयघोषैः पुरंघिकाजन-मङ्गलगीतसंगतगुरुजनाशीर्वचनैश्च पूरितनभःस्थलो वारनारीकरचलितचामरनिकरदम्भसंभूत-

- विजितः पवनवेगो वायुरंहो येन तेन द्वादशयोजनोल्लङ्घनं यद् रंहो वेगस्तस्य निवासभूतेन पवनंजयविख्यात-
 १० तुरङ्गरत्नेन, मनोहरं मनोज्ञं यत्स्त्रीरत्नं तेन च प्रत्येकं प्रतिरत्नं सहस्रं यक्षयक्ष्य इति सहस्रयक्षयक्ष्यस्ताभी रक्षितेन यथोचितं यथायोग्यम् अनुगम्यमानः अनुस्त्रियमाणः, शारदनीरदानुकारिणी शरन्मेघसदृशे विमल-दुकूले स्वच्छक्षौमे यस्य तथाभूतः शुक्लवस्त्रधारीत्यर्थः, चन्द्रातप इव ज्योस्तेनैव पाण्डुरो धवलो यो हरिचन्दनः शुक्लमलयजस्तेनानुलितं दिग्धं शरीरं यस्य सः, स्फुरन्त्या शोभमानया मल्लिकामालया मालतीस्रजा परिष्कृतं शोभितं मुकुटतटं यस्य सः, तारावत्तरत्नैर्मुक्ताफलैर्मौक्तिकैः कलितं निर्मितम् आजानुविलम्बि
 १५ आजहनुविलम्बि ब्रह्मसूत्रं यज्ञोपवीताभिधानाभरणं यस्य सः, 'जानु जहनु च' इति घनंजयः, जयलक्ष्म्या विजयश्रियाः परिणयो विवाहस्तस्य मङ्गलमयो यो मणिदीपस्तद्वदाचरन् यः कौस्तुभमणिस्तस्य घृणिभिः किरणैर्भासुरं वक्षःस्थलं यस्य सः, समुद्दण्डभुजदण्डे वास्तव्या निवसनशीला या चञ्चलराजलक्ष्मीस्तस्याः कनकनिगलस्य स्वर्णनिगडस्य शङ्काकरेणाङ्गदेन केयूरेण शोभितः समलंकृतः, सुरचापविलासोपहासी शक्र-शरासनशोभोपहासी यो रुन्द्रेन्द्रच्छन्दहारो नानायष्टियुक्तेन्द्रच्छन्दनामकहारस्तेनाभिरामो रमणीयः, निज-
 २० स्थपतिरत्नेन स्वकीयतक्षकरत्नेन निर्मितं रचितं मनश्च चित्तं च पवनश्च वायुश्च पत्रो च बाणश्च पत्रि-पतिश्च गहडश्चेति मनःपवनपत्रिपतयस्तेषां चतुष्टयस्य चतुष्कस्य यो विजयस्तेन संजाताः समुत्पन्नाः कीर्तिपुञ्जा यशोराशयस्तैरिव चतुर्भिः शशिश्वेतैरिन्द्रधवलैः वाजिभिर्हयैः 'वाजिवाहार्वागन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः' इत्यमरः, योजितं सहितं अजितंजयनामधेयं स्यन्दनं रथम् अधिरूढोऽधिष्ठितः, सान्द्रमन्द्रेण निविडगभीरेण दुन्दुभिध्वानेन भेरोशब्देन पुरःसराः सहिता ये जयघोषा आलोकशब्दास्तैः, पुरंघिकाजनानां सुवासिनोनां
 २५ मङ्गलगोतैः संगतानि सहितानि यानि गुरुजनाशीर्वचनानि तैश्च पूरितं संभरितं नभःस्थलं येन सः, वारनारी-

- रत्नसे, पवनके वेगको जीतनेवाले तथा बारह योजनको लौंघनेवाले वेगके निवासभूत पवनंजय नामसे प्रसिद्ध अश्वरत्नसे और मनोहर स्त्रीरत्नसे जो यथायोग्य अनुगम्यमान था जिसके ये प्रत्येक रत्न एक-एक हजार यक्ष-यक्षियोंसे रक्षित थे, जिसके निर्मल वस्त्र शरद् ऋतुके मेघोंका अनुकरण कर रहे थे, जिसका शरीर चाँदनीके समान सफेद चन्दनसे लिप्त था, जिस-
 ३० का मुकुटतल खिली हुई मालतीकी मालासे सुशोभित था, जिसका ताराओंके समान चमकीले मोतियोंसे निर्मित यज्ञोपवीत घुटनों तक लम्बा था, जिसका वक्षःस्थल विजयलक्ष्मीके विवाह-सम्बन्धी मंगलमय मणिदीपके समान आचरण करनेवाले कौस्तुभ मणिकी किरणोंसे देदीप्यमान था, जो उन्नत बाहुदण्डमें निवास करनेवाली विजय लक्ष्मीके स्वर्ण-निर्मित तोरणोंकी शंका करनेवाले बाजूबन्दोंसे सुशोभित था, जो इन्द्रधनुषकी शोभाकी हँसी
 ३५ उड़ानेवाले अनेक लड़ोंसे युक्त इन्द्रच्छन्द नामक हारसे मनोहर था, जो अपने स्थपति रत्नके द्वारा निर्मित, मन, वायु, बाण और गरुड़ इन चारोंको जीतनेसे उत्पन्न कीर्तिसमूहोंके समान तथा चन्द्रमाके समान शुक्ल चार घोड़ोंसे जुते हुए रथपर सवार था, सघन तथा गम्भीर

जयलक्ष्मीकटाक्षक्षीरार्णवः परितो रथारूढैर्महामुकुटबद्धैः परिवृतश्चलितेनेवापरसागरेण बलेन शबलितपुरोभागो दूरादेव प्रणतमस्तकैः सेनाध्यक्षैः प्रतिपाल्यमानवीक्षणवसरः शनैः राजमन्दिरा-
निर्याय चञ्चत्पञ्चतोरणालंकृतासु रथ्यासु प्रविशमानो मनुवंशगगनतलोदितभरतचन्द्रकान्ति-
चन्द्रिकाक्षुभितनगरक्षीरवाराशिवीचिपरम्परानुकारि - सौधालम्बिपुरनितम्बिनीजनपरिमुक्तापाङ्ग -
शोकरनिकरमेदुरसाक्षतलाजमौक्तिकदन्तुरितसविधप्रदेशः पुरान्निश्चक्राम ।

§ ८) क्षमाभूत्प्रोत्तुङ्गसिन्दूरितकरटिघटाडम्बरैः कुङ्कुमाभ-

त्वङ्गत्प्रोद्यन्तुरङ्गै रथिकवरचयैश्चारुचित्राम्बरैः ।

भानुप्रस्पद्भिचक्रप्रतिफलनलसद्धेतुहस्तैः पदाति-

व्रतिश्चक्रिप्रतापाम्बुधिरिव चलितस्तद्वलौघो बभासे ॥६॥

करण वाराङ्गनाहस्तेन चलितो वीजितो यश्चामरनिकरो बालव्यजनसमूहस्तस्य दम्भेन छलेन संभूतः १०
समुत्पन्नो जयलक्ष्मीकटाक्षा एव क्षीरार्णवः क्षीरसागरो यस्य सः, परितः समन्तात् रथारूढैः स्यन्दनसमधि-
ष्ठितैः महामुकुटबद्धैर्महामुकुटबद्धनृपतिभिः परिवृतः परीतः, चलितेन अपरसागरेण अन्यसमूहेणैव बलेन
सैन्येन शबलितश्चित्रितः पुरोभागो यस्य सः दूरादेव प्रणतमस्तकैः नम्रशिरस्कैः सेनाध्यक्षैः पृतनापतिभिः
प्रतिपाल्यमानः प्रतीक्ष्यमाणो वीक्षणवसरो दर्शनसमयो यस्य, सः शनैः राजमन्दिरात् नरेन्द्रमन्दिरात् निर्याय
निर्गत्य चञ्चद्भिः पञ्चतोरणैः पञ्चसंख्याकतोरणैरलंकृतासु शोभितासु रथ्यासु रथारुहाराजमार्गेषु प्रविशमानः १५
प्रवेशं कुर्वन्, मनुवंश एव गगनतलं नभस्तलं तस्मिन्नुदितो यो भरतचन्द्रभरतेन्दुस्तस्य कान्तिरेव चन्द्रिका
कौमुदी तथा क्षुभितः समुद्वेलितो यो नगरक्षीरवाराशिः पुरपथःपारावारस्तस्य वीचिपरम्परायास्तरङ्गसंतते-
रनुकारी सौवालम्बी प्रासादपृष्ठस्थितो यः पुरनितम्बिनीजो नगरनारीनिचयस्तेन परिमुक्तास्त्यक्ता येऽपाङ्ग-
शोकराः कटाक्षजलकणास्तेषां निकरेण समूहेन मेदुराणि सहितानि साक्षतानि शालेयसहितानि यानि लाज-
मौक्तिकानि भजितधान्यपुष्पमुक्ताफलानि तैर्दन्तुरितो नतोन्नतः सविधप्रदेशो यस्य तथाभूतः सन् पुरात् २०
नगरात् निश्चक्राम निरियाय निर्गत इत्यर्थः । § ८) क्षमाभूदिति—क्षमाभूत इव पर्वता इव इव प्रोत्तुङ्गा
अत्युन्नताः सिन्दूरिताः सिन्दूरयुक्ता याः करटिघटा हस्तिपङ्क्तयस्तासामाडम्बरैर्विस्तारैः, त्वङ्गन्तः समुच्च-
ःलन्तो ये प्रोद्यन्तुरङ्गा उन्नताश्वास्तैः, चारुचित्राम्बरैः सुन्दरविधिवर्णवस्त्रैरिद्धा वीसास्तैः रथिकवरचयै

विजय-दुन्दुभियोंके शब्दोंसे सहित जय-जयकारकी घोषणाओं और स्त्रीजनोंके मंगल गीतोंसे २५
सहित गुरुजनोंके आशीर्वादात्मक वचनोंसे जिसने नभःस्थलको भर दिया था, जो वेश्याओंके
हाथोंसे चलाये हुए चामर समूहके छलसे उत्पन्न विजयलक्ष्मीके कटाक्षरूपी क्षीर सागरसे
युक्त था, रथोंपर सवार महामुकुटबद्ध राजाओं द्वारा जो चारों ओरसे घिरा हुआ था,
चलते हुए दूसरे समुद्रके समान दिखनेवाली सेनासे जिसका आगेका भाग व्याप्त हो रहा
था, और दूरसे ही मस्तक झुकानेवाले सेनापतियोंके द्वारा जिनके देखनेके समयकी प्रतीक्षा ३०
की जा रही थी, ऐसा भरत चक्रवर्ती धीरे-धीरे राजभवनसे निकलकर शोभायमान पाँच
तोरणोंसे अलंकृत चौड़ी सड़कोंपर आया । उस समय मनुवंश रूपी आकाशमें उदित भरत-
रूपी चन्द्रमाकी कान्तिरूपी चाँदनीसे लहराते हुए नगररूपी क्षीरसागरकी लहरोंके समान
सुशोभित एवं महलोंपर चढ़ी हुई स्त्रियोंके द्वारा छोड़े गये कटाक्षरूपी जलकोंके समूहसे
युक्त धान्यकी लाई और मोतियोंसे उसका समीपवर्ती प्रदेश नतोन्नत हो रहा था । इस तरह ३५
बहु नगरसे निकला । § ८) क्षमाभूदिति—पर्वतोंके समान अत्यन्त ऊँचे तथा सिन्दूरसे सुशो-
भित हस्तिसमूहके विस्तारों, उछलते हुए ऊँचे ढोड़ों, नाना प्रकारकी सुन्दर पताकाआसे
देदीप्यमान श्रेष्ठ रथोंके समूहों तथा सूर्यके साथ स्पर्धा करनेवाले चक्ररत्नके प्रतिबिम्बसे

§ ९) बलाघातोद्गोर्णक्षितितलगलद्धूलिनिकरे

नभोभागे तन्वत्यविरलपयोदालितुलनाम् ।

पदातिव्रातानां करतलचलत्सङ्गलतिका

वितेनुः प्रागल्भ्यं प्रतिदिशि चलानेकतडिताम् ॥७॥

५ § १०) दिशायुवतिकीर्णसत्सुपटवासचूर्णोऽथवा

जगत्कमलवासिनीप्रमदमुष्टिपिष्टातकः ।

अमानि बहुधा सुरैः सदनसङ्गिणीराङ्गना-

वशीकरणचूर्णं इत्यमितसैन्यरेणूत्करः ॥८॥

§ ११) तदा किल प्रचलितप्रलयजलधिशङ्काकरे चक्रधरसैन्ये पुरःसरसेनापतिपुरस्कृत-

१० दण्डरत्नसमीकृततया राजपथायमाने मार्गे प्रभास्वरपुरःसरचक्ररत्नानुसारेण प्राङ्मुखं प्रचलिते

रथारोहिष्ठेष्ठसमूहैः, भानुप्रस्पद्धि सूर्यप्रस्पद्धि यत् चक्रं चक्ररत्नं तस्य प्रतिफलनेन प्रतिबिम्बीभावेन लसन्त्यो देदीप्यमाना हेतयः शस्त्राणि हस्तेषु येषां तथाभूतैः पदातिव्रातैः पत्तिसमूहैः उपलक्षितः तद्बलीघः तदीयसैन्य- समूहः चक्रिप्रतापाम्बुधिरिव चक्रधरतेजस्तोयराशिरिव बभासे शुशुभे । उपमा । स्रग्धराछन्दः ॥६॥

§ ९) बलेति—बलाघातेन सेनाघातेनोद्गोर्णं यत्क्षितितलं वसुधातलं तस्माद् गलन् पतन् यो धूलिनिकर-

१५ स्तस्मिन् नभोभागे गगनैकदेशे अविरला निरन्तरा या पयोदालिः मेघपङ्क्तिस्तस्यास्तुलनां तन्वति विस्तारयति सति, पदातिव्रातानां पत्तिप्रचयानां करतलेषु हस्ततलेषु चलन्त्यो या खङ्गलतिकाः कृपाणवल्लयः प्रतिदिशि प्रतिकाष्ठं चलानेकतडितां चञ्चलविविधविद्युतां प्रागल्भं प्रौढी वितेनुः विस्तारयामासुः । शिखरिणी छन्दः ॥७॥ § १०) दिशेति—अमितसैन्यरेणूत्करः अपरिमितपूतनापरामप्रचयः सुरैरमरैः दिशायुवतिषु काष्ठाकामिनीषु कीर्णैः प्रक्षिप्तः सन् समीचीनः सुपटवासचूर्णः सुवस्त्रसुगन्धवीकरणचूर्णः, अथवा जगदेव कमलं

२० जगत्कमलं तस्मिन् बालिनी श्रीरित्यर्थः तस्याः प्रमदाय हर्षाय मुष्टिपिष्टातको मुष्टिस्थितसुगन्धिचूर्णविशेषः, अथवा सदनसङ्गिन्यो भवनोपरि विद्यमाना याः पौराङ्गना नागरनार्यस्तासां वशीकरणचूर्णं इति वा अमानि मन्यते स्म । पृथ्वीछन्दः ॥८॥ § ११) तदेति—तदा किल तस्मिन् काले प्रचलितो यः प्रलयजलधिः प्रलय- पारावारस्तस्य शङ्काकरे संशयकारके चक्रधरसैन्ये चक्रवर्तिसैन्ये पुरःसरोऽग्रेयायी यः सेनापतिः सेनानीस्तेन पुरस्कृतेनाग्रेकृतेन दण्डरत्नेन समीकृततया समतलीकृततया राजपथायमाने राजमार्गे इवाचरति मार्गे प्रभास्वरं

२५ देदीप्यमानं पुरस्सरं यत् चक्ररत्नं तदनुसारेण प्राङ्मुखं पूर्वमुखं यथा स्यात्तथा प्रचलिते सति सकलमपि

चमकते हुए शस्त्रोंको हाथमें धारण करनेवाले पैदल सिपाहियोंके समूहसे सहित चलता हुआ वह सेनाका समूह चक्रवर्तीके प्रतापरूपी समुद्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥६॥

§ ९) बलाघातेति—सेनाके आघातसे खुदे हुए पृथिवीतलसे उठनेवाली धूलिका समूह जब आकाशमें निरन्तर व्याप्त मेघसमूहकी तुलनाको विस्तृत करने लगा तब प्रत्येक दिशामें

३० पैदल—सैनिकोंके हाथोंमें चमकती हुई तलवारें कौंधती हुई बिजलियोंकी प्रौढ़ताको विस्तृत करने लगीं ॥७॥ § १०) दिशेति—उस अपरिमित सेनासम्बन्धी धूलिके समूहको देवोंने इस प्रकार माना था—क्या यह दिशा रूपी स्त्रियोंके ऊपर फेंका हुआ कपड़ोंको सुगन्धित करनेवाला चूर्ण है, अथवा जगत् रूपी कमलिनीमें निवास करनेवाली लक्ष्मीके ऊपर हर्षसे छोड़ी हुई मुट्ठीभर गुलाल है अथवा भवनोंपर स्थित नगरवासिनी स्त्रियोंको वश करने

३५ वाला वशीकरण चूर्ण है ॥८॥ § ११) तदेति—तदनन्तर जब चलते हुए प्रलयकालीन समुद्रकी शंका करनेवाली चक्रवर्तीकी सेना, आगे-आगे चलनेवाले सेनापतिके द्वारा आगे किये हुए दण्डरत्नके द्वारा समतल किये जानेके कारण राजमार्गके समान आचरण करने-

सकलमपि महीतलं चतुरङ्गमयम्, अशेषदिङ्मण्डलं रजोमयं, नभःस्थलं च दिविजविद्याधरमयम्, अन्तरीक्षं चातपत्रमयं, समीरकुलं च मदगन्धमयं, भुवनोदरं च जयजीवेत्यादिघोषमयं चाविरास ।

§ १२) ततः सैन्यैः साकं विततपथमुल्लङ्घ्य भरत-

क्षितीशः सोऽद्राक्षीत्पुलिनजघनां पद्मनयनाम् ।

मुदा गङ्गां सद्यस्तनकमलकोशां घनरस-

स्फुरद्रूपां वेणीकलितघनपुष्पां सुहचिराम् ॥८॥

§ १३) व्यापारितदृशं तत्र विलोक्य पृथिवीपतिम् ।

स्फारधीर्वाचमित्यूचे सारथिश्चित्तरञ्जनम् ॥९॥

निखिलमपि महीतलं भूतलं चतुरङ्गमयं चतुरङ्गसैन्यमयं, अशेषदिङ्मण्डलं निखिलाशाचक्रवालं रजोमयं धूलिमयं, नभःस्थलं च गगनस्थलं च दिविजविद्याधरमयं देवखेवरमयम्, अन्तरीक्षं गगनम् आतपत्रमयं छत्रमयं, समीरकुलं वायुकुलं च मदगन्धमयं गजमदगन्धमयं, भुवनोदरं च जगन्मध्यं च जयजीवेत्यादिघोषमयं चाविरास प्रकटीभव । § १२) तत इति—ततस्तदनन्तरं सैन्यैः पृतनाभिः साकं विततपथं विस्तृतमार्गम् उल्लङ्घ्य स भरतक्षितीशो भरतनरेन्द्रो मुदा हर्षेण गङ्गां गङ्गानदीं विशेषणसाम्यात् कांचित् कामिनीं च अद्राक्षीत् अवलोकयामास । उभयोः सादृश्यमाह—तत्र गङ्गापक्षे पुलिनं जघनमिव नितम्बमिव यस्यास्तां पक्षे पुलिनमिव जघनं यस्यास्तां, पद्मानि नयनानीव यस्यास्तां पक्षे पक्षे हव नयने यस्यास्तां, सद्यस्तनास्तत्कालभवाः कमलकोशाः कमलकुड्मलानि यस्यास्तां पक्षे सद्यस्तनौ कमलकोशाविव यस्यास्तां, घनरसेन प्रभूतजलेन स्फुरत् रूपं यस्यास्तां पक्षे घनरसेन निविडशृङ्गारादिरसेन स्फुरद् रूपं यस्यास्तां, वेण्यां प्रवाहे कलितं धृतं घनपुष्पं जलं यया तां पक्षे वेण्योः कवयोः कलितानि धृतानि घनपुष्पाणि अधिककुसुमानि यया तां, सुहचिरां सुन्दरीम् उभयत्र समानाम् । इलेषोपमा । शिखरिणीछन्दः ॥८॥ § १३) व्यापारितेति—तत्र गङ्गायां व्यापारिते दृशी येन तं तथाभूतं पृथिवीपतिं भरतेश्वरम् अवलोक्य स्फारधीर्विशालबुद्धिः सारथिः

वाले मार्गमें देदीप्यमान तथा अप्रसर चक्ररत्नके अनुसार पूर्व दिशाकी ओर चलने लगी, तब समस्त पृथिवीतल चतुरंगसेनामय, समस्त दिशाओंका मण्डल धूलिमय, आकाश देव और विद्याधरमय, आकाश छत्रमय, वायुका समूह मदकी सुगन्धमय और जगत्का मध्यभाग जय जीव आदि शब्दोंसे तन्मय हो गया । § १२) तत इति—तदनन्तर राजा भरतने सेनाओंके साथ लम्बा मार्ग पार कर बड़े हर्षपूर्वक उस गंगा नदीको देखा जो कि स्त्रीके समान जान पड़ती थी क्योंकि जिस प्रकार स्त्री पुलिनके समान नितम्बोंसे सहित होती है उसी प्रकार गंगा नदी भी नितम्बोंके समान पुलिनो—दोनों तटोंसे सहित थी, जिस प्रकार स्त्री कमलोंके समान नेत्रोंसे सहित होती है उसी प्रकार गंगा नदी भी नेत्रोंके समान कमलोंसे सहित थी, जिस प्रकार स्त्री कमल-कुड्मलोंके समान उठते हुए स्तनोंसे सहित होती है उसी प्रकार गंगा नदी भी तत्काल उत्पन्न कमल-कुड्मलोंसे सहित थी, जिस प्रकार स्त्रीका रूप शृंगारादि रसोंसे सुशोभित होता है उसी प्रकार गंगा नदीका आकार भी अत्यधिक जलसे शोभायमान था, जिस प्रकार स्त्री चोटीमें गूँथे हुए अत्यधिक पुष्पोंसे सहित होती है उसी प्रकार गंगा नदी भी प्रवाह युक्त जलसे सहित थी और जिस प्रकार स्त्री अत्यन्त रुचिर—सुन्दर होती है उसी प्रकार गंगा नदी भी अत्यन्त रुचिर—रुचिर्वर्धक थी ॥८॥ § १३) व्यापारितेति—जिसके नेत्र गंगापर पड़ रहे थे ऐसे भरतेश्वरको देख विशाल बुद्धिका धारक सारथि, मनोरंजन करता हुआ इस प्रकारके वचन बोला ॥९॥

§ १४) अप्रदानैकशोलापि स्वर्णस्तोमप्रदायिनी ।

सवेगगमनाप्येषा चित्रं हंसस्फुरद्गतिः ॥१०॥

§ १५) इयं सुकमला पद्मराजीलोपाश्रितापि च ।

सरसत्वं गताप्येषा नीरसत्त्वमुपेत्यहो ॥११॥

५

§ १६) इति सारथिवचनं श्रवणदेशे विदधानः प्रकृष्टतररथवेगापरिज्ञातबहुदूराध्वलङ्घन-
श्चक्रधरश्चिरविरहमसहमानतया स्वयमनुयातामिव साकेतपुरीं पटमन्दिरपालिं प्रविश्य तत्र
दिनमतिवाह्यान्धुरपरमिव विजयार्धाचलं तन्नामधेयं सिन्धुरमधिरूढः प्रचलितपरमकरवाल्याति-
शयितसिन्धुरयोज्ज्वलया बहुलहरिजालकोलाहलमुखरितदिगन्तरया षडङ्गवाहिन्या गङ्गावाहिन्या

- इति वक्ष्यमाणां वाचं गिरम् चित्तरञ्जनं यथा स्यात्तथा ऊचे जगाद ॥९॥ § १४) अप्रदानेति—एषा गङ्गा
१० अपां जलानां प्रदानं वितरणं एकं शीलं यस्यास्तथाभूतापि सती स्वर्णस्तोमस्य सुवर्णसमूहस्य प्रदायिनीति
विरोधः पक्षे सुष्ठु अर्णः स्वर्णः सुजलं तस्य स्तोमस्य समूहस्य प्रदायिनी, सवेगगमनापि तीव्रगतिरपि हंसस्येव
स्फुरन्ती गतिर्यस्यास्तथाभूता मन्दगमनेति चित्रं विस्मयास्पदम्, परिहारपक्षे हंसैर्मरालैः स्फुरन्ती शोभमाना
गतिर्यस्यास्तथाभूता । विरोधाभासः ॥१०॥ § १५) इयमिति—इयं गङ्गा पद्मानां कमलानां राजी पङ्क्ति-
स्तस्या लोपेनाभावेन आश्रिता सहितापि सुकमला शोभनानि कमलानि पद्मानि यस्यां तथाभूतेति चित्रं,
१५ परिहारपक्षे सुष्ठु कमलं जलं यस्यां तथाभूता 'कमलं सलिले ताम्रे जलजे क्लोमि भेषजे' इति मेदिनी ।
एषा गङ्गा सरसत्वं रससहिततां गतापि प्राप्तापि रसान्निष्क्रान्ता नीरसः रसरहितस्तस्य भावस्तत्त्वं रस-
रहितताम् उपैति प्राप्नोतीत्यहो चित्रं परिहारपक्षे सरसत्वं सजलत्वं गतापि नीरस्य जलस्य सत्त्वमिति
नीरसत्त्वम् उपैति प्राप्नोति । विरोधाभासः ॥११॥ § १६) इतीति—इति पूर्वोक्तं सारथिवचनं सूत्रवचनं
श्रवणदेशे कर्णप्रदेशे विदधानः शृण्वन्नित्यर्थः प्रकृष्टतररथवेगेन प्रभूततरस्यन्दनरहसा अपरिज्ञातमविदितं
२० बहुदूराध्वलङ्घनं दीर्घतममार्गातिक्रमणं येन तथाभूतश्चक्रधरो भरतेश्वरः चिरविरहं दीर्घविप्रयोगम् असह-
मानतया सोढुमसमर्थतया स्वयं स्वतः अनुयातां समनुगतां साकेतपुरीमिवायोध्यानगरीमिव पटमन्दिरपालिम्
उपकार्याश्रेणीं प्रविश्य तत्र दिनं दिवसमतिवाह्य व्यगमय्य अन्येधुरन्यस्मिन्दिवसे अपरं द्वितीयं विजयार्धा-
चलमिव विजयार्धपर्वतमिव तन्नामधेयं विजयार्धाचलनामानं सिन्धुरं गजम् अधिरूढः अधिष्ठितः षडङ्गवाहिन्या

- § १४) अप्रदानेति—यह गंगा नदी एक जलको देनेवाले स्वभावसे सहित होकर भी स्वर्ण-
२५ समूहको देनेवाली है (पक्षमें उत्तम जलसमूहको देनेवाली है) और वेगसहित गमनसे
सहित होकर भी हंसोंके समान सुशोभित मन्थर गतिसे सहित है (पक्षमें हंसोंसे सुशोभित
गतिसे युक्त है) ॥१०॥ § १५) इयमिति—यह गंगानदी यद्यपि कमलपंक्तिके अभावसे
सहित है तो भी सुकमला—उत्तम कमलोंसे सहित है (पक्षमें उत्तम जलसे सहित है) तथा
सरसताको प्राप्त होकर भी नीरसताको प्राप्त है (पक्षमें जलके सद्भावको प्राप्त है) ॥११॥
३० § १६) इतीति—इस प्रकार जो सारथिके वचन सुन रहे थे तथा रथके तीव्र वेगसे जिन्हें
बहुत लम्बा मार्ग लाँघनेका भी अनुभव नहीं हो रहा था ऐसे भरतेश्वरने दीर्घकाल
तक विरहको न सह सकनेके कारण पीछेसे स्वयं आयी हुई अयोध्या नगरीके समान
तम्बूओंकी नगरीमें प्रवेश कर वह दिन वहीं बिताया दूसरे दिन दूसरे विजयार्ध
पर्वतके समान विजयार्ध पर्वत नामवाले हाथीपर सवार होकर आगेके लिए प्रस्थान
३५ किया उस समय जिसमें उत्कृष्ट तलवारें चल रही थीं, जिसमें एक से एक बढ़कर
हाथी थे, जो अत्यन्त उज्ज्वल थे, तथा बहुत अधिक घोड़ोंके समूहसे उत्पन्न कोलाहलके
द्वारा जो दिग्दिगन्तको मुखरित कर रही थी ऐसी छह अंगोंसे युक्त सेना और

चानुगम्यमानः प्रतिदेशमुपनीतप्राभूतजालान्नरपालान् प्रतिवनं चमरीबालकस्तूरिकाण्डहस्तिमस्त-
कोद्भूतमुक्ताफलादिकमुपदीकुर्वाणान् शबरघरारमणांश्च यथार्हं संभावयन् गङ्गाद्वारमुपजगाम ।

§ १७) बहिःपारावारं भरतनृपतिद्वैप्यसलिलं

मुदा पश्यस्तत्र स्थलपथगतः सैन्यसहितः ।

विशन्वेदीद्वारं ततसुरतटिन्यास्तटवने

निवेशं सेनायाः समतनुत सन्मन्दपवने ॥१२॥

§ १८) तदनु लवणजलधिजयोद्युक्तस्त्रिरात्रप्रोषितः सादरमधिवसितजैत्रास्त्रसंततमन्त्रानु-
चिन्तनपरतन्त्रः पावनं दर्भशयनमधिशयानः पुरोधसं पुरस्कृत्य विहितपरमेष्ठिपूजः सेनारक्षणाय

षडङ्गसेनया गङ्गावाहिन्या गङ्गानद्या च अनुगम्यमानः, अधोभयोः सादृश्यमाह—प्रचलितपरमकरवाल्या
प्रचलिताः प्रकर्षेण चलिताः परमकरवालाः श्रेष्ठकृपाणा यस्यां तथा षडङ्गवाहिन्या, प्रचलिता घूर्णमाना १०
मकरवाला जलजन्तुविशेषशिशवो यस्यां तथा गङ्गावाहिन्या, अतिशयितसिन्धुरयोज्ज्वलया अतिशयिताः
श्रेष्ठा सिन्धुरा गजा यस्यां तथा अतिसिन्धुरया उज्ज्वलया शोभमानया च षडङ्गवाहिन्या, अतिशयिता
अतिक्रान्ताः सिन्धवोऽन्यनद्यो येन तथाभूतो यो रयो वेगस्तेनोज्ज्वलया गङ्गावाहिन्या, बहुलेन प्रभूतेन हरि-
जालस्य ह्यसमूहस्य कोलाहलेन कलकलेन मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि यया तथा षडङ्गवाहिन्या
बहुलहरिजालस्य प्रभूततरङ्गस्तोमस्य कोलाहलेन मुखरितानि दिगन्तराणि यया तथा गङ्गावाहिन्या । प्रतिदेशं १५
प्रतिजनपदं उपनीतप्राभूतजालान् प्रापितोपहारसमूहान् नरपालान् राज्ञः, प्रतिवनं प्रतिकाननं चमरीबालाः
चमरीमृगपिच्छकचाः, कस्तूरिकाण्डाः कस्तूरीमृगवृषणाः, हस्तिमस्तकोद्भूतानि मतङ्गजमूर्धोत्पन्नानि
मुक्ताफलानि च आदौ यस्य तत् उपदीकुर्वाणान् उपायनीकुर्वाणान् शबरघरारमणान् पुलिन्दराजांश्च
यथार्हं यथायोग्यं संभावयन् संमानयन् गङ्गाद्वारम् उपजगाम प्राप । श्लेषोपमा । § १७) बहिरिति—
भरतनृपतिभरतेश्वरः बहिःपारावरं समुद्राद्बहिःस्थितं द्वैप्यसलिलं द्वीपस्थितोपसागरजलं मुदा हर्षेण २०
पश्यन् अवलोकयन् स्थलपथगतः स्थलमार्गधितः सैन्यसहितः पृतनायुतः वेदीद्वारं विशन् सन्मन्दपवने
प्रशस्तमन्दसमीरे ततसुरतटिन्या विस्तृतगङ्गाया तटवने तीरोद्याने सेनाया ध्वजिन्याः निवेशं समतनुत
विस्तारयामास । गङ्गातीरोद्याने सेनां निवेशयामासेत्यर्थः । शिखरिणीच्छन्दः ॥१२॥ § १८) तदन्विति—
तदनु तदनन्तरं लवणजलधिजये लवणसमुद्रविजये उद्युक्तस्तत्परः त्रिरात्रप्रोषितः रात्रित्रयं यावद्गृहीतो-
पवासः सादरं यथा स्यात्तथा अधिवासितानि स्थापितानि यानि जैत्रास्त्राणि तैः संततो यो मन्त्रस्तस्यानु- २५

जिसमें मगरोँके बच्चे उछल-कूद कर रहे थे, जिसने अन्य नदियों के वेगको तिरस्कृत
कर दिया था, जो अत्यन्त उज्ज्वल थी और लहरोँके बहुत भारी कोलाहलसे जो
दिग्दिगन्तको मुखरित कर रही थी ऐसी गंगा नदी उनके साथ-साथ चल रही थी ।
प्रत्येक देशमें बड़े-बड़े उपहारोंके समूहको लेकर आये हुए राजाओंको तथा प्रत्येक
वनमें चमरी मृगके बाल, कस्तूरी मृगके अण्डकोष और हाथियोंके मस्तकोंमें उत्पन्न ३०
गजमोतियों आदिकी भेंट देने वाले म्लेच्छ राजाओंका सम्मान करते हुए वे गंगा नदीके
द्वारके समीप जा पहुँचे । § १७) बहिरिति—वहाँ समुद्रके बाहर स्थित द्वीप-सम्बन्धी जल
(उपसागर) को जो बड़ी प्रसन्नतासे देख रहे थे, तथा जो सेना सहित स्थल मार्गसे चल कर
वेदी द्वारमें प्रविष्ट हुए थे ऐसे भरतेश्वरने, समीचीन मन्द पवनसे युक्त विशाल गंगा नदीके
तटोद्यानमें सेनाके डेरे डाले ॥१२॥ § १८) तदन्विति—तदनन्तर जो लवण समुद्रके जीतनेमें ३५
उद्यमशील थे, तीन दिन-रातका जिन्होंने उपवास किया था, जो आदर सहित रखे हुए
विजयके साधनस्वरूप देवोपनीत शस्त्रोंसे सम्बद्ध मन्त्रोंके अनुचिन्तनमें लीन थे, जो पवित्र

सेनान्यं नियोज्य जलस्थलविलङ्घनजङ्घालैर्वाजिभिर्योजितमजितं जयनामधेयं दिव्यास्त्रसंभूतरथ-
मधिरूढः पुरोहितविहितपुण्याशीर्वचनं शिरसा प्रतिगृह्णानो गङ्गाद्वारेण प्रस्थाय मनोजवैर्वाहैरुह्य-
मानेन अधिजलं यानपात्रायमानेन स्पन्दनेन द्वादशयोजनमवगाह्य रथाङ्गपाणिः कोपेन कुण्डलीकृत-
वज्रकाण्डकोदण्डो निजप्रशस्तिपरिकलितममोघं शरमारोपयामास ।

५ § १९) किमेषः पाथोधिः क्षुभित इह कल्पान्तपवनै-

रहो निर्घातः किं स्फुटविकटघोरादृहसितः ।

इति त्रासात्सभ्यैरनधिगतरूपोऽथ स शरः

सभामध्येऽपसद्विभवविलसन्मागधपतेः ॥१३॥

§ २०) तदनु तत्पराभवासहिष्णुतया क्रोधान्यः स मागधक्रोधान्नेरिन्धनायमानं सायकं

१० विचूर्णयेत्याज्ञसभनिकरस्ततः प्रथितमतिकौशलैरभ्यर्णगतसुरैरयं चक्रधरशरो गन्धाक्षतादिभिर-

चिन्तनस्य परतन्त्रः परायत्तः, पावनं पूतं दर्भशयनं कुशशय्याम् अधिशयानोऽविष्टितः पुरोधसं पुरोहितं
पुरस्कृत्य अग्रेकृत्य विहितपरमेष्ठिपूजः कृतपरमेष्ठिसपर्यः सेनारक्षणाय पूतनात्राणाय सेनान्यं सेनापतिं
नियोज्य जलस्थलयोर्विलङ्घने जङ्घालैस्तीव्रगतिभिः वाजिभिरश्वैः योजितं अजितं जयनामधेयं दिव्यास्त्रैः
संभूतो रथस्तम् अधिरूढः पुरोहितेन विहितं यत् पुण्याशीर्वचनं तत् शिरसा मूर्ध्ना प्रतिगृह्णानः स्वोर्कुर्वाणः
१५ गङ्गाद्वारेण प्रस्थाय प्रयाय मनोजवैर्मनोवेगैः वाहैरश्वैः ऊह्यमानेन नीयमानेन अधिजलं जलमध्ये यानपात्राय-
मानेन जलयानायमानेन स्पन्दनेन रथेन द्वादशयोजनम् अवगाह्य प्रविश्य रथाङ्गपाणिः चक्रेश्वरः कोपेन कुण्डली-
कृतं वज्रकाण्डकोदण्डं येन तथाभूतः सन् वक्रोक्तवज्रकाण्डधनुष्कः निजप्रशस्तिपरिकलितं निजयशोगाथा-
सहितम् अमोघमव्ययं शरं बाणम् आरोपयामास । § १९) किमेष इति—इहास्मिन् लोके एव किं कल्पान्त-
पवनैः प्रलयप्रबलसमीरैः क्षुभितः प्राप्तस्रोतः किं पाथोधिः सागरः, अहो किं स्फुटविकटं घोरादृहसितं यस्य
२० तथाभूतः किं निर्घातो वज्रपातव्वनिः इतीत्यं त्रासात् भयात् सभ्यैः सभासदः अनधिगतमज्ञातं रूपं यस्य
तथाभूतः स शरो बाणः अथानन्तरं विभवविलसन्बाणो मागधपतिश्चेति विभवविलसन्मागधपतिः ऐश्वर्य-
शोभमानसमुद्राधिपतेः सभामध्ये अपसत् पतति स्म । 'किमेषः पाथोधिः' इत्यत्र विवर्गालोपश्चित्यः ।
शिखरिणीछन्दः ॥१३॥ § २०) तदन्विति—स चासौ पराभवस्तत्पराभवस्तस्या सहिष्णुतया, त्रिभुवनगुरु-

डाभकी शय्यापर शयन कर रहे थे, पुरोहितको आगे कर जिन्होंने परमेष्ठीकी पूजा की थी,
२५ सेनाकी रक्षाके लिए जो सेनापतिको नियुक्त कर जल-थल दोनोंके लाँघनेमें समर्थ घोड़ोंसे
जुते हुए तथा देवोपनीत शस्त्रोंसे सहित अजितंजय नामक रथपर आरूढ़ हुए थे, जो पुरो-
हितके द्वारा प्रदत्त पवित्र आशीर्वादके वचनोंको सिरसे स्वीकृत कर रहे थे और गंगाद्वारसे
प्रस्थान कर मनके समान वेगशाली घोड़ोंके द्वारा ले जाये जानेवाले एवं पानीके ऊपर
जहाजके समान आचरण करनेवाले रथके द्वारा बारह योजन भीतर जाकर जिन्होंने क्रोधसे
३० वज्रमय धनुषको गोल किया था ऐसे चक्रवर्ती भरतेश्वरने अपनी प्रशस्तिसे युक्त अमोघ
बाण चढ़ाया । § १९) किमेष इति—क्या यह प्रलय कालके पवनसे क्षोभको प्राप्त हुआ
समुद्र है अथवा स्पष्ट भयंकर अट्टहाससे सहित क्या वज्रपातका शब्द है ? इस प्रकार भयसे
सभासदोंके द्वारा जिसका रूप नहीं जाना जा सका था ऐसा वह बाण, वैभवसे शोभायमान
मागधदेवकी सभाके मध्यमें जा पड़ा ॥१३॥ § २०) तदन्विति—तदनन्तर उस पराभवको न
३५ सह सकनेके कारण जो क्रोधसे अन्धा हो रहा था ऐसे उस मागध देवने पहले तो क्रोधरूपी
अग्निके ईधनस्वरूप इस बाण को चूर-चूर कर डालो इस प्रकार भटोंके समूहको आज्ञा दी

भ्यर्चनीयः स च चक्रभृतामाद्यस्त्रिभुवनगुरुस्तनयो भरतराजः शरार्पणदानादिना पूजनीय इति प्रति-
बोधितः प्रशान्तक्रोधः प्रसन्नचित्तवृत्तिः सुरैः सह प्रस्थितो मणिकिरीटमरीचिविचित्रितगगनतलः
शरं रत्नपटलनिवेशितं पुरोधायामाद्य च चक्रपाणिमिमां वाणीं सविनयमभाषीत् ।

§ २१) पुरा लब्धं पुण्यं परिणतमयं मे सुदिवसो

भवान्यस्मादस्मन्नयनपथपान्थः समभवत् ।

इदानीमस्माकं मिलित इव सर्वोत्सवगुणो

भवत्सङ्गानन्दो विवशयति पापं च नुदते ॥१४॥

§ २२) त्रिभुवनगुरुर्यस्य श्रीमान्पिता सकलेष्टदः

सुरनरमुखाः सर्वे यस्यानुशास्तिमुपासते ।

नव च निधयो रत्नान्यर्च्यानि यस्य च तस्य ते

सुलभमुपदीकतुं लज्जां तनोति मनो मम ॥१५॥

तनयः वृषभेश्वरपुत्रः, मणिकिरीटस्य मणिमयमोलेर्मरीचिभिर्विचित्रितं गगनतलं येन सः । शेषं सुगमम् ।

§ २१) पुरेति—पुरा प्राक् लब्धं समर्जितं पुण्यं सुकृतं परिणतमुदितम्, मे मम अयं सुदिवसः शोभनवासरः,

यस्मात् कारणात् भवान् अस्मन्नयनपथपान्थोऽस्मन्नेत्रमार्गपथिकः समभवत् । इदानीं सांप्रतं सर्वोत्सवगणः

निखिलोत्सवसमूहः अस्माकं मिलित इव प्राप्त इव, भवत्सङ्गानन्दो भवत्सङ्गानन्दो भवत्सङ्गतिस्समुद्भूतसंमदः

विवशयति परवशं करोति मामिति शेषः, पापं दुरितं च नुदते दूरीकरोति । शिखरिणीच्छन्दः ॥१४॥

§ २२) त्रिभुवनेति—श्रीमान् अनन्तचतुष्टयादिलक्ष्मीयुतः सकलेष्टदो निखिलमनोरथपूरकः त्रिभुवनगुरुः

वृषभजिनेन्द्रो यस्य पिता जनकः अस्तीति शेषः, सुरनरमुखाः देवमनुजप्रधानाः सर्वे सकलाः प्राणिनः यस्य तव

अनुशास्तिं समाज्ञाम् उपासते सेवन्ते, यस्य समीपे नवनिधयः अर्च्यानि प्रशस्तानि रत्नानि चतुर्दश रत्नानि

च सन्ति तस्य ते तव सुलभं सुप्राप्यं साधारणं वस्त्वित्यर्थः, उपदीकतुमुपायनीकतुं मम मनो लज्जां त्रपां

परन्तु उसके बाद जिनकी बुद्धिकी कुशलता प्रसिद्ध थी ऐसे समीपमें बैठे हुए देवोंने जब

उसे इस तरह समझाया कि 'यह चक्रवर्तीका बाण गन्ध, अक्षत आदिके द्वारा पूजा करने

योग्य है तथा चक्रवर्तियोंमें प्रथम एवं भगवान् वृषभदेवका पुत्र भरत भी बाणको वापस

देना आदिके द्वारा पूजनीय है, तब उसका क्रोध शान्त हो गया और प्रसन्न चित्त होकर

वह देवोंके साथ मणिमय मुकुटकी किरणोंसे आकाशतलको चित्र-विचित्र करता हुआ चला

एवं रत्नोंके समूहके बीच रखे हुए उस बाणको आगे रखकर चक्रवर्तीके पास जाकर विनय

पूर्वक यह शब्द कहने लगा । § २१) पुरेति—पहले प्राप्त किया हुआ पुण्य उदित हुआ है,

यह मेरा बहुत ही अच्छा दिन है क्योंकि आप मेरे नयन-पथके पथिक हुए हैं । इस समय

हम लोगोंको समस्त उत्सवोंका समूह प्राप्त हुआ है ऐसा जान पड़ता है, आपके समागमसे

उत्पन्न हुआ हर्ष मुझे परवश कर रहा है तथा पापको नष्ट कर रहा है ॥१४॥ § २२) त्रिभुव-

नेति—अनन्तचतुष्टय आदि लक्ष्मीसे सहित तथा समस्त इष्ट पदार्थोंको देनेवाले त्रिलोकी-

नाथ—वृषभजिनेन्द्र जिसके पिता हैं, देव, मनुष्य आदि सभी लोग जिसकी आज्ञाकी

उपासना करते हैं, नौ-निधियाँ और श्रेष्ठ चौदह रत्न जिसके पास हैं ऐसे आपके लिए सुलभ

५

१०

१५

२०

२५

३०

§ २३) अथापि रत्नान्येतानि स्वर्गेऽप्यसुलभानि च ।

अथो निधीनामाधातुं सोपयोगानि सन्तु ते ॥१६॥

§ २४) इति शुक्तिवेणुवराहवारणादिष्वनुद्भूतैरक्षरमौक्तिकैर्घटितां वचनमालां रत्नमालां च कर्णदेशे कण्ठदेशे च समर्प्य, मणिकुण्डलमहार्घरत्नादिभिश्चक्रधरमभ्यर्च्य तेन कलितसत्कारो
५ मागधसुरो निजास्पदमाससाद ।

§ २५) तुरङ्गैर्घौताङ्गैर्जलधिलजसंक्षालनवशा-

न्मनोवेगैर्जुष्टं रथमुपगतोऽयं निधिपतिः ।

महोशानां पाथोनिधितटजुषां विस्मयकरो

विजेता स प्रापन्नजशिविरमुद्वेलमहिमा ॥१७॥

१० § २६) तदनु चक्रधरो दक्षिणाशाविजयपरायणः कलितभगवत्सपर्यां निखिलदिग्विजृम्भमाण-
प्रयाणमङ्गलानकरवभरकम्पितपरचक्रः, समुच्चलितबहुलबलधूलिपटलपिहितरिपुनृपतिनगरः साग-

तनोति विस्तारयति । हरिणीछन्दः ॥१५॥ § २३) अथापीति—अथापि एतावतापि स्वर्गेऽपि नाकेऽपि असुलभानि दुर्लभानि एतानि रत्नानि ते तव निधीनां शङ्खादीनाम् अथो नीचैः आधातुं निक्षेप्तुं सोपयोगानि उपयोगसहितानि सन्तु भवन्तु ॥१६॥ § १४) इतीति—शुक्तिवेणुवराहवारणादिषु शुक्तिवंशसूकरस्तम्बे-

१५ रमप्रभृतिषु अनुद्भूतैरनुत्पन्नैः अक्षराणि मौक्तिकानीवेत्यक्षरमौक्तिकानि तैर्घटितां रचितां वचनमालां वाक्पञ्च रत्नमालां च रत्नस्रजं च कर्णदेशे कण्ठदेशे च समर्प्य क्रमेणेति योज्यं मणिकुण्डलमहार्घरत्नादिभिः मणिमय-
कर्णाभरणमहामूल्यरत्नप्रभृतिभिः चक्रधरं चक्रवर्तिनम् अभ्यर्च्य पूजयित्वा तेन कलितसत्कारः कृतादरः सन् निजास्पदं स्वस्थानम् आससाद प्राप । § २५) तुरङ्गैरिति—जलधेः सागरस्थ जलेन सलिलेन संक्षालनवशात् धावनवशात् धौताङ्गैर्निर्मलकलेवरैः मनोवेगैः शीघ्रगामिभिः तुरङ्गैरश्वैः जुष्टं योजितं रथं शताङ्गम् उपगतः

२० प्रासः पयोनिधितटजुषां सागरतीरस्थितानां महोशानां पृथिवीपतीनां विस्मयकर आश्चर्योत्पादकः विजेता विजयसहितः उद्वेलो निर्मर्यादो महिमा यस्य तथाभूतः स निधिपतिः चक्रेश्वरः निजशिविरं स्वसेनानिवेश-
स्थानं प्रापत् । शिखरिणीछन्दः ॥१७॥ § २६) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं चक्रधरो भरतेश्वरः दक्षिणा-
शयाः दक्षिणाकाश्या विजये परायणस्तत्परः, कलिता कृता भगवत्सपर्यां त्रिनेन्द्रार्चा येन तथाभूतः, निखिलदिक्षु सर्वकाष्ठासु विजृम्भमाणो वर्धमानो यः प्रयाणमङ्गलानकरवभरः प्रस्थानमङ्गलभेरीशब्दसमूहस्तेन

२५ वस्तु भेंट करनेमें मेरा मन लज्जाको विस्तृत कर रहा है ॥१५॥ § २३) अथापीति—तो भी स्वर्गमें भी न मिलनेवाले मेरे ये रत्न आपकी निधियोंके नीचे रखनेके लिए काम आये ॥१६॥

§ २४) इतीति—इस प्रकार सीप, बाँस, वराह और हाथी आदिमें न होनेवाले अक्षररूपी मोतियोंसे निर्मित वचनोंकी मालाको कर्ण देशमें और रत्नमालाको कण्ठ देशमें धारण कर मणिमय कुण्डल और महामूल्य रत्न आदिके द्वारा जिसने चक्रवर्तीकी पूजा की थी ऐसा वह
३० मागध देव चक्रवर्तीके द्वारा सत्कार प्राप्त करता हुआ अपने स्थानपर चला गया । § २५)

तुरंगैरिति—समुद्रके जलसे प्रक्षालित होनेके कारण जिनके अंग धुल गये थे तथा जिनका वेग मनके समान था ऐसे घोड़ोंसे जुते हुए रथपर सवार हुआ चक्रवर्ती भरत समुद्रके तटपर स्थित राजाओंको आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ विजयी बन अपने पड़ावमें आ पहुँचा । उस समय उसकी महिमा सीमाको लाँघ गयी थी ॥१७॥ § २६) तदन्विति—तदनन्तर जो

३५ दक्षिण दिशाको जीतनेके लिए तत्पर था, जिसने भगवान्की पूजा की थी, जिसने समस्त दिशाओंमें गूँजनेवाले प्रस्थानकालिक मंगलमय भेरियोंके शब्दोंके समूहसे शत्रुदलको

रोपसागरयोर्मध्ये प्रचलता तृतीयेनेव सागरेण षडङ्गशबलेन बलेन सह प्रस्थितो विविधान् देशान-
तीत्य, विलसदेलालतामनोहरे वेलावने सेनां निवेश्य, प्रविश्य च पूर्ववद्वैजयन्तमहाद्वारेण लवणो-
दधि व्यन्तराधीश्वरं वरतनुं निजित्य, पुनः समुद्रोपसमुद्रयोर्मध्ये सेनया सह प्रस्थितः, चन्दननालि-
केरताम्बूलवल्लीप्रचुरप्रदेशान्विविधान्देशानतीत्य, सिन्धुद्वारोपान्तविराजमाने कल्लोलिनीविट-
निर्लोकल्लोलान्दोलितवनदेवतालीलादोलानुकारिताम्बूलीलतापेशले मनसिजविजयप्रशस्ति-
लेखनोचितपत्रविचित्रितश्रीताले वने ध्वजिनीं विनिवेश्य, प्रविश्य च सिन्धुमन्धुमिव मन्थमानः
पूर्ववद् व्यन्तरपतिं प्रभासं च निजिगाय ।

§ २७) निधीशे कौबेरीं दिशमथ विजेतुं प्रचलिते

प्रविष्टाः पश्चाच्चरतिजवपुरोऽङ्गानि सहसा ।

कम्पितं वेपितं परचक्रं शत्रुसैन्यं येन सः, समुच्चलितेन समुत्थितेन बहुलधूलिपटलेन प्रभूतरजःसमूहेन विहि- १०
तानि तिरोहितानि रिपुनृपतिनगराणि शत्रुराजनगराणि येन सः, सागरोपसागरयोः लवणसमुद्रोपसमुद्रयोः
मध्ये प्रचलता तृतीयेन सागरेणेव षडङ्गः शबलं चित्रितं सहितमिति यावत् षडङ्गशबलं तेन बलेन सैन्येन सह
प्रस्थितः कृतप्रयाणो विविधान् नानाप्रकारान् देशान् जनपदान् अतीत्य समुल्लङ्घ्य, विलसन्त्यः शोभमाना या
एलालताः चन्द्रबालावल्ग्यस्ताभिर्मनोहरे रमणीये वेलावने तटोद्याने सेनां पृतनां निवेश्य स्थापयित्वा, पूर्ववत्
वैजयन्तमहाद्वारेण लवणोदधि लवणसमुद्रं प्रविश्य च व्यन्तराधीश्वरं व्यन्तरदेवपतिं वरतनुं तन्नामानं निजित्य १५
पराभूय, पुनः समुद्रोपसमुद्रयोः सागरोपसागरयोः मध्ये सेनया ध्वजिन्या सह प्रस्थितः कृतप्रयाणः, चन्दन-
नालिकेरताम्बूलवल्लीभिर्मलयजनारिकेलनागवल्लीभिः प्रचुरा व्यासाः प्रदेशा येषु तान् विविधान् देशान्
नानाजनपदान् अतीत्य समतिक्रम्य, सिन्धुद्वारस्योपान्ते समीपे विराजमाने विशोभमाने कल्लोलिनीविटस्य
समुद्रस्य निर्लोकल्लोलेः अतिचपलतरङ्गैः आन्दोलिताः कम्पिताः वनदेवतादोलानुकारिण्यो याः
ताम्बूलोलता नागवल्ग्यस्ताभिः पेशले मनोहरे मनसिजस्य मदनस्य या विजयप्रशस्तयस्तासां लेखनोचितानि २०
लेखनयोग्यानि यानि पत्राणि दलानि तैः विचित्रिताः श्रीताला श्रीताडवृक्षा यस्मिन्स्मिन् वनेऽरण्ये
ध्वजिनीं सेनां विनिवेश्य स्थापयित्वा, मन्धुमिव कूपमिव मन्थमानः सिन्धुं पश्चिमलवणार्णवं
प्रविश्य च पूर्ववत् प्रागिव व्यन्तरपतिं व्यन्तरामरदेवेन्द्रं प्रभासं तन्नामानं च निजिगाय जितवान् ।
§ २७) निधीश इति—अथ प्रभासविजयानन्तरं निधीशे भरतेश्वरे कौबेरीं कुबेरस्येयं कौबेरी

कम्पित कर दिया था, जिसने ऊपरकी ओर उठती हुई सेनाकी बहुत भारी धूलिके समूहसे २५
शत्रु राजाओंके नगरोंको आच्छादित कर दिया था, तथा जो सागर और उपसागरके बीच
चलते हुए तीसरे समुद्रके समान छह अंगोंसे चित्रित सेनाके साथ प्रस्थान कर रहा था ऐसे
भरतने नाना प्रकारके देशोंका उल्लंघन कर इलायचीकी शोभायमान लताओंसे मनोहर तटके
वनमें सेनाको ठहराया और स्वयं पूर्व दिशाकी तरह वैजयन्त महाद्वारसे लवणसमुद्रमें प्रवेश
कर व्यन्तर देवोंके स्वामी वरतनुको जीता । तदनन्तर समुद्र और उपसमुद्रके बीच सेनाके साथ ३०
चलकर तथा चन्दन, नारियल और पानोंकी लताओंसे परिपूर्ण प्रदेशोंवाले नाना देशोंको लाँघता
हुआ सिन्धु द्वारके समीप शोभायमान, समुद्रकी अत्यन्त चंचल लहरोंसे चंचल एवं वन
देवताओंके खेलने-सम्बन्धी झूलाओंका अनुकरण करनेवाली पानकी लताओंसे मनोहर तथा
कामदेवकी विजय प्रशस्ति लिखनेके योग्य पत्तोंसे आश्चर्यकारक ताड़ वृक्षोंसे सहित वनमें ३५
जा पहुँचा, वहाँ सेनाको ठहरा कर कुँएके समान मानते हुए उसने समुद्रमें प्रवेश किया
और पहलेकी तरह व्यन्तरोंके स्वामी प्रभासको जीता । § २७) निधीश इति—तदनन्तर
निधीश्वर भरत, जब उत्तर दिशाको जोतने के लिए चले तब अपने पिछले अवयवोंसे जिन्होंने

रजोराज्या भूयावनुमितखुराघट्टनकला

हयाश्चेलुहेंषारवदलितदिग्भित्तिपटलाः ॥१८॥

§ २८) तदानीं कर्णतालविगलितपटुपवनसमाकृष्टस्वरङ्गणतरङ्गिणीतरङ्गजलकर्णैः शुष्का-
दण्डसंभूतफूत्कारशोकरैश्च व्योमलक्ष्म्या वसुधायाश्चान्योन्यसंजातव्यात्युक्षिकाविभ्रमं विदधानया,
५ प्लावयन्त्येव मदधाराभिर्भुवमाकम्पयत्येव दिक्चक्रवालं, संक्षोभयन्त्येव भुवनोदरमुद्विग्नयन्त्येव
दिग्गजानुपरुन्धयन्त्येव पद्मबन्धुगतं जङ्गमयेव धराधरपरम्परया भूतलमवतीर्णयेव कादम्बिन्या
गजघटया सहेलमस्पन्द्यत ।

§ २९) एवं प्रस्थाय सैन्यैर्निजचरणनतोदीच्यभूपालवृन्दं

संप्राप्तं रौप्यभूमीधरनिकटतटे क्लृप्तसेनानिवेशम् ।

१० अथवा कुबेरो देवता यस्याः सा कौबेरी ताम् उदोचीम् दिशं ककुभं विजेतुं प्रचलिते सति, पश्चाद्वैः पश्चार्धभागैः
अतिजबपुरोज्ञानि प्रकृष्टवेगयुक्ताग्राज्ञानि सहसा झटिति प्रविष्टाः रजोराज्या धूलिपरम्परया भूमौ पृथिव्याम्
अनुमिताः खुराघट्टनकलाः शफटाडनकला येषां ते, हेषारवेण हेषाशब्देन दलितानि खण्डितानि दिग्भित्तिपटलानि
काष्ठाकुडचपटलानि यैस्तथाभूताः हया अश्वाः चेलुः चलन्ति स्म । शिखरिणोच्छन्दः ॥१८॥ § २८) तदा-
नीमिति—तदानीं तस्मिन् काले कर्णतालम्यः ताडपत्रसदृशकर्णम्यो विगलितो निःसृतो यः पटुपवनः सवेगसमोर-
१५ स्तेन समाकृष्टः समानीता ये स्वरङ्गणतरङ्गिणीतरङ्गाणां मन्दाकिनीकल्लोलानां जलकर्णाः शीकरास्तैः
शुष्कादण्डैः संभूताः समुत्पन्ना ये फूत्कारशोकराः फूत्काराम्बुकणास्तैश्च व्योमलक्ष्म्या गगनश्रियाः वसुधायाः
पृथिव्याश्च अन्योन्यं मिथः संजाता समुत्पन्ना या व्यात्युक्षिका जलोच्छालनकेलिः तस्या विभ्रमं विलासं
विदधानया कुर्वाणया, मदधाराभिर्दानसंततिभिः भुवं भूमि प्लावयन्त्येव, दिक्चक्रवालं दिङ्मण्डलम् आकम्प-
यन्त्येव, भुवनोदरं जगन्मध्यं, संक्षोभयन्त्येव, दिग्गजान् उद्विग्नयन्त्येव भीतान् कुर्वन्त्येव, पद्मबन्धुगतं सूर्यगमनं
२० उपरुन्धयन्त्येव, जङ्गमया गतिशोभया धराधरपरम्परयेव पर्वतपङ्क्तयेव भूतलं महोत्तलम् अवतीर्णया कादम्बि-
न्येव मेघमालयेव गजघटया हस्तिश्रेण्या सहेलं यथा स्यात्तथा अस्पन्द्यत चलितम् । § २९) एवमिति—अथो
तदनन्तरम्, एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सैन्यैः सह प्रस्थाय निजचरणयोर्मतं नग्रीभूतम् उदीच्यभूपालानामुत्तरदिक्स्थ-
नृपतीनां वृन्दं समूहो यस्य तं संप्राप्तं समागतं, रौप्यभूमीधरस्य विजयार्धपर्वतस्य निकटतटे क्लृप्तः

२५ शीघ्र ही अत्यन्त वेगशाली आगेके अंगोंमें प्रवेश किया था, धूलिपंक्तियोंकी परम्परासे जिनके
पृथ्वीपर होनेवाले खुराघातकी कलाका अनुमान होता था तथा हिनहिनाहटके शब्दोंसे
जिन्होंने दिशारूपी दीवालोंके पटलोंको खण्डित कर दिया था ऐसे घोड़े चलने लगे ॥१८॥
§ २८) तदानीमिति—उस समय कानोंकी फटकारसे उत्पन्न तीव्र वायुके द्वारा खिंचे हुए आकाश-
गंगा सम्बन्धी तरंगोंके जलकर्णों और शुष्कादण्डसे उत्पन्न फूत्कारके छींटोंसे जो आकाश लक्ष्मी
और पृथिवीके बीच परस्पर होनेवाली फागका विभ्रम उत्पन्न कर रही थी, जो मदधाराके
३० द्वारा पृथिवीको मानो डुबा रही थी, दिशाओंके मण्डलको मानो कँपा रही थी, संसारके
मध्यको मानो क्षोभयुक्त कर रही थी, दिग्गजोंको मानो भयभीत कर रही थी, सूर्यकी गतिको
मानो रोक रही थी, जो चलती-फिरती पर्वतोंकी पंक्तिके समान जान पड़ती थी अथवा पृथिवी-
तलपर उतरी हुई मेघमालाके समान मालूम होती थी ऐसी हाथियों की घटा झूमती हुई चल रही
थी । § २९) एवमिति—तदनन्तर इस प्रकार सेनाओंके साथ प्रस्थान कर जो समीपमें आया
था, उत्तर दिशाके राजाओंका समूह जिसके अपने चरणोंमें नग्रीभूत हो रहा था, विजयार्ध
३५ पर्वतके निकटवर्ती तटपर जिसने सेनाके डेरे डलवाये थे, तथा जो उपवास आदिका नियम

श्रीमन्तं चक्रपाणिं नियमयुतमथो राजताद्रेरधीशो

देवः सद्रष्टुमागान्मणिमुकुटरुचिद्योतिताशान्तरालः ॥१९॥

§ ३०) नतः सुरः ससत्कारं चक्रिणा धुरि कल्पितम् ।

भद्रासनमलंकुर्वन्नुवाच वदतांवरः ॥२०॥

§ ३१) विजयार्धगिरेरहं नियन्ता विजयार्धोऽस्मि वनामरः प्रभो ! ।

परवान् भवतो नृप ! त्वदाज्ञा मम मौलेः शिखरे महीयते ॥२१॥

§ ३२) वक्त्रे दोषाकरश्रीर्दृशि जडजरुचिः सूनलक्ष्मीश्च हासे

शक्तिनिस्त्रिंशज्ये भुजभुवि कुटिला चापयष्टिः करे ते ।

आज्ञेयं सर्वदा श्रीभरतनरपते वृद्धया किं मयात्रे-

त्येवं प्रोच्य प्रकोपात्सुरपतिनगरं प्राप कीर्तिस्त्वदोया ॥२२॥

कृतः सेनानिवेशो येन तं, श्रीमन्तं लक्ष्मीमन्तं नियमयुतमनशनादिनियमसहितं चक्रपाणिं भरतेश्वरं सद्रष्टुं सम-
बलोकितुं राजताद्रेर्विजयार्धपर्वतस्य अधोशोऽधिष्ठाता देवः मणिमुकुटस्य रत्नमयमौले रुचिभिर्मरीचिभिर्द्योतितानि
प्रकाशितानि आशान्तरालानि दिगन्तराणि येन तथाभूतः सन् आगात् आजगाम । स्रग्धरा ॥१९॥

§ ३०) नत इति—चक्रिणा भरतेन ससत्कारं यथा स्यात्तथा धुरि अग्रे कल्पितं धृतं भद्रासनं मङ्गलासनम्
अलंकुर्वन् शोभयन् नतो नम्रो वदतांवरो वक्तृश्रेष्ठः सुरोऽमरः उवाच जगद ॥२०॥ § ३१) विजयार्धेति—

हे प्रभो ! अहं विजयार्धगिरेर्विजयार्धपर्वतस्य नियन्ता शासकः विजयार्धो विजयार्धनामधेयो वनामरो
व्यन्तरामरः अस्मि, भवतः परवान् अधोऽस्मि, हे नृप ! हे राजन् ! त्वदाज्ञा भवदाज्ञा मम मौलेर्मुकुटस्य

शिखरेऽग्रे महीयते पूज्यते ॥२१॥ § ३२) वक्त्रे इति—हे श्रीभरतनरपते ! हे भरतराजेश्वर ! ते तव वक्त्रे
मुखे दोषाकरश्रोः दोषाणामवगुणानामाकरः खनिरिति दोषाकरस्तथाभूता श्रोः लक्ष्मी अस्तीति शेषः पक्षे

दोषाकरस्येव निशाकरस्येव श्रीरिति दोषाकरश्रोः, दृशि नयने जडजरुचिः जडे मूर्खे जायते स्मेति जडजा तथाभूता
रुचिरिच्छा चेति जडजरुचिः पक्षे डलयोरभेदात् जलजस्येव कमलस्येव रुचिः कान्तिः, हासे हास्ये सूनलक्ष्मीः

अतिशयेन ऊना सूना अत्यल्पा तथाभूता लक्ष्मीश्चेति सूनलक्ष्मीः पक्षे सूनानामिव पुष्पाणामिव लक्ष्मीरिति
सूनलक्ष्मीः, भुजभुवि बाहुवसुधायाम्, इयमेषा निस्त्रिंशजा क्रूरजनोत्पन्ना शक्तिः सामर्थ्यं पक्षे निस्त्रिंशजा

खड्गोत्पन्ना शक्तिः सामर्थ्यम्, करे हस्ते च कुटिला वक्रा अपयष्टिः अपकृष्टा कुत्सिता यष्टिरिति अपयष्टिः, पक्षे
कुटिला समीचीनत्वेन कुटिला वक्रा चापयष्टिः घनुर्यष्टिः, इयमेषा आज्ञा सर्वदा सर्वान् द्यति खण्डयतीति

लेकर स्थित था ऐसे श्रीमान् भरतके दर्शन करनेके लिए विजयार्ध पर्वतका अधिपति देव,
मणिमय मुकुटकी किरणोंसे दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करता हुआ आया ॥१९॥ § ३०)

नत इति—चक्रवर्ती भरतके द्वारा बहुत सत्कारके साथ आगे किये हुए भद्रासनको अलंकृत
करता हुआ, वक्ताओंमें श्रेष्ठ वह नम्रदेव इस प्रकार कहने लगा ॥२०॥ § ३१) विजयार्धेति—

हे प्रभो ! मैं विजयार्ध पर्वतका शासक विजयार्ध नामका व्यन्तर हूँ, हे राजन् ! आपके
अधीन हूँ, आपकी आज्ञा मेरे मुकुटके अप्रभागपर सम्मानको प्राप्त हो रही है ॥२१॥ § ३२)

वक्त्रे इति—हे श्री भरतनरेन्द्र ! आपके मुखमें दोषाकरश्रोः—दोषोंको खान स्वरूप लक्ष्मी है
(पक्षमें चन्द्रमाके समान लक्ष्मी है), नेत्रोंमें जडजरुचिः—मूर्ख मनुष्यमें उत्पन्न होनेवाली

इच्छा है (पक्षमें कमल जैसी कान्ति है), हासमें सूनलक्ष्मी—अत्यन्त अल्प लक्ष्मी है
(पक्षमें फूलों जैसी शोभा है), बाहुरूपी भूमिमें यह निस्त्रिंशजा—क्रूर मनुष्यसे उत्पन्न शक्ति

है (पक्षमें तलवारसे उत्पन्न शक्ति है), हाथमें कुटिला-चापयष्टिः—देही एवं खराब लाठी है

§ ३३) इत्यभिधायोत्थाय च चक्रधरं सुरैः सह तीर्थाम्बुभिरतिविभवेनाभिषिच्य, स व्यन्तरपतिस्तस्मै दिव्यानि रत्नभृङ्गारश्वेतातपत्रप्रकीर्णकयुगहरिविष्टराणि प्रतिपाद्यासाद्य च तद-
नुज्ञां निजसदनमाससाद ।

§ ३४) विजयार्धगिरौ जिते समस्ते विजितं दक्षिणभारतं स जानन् ।

५ निधिराड्विततान चक्रपूजां जलगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपैः ॥२३॥

§ ३५) तदनूत्तरार्धविजयार्धसया प्रतीपमागत्य रजतगिरिपश्चिमगुहाभ्यर्णविलसमाने वने कलितसेनानिवेशं निधीशं नानादेशसमागतनरपालनिकायनिचितसविधप्रदेशं परिवृतामरजालः कृतमालो नाम सुरः सप्रणाममागत्य प्रभुणा सबहुमानमर्पितासनः सादरमिमां गिरमुदाजहार ।

§ ३६) देव ! त्वद्वीक्षणाद्भूतं वाचाटयति कौतुकम् ।

१० मतिश्च मुद्रयत्यद्य वाचमेनां करोमि किम् ॥२४॥

सर्वदा सर्वविनाशकरी पक्षे सर्वं ददातीति सर्वदा, अत्र त्वत्समीपे वृद्धया स्थविरया पक्षे विस्तृतया मया किं प्रयोजनम् । इत्येवं प्रोच्य कथयित्वा त्वदीया कीर्तिः समज्ञा 'यशः कीर्तिः समज्ञा च' इत्यमरः, प्रकीर्णक-
प्रकृष्टक्रोधात् सुरपतिनगरं स्वर्गं प्राप प्रयाता । श्लेषोत्प्रेक्षा । स्रग्धराच्छन्दः ॥२२॥ § ३३) इतीति—रत्न-
भृङ्गारो मणिमयकलशः, श्वेतातपत्रं धवलच्छत्रम्, प्रकीर्णकयुगं चामरयुगम्, हरिविष्टरं सिंहासनम् । शेषं सुग-
१५ मम् । § ३४) विजयार्धेति—समस्ते निखिले विजयार्धगिरौ रजताचले जिते स्वायत्तीकृते सति दक्षिणभारतं विजितं पराजितं जानन् स निधिराट् निधीश्वरो भरतः जलगन्धाक्षतपुष्पधूपदीपैः चक्रपूजां चक्रार्चाम् आततान विस्तारयामास ॥२३॥ § ३५) तदन्विति—उत्तरार्धविजयार्धसया उत्तरार्धभरतविजयेच्छया प्रतीपमागत्य प्रत्यावृत्य रजतगिरेर्विजयार्धस्य पश्चिमगुहाया अभ्यर्णं निकटे विलसमाने शोभमाने वने । शेषं सुगमम् ।
§ ३६) देवेति—हे देव ! हे राजन् ! त्वद्वीक्षणात् भवदवलोकनाद् भूतं समुत्पन्नं कौतुकं कुतूहलं मां
२० वाचाटयति वाचालं करोति 'स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्' इत्यमरः, मतिश्च बुद्धिश्च अद्य संप्रतम्, एनां समुच्चार्यमाणां वाचं मुद्रयति निरोधयति वक्तुं न ददातीत्यर्थः । किं करोमि । किं

(पक्षमें गोल धनुर्दण्ड है), इतनेपर भी आपकी यह आज्ञा सर्वदा—सबका खण्डन करने-
वाली है (पक्षमें सब कुछ प्रदान करनेवाली है), यहाँ मुझ वृद्धा—वृद्ध स्त्रीसे क्या प्रयोजन
है (पक्षमें विस्तारको प्राप्त हुई मुझसे क्या मतलब है) इस प्रकार कह कर आपकी कीर्ति
२५ क्रोधवश स्वर्ग चली गयी है ॥२२॥ § ३३) इतीति—यह कह कर तथा उठकर व्यन्तरेन्द्रने देवोंके साथ तीर्थोदकसे उल्लासपूर्वक चक्रवर्तीका अभिषेक किया, उसके लिए देवोपनीत रत्नों-
का भुंगार, सफेद छत्र, दो चमर और सिंहासन दिये तत्पश्चात् उनकी आज्ञा लेकर वह अपने घर चला गया । § ३४) विजयार्धेति—समस्त विजयार्ध पर्वतके जीत लिये जानेपर दक्षिण भारतको जीता हुआ जाननेवाले चक्रवर्तीने जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप और दीपके द्वारा
३० चक्ररत्नकी पूजा की ॥२३॥ § ३५) तदन्विति—तदनन्तर उत्तरार्धको जीतनेकी इच्छासे वापस आकर विजयार्ध पर्वतकी पश्चिम गुहाके निकट शोभायमान वनमें जिसने सेनाको ठहराया था, तथा नाना देशोंसे आगत राजाओंके समूहसे जिसका समीपवर्ती प्रदेश व्याप्त था ऐसे चक्रवर्तीके पास आकर अनेक देव समूहसे घिरे हुए कृतमाल नामक देवने प्रणाम किया, चक्रवर्तीने बहुत सम्मानके साथ उसे आसन दिया, आसनपर आरुढ़ हो उस देवने आदर-
३५ पूर्वक यह वचन कहे । § ३६) देवेति—हे देव ! आज आपके दर्शनसे उत्पन्न हुआ कौतूहल मुझे वाचाल बना रहा है और बुद्धि मेरी इस वाणीको बन्द कर रही है । मैं क्या करूँ ?

§ ३७) तथा हि—अपि कुशलमिति सकलभुवनकुशलवितरणधुरीणे त्वयि लज्जाकरम् । जयेति कलितजयश्रीपाणिग्रहणे सिद्धसाधनम् । दयस्वेति कृष्णावरुणालये न चमत्कारि । प्रसीदेति प्रसन्नस्वभावे न विधेयम् । स्वागतमित्यभ्यागतविषयम् । परिपालयेति प्रभुमात्रगोचरम् । तव किङ्करोऽहमिति सुरनरविनुत्तरणनलिने नातिशयावहमिति श्रीमदुचितवचनचातुरी च न मे बुद्धिमधिरोहति ।

§ ३८) विद्धि मां विजयार्धस्य मर्मज्ञममृताशनम् ।

कृतमालं गिरेरस्य कूटेऽमुष्मिन्कृतालयम् ॥२५॥

§ ३९) इत्यादि वदन्तमुपदीकृतचतुर्दशभूषणं प्रतिपादिततद्गिरिगुहाद्वारप्रवेशोपायमादितेयं सबहुमानं विसर्ज्य प्रसन्नेन चक्रधरेण गुहाद्वारमुत्पाटय यावत्तदुपशमनं तावत्पाश्चात्यखण्डं विजय-

विदधामि ॥२४॥ § ३७) तथा हीति—अपि कुशलं भवतः कुशलं विद्यते किम् । इति कथनं सकलभुवनस्य निखिललोकस्य कुशलवितरणधुरीणे कुशलप्रदानदक्षे त्वयि भवति लज्जाकरं त्रयोत्पादकम्, १०
जयेति भवतो जयोऽस्त्विति कथनं कलितं कृतं जयश्रिया विजयलक्ष्म्याः पाणिग्रहणं विवाहो येन तथाभूते त्वयि सिद्धस्य साधनमिति सिद्धसाधनं पिष्टपेषणसदृशं निरर्थकमित्यर्थः । दयस्व दयां कुह इति कथनं कृष्णावरुणा-
लयेऽनुकम्पाकूपारे दयासागर इत्यर्थः, त्वयि न चमत्कारि न चमत्कारोत्पादकम् । प्रसीद—प्रसन्नो भवेति कथनं प्रसन्नस्वभावे प्रसन्नस्वभादयुक्ते त्वयि न विधेयं न विधातुं योग्यं न करणीयमित्यर्थः । स्वागतं भवतः स्वागतं १५
भवत्विति कथनम् अभ्यागतो विषयो यस्य तथाभूतम् एवं कथनमभ्यागतस्य विषयेऽहं भवतीत्यर्थः । परिपालय
रक्षेति कथनं प्रभुमात्रगोचरं स्वामिमात्रविषयम् । तव भवतः किङ्करोऽहं दासोऽहमिति कथनं सुरनरैरमरमनुजै-
र्विनुते संस्तुते चरणनलिने पादपद्मे यस्य तथाभूते त्वयि न अतिशयावहं न विशेषतायुक्तम् । इतीत्थं श्रीमतो
भवत उचिता योग्या वचनचातुरी वाग्वैदग्धी च मे मम बुद्धि मनीषां नाधिरोहति नाधितिष्ठति ।
§ ३८) विद्धीति—मां पुरोविद्यमानं विजयार्धस्य तन्नामपर्वतस्य मर्मज्ञं गुप्तस्थानज्ञानयुक्तम् अमृताशनं देवं
अस्य गिरेः अमुष्मिन् कूटे शिखरे कृतालयं कृतनिवासं कृतमालं कृतमालनामधेयं विद्धि जानीहि ॥२५॥ २०
§ ३९) इत्यादीति—इत्यादि वदन्तं कथयन्तम्, उपदीकृतानि चतुर्दशभूषणानि यस्य तं, प्रतिपादितः कथितः

॥२४॥ § ३७) तथा हीति—आपकी कुशल है ? यदि यह कहा जावे तो यह कहना समस्त संसारको कुशलताके प्रदान करनेमें निपुण आपके विषयमें लज्जा उत्पन्न करनेवाला है । आपकी जय हो यदि यह कहा जावे तो विजय-लक्ष्मीके साथ पाणिग्रहण करनेवाले आपके विषयमें वैसा कहना सिद्धको सिद्ध करना अर्थात् पिष्टपेषण करना है । दया कीजिए यदि २५
यह कहा जावे तो दयाके सागरस्वरूप आपके विषयमें ऐसा कहना चमत्कार करनेवाला नहीं है । प्रसन्न होइए यदि यह कहा जावे तो प्रसन्न स्वभाववाले आपके विषयमें वैसा कहना योग्य नहीं है । आपका स्वागत हो यदि ऐसा कहा जावे तो यह कहना आगन्तुकके सम्बन्ध रखने वाला है । रक्षा कीजिए यदि यह कहा जावे तो यह कहना प्रभुमात्रसे सम्बन्ध रखनेवाला है । प्रत्येक प्रभुसे ऐसा कहा जाता है उससे कोई विशेषता सिद्ध नहीं ३०
होती । मैं आपका किङ्करी हूँ यदि यह कहा जावे तो देव और मनुष्योंके द्वारा जिनके चरण-कमलोंकी स्तुति की जा रही है ऐसे आपके विषय यह कहना विशेषताको धारण करनेवाला नहीं है । इस तरह आपके योग्य वचनोंकी चतुराई मेरी बुद्धिमें नहीं आ रही है अर्थात् क्या कहूँ यह मैं नहीं सोच पा रहा हूँ । § ३८) विद्धीति—मुझे आप विजयार्ध पर्वतके मर्मको जाननेवाला कृतमाल नामका देव जानो । मैं इसी पर्वतके उस शिखरपर रहता हूँ ॥२५॥ ३५
§ ३९) इत्यादीति—जो इस प्रकारके वचन कह रहा था, जिसने चौदह आभूषण भेंटमें दिये थे तथा जिसने उस पर्वतके गुहाद्वारमें प्रवेश करनेका उपाय बतलाया था ऐसे उस

स्वेत्याज्ञप्तश्चम्पूतिरधिरूढवाजिरत्नः पुरस्कृतदण्डरत्नः तद्गुहाद्वारमासाद्य निर्भिद्य च दण्डरत्नेन तन्मुखनिसृतोष्मज्वालाकलापादश्वरत्नरयेण सुरनिकरेण च रक्षितो बभूव ।

§ ४०) निपेतुरमरस्त्रीणां कटाक्षैः सममम्बरात् ।

सुमनःप्रकरास्तस्मिन् हारा इव जयश्रियः ॥२६॥

१ § ४१) तदनु चम्पूतिः सकलबलपरिवृतो विजयार्धगिरितटवेदिकामतीत्य सिन्धुनदी- पश्चिमदिग्भागवेदिकातोरणद्वारेण निर्गत्य म्लेच्छखण्डमण्डनायमानविविधाकरपुरग्रामसीमारामादिषु विगाह्य प्रतिष्ठापितचक्रवर्तिशासनः समागतम्लेच्छभूपालान् पुरस्कृत्य त्रिःपरीत्य च म्लेच्छखण्डं म्लेच्छराजसेनया सह निर्याय पर्यायेणातीतसिन्धुवनवेदिकाद्वारः षण्मासैः प्रशान्तोष्मदुःखं तद्गुहा- मुखं पुनरासाद्य संशोध्य च कृतारक्षाविधिश्च चक्रघरदर्शनलालसा प्रविश्य विजयशिविरं तत्र

- १० तद्गिरिगुहाद्वारप्रवेशोपायो येन तथाभूतम् आदित्यं देवं सबहुमानं ससत्कारं विसर्ज्य, प्रसन्नेन प्रसन्नचेतसा चक्रघरेण चक्रवर्तिना शेषं सुगमम् । § ४०) निपेतुरिति—तस्मिन् भरतनिषोडश्वरसेनापती अमरस्त्रीणां देवाङ्गनानां कटाक्षैरपाङ्गैः समं सार्धम् अम्बरात् गगनात् जयश्रियो विजयलक्ष्म्या हारा इव सुमनःप्रकराः पुष्पसमूहाः निपेतुः निपतन्ति स्म ॥२६॥ § ४१) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं सकलबलेन समग्रसैन्येन परिवृतः परीतः चम्पूतिः सेनापतिः विजयार्धगिरितटवेदिकां रजताचलतटवितदिकाम् अतीत्य समुल्लङ्घ्य
- १५ सिन्धुनद्याः पश्चिमदिग्भागवेदिकायास्तोरणद्वारेण निर्गत्य म्लेच्छखण्डस्य मण्डनायमाना ये विविधा नानाप्रकारा आकरपुरग्रामसीमारामास्तदादिषु विगाह्य प्रविश्य प्रतिष्ठापितं चक्रवर्तिशासनं येन तथाभूतः सन् समागताः समयाता ये म्लेच्छभूपाला म्लेच्छराजास्तान् पुरस्कृत्य अप्रेकृत्य म्लेच्छखण्डं त्रिःपरीत्य च त्रीन् वारान् परिक्रम्य च म्लेच्छराजसेनया सह निर्याय निर्गत्य पर्यायेण क्रमेण अतीतं सिन्धुवनवेदिकाया द्वारं येन तथाभूतः सन्, षण्मासैः मासषट्केन प्रशान्तोष्मदुःखनिवृत्तीण्यदुःखं तद्गुहामुखं पुनरासाद्य प्राप्य संशोध्य च कृतो
- २० रक्षाविधियेन सः चक्रघरस्य दर्शने लालसा यस्य तथाभूतः सन् विजयशिविरं प्रविश्य तत्र विचित्रो विलक्षणो

- देवको सम्मानके साथ विदा कर चक्रवर्तिने गुहाका द्वार खोला तथा जब तक यह शान्त होता है तब तक पश्चिम खण्डपर विजय प्राप्त करो इस प्रकार सेनापतिको आज्ञा दी । सेनापति भी अश्वरत्नपर सवार हो तथा दण्डरत्नको आगे कर उस गुहा द्वारपर पहुँचा । पहुँचते ही उसने दण्डरत्नके द्वारा गुहाद्वारको तोड़ा । उस समय गुहाद्वारके मुखसे जो
- २५ अत्यन्त गर्म ज्वालाओंका समूह निकल रहा था उससे अश्वरत्नके वेग तथा देवोंके समूहने सेनापतिकी रक्षा की थी । § ४०) निपेतुरिति—सेनापतिपर देवांगनाओंके कटाक्षोंके साथ आकाशसे पुष्पसमूहकी वर्षा हुई । उस समय वे पुष्पसमूह ऐसे जान पड़ते थे मानो विजय लक्ष्मीके हार ही हों ॥२६॥ § ४१) तदन्विति—तदनन्तर समस्त सेनासे घिरा हुआ सेनापति विजयार्ध पर्वतकी तटवेदीको लाँघ कर तथा सिन्धु नदीके पश्चिमदिग्भाग सम्बन्धी
- ३० वेदिकाके तोरण द्वारसे निकल कर म्लेच्छ खण्डके आभूषण स्वरूप नाना प्रकारके खान, पुर, ग्राम और सीमाके उद्यानादिमें जा पहुँचा । वहाँ उसने चक्रवर्तीका शासन स्थापित किया तत्पश्चात् आये हुए समस्त म्लेच्छ राजाओंको आगे कर तथा म्लेच्छ खण्डके तीन चक्रकर लगा कर वह म्लेच्छ राजाओंकी सेनाके साथ वहाँसे निकला और क्रमसे सिन्धु नदीकी बन-वेदिकाके द्वारको पार कर छह माहमें जिसकी गर्मीका दुःख शान्त हो गया था ऐसे गुहाके
- ३५ द्वारपर फिरसे आया । उसका शोधन कर तथा रक्षाकी विधिको पूर्ण कर चक्रवर्तीके दर्शनकी लालसा रखता हुआ वापस आया । वहाँ विजय-शिविरमें प्रवेश कर वह चक्रवर्तीके अद्भुत

विचित्रचक्रवल्लभास्थानमण्डपे दूरानतमणिमुकुटः करिहरिकन्यारत्नप्रमुखवस्तुवाहनपुरःसरं कोटीर-
कोटिचुम्बितधरणीतलं म्लेच्छराजकदम्बकं तत्तद्देशनामगोत्रादिनिर्देशेन प्रभवे निवेदयामास ।

§ ४२) ततो भरतभूपतिः सबहुमानमेतान्नृपान्
विसर्ज्य नरपालकाचितमुदारवीर्याकरम् ।
षडङ्गबलवल्लभं विजयचिह्नितैर्मानयन्
जयाय पुनरादिशन्निखिलवीरचूडामणिम् ॥२७॥

§ ४३) तदा जयानकध्वाना आचान्ताम्भोविधोषणाः ।
अनुचक्रुर्महाघोरकल्पान्ताम्भोदगर्जितम् ॥२८॥

§ ४४) जयकुञ्जरमारुढः परीतो नृपकुञ्जरैः ।
रेजे निर्यन्प्रयाणाय सम्राट् शक्र इवामरैः ॥२९॥

यश्चक्रवल्लभस्य चक्रपतेरास्थानमण्डपः सभामण्डपस्तस्मिन् दूरानतमुकुटो दूरादानतं विनम्रं मुकुटं यस्य तथाभूतः
करिणो हस्तिनो हरयो ह्याः कन्यारत्नानि कन्याश्रेष्ठानि च तानि प्रमुखानि येषु तथाभूतानि यानि वस्तु-
वाहनानि तानि पुरस्तराणि यस्य तत्, कोटीरकोट्या मुकुटाग्रभागेण चुम्बितं स्पृष्टं धरणीतलं भूपृष्ठं येन
तथाभूतं म्लेच्छराजकदम्बकं म्लेच्छराजसमूहं तत्तद्देशनामगोत्रादिनिर्देशेन तत्तज्जनपदाभिधानवशप्रभृतिकथनेन
प्रभवे चक्रवर्तिने निवेदयामास कथयामास । सहागतम्लेच्छराजानां परिचयं प्रभवे प्रदत्तवानिति यावत् । १५
§ ४२) तत्र इति—ततस्तदनन्तरं भरतभूपतिः भरतेश्वरः एतान् सेनापतिनिर्दिष्टान् नृपान् म्लेच्छराजान्
सबहुमानं ससत्कारं यथा स्यात्तथा विसर्ज्य नरपालकाचितं राजपूजितम् उदारवीर्याकरम् समुत्कृष्टवीर्यास्पदं
निखिलवीरेषु चूडामणिरिव तं सकलमुभटशिरोमणिं तं षडङ्गबलवल्लभं षडङ्गसेनाध्यक्षं विजयचिह्नितैः
मानयन् सत्कुर्वन् पुनः भूयोऽपि जयाय जेतुम् आदिशत् आज्ञां ददौ । पृथ्वीछन्दः ॥२७॥ § ४३) तदेति—
तदा तस्मिन् काले आचान्ता निगोर्णा अम्भोविधोषणा समुद्रगर्जनशब्दा यैस्तथाभूता जयानकध्वाना विजयपटह- २०
शब्दा 'शब्दो निनादो निनदो ध्वनिध्वानरवस्वनाः' इत्यमरः, महाघोरं महाभयंकरं कल्पान्ताम्भोदानां प्रलय-
पयोदानां गर्जितमिति महाघोरकल्पान्ताम्भोदगर्जितम् अनुचक्रुर्विडम्बयामासुः ॥२८॥ § ४४) जयेति—
जयकुञ्जरं विजयिवारणम् आरुढोऽधिष्ठितः नृपकुञ्जरैः श्रेष्ठनरेन्द्रैः परीतः परिवृतः प्रयाणाय प्रस्थानाय निर्यन्

सभा-मण्डपमें प्रविष्ट हुआ । प्रवेश करते समय उसका मुकुट दूरसे ही नम्रीभूत हो रहा था ।
हाथी, घोड़ा तथा कन्या रत्न आदि वस्तुएँ और वाहनोंको साथ लेकर मुकुटोंकी कलँगियोंसे २५
पृथिवीतलको चुम्बित करनेवाले म्लेच्छ राजाओंका एक बड़ा समूह उसके साथ आया था ।
उन सबके भिन्न-भिन्न देश नाम तथा गोत्र आदिका निर्देश करते हुए उसने चक्रवर्तीके लिए
सबका परिचय दिया । § ४२) तत इति—तदनन्तर चक्रवर्तीने बहुत सम्मानके साथ इन
राजाओंको विदा कर, राजाओंके द्वारा पूजित, उत्कृष्ट पराक्रमकी खान एवं समस्त वीरोंके
शिरोमणि स्वरूप षडंग सेनाके अध्यक्ष सेनापतिका विजय-चिह्नोंसे सम्मान कर उसे विजय ३०
प्राप्त करनेके लिए फिरसे आदेश दिया ॥२७॥ § ४३) तदेति—उस समय समुद्रकी गर्जनाको
तिरस्कृत करनेवाले जीतके नगाड़ोंके शब्द, प्रलयकालीन मेघोंकी महाभयंकर गर्जनाका
अनुकरण कर रहे थे । § ४४) जयेति—प्रस्थान करते समय विजयी हाथीपर सवार
तथा श्रेष्ठ राजाओंसे धिरा हुआ चक्रवर्ती देवोंसे धिरे इन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था

§ ४५) तदनु भरतमहोपतिविजयरामापरिणयमहसमयहरित्पतिकरविकीर्णपिष्टातकचूर्णाय-
मानरजःपटलेन, दिग्गङ्गनाहस्तविक्षिप्तलाजाञ्जलिपुञ्जप्रतिपत्तिकरमदकरिकरशोकरनिकरेण,
रयविजितपवनपुरःसमर्पितमौक्तिकस्तबकोपहारशङ्काकरतुरगमुखगलितफेनलवनिचयेन च भरित-
गगनतलं षडङ्गबलं विजयार्धचलकटकाभिमुखं निर्याय पर्यायेण प्रविश्य च गुहाद्वारं, चक्रधर-
५ निदेशपरवशचमूपतिपुरोहितपरिकलिताभ्यां भित्तिद्वयसंक्रान्तसोमसूर्यमण्डलसंकाशाभ्यां काकिणी-
मणिरत्नाभ्यां निराकृतसूचोभेद्यान्वतमसे तमिस्रनामगुहामध्ये सिन्धुनदीतटयोर्द्विधाविगाहमाना
कैश्चित्प्रयाणैर्गुहार्धसंमितां भूमौमतीत्य व्यतीत्य चाधःपतनशक्तियुक्तया निमग्नजलया निमग्नया समं
तिर्यक्प्रविष्टामुत्प्लावनशक्तिजुष्टामुन्मग्नजलां तटिनीं स्थपतिरत्नपरिकल्पितं सारदारचरितसेतुना
कौतुकहेतुना ततः कतिपयप्रयाणैर्गिरिदुर्गं विलङ्घ्य व्यतीत्य च पुरःसरमदसिन्धुरतिरर्गलोकृतमद-

- १० निर्गच्छन् सम्राट् भरतः अमरैर्देवैः परोतः शक्र इव पुरंदर इव रेजे शुशुभे ॥२९॥ § ४५) तदन्विति—
तदनु तदनन्तरं भरतमहोपतिनिषीद्वरः विजयरामाया विजयवल्लभायाः परिणयमहो विवाहोत्सवस्तस्य
समये हरित्पतीनां दिक्पालानां करैः पाणिर्भिविकीर्णं विप्रसरितं यत् पिष्टातकचूर्णं तद्वदाचरत् यत् रजःपटलं
धूलिसमूहस्तेन, दिग्गङ्गानां काष्ठाकामिनीनां हस्तैर्विक्षिप्ता विकीर्णा ये लाजाञ्जलयस्तेषां पुञ्जस्य समूहस्य
प्रतिपत्तिकरा बुद्धिकरा ये मदकरिकरशोकरा मत्तमतङ्गजशुण्डासलिलकणास्तेषां निकरेण समूहेन, रयेण वेगेन
१५ विजितः पराजितो यः पवनस्तेन पुरः समर्पिता अग्रेढीकिता ये मौक्तिकस्तबकास्तेषामुपहारस्य प्राप्तस्य
शङ्काकराः संदेहोत्पादका ये तुरगमुखगलितफेनलवा अश्वबदनविगलितडिण्डोरकणास्तेषां निचयेन च समूहेन
च भरितं गगनतलं येन तथाभूतं षडङ्गबलं षडङ्गसैन्यं विजयार्धचलस्य रजतमहोषरस्य कटकाभिमुखं यथा
स्यात्तथा निर्याय निर्गतं विधाय पर्यायेण क्रमेण गुहाद्वारं प्रविश्य च, चक्रधरनिदेशेन चक्रवर्त्याजया परवशी
पराधीनो यो चमूपतिपुरोहितो सेनापतिपुरोषसो ताभ्यां परिकलिताभ्यां धृताभ्यां भित्तिद्वये कुडचद्वये संक्रान्तं
२० प्रतिफलितं यत् सोमसूर्ययोः चन्द्रदिनकरयोर्मण्डलं तस्य संकाशाभ्यां सद्शाभ्यां काकिणीमणिरत्नाभ्यां निराकृतं
दूरोक्तं सूचोभेद्यान्वतमसं यस्मिन् तस्मिन् तमिस्रनामगुहामध्ये, सिन्धुनदीतटयोः द्विधा विगाहमानः प्रविशन्,
कैश्चित् कतिपयैः प्रयाणैः गुहार्धसंमिताम् अर्धगुहापरिमितां भूमौ वसुधाम् अतीत्य समुल्लङ्घ्य अधःपतनशक्ति-
युक्तया पतितं वस्तु अधःपातयति यथा साधःपतनशक्तिस्तथा युक्तया निमग्नजलया तन्नामधेयया निमग्नया
नद्या समं सार्धं तिर्यक्प्रविष्टाम् उत्प्लावनशक्तिजुष्टां अधःपातितमपि वस्तु ऊर्ध्वं नयति यथा सा उत्प्लावनशक्ति-
२५ स्तया जुष्टां सहितां उन्मग्नजलां तन्नामधेयां तटिनीं नदीं स्वपतिरत्नेन तक्षकरत्नेन परिकल्पितो निमित्तः
सारदारचरितः सुदृढकाष्ठकल्पितः सेतुस्तेन कौतुकहेतुना कुतूहलकारणेन, व्यतीत्य च संतीर्य च ततः कतिपय-

॥२९॥ § ४५) तदन्विति—तदनन्तरं भरत चक्रवर्ती, विजय लक्ष्मीके विवाहोत्सवके समय
दिक्पालोंके हाथसे बिखेरे हुए गुलालके चूर्णके समान आचरण करनेवाले धूलिके पटलसे,
दिशारूपी स्त्रियोंके हाथोंसे बिखेरी हुई लाईकी अंजलियोंके समूहका ज्ञान करानेवाले मदोन्मत्त

- १० हाथियोंकी शृङ्गोंसे निकले जलकणोंके समूहसे और वेगसे पराजित वायुके द्वारा आगे समर्पित
किये हुए मोतियोंके गुच्छोंके उपहारकी शंका करनेवाले घोड़ोंके मुखोंसे निकले फेनकणोंके
समूहसे आकाशतलको भरनेवाली षडंग सेनाको विजयार्ध पर्वतके कटकके सम्मुख निकाल-
कर क्रमसे गुहाद्वारमें प्रविष्ट हुआ । वहाँ चक्रवर्तीकी आज्ञाके परवश सेनापति और पुरो-
हितके द्वारा धारण किये हुए तथा दोनों दीवालोंने प्रतिबिम्बित सूर्य और चन्द्रमण्डलके
१५ समान काकिणी और कौस्तुभमणिके द्वारा जिसका सघन अन्धकार दूर कर दिया गया था
ऐसी तमिस्र नामक गुहाके मध्यमें सिन्धु नदीके दोनों तटोंपर दो भागोंमें प्रवेश करते हुए

धारं गुहाद्वारं सुरभितमन्दमन्दवलमानपवमानसेवनव्यपगतचिरपरिचितगुहोष्मखेदं तस्य सानुमत-
स्तटवनमध्यवास ।

§ ४६) तुरङ्गमखुराहतक्षितिरजःपरीताम्बरं

करेणुयुतवारणैस्त्रुटितसल्लकीपल्लवम् ।

इदं वनमुदारधोरथ विलोक्य चक्रेश्वरो

विचित्रितहृदन्तरः शिबिरमध्युवासांमलम् ॥३०॥

§ ४७) पूर्ववत्पश्चिमे खण्डे बलाग्रण्या प्रसाधिते ।

विजेतुं मध्यमं खण्डं साधनैः प्रभुरुद्ययौ ॥३१॥

§ ४८) तदानीं परचक्रकलितं स्वचक्रपराभवमसहमानौ प्रस्थानभेरीभाङ्कारपूरितदिगन्तरी

प्रयाणैः गिरिदुर्गं पर्वतकान्तारं विलङ्घ्य पुरःसरा अग्रेसरा ये मदसिन्धुरा मत्तहस्तिनस्तीनिरर्गलोकृताः
स्वच्छन्दतया पातिता मदधारा दानसंततयो यस्मिंस्तथाभूतं गुहाद्वारं च व्यतीत्य सुरभितः सुगन्धितः मन्दमन्दं
वलमानश्च बहुमानश्च यः पवमानः समीरस्तस्य सेवनेन व्यपगतो विनष्टो चिरपरिचितगुहोष्मखेदः चिराम्यस्त-
गुहोष्मखेदो यस्मिंस्तत् तस्य सानुमतो विजयार्धमहीधरतटवनं तीरोद्यानम्, अध्युवास तत्र निवासं कृतवान् ।

§ ४६) तुरङ्गमेति—अथानन्तरं तुरङ्गमाणां हयानां खरैः शकैराहता क्षुण्णा या क्षितिः पृथिवी तस्या रजसा
रेणुना परीतं व्याप्तमम्बरं गगनं यस्मिंस्तत्, करेणुयुतवारणैः हस्तिनोयुतहस्तिभिः त्रुटिताः खण्डिताः सल्लकी-
पल्लवाः सल्लकीकिसलया यस्मिंस्तत् इदं वनं कान्तारं विलोक्य दृष्ट्वा विचित्रितं विस्मयोपेतं हृदन्तरं
हृदयान्तरं यस्य तथाभूतः उदारघोषकृष्टबुद्धियुक्तः चक्रेश्वरो भरतः अमलं स्वच्छं शिबिरम् अध्युवास तत्र
निवासं कृतवान् । पृथ्वीछन्दः ॥३०॥ § ४७) पूर्ववदिति—बलाग्रण्या सेनापतिना पूर्ववत् पूर्वखण्ड इव

पश्चिमे खण्डे प्रसाधिते वशोक्ते सति प्रभुर्भरतेश्वरः साधनैः सैन्यैः 'साधनं मेहने सैन्ये' इति विश्वलोचनः,
मध्यमं खण्डं विजेतुं स्वायत्तोक्तुम् उद्ययौ उद्युक्तोऽभूत् ॥३१॥ § ४८) तदानीमिति—तदानीं मध्यमखण्ड-
विजयोद्यमनवेलायाम्, परचक्रकृतं शत्रुसैन्यकृतं स्वचक्रपराभवं स्वसैन्यतिरस्कारम् असहमानौ सोढुमशक्नुवन्तौ

भरतने आधी गुहाके बराबर भूमिका उल्लंघन किया तथा गिरी हुई वस्तुको नीचे ले जाने-
वाली शक्तिसे युक्त निमग्नजला नामकी नदीके साथ तिरछी प्रविष्ट तथा डाली हुई वस्तुको
ऊपर उछालनेकी शक्तिसे युक्त उन्मग्नजला नामकी नदीको स्थपति रत्नके द्वारा निर्मित
मजबूत लट्टीसे रचित कुतूहलोत्पादक पुलसे पार किया । तदनन्तर कुछ पड़ावों द्वारा पहाड़ी
दुर्गको लौंघकर तथा आगे चलनेवाले मदोन्मत्त हाथियोंकी मदकी धाराएँ जहाँ स्वच्छन्द
रूपसे पड़ रही थीं ऐसे गुहाद्वारको व्यतीत किया । तत्पश्चात् सुगन्धित एवं मन्द-मन्द
चलनेवाली वायुके सेवनसे चिर-परिचित गुहासम्बन्धी गर्मीके खेदको दूर करनेवाले उस
विजयार्ध पर्वतके तट वनमें निवास किया । § ४६) तुरंगमेति—तदनन्तर घोड़ोंके खुरोंसे
ताडित पृथिवीकी परागसे जहाँ आकाश व्याप्त हो रहा था, तथा हाथिनियोंसे सहित
हाथियोंके द्वारा जहाँ सल्लकी वृक्षके पल्लव तोड़े गये थे ऐसे इस वनको देख कर जिसका
हृदय आश्चर्यसे चकित हो रहा था ऐसे उदार बुद्धिके धारक भरतने निर्मल पड़ावपर निवास
किया ॥३०॥ § ४७) पूर्ववदिति—जब सेनापतिने पूर्व खण्डके समान पश्चिम खण्डको
वशमें कर लिया तब चक्रवर्ती सेनाओंके द्वारा मध्यम खण्डको जीतनेके लिए उद्यमी हुआ
॥३१॥ § ४८) तदानीमिति—उस समय जो परचक्रके द्वारा किये हुए स्वचक्रके पराभवको
सहन नहीं कर रहे थे, जिन्होंने प्रस्थान कालिक भेरियों की भांकारसे दिशाओंके अन्तरालको

५

१०

१५

२०

२५

३०

३५

कुण्डलोक्तकोदण्डमण्डलमध्यविराजमानकोपारुणवदनतया परिवेषमध्यविलसितपद्मबन्धुबिम्बं
तुलयन्ती धनुर्धरास्तिकाश्वोयमेदुरां ध्वजिनीं पुरस्कृत्य युद्धाय प्रचलितौ चलितावर्तविख्यातौ
म्लेच्छभूपालौ धीमतामग्रेसरैः सचिववरैर्बोधितारातिविजयोपायतया निषिद्धाभिषेणनौ, शात्रव-
पराजयाय मेघमुखविख्याताभ्रातृबहिर्मुखान् संस्कृत्य पूजां प्रकटोचक्रतुः ।

- ५ § ४९) नागास्ते सहसाम्बुदाकृतिजुषः स्फूर्जन्महागजितो-
द्धाटीपाटितपुष्कराः पटुनटचण्डानिलैर्ढौकिताः ।
वृष्टिं विष्टपविप्लवस्रुतिनिभां कल्पान्तमेघच्छटा-
मुष्टिं मुष्टिसमीककल्पनकलादृसास्तदा चक्रिरे ॥३२॥
§ ५०) तज्जलं जलदोद्गीर्णं बलमावेष्ट्य जैष्णवम् ।
अधस्तिर्यग्धोर्ध्वं च समन्तादभ्युद्ववत् ॥३३॥

- प्रस्थानभेरीणां प्रयाणदुन्दुभीनां भाङ्गारेण पूरितानि दिगन्तराणि ग्राम्यां तौ, कुण्डलोक्तं यत्कोदण्डमण्डलं
धनुर्मण्डलं तस्य मध्ये विराजमानं शोभमानं कोपारुणवदनं ययोस्तयोर्भावस्तथा परिवेषस्य परिवर्षमेघे विलसितं
शोभितं यत् पद्मबन्धुबिम्बं सूर्यमण्डलं तत् तुलयन्ती धनुर्धराश्च धानुष्काश्च हास्तिकाश्च हस्त्यारोहाश्च अश्वी-
याश्च अश्वारोहाश्च तैर्मेदुरां सहितां ध्वजिनीं सेनां पुरस्कृत्य अप्रेकृत्य युद्धाय समराय प्रचलितौ चलितावर्त-
१५ विख्यातौ चलितावर्तनामधेयौ म्लेच्छभूपालौ धीमतां बुद्धिमताम् अग्रेसरैः प्रधानैः सचिववरैरमात्यवरैः बोधितौ
विज्ञापितोऽरातिविजयोपायो ययोस्तयोर्भावस्तथा निषिद्धम् अभिषेणनं ययोस्तौ 'यत्सेनायाभिगमनमरी तदधि-
षेणनम्' इत्युक्तम्, शात्रवपराजयाय शत्रुपराभवाय मेघमुखविख्यातान् मेघमुखनाम्ना प्रसिद्धान् नागबहिर्मुखान्
नागामरान् संस्कृत्य पूजां सपर्यां प्रकटीचक्रतुः प्रकटयामासतुः । § ४९) नागा इति—तदा तस्मिन् काले
सहसा झटिति अम्बुदाकृतिजुषो मेघाकारयुक्ताः स्फूर्जन्महागजितस्य वर्धमानधोरगर्जनस्य उद्घाटय्या परम्परया
२० पाटितं पुष्करं गगनं वैस्तथाभूताः पटु यथा स्यात्तथा नटन्तो ये चण्डानिलास्तोक्षपवनास्तैः विष्टपविप्लवाय
जगत्क्षयाय या स्रुतिवृष्टिस्तथा निभां सदृशीं जगत्क्षयकारिवृष्टितुल्यां वृष्टिं ढौकिताः प्रापिताः मुष्टिसमीककल्पन-
कलायां दृष्टाः मुष्टियुद्धकरणकलाकोविदाः ते प्रसिद्धा नागा देवविशेषाः कल्पान्तमेघच्छटामुष्टिं प्रलयमेघशोभा-
मुष्टिं चक्रिरे विदधिर । शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः ॥३२॥ § ५०) तज्जलमिति—जलदोद्गीर्णं मेघवृष्टं तत्
जलं जिष्णोरिदं जैष्णवं चक्रवर्तिसंबन्धि बलं सैन्यम् आवेष्ट्य परित्यक् अधःतिर्यग् ऊर्ध्वं च समन्तात् परितः

- २५ भर दिया था, कुण्डलाकार धनुर्मण्डलके बीचमें शोभायमान क्रोधजनित लालिमासे युक्त
मुखसे सहित होनेके कारण जो परिधिमें मध्यमें सुशोभित सूर्यबिम्बकी तुलना कर रहे थे,
और जो धनुर्धारी, हाथियोंके सवार तथा घुड़सवारोंसे युक्त सेनाको आगे कर युद्धके लिए
चल रहे थे ऐसे चलित और आवर्त नामके दो म्लेच्छ राजा, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उत्तम
मन्त्रियोंके द्वारा विजयके उपाय बताये जानेके कारण सेनासे सम्मुख गमनको छोड़ कर शत्रुकी
३० पराजयके लिए मेघमुख नामसे प्रसिद्ध नाग देवोंका संस्कार कर उनकी पूजा करने लगे ।
§ ४९) नागा इति—उस समय जो सहसा मेघका आकार धारण किये हुए थे, वृद्धिको प्राप्त
होती हुई बहुत भारी गर्जनकी सन्ततितसे जिन्होंने आकाशको विदीर्ण कर दिया था, जो
अत्यन्त वेगसे चलनेवाली तीव्र आँधीसे लोकका संहार करनेवाली वृष्टिको प्राप्त हुए
थे तथा मुष्टियुद्ध करनेकी कलासे जो दर्पयुक्त थे ऐसे वे नागदेव प्रलयकालके मेघकी
३५ शोभाका अपहरण कर रहे थे ॥३२॥ § ५०) तज्जलमिति--मेघोंके द्वारा वर्षाया हुआ वह
जल चक्रवर्तीकी सेनाको व्याप्त कर नीचे, समान धरातलपर तथा ऊपर सर्वत्र फैल गया

§ ५१) तदानीमुपर्यधः परिकलितयोश्छत्ररत्नचर्मरत्नयोर्मध्ये सप्तदिनावधिनिरुपद्रवमासीने चक्रधरसैन्ये निधीश्वरादिगणबद्धामरैर्हुङ्कारेणोत्सारितेषु नागेषु कुरुराजोऽपि मुक्तसिंहगजितप्रति-
ध्वनितहिमाचलकन्दरः करकलितदिव्यास्त्रः समधिष्ठितदिव्यरथो नागान्प्रत्यभिषेणनं विधाय
शरधाराभिर्गगनतलं पूरयामास ।

§ ५२) तन्मुक्ता विशिखा दीप्रा रेजिरे समराजिरे ।

द्रष्टुं तिरोहितान्नागान् दीपिका इव बोधिताः ॥३४॥

§ ५३) तदनु तद्विजयसनाथं संमुखागतं प्राप्तमेघेश्वरश्रुतिं कुरुराजं सन्मानयन् चक्रधरो
नागानोक्विध्वंसनसंजातसाध्वसाभ्यां म्लेच्छनायकाभ्यां सोपायनमागत्य वन्दितचरणारविन्दः,
पूतनया सह हिमाद्रिं प्रस्थितो मध्येमार्गं सिन्धुदेव्या सहर्षं सिन्धुजलैरभिषिक्तः परिलब्धदिव्य-
भद्रासनः कैश्चित्प्रयाणैर्हिमवत्कूटोपकण्ठमासाद्य, पुरस्कृतपुरोपहितः कृतोपवासः शुचिशय्याम-
धिशयानो दिव्यास्त्राण्यधिवास्य करकलितवज्रकाण्डकोदण्डो हिमवत्कूटं प्रति दिव्यममोघं शरमारो-
पयामास ।

अन्यदुद्रवत् प्रससार ॥३३॥ § ५१) तदानीमिति—तदानीं नागामरकृतप्रचण्डवर्षणबेलायाम्, उपरि अधवत्
परिकलितयोर्धृतयोः छत्ररत्नचर्मरत्नयोर्मध्ये सप्तदिनावधि सप्तदिनानि यावत् निरुपद्रवं यथा स्यात्तथा
चक्रधरसैन्ये आसीने सति, निधीश्वरेण चक्रवर्तिना आदिष्टा आज्ञप्ता ये गणबद्धामरास्तेः हुङ्कारेण
क्रोधजन्यशब्दविशेषेण नागेषु शत्रुपक्षीयदेवविशेषेषु उत्सारितेषु सत्सु कुरुराजोऽपि जयकुमारोऽपि मुक्तेन
सिंहगजितेन प्रतिध्वनिता हिमाचलकन्दरा येन तथाभूतः करकलितानि हस्तधृतानि दिव्यास्त्राणि येन तथाभूतः
समधिष्ठितदिव्यस्यन्दनः सन् नागान् प्रति अभिषेणनं सेनया सहाभियानं विधाय शरधाराभिः
बाणसंततिभिः गगनतलं नभस्तलं पूरयामास पूर्णं चकार । § ५२) तन्मुक्तेति—तेन जयकुमारेण मुक्ता-
स्त्वन्मुक्ता दीप्राः देदीप्यमानाः विशिखा बाणाः समराजिरे रणाङ्गणे तिरोहितान् अन्तहितान् नागान्
नागामरान् द्रष्टुमवलोकितुं बोधिताः प्रज्वलिता दीपिका इव रेजिरे शुशुभिरे ॥३४॥ § ५३) तदन्विति—
नागानोक्तस्य नागामरसैन्यस्य विध्वंसनेन विनाशेन संजातं साध्वसं भयं ययोस्ताभ्याम्, शेषं सुगमम् ।

॥३३॥ § ५१) तदानीमिति—उस समय ऊपर और नीचे धारण किये हुए छत्ररत्न तथा चर्म-
रत्नके मध्यमें सात दिन तक चक्रवर्तीकी सेना निरुपद्रव बैठी रही । तदनन्तर चक्रवर्तीकी
द्वारा अज्ञात गणबद्ध देवोंने हुंकारके द्वारा नाग नामक देवोंको खदेड़ दिया । उसी समय,
जिसने छोड़ी हुई सिंह गर्जनासे हिमवान् पर्वतकी गुफाओंको प्रतिध्वनित कर दिया था,
जिसने दिव्य शस्त्र धारण किये थे तथा जो दिव्य रथपर सवार था ऐसे कुरुराज-जयकुमारने
नाग नामक देवोंके प्रति सेनाके साथ आक्रमण कर बाणोंकी धारासे आकाशतलको भर
दिया । § ५२) तन्मुक्ता इति—कुरुराजके द्वारा छोड़े हुए चमकीले बाण युद्धके अंगणमें ऐसे
सुशोभित हो रहे थे मानो छिपे हुए नागदेवोंको देखनेके लिए जलाये हुए दीपक ही हैं
॥३४॥ § ५३) तदन्विति—तदनन्तर उनकी विजयलक्ष्मीसे सहित, सम्मुखागत एवं मेघेश्वर
नामके धारक कुरुराजका सम्मान करते हुए चक्रवर्तीने नाग नामक देवोंकी सेनाके नष्ट हो
जानेसे जिन्हें भय उत्पन्न हुआ था ऐसे दोनों म्लेच्छ राजाओंके द्वारा उपहार सहित आकर
वन्दित चरण होते हुए, सेनाके साथ हिमवान् पर्वतकी ओर प्रस्थान किया । बीच मार्गमें
सिन्धु देवीने हर्षपूर्वक सिन्धु नदीके जलसे उनका अभिषेक किया और दिव्य आसन

§ ५४) तत्रत्यदेवस्त्वरितं समागाद् द्रष्टुं तदा मागधवद्विनीतः ।

चक्री च तं देवमुदारवाचं संमान्य हर्षाद् विससर्ज भूयः ॥३५॥

§ ५५) तदनु प्रत्यावृत्य सेनया सह समासाद्य वृषभाद्रिं पुञ्जीभूत इव स्वयशोमण्डले तस्मिन् गिरौ स्वनामाक्षराणि प्रकटयितुकामस्तत्रत्यानि राजसहस्रनामाक्षराणि विलोक्य गर्वक्षतिविलक्षतां चापन्नः, कस्यचिद्राज्ञो नामाक्षराणि निरस्य विलिखितनिस्तुलनिजप्रशस्तिः 'सर्वः स्वार्थपरो लोकः' इति लोकप्रवादं सार्थक्यमावादयामास ।

§ ५६) भूयः प्रोत्साहितो देवैर्जयोद्योगमनूनयन् ।

गङ्गापातमभीयाय व्याहृत इव तत्स्वनैः ॥३६॥

§ ५७) तत्र किल गङ्गाजलावर्तनविलोकनविविधकौतुकेन वीक्षमाणो गङ्गादेव्या पूजितः तश्चक्रधरः पृतनया समं निवृत्य प्राप्तविजयार्धाचलकटकनिकटः, पूर्ववद्गुहाद्वारपाटनाय प्राच्यखण्ड-विजयाय सेनान्यमादिश्य तत्र षण्मासानुखेन रममाणः, तदा समागताभ्यां पुरस्कृतविचित्रोपाय-

§ ५४) तत्रत्येति—तदा तस्मिन्समये तत्र भवस्तत्रत्यः स चासौ देवश्चेति तत्रत्यदेवः मागधवत् लवणसमुद्रा-धिपतिमागधदेववत् विनीतः नम्रः सन् त्वरितं शीघ्रं द्रष्टुं समागात् समायातः । चक्री च भरतेश्वरवत् उदार-वाचं समुत्कृष्टगिरं तं देवं हर्षात् संमान्य सत्कृत्य भूयो विससर्ज विसृष्टं विदधौ । उपजातिस्त्वदः ॥३५॥
§ ५५) तदन्विति—सुगमम् । § ५६) भूय इति—देवैरमरैः भूयः पुनरपि प्रोत्साहितो वर्धमानोत्सवो भरते जयोद्योगं विजयप्रयासम् अनूनयन् ऊनं न करोतीति अनूनयन् तत्स्वनैः तदीयशब्दैः व्याहृतः आकारित इव गङ्गापातं यत्र हिमवतो गङ्गा प्रपतति तत्र अभीयाय अभिजगाम । उत्प्रेक्षा ॥३६॥ § ५७) तत्रेति—तत्र किल गङ्गाजलावर्तनविलोकनस्य यद् विविधं नानाप्रकारं कौतुकं कुतूहलं तेन वीक्षमाणो विलोकयन् गङ्गादेव्या पूजितः समचितः चक्रधरः पृतनया सेनया समं निवृत्य प्राप्तो विजयार्धाचलकटकनिकटो येन

२० प्रदान किया । तदनन्तर कितने ही पड़ावों द्वारा हिमवत्कूटके निकट पहुँच कर उन्होंने पुरोहितको आगे कर उपवास किया, पवित्र शय्यापर शयन किया, दिव्य शस्त्रोंकी पूजा कर हाथमें वज्रकाण्ड नामका धनुष लिया और हिमवत्कूटको लक्ष्य कर देवोपनीत अमोघ बाण चढ़ाया । § ५४) तत्रत्येति—उसी समय वहाँका देव मागध देवके समान नम्र हो दर्शन करनेके लिए शीघ्र ही आया । उत्कृष्ट वचन कहनेवाले उस देवका हर्षपूर्वक सम्मान कर चक्रवर्तिने उसे बिदा किया ॥३५॥ § ५५) तदन्विति—तदनन्तर सेनाके साथ लौटकर वृषभाचलपर आये । इकट्ठे हुए अपने यशके समूहके समान उस वृषभाचलपर अपने नामके अक्षर अंकित करनेकी इच्छा करते हुए ज्योंही उन्होंने उसपर अंकित हजारों राजाओंके नाम सम्बन्धी अक्षर देखे त्यों ही गर्वके नष्ट हो जानेसे लज्जाको प्राप्त हो गये । तदनन्तर किसी राजाके नामाक्षरोंको मिटाकर अपनी अनुपम प्रशस्ति लिखाते हुए उन्होंने 'सभी लोग स्वार्थमें तत्पर हैं' इस लोकोक्तिको सार्थकता प्राप्त करायी ॥ § ५६) भूय इति—देवोंके द्वारा जिनका पुनः उत्साह बढ़ाया गया था ऐसे भरतेश्वर विजयके उद्योगको कम न करते हुए उसके शब्दोंसे बुलाये गये के समान गंगापातके सम्मुख गये ॥३६॥ § ५७) तत्रेति—वहाँ गंगाजलके आवर्त रूप भ्रमणके देखने सम्बन्धी कुतूहलसे देखनेवाले चक्रवर्ती भरतकी गंगादेवीने पूजा की । तदनन्तर वे सेनाके साथ वहाँसे लौटकर विजयार्ध पर्वतके निकट आये, पहलेकी तरह गुहाद्वारको तोड़ने और प्राच्यखण्डकी विजयके लिए सेनापतिको आदेश देकर वहाँ छह मास तक सुखसे क्रीडा करते रहे । उसी समय विद्याधरोंके राजा नमि और

नाभ्यां नमिविनमिभ्यां विद्याधरपतिभ्यां प्रार्थितो मदनमोहनमन्त्रदेवतानिभां मूर्तिमतीं सुभद्रा-
नाम सुदतीं नमः स्वसारमुद्वाह्य परमानन्दनिर्भरस्तावदागतेन कृतकृत्येन सेनाधिपेन सह खण्ड-
प्रपाताख्यां गुहां पूर्ववद् व्यतीत्य नाट्यमालनामधेयेन सुरवरेण पूजितो भरतराजः क्रमेण कैलास-
धराधरोपान्ते सेनां निवेशयामास ।

§ ५८) तत्रास्थानं विगाह्य त्रिभुवनरमणं शुद्धधीरर्चयित्वा

नुत्वा नत्वा च भूयस्तट निकटगतैः सैनिकैः संपरीतः ।

षट्खण्डानां विजेता भरतनरपतिः किन्नरैर्गीयमानः

स्फारप्रागल्भ्यकीर्तिर्निजपुरगमने संमुखः संप्रतस्थे ॥३७॥

§ ५९) ततः कतिपयैरिव प्रयाणैश्चक्रिणो बलम् ।

अयोध्यां प्रापदाबद्धतोरणां चित्रकेतनाम् ॥३८॥

इत्यर्हदासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे नवमः स्तवकः ॥९॥

तथाभूतः सन् । शेषं सुगमम् । § ५८) तत्रेति—तत्र कैलासधराधरे आस्थानं समवसरणं विगाह्य त्रिभुवन-
रमणं त्रिलोकीनाथं वृषभजिनेन्द्रम् अर्चयित्वा पूजयित्वा नुत्वा स्तुत्वा नत्वा च नमस्कृत्य च भूयस्तदनन्तरं
तटनिकटगतैस्तटाम्यर्णप्राप्तैः सैनिकैः संपरीतः शुद्धधीः षट्खण्डानां विजेता किन्नरैः गीयमानः स्फारे विशाले
प्रागल्भ्यकीर्तिं गाम्भीर्ययशसी यस्य तथाभूतो भरतनरपतिः निजपुरगमने संमुखः सन् संप्रतस्थे प्रययो । १५
खण्डराज्यन्दः ॥३७॥ § ५९) तत इति—सुगमम् ॥३८॥

इत्यर्हदासकृतेः पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती'समाख्यायां

संस्कृतव्याख्यायां नवमः स्तवकः समाप्तः ॥९॥

विनमिने नाना प्रकारकी भेंटके साथ आकर प्रार्थना की जिससे कामदेवके मोहन मन्त्रकी
मूर्तिमती देवीके समान सुन्दर दाँतों वाली नमिकी बहिन सुभद्राके साथ विवाह किया । २०
पश्चात् परम आनन्दसे भरे हुए भरतेश्वर, तब तक कृतकृत्य होकर आये हुए सेनापतिके साथ
खण्डप्रपात नामकी गुहाको पूर्वकी तरह व्यतीत कर नाट्यमाल नामक देवके द्वारा पूजित
होते हुए आगे बढ़े तथा क्रम-क्रमसे चलकर उन्होंने कैलास पर्वतके समीप सेना ठहरायी ।
§ ५८) तत्रेति--वहाँ शुद्ध बुद्धिके धारक भरतेश्वरने समवसरणमें प्रवेश कर त्रिभुवनपति
वृषभजिनेन्द्रकी पूजा की, स्तुति की, उन्हें नमस्कार किया तदनन्तर तट निकट स्थित २५
सैनिकोंसे परिवृत हो षट्खण्डके विजेता तथा अत्यधिक गाम्भीर्य और कीर्तिके धारक भरत
महाराजने अपने नगरकी ओर प्रस्थान किया । उस समय किन्नर देव उनका यशोगान कर
रहे थे ॥३७॥ § ५९) तत इति--तदनन्तर चक्रवर्तीकी वह सेना कुछ ही पड़ावों द्वारा
जिसमें तोरण बाँधे गये थे तथा नाना प्रकारकी ध्वजाएँ फहरायी गयी थीं ऐसी अयोध्या
नगरीको प्राप्त हो गयी ॥३८॥

इस प्रकार श्रीमान् अर्हदास कवि द्वारा रचित पुरुदेव चम्पू-

प्रबन्धमें नौवाँ स्तवक समाप्त हुआ ॥९॥

दशमः स्तवकः

§ १) तदनु नातिदूरसंनिविष्टस्य चक्रधरस्य पुरप्रवेशसमये विजितारातिचक्रे चक्ररत्ने पुरगोपुरं नातिक्रामति, तद्रक्षणदक्षेषु यक्षेषु क्रोधविस्मयाभ्यां परवशेषु, तदुदन्तमाकर्ण्य विस्मितेन प्रभुणा पृष्ठे पुरोहिते भ्रातृविजयावशेषं चक्राज्ञातिक्रमणनिमित्तं ब्रुवाणे, तत्क्षणं सोपायनवाचिकं प्रहितैः कार्यज्ञैर्दूतैर्विज्ञातवृत्तान्तेषु भरतेशानुजेषु, जगद्गुरुसभामासाद्य तपोलक्ष्मीमेव बहुमन्यमानेषु, समागतदूतव्रातविदिततदुदन्तो मनुकुलजलधिकुमुदिनीकान्तो भरतमहीकान्तः किञ्चिच्चिन्ताक्रान्तो भुजबलशालिनं भुजबलिनं युवानमनुनेतुं व्याकुलमानसः कार्यज्ञं मन्त्रविशारदं दूतं तत्प्रान्तं प्रतिप्रेषयामास ।

§ १) तदन्विति—तदनन्तरं नातिदूरे समीपप्रायस्थाने संनिविष्टस्य स्थितस्य चक्रधरस्य भरतेश्वरस्य पुरप्रवेशसमये नगरप्रवेशावसरे विजितं पराभूतमरातिचक्रं शत्रुसैन्यं येन तथाभूते चक्ररत्ने सुदर्शनचक्रे पुरगोपुरं १० नगरप्रधानद्वारं नातिक्रामति नोल्लङ्घयति सति, तस्य चक्ररत्नस्य रक्षणदक्षेषु रक्षासमर्थेषु यक्षेषु तज्जातीयव्यन्तरामरेषु क्रोधविस्मयाभ्यां कोपाश्चर्याभ्यां परवशेषु परायत्तेषु सत्सु, तदुदन्तं तद्वृत्तान्तम् आकर्ण्य श्रुत्वा विस्मितेन चकितेन प्रभुणा चक्रवर्तिना पृष्ठेऽनुयुक्ते पुरोहिते पुरोवसि भ्रातृणां विजयस्यावशेषस्तं चक्रानातिक्रमणस्य निमित्तं कारणं ब्रुवाणे कथयति सति, तत्क्षणं तत्कालमेव उपायनवाचिकाभ्यां प्राभूतसंदेशाभ्यां सहेति सोपायनवाचकं यथा स्यात्तथा प्रहितैः प्रेषितैः कार्यज्ञैः करणीयकार्यज्ञानयुक्तैर्दूतैश्चरैः भरतेशानुजेषु १५ विज्ञानवृत्तान्ते ज्ञाततदुदन्तेषु, भरतेश्वरलघुसहोदरेषु जगद्गुरुसभां वृषभजिनेन्द्रसमवसरणम् आसाद्य प्राप्य तपोलक्ष्मीमेव तपःश्रियमेव बहुमन्यमानेषु श्रेष्ठां जानत्सु, समागतदूतव्रातेन प्रतिनिवृत्तचरसमूहेन विदितोऽवगतस्तदुदन्तस्तद्दोक्षाग्रहणसमाचारो येन सः, मनुकुलमेव जलधिर्मनुकुलजलधिस्तस्मै कुमुदिनीकान्तः चन्द्रः भरतमहीकान्तो भरतराजः किञ्चिन्मनाङ् चिन्ताक्रान्तः चिन्तितः सन् भुजबलशालिनं बाहुविक्रमविशोभिनं भुजबलिनं बाहुबलिनं युवानं युवराजम् अनुनेतुमनुकूलयितुं व्याकुलमानसो व्यग्रहृदयः कार्यज्ञं करणीय- २० कार्यनिपुणं मन्त्रविशारदं मन्त्रणानिपुणं दूतं प्रणिवि तत्प्रान्तं तत्प्रदेशं प्रति प्रेषयामास प्रजिघास ।

§ १) तदन्विति—तदनन्तरं चक्रवर्ती अयोध्यासे कुछ दूरीपर ठहर गये । जब उनका नगरमें प्रवेश करनेका अवसर आया तब शत्रुओंके समूहको जीतनेवाला चक्ररत्न नगरके गोपुरका उल्लंघन नहीं कर सका । यह देख उसकी रक्षामें समर्थ यक्ष क्रोध और आश्चर्यसे परवश हो गये । उस वृत्तान्तको सुनकर आश्चर्यसे चकित चक्रवर्तीने पुरोहितसे उसका २५ कारण पूछा । पुरोहितने 'भाइयोंका जीतना अभी बाकी है' यही चक्ररत्नके अनुल्लंघनका कारण बतलाया । उसी समय उपहार और सन्देशके साथ कार्यके ज्ञाता दूत उनके पास भेजे गये । दूतोंसे सब वृत्तान्त जान कर भरतके छोटे भाइयोंने वृषभजिनेन्द्रके समवसरणमें जाकर तप लक्ष्मीको स्वीकार करना ही श्रेष्ठ माना । जब लौटे हुए दूतोंके समूहसे उनका वृत्तान्त मालूम हुआ तब मनुवंशरूपी समुद्रको वृद्धिगत करनेके लिए चन्द्रमा स्वरूप भरत- ३० राज कुछ चिन्तासे व्याप्त हो गये । तदनन्तर बाहुबलसे सुशोभित युवराज बाहुबलीको अनुकूल करनेके लिए उन्होंने कार्यके ज्ञाता एवं मन्त्रणामें निपुण दूतको उनके प्रान्तकी

§ २) सोऽयं दूतो विविधविषयान्द्रागतीत्यातिचित्रान्
गत्वा स्वर्गादिधिमदवतीं राजधानीं क्रमेण ।

ज्ञातोदन्तं भुजबलिनृपं द्वारपालैर्महोभूत्-
पीठासीनं दिनकरनिभं तेजसा संददर्श ॥१॥

§ ३) अनङ्गः साङ्गः किं मधुरत मनोज्ञाकृतियुतः
प्रतापः किं मूर्तः प्रकटितशरीरं किमु बलम् ।

समूहः किं धाम्नां हरितमणिनद्धः किमु गिरिः
क्षितीशं दृष्ट्वासाविति विविधसंदेहमभजत् ॥२॥

§ ४) ततश्च दूरादवनतशिराः ससत्कारं यथोचितमासनमुपागतः शासनहरो भरतराजस्य
निखिलदिग्विजयादिकुशलप्रश्नपूर्वकं तस्य कर्तव्यशेषमस्ति न वेति नरपालेन पृष्ठः सादर- १०
भिदमभासिष्ट ।

§ ५) मातङ्गोपरि संपतन्त्यनुदिनं श्यामा कृपाणीलता
सद्धारश्चितया तथा परवशो नान्यां समालोकते ।

§ १) सोऽयमिति—सोऽयं चक्रवर्तिप्रेषितो दूतः द्राग् क्षटिति अतिचित्रान् प्रभूतविस्मयकरान् विविधविषयान्
नैकविषयजनपदान् अतीत्य समुल्लङ्घ्य स्वर्गाद् त्रिदिवात् अधिमदवतीम् अधिकगर्ववतीं राजधानीं क्रमेण गत्वा १५
प्राप्य द्वारपालैः प्रतीहारैः ज्ञातोदन्तं विदितवृत्तान्तं महोभूत्पीठासीनं राजसिंहासनासीनं तेजसा प्रतापेन
दिनकरनिभं सूर्यसदृशं भुजबलिनृपं बाहुबलिनरेन्द्रं संददर्श समवलोकयामास । मन्दाक्रान्ताच्छन्दः ॥१॥

§ ३) अनङ्ग इति—असौ दूतः क्षितीशं बाहुबलिनं दृष्ट्वा इतीत्यं विविधसंदेहं नानाप्रकारसंशयम् अभजत्
प्रापत् । इतीति किम् । किं साङ्गः सशरीरः अनङ्गो मदनः, उताथवा मनोज्ञाकृतियुतः सुन्दराकारसहितो २०
मधुरसन्तः, किं मूर्तः प्रतापस्तेजः, किमु प्रकटितशरीरं धृतदेहं बलम्, किं धाम्नां तेजसां समूहः, किमु
हरितमणिभिन्नद्वः खचितः गिरिः शैलः । संशयालंकारः । शिखरिणीच्छन्दः ॥२॥ § ४) ततश्चेति—शासन-
हरो दूतः । शेषं सुगमम् । § ५) मातङ्गेति—मातङ्गोपरि गजोपरि पक्षे चाण्डालोपरि अनुदिनं प्रतिदिनं
संपतन्ती श्यामा नीलवर्णा या कृपाणीलता खड्गवल्ली पक्षे श्यामा नवयौवनवती सती धारा सद्धारश्चितया
श्चितया शोभितया पक्षे संशयासी धरश्चेति सद्धारस्तेनाश्चितया शोभितया तथा कृपाणीलतया पक्षे नवयौवन-

ओर भेजा । § २) सोऽयमिति—वह दूत क्रमशः अनेक आश्चर्योंसे युक्त नाना देशोंको २५
शीघ्र ही लाँघकर स्वर्गसे भी अधिक मदशाली राजधानी जा पहुँचा । वहाँ उसने, द्वारपालोंके
द्वारा जिसे सब समाचार विदित हो चुके थे, जो राजसिंहासनपर बैठा हुआ था तथा
तेजसे सूर्यके समान था ऐसे बाहुबलीके दर्शन किये ॥१॥ § ३) अनंग इति—क्या यह
शरीर सहित काम है ? या मनोहर आकृतिसे युक्त वसन्त है ? क्या मूर्तिधारी प्रताप है ?
या शरीरधारी बल है ? क्या तेजका समूह है ? या हरित मणियोंसे खचित पर्वत है ? इस ३०
प्रकार राजा बाहुबलीको देखकर वह दूत नाना प्रकारके सन्देहको प्राप्त हुआ ॥२॥ § ४)
ततश्चेति—तदनन्तर दूरसे ही जिसका सिर नम्रीभूत हो रहा था, तथा सत्कार सहित जो
यथायोग्य आसनको प्राप्त हुआ था ऐसे उस दूतसे 'भरत राजकी समस्त दिग्विजय आदिकी
कुशलताके पूछनेके साथ उनके कुछ करने योग्य शेष रहा है या नहीं' इस प्रकार राजा
बाहुबलीने पूछा । उत्तरमें दूतने आदरपूर्वक यह कहा । § ५) मातङ्गोपरोति—जो नील ३५
वर्णावाली तलवाररूपी लता प्रतिदिन हाथियोंके ऊपर पड़ती है (पक्षमें जो नवयौवनवती स्त्री

मां भृत्येषु नियुक्तवान्निधिपतिस्तात ! श्रुतं तेऽस्त्विति

श्रीवार्तां गदितुं ध्रुवं जलनिधिं यत्कीर्तिराटीकत ॥३॥

- ५) किं च यः किल वीर्यलक्ष्मीनिलयो निःस्वोपकारसमासक्तो निखिलसंपद्विराजमानो निध्यादरविरहितो निजायां मतेरधीनः समापततामरातीनां रणे सन्निधिमात्रेण निधनदः सख्यानां नियमप्रकारगोचरः सरसमैत्रीनिघ्नगुणाकरः परनियतिधिककारधुरोणः संमानना विषयोऽकृतनियोगिजनः चक्रधरस्तद्रिपुश्च किं तु तद्रिपुन्यून इति विशेषः ।

- वत्या स्त्रिया परवशो निधिपतिभरतः अस्यां नारीं न समालोकते न पश्यति । स मां भृत्येषु सेवकेषु नियुक्तवान् दत्तवान् । हे तात ! हे पितः ! ते तव इति पूर्वोक्तं श्रुतम् अस्तु, इतोत्थंभूतां श्रीवार्तां लक्ष्मीवार्तां गदितुं कथयितुं यत्कीर्तिर्यदीयसमज्या जलनिधिं सागरम् आटीकतं प्राप्नोत् ध्रुवमित्युत्प्रेक्षायाम् तदीया कीर्तिः
- १० समुद्रान्तं प्रसृतास्तीति भावः । शार्ङ्गलविक्रीडितम् ॥३॥ § ६) किं चेति—यः किल चक्रधरो भरतो वीर्यलक्ष्म्या वीरश्रिया निलयो गृहं तद्रिपुवच तथा किं तु स न्यूनो हीनः निःअक्षरेण रहितश्च वीर्यलक्ष्मीलको वीरश्रीविनाशक इत्यर्थः, निःस्वोपकारसमासक्तः निर्धनमनुष्योपकारहीनः तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन स्वोपकारसमासक्तो निजोदरभरणशीलः, निखिलसंपद्विराजमानः सर्वसंपत्तिशोभमानः तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन खिलसंपद्विराजमाना सविघ्नसंपत्तिशोभमानः, निध्यादरविरहितः निषी द्रव्यादिषु आदरविरहितः तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन ध्यादर-
- १५ विरहितो बुद्ध्यादररहितः, निजायामतेरधीनः स्वस्याबुद्धेरधीनः तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन जायामतेरधीनः श्रोत्रबुद्धिनिघ्नः, रणे युद्धे सन्निधिमात्रेण सन्निधानमात्रेणैव समापततां समागच्छताम् अरातीनां शत्रूणां निधनदो भृत्यप्रदः तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन रणे संविमात्रेण समापततां शत्रूणां धनदो धनप्रदः, सख्यानां मैत्रीणां नियमप्रकारगोचरो नियमेन मैत्रीणां विषयः तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन सख्यानां यमप्रकारगोचरो विनाशप्रकारविषयः, मैत्रीविनाशक इत्यर्थः, सरसमैत्रीनिघ्नाः सरससख्याधीना ये गुणास्तेषामाकरः खनिः तद्रिपुस्तु न्यूनत्वेन
- २० सरसमैत्रीघ्नगुणाकरः सरसमैत्रीघातकगुणखनिः, परनियतेः परभाग्यस्य धिक्कारे तिरस्कारे धुरोणो निपुणः

- प्रतिदिन चाण्डालोंके ऊपर पड़ती है) समीचीन धारासे युक्त उस तलवारके वशीभूत हुआ चक्रवर्ती दूसरीकी ओर देखता भी नहीं है (पक्षमें समीचीन हारसे युक्त उस स्त्रीके वश हुआ किसी अन्य स्त्रीकी ओर देखता भी नहीं है) मुझे तो उसने नौकरोंके लिए दे रखा है । हे पिता जी ! यह सब समाचार आपके सुन पड़े, इस प्रकार लक्ष्मीका यह समाचार
- २५ कहनेके लिए ही मानो जिसकी कीर्ति समुद्र तक गयी थी ॥३॥ § ६) किं चेति—एक बात यह भी है कि जो भरतराज वीर्यलक्ष्मीनिलय है—पराक्रमरूपी लक्ष्मीका घर है तथा उसका शत्रु भी ऐसा ही है परन्तु वह न्यून है 'नि' इस अक्षरसे रहित है अर्थात् वीर्यलक्ष्मीलय है—पराक्रमरूपी लक्ष्मीका नाश करने वाला है, जो निःस्वोपकार समासक्त है—निर्धन मनुष्योंके उपकारमें लीन है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेके कारण स्वोपकार समासक्त है—मात्र
- ३० अपना उपकार करनेमें लीन है, जो निखिल सम्पद्विराजमान—समस्त सम्पत्तियोंसे शोभायमान है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेके कारण खिलसम्पद्विराजमान—विघ्नित सम्पत्तिसे विराजमान है, जो निध्यादरविरहित—बुद्धिके आदरसे रहित है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेसे ध्यादरविरहित—बुद्धिके आदरसे रहित है, जो निजायामतेरधीनः—अपनी बुद्धिके अधीन है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेसे जायामतेरधीनः—स्त्रीकी बुद्धिके अधीन है, जो रणमें सन्निधिमात्र—उपस्थित रहने मात्रसे आते हुए शत्रुओंके निधनदः—मरणको देनेवाला है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेसे सन्धिमात्रसे युद्धमें आनेवाले शत्रुओंको धनदः—धनका देनेवाला है, जो मित्रताओंके नियम प्रकार—नियमोंका गोचर है परन्तु

§ ७) स राजराजो भरतः समादिशति मन्मुखात् ।

भवन्तमनुजं धीरं चक्रविख्यातवैभवः ॥४॥

§ ८) न शोभते राज्यमिदं त्वया विना

हितैषिणा दोर्बलिनानुजन्मना ।

तदेव राज्यं समुदाहरन्ति यत्

स्वबान्धवानां परिभागकारणम् ॥५॥

§ ९) किं च,

§ १०) यत्पादाम्बुजमानमस्तुरशिरोमन्दारमालारजो-

जुष्टं लेखकिरीटकान्तिलहरीपुञ्जेन किञ्जलिकतम् ।

युष्मद्वज्रकिरीटमत्र विमलं नोचेन्मरालायते

तच्छोभां न दधाति देव विलसद्रक्ताङ्गुलीसदृशम् ॥६॥

तेद्विपुस्तु न्यूनत्वेन परयतिधिविकारधुरीणः, श्रेष्ठसाधुनिन्दननिपुणः, संमाननायाः सत्कृतेविषयीकृता गोचरीकृता नियोगिजना भृत्यजनाः येन सः, तद्विपुस्तु न्यूनत्वेन संमाननस्य सत्कारस्य अविषयीकृता योगिजना मुनिजना येन तथाभूतः । इतोत्थं तद्विपौ विशेषोऽस्तीति शेषः । व्यतिरेकालंकारः । § ७) स राजेति—चक्रेण विख्यातं विश्रुतं वैभवं यस्य तथाभूतः राजराजो राजेश्वरः स भरतः धीरं गभीरम् अनुजं लघुसहोदरं भवन्तं मन्मुखात् समादिशति समाज्ञापयति ॥४॥ § ८) न शोभत इति—हितैषिणा हितेच्छुना अनुजन्मना लघुसहोदरेण दोर्बलिना बाहुबलिना त्वया विना इदं राज्यं न शोभते । यत् स्वबान्धवानां स्वसनाभीनां परिभागकारणं भवति तदेव राज्यं समुदाहरन्ति कथयन्ति । वंशस्थवृत्तम् ॥५॥ § ९) किं चेति—किं च अन्यदपि । § १०) यत्पादेति—यत्पादाम्बुजं यच्चरणारविन्दं, आनमतां असमन्तान्ममस्कुर्वतां सुराणां देवानां याः शिरोमन्दारमालाः मूर्धस्थकल्पवृक्षकुसुमस्रजस्तासां रजोभिः परागैः जुष्टं सेवितं, लेखकिरीटानां लेखमौलीनां योः कान्तिलहयः कान्तिपरम्परास्तासां पुञ्जेन समूहेन किञ्जलिकतं केशराढ्यं, विलसन्ति शोभमानानि

उसका शत्रु न्यून होनेसे यमप्रकारगोचरः—नाना प्रकारके मरणोंका विषय है, जो सरस-मैत्रीनिधनगुणाकरः—सरस मित्रताके अधीन गुणोंकी खान है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेसे सरसमैत्रीधनगुणाकरः—सरस मित्रताको नष्ट करनेवाले गुणोंकी खान है, जो परनिर्यात धिविकारधुरीण—दूसरोंके भाग्यका तिरस्कार करनेमें निपुण है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेके कारण परयतिधिविकारधुरीणः—श्रेष्ठ मुनियोंका तिरस्कार करनेमें निपुण है और जो सम्मानना—विषयीकृतनियोगिजनः—सेवक जनोंको आदरका विषय बनानेवाला है परन्तु उसका शत्रु न्यून होनेसे सम्माननाविषयीकृतयोगिजनः—योगी जनोंको सम्मानका विषय बनानेवाला नहीं है । इस प्रकार चक्रवर्ती और उसके शत्रुमें विशेषता है । § ७) स राजेति—वह राजाओंका राजा तथा चक्ररत्नसे प्रसिद्ध वैभवका धारक भरत, गम्भीर प्रकृतिसे युक्त आप छोटे भाईको मेरे मुखसे आज्ञा देता है ॥४॥ § ८) न शोभत इति—हितको चाहनेवाले तुझ बाहुबली अनुजके बिना यह राज्य शोभित नहीं होता । वास्तवमें जो अपने भाइयोंके विभागका कारण है उसे ही राज्य कहते हैं ॥५॥ § ९) किं चेति—और भी । § १०) यत्पादेति—जिनके चरणकमल नग्रीभूत देवोंके मस्तकपर स्थित कल्पवृक्षकी मालाओंकी परागसे सेवित देवोंके मुकुटोंकी कान्तिरूपी तरंगोंके समूहसे केशरयुक्त, तथा शोभायमान लाल-लाल अङ्गुलीरूपी उत्तम दलोंसे युक्त है इनपर यदि आपका निर्मल

§ ११) अवन्ध्यशासनस्यास्य शासनं ये विमन्वते ।

शासनं द्विषतां तेषां चक्रमप्रतिशासनम् ॥७॥

§ १२) इत्यादि सामभेददण्डप्रदर्शनं प्रभुशासनमुदाहृत्य विरतवचसि वचोहरे मन्दस्मित-
मकरन्दोद्गारिवदनारविन्दो भुजबलिकुमारः सरसमधुरगभीरार्थमित्थं वचनमाचक्षे ।

५ § १३) सामि दर्शयता सामभेददण्डी विशेषतः ।

अस्मत्सु भवतो भर्त्रा स्वप्रज्ञा प्रकटीकृता ॥८॥

§ १४) खलतां खलतामिवाफलां सुमनोभो रहितां दधात्ययम् ।

भरतः स यतो दिदृक्षते सहसास्मान्बलतश्च मायया ॥९॥

- रक्ताङ्गुल्य एव सहलानि यस्मिन् तथाभूतं वर्तते । हे देव ! हे राजन् ! चेद् यदि अत्र तदीयपादाभ्युजे
- १० विमलं निर्मलं युष्मद्वज्रकिरीटं त्वद्धीरकमौलिः नो मरालायते नो हंसायते तत् तहि शोभां न
दधाति । भवद्वज्रमुकुटमरालमण्डितमेव तदीयपदारविन्दं शोभामवाप्नुयादिति भावः । रूपकं शार्दूलविक्री-
डितं छन्दः ॥६॥ § ११) अवन्ध्येति—अवन्ध्यं सफलं शासनं यस्य तस्य भरतराजस्य शासनभादेशं ये
विमन्वते तिरस्कुर्वन्ति तेषां द्विषतां रिपूणाम् अप्रतिशासनं प्रतिद्वन्द्विरहितं चक्रं चक्ररत्नं शासनं नियामकं
विनाशकमस्तीति शेषः ॥७॥ § १२) इत्यादीति—इत्यादि पूर्वोक्तप्रकारं सामभेददण्डानां साम्बेददण्ड-
१५ नीतीनां प्रदर्शनं यस्मिस्तत् प्रभुशासनं चक्रिनिदेशम् उदाहृत्य कथयित्वा वचोहरे दूते विरतवचसि तूष्णींभूते
सति, मन्दस्मितमेव मकरन्दं तस्योद्गारि वदनारविन्दं यस्य तथाभूतो भुजबलिकुमारः बाहुबलिकुमारः
सरसमधुरगभीरार्थं सरसो मधुरो गभीरश्चार्थो यस्य तथाभूतो वचनम् आचक्षे समुवाच । § १३) सामिति—
अस्मासु विषये सामि अल्पं साम सामनीति विशेषतो बाहुल्येन भेददण्डी भेददण्डनीती दर्शयता प्रकटयता
भवतो भर्त्रा तव स्वामिना स्वप्रज्ञा स्वबुद्धिः प्रकटीकृता प्रदर्शिता ॥८॥ § १४) खलतामिति—यतो यस्मात्
२० कारणात् स भरतः अस्मात् सहसा अविमृश्य बलतो वीर्यतो मायया प्रपञ्चेन च दिदृक्षते द्रष्टुमिच्छति ततोऽयं
खलतामिव गगनबल्लीमिव 'अमरवेल' इति प्रसिद्धलतामिव अफलां फलरहितां प्रयोजनसिद्धिरहितां च
सुमनोभिः पुष्पै रहितां विद्वज्जनरहितां च खलतां दुष्टतां दधाति विभति । यमकः श्लेषश्च । वियोगिनी-

- हीरकनिर्मित मुकुट हंसके समान आचरण नहीं करता है तो वह शोभाको धारण नहीं
करता है ॥६॥ § ११) अवन्ध्येति—सार्थक आज्ञाको धारण करनेवाले इसके शासकको जो
२५ स्वीकृत नहीं करते हैं—उसके विरुद्ध आचरण करते हैं, प्रतिद्वन्द्वीसे रहित चक्ररत्न उच्च
शत्रुओंका शासन करता है—उनका दमन करता है ॥७॥ § १२) इत्यादीति—इस प्रकार
साम, भेद और दण्डनीतिके प्रदर्शनसे युक्त स्वामीकी आज्ञा प्रकट कर जब वह दूत चुप हो
गया तब मन्द मुसकानरूपी मकरन्दको प्रकट करनेवाले मुखारविन्दसे युक्त बाहुबली
कुमार इस प्रकारके सरस मधुर तथा गम्भीर अर्थसे युक्त वचन कहने लगे । § १३) सामीति—
३० हमारे विषयमें थोड़ा-सा साम और विशेष रूपसे भेद तथा दण्डनीतिको दिख-
लाते हुए आपके स्वामीने अपनी बुद्धि प्रकट की है—अपनी चतुराई दिखलायी है ॥८॥
§ १४) खलतामिति—क्योंकि वह भरत हम लोगोंको विचार किये बिना ही बल और
छलसे देखना चाहता है इस लिए यह खलता—गगनबल्ली—अमर वेलके समान
निष्फल—फलसे रहित (पक्षमें कार्यसिद्धिसे रहित) और सुमनोरहित—फूलोंसे रहित
३५ (पक्षमें विद्वानोंसे रहित अथवा सुविचारोंसे शून्य) खलता—दुर्जनताको धारण करता है

- § १५) दिशां जेता चक्री यदि सुरसमूहं विजितवान्
तदा दर्भैः शय्यां किमलभत दारिद्र्यवशतः ।
तथा स्यात्ते भर्तुः प्रतिहतिविदूरं यदि बलं
जले म्लेच्छैः बलुप्तेऽप्लवत् खलु किं कौतुकवशात् ॥१०॥
- § १६) राजोक्तिर्मयि तस्मिन्च संविभक्तादिवेधसा ।
राजराजः स इत्यद्य स्फोटो गण्डस्य मूर्ध्नि कः ॥११॥
- § १७) चक्रभ्रान्तिमुदारदण्डकलितां संसाधयन्पार्थिवान्
साटोपं घटयन्परीतविभवः सत्कुम्भभृद्भिः पुरः ।
संपुण्यत्परमातिकः स भरतो नूनं कुलालायते
सोऽयं यद्यरिचक्रलोपकुतुकी स्याज्जीवनस्य क्षतिः ॥१२॥

५

१०

छन्दः ॥१॥ § १५) दिशामिति—दिशां काष्ठानां जेता चक्री चक्रवर्ती यदि सुरसमूहं देवसमूहं विजितवान् तदा तर्हि दारिद्र्यवशतो निःस्वतावशेन दर्भैः कुशैः रचितामिति शेषः शय्यां किम् अलभत । प्राप्तवान् तथा किं च, ते तव भर्तुः स्वामिनो बलं वीर्यं यदि प्रतिहतिविदूरं प्रतिघातदूरवर्ति स्यात् तर्हि स म्लेच्छैः बलुप्ते नागामरवृष्टिविहिते जले सलिले खलु निश्चयेन कौतुकवशात् किं किमर्थम् अप्लवत् आप्लुतोऽभवत् । शिखरिणी-छन्दः ॥१०॥ § १६) राजोक्तिरिति—आदिवेधसा वृषभेश्वरेण मयि बाहुबलिनि तस्मिन् भरते च राजोक्तिः 'राजा' इति शब्दव्यवहृतिः संविभक्ता समानरूपेण प्रदत्ता, किं तु स राजराजो राज्ञां राजा राजराजः इतीत्यम् अद्य गण्डस्य पिटकस्य 'गण्डस्तु पिटके योगभेदे खड्गिकपोलयोः' इति विश्वलोचनः, मूर्ध्नि उपरि कः स्फोटः 'फोड़ा' इति प्रसिद्धः स्फोटस्योपरि स्फोट इव तस्य राजराजत्वव्यवहार इति भावः ॥११॥ § १७) चक्रेति—उदारदण्डासी दण्डश्चेति उदारदण्ड उन्नतयष्टिः पक्षे उन्नतदण्डरत्नं च तेन कलितां सहितां चक्रभ्रान्ति कुम्भकारचक्रस्य भ्रमणं पक्षे चक्ररत्नभ्रमणं च संसाधयन् कुर्वन्, साटोपं सविस्तारं यथा स्यात्तथा पार्थिवान् पृथिव्या विकाराः पार्थिवा घटास्तान् पक्षे पृथिव्या अविपाः पार्थिवास्तान् घटयन् रचयन् सत्कुम्भभृद्भिः प्रशस्तगण्डस्थलधारकैः हस्तिभिः पक्षे सत्कलशधारकैः परीतविभवो विस्तृतैश्वर्यः संपुण्यत्परमातिकः संपुण्यन्तः परमातिकाः श्रेष्ठघटा यस्य सः पक्षे संपुण्यन्तो परमा श्रेष्ठा अतिधनुष्कोटिर्यस्य तथाभूतः स भरतः नूनं निश्चयेन

१५

२०

॥१॥ § १५) दिशामिति—दिशाओंको जीतनेवाले चक्रीने यदि देवसमूहको जीता था तो फिर वह दारिद्र्यके वशीभूत हो डारभोसे रचित शय्यापर क्यों सोया ? इसके सिवाय यदि तुम्हारे स्वामीका बल प्रतिघातसे बहुत दूर है तो फिर म्लेच्छोंके द्वारा बरसाये हुए जलमें कुतूहलवश उसने प्लवन क्यों किया—किस लिए उतराया ? ॥१०॥ § १६) राजोक्तिरिति—आदि ब्रह्माने मुझमें तथा उसमें समान रूपसे 'राजा' इस प्रकारकी उक्तिको विभक्त किया था फिर आज वह राजराज—राजाओंका राजा हो गया यह फोड़ेके ऊपर उठा हुआ कौन-सा फोड़ा है ? ॥११॥ § १७) चक्रेति—जो बहुत बड़े डंडाके द्वारा की हुई चक्रभ्रान्तिको—चक्र घुमानेकी क्रियाको कर रहा है, (पक्षमें जो उत्कृष्ट दण्डरत्नसे युक्त चक्ररत्नके भ्रमणको कर रहा है, जो बड़े विस्तारके साथ पार्थिव—घड़ोंको बनाता है (पक्षमें जो बड़े विस्तारसे राजाओंको मिलाता है) समीचीन कलशोंको धारण करनेवाले लोगोंके द्वारा जिसका विभव व्याप्त हो रहा है (पक्षमें उत्तम गण्डस्थलोंके धारक हाथियोंके द्वारा जिसका वैभव सब ओर फैल रहा है) तथा जो मिट्टीसे निर्मित घड़ोंको ठोक-पीटकर सुदृढ़ कर रहा है (पक्षमें उत्कृष्ट धनुकोटिको पुष्ट करनेवाला है) ऐसा वह भरत निश्चित

२५

३०

३५

§ १८) स किल मागधकलितरागः सरसमधुरकलयान्वितः पटुगन्धर्वानुगतः प्रवीणो भरतः समररङ्गतले मया सह ताण्डवमारचय्य भरततां सफलयतु ।

§ १९) ततः समरसंघट्टे यद्वा तद्वास्तु नो द्वयोः ।

नोरेकमिदमेकं नो वचो हर वचोहर ! ॥१३॥

५ § २०) इत्यादिश्य क्षितिपतिरयं दूतमेनं विसर्ज्य

क्षोणिपालप्रकरमुकुटीकोटिसंघट्टिताङ्घ्रिः ।

- कुलालायते कुम्भकार इवाचरति । सोऽयं कुलालायमानो भरतचक्रो यदि अरिचक्रलोपस्य शत्रुसैन्यसंहारस्य कुतुकम् अरिचक्रलोपकुतुकं तद् विद्यते यस्येति तथा मतुवर्थे इन् प्रत्ययः पक्षे अराः सन्ति यस्य तत् अरि तच्च तत् चक्रं चेति अरिचक्रं तस्य लोपस्य कुतुकं विद्यते यस्य तथाभूतो यदि स्यात् तदा जीवनस्य जीवितस्य पक्षे जलस्य क्षतिविनाशः स्यादिति शेषः । श्लेषः । शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥१२॥ § १८) स किलेति—मागधे तन्नाम-व्यन्तरे कलितः कृतो रागः प्रीतिर्येन सः मागधदेवप्रीतिपुष्कः, सरसा मधुरा च या कला तयान्वितः सहितः पटुगन्धर्वैर्दक्षास्वैरनुगतः सहितः प्रवीणो निपुणः स भरतः समररङ्गतले रणरङ्गवसुंधरातले मया बाहुवलिना सह ताण्डवं युद्धं पक्षे नृत्यम् आरचय्य कृत्वा भरततां स्वनामधेयसार्थकतां नाटयशास्त्रकारतां सफलयतु सफलं करोतु । एतस्मिन् पक्षे मागधैः स्तुतिपाठकैः कृतरागो गायनरागो यस्य तथाभूतः, ससद्वासी मधुरश्चेति १५ सरसमधुरः सरसमधुर एव सरसमधुरकः सरसमधुरकश्चासी लयश्चेति सरसमधुरकलयस्तेनान्वितः सहितः, पटुगन्धर्वैः चतुरगायकैः अनुगतः सहितः, प्रकृष्टा श्रेष्ठा वीणा यस्य स प्रवीणः । § १९) तत इति—ततस्तस्मात् कारणात् नो द्वयोः आवयोः द्वयोः समरसंघट्टे रणसमर्द्धे यद्वास्तु तद्वास्तु । हे वचोहर ! संदेशहर ! नोऽस्माकम् इदमेकं नोरेकं निःसंशयं वचो वचनं हर नय । युद्धं विनावयोः कर्तव्यस्य निर्णयो न भविष्यतीति निःसंशयं मे प्रत्युत्तरं नेयमिति भावः ॥१३॥ § २०) इत्यादिश्येति—इतीत्यम् आदिश्य आज्ञां दत्वा एनं २० भरतराजप्रेषितं दूतं संदेशहरं विसर्ज्य मुक्त्वा क्षोणिपालानां राज्ञां यः प्रकरसमूहस्तस्य मुकुटीनां मौलीनां

- ही कुम्हारके समान आचरण करता है, सो यदि वह अरोंके समूहसे युक्त चक्रके नष्ट करनेका कौतुक रखता है तो उससे जीवन—जलकी क्षति हो सकती है घटके नष्ट हो जानेपर उसमें जीवन—पानीकी स्थिति कैसे रह सकती है ? (पक्षमें यदि वह शत्रुदलके विनाशका कुतूहल रखता है) तो जीवनका—जिन्दगीका नाश हो जानेकी सम्भावना है—॥१२॥
- २५ § १८) स किलेति—वह भरत क्या है मानो सचमुच ही भरत—नाट्याचार्य है क्योंकि जिस प्रकार नाट्याचार्य मागधकलितराग—वन्दीजनोंमें रागको धारण करनेवाला है उसी प्रकार वह भी मागधकलितरागः—मागधनामक देवमें रागको करनेवाला है, जिस प्रकार नाट्याचार्य सरसमधुरकलयान्वितः—सरस और मधुरलयसे सहित होता है उसी प्रकार वह भी सरस और मधुर कलासे सहित है, जिस प्रकार नाट्याचार्य पटुगन्धर्व—चतुर ३० गवैर्योंसे सहित होता है उसी प्रकार वह भी पटुगन्धर्व—समर्थ घोड़ोंसे सहित है, और जिस प्रकार नाट्याचार्य प्रवीण—प्रकृष्ट वीणासे सहित होता है उसी प्रकार वह भी प्रवीण—निपुण है । इस तरह तुम्हारा भरत युद्धरूपी रंगभूमिमें मेरे साथ नृत्यको रचकर अपनी भरतता—नाट्याचार्यताको सफल करे । § १९) तत इति—इसलिए युद्धकी टक्करमें हम दोनोंके बीच जो हो जावे वही हो । हे संदेशहर ! तुम हमारा यही एक संशय रहित ३५ उत्तर ले जाओ ॥१३॥ § २०) इत्यादिश्येति—इस प्रकार आज्ञा देकर इस दूतको विदा करनेके बाद राजसमूहकी मुकुटोंकी कलंगियोंसे जिसके चरण टकरा रहे हैं तथा युद्ध करनेका

चञ्चत्सेनां समरकुतुकः प्रोल्लसद्रोमहर्षा

प्रस्थानाय प्रकटितमदामायतामादिदेश ॥१४॥

§ २१) मदकरिघटाबन्धे रङ्गचतुरङ्गमसंगतैः

प्रचलितबलैर्भेरीरावैर्विदारितदिङ्मुखैः ।

क्षितितलगलद्भूलोपालीविशोषितवारिधि-

भुजबलिमहिपालो भेजे भुवं समरोचिताम् ॥१५॥

§ २२) अथ दूतवचननिशमनकुपितभरतराजसमादिष्टा समुन्नतजयकेतनकलिततया संततसंपतन्मदधाराविराजिततया सिन्दूरपरागशृङ्गारिताङ्गतया रत्नमयखेटकघटितकुम्भस्थलतया च महामहीरुहमहितान् कटकनिकटविशङ्कटनिर्झरान् संध्याम्बुदचुम्बितान् अवलम्बितरविबिम्बान्, असंख्याताज्जङ्गमधराधरांस्तुलयद्भिर्गन्धसिन्धुरैर्जवविजितपवनैर्निजरय-

५

१०

कोटयाग्रभागेन संघटितावङ्घ्री चरणौ यस्य तथाभूतः, समरस्य रणस्य कुतुकं यस्य तथाभूतः अयं क्षितिपतिः बाहुबली प्रोल्लसद्रोमहर्षा शुम्भल्लोमहर्षा युद्धवार्तया रोमाञ्जितामित्यर्थः, प्रकटितमदं प्रकटितगवाम् आयतां दोर्षा चञ्चत्सेनां शोभमानपूतनां प्रस्थानाय प्रयाणाय आदिदेश आदिष्टवान् । मन्दाक्रान्ता छन्दः ॥१४॥

§ २१) मदेति—मदकरिघटाया मत्तमतङ्गजसमूहस्य बन्धो येषु तैः रङ्गचतुरङ्गमैरुच्चलदश्वैः संगतानि संयुक्तानि तैः प्रचलितबलैः प्रस्थितसैन्यैः विदारितानि दिङ्मुखानि यैस्तैः भेरीरावैः दुन्दुभिर्शब्दैः उपलक्षितः क्षितितलात्पृथिवीतलाद् गलन्त्यो निःसरन्त्यो या धूलोपास्यो रजःश्रेणयस्ताभिविशोषितो वारिधिर्येन तथाभूतः भुजबलिमहीपालो बाहुबलिनरेश्वरः समरोचितां रणाह्नीं भुवं भूमिं भेजे प्राप । हरिणो छन्दः ॥१५॥

१५

§ २२) अथेति—अथानन्तरं दूतवचनस्य निशमनेन श्रवणेन कुपितः क्रुद्धो यो भरतराजस्तेन समादिष्टा समाज्ञता षडङ्गपताकिनी षडङ्गसेना रणाङ्गणावतरणाय समराजिरावतरणाय प्रचचाल प्रचलति स्म । अथ कथंभूता सा षडङ्गपताकिनोत्याह—गन्धसिन्धुरैर्मत्तद्विपैः परीता व्याप्ता । कथंभूतैर्गन्धसिन्धुरैरित्याह—समुन्नतेन समुत्क्षिप्तेन जयकेतनेन विजयपताकया कलिततया सहिततया, संततं निरन्तरं संपतन्ती या मदधारा दानराजिस्तया विराजिततया शोभिततया, सिन्दूरपरागेण शृङ्गारितं शोभितमङ्गं येषां तेषां भावस्तया, रत्नमयखेटकेन रत्नमयावरणेन घटितं युक्तं कुम्भस्थलं गण्डस्थलं येषां तेषां भावस्तया च महामहीरुहमहितान् शोभितान्, कटकनिकटे मेखलाम्यर्णे विशङ्कटा विशाला निर्झरा येषां तान्, संध्याम्बुदैः सांध्यमेघैः चुम्बिता-

२०

जिसे कुतूहल है ऐसे इस राजा बाहुबलीने, जिसके रोमांच उठ रहे थे, जिसका बहुत भारी गर्व था तथा जिसका बहुत भारी परिमाण था ऐसी शोभायमान सेनाको प्रस्थान करनेके लिए आदेश दिया ॥१४॥ § २१) मदेति—मदोन्मत्त हाथियोंके समूहसे सहित, उछलते हुए घोड़ोंसे युक्त चलती हुई सेनाओं तथा दिशाओंको विदीर्ण करनेवाले भेरियोंके शब्दोंसे जो सहित था, एवं पृथिवीतलसे उठती हुई धूलिकीं पंक्तियोंसे जिसने समुद्रको सुखा दिया था ऐसा राजा बाहुबली युद्धके योग्य भूमिको प्राप्त हुआ ॥१५॥ § २२) अथेति—तदनन्तर दूतके वचन सुननेसे क्रोधको प्राप्त हुए भरतराजसे जिसे आज्ञा प्राप्त हुई थी ऐसी छह अंगोंसे युक्त सेना रणांगणमें उतरनेके लिए चल पड़ी । वह सेना उन हाथियोंसे सहित थी जो ऊपर फहराती हुई पताकासे सहित होने, निरन्तर पड़ती हुई मदधाराओंसे सुशोभित होने, सिन्दूरकी परागसे शरीरके शृंगारयुक्त होने तथा रत्ननिर्मित ढालसे गण्डस्थलके सहित होनेसे उन चलते-फिरते असंख्य पर्वतोंकी तुलना कर रहे थे, जो बड़े-बड़े वृक्षोंसे सुशोभित थे, जिनकी मेखलाओंके निकट बड़े-बड़े झरने पड़ रहे थे, जो सन्ध्याके लाल-लाल मेघोंसे चुम्बित थे

२५

३०

१५

निरीक्षणक्षणहोणान् हरिदश्वहरिताश्वान् खुरपुटघटितकुट्टिमप्रसूताभ्रलिङ्गजोभरे विलीनान्
विदधानैः क्रामद्भिरिव गगनतलं, कवलीकुर्वद्भिरिव मार्गायासम्, अतिक्रामद्भिरिवात्मोत्थितानि
रजांसि, तर्जयद्भिरिव हेषारवेण सक्थिजवसंजातसहचरप्रजवपवनम्, आपिबद्भिरिव मुखलग्न-
५ फेनपुञ्जकपटेन शात्रवयशोमण्डलं, तरङ्गैरिव बलजलनिधेः, मूर्तेरिव वेगैर्वाजिभिर्विजयलक्ष्मोवेणी-
वीररसैः, साकारैरिवोत्साहैः, रथकड्यासु विराजमाने रथिकैर्गगनतलविलसितैः सुरखचरैश्च
परीता षडङ्गपताकिनी रणाङ्गणावतरणाय प्रचचाल ।

§ २३) तदनु विनटद्वाजिब्राते प्रतापवशोत्थिते

रजसि जगतामान्ध्यं व्यातन्वतीव विजृम्भिते ।

- १० स्तान्, अवलम्बितं समाश्रितं रविबिम्बं सूर्यमण्डलं येषु तान्, असंख्यातानपरिमितान् जङ्गमधराधरान्
चलनशीलशैलान् तुलयद्भिरुपमितान्कुर्वद्भिः । वाजिभिर्वाहैः 'वाजिवाहार्गन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः' इत्यमरः,
परीता षडङ्गपताकिनी, अथ कथंभूतैर्वाहैरित्याह—जवेन वेगेन विजितः पराभूतः पवनो यैस्तैः, निजरयस्य
स्ववेगस्य निरीक्षणक्षणेऽवलोकनसमये होणा लज्जितास्तान्, हरिदश्वस्य सूर्यस्य हरिताश्वान् हरितवर्णवाहान्
खुरपुटैः शफपुटैः घटितैर्मयः समाहतेभ्यः कुट्टिमैर्मयो भूपुष्टैर्मयः प्रसूतो योऽभ्रलिङ्गजोभरो गगनचुम्बिधूलिनिकर-
१५ स्तस्मिन् विलीनान् अन्तर्हितान् विदधानैः कुर्वाणैरिव गगनतलं नभस्तलं क्रामद्भिः गच्छद्भिः, मार्गायासं
वर्त्मखेदं कवलीकुर्वद्भिर्ग्रासद्भिरिव, आत्मोत्थितानि स्वोत्थितानि रजांसि अतिक्रामद्भिरिव समुलङ्घयद्भिरिव,
सक्थिजवेन ऊरुवेगेन संजातः समुत्पन्नः सहचरः सहगमनो यो प्रजवपवनः प्रकृष्टवेगयुक्तवायुस्तं हेषारवेण
हेषाशब्देन तर्जयद्भिरिव संभर्त्सयद्भिरिव, मुखलग्नफेनपुञ्जस्य वदनसंलग्नमण्डोरपिण्डस्य कपटेन व्याजेन
शात्रवयशोमण्डलं शत्रुसंबन्धिकोतिपुञ्जं आपिबद्भिरिव, बलजलनिधेः सैन्यसागरस्य तरङ्गैरिव भङ्गैरिव,
२० मूर्तेः वेगे रयैरिव, विजयलक्ष्म्या विजयश्रिया वेणीदण्डायमानाः चूडादण्डायमाना याः कृपाणलताः खङ्गबल्लय-
स्ताभिः कलिताः करा हस्ता येषां तैस्तथाभूतैः पदातिभिः पत्तिभिः, संग्रामसमुद्रस्य समरसिन्धोः संतरणे
नाविकायमानास्तैः, सदेहबन्धैः सशरीरसंगैः वीररसैरिव, साकारैः समूर्तिभिः उत्साहैरिव, रथानां समूहा
रथकड्यास्तासु विराजमानैः शोभमानैः रथिकैः रथारोहैः, गगनतलविलसितैः नभस्तलशोभितैः सुरखचरैश्च
देवविद्याधरैश्च परीता व्याप्ता । § २३) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं व्याक्रान्तानि व्याप्तानि सर्वदिगन्तराणि

- २५ तथा जिनपर सूर्यका बिम्ब स्थित था । वह सेना ऐसे घोड़ोंसे युक्त थी जिन्होंने अपने वेगसे
पवनको जीत लिया था, जो अपने वेगके देखनेके समय लजाये हुए सूर्यके घोड़ोंको खुरपुटसे
ताडित पृथिवीतलसे उठती हुई गगनचुम्बी धूलिके समूहमें विलीन करते हुए के समान गगन-
तलमें आगे बढ़े जा रहे थे, जो मार्गके खेदको मानो ग्रस रहे थे, अपने द्वारा उठी हुई
धूलिको मानो लाँघ रहे थे, हिनहिनाहटके शब्दसे जाँघोंके वेगसे उत्पन्न तथा अपने साथ
३० चलनेवाली वेगशाली वायुको मानो डाँट ही दिखला रहे थे, जो मुखमें लगे हुए फेन समूहके
बहाने शत्रुओंके कीर्ति समूहको मानो पी ही रहे थे, जो सेनारूपी समुद्रकी तरंगोंके समान
जान पड़ते थे, तथा मूर्तिधारी वेगके समान मालूम होते थे । वह सेना ऐसे पैदल सैनिकोंसे
सहित थी जिनके हाथ विजयलक्ष्मीकी चोटीके समान आचरण करनेवाली खङ्गरूपी लताओं-
से सहित थे । वह सेना उन रथ-सवारोंसे भी व्याप्त थी जो संग्रामरूपी समुद्रको पार
३५ करनेके लिए नाविकके समान आचरण करते थे, जो शरीरधारी मानो वीररस ही थे, आकार-
सहित मानो उत्साह ही थे तथा रथोंके समूहमें सुशोभित थे । इनके सिवाय वह सेना
गगनतलमें सुशोभित देव और विद्याधरोंसे भी व्याप्त थी । § २३) तदन्विति—तदनन्तर

दिनकरसदृक्चक्रोद्योतेन मार्गमबूबुधत्

निधिपतिमहानीकं व्याक्रान्तसर्वदिगन्तरम् ॥१६॥

§ २४) ततश्च यावच्चक्रधरानीकं भुजबलिबलेन महाप्रलयसमये पूर्वपारावारः पश्चिम-
पारावारेणैव पटुगर्जनतर्जितदिशावशावल्लभं संगम्य युद्धाय संनद्धं तावदग्रेसरैः प्रज्ञावताम्,
अधोनेर्जनानुरागस्य, आवासैर्मन्त्रलक्ष्म्याः, आकरैः कार्यचातुर्यस्य, महत्तमैः सचिवैर्मुधा जनविनाश-
कारणं प्रविदारणं न युज्यते, युज्यते च युवयोर्यलक्ष्मीतुलारोहणं जलदृष्टिमुष्टिरणमिति बोधितौ
परितः पश्यत्सु सुरगगनचरेषु रणाङ्गणमवतीर्णौ तौ नरकुञ्जरी जङ्गमाविव निषधनीलाचलौ
चकासामासतुः ।

§ २५) तदा जयश्रीरुभयोः सकाशगतागतायासमनुव्रजन्तौ ।

तद्वयोद्भासितशाड्वलाशागतागतायासितगौरिवाभूत् ॥१७॥

निखिलकाष्ठान्तराणि येन तत् निधिपतिमहानीकं चक्रवर्तिविशालसैन्यं विनटद्वाजिघ्राते विनृत्यदश्वसमूहे
प्रतापवशोत्थिते तेजोवशसमुत्थापिते रजसि परागे जगतां भुवनानाम् आन्ध्यं अन्धतां व्यातन्वतीव कुर्वतीव
विजृम्भिते वृद्धिगते सति दिनकरसदृक् सूर्यसंनिभं यत् चक्रं चक्ररत्नं तस्योद्योतेन प्रकाशेन मार्गं पन्थानम्
अबूबुधत् जानाति स्म । हरिणीच्छन्दः ॥१६॥ § २४) ततश्चेति—ततश्च तदनन्तरं च यावत् चक्रधरानीकं
चक्रवर्तिसैन्यं भुजबलिबलेन बाहुबलिसैन्येन महाप्रलयसमये षष्ठकालान्तभाविमहाप्रलयकाले पूर्वपारावारः
पूर्वाग्निः पश्चिमपारावारेणैव पश्चिमाग्नियेनैव पटुगर्जनेन तर्जिता दिशावशावल्लभा दिग्गजा यस्मिन्कर्मणि
यथा स्यात्तथा संगम्य मिलित्वा युद्धाय संनद्धं तत्परं बभूव, तावत् प्रज्ञावतां बुद्धिमताम् अग्रेसरैः प्रधानैः,
जनानुरागस्य लोकप्रेम्णोऽधीनैरायत्तैः, मन्त्रलक्ष्म्या मन्त्रधिया आवासैः निवासस्थानभूतैः, कार्यचातुर्यस्य
विधिवैदग्ध्यस्य आकरैः खनिभिः महत्तमैः श्रेष्ठतमैः सचिवैरमात्यैः मुधा व्यर्थं जनविनाशकारणं जनक्षयकारणं
प्रविदारणं युद्धं 'युद्धमाधोधनं जन्मं प्रधनं प्रविदारणम्' इत्यमरः, न युज्यते युक्तं न भवति । युवयोः जलदृष्टि-
मुष्टिरणं जलरणं दृष्टिरणं मुष्टिरणं च जलक्ष्मीतुलारोहणं युज्यते च युक्तं च भवतीति बोधितौ विज्ञापितौ
सुरगगनचरेषु देवविद्याधरेषु पश्यत्सु सत्सु रणाङ्गणं समराजिरम् अवतीर्णौ तौ नरकुञ्जरी नरश्रेष्ठौ
जङ्गमौ गतिशीलौ निषधनीलाचलाविव चकासामासतुः शुशुमाते । § २५) तदेति—तदा तस्मिन्काले

समस्त दिशाओंके अन्तरालको व्याप्त करनेवाली चक्रवर्तीकी वह विशाल सेना, जिसमें
घोड़ोंके समूह नृत्य कर रहे थे, जो प्रतापके कारण उठी हुई थी, तथा जो जगत्को अन्धा
करनेके लिए ही मानो सब ओर फैल रही थी ऐसी धूलिमें सूर्यके समान चक्ररत्नके
प्रकाशसे मार्गको जान पाती थी ॥१६॥ § २४) ततश्चेति—तदनन्तर महाप्रलयके समय
पश्चिम समुद्रके साथ पूर्व समुद्रके समान, ज्योंही चक्रवर्तीकी सेना बाहुबलीकी सेनाके
साथ मिलकर तीव्र गर्जनासे दिग्गजोंको धौंस दिखाती हुई युद्धके लिए तैयार हुई त्योंही
बुद्धिमानोंमें अग्रेसर, जनानुरागके अधीन, मन्त्रलक्ष्मीके निवासभूत, तथा कार्यसम्बन्धी
चतुराईकी खान स्वरूप श्रेष्ठ मन्त्रियोंने जिनसे यह प्रार्थना की थी कि व्यर्थ ही जनक्षयका
कारण युद्ध करना युक्त नहीं है आप दोनोंके लिए तो जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध, और मुष्टियुद्धके
तीन युद्ध ही विजयलक्ष्मीके तुलारोहणके समान हैं अर्थात् आप दोनोंकी विजयका
निर्णय देनेके लिए युक्त हैं, ऐसे नरश्रेष्ठ भरत और बाहुबली सब ओर देव और विद्याधरोंके
देखते रहते रणाङ्गणमें अवतीर्ण हुए । उस समय वे चलते-फिरते निषधाचल और नीला-
चलके समान सुशोभित हो रहे थे । § २५) तदेति—उस समय दोनोंके पास जाने-आनेके

§ २६) दृष्टि धीरतरां निमेषरहितां व्यातन्वता दोर्बलि-

क्षोणीशेन जितेऽत्र दृष्टिसमरे पत्यौ निधीनां क्षणात् ।

उद्वेलस्य बलार्णवस्य विपुलं कोलाहलं वारयन्

पृथ्वीपालगणः कनीयसि जयश्रीभावमाघोषयत् ॥१८॥

५

§ २७) सरसीजलभागाढौ जलयुद्धमदोद्धतौ ।

दिग्गजाविव तौ दीर्घव्यात्युक्षामासतुर्भुजैः ॥१९॥

§ २८) तदा किल भुजबलियुवा जयश्रीदृढालिङ्गितनिजभुजवंशयुगलनिर्गलितमौक्तिक-
निकरैरथवा निजभुजनिर्दयालिङ्गितजयलक्ष्मीवक्षःस्थलश्रुटितोत्क्षिप्तहारमणिभिर्यद्वा बलोत्कृष्ट-
प्रवेष्टाप्रसादमधिरूढायाः पराक्रमलक्ष्म्या अट्टहासकान्तिलवेराहोस्विन्नखचन्द्रनिर्गलितसुधाशीकरैरिव

- १० उभयोर्भरतबाहुबलिनोः सकाशगतागतायासं समीपगमनागमनखेदं व्रजन्ती जयश्रीविजयलक्ष्मीः तटद्वये उद्धा-
सिताः शोभिता ये शाद्वला हरितघासास्तेषामाशया तुषण्या यद् गतागतं गमनागमनं तेनायासिता खेदं प्रापिता
गौरिव धेनुरिव अभूत् । उपमा । उपेन्द्रवज्राच्छन्दः ॥१७॥ § २९) दृष्टिमिति—अत्र दृष्टिसमरे दृष्टियुद्धे
निमेषरहितां पक्षमपातशून्यां धीरतरामतिधारां दृष्टि दृशं व्यातन्वता विस्तारयता दोर्बलिक्षोणीशेन बाहुबलिनर-
पालेन निधीनां पत्यौ चक्रवर्तिनि क्षणादल्पेनैव कालेन जिते पराजिते सति उद्वेलस्य कल्लोलितस्य बलार्णवस्य
- १५ सैन्यसागरस्य विपुलं महान्तं कोलाहलं वारयन् निषेधयन् पृथ्वीपालगणो राजसमूहः कनीयसि लघीयसि दोर्ब-
लिनीति यावत् जयश्रीभावं विजयलक्ष्म्यनुरागम् अधोषयत् घोषितं चकार । शार्दूलविक्रीडितम् ॥१८॥
§ २७) सरसीति—सरस्या जलं सरसीजलं कासारसलिलम् आगाढौ प्रविष्टौ जलयुद्धमदेन नीरसमरयवैणोद्धतौ
समुत्कटौ दिग्गजाविव काष्ठाकरिणाविव दीर्घरायतैः भुजैः व्यात्युक्षामासतुः जलोच्छालनं चक्रतुः ॥१९॥
§ २८) तदेति—तदा किल जलयुद्धकाले भुजबलियुवा बाहुबलियुवा जलच्छटाशीकरैः जलच्छटाम्बुकणैः
- २० चक्रधरम् अवाकिरत् अवक्षिप्तमकरोत् । अथ कथंभूतैर्जलच्छटाशीकरैरित्याह—जयश्रिया विजयलक्ष्म्या
दृढालिङ्गितात् निजभुजवंशयुगलात् स्वबाहुवेणुयुग्मात् गलितानि निःसृतानि यानि मौक्तिकानि तेषां निकराः
समूहास्तैः, अथवा निजभुजाभ्यां निर्दयं यथा स्यात्तघालिङ्गितं समाविलष्टं यद् जयलक्ष्म्या विजयश्रिया वक्षःस्थलं
तस्मादादौ श्रुतिताः पश्चादुत्क्षिप्ताः पतिता ये हारमणयस्तैः, यद्वा बलोत्कृष्टः पराक्रमश्रेष्ठो यः प्रवेष्टो भुज एव
प्रसादो भवनं तम् अधिरूढाया अधिष्ठितायाः पराक्रमलक्ष्म्या वीर्यश्रिया अट्टहासस्य कान्तिलवा दीप्तिकणास्तैः,
- २५ खेदका अनुभव करती हुई विजयलक्ष्मी दोनों तटोंपर सुशोभित हरी घासकी आशासे जाने-
आनेके द्वारा खेदको प्राप्त गायके समान हुई थी ॥१७॥ § २६) दृष्टिमिति—इस दृष्टियुद्धमें
टिमकाररहित अत्यन्त धीरदृष्टिको विस्तृत करनेवाले राजा बाहुबलीके द्वारा चक्रवर्ती क्षण
भरमें जीत लिये गये अतः लहराते हुए सेनारूपी समुद्रके बहुत भारी कोलाहलको शान्त
करते हुए राजाओंके समूहने छोटे भाई बाहुबलीको विजयलक्ष्मी प्राप्त हुई है यह घोषणा की
- ३० ॥१८॥ § २७) सरसीति—तदनन्तर जलयुद्धके मदसे उद्धत हुए दोनों दिग्गजोंके समान
तालाबके जलमें प्रविष्ट हुए और लम्बी-लम्बी भुजाओंसे एक दूसरेपर जल उछालने लगे
॥१९॥ § २८) तदेति—उस समय तरुण बाहुबली जलधाराओंके उन जलकणोंसे चक्रवर्तीको
व्याप्त करने लगे जो विजयलक्ष्मीके द्वारा अत्यन्त दृढ़ रूपसे आलिङ्गित अपने भुजरूपी
बाँसोंके युगलसे निकले हुए मोतियोंके समूहके समान जान पड़ते थे, अथवा अपनी
- ३५ भुजाओंके द्वारा निर्दयतापूर्वक आलिङ्गित विजयलक्ष्मीके वक्षःस्थलसे दूट कर बिखरे हुए
हारके मणि ही हों, अथवा बलसे उत्कृष्ट भुजरूप महलपर आरूढ पराक्रमरूपी लक्ष्मीके
अट्टहासकी कान्तिके कण ही हों, अथवा नखरूपी चन्द्रमासे निकली हुई सुधाके कणोंके

विराजमानैः, सरभसमुदस्तभुजयुगरयजनितपटुपवनास्फालननिर्लोलस्वलोकतरङ्गिणीकल्लोल-
शीकरनिकरद्विगुणितैर्निलिम्पकरमुक्तकल्पतरुकुसुमनिचयेन मधुकरविसरानुरोधविरहव्यञ्जितभेदे-
जलच्छटाशीकरैश्चक्रधरमवाकितम् ।

§ २९) बहवः सलिलासारा भरतेश्वरवक्षसि ।

निषधाचलसङ्गिन्यो निम्नगा इव रेजिरे ॥२०॥

§ ३०) भरतेशकरोन्मुक्ताम्भोधारा दोर्बलीशिनः ।

प्रांशोरप्राप्य दूरेण प्रापत्तन्मुखसंनिधौ ॥२१॥

§ ३१) नभःस्थलमुपेयुषां दिविषदां तदा कौतुकात्

करैः कुसुमसंचयं जयिनि वर्षतां हर्षतः ।

करोद्धतजलच्छटाविमलशीकराडम्बरैः

प्रतिप्रसववर्षविभ्रममवाप नो दोर्बली ॥२२॥

आहोस्विदयवा नखचन्द्रेभ्यो नखरेन्दुभ्यो निर्गलिता निष्पतिता या सुधा पीयूषं तस्याः शीकरैरिव कर्णैरिव
विराजमानैः शोभमानैः, सरभसं सवेगं समुदस्तस्य समुत्क्षिप्तस्य भुजयुगस्य बाहुयुगलस्य रयेण वेगेन जनितः
समुत्पन्नो यः पटुपवनस्तीव्रसमीरस्तेन यदास्फालनं तेन निर्लोलालातिचपला या स्वलोकतरङ्गिणी मन्दाकिनी
तस्याः कल्लोलास्तरङ्गास्तेषां शीकरनिकरेण जलकणकलायेन द्विगुणितस्तैः, निलिम्पकरमुक्तानि देवहस्त-
मुक्तानि यानि कल्पतरुकुसुमानि कल्पानोकहुपुष्पाणि तेषां निचयेन समूहेन मधुकरविसरस्य भ्रमरसमूहस्य
योऽनुरोधोऽनुगमनं तस्य विरहेणाभावेन व्यञ्जितः प्रकटितो भेदो येषां तैः जलच्छटाशीकरैः जलधाराभ्रुकर्णैः ।
§ २९) बहव इति—भरतेश्वरवक्षसि निषीश्वरवक्षस्थले पतिताः बहवः सलिलासारा जलसंपाताः
निषधाचलसङ्गिन्यो निषधगिरिसङ्गयुक्ता निम्नगा इव नद्य इव रेजिरे शुशुभिरे ॥२०॥ § ३०) भरतेशेति—
भरतेशस्य निषीश्वरस्य कराम्भ्यां हस्ताभ्यामुन्मुक्ता त्यक्ता अम्भोधारा जलधारा प्रांशोः समुद्रतस्य दोर्बली-
शिनो बाहुबलिनरेन्द्रस्य मुखसंनिधौ मुखसमीपे अप्राप्य दूरेण प्रापत्तत् पतति स्म ॥२१॥ § ३१) नभःस्थल-
मिति—तदा तस्मिन्काले कौतुकात् नभःस्थलगगनस्थलम् उपेयुषां प्राप्तवतां दिविषदां, देवानां जयिनि
विजयशालिनि जने हर्षतः करैः कुसुमसंचयं पुष्पसमूहं वर्षतां सतां, कराम्भ्यामुद्धतास्ताडिता या जलच्छटास्तासां
विमलशीकराणां निर्मलजलकणानामाडम्बरास्तैः दोर्बली बाहुबली प्रतिप्रसववर्षविभ्रमं प्रतिकुसुमवृष्टिसंदेहं

समान सुशोभित हो रहे थे । जो शीघ्रतासे ऊपर उठायें हुए भुजयुगलके वेगसे उत्पन्न
प्रचण्ड पवनके आस्फालनसे चंचल आकाशगंगाकी लहरोंके जलकणोंसे दूने हो गये
थे तथा देवोंके हाथोंसे छोड़े हुए कल्पवृक्षोंके पुष्पसमूहसे भ्रमरसमूहके अनुगमनका
अभाव होनेसे जिनमें भेद सिद्ध हो रहा था । § २९) बहव इति—भरतेश्वरके वक्षः-
स्थलपर पड़ती हुई बहुत-सी जलकी धाराएँ निषधाचलपर पड़ती हुई नदियोंके समान
सुशोभित हो रही थीं ॥२०॥ § ३०) भरतेशेति—भरत चक्रवर्तीके हाथोंसे छोड़ी हुई जलकी
धारा ऊँचे बाहुबलीके मुखके पास तक न पहुँचकर दूरसे ही नीचे गिर जाती थी ॥२१॥
§ ३१) नभःस्थलमिति—उस समय कुतूहलवश आकाशमें इकट्ठे हुए देव यद्यपि हर्षवश
विजयी बाहुबलीपर हाथोंसे पुष्पसमूहकी वर्षा करते थे तो भी हाथोंसे ऊपरकी ओर उछाली
हुई जलधाराओंके निर्मल छींटोंके विस्तारसे वे अपने ऊपर होनेवाली पुष्पवर्णके विभ्रमको

§ ३२) भुजरयपवनाहृतद्युसिन्धुप्रचुरजलामलशोकरास्तथा ताः ।

भुजबलिभुजचोदिताम्बुधारा द्युधरण्योरनुचक्रुरम्बुकेलिम् ॥२३॥

§ ३३) तदनु पुनर्भुजबलिकुमारजयोद्धोषणमुखरितदिगन्तरे तत्र समराजिरे नियुद्धाय सन्नद्धौ पञ्चाननवञ्चनाचुञ्चुपराक्रमौ तौ वीराग्रसरो गामवतेरतुः ।

५ § ३४) भुजयन्त्रनियन्त्रणावशेन क्षणसंरुद्धपरस्परप्रयत्नौ ।

सुरवारमनोहरं व्यधत्तां नरवीरौ निपुणं नियुद्धशिल्पम् ॥२४॥

§ ३५) ततश्च जगदेकवीरेण भुजबलिकुमारेण दिवि भ्राम्यमाणो मणिमुकुटकान्ति-
कल्लोलवेल्लितगगनतलः क्षणमालातचक्रलीलां भजमानो नीलाचलशिखरसंगिनं गाङ्गेयगिरिं
तुलयन् भरतराजः बलकोलाहलमसहमानतया क्रोधान्धस्तस्मिन्कनीयसि चक्रं प्रयोजयामास ।

- १० नो अवाप नो प्रापत् । पृथ्वीछन्दः ॥२२॥ § ३२) भुजेति—तथा तेन प्रकारेण भुजरयपवनेन बाहुवेगवायुना
हतास्ताडिता द्युसिन्धोर्विद्यद्गङ्गायाः प्रचुराः प्रभूताः जलामलशोकरा निर्मलनोरकणा यासु ताः भुजबलिना
बाहुबलिना चोदिताः प्रेरिता या अम्बुधारा जलधारास्ताः द्युधरिण्योराकाशपृथिव्योः अम्बुकेलिं जलक्रीडाम्
अनुचक्रुरनुकुर्वन्ति स्म । पृथ्वीछन्दः ॥२३॥ § ३३) तदन्विति—तदनु तदनन्तरं पुनः भूयोऽपि
भुजबलिकुमारस्य जयोद्धोषणेन मुखरितानि वाचालितानि दिगन्तराणि यस्मिन्स्थाभूते समराजिरे रणाङ्गणे
१५ नियुद्धाय बाहुयुद्धाय सन्नद्धौ तत्परी—पञ्चाननवञ्चनाया मृगेन्द्रतिरस्कारेण विसृतिं पञ्चाननवञ्चना-
चुञ्चुस्तथाभूतः पराक्रमो येषां तथाभूतौ तौ वीराग्रसरो वीरशिरोमणी गां युद्धयोग्यभूमिम् अवतेरतुः ।
§ ३४) भुजेति—भुजयन्त्रस्य बाहुयन्त्रस्य नियन्त्रणावशेन नियमननिष्पत्तेन क्षणं संरुद्धो निरुद्धः परस्पर-
प्रयत्नोऽन्योन्यप्रयासो ययोस्तथाभूतौ तौ नरवीरौ नरसुभटौ सुरवारमनोहरं देवसमूहचेतोहरं निपुणं प्रवीणं
नियुद्धशिल्पं बाहुयुद्धकौशलं व्यधत्तां चक्रतुः ॥२४॥ § ३५) ततश्चेति—मणिमुकुटकान्तिकल्लोलं रत्नमय-
२० मौलिकान्तितरङ्गवेल्लितं व्याप्तं गगनतलं यस्य तथाभूतः । गाङ्गेयगिरिं सुवर्णशैलं सुमेरुमित्यर्थः । शेषं

प्राप्त नहीं हो रहे थे ॥२२॥ § ३२) भुजरयेति—भुजाओंके वेगसम्बन्धी पवनसे जिनमें
आकाशगंगाके बहुत भारी जलके निर्मल कण ताडित हो रहे थे ऐसी बाहुबलीकी मुजाओंसे
प्रेरित जलधाराएँ आकाश और पृथिवीके बीच होनेवाली जलक्रीड़ाका अनुकरण कर
रही थीं ॥२३॥ § ३३) तदन्विति—तदनन्तर उस रणांगणके दिगन्तर जब फिरसे बाहुबली
२५ कुमारकी जयघोषणासे मुखरित हो उठे तब बाहुयुद्धके लिए तैयार हुए, सिंहको तिरस्कृत
करनेवाले पराक्रमके धारक दोनों वीर शिरोमणि पृथिवीपर अवतीर्ण हुए—मैदानमें आये ।
§ ३४) भुजेति—भुजयन्त्रकी नियन्त्रणाके वशसे जिनका परस्परका प्रयत्न क्षणभरके लिए
रुक गया था ऐसे उन दोनों नरसुभटोंने देवसमूहके मनको हरनेवाला, चातुर्यपूर्ण, बाहुयुद्ध-
सम्बन्धी कौशल प्रकट किया ॥२४॥ § ३५) ततश्चेति—तदनन्तर जगत्के अद्वितीय वीर
३० बाहुबली कुमारके द्वारा जो आकाशमें घुमाये जा रहे थे, मणिमय मुकुटकी कान्तिकी
परम्परासे जिन्होंने आकाशतलको व्याप्त कर रखा था, जो क्षणभरके लिए आलातचक्रकी
शोभाको प्राप्त हो रहे थे, जो नीलाचलके शिखरपर स्थित सुमेरुपर्वतकी तुलना कर रहे थे,
तथा सेनाके कोलाहलको सहन न कर सकनेके कारण जो क्रोधसे अन्धे हो रहे थे ऐसे

§ ३६) अभ्यर्णमेत्य तच्चक्रमथ कृत्वा प्रदक्षिणम् ।

अवध्यस्यास्य पर्याप्तं तस्थौ मन्दोकृतातपम् ॥२५॥

§ ३७) तदानीमहो धिक् साहसं कृतमिति भरतनिन्दामुखरे तस्मिन् रणाजिरे वीराग्रेसरः करेण चक्रधरं तुल्यन्तवतार्यं नरपालकुलकलितस्तुतिमालः सकलनृपवरिष्ठेन ज्येष्ठेन राज्यानु-
रागवशेन विहितं गहितमनुसंधाय परिकलितविषयवैराग्यस्तत्कालोचितैर्मधुरकर्कशैर्वचनैर्ज्यायस-
श्चित्ताह्लादं चिरं कुर्वाणो महाबलिनि निजनन्दने निक्षिप्तराज्यभारस्त्रिभुवनगुरुं निकषा दीक्षा-
मासाद्य वत्सरानशनावसाने भरतादिभिरचितः केवलाख्यपरंज्योतिराससाद ।

§ ३८) जेता समस्तहरितां पाता सर्वमहीशिनाम् ।

पुरं साकेतमुत्केतुं प्राविक्षद्भरतेश्वरः ॥२६॥

सुगमम् । § ३६) अभ्यर्णमिति—अथानन्तरं तत् चक्रवर्तिचालितं तत् चक्रं न हन्तुं योग्योऽवध्यस्तस्य अस्य
बाहुबलिनः, अभ्यर्णं निकटम् एव प्राप्य प्रदक्षिणं परिक्रमणं कृत्वा पर्याप्तमत्यधिकं मन्दोकृतोऽल्पीभूत आतपो
यस्य तथाभूतं सत् तस्थौ ॥२५॥ § ३७) तदानीमिति—तदानीं चक्रप्रयोगवेलायाम्, 'अहो आश्चर्यम्, धिक्
धिगस्तु, साहसं कृतं भ्रातृघातरूपमयोग्यं साहसं विहितम्' इतीत्यं भरतनिन्दया भरतापवादेन मुखरे बाचाले
तस्मिन् रणाजिरे समराङ्गणे सति, वीराग्रेसरो वीरशिरोमणिः बाहुबली करेण हस्तेन चक्रधरं भरतं तुल्यन्
हस्ते धारयन्, अवतार्यं भूमाववस्थाप्य नरपालकुलेन राजसमूहेन कलिता कृता स्तुतिमाला यस्य तथाभूतः,
सकलनृपवरिष्ठेन निखिलनरेन्द्रश्रेष्ठेन ज्येष्ठेन अग्रजेन राज्यानुरागवशेन राज्यप्रीतिपरवशेन सत्ता विहितं
कृतं गहितं निन्दितम् अनुसंधाय विचार्य परिकलितं प्राप्तं विषयेषु वैराग्यं यस्य तथाभूतः तत्कालोचित-
स्तदवसरयोग्यैः मधुराणि च तानि कर्कशानि चेति मधुरकर्कशानि तैः तथाभूतैर्वचनैः जायसोऽग्रजस्य
चित्ताह्लादं मानसामोदं कुर्वाणो विदधानः महाबलिनि तन्नामधेये निजनन्दने स्वमुते निक्षिप्तो राज्यभारो येन
तथाभूतः, त्रिभुवनगुरुं वृषभजिनेन्द्रं निकषा तस्य समीपे 'अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि'
इति द्वितीया, दीक्षां प्रज्ज्याम् आसाद्य प्राप्य, वत्सरानशनावसाने वर्षप्रमितोपवाससमाप्तो भरतादिभिः
अचितः पूजितः सन् केवलाख्यपरंज्योतिः केवलज्ञानाभिधानोत्कृष्टज्योतिः आससाद प्राप । § ३८) जेतैति—
समस्तहरितां निखिलकाष्ठानां जेता, सर्वमहीशिनां निखिलनरेन्द्राणां पाता रक्षकः भरतेश्वरः उत्तिष्ठाः केतवो

भरतराजने उस छोटे भाई बाहुबलीपर चक्र चला दिया । § ३६) अभ्यर्णमिति—तदनन्तर
वह चक्र, वध करनेके अयोग्य इस बाहुबलीके निकट आकर तथा प्रदक्षिणा देकर खड़ा हो
गया । उस समय उसका तेज अत्यन्त मन्द पड़ गया था ॥२५॥ § ३७) तदानीमिति—
उस समय जब युद्धका मैदान 'अहो धिक्कार हो, बहुत ही साहस किया' इस प्रकारकी
भरतकी निन्दासे गूँज उठा तब वीर शिरोमणि बाहुबलीने हाथसे चक्रवर्तिको तोलते हुए
नीचे उतारा । उसी समय राजाओंके समूह जिसकी स्तुति कर रहे थे, समस्त राजाओंमें
श्रेष्ठ बड़े भाईने राज्यसम्बन्धी अनुरागके वशोभूत हो निन्दित कार्य किया है ऐसा विचार
कर जिसे विषयोंमें वैराग्य उत्पन्न हो गया था, जो उस समयके योग्य मधुर तथा कठोर
वचनोंके द्वारा बड़े भाईके चित्तमें चिरकालके लिए हर्ष उत्पन्न कर रहा था ऐसे बाहुबलीने
महाबली नामक अपने पुत्रपर राज्यका भार सौंप त्रिभुवनगुरु—वृषभ जिनेन्द्रके निकट
दीक्षा लेकर एक वर्षका अनशन व्रत धारण किया । और उसकी समाप्तिपर भरतादि
राजाओंके द्वारा पूजित हो केवलज्ञान नामकी उत्कृष्ट ज्योतिको प्राप्त किया । § ३८) जेतैति—
समस्त दिशाओंके जीतनेवाले तथा समस्त राजाओंकी रक्षा करनेवाले भरतेश्वरने

§ ३९) नृपास्तथा मागधमुख्यलेखा गङ्गादितीर्थाम्बुनिरुद्धकुम्भैः ।
तमभ्यषिञ्चन्भरताधिराजमानन्दभेरीरवपूरिताशाः ॥२७॥

§ ४०) यस्याज्ञा नृपलेखवर्गमुकुटेषूद्दाममालायते
यत्कीर्तिर्विमला दिशाम्बुजदृशां हेलालुकूलायते ।

यत्तेजश्च दिशवधूकुचतटे काश्मीरपङ्कजायते
सोऽयं श्रीभरताधिपो निधिपतिः शास्ति स्म विश्वभराम् ॥२८॥

§ ४१) सुभद्रां भद्राङ्गीं नयनजितनीलोत्पलरुचिं
समालिङ्गन्मोदादतिशयितमानन्दमभजत् ।

मुखं यस्याश्चन्द्रो वचनमपि पीयूषमपरं

कचालिभृङ्गालिर्घनकुचयुगं चक्रमिथुनम् ॥२९॥

§ ४२) अथ कदाचिदनगाराणां निःस्पृहतया सागारानणुव्रतधरान्धनधान्यादिभिस्तर्पयितु-

यस्मिंस्तत् उत्तमिपताकं साकेतं पुरम् अयोध्यानगरं प्राविशत् प्रविवेश ॥२६॥ § ३९) नृपा इति—नृपा-
राजानः तथा मागधमुख्यलेखा मागधप्रमुखदेवाः आनन्दभेरिणां रवैः पूरिता आशा यैस्तथाभूता हर्षदुन्दुभि-
शब्दसंभरितदिशाः सन्तः गङ्गादितीर्थानामम्बुभिर्जलैर्निरुद्धाः संभृता ये कुम्भास्तैः तं पूर्वोक्तं भरताधिराजं

१५ भरतचक्रवर्तिनम् अम्भषिञ्चन् ॥ उपजातिः ॥२७॥ § ४०) यस्येति—यस्य भरताधिपस्य आज्ञा नृपलेख-
वर्गाणां नरेन्द्रदेवेन्द्रसमूहानां मुकुटेषु मौलिषु उद्दाममालायते उत्कृष्टस्त्रिवाचरति, विमला निर्मला यत्कीर्तिः
यदीयसमज्या दिशाम्बुजदृशां काष्ठाकामिनीनां हेलालुकूलायते क्रीडावस्त्रायते, यत्तेजश्च यदीयप्रतापश्च
दिशवधूकुचतटे आशास्त्रीस्तनतोरे काश्मीरपङ्कजायते कुङ्कुमद्रवायते सोऽयं निधिपतिर्निधोद्वरः श्रीभरताधिपः
चक्रवर्ती विश्वभराम् शास्ति स्म पालयामास । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । उपमालंकारः ॥२८॥ § ४१) सुभ-

२० द्रामिति—नयनाभ्यां जिता नीलोत्पलरुचिर्नीलारविन्दकान्तिर्यथा तां भद्राङ्गीं मङ्गलशरीरां सुभद्रां तन्नाम-
वल्गुभां मोदाद् हर्षात् आलिङ्गन् समालिङ्गन् भरताधिपः अतिशयितमत्यधिकम् आनन्दं हर्षम् अभजत् ।
यस्याः सुभद्राया मुखं चन्द्रो विधुः, वचनमपि अपरं विभिन्नं पीयूषममृतं, कचालिः केशपङ्क्तिः भृङ्गालिः
भ्रमरपङ्क्तिः घनकुचयुगं पीवरपयोधरयुगलं चक्रमिथुनं रथाङ्गयुगलं बभूवेति शेषः । शिखरिणीछन्दः ॥३०॥

जिसपर पताकाएँ फहरायी जा रही थीं ऐसे अयोध्यानगरमें प्रवेश किया ॥२६॥ § ३९) नृपा

२५ इति—जिन्होंने आनन्द भेरियोंके शब्दसे दिशाओंको भर दिया था ऐसे राजाओं
तथा मागध आदि देवोंने गंगा आदि तीर्थोंके जलसे भरे हुए कलशोंके द्वारा उन भरते-
श्वरका अभिषेक किया ॥२७॥ § ४०) यस्येति—जिसकी आज्ञा राजाओं तथा देवसमूहके
मुकुटोंपर उत्कृष्ट मालाके समान आचरण करती है, जिसकी निर्मल कीर्ति दिशारूपी
स्त्रियोंके क्रीडावस्त्रके समान जान पड़ती है, और जिसका प्रताप दिशारूपी स्त्रियोंके

१० कुचतटपर केशरके घोलके समान आचरण करता है उस निधियोंके स्वामी भरतेश्वरने
पृथिवीका शासन किया ॥२८॥ § ४१) सुभद्रामिति—जिसका मुख चन्द्रमा था, जिसका
वचन भी दूसरा अमृत था, जिसका केशपङ्क्ति भ्रमरावली थी तथा जिसके स्थूल स्तनोंका
युगल चक्रवाक पक्षियोंका युगल था, उस मङ्गलमय शरीरसे युक्त एवं नेत्रोंसे नील-
कमलकी कान्तिको जीतनेवाली सुभद्राका हर्षसे आलिङ्गन करता हुआ भरतेश्वर अत्यधिक

१५ आनन्दको प्राप्त हुआ था ॥२९॥ § ४२) अथेति—तदनन्तर राजाधिराज भरतने किसी
समय विचार किया कि मुनि तो निःस्पृह होनेसे कुछ लेते नहीं अतः अणुव्रतोंके धारक

मना राजराजो हरिताङ्कुरपुष्पफलादिभिः कृतोपहारे नृपमन्दिराराजिरे प्रवेशाप्रवेशाभ्यां पौरजान-
पदानां व्रताव्रते विविच्य निश्चित्य च तन्निमित्तमापृष्टानां तत्राप्रविष्टानां प्रतिवचनेन सादरं
तानिमान् दृढव्रतानभिनन्द्य संयोज्य च पद्मनिधिर्गृहीतैर्ब्रह्मसूत्रैः, संपूज्य च दानमानादिभिरुपासक-
सूत्रप्रतिपादितानि इज्यावार्तादत्तिस्वाध्यायसंयमतपोरूपाणि षट्कर्मण्युपाधानप्रीतिसुप्रीतिवृत्ति-
मोदप्रियोद्भवनामकर्मबहिर्यानिषद्यान्तप्राशनव्युष्टिकेशवापलिपिसंख्यानसंग्रहोपनयनव्रतचर्याव्रता - ९
वतरणविवाहवर्णलाभकुलचर्यागृहीशित्वप्रशान्तिगृहत्यागदीक्षाद्यजिनरूपतामौनाध्ययनवृत्तितोर्थकर-
त्वभावनागुरुस्थानाभ्युपगमगणोपग्रहणस्वगुरुस्थानसंक्रान्तिनिःसङ्गत्वात्मभावनायोगनिर्वाणसंप्राप्ति -
योगनिर्वाणसाधनेन्द्रोपपादाभिषेकविधिदानसुखोदयेन्द्रत्यागावतारहिरण्योत्कृष्टजन्मतामन्दराभिषेक-
गुरुपूजोपलम्भनयौवराज्यस्वराज्यचक्रलाभदिग्विजयचक्राभिषेकसाम्राज्यपरिनिष्क्रमणयोगसन्महार्हा -
न्त्यश्रीविहारयोगत्यागाग्रनिर्वृतिरूपस्त्रिपञ्चाशद्गर्भान्वयक्रियास्तथा-अवतारवृत्तलाभस्थानलाभ - १०
गणग्रहणपूजाराध्यपुण्ययज्ञदृढचर्योपयोगित्वपूर्वोक्तोपनयनादिरूपा अष्टचत्वारिंशद्दीक्षान्वयक्रियाः,
सज्जातिसद्गृहित्वपारिव्राज्यसुरेन्द्रत्वसाम्राज्यपरमार्हन्त्यपरमनिर्वाणरूपाः सप्तकर्त्रन्वयक्रियास्तथा-
तिबालविद्याकुलावधिवर्गोत्तमत्वपात्रत्वसृष्ट्यधिकारव्यवहारेशित्वावध्यत्वमानार्हत्वादण्डत्वप्रजा -

गृहस्थोंको धन-धान्य आदिके द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए। मनमें ऐसा विचार कर उन्होंने
गृहस्थोंके व्रत और अव्रतकी परीक्षा करनेके लिए राजमन्दिरके अंगणको हरे अंकुर पुष्प १५
तथा फल आदिसे सजा दिया। ऐसे सजे हुए अंगणमें जो प्रवेश करेंगे वे अव्रती और जो
प्रवेश नहीं करेंगे वे व्रती, इस तरह उनके भेद करनेका निश्चय किया। निश्चयानुसार
राजमन्दिरके अंगणको उन्होंने उक्त प्रकारसे सजाकर नगरवासी तथा देशवासी लोगोंको
आमन्त्रित किया। कुछ लोगोंने उक्त प्रकारसे सजे हुए आँगनमें प्रवेश नहीं किया जब उनसे
प्रवेश न करनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने जो उत्तर दिया उससे भरतेश्वरने उन्हें २०
अपने व्रतमें दृढ़ रहनेवाला समझ बड़े आदरके साथ उनका अभिनन्दन किया तथा उन्हें
पद्मनिधिसे प्राप्त ब्रह्मसूत्र—यज्ञोपवीतसे युक्त किया, दान-मान आदिके द्वारा उनकी पूजा
की तथा उन्हें उपासकाध्ययन सूत्रमें प्रतिपादित इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और
तप इन छह कर्मोंका तथा आघात, प्रीति, सुप्रीति, वृत्ति, मोद, प्रियोद्भव, नामकर्म, बहिर्यानि, २५
निषद्या, अन्नप्राशन, व्युष्टि, केशवाप, लिपिसंख्यान, संग्रह, उपनयन, व्रतचर्या, व्रतावतरण,
विवाह, वर्णलाभ, कुलचर्या, गृहीशित्व, प्रशान्ति, गृहत्याग, दीक्षाद्य, जिनरूपता, मौनाध्य-
यनवृत्ति, तीर्थकरत्वभावना, गुरुस्थानाभ्युपगम, गणोपग्रहण, स्वगुरुस्थानसंक्रान्ति,
निःसङ्गत्वात्मभावना, योगनिर्वाणसम्प्राप्ति, योगनिर्वाणसाधन, इन्द्रोपपाद, अभिषेक,
विधिदान, सुखोदय, इन्द्रत्याग, अवतार, हिरण्योत्कृष्टजन्मता, मन्दराभिषेक, गुरुपूजोप-
लम्भन, यौवराज्य, स्वराज्य, चक्रलाभ, दिग्विजय, चक्राभिषेक, साम्राज्य, परिनिष्क्रमण, ३०
योगसन्मह, आर्हन्त्यश्री, विहार, योगत्याग और अग्रनिर्वृति रूप त्रेपन गर्भान्वय
क्रियाओंका, तथा अवतार, वृत्तलाभ, स्थानलाभ, गणग्रह, पूजाराध्य, पुण्ययज्ञ, दृढचर्या
और उपयोगित्व तथा पहले कही हुई उपनयन आदि चालीस इस प्रकार अड़तालीस
दीक्षान्वय क्रियाओंका, सज्जाति, सद्गृहीत्व, पारिव्राज्य, सुरेन्द्रत्व, साम्राज्य, परमार्हन्त्य
और परम निर्वाणरूप सात कर्मान्वय क्रियाओंका, तथा अतिबाल, विद्याकुलावधि, ३५
वर्गोत्तमत्व, पात्रत्व, सृष्ट्यधिकार, व्यवहारेशित्व, अवध्यत्व, मानार्हत्व, अण्डज्यत्व और

संबन्धान्तरस्वरूपान्दशाधिकारान् श्रुतिस्मृतिपुरावृत्तमन्त्रक्रियादेवतालिङ्गकामान्न विषयशुद्धिदशकं पक्षशुद्धिचर्याशुद्धिसाधनशुद्धिरूपशुद्धित्रयं च सविस्तरमुपदिश्येवमुवाच ।

§ ४३) पूर्वोक्तकर्मनिर्माणकर्मठा ये समाहृताः ।

ते वर्णोत्तमभूदेवदेवब्राह्मणशब्दितैः ॥३०॥

९ § ४४) निस्तारको ग्रामपतिमानार्हो लोकपूजितः ।

इत्यन्वर्थेनाभिश्च जोषुष्यन्ते महोत्तले ॥३१॥

§ ४५) इति भरतनरेन्द्रप्राप्तसंस्कारयोगा

व्रतनियमगरिष्ठाः श्रीश्रुताम्भोधिनिष्ठाः ।

जिनपतिचरणाम्भोजातलोलम्बलीला

१० जगति बहुमतास्ते ब्राह्मणाः ख्यातिमीयुः ॥३२॥

§ ४६) अथ कदाचन चक्रधरः कांश्चिदद्भुतदर्शनान्स्वप्नानवलोक्य किञ्चिदुद्विग्नः स्वान्तेन कामपि चिन्तां गाहमानः कथंचित्फलानि जानानोऽपि दृढतरं तेषां निश्चयाय भगवदास्थानं प्रति प्रस्थितः, सेनानुयायैर्मुकुटबद्धैः परिष्कृतपार्श्वभागो दूरादेव भगवदास्थानभूमिं दृष्ट्वा नत्वा च गन्धकुटीमध्ये विलसन्तं देवदानवादिसेवितं भगवदर्हन्तमवन्दत ।

१५ § ४२) अथेति—हिन्दोटीका द्रष्टव्या । § ४३) पूर्वोक्तेति—ये पूर्वोक्तानां प्रागुदितानां कर्मणां निर्माणे करणे कर्मठादक्षाः सन्ति वर्णोत्तम-भूदेव-देवब्राह्मणेत्यशब्दितैः समाहृताः समुच्चरिताः ॥३०॥ § ४४) निस्तारक इति—सुगमम् ॥३१॥ § ४५) इतीति—इतोत्थं भरतनरेन्द्राग्निधिपतेः प्राप्तः संस्काराणां योगो येषां ते, व्रतनियमैर्गरिष्ठाः श्रेष्ठतराः, श्रीश्रुताम्भोधि निष्ठा येषां ते, जिनपतिचरणाम्भोजा तयोः जिनराजपादाब्जयोल्लम्बलीला भ्रमरलीला येषां तथाभूताः ते ब्राह्मणा भूदेवा जगति भुवने बहुमताः २० प्राप्तबहुसन्मानाः सन्तः ख्यातिं प्रसिद्धिम् ईयुः प्रापुः । मालिनीछन्दः ॥३२॥ § ४६) अथेति—सुगमम् ।

प्रजासम्बन्धान्तरस्वरूप दश अधिकारोंका श्रुति, स्मृति, पुरावृत्त, मन्त्र, क्रिया, देवता, लिंग, काम, अन्न और विषय इन दश प्रकारकी शुद्धियोंका और पक्षशुद्धि, चर्याशुद्धि तथा साधनशुद्धि इन तीन शुद्धियोंका विस्तारसे उपदेश देकर इस प्रकार कहा । § ४३) पूर्वोक्तेति—जो पहले कही हुई क्रियाओंके करनेमें कर्मठ हैं वे वर्णोत्तम, भूदेव तथा देव-

२५ ब्राह्मण इन शब्दों द्वारा कहे गये हैं ॥३०॥ § ४४) निस्तारकेति—तथा वे पृथिवीतलपर निस्तारक, ग्रामपति, मानार्ह और लोकपूजित इन सार्थक नामोंसे कहे जाते हैं ॥३१॥

§ ४५) इतीति—इस प्रकार जिन्हें राजा भरतसे संस्कारोंका योग प्राप्त हुआ था, जो व्रत और नियमसे श्रेष्ठ थे, शास्त्ररूपी समुद्रमें स्थित थे तथा जिनेन्द्रभगवान्के चरणकमलोंमें भ्रमरके समान सुशोभित थे वे जगत्में बहुत सम्मानको प्राप्त होकर ब्राह्मण इस प्रकारकी

३० ख्यातिको प्राप्त हुए ॥३२॥ § ४६) अथेति—तदनन्तर किसी समय चक्रवर्ती कुछ अद्भुत घटनाओंको दिखलानेवाले स्वप्न देखकर कुछ उद्विग्न होता हुआ मनसे कुछ विचार करने लगा । यद्यपि वह किसी तरह उन स्वप्नोंके फलको जानता था तो भी उनका हृद निश्चय करनेके लिए भगवान्के समवसरणकी ओर चला, अपनी-अपनी सेनाओंसे अनुगत मुकुटबद्धराजाओंसे उसका समीपवर्ती प्रदेश घिरा हुआ था । दूरसे ही भगवान्के सम-

३५ वसरणकी भूमि देखकर उसने नमस्कार किया और गन्धकुटीके मध्यमें सुशोभित तथा देव-

§ ४७) जिनेन्द्रोरिति—तदा तस्मिन्काले जिनेन्द्रोजिनचन्द्रस्य उन्मीलतो विकसति ये पदकमले चरणसरोरुहे

स्फुरत्संध्यारागोल्लसितमणिकोटोरशिखरे ।

तदा चक्रप्राच्यक्षितिभृति चिरादाविरभवद्

घनध्वान्तध्वंसी विलसदवधिज्ञानतरणिः ॥३३॥

§ ४८) स्तुत्वा स्तुतिभिरोशानमभ्यर्च्य च यथाविधि ।

निषसाद यथास्थानं धर्मामृतपिपासितः ॥३४॥

§ ४९) तदनु राजराजस्त्रिभुवनगुरौ धर्मसर्गविधातरि त्वयि विलसमाने वालिश्यविलसित-
मिदं मम ब्राह्मणसर्जनं किं दोषाय किमु गुणायेत्यापृच्छच्च अवधिज्ञानविज्ञानान्यपि स्वप्नफलानि
तत्रत्यानां प्रकटयितुं सादरं पुरुदेवमपृच्छत् ।

§ ५०) श्रीमद्विव्यवचोनवामृतज्ञरोपानेच्छया निश्चलं

चित्रस्थापितशङ्कितं गगनगैर्ध्यानावबन्धायितम् ।

सभ्यानां वलयं समात्तकुतुकं प्रोल्लासयन् श्रीपते-

वक्त्रादाविरभून्मरन्दमधुरो दिव्यध्वनिस्तत्क्षणम् ॥३५॥

§ ४७) जिनेन्द्रोरिति—तदा तस्मिन्काले जिनेन्द्रोजिनचन्द्रस्य उन्मीलतो विकसति ये पदकमले चरणसरोरुहे
तयोः कान्तिलहरी दोसिपरम्परा सैव स्फुरत्संध्यारागः प्रकटीभवत्संध्यारणिमा तेनोल्लसितं शोभितं मणिकोटोरं
मणिमुकुटमेव शिखरं शृङ्गं यस्य तस्मिन् चक्रधरे प्राच्यक्षितिभृत् तस्मिन् भरतेश्वरोदयावले चिरात् चिर-
कालाय घनध्वान्तध्वंसी निविडाज्ञानतिमिरविनाशो विलसत् स्फुरद् अवधिज्ञानमेव तरणिः सूर्य इति विलस-
दवधिज्ञानतरणिः आविरभवत् प्रकटीभवत् । रूपकालंकारः । शिखरिणीछन्दः ॥३३॥ § ४८) स्तुत्वेति—
सुगमम् ॥३४॥ § ४९) तदन्विति—वालिश्यविलसितम् अज्ञानचेष्टितम्, पुरुदेवं वृषभजिनेन्द्रम् । शेषं सुगमम् ।
§ ५०) श्रीमदिति—तत्क्षणं तत्कालं श्रीमतो जिनेन्द्रस्य दिव्यवच एव नवामृतक्षरी नूतनमुवासीतः तस्य
पानेच्छया पिपासया निश्चलं गगनगैः खेचरैः चित्रस्थापितमिव शङ्कितमिति चित्रस्थापितशङ्कितम् आलेख्य-
लिखितमिव, ध्यानावबन्धायितं ध्याननिमग्नमिव समात्तकौतुकं गृहीतकौतुहलं सभ्यानां सभासदानां वलयं
मण्डलं प्रोल्लासयन् समाह्लादयन् मरन्दमधुरो मकरन्दमिष्टस्वादो दिव्यध्वनिः श्रीपतेजिनेन्द्रस्य वक्त्रात्

दानव आदिसे सेवित अर्हन्तभगवान्की वन्दना की । § ४७) जिनेन्द्रोरिति—जिनेन्द्रचन्द्रके
खिले हुए चरणकमलोंकी उत्तम कान्ति सन्ततिरूपी सन्ध्याकी लालीसे जिसका मणिमय
मुकुटरूपी शिखर सुशोभित हो रहा था ऐसे चक्रवर्तीरूपी पूर्वाचलपर चिरकालके लिए सघन
अन्धकारको नष्ट करनेवाला अत्यन्त सुशोभित अवधिज्ञानरूपी सूर्य प्रकट हुआ ॥३३॥
§ ४८) स्तुत्वेति—धर्मरूपी अमृतका प्यासा भरत, स्तुतियों द्वारा भगवान्की स्तुति कर तथा
विधिपूर्वक उनकी पूजा कर यथास्थान बैठ गया ॥३४॥ § ४९) तदन्विति—तदनन्तर राजा-
धिराज भरतने पूछा कि त्रिभुवनके गुरु तथा धर्मरूप सृष्टिके विधाता आपके शोभायमान रहते
हुए मैंने मूर्खतावश ब्राह्मणोंकी जो यह सृष्टि की है वह दोषके लिए है अथवा गुणके लिए है ?
इस प्रकार पूछकर उसने अवधिज्ञानके द्वारा जाने हुए भी स्वप्नोंका फल, वहाँ बैठे हुए
अन्य लोगोंको प्रकट करनेके लिए आदरपूर्वक आदिजिनेन्द्रसे पूछा । § ५०) श्रीमदिति—
उस समय भगवान्के दिव्यवचनरूपी नूतन अमृतके झरनेका पान करनेकी इच्छासे जो
निश्चल बैठा हुआ था, आकाशगामी देव विद्याधर जिसे चित्रलिखित जैसा समझते
थे अथवा ध्यानमें निमग्न जैसा मानते थे, तथा जिसे कौतुक प्राप्त हुआ था ऐसे सभासदोंके

५१) पूजा द्विजानां शृणु वत्स ! साध्वी कालान्तरे प्रत्युत दोषहेतुः ।

काले कलौ जातिमदादिमेते वैरं करिष्यन्ति यतः सुमार्गे ॥३६॥

५२) वत्स ! कालान्तरे दोषमूलमप्येतदञ्जसा ।

नाधुना परिहर्तव्यं धर्मसृष्ट्यनतिक्रमात् ॥३७॥

५३) इति त्रिभुवनाधीशो गिरा कोमलया सभासु ।

उल्लास्य मधुरं स्वप्नफलान्येवमवोचत ॥३८॥

५४) अये वत्स ! महीं विहृत्य महीभूतकूटमास्थितानां त्रयोविंशतिपञ्चाननानां

विलोकनेन त्रयोविंशतितीर्थकरोदये दुर्ण्यानुद्भवन्, पुनरेकाकिनः कण्ठीरवपोतस्योपकण्ठे कुञ्जर-

निरीक्षणेन सन्मतेस्तीर्थे सानुषङ्गकुलिङ्गिप्रकटनं, कुम्भोन्द्रभटभग्नपृष्ठस्य सैन्धवस्यावलोकनेन

१० दुःषमसाधुसंदोहस्य मुनिपरिवृढोपवाह्य निखिलतपोगुणवहनासामर्थ्यं, शुष्कपत्रोपयोगिनामजानां

निध्यानेन त्यक्तसदाचाराणां नराणामसद्वृत्तिताख्यापनं, मदमन्थरसिन्धुरकन्धरारुढशाखामृग-

मुखात् आविरभूत् प्रकटीबभूव ॥३५॥ § ५१) पूजेति—हे वत्स ! शृणु समाकर्ण्य, यद्यपि द्विजानां

ब्राह्मणानां पूजा साध्वी अस्ति तथापि कालान्तरे समयान्तरे प्रत्युत दोषहेतुदोषकारणं भविष्यति, यतो

यस्मात् कारणात् एते ब्राह्मणा कलौ काले पञ्चमे काले सुमार्गे प्रशस्तमार्गविषये जातिमदादि जातिगर्वादिकं

१५ वैरं निरोधं करिष्यन्ति । इन्द्रवज्राछन्दः ॥३६॥ § ५२) वत्सेति—सुगमम् ॥३७॥ § ५३) इतीति—

सुगमम् ॥३८॥ § ५४) अये वत्सेति—महीं विहृत्य पृथिव्यां विहारं कृत्वा महीभूतकूटं पर्वतशिखरम् आस्थि-

तानामधिष्ठितानाम्, त्रयोविंशतिपञ्चाननानां त्रयोविंशतिसिंहानां विलोकनेन त्रयोविंशतितीर्थकरोदये वृषभादि-

पाश्वन्तित्रयोविंशतितीर्थकरोदयकाले दुर्णयस्य मिथ्यानयस्यानुद्भवनमप्रकटनम् । पुनः किंतु एकाकिन एकस्य

२० कण्ठीरवपोतस्य सिंहशावकस्य उपकण्ठे समीपे कुञ्जरनिरीक्षणेन गजावलोकनेन सन्मतेर्वर्धमानस्य तीर्थे

सानुषङ्गाणां सपरिग्रहाणां कुलिङ्गिनां कुतापसानां प्रकटनम् । कुम्भोन्द्रस्य गजेन्द्रस्य भरेण भग्नं वृटितं पृष्ठं

यस्य तथाभूतस्य सैन्धवस्य ह्यस्य अवलोकनेन दुःषमसाधुसंदोहस्य पञ्चमकालसाधुसमूहस्य मुनिपरिवृढ्यतिप-

तिभिरुपवाह्या घर्तुं योग्या ये निखिलतपोगुणास्तेषां वहनस्य धारणस्यासामर्थ्यम् । शुष्कपत्रोपयोगिनां शुष्क-

पत्रभक्षणशोलानाम् अजानां वर्कराणां निध्यानेन दर्शनेन त्यक्तसदाचाराणां परित्यक्तसद्वृत्तानां नराणां

उस मण्डलको हर्षित करती हुई, मकरन्दसे मधुर दिव्यध्वनि भगवान्के मुखारविन्दसे

२५ प्रकट हुई ॥३५॥ § ५१) पूजेति—उन्होंने कहा कि हे वत्स ! सुन, ब्राह्मणोंकी पूजा यद्यपि

ठीक है परन्तु वह कालान्तरमें दोषका कारण होगी । क्योंकि कलिकालमें ये ब्राह्मण जाति-

मदको आदि लेकर समीचीनमार्गमें वैर करने लगेंगे ॥३६॥ § ५२) वत्सेति—हे वत्स ! यद्यपि

इनका रचा जाना कालान्तरमें दोषका मूल है तो भी इस समय धर्मसृष्टिका उल्लंघन न हो

इस भावनासे इनका निराकरण करना अच्छा नहीं है ॥३७॥ § ५३) इतीति—इस प्रकार

३० त्रिभुवनपति वृषभजिनेन्द्र, कोमल वाणीके द्वारा सभाको हर्षित कर स्वप्नोंका फल इस प्रकार

कहने लगे ॥३८॥ § ५४) अये वत्सेति—हे वत्स ! पृथिवीमें विहार कर पर्वतके शिखरपर

स्थित तेईस सिंहोंके देखनेसे सूचित होता है कि तेईस तीर्थकरोंके उदयकालमें मिथ्यानयकी

उत्पत्ति नहीं होगी परन्तु एक सिंहके बच्चेके समीप हाथी देखनेसे सूचित होता है कि सन्मति

३५ ऐसा घोड़ा देखनेसे सूचित होता है कि दुःषम—पंचमकालसम्बन्धी साधुओंके समूहमें

मुनिराजोंके द्वारा धारण करने योग्य समस्त तपके गुण धारण करनेकी सामर्थ्य नहीं रहेगी ।

निर्वर्णनेन आदिक्षत्रान्वयविच्छेदिभूपालकत्वमकुलीनानां, काककलितोलूकसंवाधदर्शनेन कालान्तरे जनानां जैनधर्मपरिहारेण मतान्तराश्रयणं, नृत्यदभूतनिरीक्षणेन प्रजानां देवतात्वेन व्यन्तरभजनं, शुष्कमध्यतटाकपर्यन्तजलावलोकनेन धर्मस्यार्यनिवासपरित्यागेन प्रत्यन्तवासिष्ववस्थानं, पांसुधूसर-मणिगणदर्शनेन पञ्चमयुगे योगिनामृद्धयप्रादुर्भवनं, सत्कारसत्कृतसारमेयनिध्यानेन व्रतरहितानां द्विजानां पूजनं, तरुणवृषभविहारावलोकनेन तारुण्य एव श्रामण्येऽवस्थानं, परिवेषोपरक्तदोषाकर- ५ विलोकनेन कालान्तरीणानां मुनीनां समनःपर्ययावधेरजननम्, अन्योऽन्यं सह संभूय वृषयुगलगमने-क्षणेन मुनीनां साहचर्येण वर्तनं, जलधरावरणरुद्धदिवाकरनिरीक्षणेन पञ्चमयुगे प्रायः केवलज्ञाना-

मनुष्याणाम् असद्वृत्तितात्प्राप्यपनम् असदाचारसूचकम्, मदेन मन्यरो मन्दगामी यः सिन्धुरो गजस्तस्य कन्धरायां ग्रीवायामधिष्ठो यः शाखामुगो वानरस्तस्य निर्वर्णनेन विलोकनेन आदिक्षत्रान्वयविच्छेदि आद्यक्षत्रवंश-विघातकम् अकुलीनानां नीचकुलीनां भूपालकत्वं महीरक्षकत्वं, कार्कष्यसैः कलितो य उलूकसंवाधो घूकपीडनं १० तस्य संदर्शनेन कालान्तरे जनानां जैनधर्मपरिहारेण मतान्तराणां मिथ्याधर्माणामाश्रयणम्, नृत्यदभूतनिरीक्षणेन प्रजानां लोकानां देवतात्वेन देवत्वबुद्ध्या व्यन्तरभजनम् व्यन्तराराधनं, शुष्कं मध्यं यस्य तथाभूतस्य तटाकस्य सरोवरस्य पर्यन्ते तटे जलावलोकनेन नीरदर्शनेन धर्मस्य आर्येषु निवासस्य परित्यागस्तेन प्रत्यन्तवासिषु समीपवासिषु अवस्थानं स्थितिः, पांसुधूसरस्य धूलिधूसरस्य मणिगणस्य रत्नराशिः दर्शनेन पञ्चमयुगे पञ्चमकाले योगिनां मुनीनाम् ऋद्धीनामप्रादुर्भवनमप्रकटनम्, सत्कारेण सत्कृतो यः सारमेयः कुक्कुरस्तस्य १५ निध्यानेन समवलोकनेन व्रतरहितानां द्विजानां पूजनं अव्रतिब्राह्मणसमर्थनम्, तरुणवृषभस्य विहारावलोकने परिभ्रमणदर्शनेन तारुण्य एव यौवन एव श्रामण्ये मुनित्वेऽवस्थानं, परिवेषेण परिधिना रक्तो यो दोषाकरश्चन्द्र-स्तस्य विलोकनेन कालान्तरीणानां पञ्चमकालभवानां मुनीनां समनःपर्ययावधेः अजन्तमनुत्पत्तिः, अन्योऽन्यं परस्परं सह सार्धं संभूय मिलित्वा वृषयुगलगमनेक्षणेन बलीवर्दयुगगमनावलोकने मुनीनां यतीनां साहचर्येण वर्तनं प्रवृत्तिः, जलधरावरणेन मेघावरणेन रुद्धो यो दिवाकरः सूर्यस्तस्य निरीक्षणेन पञ्चमयुगे प्रायः केवल- २० ज्ञानाजननं केवलज्ञानानुत्पत्तिः चतुर्थकालजानां पञ्चमकाले केवलज्ञानमुत्पद्यते पञ्चमकालजानां पञ्चमकाले

सूखे पत्ते खानेवाले बकरोँके देखनेसे सूचित होता है कि मनुष्य सदाचारको छोड़कर असदा-चारकी ख्याति करेंगे। मदसे मन्द-मन्द चलनेवाले हाथीके ऊपर बन्दरके देखनेसे प्रकट होता है कि आदिक्षत्रियवंशका नाश होगा तथा अकुलीन मनुष्य पृथिवीका पालन करेंगे। कौओंके द्वारा की हुई उलूकोंकी बाधाको देखकर सूचित होता है कि कालान्तरमें लोग २५ जैनधर्मको छोड़कर दूसरे धर्मोंका आश्रय ग्रहण करेंगे। नाचते हुए भूतके देखनेसे सूचित होता है कि प्रजा देवतारूपमें व्यन्तरोँकी सेवा करेंगे। जिसका मध्यभाग सूखा है तथा किनारोंपर पानी है ऐसे तालाबके देखनेसे प्रकट होता है कि धर्म, आर्यजनोंके निवासको छोड़कर समीपवर्ती लोगोंमें स्थित रहेगा। धूलिसे धूसर मणिसमूहको देखनेसे प्रकट होता है कि पञ्चमकालमें मुनियोंको ऋद्धियाँ प्रकट नहीं होंगी। सत्कारसे सत्कृत कुत्ताके देखनेसे ३० सूचित होता है कि व्रतरहित द्विजोंकी पूजा होगी। तरुण बैलके विहारको देखनेसे भालूम होता है कि तरुण अवस्थामें ही मुनिपद धारण किया जायेगा। परिधिसे उपरक्त चन्द्रमाके देखनेसे सूचित होता है कि कालान्तरके मुनियोंके मनःपर्यय तथा अवधिज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होगी। परस्पर मिलकर बैलोंकी जोड़ी जा रही है यह देखनेसे प्रकट होता है कि मुनि परस्परके सहयोगसे ही प्रवृत्ति कर सकेंगे। मेघके आवरणसे रुके हुए सूर्यके देखनेसे ३५ सिद्ध होता है कि पञ्चमकालमें प्रायः केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होगी। सूखे वृक्षके देखनेसे सूचित होता है कि पुरुष और स्त्री चारित्रसे च्युत हो जायेंगे। और जीर्ण पत्तोंके देखनेसे

जननं, शुष्कद्रुमेक्षणेन पुंसां स्त्रीणां च चारित्र्यव्यवनं, जोर्णपर्णावलोकनेन महौषधिरससमापनं च सूचितमिति ।

§ ५५) इतीरितस्वप्नफलानि बुद्ध्वा विश्वस्य विघ्नोपशमाय धर्मे ।

मतिं समाधेहि मनोज्ञबुद्धे ! धर्मो हि सर्वेष्टदकामधेनुः ॥३९॥

५

§ ५६) इति भगवतो भाषां श्रुत्वा प्रणम्य पुनः पुनः

भरतनृपतिः प्रत्यावृत्य प्रविश्य निजं पुरम् ।

विधिवदकरोत्पुनः शान्तिक्रियां जिनपूजनं

निधिपतिरयं पात्रे दानानि चैव महामतिः ॥४०॥

§ ५७) कदाचिद्वैराग्यादथ स किल मेघेश्वरनृपः

१०

सभां भर्तुर्गत्वा प्रणतभगवत्पादजलजः ।

कृतग्रन्थत्यागाज्जिनविहितसत्संयमधरः

क्रमात्सप्तर्द्धिदः पुनरजनि भर्तुर्गणधरः ॥४१॥

§ ५८) तदानीमुदारबोधे जगत्प्रवृत्तये च धर्मक्षेत्रेषु धर्मबीजान्युत्पत्वा सेचयित्वा च धर्माभूत-
वृष्टिभिर्भोग्यसंदोहस्य तत्फलसंपत्तये चिरं विहृत्य पौषपौर्णमासीदिने कैलासशैलविलसितश्रीसिद्ध-

- १५ केवलज्ञानं नोत्पद्यत इति प्रायः पदस्य सार्थक्यं, शुष्कद्रुमेक्षणेन शुष्कतरुविलोकनेन पुंसां स्त्रीणां च चारित्र्य-
व्यवनं सदाचारव्युतिः, जोर्णपर्णावलोकनेन जोर्णपत्रदर्शनेन महौषधीनां रसस्य समापनं च । सूचितमिति
प्रत्येकं संबध्यते । § ५५) इतीति—सुगमम् ॥३९॥ § ५६) इति भगवत इति—महामतिः महा-
बुद्धिमान् अयमेष निधिपतिर्भरत इति पूर्वोक्तप्रकारेण भरतनृपतिर्भरतराजो भगवतो वृषभजिनेन्द्रस्य भाषां
दिव्यध्वनिं श्रुत्वा निशम्य पुनः पुनः प्रणम्य प्रत्यावृत्य प्रत्यागत्य निजं स्वकीयं पुरं नगरं प्रविश्य विधिवत्
२० यथाविधि शान्तिक्रियां शान्तिकर्म, जिनपूजनं जिनाचनं पात्रे दानानि चैव अकरोत् । हरिणीच्छन्दः ॥४०॥
§ ५७) कदाचिदिति—अयानन्तरं कदाचित् जातुचित्, स किल प्रसिद्धः मेघेश्वरनृपो जयकुमारनरेन्द्रः
वैराग्यात् निर्वेदात् भर्तुर्भगवतः सभां समवसरणं गत्वा प्रणते नमस्कृते भगवत्पादजलजे जिनेन्द्रचरणकमले येन
तथाभूतः सन् कृतग्रन्थत्यागात् विहितपरिग्रहत्यागात् जिनविहितस्य जिनेन्द्राभिहितस्य सत्संयमस्य सम्यक्चा-
रित्रस्य धरो धारकः क्रमात् सप्तर्द्धिभिरिद्धो दीप्तः सन् पुनरनन्तरं भर्तुर्जिनेन्द्रस्य गणधरो गणभृत् अजनि

- २५ सूचित होता है कि महौषधियोंका रस समाप्त हो जायेगा । § ५५) इतीति—इस प्रकार कहे
हुए स्वप्नोंका फल जानकर तथा विश्वास कर विघ्नोंका उपशम करनेके लिए धर्ममें बुद्धि
लगाओ । क्योंकि हे मनोज्ञबुद्धिके धारक ! धर्म समस्त इष्ट पदार्थोंको देनेके लिए कामधेनु
है ॥३९॥ § ५६) इति भगवत इति—इस प्रकार भगवान्की वाणी सुनकर तथा बार-बार
प्रणाम कर भरत नरेन्द्र लौटकर अपने नगरमें प्रविष्ट हुआ । वहाँ महाबुद्धिमान् चक्रवर्ती
३० पवित्र होकर विधिपूर्वक शान्ति क्रियाकी जिनपूजा की और पात्रोंके लिए दान दिया ॥४०॥
§ ५७) कदाचिदिति—तदनन्तर किसी समय राजा मेघेश्वर—जयकुमारने वैराग्य होनेसे
भगवान्की सभामें जाकर उनके चरण-कमलोंको नमस्कार किया और परिग्रहका त्याग कर
श्रेष्ठ संयम धारण कर लिया । क्रमसे प्रकट होनेवाली सात ऋद्धियोंसे देदीप्यमान
होता हुआ वह भगवान्का गणधर बन गया ॥४१॥ § ५८) तदानीमिति—उस समय उत्कृष्ट
३५ ज्ञानके धारक त्रिलोकीनाथ जब धर्म क्षेत्रोंमें धर्मके बीजोंको बोकर तथा धर्मरूपी अमृतकी
वर्षासे उसे सींचकर एवं भोग्य समूहको उसका फल प्राप्त करानेके लिए चिरकालतक विहार-

शिखरं निरभिलाषमध्यासीने, भरतपतिरा प्राग्भारमालोकान्तमतिदीर्घं मन्दरभूधरं, युवराजश्च स्वर्गादागत्य भवरोगनिरसनपूर्वकं सुरलोकप्राप्तये कृतोद्यमं महौषधिद्रुमं, गृहपतिश्च निरन्तरं नरनिकरायाभीष्टार्थं दत्त्वा नाकाक्रमणाय सत्वरं कल्पतरुं, सचिवाग्रेसरः पुनर्जिघृक्षुजनेभ्यो नानारत्नानि प्रदाय प्रकटिताग्रगमनाटोपं रत्नद्वीपं, सेनापतिरपि कैलासोल्लङ्घनसंनद्धं विघटित-
वज्रपञ्जरं कुञ्जररिपुं, सुभद्रादेवी च यशस्वतीसुनन्दाभ्यां सह शोचन्तीं पुरन्दरसुन्दरीं स्वप्ने ५
निशामयामासुः ।

§ ५९) निधिपतिमुखेदृष्टस्वप्नान्निशम्य पुरोहितः

पुरुजिनपतेर्हत्वा कर्माणि सर्वजगत्पतेः ।

बहुमुनिजनैः साकं लोकान्तभागसुगामितां

वदति निखिलस्वप्नाल्पेष्वेति धीरमवोचत् ॥४२॥

१०

§ ६०) तदानीमेवागतादानदनाम्नः शासनधरात् मुकुलीकृतसरोरुहृतया सभासरस्या समुदास्यमानभगवतो दिव्यध्वनिदिवाकरास्तमयं श्रुत्वा गत्वा च सत्वरं भगवत्संनिधिं चक्रधर-
श्चतुर्दशदिनानि महापूजया भगवन्तमसेवत ।

बभूव । शिखरिणीछन्दः ॥४१॥ § ५८) तदानीमिति—सुगमम् । § ५९) निधिपतीति—निधिपतिमुखे-
श्चक्रवर्तिप्रभृतिभिः दृष्टाश्च ते स्वप्नाश्चेति दृष्टस्वप्नास्तान् निशम्य श्रुत्वा पुरोहितः पुरोधाः इति धीरं यथा १५
स्यात्तथा अवोचत् जगद । एषा निखिलस्वप्नाली सर्वस्वप्नसंततिः सर्वजगत्पतेः निखिलसंसारस्वामिनः
पुरुजिनपतेः वृषभजिनराजस्य कर्माणि ज्ञानावरणादीनि हत्वा क्षपयित्वा बहुमुनिजनैरेकयतिभिः साकं साधं
लोकान्तभागं सुगच्छतीति लोकान्तभागसुगामी तस्य भावस्तां मोक्षप्राप्तिं वदति कथयति सूचयतीत्यर्थः ।

कर पौषमासकी पौर्णमासीके दिन कैलास पर्वतपर सुशोभित श्री सिद्ध शिखरपर बिना किसी इच्छाके अधिरूढ हो गये तब भरतराजने ईषत्प्राग्भार पृथिवी तथा लोकके अन्त तक २०
अत्यन्त लम्बे मन्दर गिरिको, युवराजने स्वर्गसे आकर तथा संसार रूपी रोगको नष्ट कर
सुर लोककी प्राप्तिके लिए उद्यम करनेवाले महौषधिरूपको, गृहपतिने निरन्तर मनुष्य समूहके
लिए अभीष्टपदार्थ देकर स्वर्गमें जानेके लिए उतावली करनेवाले कल्पवृक्षको, प्रधानमन्त्रीने
ग्रहण करनेके इच्छुक मनुष्योंके लिए नाना रत्न देकर आगे जानेके लिए गमनके विस्तारको
प्रकट करनेवाले रत्नद्वीपको, सेनापतिने कैलास पर्वतके लाँघनेके लिए तैयार तथा वज्रमय २५
पंजरको तोड़नेवाले सिंहको और सुभद्रादेवीने यशस्वती तथा सुनन्दाके साथ शोक करती
हुई इन्द्राणीको स्वप्नमें देखा । § ५९) निधिपतीति—चक्रवर्ती आदिके द्वारा देखे गये दृष्ट
स्वप्नोंको सुनकर पुरोहितने धीरतापूर्वक कहा कि यह समस्त स्वप्नोंकी पंक्ति, समस्त
जगत्के स्वामी पुरु जितेन्द्र कर्मोंको नष्ट कर अनेक मुनियोंके साथ लोकके अन्त भागको
अच्छी तरह प्राप्त होंगे, यह कह रही है ॥४२॥ § ६०) तदानीमेवेति—उसी समय आये हुए ३०
आनन्द नामके सेवकसे भरतेश्वरने सुना कि जोड़े हुए हाथ रूपी कमलोंसे युक्त सभारूपी
सरसी जिनकी उपासना कर रही थी ऐसे भगवान्की दिव्य ध्वनिरूपी सूर्यका अस्त हो गया
है अर्थात् भगवान्की दिव्यध्वनि बन्द हो गयी है । उक्त समाचारके सुनते ही चक्रवर्ती
भरत शीघ्र ही भगवान्के पास गया और चौदह दिन तक महापूजाके द्वारा उनकी सेवा

§ ६१) माघे मासि चतुर्दशीदिनवरे सूर्योदये श्रीपति-

लग्ने चाभिजिति प्रतीतसुगुणे पक्षे बलक्षेत्रे ।

पल्यङ्कासनमास्थितः स भगवान् प्राग्दिङ्मुखः सर्ववित्

मुक्तिश्रीकरपीडनाय सहसा संतद्ध एष स्थितः ॥४३॥

१ § ६२) अयं खलु भगवांस्तृतीयशुक्लध्यानविध्वस्ताघातिकर्मचतुष्टयः समधिष्ठितायोगि-
केवलगुणस्थानो व्यपगतशरीरत्रयः सिद्धत्वपर्यायं गुणाष्टकजुष्टमश्नुवानः क्षणाप्तनुवातः परमौ-
दारिकदिव्यदेहात्किञ्चिद्वनपरिमाणो नित्यनिरञ्जनरूपः सर्वदा विश्वं पश्यन्सुखमासामास ।

§ ६३) अथ झटिति चिकीर्षुर्मोक्षकल्याणपूजां

परमपुरुजिनेन्द्रोर्देवतानां निकायः ।

१० इदममलशरीरं भर्तुरस्येति तोषा-

न्मणिमयशिविकायामर्पयामास साधु ॥४४॥

हरिणीछन्दः ॥४२॥ § ६०) तदानीमिति—सुगमम् । § ६१) माघे मासीति—माघे मासि माघमासे बल-
क्षेत्रे कृष्णे पक्षे चतुर्दशीदिनवरे चतुर्दश्यां श्रेष्ठतिथौ सूर्योदये प्रातर्वेलायां प्रतीता प्रसिद्धाः सुगुणा यस्य तस्मिन्
प्रसिद्धसुगुणयुक्ते अभिजिति तन्नामनि लग्ने पल्यङ्कासनं पद्मासनं यथा स्मात्तथा आस्थित आसीनः प्राग्दिङ्मुखः

१५ पूर्वाशाभिमुखः श्रीपतिरनन्तचतुष्टयलक्ष्मीयुक्तः स एष भगवान् पुरुषदेवः मुक्तिश्रीकरपीडनाय मुक्तिलक्ष्मी-
विवाहाय सहसा संतद्धस्तपरः स्थितः । शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥४३॥ § ६२) अयमिति—तृतीयशुक्लध्यानं
सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामधेयं, व्यपगतं नष्टं शरीरत्रयम् औदारिकतैजसकर्मणनामधेयं यस्य तथाभूतः गुणाष्टक-
जुष्टं सम्यक्त्वादिगुणाष्टकेन जुष्टं सहितं, शेषं सुगमम् । § ६३) अथेति—अथानन्तरं झटिति शीघ्रं परम-

२० पुरुषजिनेन्द्रोः वृषभजिनचन्द्रस्य मोक्षकल्याणपूजां निर्वाणकल्पाणकसपर्यां चिकीर्षुः कर्तुमिच्छुः देवतानां
निकायः भवनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पापरसमूहः, इदम् अमलशरीरं निर्मलशरीरम् अस्य भर्तुर्भगवतोऽस्तीति
तोषात् साधु यथा स्यात्तथा मणिमयशिविकायां रत्नरचितचतुरस्तयाने अर्पयामास स्थापयामास । मालिनी-

करता रहा । § ६१) माघे मासीति—तदनन्तर माघमासके कृष्ण पक्ष सम्बन्धी चतुर्दशीके दिन
सूर्योदयके समय प्रसिद्ध उत्तम गुणोंसे सहित अभिजित् नामक लग्नमें अनन्त चतुष्टय
रूपी लक्ष्मीके स्वामी वे सर्वज्ञ भगवान् पूर्वकी ओर मुख कर पद्मासनसे ऐसे विराजमान हो
१५ गये मानो मुक्तिरूपी लक्ष्मीके साथ विवाह करनेके लिए शीघ्र ही तैयार होकर बैठे हों ॥४३॥

§ ६२) अयमिति—तृतीय शुक्लध्यानके द्वारा जो चार अघाति कर्मोंका नाश कर अयोग
केवली नामक चौदहवें गुणस्थानको प्राप्त हुए थे, जिनके औदारिक, तैजस और कर्मण ये
तीनों शरीर नष्ट हो गये थे, जो आठ गुणोंसे सहित सिद्धत्व पर्यायको प्राप्त हुए थे, क्षणभरमें
जिन्होंने तनुवात बलयको प्राप्त कर लिया था, जो परमौदारिक नामक दिव्य शरीरसे कुछ

१० कम परिमाणसे युक्त थे, नित्य निरञ्जनरूप थे और सदा विश्वको देख रहे थे इस प्रकार वे
वृषभ जिनेन्द्र सुखसे वहाँ विराजमान थे । § ६३) अथेति—तदनन्तर शीघ्र ही परम पुरुष
जिनेन्द्र चन्द्रके मोक्ष कल्याणकी पूजा करनेकी इच्छा करता हुआ देवोंका समूह आया ।

उसने यह भगवान्का निर्मल शरीर है इस प्रकारका सन्तोष होनेसे उसे अच्छी तरह मणिमय
पालकीमें विराजमान किया । विशेष—यद्यपि भगवान्का परमौदारिक शरीर मोक्ष प्राप्त होते
१५ ही कपूरकी तरह उड़ जाता है तथापि अन्तिम संस्कार करनेके लिए देव एक कृत्रिम शरीर
बनाकर उसे भगवान्का ही निर्मल शरीर समझ आदरपूर्वक मणिमय पालकीमें विराजमान

§ ६४) स्फीताग्नीन्द्रतिरोटकोटिमणिसंजाताग्निना चन्दन-

श्रीकपूरलवङ्गकुङ्कुमघृतक्षौरैः स्फुरद्वह्निना ।

गन्धाद्यचितकुण्डजेन जगतः सौगन्ध्यसंदायिता

भर्तुर्देहमदीपयत्कुतुकतः सोऽयं दिवौकोगणः ॥४५॥

§ ६५) एवं सुरभिक्षुसुमगन्धाक्षतादिभिरभ्यर्चितभगवद्विष्यदेहोमकुण्डदक्षिणभागे गणधर- ५
शरीरसंस्कारहुतवहकुण्डं तदपरदिग्भागे चानगारकेवलहुताशकुण्डं परिकल्प्य गार्हपत्यदक्षिणा-
ग्न्याहवनीयाभिधानात्कुण्डत्रयादुद्धृतभस्मना ललाटकण्ठभुजशिखरयुगलहृदयप्रदेशेषु वयमपि
पञ्चकल्याणभागिनो भवामेति विरचितरेखाः सकललेखाः सहर्षमानन्दनाटकं संभूय संपाद्य
स्वभवनमभजन्त ।

§ ६६) संध्यात्रये पावनरूपमेतदग्नित्रयं सादरमर्चयन्तः ।

गृहस्थपूजाविधयो भवेत्तेत्युपासकान् धीरमुवाच चक्री ॥४६॥

§ ६७) गुरुवियोगहुताशनदीपितं भरतराजमुदारगिरां वरः ।

वृषभसेनगणीवचनामृतेरुपशमं नयति स्म महागुणः ॥४७॥

छन्दः ॥४४॥ § ६४) स्फीतेति—सोऽयं स एष दिवौकसां देवानां गणः चन्दनश्रीकपूरलवङ्गकुङ्कुमघृतक्षौरैः
मलयजवनसारदेवकुसुमकेशराज्यदुग्धैः स्फुरन्ती वृद्धिर्यस्य तेन, गन्धाद्यचितकुण्डजेन गन्धप्रभृतिपूजितकुण्डोत्पन्नेन १५
जगतो भुवनस्य सौगन्ध्यं संददातीत्येवंशीलेन सौगन्ध्यसंदायिता स्फीतानां देदीप्यमानामग्नीन्द्राणामग्निकुमार-
सुरेन्द्राणां तिरीटानि मुकुटानि तेषां कोटिषु मणयो रत्नानि तेभ्यः संजातः समुत्पन्नो योऽग्निस्तेन कुतुकतः
कौतूहलात् भर्तुः वृषभजिनराजस्य देहं शरीरम् अदीपयत् भस्मसाञ्चकार । शार्दूलविक्रीडितछन्दः ॥४५॥
§ ६५) एवमिति—सुगमम्—। § ६६) संध्यात्रय इति—सुगमम् ॥४६॥ § ६७) गुरुवियोगेति—उदार-
गिरां उदारा गौर्येषां तेषां श्रेष्ठवक्तृणां वरः श्रेष्ठः महागुणो महागुणयुक्तः वृषभसेनगणी तन्नामगणधरः गुरुवियोगः २०

करते हैं ॥४४॥ § ६४) स्फीतेति—देवोंके इस समूहने, चन्दन, कपूर, लवंग, केशर, घी तथा
दूधसे जिसकी वृद्धि हो रही थी, जो गन्ध आदिसे पूजित कुण्डमें उत्पन्न हुई थी और
समस्त संसारके लिए जो सुगन्ध प्रदान कर रही थी ऐसी देदीप्यमान अग्नीन्द्रकुमार देवोंके
मुकुटाग्र सम्बन्धी मणियोंसे उत्पन्न होनेवाली अग्निके द्वारा भगवान्‌के शरीरको कुतूहल-
पूर्वक भस्म किया । § ६५) एवमिति—इस तरह सुगन्धित पुष्प-गन्ध तथा अक्षत आदिके २५
द्वारा पूजित भगवान्‌के दिव्य शरीर सम्बन्धी होम कुण्डके दक्षिण भागमें गणधरके शरीर
सम्बन्धी संस्कारका अग्निकुण्ड और उसके पश्चिम दिग्भागमें अनगार केवलियोंके अग्नि-
कुण्डकी रचना कर उनके क्रमशः गार्हपत्य, दक्षिणाग्न्य और आहवनीय-इस प्रकार नाम रखे,
उक्त नामोंवाले उन तीनों कुण्डोंसे निकाली हुई भस्मके द्वारा जिन्होंने ललाट, कण्ठ, दोनों
कन्धे और हृदय प्रदेशमें, हम भी पंच कल्याणकके भागी होवें इस भावनासे जिन्होंने रेखाएँ ३०
बनायी थीं ऐसे वे समस्त देव हर्षसे एकत्रित हो तथा आनन्द नाटक कर अपने-अपने घर
गये । § ६६) संध्येति—चक्रवर्ती भरतने धीरतापूर्वक श्रावकोंसे कहा कि आप लोग प्रातः,
मध्याह्न और सायं इस प्रकारकी तीनों संध्याओंमें पवित्र रूपवाली इन तीनों अग्नियोंकी
आदर सहित पूजा करते हुए गृहस्थ सम्बन्धी पूजाकी विधि करनेवाले होवें ॥४६॥
§ ६७) गुरुवियोगेति—उत्कृष्ट वचन बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ तथा महागुणोंसे युक्त वृषभसेन ३५

§ ६८) व्यपास्य चिन्तां गुरुशोकजातां गणेशमानम्य विनम्रमौलिः ।

निन्दन्नपारां निजभोगतृष्णां चक्री विभूत्या स्वपुरं विवेश ॥४८॥

§ ६९) अथ कदाचन चक्रधरः करकलितमणिदर्पणबिम्बितं शरच्चन्द्रबिम्बविडम्बकं पलितनिजवदनबिम्बं पुरुपरमेश्वरसन्निधानादागतमिव दूतमवलोक्य विगलितमोहरसः साम्राज्यं जरत्तृणमिव मन्यमानो निजात्मजमर्ककीर्तिं राजलक्ष्म्या संयोज्य महितापवर्गद्वारप्रतिमं संयमं स्वीकुर्वाणः सद्यः समुत्पन्नेन मनःपर्ययबोधेन केवलज्ञानेन च विदितसर्वपदार्थसार्थः पुरंदरादिवृन्दारकसंदोहवन्द्यमानपादारविन्दस्तत्र तत्र भव्यसस्येषु धर्माभूतवृष्टिं व्यातन्वानश्चिरं विहृत्य परमं पदमाससाद ।

§ ७०) वृषभसेनमुखा गणितस्तथा

१०

सकलजन्तुषु सख्यमुपागताः ।

विमलशीलविशोभितमानसाः

परमनिर्वृतिमापुरिमे क्रमात् ॥४९॥

पितृवियोग एव हृताशनोऽग्निस्तेन दीपितं कुतस्तापं भरतराजं वचनामृतैः वचनपीयूषैः उपशमं शान्तिं नयति स्म प्रापयति स्म । द्रुतविलम्बितछन्दः ॥४७॥ § ६८) व्यपास्येति—चक्री भरतः गुरुशोकजातां पितृशोक-समुत्पन्नां चिन्तां दुःखपूर्णविचारसंततिं व्यपास्य त्यक्त्वा विनम्रमौलिर्नतमस्तकः सन् गणेशं वृषभसेनगणधरं आनम्य नमस्कृत्य अपारामत्यधिकां निजभोगतृष्णां स्वकीयभोगस्पृहां निन्दन् विभूत्या समूह्या स्वपुरं स्वनगरं विवेश । अयोध्यानगरं प्रत्यागतवानिति भावः ॥४८॥ § ६९) अथेति—सुगमम् । § ७०) वृषभसेनेति—तथा तेनैव प्रकारेण सकलजन्तुषु निखिलप्राणिषु सख्यं मैत्रीभावम् उपागताः प्राप्ताः विमलशीलेन विशोभितं मानसं येषां तथाभूताः इमे एते वृषभसेनमुखा वृषभसेनप्रभृतयो गणधराः क्रमात् क्रमेण स्वायुःश्यानुसार-

- २० गणधरने पिताके वियोगरूपी अग्निसे दुःखी भरतराजको वचनरूपी अमृतसे शान्ति प्राप्त करायी ॥४७॥ § ६८) व्यपास्येति—तदनन्तर पिताके शोकसे उत्पन्न चिन्ताको दूर कर विनम्र-मस्तक हो गणधरको नमस्कार कर अपनी बहुत भारी भोग सम्बन्धी तृष्णाकी निन्दा करता हुआ चक्रवर्ती भरत, वैभवके साथ अपने नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ § ६९) अथेति—तदनन्तर किसी समय चक्रवर्तीने अपने हाथमें स्थित मणिमय दर्पणमें प्रतिबिम्बित होनेवाले, शरद्वृत्तु सम्बन्धी चन्द्रमाके बिम्बकी विडम्बना करनेवाले एवं भगवान् आदि जिनेन्द्रके पाससे आये हुए इनके समान जान पड़नेवाले अपने सफेद बालोंसे युक्त मुख बिम्बको देखा, देखते ही उनके मोहका विपाक दूर हो गया, वे साम्राज्यको जीर्णतृणके समान मानने लगे । फलतः वे अपने पुत्र अर्ककीर्तिको राजलक्ष्मीसे युक्त कर उत्कृष्ट मोक्षके द्वारके समान संयम-को स्वीकृत करते हुए शीघ्र ही उत्पन्न हुए मनःपर्ययज्ञान तथा केवलज्ञानसे समस्त पदार्थोंके समूहको जानने लगे, इन्द्र आदि देवोंके समूह उनके चरण-कमलोंकी वन्दना करने लगे । इस प्रकार भव्य जीवरूपी धान्योंमें धर्माभूतकी वर्षा करते हुए चिर काल तक विहार कर उन्होंने परमपद—मोक्षको प्राप्त किया । § ७०) वृषभसेनेति—इसी प्रकार जो समस्त जीवोंमें मैत्रीभावको प्राप्त हुए थे, तथा जिनके हृदय निर्मल शीलसे सुशोभित थे ऐसे ये वृषभसेन

§ ७१) जयतां मृदुगम्भीरैर्वचनैः परिनिर्वृतेर्हेतुः ।

सुरसार्थसेवितपदः पुरुदेवस्तत्प्रबन्धश्च ॥५०॥

इत्यर्हदासकृतौ पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे दशमः स्तवकः ॥१०॥

मित्यर्थः परमनिर्वृति मोक्षम् आपुः प्रापुः । द्रुतविलम्बितछन्दः ॥४९॥ § ७१) जयतामिति—मृदुगम्भीरैः कोमलगम्भीरार्थसहितैः । वचनैः परिनिर्वृतेः निर्वाणस्य हेतुः कारणं पक्षे संतोषस्य हेतुः सुरसार्थसेवितपदः । ५
सुराणां देवानां सार्थेन समूहेन सेविते पदे चरणौ यस्य तथाभूतः, पक्षे सुष्ठु रसार्थौ सुरसार्थौ ताभ्यां सेवितानि पदानि सुबन्ततिङन्तरूपाणि यस्मिन्सः पुरुदेवो वृषभजिनेन्द्रः तत्प्रबन्धश्च पुरुदेवचम्पुनामप्रबन्धश्च जयतां सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् । आर्या ॥५०॥

इति श्रीमदहर्दासकृतेः पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य 'वासन्ती'समाख्यायां संस्कृत-

व्याख्यायां दशमः स्तवकः समाप्तः ॥१०॥

१०

आदि गणधर भी क्रमसे परमनिर्वाणको प्राप्त हुए ॥४९॥ § ७१) जयतामिति—जो कोमल तथा गम्भीर वचनोंके द्वारा परम निर्वाणके कारण थे (पक्षमें परम सन्तोषका कारण था) तथा सुरसार्थसेवितपदः—देवोंके समूहसे जिनके चरण सेवित थे (पक्षमें जिसके शब्द-समूह उत्तम रस और अर्थसे सेवित थे) ऐसे भगवान् पुरुदेव और उनका यह पुरुदेवचम्पू नामका प्रबन्ध सदा जयवन्त रहे ॥५०॥

१५

इस प्रकार अहर्दासकी कृति पुरुदेवचम्पू प्रबन्धमें

दसवाँ स्तवक समाप्त हुआ ॥१०॥

कवेः प्रशस्तिपद्यम्

मिथ्यात्वपङ्ककलुषे मम मानसेऽस्मि-
न्नाशाधरोक्तिकतकप्रसरैः प्रसन्ने ।
उल्लासितेन शरदा पुरुदेवभवत्या
तच्चम्पुदम्भजलजेन समुज्जजृम्भे ॥१॥

५

अयं पुरुदेवचम्पूग्रन्थः समाप्तः ।

मिथ्यात्वेति—मिथ्यात्वमेव पङ्कस्तेन कलुषे मलिन आशाधरोक्त्य एव कतकास्तेषां प्रसरास्तैः प्रसन्ने निर्मलीकृते ममार्हदासस्य अस्मिन् मानसे मानसाख्यसरोवरे पुरुदेवभक्त्या शरदा शरदृतुना उल्लासितेन प्रहर्षितेन तच्चम्पुदम्भजलजेन पुरुदेवचम्पुनामकमलेन समुज्जजृम्भे ववृधे । कर्मणि प्रयोगः । वसन्त-तिलकच्छन्दः ॥१॥

-
- १० मिथ्यात्वेति—जो पहले मिथ्यात्वरूपी पंकसे मलिन था तथा पीछे चलकर आशाधर जी के सुभाषितरूपी कतकफलके प्रभावसे निर्मल हो गया था ऐसे मेरे इस मानस—मन-रूपी मानसरोवरमें पुरुदेव—वृषभ जिनेन्द्रकी भक्तिरूपी शरद्ऋतुके द्वारा उल्लासको प्राप्त हुआ यह पुरुदेवचम्पू रूपी कमल वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥१॥

यह पुरुदेवचम्पूग्रन्थ समाप्त हुआ ।

टीकाकर्तृप्रशस्तिः

यदीयादेशमासाद्य टीकैषा निर्मिता मया ।
विद्यानन्दो मुनिः सोऽयं शिवायास्तु सदा सताम् ॥१॥

पन्नालालैर्न बालेन गल्लीलालतनुभुवा ।
जानकीजातजनुषा सागरक्रोडवासिना ॥२॥

चैत्रमासत्रयोदश्यां श्यामायां सत्तिथौ मया ।
भौमवारदिने रम्ये मुहूर्ते ब्राह्मसंज्ञिते ॥३॥

चतुर्नवयुगद्वन्द्वमिते वीराब्दनामनि ।
संवत्सरे समाप्तैषा टीकेयं टीकतां बुधान् ॥४॥

अहंदासकृते काव्ये श्लेषालंकारसंयुते ।
टीकेयं सततं भूयाद्विदुषां मोददायिनी ॥५॥

नानावृत्तमयो नानासदलंकारसंयुतः ।
पुरुदेवप्रबन्धोऽयं चम्पूरीत्या विनिर्मितः ॥६॥

अमन्दानन्दसंदायी विदुषां वर्तते भुवि ।
टीकां विना महाक्लेशं प्राप्नुवन्ति सदा बुधाः ॥७॥

विचार्यैतत् कृता टीका यथाबुद्धिसमासतः ।
हिन्दां गोर्वाणवाण्यां च शोधनीया सदा बुधैः ॥८॥

नानाश्लेषतरङ्गाढ्यं प्रबन्धं सागरोपमम् ।
कथं तर्तुं समर्थाः स्युष्टीकया नौकया विना ॥९॥

छात्रा इत्येव संघायं टीकैषा रचिता मया ।
क्षमन्तां स्खलनं मेऽत्र विद्वांसोऽवद्यवर्जिताः ॥१०॥



परिशिष्टानि

१. पुरुषदेवचम्पूप्रबन्धस्य श्लोकानुक्रमणी

[प्रथम अंक स्तवक, द्वितीय अंक श्लोक तथा तृतीय अंक पृष्ठसंख्या का है ।]

[अ]

अगाभिख्याञ्चितोऽप्येष
अङ्गीचक्रे परमपुरुषः
अजायत भुजाश्लिष्ट-
अतीतभवमेतस्य
अथ स मुकुटबद्ध-
अथ झटिति चिकीर्षु-
अथ सुरकरैर्नीतान्
अथ भरतनरेन्द्रो
अथागतौ पूर्वविदेह-
अथापि रत्नान्येतानि
अधरारुणबिम्बेद-
अनङ्गरागं हृदयं मृगाक्ष्याः
अनङ्गः साङ्गः किं
अनुगुह्णानः सुमनो-
अन्तर्बल्यया यशस्वत्या
अन्यद्वक्ष्याम्यभिज्ञानं
अपूर्वपाणिग्रहणे
अप्प्रदानैकशीलापि
अबलाढ्योऽपि भूपालो
अम्यर्णमेत्य तच्चक्रं
अमलसद्गुणवारिधि-
अमी नकुलशार्दूल-
अयमथ तपःसिद्ध्या
अयमभरपत्नीनां
अरिष्टगेहं तदनु प्रविष्टा
अरुणविलसद्बिम्बं
अरुणाम्बरं दधाना
अर्हद्दासहृदालवाल-
अलकाभिख्याया जुष्टा

४.६८.१८१
६.१४.२२९
६.२६.२३७
१.५२.३४
७.१८.२६६
१०.४४.३७१
५.५.१९४
७.४४.२७९
१.४९.३३
९.१६.३३४
४.३४.१६२
२.४९.८४
१०.२.३४९
८.३८.३१३
६.२३.२३४
२.३१.७२
२.६५.९४
९.१०.३३०
१.३४.२२
१०.२५.३६१
८.४०.३१४
३.१६.१०७
८.१.२८१
६.१८.२३१
४.५८.१७५
२.६७.९४
४.२३.१५६
१.७४.४७
१.१७.१२

अवदातमूर्तिमहितो
अवधिज्ञानविज्ञात-
अवन्ध्यशासनस्यास्य
अव्यक्तसंयममहीरमणैः
अस्या ओष्ठतलं पयोधर-
अहं सुदति पण्डिता
अहो मुनीन्द्रावरविन्दबन्धू
आकाशे बहुधातपःस्थिति-
आदीशस्य विधातुमुत्सुक-
आदीश्वरोदारकधारसज्ञा
आदौ मङ्गलमज्जनं
आद्यस्वप्नमवेहि
आराधनानावमुपेत्य
आलक्ष्य यस्य वीर्यं
आलोक्य दिग्गजे यं
आसाद्यैशानकल्पं
आस्थितो दश भवान्
आहोस्विद्युक्तमेवेदं

८.४१.३१४
१.४१.२८
१०.७.३५२
७.४३.२७९
१.७२.४५
२.१३.५९
३.२५.११५
८.३३.३०५
७.११.२५८
१.९.५
१.६७.४२
१.५६.३६
१.५९.३८
३.६०.१३४
३.५९.१३३
१.६१.३९
६.८.२२६
२.४८.८२

[इ]

इति तद्वचनात्सर्वं
इति त्रिभुवनाधीशो
इति निगद्य सुधामधुरां
इति पृष्ठः समाचष्ट
इति पृष्टा विशालाक्षी
इति पृष्ठो नरेन्द्रेण
इति प्रश्नं समाकर्ण्य
इति भरतनरेन्द्रप्राप्त-
इति भगवतो भाषां
इति मुनिवरादिष्टं
इति मुनिवचनेन प्रापतुः

१.६९.४२
१०.३८.३६६
१.५७.३७
३.४०.१२१
२.१४.५९
३.१२.१०४
३.२७.११५
१०.३२.३६४
१०.४०.३६८
२.१८.६२
३.३४.११८

इति राजानुयुक्तोऽसौ
 इति वचनमुदारं
 इति सुवचनमाधवीं
 इति स्तुत्वा देवं
 इतीरितस्वप्नफलानि बुद्ध्वा
 इमं चुचुम्भ मुक्तिश्रीः
 इमां मुनीन्द्रस्य गिरां
 इमां भर्तुर्वीचं कुवलय-
 इत्यादिश्य क्षितिपतिरयं
 इत्यादिभिः स्फुटचमत्कृतिभिः
 इत्यादिवाचमवकर्ण्य
 इत्यादिकोमलवचोविसरैः
 इत्युक्त्वा पुनरप्युवाच
 इत्युक्तोऽयं वज्रजङ्घो
 इत्येकोनशतं पुत्रा
 इयं सुकमला पद्मा
 इष्टार्थदानाद्वर्णान्च
 ईशानवासवधृतं धवलात-

३.१७.१०७

३.४१.१२१

३.१९.१०९

२.६३.९३

१०.३९.३६९

५.३७.२१८

३.१५.१०७

६.२१.२३३

१०.१४.३५५

४.३७.१६४

८.२०.२९२

४.७०.१८५

२.२१.६४

२.५०.८४

६.३९.२४६

९.११.३३०

६.११.२२७

४.६५.१७९

[क]

कचतिमिरे लोलदृशो ४.१६.१४७
 कटीमण्डलमेतस्याः ४.७.१४३
 कण्टकालग्नवालाग्रान् ८.४.२८३
 कण्ठीरवकण्ठरवो ४.४९.१७०
 कण्ठे मञ्जुलकुञ्जरारि- ६.३४.२४२
 कथा प्राग्जन्मकलिता २.१५.६०
 कदाचिन्मणिप्रभातरल- ३.२१.११२
 कदाचित्सौधाग्रे २.७.५३
 कदाचिद्वैराग्यादथ १०.४१.३६८
 कनककलशजालं क्षीरवार्धौ ५.४.१९३
 करणीयं नरेन्द्रस्य २.१०.५६
 कर्मक्षमारुहमूलजालसदृशान् ७.४०.२७७
 कलाविलाससदनं १.२५.१७
 कलासरणिलासिका १.२४.१६
 कल्पामरवरघण्टा- ४.५०.१७०
 कल्याणं कलयन्तु १.८.५
 कान्तारचर्या संगीर्य ३.९.१०२
 किमेष सुरनायकः ३.२०.११०
 किमेषः पाथोधिः ९.१३.३३२
 किं रौप्याद्विरयं घनः किमु ५.१०.१९९
 क्रियाद्वः कल्याणं १.१.१
 कीर्तीन्दुमण्डलोपेता ४.३५.१६२
 कुटिलभ्रूयुगं तस्य २.४७.८२
 कुन्दसुन्दरयशोविशोभितः ३.६२.१३५
 कृतार्थं स्वात्मानं ८.१४.२९०
 केशवश्च परित्यक्त- ३.४७.१२७
 कैवल्यं वृषभस्य धार्मिक- ८.४२.३१५
 कोमलाङ्गि कुसुमास्त्रपताके २.३८.७७
 नव तावकगुणाम्बुधिः ८.३७.३१३
 क्षणं तत्र स्थित्वा ७.३८.२७६
 क्षोणीकल्पतरोजिनस्य ६.१.२२२
 क्षमाभृत्प्रोत्तुङ्गसिन्दूरित ९.६.३२७

[ख]

खगानां राजापि १.३३.२२
 खलतां खलतामिवाफलां १०.९.३५२
 खेचरीचित्तलोहानां १.३१.२१

[ग]

गङ्गीयन्ति सदा समस्त- १.१९.१३

[उ]

उच्चोरःस्थलमाश्रिता
 उत्थाप्य वेगात्प्रणते सुते ते
 उत्थाय वेगेन धराधिराजः
 उदारपुत्रोऽपि भवान्मृहं मे
 उद्भिन्नस्तनकुड्मले
 उद्यन्मन्द्रजयानकध्वनि-
 उपस्थिते कार्ययुगे

३.३९.१२०

७.२.२५४

३.१०.१०३

२.५१.८५

७.१.२५१

८.५.३२४

२.११.५६

[ए]

एकोत्तरं शतमिमे मधुरा
 एतामुत्पलखेटनामनगरीं
 एतौ खचरभूमीश-
 एवं जिनेन्द्रमहिमोत्सव-
 एवं नाकाधिराजस्य
 एवं पापविपाकेन
 एवं प्रस्थाय सैन्यैः
 एवं मण्डितविग्रही
 एवं मोहवशाद्यथामति
 एवं शच्या भूषितं देवदेवं
 एवं शासितराज्यस्थ

६.४७.२४९

२.२.४९

८.७.२८५

२.६९.९५

५.२९.२१३

१.३८.२६

९.१९.३३६

२.५७.९०

८.९.२८६

५.१४.२०४

३.४५.१२६

गजवृषभवस्त्रचक्राम्बुज-	८.३२.३०३
गत्वा महापूतजिनालयं	२.२३.६५
गीर्वाणेन्द्रास्त्रजगतां	४.६०.१७७
गुणश्रेणी देव त्रिभुवनपते	८.३६.३१३
गुरुवियोगहुताशनदीपितं	१०.४७.३७१

[घ]

घोटाटोपस्फुटितवसुधा-	३.८.१०१

[च]

चकोराक्षी सेयं	२.९.५५
चक्रभ्रान्तिमुदारदण्ड-	१०.१२.३५३
चक्री ततः समाहूय	२.२५.६६
चक्रे चक्रस्य पूजां	९.१.३२१
चञ्चच्चन्दनकल्पकद्रुकुसुमैः	५.१२.२०१
चतुर्णिकायत्रिदशास्तदानीं	४.५४.१७२
चन्द्रात्मना सुधावधौ	४.३३.१६२
चारुलक्षणसंपन्न-	२.७१.९६
चिरभुगगतामेतां	४.१३.१४५
चिरान्छयालुं सद्धर्मं	४.५२.१७१
चैत्रे मासवरे धरेश्वरसती	४.३८.१६५

[छ]

छायासु कल्पकतरोः	३.२४.११४

[ज]

जग्राह पाणौ नरपालपुत्रीं	२.५९.९१
जटीभूताः केशा विभुशिरसि	८.३.२८३
जन्तुः पापवशादवास-	७.२८.२७१
जम्बूद्वीपमहाम्बुजस्य	८.६.२८४
जम्बूद्वीपे सुरशिखरिणः	२.१.४९
जयकुञ्जरमारुढः	९.२९.३४१
जयन्तु श्रीमन्तः	१.१०.५
जयतां मृदुगम्भीरै-	१०.५०.३४३
जयवर्मेति विख्यातो	१.५४.३५
जयश्रिया यत्र वृते	३.६१.१३४
जयागारे चक्रे विजितरविबिम्बे	३.५७.१३२
जयेश नन्देति गभीर-	१.६६.४२
जातेयं कवितालता	१.१२.६
जायापत्योर्मेलने केलिगेहे	२.६६.९४
जिननन्दनद्रुमोऽयं	५.३१.२१४

जिनस्त्रिलोकीजनवन्द्यपादो	४.४६.१६९
जिनबालशीतरश्मिर्	५.३२.२१४
जिनेन्दोऽस्मीलत्पदकमल-	१०.३३.३६५
जीयादादिजिनेन्द्रवासरमणिः	१.२.२
जीवं जीवं प्रति	१.३.३
जीवादिभोक्षपर्यन्त-	३.३१.११७
जेता समस्तहरितां	१०.२६.३६१

[त]

तज्जलं जलदोद्गीर्णं	९.३३.३४५
ततः कतिपयैरेव	९.३८.३४७
ततः कल्याणि कल्याणं	२.१७.६१
ततश्चक्रधरस्यास्य	८.२.३२१
ततः प्रभाते परितुष्टचित्तः	८.१०.२८७
ततः श्रीमान् लेखाचल इव	८.८.२८५
ततः स्तनयवाङ्मय-	१.४०.२८
ततः पूर्वमुखं स्थित्वा	७.३९.२७६
ततः समरसंघट्टे	१०.१३.३५४
ततश्चक्रधरापायाल्	३.५.१००
ततो जयजयाराव-	५.६.१९४
ततो जिनाभकस्यास्य	५.२.१८९
ततो दिव्याम्बरधरं	२.५५.८७
ततो देवः श्रीमान्	७.३४.२७२
ततो धीरोदारः	१.२७.१८
ततो न्यपाति क्षितिपेन	२.५८.९१
ततोऽसौ कालान्ते	३.६३.१३५
ततोऽस्य चेतसीत्यासीच्	७.२३.२६९
ततो भरतभूपतिः	९.२७.३४१
ततः शक्राज्ञया देव-	४.५३.१७२
ततः समागत्य मुदा मरुत्वान्	७.४२.२७८
ततः सानन्दमानन्द-	७.१७.२६६
ततः सुबाहुप्रथितोऽह्मिन्द्रः	६.२२.२३३
ततः सैन्यैः साकं	९.८.३२९
ततोऽस्माकं यथाद्य स्यात्	७.७.२५६
तत्कालकामदेवं	६.४५.२४८
तत्तादृक्षमहोत्सवे	५.२१.२०७
तत्पादौ प्रणमन्नसौ	२.१२.५७
तत्रत्यदेवस्त्वरितं समागाद्	९.३५.३४६
तत्रागुरुलसद्धूम-	३.२२.११२
तत्रानन्दातित्रिभुवनपति	७.१२.२६०

धर्माध्वनि चिन्तकतां	५.२७.२१२
धातुः शिल्पादिरम्य-	६.४६.२४९
ध्वक्तां कुतोर्यर्राजि	५.२६.२१२
धीरसस्य महावृद्धि	७.३२.२७२
धूलिकेलीं ततानायं	५.४०.२१९

[न]

नगर्यां केशवोऽत्रैव	३.५४.१३१
नटत्सुरवधूजनप्रविसरत्	५.१३.२०१
नतः सुरः ससत्कारं	९.२०.३३७
न तया कल्पवल्लयेव	४.१७.१४७
नदवनजमुदारं	४.३१.१६१
नदीपबन्धुगाम्भीर्य-	४.४०.१६६
नभश्चरधरापतिसु	१.२६.१७
नभःस्थलमुपेयुषां	१०.२२.३५९
नरजन्यालसमानो	६.३८.२४५
न शोभते राज्यमिदं त्वया विना	१०.५.३५१
नाकनारीमुखाम्भोज-	३.३६.११९
नाकाधीश्वरमौलिमौक्तिक	७.२०.२६८
नागास्ते सहसाम्बुदाकृति-	९.३२.३४४
नाभिक्षमारमणस्तदा	५.२०.२०७
नाभिक्षापतिपूर्वभूधर-	४.३९.१६५
नासाकैतवदीर्घवंश-	४.१५.१४५
निधिपतिमुखैर्दृष्ट-	१०.४२.३६९
निधीशे कौबेरीं	९.१८.३३५
निपेनुरमरस्त्रीणां	९.२६.३४०
निरञ्जनत्वं नयनाञ्चले	२.६८.९५
निभिद्य मिथ्यात्वमहान्ध-	३.३०.११६
निर्वर्ण्य पट्टकमिदं	२.३९.७९
निशम्य भरताधिपो	८.४५.३१८
निसर्गसौन्दर्यनिधेरमुष्य	३.५५.१३१
निस्तारको ग्रामपति-	१०.३१.३६४
नीरक्षीरनयेन यः	७.२७.२७०
नृपास्तथा मागधमुख्य-	१०.२७.३६२
नोदरे विकृतिः कापि	४.३०.१६०

[प]

पञ्चाननसुतं तत्र	८.५.२८३
पण्डितापि तरलाधि तवेष्टं	२.२२.६५
पदं तत्र जिनाधिप	२.६२.९२

परमहिमयुतं तदीयवक्षः	६.६.२२५
परिवारजनैः कृतोपचारः	२.४५.८०
परिनिष्क्रमणस्य काल-	७.३०.२७२
परिवेष्ट्य मध्यमर्ष्टि	४.९.१४३
परीषद्भट्टोद्भूतां	७.३३.२७३
पश्यतो मे हृष्टान्नेत्रं	२.६४.९३
पात्रं त्रिधा जघन्यादि-	८.१८.२९२
पादाङ्गुलनखांशुराजिकलितं	६.१०.२२७
पितामहौ च तस्थाम्	६.२८.२३८
पितुर्यादृक् तादृक् ललितगमनं	६.३६.२४४
पिपासा क्षुब्धाधा तरलयति	७.६.२५६
पीठबन्धः सरस्वत्याः	५.३४.२१६
पुण्यश्रियं समधिकां	४.४४.१६८
पुण्याशीर्वचनारवैर्मृगदृशां	६.२९.२३९
पुण्योदयेन कलितं सुरलोक-	३.३५.११९
पुत्रोऽयं तनुकास्तिनिर्मलजलः	६.३३.२४१
पुत्रैः कलत्रैश्च महापवित्रैः	७.४.२५५
पुरन्दरपुरान्तराक्षमसि	४.५६.१७४
पुरः पश्चाद्दूर्ध्व	२.१९.६२
पुरः प्रवृत्ता सेनायाः	४.६६.१८१
पुराणि परिकल्पयन्	७.८.२५७
पुरा लब्धं पुण्यं	९.१४.३३३
पुष्पाञ्जलिः पतन् रेजे	५.२३.२१०
पुष्पैर्देवौघवृष्टैः सुरपटह-	८.२२.२९४
पुण्यत्सुमनो वितते	४.६९.१८४
पूजा द्विजानां शृणु वत्स	१०.३६.३६६
पूजान्ते देवदेवं	८.४४.३१७
पूर्ववत् पश्चिमे खण्डे	९.३१.३४३
पूर्वोक्तकर्मनिर्माण-	१०.३०.३६४
पूर्वोक्ता वरदत्ताद्या	३.४८.१२७
पूर्वोक्ते प्राग्विदेहैस्ति	२.४.५१
पृथ्वीशोऽप्यवधिज्ञान-	४.२६.१५७
पैतृकीं सम्पदं प्राप्य	३.४.९९
पैतृष्वस्त्रीय एवायं	२.३७.७६
प्रकीर्यन्तां पुण्यै-	३.१३.१०५
प्रभया तुल्यत्येष	२.४४.७९
प्रभुः कच्छमहाकच्छ-	७.१९.२६७
प्रवेपमानाग्रपदं	५.३९.२१९
प्रश्नाभिर्धं मधु निगीर्य	१.५१.३४
प्रागुक्ताश्च भृगा जन्म	३.२३.११४

प्राज्यप्रभावप्रभवः
प्राणोज्ज्वल जगतां सोऽयं
प्रौढशोभनखरांशुवैभवो

४.१.१४०
३.४४.१२४
४.४२.१६७

महनीयप्रभापूरै-
महापूतख्याते
महाबल इतीरितः

२.५६.८९
२.५४.८७
१.५०.३३

[व]

बलाघातोद्गोर्ण-
बहवः सलिलासारा
बहिः पाराधारं
बहुलञ्जनैरपि विभो
बाल्ये राज्यभरोर्जितः
ब्राह्मीं तनूजामतिमुन्दराङ्गीं

९.७.३२८
१०.२०.३५९
९.१२.३३१
५.१७.२०५
३.६.१००
६.४०.२४६

महाबलभवे भवान्मम
महाबलख्यातमुतं
महास्थपतिरातेने
महीतलं तदा व्योम
माधे मासि चतुर्दशी
मातङ्गोपरिसंपतन्त्यनु-
मामच्युतेन्द्रमवगच्छ
मालतीसुकुमाराङ्गी

३.२८.११६
१.२३.१६
२.५३.८६
३.१.९७
१०.४३.३७०
१०.३.३४९
२.२९.७०
२.३०.७२

[भ]

भगवन्तौ युवां वक्त्यौ
भजामस्त्वां लोकाधिप
भरतेशकरोन्मुक्ताम्भोधारा
भवनामरभवनेषु
भवभयनिशारम्भे
भवस्मरणसंभूत-
भवानपि महाधीरो
भानि भ्राजितकान्तिसार-
भुजयन्त्रनियन्त्रणावशेन
भुजरयपवनाहतद्युसिन्धु-
भुवनत्रितयातिशायिशोभां
भूयः प्रोत्साहितो देवैः
भूपारत्नमणीधृणि-

३.२६.११५
५.१५.२०४
१०.२१.३५९
४.४७.१७०
२.६१.९२
१.३९.२७
१.४४.३०
४.३.१४२
१०.२४.३६०
१०.२३.३६०
६.४.२२५
९.३६.३४६
६.४८.२५०

मिथ्यात्वपङ्ककलुषे
मिथ्यात्वातपतप्तो
मुक्तादामपरम्परावृत-
मुक्तिश्चिनेपथ्यैः
मुक्तिश्चिहाररत्नं
मुखवारिजं विलोचं

प्र०.१.३७४
६.७.२२५
५.३.१९०
५.२८.२१३
३.३३.११७
५.३५.२१६

[य]

यः काञ्चनश्रियं धत्ते
यत्पादाम्बुजमानमत्सुर-
यदीयकीर्तिकल्लोलैः
यदीयकनकोज्ज्वल-
यद्देव्यो यश्च सन्मुख्यः
यद्वा स व्यतनोज्जिनाङ्ग-
यशोधर महायोगि-

२.४२.७९
१०.६.३५१
१.२०.१३
१.१४.१०
३.३७.१२०
५.८.१९६
२.२६.६७

[म]

मतिं विधेहि लोकस्य
मदकरिषटाबन्धै-
मदीयरत्नप्रचयं
मनुकुलवारिजदिनकर-
मनोजतूष्णीयुगलं मृगाक्ष्या
मन्ता सत्कार्यधूमनां
मन्दस्मितप्रसरकुन्द-
मन्दारवनविहारी
ममालये यदिष्टं ते
मरीचिश्च श्रीमद्भरत-
मरुद्धेरीरावैरितरसुर-
मलयजघनसारामार-

६.१३.२२८
१०.१५.३५५
१.१३.१०
६.३७.२४५
४.५.१४२
७.१४.२६३
१.६५.४०
६.३०.२३९
२.५२.८५
८.३.२८२
५.९.१९८
२.८.५५

यश्च यत्परिवाराश्च
यस्य चन्द्रनिभा कीर्तिः
यस्य प्रतापतपनेन
यस्याज्ञा नृपलेखवर्ग-
यस्याम्बरोज्ज्वलो देहो
यस्याः शारदनीरदा
युगादिब्रह्मणा तेन
युष्मद्दानसमीक्षणेन
येन पाणौ गृहीतापि

३.३८.१२०
२.४०.७९
१.२१.१४
१०.२८.३६२
२.४३.७९
१.१५.१०
७.१०.२५८
३.१८.१०९
१.२८.२०

[र]

रङ्गतुरङ्गमतरङ्गवती
रत्नत्रयं राजति
रत्नगर्भा धरा जाता

३.७.१०१
१.५.४
४.२१.१५३

रत्नस्तम्भोरुलक्ष्मी-	८.३१.३०३
राकाकोकारिकान्ति-	४.४५.१६८
राकाकोकरिपुप्रतीतवदनो	३.४९.१२८
राजन् राजसमानवक्त्र	१.३६.२४
राजोक्तिर्मयि तस्मिंश्च	१०.११.३५३
रामा मनोहरा नाम	१.२२.१४
रोमराजिर्हरिनिभा	२.४९.८२
रोमश्रेणी कुसुमधनुषा	४.१०.१४३

[ल]

लक्ष्मीरिवापरा तस्य	२.६.५२
लक्ष्म्याः समस्तवसुवृद्धि-	४.२४.१५६
लक्ष्म्याः साकं विपुलमभवत्	३.५६.१३१
ललिताङ्ग एष ललिताङ्ग-	१.६३.४०
ललिताङ्गभवे युष्मत्	३.१४.१०६
ललिताङ्ग तृतीयेऽङ्गि	२.३६.७६

[व]

वक्ता नाट्यागमनां	५.२२.२०८
वक्त्रे दोषाकरश्री-	९.२२.३३७
वचनाधरो मृगाक्ष्या	४.१४.१४५
वज्रजङ्घभवे यास्य	६.४३.२७७
वज्रजङ्घभवे यासौ	३.४६.१२६
वज्रदन्त इति विश्रुतो नृपस्	२.५.५१
वज्रबाहुरदात्कन्यां	२.७०.९५
वत्स कालान्तरे दोष-	१०.३७.३६६
वन्दित्रातप्रकटितमुधा	६.१९.२३२
वन्दित्वा भरताधिपो	८.४६.३१८
वाणीं मे प्रथयन्तु	१.६.४
वाणीं श्रुत्वा खगाधीशो	१.४६.३०
वातोद्धूतप्रसरविसरद्	७.२४.२७०
वाहिनीं विनिवेश्यात्र	४.७१.१८६
विख्यातपश्चिमविदेह-	१.५३.३५
विचित्रनानावादित्र-	१.३५.२३
विजयार्धगिरेरहं नियन्ता	९.२१.३३७
विजयार्धगिरौ जिते समस्ते	९.२३.३३८
वितीर्णराज्यभारस्य	७.३५.२७४
विद्धि मां विजयार्द्धस्य	९.२५.३३९
विनृत्यद्वारस्त्रीचरण-	६.४२.२४७
विमलसलिलान्यस्य	८.२३.२९८

विषराशिसमुपजातां	७.२६.२७०
विशालविमलाम्बरस्फुट-	९.३.३२१
विशासितकुशासनं	१.४.३
वृषभजिनपख्यात-	८.११.२९४
वृषभसेनमुख्यगणिनस्	१०.४९.३७२
वृषो धर्मस्तेन	५.३०.२१३
व्यन्तरभेरीरावो	४.४८.१७०
व्यपगतवलिभङ्गं	६.४१.२४६
व्यपास्य चिन्तां गुरुशोक-	१०.४८.३७२
व्याकीर्णप्रचुरप्रसूननिकरे	५.१.१८९
व्यापारितदृशं तत्र	९.९.३२९

[श]

शङ्खास्तदानीं पृतनाधिराजैः	३.२.९७
शमादर्शनमोहस्य	३.२९.११६
शम्बरारिमदभेदनधीरो	४.४१.१६७
शरान्वर्षति मारोऽयं	२.२०.६४
शरीरवल्लीकुसुमायमानं	६.३५.२४४
शश्वद्वादितदेवदुन्दुभिरवैः	८.२४.२९६
शाणोल्लीढे कृपाणे	६.२५.२३६
शास्ता तस्याः सकलखचर-	१.१८.१३
शुद्धाम्बुस्तपने निष्ठां	५.११.२०१
शृणु वक्ष्यामि लोलाक्षि	२.२८.६७
शोकं जहीहि शतपत्र-	२.२६.६७
श्रीमती तत्करस्पशति	२.६०.९१
श्रीमद्विव्यवचोनवामृत-	१०.३५.३६५
श्रीमद्गीतमनामधेय-	१.११.६
श्रीमतीं रमयामास	३.३.९८
श्रीमान् भरतराजर्षि-	८.४२.३१५
श्रुतस्कन्धोदञ्चित-	१.७.४

[ष]

षड्भिर्मासिर्जिनाधीशे	४.२०.१५२

[स]

सत्यं सुरेन्द्रचापः	८.२९.३००
सदाखण्डलाभिख्यभाक्रान्त-	६.९.२२६
सद्दृष्टिर्मध्यमं पात्रं	८.१९.२९२
सन्ध्यात्रये पावनरूपमेत-	१०.४६.३७१
समवसरणभूमि सार-	८.२५.३०८

२. पुरुदेवचम्पूप्रबन्धे समागतव्रतानां विधिनिरूपणम्

जिनगुणसम्पत्ति—पृष्ठ ६१, ७१

हरिवंशपुराणमें इसका नाम जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति-व्रत दिया है। इसकी विधि पुरुदेवचम्पूमें इस प्रकार दी है—

षोडशतीर्थकरभावनाश्चतुस्त्रिंशदतिशयानष्टप्राति-
हार्याणि पञ्चकल्याणकान्युद्दिश्य त्रिपष्टिदिवसैः क्रिय-
माणमुपोषितव्रतं जिनगुणसंपत्तिरिति जोष्यते।

सोलह तीर्थकरभावनाएँ, चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य और पाँच कल्याणक इन्हें लक्ष्य कर त्रेशठ दिनमें किया जानेवाला उपवास व्रत जिनगुणसंपत्ति-व्रत कहलाता है।

इस व्रतमें एक उपवास और एक पारणाके क्रम-
से ६३ उपवास और ६३ पारणाएँ की जाती हैं।
सब मिलाकर १२६ दिनमें व्रत पूर्ण होता है।

श्रुतज्ञान—पृष्ठ ६२, ७१

हरिवंशपुराणमें इसका नाम श्रुतविधि दिया है।
इसकी विधि पुरुदेवचम्पूकारने इस प्रकार दी है—

अष्टाविंशतिमतिज्ञानभेदानेकादशाङ्गान्यष्टासीति -
सूत्राणि प्रथमानुयोगं परिकर्मद्वयं चतुर्दशपूर्वाणि पञ्च-
चूलिकाः षडवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानद्वयं केवलज्ञानमेक-
मुद्दिश्याष्टपञ्चाशदधिकदिनशतेन क्रियमाणमनशनव्रतं
श्रुतज्ञानमिति श्रूयते।

अठाईस मतिज्ञानके भेद, ग्यारह अंग, अठासी
सूत्र, प्रथमानुयोग, दो परिकर्म, चौदहपूर्व, पाँच चूलि-
काएँ, छह प्रकारका अवधिज्ञान, दो प्रकारका मनः-
पर्ययज्ञान और एक प्रकारका केवलज्ञान, इन सबको
लक्ष्यकर एक सौ अष्टावन दिनके द्वारा किया जाने-
वाला अनशनव्रत श्रुतज्ञानव्रत नामसे प्रसिद्ध है।

इसकी विधि इस प्रकार है कि एक उपवास
और एक पारणा इस क्रमसे इसमें १५८ उपवास
और १५८ पारणाएँ होती हैं। यह व्रत तीन सौ
सोलह दिनमें पूर्ण होता है।

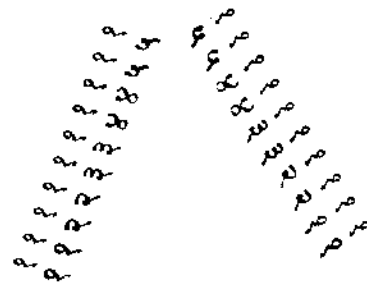
मुक्तावली—पृष्ठ ६९

इस व्रतमें २५ उपवास और ९ पारणाएँ होती
हैं। उनका क्रम यह है—एक उपवास एक पारणा,
दो उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा,
चार उपवास एक पारणा, पाँच उपवास एक पारणा,
चार उपवास एक पारणा, तीन उपवास एक पारणा,
दो उपवास एक पारणा और एक उपवास एक
पारणा। यह व्रत चौतीस दिनमें पूर्ण होता है।

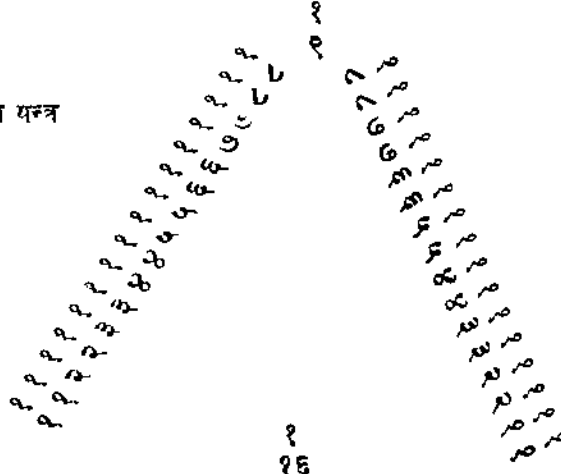
सिंहनिष्क्रीडित व्रत—पृष्ठ ६९

सिंहनिष्क्रीडितव्रतके जघन्य, मध्यम और
उत्कृष्टकी अपेक्षा तीन भेद हैं। जघन्यमें ६० उप-
वास और २० पारणाएँ होती हैं। यह व्रत ८० दिनमें
पूर्ण होता है। मध्यममें एक सौ त्रेपन उपवास और
तैंतीस पारणाएँ होती हैं। यह व्रत एक सौ छियासी
दिनमें पूर्ण होता है। उत्कृष्टमें चारसौ छियानवे
उपवास और इकसठ पारणाएँ होती हैं। इस व्रतमें
कल्पना यह है कि जिस प्रकार सिंह किसी पर्वतपर
क्रमसे ऊपर चढ़ता है और फिर क्रमसे नीचे उतरता
है उसी प्रकार इस व्रतमें मुनि तत्परूपी पर्वतके
शिखर पर क्रमसे चढ़ता है और क्रमसे उतरता है।
इसके उपवास और पारणाकी विधि निम्नलिखित
यन्त्रोंसे स्पष्ट की जाती है। नीचेकी पंक्तिसे उपवास
और ऊपर पंक्तिसे जिसमें एकका अंक लिखा है
पारणा समझना चाहिए।

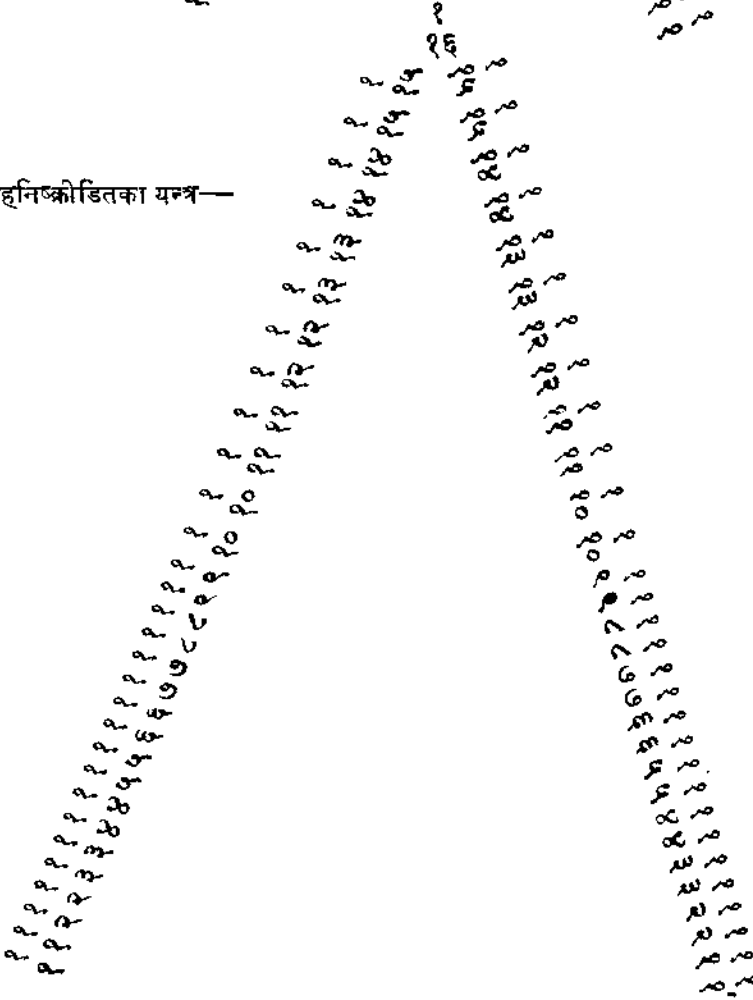
जघन्य सिंहनिष्क्रीडितका यन्त्र।



मध्यम सिंहनिष्क्रोडितका यन्त्र



उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रोडितका यन्त्र—



सर्वतोभद्र—पृष्ठ ६९

इसमें ७५ उपवास और २५ पारणाएँ होती हैं। १०० दिनमें व्रत पूर्ण होता है। इसकी विधि जानने-के लिए एक पाँच भंगका चौकोर प्रस्तार बनावे और एकसे लेकर पाँच तकके अंक उसमें इस तरह भरे

कि सब ओरसे गिनने पर पन्द्रह-पन्द्रह उपवासोंकी संख्या निकल आवे। इन पन्द्रह उपवासोंमें पाँचका गुणा करनेसे उपवासोंकी संख्या ७५ और पाँच पारणाओंमें पाँचका गुणा करनेसे २५ पारणाओंकी संख्या निकलती है। इसकी विधि यह है—एक उपवास एक

३. पुरुषदेवचम्पूप्रबन्धस्य पारिभाषिकशब्दानुक्रमणी

[शब्दोंके आगे दिये हुए तीन अंकोंमें पहला अंक स्तवक, दूसरा अंक श्लोक या साधारण संख्या तथा तीसरा अंक पृष्ठका है। दूसरे अंकमें कोष्ठकके भीतरका अंक गद्यका है जो साधारण संख्याके अनुसार है।]

[अ]

अग्नित्रय	१०.(६५).३७१	अन्न	१०.(४२).३६४
१. गार्हपत्याग्नि, २. दक्षिणाग्नि, ३. आहवनीयाग्नि ये तीन अग्नियाँ हैं। इनमें क्रमसे तीर्थंकर, गणधर और सामान्य केवलियोंका अन्तिम संस्कार होता है।		दश शुद्धियोंमें एक	
अग्निवृद्धि	१०.(४२).३६३	अन्नप्राशन—	१०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया		गर्भान्वय क्रिया	
अणिमादिगुण	१.९६.४३	अभिषेक—	१०.(४२).३६३
अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व		गर्भान्वय क्रिया	
अदण्डधत्व	१०.(४२).३६३	अवतार—	१०.(४२).३६३
दश अधिकारोंमें एक अधिकार		दीक्षान्वय क्रिया	
अध्रुवादिद्वादशानुप्रेक्षा	८.(३५).२९३	अवध्यत्व—	१०.(४२).३६३
१. अध्रुव, २. अशरण, ३. संसार, ४. एकत्व, ५. अन्यत्व, ६. अशु- चित्व, ७. आश्रय, ८. संवर, ९. निर्जरा, १०. लोक, ११. बोधि- दुर्लभ, १२. धर्म		दश अधिकारोंमें एक अधिकार	
अतिशाल—	१०.(४२).३६३	अहर्परमेष्ठी—	३.(९६).१३०
दश अधिकारोंमें एक अधिकार		अरहन्त, जितेन्द्र, ज्ञानावरण, दर्श- नावरण, मोह और अन्तराय इन चार धातिया कर्मोंका क्षय करने- वाले जीव अरहन्त परमेष्ठी कहलाते हैं। इनके ४६ मूलगुण होते हैं।	
अनन्तचतुष्टय—	८.(४१).२९७	अहमिन्द्र—	६.२२.२३३
अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तमुख और अनन्तवीर्य, ये चार अनन्त- चतुष्टय कहलाते हैं।		सोलहवें स्वर्गके ऊपरके देव।	
अनुकम्पन—अनुकम्पा	३.३२.११७	अप्रत्याख्यानलोभ—	३.(३६).१०९
सम्यग्दर्शनका एक गुण, कर्मके तीव्रोदयसे विवश हुए जीवों पर करुणाका भाव उत्पन्न होना।		लोभके चार भेद हैं—१. क्रुरिराग, २. चक्रमल, ३. अङ्गमल, ४. हरिद्रा राग। यह चार प्रकार का लोभ क्रम से नरकादि आयु के बन्ध का कारण है।	
		अवधिज्ञान—	१.५२.२७
		इन्द्रियादि पर पदार्थों की सहायता के बिना मात्र आत्मा से होने वाला विशिष्ट ज्ञान।	

अस्थिसम भद्रत्याख्यान मान— ३.(३४).१०८

मानकषाय के चार भेद हैं—१. शूल-
सम, २. अस्थि—हड्डी समान, ३.
काष्ठ समान और, ४. वेतसम, यह
चार प्रकार का मान क्रम से नर-
कादि आयु के बन्ध का कारण है।

आतोद्याङ्ग— ३.(४५).११३

एक प्रकारका कल्प वृक्ष, जिससे
नाना प्रकारके वादित्र प्राप्त होते
हैं।

आधान— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

आराधना— १.८३.३८

समाधिमरण, सल्लेखना—इसके ३
भेद हैं—१. भक्त प्रत्याख्यान, २.
इंगिनीमरण और ३. प्रायोपगमन।

आर्हन्त्य श्री— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

आस्तिक्य— ३.३२.११७

सम्यग्दर्शनका एक गुण, आप्त, व्रत,
श्रुत, परलोक आदिमें श्रद्धाका
भाव।

आस्थानभूमि— १०.(४६).३६४

समवसरण—भगवान्की धर्म सभा

आष्टाङ्गिक महोत्सव— १.(८२).३७

यह महोत्सव कार्तिक, फाल्गुन, और
आषाढ़ मासके अन्तिम आठ दिनों-
में होता है। इस महोत्सवमें देव
लोग नन्दीश्वर द्वीप जाकर वहाँके
अकृत्रिम जिनालयोंकी पूजा करते
हैं।

[इ]

इज्या— १०.(४२).३६३

श्रावकका एक कर्म

इन्द्रध्याग— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

इन्द्रोपपाद— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

[उ]

उत्तम पात्र— ८.१९.२९२

भुति

उपनयन— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

उपयोगित्व— १०.(४२).३६३

दीक्षान्वय क्रिया

[क]

कनकावली—एकव्रत २.५३.७०

कल्पावर— १०.५०.१७०

वैमानिक देव, ये सोलह स्वर्ग, नौ
मैत्रेयक, नौ अनुदिशों और पाँच अनु-
त्तर विमानों में रहते हैं। सोलहवें
स्वर्ग तक के कल्प और उसके आगे
के विमान कल्पातीत कहलाते हैं।

कान्दारचर्या— ३.९.१०२

वन में आहार मिलेगा तो लेवेंगे
अन्यथा नहीं, ऐसी प्रतिज्ञा।

काम— १०.(४२).३६४

दश शुद्धियों में एक शुद्धि

कुलचर्या— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

केवलज्ञान— १.२.२

लोक-अलोक को जाननेवाला पूर्ण
ज्ञान

केशवाप— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

कैवल्य— २.४६.६७

केवलज्ञान कल्याणक

क्रिया— १०.(४२).३६४

दश शुद्धियों में एक शुद्धि

[ग]

गन्धकुटी— १०.(४६).३६४

समवसरण का मध्य भाग जहाँ
भगवान् जिनेन्द्र विराजमान रहते
हैं।

गणग्रह— १०.(४२).३६३

दीक्षान्वय क्रिया

गणोपग्रहण— गर्भान्वय क्रिया	१०.(४२).३६३	जिनाधिपति— जिनेन्द्र देव	१.४.३
गुरुपञ्चक— अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधु ये पाँच परमेष्ठी ।	२.६.५१	जिनेन्द्रगुणसंपत्ति— एक उपवास व्रत	२.२९.६१
गुरुपूजोपलम्भन— गर्भान्वय क्रिया	१०.(४२).३६३	जीवादि पर्यन्त— जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं, इनके यथार्थ श्रद्धानको सम्यग्- दर्शन कहा गया है ।	३.३१.११७
गुरुस्थानाभ्युपगम— गर्भान्वय क्रिया	१०.(४२).३६३	ज्योतिरङ्ग— एक प्रकारका कल्पवृक्ष जिससे स्वयं प्रकाश प्रकट होता है ।	३.(४५).११३
गृहत्याग— गर्भान्वय क्रिया	१०.(४२).३६३	ज्योतिष्क— एक प्रकारके देव, इनके सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ये पाँच भेद हैं ।	४.४९.१७०
गृहांग— एक प्रकारके कल्पवृक्ष जिनसे इच्छा- नुकूल गृह प्राप्त होते हैं ।	३.(४५).११३		
गृहीशिव— गर्भान्वय क्रिया	१०.(४२).३६३		

[च]

चक्रलास— गर्भान्वय क्रिया	१०.(४२).३६३
चक्राभिषेक— गर्भान्वय क्रिया	१०.(४२).३६३
चारित्र— सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके होने पर हिंसादि पाँच पापोंसे विरत होना चारित्र कहलाता है ।	३.३०.११६
चर्याशुद्धि— तीन शुद्धियोंमें एक शुद्धि	१०.(४२).३६४
चारणार्द्धि— जिस ऋद्धिके प्रभावसे आकाशमें गमन होता है	२.५४.७१

[ज]

जघन्य पात्र— अविरत सम्यग्दृष्टि	८.१८.२९२
जिनगुणसंपत्ति— एक व्रत	२.५४.७१
जिनरूपता— गर्भान्वय क्रिया	१०.(४२).३६३

[त]

तप— श्रावकका एक धर्म	१०.(४२).३६२
तीर्थकरस्वभावना— गर्भान्वय क्रिया	१०.(४२).३६३
त्रिबोध किरण— मति, श्रुत, अवविज्ञानरूपी किरण	४.३९.१६५
त्रिमूढता— १ लोकमूढता, २ देवमूढता, ३ गुरुमूढता ।	३.३१.११७
त्र्यरत्नि प्रमित— तीन हाथ प्रमाण	३.५०.१३०

[द]

दण्ड— धनुष, चार हाथका एक दण्ड या धनुष होता है ।	८.(४१).२९६
दत्ति— श्रावकका एक कर्म, दान	१०.(४२).३६३
दर्शन— सम्यग्दर्शन	२.३३.७५

दर्शनभेद—

३.२९.११६

मोहनीयकर्मका एक भेद, इसके उदयसे मिथ्यादर्शन होता है। इसके तीन भेद हैं—१. मिथ्यात्व, २. सम्यग्मिथ्यात्व और ३. सम्यक्त्व प्रकृति ।

छति—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

ध्यानचतुष्टय—

१.६०.३०

रौद्रध्यान, आर्तध्यान, धर्म्यध्यान, और शुक्ल ध्यान ।

दश सागरोपम—

३.(२१).१०४

असंख्यात वर्षोंका एक सागर होता है, ऐसे दश सागर प्रमाण ।

[न]

दिक्स्थिका—

३.२७.१५९

रुचकगिरि पर रहनेवाली ५६ देवियाँ ।

नवकेवललब्धि—

८.(५२).३०५

केवलज्ञान, केवलदर्शन, धायिक-सम्यक्त्व, धायिकचारित्र, धायिक-दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये नव केवललब्धियाँ कहलाती हैं ।

दिविजय—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

नवनिधि—

८.(५२).३०४

काल, महाकाल, नैःसर्प, पाण्डुक, पद्म, पिंगल, माणक, शंखा, सर्व-रत्न ये नौ निधियाँ हैं ।

दिश्य देह—

३.५०.१३०

वैक्रियिक शरीर

दीक्षाद्य—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

नवपदार्थ—

८.(५२).३०५

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये नौ पदार्थ हैं ।

दीपाङ्ग—

३.(४५).११३

एक प्रकारके कल्पवृक्ष, जिनसे विविध प्रकारके दीपक प्राप्त होते हैं ।

नामकर्म—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

दृढचर्या—

१०.(४२).३६४

दीक्षान्वय क्रिया

निषद्या—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

देवता—

१०.(४२).३६४

दश शुद्धियोंमें एक शुद्धि

निःसंगत्वात्ममाधना—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

द्वादशकोष्ठक—

८.३४.३०७

समवसरणकी १२ सभाएँ

[प]

[ध]

धर्म्यध्यान—

८.(३५).२९३

इसके चार भेद हैं—१. आज्ञा-विचय, २. अपायविचय, ३. विपाक-विचय, ४. संस्थानविचय । यह ध्यान चतुर्थसे लेकर सप्तम गुणस्थान तक होता है । वीरसेन स्वामीके मतसे दशम गुणस्थान तक ।

पक्षशुद्धि—

१०.(४२).३६४

तीन शुद्धियोंमें एक शुद्धि

पञ्चाद्वय—

३.१८.१०३

१. रत्नवृष्टि, २. पुष्पवृष्टि, ३. मन्दवायु, ४. दुन्दुभिनाद, ५. जय-घोष अथवा अहोदानं अहोदानं की ध्वनि ।

परमार्हन्त्य—

१०.(४२).३६३

कर्त्रन्वय क्रिया

परमौदारिक शरीर—

६.(२).२२२

मनुष्य और तिर्यचोका शरीर
औदारिक शरीर कहलाता है।
श्रेष्ठताको प्राप्त औदारिक शरीर
परमौदारिक शरीर कहलाता है।
एक परमौदारिक शरीर तेरहवें,
चौदहवें गुणस्थानवर्ती अरहन्त
भगवान्का होता है, वह सप्त
धातुओंके विकारसे रहित होता है।
उसमें बादर निगोद जीव नहीं
रहते।

परिनिष्क्रमण—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

परमनिर्वाण—

१०.(४२).३६३

कर्त्रन्वय क्रिया

पल्य—

१.(९८).४४

असंख्यात वर्षका एक पल्य होता है।

पात्रस्व—

१०.(४२).३६३

दश अधिकारोंमें एक अधिकार

पारिवन्ध्य—

१०.(४२).३६३

कर्त्रन्वय क्रिया

पुण्ययज्ञ—

१०.(४२).३६३

दीक्षान्वय क्रिया

पुरावृत्त—

१०.(४२).३६४

दश शुद्धियोंमें एक शुद्धि

पुरुषार्थ चतुष्टय—

८.(४१).२९७

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

पूजाराध्य—

१०.(४३).३६३

दीक्षान्वय क्रिया

पूर्व—

६.(२).२२३

चौरासी लाखमें चौरासी लाखका
गुणा करने पर जो लब्ध हो उतने
वर्षोंका एक पूर्वाण होता है, और
चौरासी लाख पूर्वार्णोंका एक पूर्व
होता है।

पृथक्त्व—

१.(९८).४४

तीनसे लेकर नौसे नीचेकी संख्या
पृथक्त्व कहलाती है।

प्रत्यय—

३.३२.११७

सम्यग्दर्शनकी एक पर्याय

प्रवीचार—

३.५०.१३०

मैथुन

प्रजासम्बन्धान्तर स्वरूप—

१०.(४२).३६३

दश अधिकारोंमें एक अधिकार

प्रबोध—

३.३०.११६

सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन होनेपर
जीवादि सात तत्त्वोंका जो यथार्थ
ज्ञान होता है वह सम्यग्ज्ञान
कहलाता है।

प्रशम—

३.३२.११७

सम्यग्दर्शनका एक गुण, कषायके
असंख्यात लोकप्रमाण अवान्तर
स्थानोंमें मनका स्वभावसे शिथिल
हो जाना।

प्रशान्ति—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

प्रियोन्नव—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

प्रीति—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

[व]

बन्ध—

१.४.३

आत्मा आदि कर्म प्रदेशोंके एक
क्षेत्रावगाहको बन्ध कहते हैं। इसके
प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश
ये चार भेद हैं।

बहिर्यानि—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

[भ]

भवनानामर—

४.४७.१७०

एक प्रकारके देव, जो भवनवासी
नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके अमुरकुमार
आदि दश भेद होते हैं।

भज्य—

१.३.३

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-
चारित्र्य को प्राप्त करने की योग्यता
रखने वाले जीव।

भाजनाङ्ग— ३.(४५).११३
एक प्रकारके कल्पवृक्ष जिनसे
तरह-तरहके बर्तन प्राप्त होते हैं ।

भूषणाङ्ग— ३.(४५).११३
एक प्रकारका कल्पवृक्ष जिससे
मनचाहे आभूषण प्राप्त होते हैं ।

भोजनाङ्ग— ३.(४५).११३
एक प्रकारके कल्पवृक्ष जिनसे तरह
तरहके भोजन प्राप्त होते हैं ।

[म]

मध्यमपात्र— ८.१९.२९२
श्रावक

मन्त्र— १०.(४२).३६४
दश शुद्धियोंमें एक शुद्धि

मन्दराभिषेक— १०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

मद्याङ्ग— ३.(४५).११२
मद्याङ्ग जातिके कल्पवृक्ष, जिनसे
पौष्टिक पेय प्राप्त होता है ।

मानस्तम्भचतुष्टय— ८.(४१).२९८
समवसरण—तीर्थंकरकी धर्मसभा-
की चारों दिशाओंमें स्थित स्तम्भ
स्तम्भ । इन्हें देखनेसे मानियोंका
मान नष्ट हो जाता है इसलिए ये
मानस्तम्भ कहलाते हैं ।

मानाहृत्त्व— १०.(४२).३६३
दश अधिकारों में एक अधिकार

माल्याङ्ग— ३.(४५).११३
एक प्रकार का कल्पवृक्ष जिससे
विविध प्रकार की मालाएँ प्राप्त
होती हैं ।

मुक्तावली— २.५१.६९
एक व्रत

मेषशृङ्गसम भद्रत्याख्यान माया— ३.(३५).१०८
माया कषाय के चार भेद हैं, १.
वेणुमूल सम, २. मेषशृङ्गसम, ३.
गोमूत्रसम, ४. क्षुरप्रसम—क्षुरपी के
समान । यह चार प्रकार की माया

क्रम से नरकादि आयु के बन्ध का
कारण है ।

मोक्षमार्ग— ३ (८७).१२७
'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष-
मार्गः' सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और
सम्यक्चारित्रकी एकता मोक्षका
मार्ग है ।

मोद— १०.४२.३६३
गर्भान्वय क्रिया

मोह— १.४.४
आठ कर्मों में प्रधान कर्म

मौनाध्ययन वृत्ति— १०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

[य]

योगत्याग— १०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

योगसन्मह— १०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

योग निर्वाण संप्राप्ति— १०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

योजन— ८.(४१).२९६
चार कोश का एक योजन होता है ।

यौवराज्य— १०.(४२).३६३
गर्भान्वय क्रिया

[र]

रत्नत्रय— १.५.४
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-
चारित्र ।

रत्नावली— २.(५२) ७०
एक व्रत

रुचि— ३.(३२).११७
सम्यग्दर्शन की पर्याय

[ल]

लक्षण— ६.(२).२२२
सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार शरीर
में पाये जाने वाले शुभचिह्न ।
जिनेन्द्र के शरीर में १००८ लक्षण

होते हैं जिनमें स्वस्तिक आदि १०८
लक्षण कहलाते हैं और मसूरिका
आदि ९०० व्यञ्जन कहलाते हैं ।

डिंग— १०.(४२).३६४

दश शुद्धियों में एक शुद्धि

लिपि संख्यान— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

[व]

वज्रवृषभनाराच संहनन— ६.(२).२२२

अत्यन्त सुदृढ़ हड्डियों वाला शरीर

वर्णलाम— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

वर्णोत्तमत्व— १०.(४२).३६३

दश अधिकारोंमें एक अधिकार

वस्त्राङ्ग— ३.(४५).११३

एक प्रकारके कल्पवृक्ष जिनसे
इच्छानुसार वस्त्र प्राप्त होते हैं ।

वार्ता— १०.(४२).३६३

श्रावकका एक कर्तव्य

विधिदान १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

विद्याकुलावधि— १०.(४२).३६३

दश अधिकारोंमें एक अधिकार

वसुधाभेद संनिभ अप्रत्याख्यान

क्रोध— ३.(३३).१०७

क्रोधके चार भेद हैं—१. शिला
भेद, २. पृथिवी भेद, ३. धूलि
भेद, ४. जलरेखा भेद, यह चार
प्रकारका क्रोध क्रमसे नरक, तिर्यच
मनुष्य और देव आशुके बन्धका
कारण है ।

विषय— १०.(४२).३६४

दश शुद्धियोंमें एक शुद्धि

विषयान— ३.५०.१३०

आहार

विहार— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

व्रतचर्या— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

वृत्तकाम— १०.(४२).३६३

दीक्षान्वय क्रिया

व्रतावतरण— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

व्यञ्जन— ६.(२).२२२

भगवान्के शरीरमें पाये जानेवाले

मसूरिका आदि ९०० चिह्न व्यञ्जन
कहलाते हैं

व्यन्तर— ४.४८.१७०

एक प्रकारके देव, इनके किन्नर,
किपुरुष आदि आठ भेद होते हैं

व्यवहारेशित्व— १०.(४२).३६३

दश अधिकारोंमें एक अधिकार

व्युष्टि— १०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

[श]

शुक्लध्यान— ८.(३५).२९३

इसके चार भेद हैं—१. पृथक्त्व
वितर्क, २. एकत्ववितर्क, ३. सूक्ष्म
क्रिया प्रतिपाती और ४. व्युपरत
क्रिया निर्वात । यह आठवेंसे चौदहवें
गुणस्थान तक होता है । वीर-
सेनाचार्यके मतसे ११वें से १४वें
तक

श्रद्धा— ३.(३२).११७

सम्यग्दर्शनकी एक पर्याय

श्रुतज्ञान— २.३४.६२

एक व्रत

श्रुतज्ञान— २.५४.७१

एक व्रत

श्रुतस्कन्ध— १.७.४

द्वादशांग रूप वृक्ष

श्रुति— १०.(४२).३६४

दश शुद्धियोंमें एक शुद्धि

[ध]

षोडशस्वप्न—

३.२२.१५५

१. गज, २. वृषभ, ३. सिंह,
४. सुरगजोंके द्वारा अभिषिच्यमान
लक्ष्मी, ५. माला युगल, ६. चन्द्र-
मण्डल, ७. सूर्यमण्डल, ८. सुवर्ण
कलशयुगल, ९. मीन युगल,
१०. सरोवर, ११. समुद्र,
१२. सिंहासन, १३. देवभवन,
१४. फणीन्द्र-भवन, १५. रत्नराशि
और १६. निर्धूम अग्नि ।

[स]

सज्जाति—

१०.(४२).३६३

कर्त्तृत्व क्रिया

सद्गृह्णित्व—

१०.(४२).३६३

कर्त्तृत्व क्रिया

समचतुरस्रसंस्थान—

६.(२).२२२

मुडौल सुन्दर शरीरका आकार

सम्यग्दर्शनके आठ गुण—

३.(६०).११७

सम्यग्दर्शनके निम्न आठ गुण हैं,
इन्हे अंग भी कहते हैं—१. निशं-
कित, २. निःकांक्षित, ३. निर्वि-
चिकित्सित ४. अमूढदृष्टित्व, ५. उप-
गूहन, ६. स्थितीकरण, ७. वात्सल्य,
और ८. प्रभावना ।

सर्वतोमद्र—

२.५०.६९

एक व्रत

सल्लेखना—

१.(८२).३८

समाधिमरण, प्रतिकाररहित उप-
सर्ग, दुर्भिक्ष तथा मरण आदिका
अवसर आनेपर धर्मकी रक्षाके लिए
समताभावसे प्राण छोड़ना समाधि-
मरण या सल्लेखना कहलाता है ।
इसके भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनीमरण
और प्रायोपगमनके भेदसे तीन भेद
होते हैं ।

संप्रद—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

संवेग—

३.१२.११७

सम्यग्दर्शनका एक गुण, संसारसे

भय अथवा धर्म और धर्मात्माओंमें
स्नेह ।

संयम—

१०.(४२).३६३

श्रावकका एक धर्म

साधनशुद्धि—

१०.(४२).३६४

तीन शुद्धियोंमें एक शुद्धि

साम्राज्य—

१०.(४२).३६३

कर्त्तृत्व क्रिया

साम्राज्य—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

सिंहनिष्क्रीडित—

२.५०.६९

एक व्रत

सुरेन्द्रत्व—

१०.(८२).३६३

कर्त्तृत्व क्रिया

सुखोदय—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

सुप्रीति—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

सृष्ट्यधिकार—

१०.(४२).३६३

दश अधिकारोंमें एक अधिकार

स्थानलाम—

१०.(४२).३६३

दीक्षान्वय क्रिया

स्पर्श—

३.३२.११७

सम्यग्दर्शन पर्याय

स्मृति—

१०.(४२).३६४

दश शुद्धियोंमें एक शुद्धि

स्थाद्वाद—

१.६.४

पदार्थमें रहनेवाले नित्य, अनित्य
आदि धर्मोंको विवक्षावश गौण
और मुख्य करते हुए कथन करना ।

स्वगुरुस्थानसंक्रान्ति—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

स्वराज्य—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

स्वाध्याय—

१०.(४२).३६३

श्रावकका एक कर्म

[ह]

हिरण्योत्कृष्टजन्मता—

१०.(४२).३६३

गर्भान्वय क्रिया

४. पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य भौगोलिकशब्दानुक्रमणिका

[शब्दोंके आगे दिये हुए तीन अंकोंमें पहला अंक स्तवक, दूसरा अंक श्लोक या गद्य तथा तीसरा अंक पृष्ठका है । दूसरे अंकमें कोष्ठक वाला अंक गद्यका है जो कि साधारण संख्याके अनुसार है ।]

[अ]

अच्युतकल्प—	२.(१).४८
सोलहवाँ स्वर्ग	
अच्युत—	३.(८७).१२७
सोलहवाँ स्वर्ग	
अपरान्तिक—	७.(१२).२५७
एक देश	
अंजन्गिरि—	२.३५.७५
एक पर्वत	
अम्बरत्तिक—	२.(२५).६०
विदेहक्षेत्रका एक पर्वत	
अयोध्या—	४.(२१).१४७
भारतकी एक प्रसिद्ध नगरी	
अयोध्यानगर—	२.(५३).७९
घातकीखण्ड द्वीपकी पूर्वदिशा सम्बन्धी पश्चिम विदेहके गन्धिल देशका एक नगर	
अरिष्ट—	१.६७.३३
पूर्व विदेह क्षेत्रके कच्छ देशका एक नगर	
अलका	१.(१३).९
विजयार्थ पर्वतकी उत्तर श्रेणीकी एक नगरी	
अवन्ती—	७.(१२).२५७
एक देश	
आन्ध्र	७.(१२).२५७
एक देश	
आमीर—	७.(१२).२५७
एक देश	

[उ]

उत्तरकुह—	३.(४५).११४
विदेहक्षेत्रमें मेरुका उत्तरवर्ती प्रदेश, जहाँ उत्तम भोगभूमिकी रचना है	
उत्पलखेट—	२.२.४९
जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देशकी एक नगरी	
उन्मग्नजला—	९.(४५).३४२
विजयार्थकी गुहामें बहनेवाली एक नदी	

[ऐ]

ऐशानकल्प—	१.६१.३९
दूसरा स्वर्ग	

[क]

कच्छ—	१.६७.३३
पूर्वविदेहका एक देश	
कच्छ—	७.(१२).२५७
एक देश	
करहाट—	७.(१२).२५७
एक देश	
कर्णाटक—	७.(१२).२५७
एक देश	
कल्याणाद्रि	१.(६४).३१
सुमेरु पर्वत	
कलिग—	७.(१२).२५७
एक देश	
कांचन—	३.(२७).१०६
ऐशान स्वर्गका एक विमान	
काम्बोज—	७.(१२).२५७
एक देश	

काशी—	७.(१२).२५७	[त]	
एक देश		तमिलगुहा—	९.(४५).३४२
काश्मीर—	७.(१२).२५७	विजयार्थकी एक गुहा	
एक देश		तुरुङ्क—	७.(१२).२५७
कुरु—	७.(१२).२५७	एक देश	
एक देश		[द]	
कुरुजांगल—	७.(१२).२५७	दशार्ण—	७.(१२).२५७
एक देश		एक देश	
केकय—	७.(१२).२५७	दिवाकर प्रभ—	३.(२६).१०६
एक देश		ऐशान स्वर्गका एक विमान	
केदार—	७.(१२).२५७	द्रविड—	७.(१२).२५७
एक देश		एक देश	
केरल—	७.(१२).२५७	[ध]	
एक देश		धातकीखण्ड—	२.(२५).६०
कोसल—	७.(१२).२५७	मध्यलोकका दूसरा द्वीप	
एक देश		भान्यनामनगर—	३.(३५).१०८
[ग]		एक नगर	
गन्धार—	७.(१२).२५७	[न]	
एक देश		नन्दाख्यविमान—	३.(६४).११९
गन्धर्वपुर—	२.(५१).६९	ऐशान स्वर्गका एक विमान	
जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह सम्बन्धी		नन्दीश्वरद्वीप—	२.(८८). ८४
मंगलावती देशका एक नगर		आठवाँ द्वीप जहाँ ५२ अकृत्रिम	
गान्धिल—	१.७३.३५	जिनालय हैं	
पश्चिम विदेहका एक देश		नन्दावर्तविमान—	३.(६४).११९
गान्धिल—	१.(१३).८	ऐशान स्वर्गका एक विमान	
विजयार्थ पर्वतका एक देश		निमग्नजला—	१०.(४५).३४२
गांगेयगिरि—	१०.(३५).३६०	विजयार्थ पर्वतकी गुफामें बहने-	
सुमेरु पर्वत		वाली एक नदी	
[च]		निषध—	१०.(२४).३५७
चित्रांगदविमान—	३.(६४).११९	एक कुलाचल	
ऐशान स्वर्गका एक विमान		(प)	
चेदि—	७.(१२).२५७	पङ्कप्रभा—	३.(२१).१०४
एक देश		चौथा तरक	
चोल—	७.(१२).२५७	पङ्कलव—	७.(१२).२५७
एक देश		एक देश	
[ज]		पलालपर्वत—	२.(२७).६०
जम्बूद्वीप	१.(१३).७	विदेहके गन्धिल देशका एक ग्राम	
मध्यमलोकका आद्य द्वीप			

[म]

पाटलिग्राम— २.(२५).६०

पश्चिम विदेहके गन्धिल देशका
एक ग्राम

पाण्डुकवन— ४.७१.१८६

मेरुपर्वतका एक वन, जिसमें
पाण्डुकशिला होती है

पुण्डरीकिणी— २.४.५१

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी
एक नगरी

पुण्डरीकिणी— २.(५९).७३

धातकीखण्ड द्वीपके पश्चिम भाग
सम्बन्धी मेरुसे पूर्व दिशामें स्थित
विदेहके पुष्कलावती देशकी एक
नगरी

पुरिमाल— ८.(३५).२९३

एक नगर, जिसके उपवनमें भगवान्
वृषभदेवको केवलज्ञान हुआ था

पुरन्दरपुर— ४.५६.१७२

स्वर्ग, सौधमन्द्रका निवास नगर

पुष्करद्वीप— २.(४९).६८

मध्यलोकका तीसरा द्वीप

पुष्कलावती— २.१.४९

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहका एक देश

पूर्वमन्दर— २.(४९).६८

पुष्कर द्वीपका पूर्व मेरु

प्रभा— ३.(२७).१०६

ऐशानस्वर्गका एक विमान

प्रभाकरपुरी— २.(५१).७०

पुष्करद्वीपके पश्चिम भाग सम्बन्धी
पूर्व विदेहके वत्सकावती देशकी एक
नगरी

प्रभाकरपुरी— २.(६०).७४

धातकीखण्डके पश्चिम भाग
सम्बन्धी पूर्व विदेहके वत्सकावती
देशकी एक नगरी

प्रभाकरपुरी— ३.(२१).१०४

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी
वत्सकावती देशकी एक नगरी

प्राणत— २.(६०).७४

तेरहवाँ स्वर्ग

मगध—

७.(१२).२५७

एक देश

मङ्गलावती—

२.(४९).६८

पुष्करद्वीपके पूर्व विदेह का एक देश

मङ्गलावती—

२.(५१).६९

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहका एक देश

मन्दराग—

४.६९.१८४

सुमेरुपर्वत

मन्दरगिरि—

८.(६८).३१६

मेरु पर्वत

मन्दरमूधर—

१०.(५८).३६९

मन्दराचल

महाकच्छ—

७.(१२).२५७

एक देश

महाराष्ट्र—

७.(१२).२५७

एक देश

महापूतजिनालय—

२.२३.६५

विदेह क्षेत्रका एक प्रसिद्ध मन्दिर

मानुषोत्तर पर्वत—

८.(५२).३०४

पुष्करवर द्वीपके मध्यमें स्थित

बलयाकार पर्वत

मालव—

७ (१२).२५७

एक देश

[र]

रजताचल—

१.(१३).९

विजयार्ध पर्वत

रत्नसंचय—

२.(४९).६८

मंगलावती देशका एक नगर

रत्नसंचय—

३.(७६).१२३

पुष्करार्ध द्वीपके पूर्वार्ध सम्बन्धी

पूर्व विदेहमें स्थित मंगलावती

देशका एक नगर

रत्नसंचय राजधानी—

२.(६०).७४

पुष्करार्ध द्वीपके पूर्वभाग सम्बन्धी

पूर्व विदेहके मंगलावती देशका एक

नगर

रम्य—

७.(१२).२५७

एक देश

राजताद्रि—

९.१९.३७

[श]

विजयार्ध

रूपित—

३.(२७).१०६

ऐशान स्वर्गका एक विमान

रौप्यममीधर—

९.१९.३३६

विजयार्ध पर्वत

[ल]

लवणजलधि—

८.(१८).३३१

लवण समुद्र

लेखाचल

८.८.२८५

सुमेरु पर्वत

[व]

वङ्ग—

७.(१२).२५७

एक देश

वत्सकावती—

२.(५१).७०

पुष्करद्वीपके पश्चिम भाग सम्बन्धी

पूर्व विदेहका एक देश

वरस—

७.(१२).२५७

एक देश

वनभेद—

७.(१२).२५७

एक देश

वनवास—

७.(१२).२५७

एक देश

वाहिक—

७.(१२).२५७

एक देश

विजयनामपुर—

३.(३४).१०८

एक नगर

विदम—

७.(१२).२५७

एक देश

विदेह—

७.(१२).२५७

एक देश

वृषभाद्रि—

९.(५५).३४६

विजयार्ध पर्वतके दक्षिणमें स्थित

एक पर्वत, जिसपर चक्रवर्ती अपनी

विजय प्रशस्ति अंकित कराते हैं

शकट—

८.(३५).२९३

पुरिमताल नगरके निकट स्थित

एक वन

शूरसेन—

७.(१२).२५७

एक देश

श्रीप्रभ—

१.६१.३९

ऐशान स्वर्गका एक विमान

श्रीप्रभगिरि—

३.६३.१३५

विदेहका एक पर्वत

श्रीप्रभविमान—

३.(६३).११८

ऐशान स्वर्गका एक विमान, जिसमें

वज्रजंघका जीव श्रीधर देव हुआ

श्रीप्रमाद्रि—

३.(७०).१२१

विदेहका एक पर्वत

[स]

सर्वार्थसिद्धि—

६.२२.२३३

पाँच अनुस्तर विमानोंका मध्यवर्ती

विमान

साकेत—

४.१९.१५२

अयोध्या नगरीका दूसरा नाम

साकेतपुरी—

४.(६६).१६९

अयोध्यानगरी

साकेतपुर—

६.(२२).२२९

अयोध्या

सिद्धकूट—

१.(८२).३८

विजयार्ध पर्वतकी एक शिखर,

जहाँ एक अकृत्रिम जिनालय होता है

सिन्धु—

७.(१२).२५७

एक देश

सिंहपुर—

१.७३.३५

पश्चिम विदेहके गान्धिल देशका

एक नगर

सुरपतिनगर—

९.२२.३३७

स्वर्ग

सुप्रतिष्ठितपुर—

३.(३६).१०८

एक नगर

सुरशैल— सुमेरु पर्वत	४.७१.१८५	स्वयंप्रभ विमान— ऐशान स्वर्गका एक विमान	३.(६४).११८
सुसीमानगर— जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह सम्बन्धी वत्सकावती देशका एक नगर	२.(५९).७३	स्वयंभूरमणोदधि— मध्यलोकका अन्तिम समुद्र	२.३५.७५
सौमद्रक— एक देश	७.(१२).२५७	[ह]	
सौराष्ट्र— एक देश	७.(१२).२५७	हस्तिनापुर— राजा सोमप्रभकी राजधानी	८.(१७).२८६
सौवीर— एक देश	७.(१२).२५७	हेमभूमिधर— सुमेरु पर्वत	४.६७.१८१



५. पुरुदेवचम्पूप्रबन्धस्य व्यक्तिवाचकशब्दानुक्रमणी

[शब्दोंके आगे दिये हुए तीन अंकोंमें पहला अंक स्तवक, दूसरा अंक श्लोक तथा गद्य और तीसरा अंक पृष्ठका है । दूसरे अंकमें कोष्ठकवाला अंक गद्यका है जो कि साधारण संख्याके अनुसार है ।]

[अ]

अकम्पन—	७.(२७).२६७
वाराणसीके राजा	
अकम्पन—	३.(१२).१०१
वज्रजंघका सेनापति	
अभ्युत—	६.(६१).२४५
भगवान् ऋषभदेवका पुत्र	
अजितंजय—	२.(५९).७३
जम्बूद्वीप विदेह क्षेत्र वत्सकावती	
देशकी सुसीमा नगरीका राजा	
अजितंजय—	२.(५३).७१
जयवर्मा और सुप्रभाका पुत्र	
अजितंजय—	२.(६०).७४
रत्नसंचय राजधानीके राजा	
अतिबल—	१.१८.१३
अलकापुरीका राजा, महाबलका पिता	
अतिबल—	२.(५९).७३
घनंजय राजा और यशस्वती रानीका पुत्र नारायण	
अतिगुह्य—	३.(२१).१०४
प्रभाकरपुरीका एक राजा यतिवर का जीव	
अनन्तवीर्य—	६.(६०).२४५
भगवान् वृषभदेवका पुत्र	
अनन्तमति—	३.५४.१३१
धनदेवकी माता	
अनन्तमति—	३.(८६).१२७
सूकरार्य तथा मणिकुण्डलीके जीव वरसेनकी माता	

अनन्तमति—	३.(२९).१०६
आनन्द पुरोहितकी माता	
अनन्तविजय—	६.(५९).२४५
भगवान् वृषभदेवका पुत्र	
अनुन्दरी—	२.११७.९५
वज्रबाहुकी पुत्री, वज्रजंघकी बहन	
अपराजित—	३.(५३).१३१
नकुलार्यका जीव	
अपराजित सेनानी—	३.(२९).१०६
अकम्पनके पिता	
अमयघोष—	३.(८०).१२५
एक चक्रवर्ती, मनोरमाके पिता	
अमिनन्दन—	२.(५४).७१
एक तीर्थंकर	
अमिततेज—	२.११७.९५
वज्रदन्त चक्रवर्तीका पुत्र, श्रीमतीका भाई	
अमृतमति—	२.(५९).७३
अजितंजय राजाका सचिवश्रेष्ठ	
अरविन्द—	१.३६.२४
राजा महाबलका पूर्वज	
अरिजय—	१.(६८).३३
चारण ऋद्धिधारी एक मुनि	
अर्हदास—	१.७४.४७
ग्रन्थकर्ताका नाम	

[आ]

आजीवा—	३.(२९).१०६
अकम्पनकी माता	
आत्मरक्ष—	४.(७८).१७३
देवोंका एक भेद	

आदिस्थ— लौकान्तिक देवोंका एक भेद	७.(४०).२७१	किष्करेश— कुबेर	५.(१).१८८
आदिस्थगति— चारण ऋद्धिधारी भुनि	१.(६८).३३	किद्विष— देवोंका एक भेद	४.(७८).१७३
आदिजिनेन्द्रवासरमणि— प्रथम जिनेन्द्ररूपी सूर्य	१.२.३	कीर्ति— एक देवी	४.२७.१५९
आदिदेव— भगवान् ऋषभदेव	७.(२९).२६८	कुबेर— धान्यनगरका एक वैश्य	३.(३५).१०८
आदिब्रह्मा— भगवान् वृषभदेव	७.(२९).२६८	कुबेरदत्त— धनदेवका पिता	३.५४.१३१
आनन्द— वज्रजंघका पुरोहित	३.(१२).१०१	कुरुराज— जयकुमार	९.(५३).३४५
आभियोग्य— देवोंका एक भेद	४.(७८).१७३	कुरुराज— सोमप्रभ और श्रेयान्त	८.१६.२९१
आवर्त— एक म्लेच्छ राजा	९.(४८).३४४	कुरुराज— सोमप्रभका नामान्तर	७.(२७).२६७
आशाधर— सागर धर्माभूतादि ग्रन्थोंके कर्ता	प्र.१,३७४	कुरुबिन्द— राजा अरविन्दका द्वितीय पुत्र	१.३७.२५
[इ]		कुलधर— भगवान् वृषभदेव	७.(२९).२६८
ईशानवासव— ऐशानस्वर्गका इन्द्र	४.६५.१७९	कुलिशधरवर— इन्द्रप्रमुख, सौधमेंद्र	५.२२.२०८
[उ]		कुलिशायुध— सौधमेंद्र	७.(५४).२७७
उग्रसेन— व्याघ्रका जीव	३.(३३).१०७	कृतमाल— एक देव	९.(३५).३३८
[क]		केशव— श्रीमतीका जीव	३.(८८).१२७
कच्छ— यशस्वती और सुनन्दाके भाई	६.१५.२२९	[ग]	
कनकाम— एक देव, वज्रजंघके मन्त्रीका जीव	३.(२७).१०६	गोर्वाजेन्द्र— सौधमेंद्र	४.६०.१७७
कनकप्रभा— ललितांगदेवकी स्त्री	१.(९६).४३	गीतम— भगवान् महावीरके प्रमुख गणधर	१.११.६
कनकलता— ललितांगदेवकी स्त्री	१.(९६).४३	[च]	
काश्यप— एक राजा	७.(२७).२६७	चक्रपाणि— भरत चक्रवर्ती	९.(२०).३३३
काश्यप— भगवान् वृषभदेव	७.(२९).२६८	चन्द्रकीर्ति— वज्रबाहु चक्रवर्तीका पूर्वभव	२.(४८).६०

चन्द्रमति—	३.(८६).१२७	[त]	
चित्रांगदका पिता		त्रायस्त्रिंश—	४.(७८).१७३
चन्द्रसेन—	२.(४८).६७	देवीका एक भेद	
एक मुनि		त्रिभुवनकमन—	७.(१९).२६१
चकित—	९.(४८).३४४	भगवान् वृषभदेव	
एक म्लेच्छ राजा		त्रिभुवनगुरु—	७.(१७).२४८
चित्रमालिनी—	३.(८६).१२७	भगवान् वृषभदेव	
प्रशान्तमदनकी माता			
चित्रांगद—	३.(८६).१२७	[द]	
वानरार्थका जीव		दण्ड—	१.(५०).२६
चित्रांगद—	३.(६४).११८	महाबलका वंशज एक विद्याधर	
एक देव, शार्ङ्गलका जीव		दमधर—	३.(१८).१०३
चिन्तागति—	३.(१२).१०१	एक मुनि	
वज्रजंघका एक दूत		दिवाकरप्रभ—	३.(२६).१०६
	[ज]	ऐशान स्वर्गका एक देव,	
जम्भद्विषत्—	४.६२.१७७	भरत चक्रवर्तीका पूर्वभव	
सौधमेन्द्र		देवदेव—	६.१८.२३१
जयकीर्ति—	२.(४८).६७	भगवान् वृषभदेव	
चन्द्रकीर्तिका मित्र		देवराज—	४.(१०९).१८७
जयन्त—	३.५३.१३१	सौधमेन्द्र	
वानरार्थका जीव		देवल—	२.(२७).६०
जयन्ता—	२.(५९).७३	पलालपर्वत ग्रामका एक ग्रामकूट	
धनंजय राजाकी स्त्री		(ग्रामका स्वामी)	
जयवर्मा—	२.(५३).७१	हृदधर्म—	३.(४७).११४
गन्धिल देशकी अयोध्या नगरीका		एक मुनि	
राजा		हृदवर्मा—	२.(६).५१
जयवर्मा—	१.५३.३५	ललितांगदेवकी देवांगना, स्वयं-	
श्रीषेण और श्रीसुन्दरीका पुत्र,		प्रभादेवीकी अन्तःपरिषद्का एक	
महाबलका पूर्वभव		देव	
जयसेन—	२.(६०).७४	दोर्बली—	१०.२२.३५९
राजा महासेन और वसुन्धराका पुत्र		वाहुबली	
जयसेन—	२.(२५).६०		
नागदत्त और सुदतीका पुत्र		[ध]	
जिनपतिशशी—	१.३.३	धनंजय—	२.(५९).७३
आदि जिनेन्द्र रूपी चन्द्रमा		घातकीखण्डके पश्चिम मेरुसम्बन्धी	
जिनेश्वर—	६.३९.२४६	पूर्वविदेहके पुष्कलावती देशकी	
भगवान् वृषभदेव		पुण्डरीकिणी नगरीका राजा	
जिनसेनार्थगुरु—	१.१०.५	धनदत्त—	३.(२९).१०६
आदिपुराणके कर्ता जिनसेनाचार्य		धनमित्र सेठका पिता	

धनदत्ता— धनमित्र सेठकी माता	३.(२९).१०६	नाभि— भगवान् वृषभदेवके पिता	४.(२)१४१
धनदेव— केशवका जीव	३.(५४).१३१	नाभिराज— भगवान् वृषभदेवके पिता	४.३१.१६१
धनमित्र— वज्रजंघका श्रेष्ठी	३.(१२).१०१	नाभिक्षमारमण— नाभि राजा	५.२०.२०७
धनवती— हस्तिनानगरके एक वैश्य सागर- दत्तकी स्त्री	३.(३३).१०७	निधिपति— चक्रवर्ती भरत	९.१.३२१
धनश्री— देवल और सुमतिकी पुत्री	२.(२७).६१	निधीश— भरत चक्रवर्ती	९.१८.३३५
धनेश्वरसती— मरुदेवी	४.३८.१६५	निर्जरपति— सौधर्मेन्द्र	४.७०.१८५
धृति— एक देवी	४.२७.१५९	निर्नामिका— नागदत्त और सुदतीकी छोटी पुत्री श्रीकान्ताका दूसरा नाम	२.(२५).६०
		नीलांजना— सुरनर्तकी	७.(३२).२६९

[न]

नन्द— नागदत्त और सुदतीका पुत्र	२.(२५).६०
नन्दिमित्र— नागदत्त और सुदतीका पुत्र	२.(२५).६०
नन्दिषेण— नागदत्त और सुदतीका पुत्र	२.(२५).६०
नन्दिषेण— वरसेनका पिता	३.(८६).१२७
नभि— राजा कच्छका पुत्र	८.(१०).२८४
नाकराज— सौधर्मेन्द्र	७.(१७).२५९
नाकाधिराज— सौधर्मेन्द्र	५.२९.२१३
नागदत्त— पाटलिग्रामका एक वणिक्	२.(२५).६०
नागदत्त— वानरका पूर्वभव	३.(३५).१०८
नागबर्हिमुख— देवविशेष	९.(४८).३४४
नाख्यमाळ— खण्डप्रपात गुहाका स्वामी एक देव	९.(५७).३४७

[प]

पण्डिता— श्रीमतीकी धाय	२.(१६).५६
पारिषद— देवोंका एक भेद	४.(७८).१७३
पिहितास्त्रव— एक मुनि	३.(२५).१०५
पिहितास्त्रव— अम्बरतिलक पर्वतपर विराजमान एक मुनि	२.(२६).६०
पिहितास्त्रव— एक मुनि	२.३४.७५
पिहितास्त्रव— एक मुनि	२.(५४).७१
पीठ— अकम्पनका जीव	३.(९८).१३१
पुण्डरीक— वज्रदन्त चक्रवर्तीके पुत्र अमिततेज- का पुत्र	३.(९).१००
पुरुदेव— भगवान् वृषभदेव	१.७४.४७

पुरुनन्दन—	६.३४.२४२	बाहुबली—	६.(६८).२४७
भगवान् वृषभदेवका पुत्र		भगवान् वृषभदेवकी सुनन्दा रानी	
पुरुपरमेश्वर—	७.(५२).२४२	का पुत्र	
भगवान् वृषभदेव		श्राद्धी—	६.४०.२४६
पुरुदूत—	५.(४९).२१३	भगवान् वृषभदेवकी पुत्री	
इन्द्र			
प्रजापति—	७.(१२).२६८	[म]	
भगवान् वृषभदेव		भरत—	६.(४७).२४१
प्रमंजन—	३.(२७).१०६	भगवान् वृषभदेवका यशस्वती	
एक देव, वज्रजंघके पुरोहितका		रानीसे उत्पन्न पुत्र	
जीव		भुजबली—	७.३४.२७३
प्रमंजन—	३.(८६).१२७	बाहुबली	
प्रशान्तमदनका पिता			
प्रभाकर—	३.(२७).१०६	[म]	
एक देव, वज्रजंघके सेनापतिका जीव		मधवा—	७.(२७).२६७
प्रभावती—	२.(५१).६९	राजा काश्यपका नामान्तर	
गन्धर्वपुरके राजा वासवकी रानी		मणिकुण्डली—	३.(६४).११९
प्रियदत्ता—	३.(८६).१२७	एक देव, सूकरार्यका जीव	
शार्दूलार्यके जीव वरदत्तकी माता		मणिचूल—	३.(५३).११५
प्रहसित—	२.(५९).७३	स्वयंबुद्ध मन्त्रीका जीव, एक देव	
अमृतमति मन्त्रीका पुत्र		मणिमाली—	१.(५०).२६
प्रियव्रता	८.(७२).३१८	दण्ड विद्याधरका पुत्र	
एक श्राविका		मतिवर—	३.(१२).१०१
प्रियसेन—	३.(५३).११५	वज्रजंघका महामन्त्री	
पुण्डरीकिणी नगरीका राजा,		मतिसागर—	२.(५९).७३
प्रीतिकरका पिता		एक मुनि	
प्रीतिकर—	३.(५३).११५	मदनकान्ता—	२.(२५).६०
एक मुनि, स्वयंबुद्धमन्त्री और		नागदत्त और सुदत्तीकी पुत्री	
मणिचूलदेवका जीव		मनोगति—	३.(१२).१०१
प्रीतिदेव—	३.(५४).११६	वज्रजंघका एक दूत	
एक मुनि, स्वयंबुद्धके जीव प्रीतिकर-		मनोरमा—	३.८०.१२५
के भाई		अभयघोष चक्रीकी पुत्री, सुविधिकी	
प्रीतिवर्धन—	३.(२२).१०४	स्त्री	
एक राजा		मनोरमा—	२.(४९).६८
पौलोमी—	४.५९.१७६	रत्नसंचयके राजा श्रीधरकी स्त्री	
सौधमेन्द्रकी इन्द्राणी		मनोरथ—	३.(८६).१२७
		नकुलार्यका जीव	
[ब]		मनोहर—	३.(६४).११९
बलाराति—	५.२४.२११	एक देव, नकुलार्यका जीव	
इन्द्र			

मनोहर— एक देव, वानरायका जीव	३.(६४).११९	माहेन्द्र— माहेन्द्र स्वर्गका इन्द्र	४.(९४).१७९
मनोहर— वानरायका जीव	३.(८६).१२७	मेघकुमार— भवनवासी देवोंका एक भेद	५.(१).१८८
मनोहरा— रत्नसंचयके राजा श्रीधरकी स्त्री	२.(४९).६८	मेघसूख— देव विशेष	९.(४८).३४४
मनोहरा— राजा अतिबलकी स्त्री, महाबलकी माता	१.२२.१४	मेघेश्वर— जयकुमार, हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभके पुत्र	९.(५३).३४५
मन्दरस्थविर— एक मुनि	२.(५४).७१	[य]	
मरुत्वान्— सौधमैन्द्र	७.४२.२७८		
मरुदेवी— भगवान् वृषभदेवकी माता	४.२.१४१	यशस्वती— धनंजय राजाकी स्त्री	२.(५९).७३
मरीचि— भरतचक्रवर्तीका पुत्र	८.३.२८२	यशस्वती— भगवान् वृषभदेवकी स्त्री	६.१५.२२९
महाकच्छ— यशस्वती और सुनन्दाके भाई	६.१५.२२९	यशोधर— वज्रदन्त चक्रवर्तीके पिता	२.(६५).७६
महीधर— वासव और प्रभावतीका पुत्र	२.(५१).६९	यशोधरगुरु— एककेबली	२.(१२).५४
महानन्द— विजयपुरका राजा	३.(३४).१०८	युगन्धर— एक महायोगी मुनि	२.(५०).६९
महाषोठ— धनमित्रका जीव	३.(९८).१३१	युगन्धर— राजा अजितंजय और वसुमतिके पुत्र एक तीर्थंकर	२.(६०).७४
महाबल— अलकाके राजा अतिबलका पुत्र, भगवान् वृषभदेवका पूर्वभव	१.२३.१६	[र]	
महाबल— राजा धनंजय और जयन्ता रानी का पुत्र बलभद्र	२.(५९).७३		
महाबाहु— आनन्दका जीव	३.(९८).१३१	रथांगपाणि— भरतचक्रवर्ती	९.(१८).३३२
महामति— राजा महाबलका एक मन्त्री	१.(३९).२१	[ल]	
महासेन— प्रभाकरपुरीका राजा	२.(६०).७४		
मागधपति— एक देव	९.१३.३३२	लक्ष्मी— एक देवी	४.२७.१५९
		लक्ष्मीमति— हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभकी स्त्री	८.१३.२८९
		लक्ष्मीमती— पुण्डरीकिणीके राजा वज्रदन्तकी स्त्री, श्रीमतीकी माता	२.६.५२
		ललितान्ग— ऐशान स्वर्गका एक देव, महाबलका जीव, भगवान् वृषभदेवका दूसरा भव	१.६२.३९

कोकपाल—	४.(७८).१७३	वसुन्धरा—	२.२.४९
देवीका एक भेद		उत्पलखेट नगरीके राजा वज्रबाहु—	
लोकेश्वर—	७.२.२५४	की रानी, वज्रजंघकी माता	
भगवान् वृषभदेव		वपुन्धरा—	२.(६५).७६
कोलुप—	३.(३६).१०८	वज्रदन्त चक्रवर्तीकी माता	
सुप्रतिष्ठितपुरका एक हलवाई,		वसुमती—	२.(६०).७४
नकुलका पूर्वभव		राजा अजितजय की स्त्री	
[व]		वासव—	२.(५१).६९
वज्रजंघ—	२.२.४९	गन्धर्वपुरका राजा एक विद्याधर	
ललितांगदेवका जीव, भगवान्		वासव—	४.६३.१७८
वृषभदेवका एक पूर्वभव		सौधर्मेन्द्र	
वज्रदन्त—	२.५.५१	विकसित—	२.(५९).७३
पुण्डरीकिणी नगरीका राजा,		अमृतमति मन्त्रीके पुत्र प्रहसितका	
श्रीमतीका पिता		मित्र	
वज्रदन्त—	३.(११२).१३५	विजय—	३.५३.१३१
वज्रनाभि चक्रवर्तीका पुत्र		शार्दूलार्यका जीव	
वज्रधर—	५.(४१).२११	विजय—	१.३६.२४
इन्द्र		राजा अरविन्दकी स्त्री	
वज्रनाभि—	३.(९६).१३१	विजयार्ध—	९.२१.३३७
अच्युतेन्द्रका जीव, भगवान् वृषभ-		विजयार्ध पर्वतका एक अधिष्ठाता	
देवका पूर्वभव		व्यन्तरदेव	
वज्रबाहु—	२.२.४९	विद्युत्कला—	१.(९६).४३
उत्पलखेट नगरीके राजा वज्रजंघके		ललितांगकी स्त्री	
पिता		विनयधर—	२.(५१).७०
वज्रसेन—	३.(९६).१३१	एक केवली	
वज्रनाभि चक्रवर्तीका पिता		विनमि—	८.(१०).२८४
वरदत्त—	३.(८६).१२७	राजा महाकच्छका पुत्र	
शार्दूलार्य तथा चित्रांगदका जीव		विभीषण—	३.(८६).१२७
वरवीर—	६.(६३).२४६	शार्दूलार्यके जीव, वरदत्तके पिता	
भगवान् वृषभदेवका पुत्र		विभीषण—	२.(४९).६८
वरसेन—	२.(२५).६०	रत्नसंचयके राजा श्रीधर और	
नागदत्त और सुदत्तीका पुत्र		मनोरमा रानीका पुत्र नारायण	
वरसेन—	३.(८६).१२७	विमलबाह—	३.(८७).१२७
मणिकुण्डलीका जीव		एक तीर्थंकर	
वसन्तसेना—	३.(३४).१०८	वीर—	३.(९).९९
विजयपुरके राजा महानन्दकी स्त्री		वज्रजंघ और श्रीमतीका पुत्र	
वसुन्धरा—	२.(६०).७४	वीर—	६.(६२).२४६
प्रभाकरपुरीके राजा महासेनकी		भगवान् वृषभदेवका पुत्र	
स्त्री		वृषभ—	१.१.१
		प्रथम तीर्थंकर, कथानायक	

वृषभसेन—	६.(५८).२४५	श्रीवर्मा—	२.(४९).६८
भगवान् वृषभदेवकी यशस्वती रानी		श्रीधर राजा और मनोहरा रानी-	
से उत्पन्न एक पुत्र		का पुत्र—बलभद्र	
वृषभसेन—	१०.४७.३७१	श्रीषेण—	१.५३.३५
भगवान् वृषभदेवका प्रमुख गणधर		गान्धिल देशके सिंहपुर नगरका	
वैजयन्त—	३.(५३).१३१	राजा	
सूकरार्यका जीव		श्रीसुन्दरी—	१.५३.३५

[श]

शक—	४.५३.१७२	श्रुतकीर्ति—	८.(७२).३१८
सौधर्मेन्द्र		एक उपासक	
शतवल्—	१.(५६).२९	श्रुतकीर्ति—	३.(२९).१०६
राजा महाबलका पितामह		आनन्द पुरोहितका पिता	
शतबुद्धि—	३.(७५).१२३	श्रेणिक—	१.११.६
शतमति, महाबलके मन्त्रीका जीव		मगधके सम्राट्, भगवान् महावीर	
शतमति—	१.(३९).२१	स्वामीकी सभाके प्रमुख श्रोता	
राजा महाबलका एक मन्त्री		(बिम्बसार)	
शतयज्वा—	५.११.२०१	श्रेयान्—	३.(३८).१०९
सौधर्मेन्द्र		दानतीर्थके प्रवर्तक श्रेयांस राजा	

[स]

श्री—	४.२७.१५९	सत्यभामा—	२.(५९).७३
एक देवी		अमृतमति मन्त्रीकी स्त्री	
श्रीकान्ता—	२.(२५).६०	समाधिगुप्त—	२.(२०).६१
नागदत्त और मुदत्तीकी पुत्री, इसी-		एक मुनि	
का दूसरा नाम निर्नामिका था		समाधिगुप्त	२.(६०).७४
श्रीकान्ता—	३.(९६).१३१	एक मुनि	
वज्रनाभि चक्रवर्तीकी माता		संभिन्नमति—	१.(३९).२१
श्रीधर—	७.(२७).२६७	राजामहाबलका एक मन्त्री	
राजा अकम्पनका नामान्तर		सहस्रबल—	१.(५७).२९
श्रीधर—	२.(४९).६८	महाबलका प्रपितामह	
मंगलावती देशके रत्नसंचयनगरका		सागर—	३.(२९).१०६
राजा		मतिवर मन्त्रीका पिता	
श्रीधर—	३.(६४).११८	सागरदत्त—	३.(३३).१०७
एक देव, वज्रजंघका जीव		हस्तिनापुरका एक वैश्य	
श्रीमती—	३.(२९).१०६	सागरसेन—	३.(१८).१०३
मतिवर मन्त्रीकी माता		एक मुनि	
श्रीवर्मा—	१.५४.३५	सानकुमार—	४.(९४).१७९
सिंहपुरके राजा श्रीषेण और		सानकुमार स्वर्गका इन्द्र	
श्री सुन्दरीका पुत्र, जयवर्माका छोटा		सामानिक—	४.(७८).१७३
भाई		देवोंका एक भेद	

सारस्वत—	७.(४०).२७१	सुविधि—	३.(७७).१२४
लौकान्तिक देवोंका एक भेद		सुदृष्टि राजा और सुन्दरनन्दाका	
सिद्धार्थ—	८.(२१).२८८	पुत्र, श्रीधरदेवका जीव	
हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभका		सुराधिप—	७.(१२).२५७
द्वारपाल		सौधमैन्द्र	
सोमन्धर—	२.(६०).७४	सुराधिपति—	४.५१.१७१
एक तीर्थंकर		सौधमैन्द्र	
सुश्रामा—इन्द्र	४.१८.१४८	सुराधिपतिसुन्दरी—	५.१३.२०१
सुदती	२.(२५).६०	सौधमैन्द्रकी इन्द्राणी	
पाटलिग्राम निवासी नागदत्त वर्णिक		सुरादि जीव—देवगण	४.३२.१६१
की स्त्री		सुरेन्द्र—सौधमैन्द्र	७.३३.२६९
सुदत्ता—	३.(३५).१०८	सोमप्रभ—	७.(२७).२६७
धान्यनगरके कुबेर वैश्यकी स्त्री		हस्तिनापुरके राजा	
सुदर्शना—	२.(५४).७१	सोमप्रभ—	८.१३.२८९
एक गणिनी (आर्यिका)		हस्तिनापुरका राजा श्रेयांसका	
सुदृष्टि—	३.(७७).१२४	भाई	
सुसीमानगरीका राजा, सुविधिका		सौधर्मपति—	४.(९१).१७८
पिता		सौधर्मस्वर्गका इन्द्र	
सुधर्मगुरु—	२.(४९).६८	स्वयंप्रभ—	३.(६४).११८
एक मुनि		एक देव, श्रीमतीका जीव	
सुनन्दा—	६.१५.२२९	स्वयंप्रभ—	३.(५४).११६
भगवान् आदिनाथकी स्त्री		एक तीर्थंकर	
सुन्दरनन्दा—	३.(७७).१२४	स्वयंप्रभा—	१.(९६).४३
सुसीमानगरीके राजा सुदृष्टिकी स्त्री		ललितांगदेवकी स्त्री	
सुन्दरी—	६.४३.२४७	स्वयंप्रभगुरु—	१.(७५).३५
भगवान् वृषभदेवकी पुत्री		एक मुनि, जिनके पास जयवर्मनि	
सुन्दरी—	३.(५३).११५	दीक्षा ली	
पुण्डरीकिणी नगरीके राजा		स्वयंप्रभा—	१.(९८).४४
प्रियसेनकी स्त्री		ललितांगदेवकी देवांगना, श्रीमती-	
सुप्रभा—	२.(५३).७९	का पूर्वभव	
गन्धिल देशकी अयोध्या नगरीके		स्वयंबुद्ध—	१.(३९).२१
राजा जयवर्माकी स्त्री		राजा महाबलका मन्त्री	
सुबाहु—	३.(९८).१३१	[ह]	
मतिवरका जीव		हरि—एक राजा	७.(२७).२६७
सुबुद्धि—	४.२७.१५९	हरिकान्त—हरिका नामान्तर	७.(२७).२६७
एक देवी		हरिचन्द्र—	१.३७.२५
सुमति—	२.(२७).६०	राजा अरविन्दका प्रथम पुत्र	
पलाल पर्वत ग्रामके निवासी		हरिवाहन—वराहका पूर्वभव	३.(३४).१०८
देवलकी स्त्री		ह्री—एक देवी	४.२७.१५९

६. पुरुदेवचम्पूप्रबन्धाभ्तर्गत कतिपय विशिष्ट शब्दानुक्रमणो

[यहाँ तीन अंकोंमें प्रथम अंक स्तवक, दूसरा अंक श्लोक अथवा गद्य और तीसरा अंक पृष्ठोंका सूचक है । दूसरे अंकमें कोष्ठकगत अंक गद्यका सूचक है जो कि साधारण अंक संख्यासे गृहीत है ।]

[अ]	अनवम—	६.(३८).२३६
अमाभिख्या	४.(७८).१७२	नवम नहीं, अवम-हीन नहीं
पर्वतकी शोभा		अनाग—
अंगद—	१.(३३).१९	४.(७८).१७२
बाजूबन्द		हाथीसे भिन्न, अपराधसे रहित
अग्रमहिषी—	२.(१६).५६	अनिमेष—
पट्टरानी		१.७३.४६
अचल—	५.(४१).२११	देव, मत्स्य
पर्वत		अनीति—
अचला—	५.(४१).२११	७.२१.२६५
पृथिवी		नीतिसे रहित, ईतियोंसे रहित
अच्युतामर्त्येन्द्र—	३.(१०९).१३४	अनुकूलम्—
अच्युतस्वर्गका इन्द्र, अकारसे रहित		२.९.५५
अमर्त्येन्द्र—मर्त्येन्द्र—मनुष्योंका राजा		प्रत्येक समय
अतनु—	१.(२६).१५	अनूप—
कामदेव		७.(१२).२५७
अतिप्रचण्ड—	१.(४५).२४	अत्यधिक जलवाले देश
अत्यन्त तेजस्वी		अन्तर्वस्त्री—
असिचूड—	५.(८).१९३	६.२३.२३४
अत्यन्त बूढ़ा, अत्यन्त बड़ा हुआ		गर्भवती
अदभ्र—	६.(५२).२४३	अन्तरिक्षाकूपार—
अकृश		१.(१३).७
अदेवमातृक—	७.(१२).२५७	आकाशरूपी समुद्र
मेघवृष्टिपर निर्भर नहीं रहनेवाले		अन्तरीय—
देश		६.(४५).२४०
अधरप्रवाल—	१.७.४	वस्त्र
ओष्ठरूपी किसलयसे सहित		अपरागता—
अधिकारुण्य—	७.(३).२५३	२.६२.९२
अधिक दयालुता, अधिक लालिमा		परागसे भिन्नता, वीतरागता
अमघ—	१.७.४	अपांगसुन्दर—
निर्दोष		२.३७.७६
		अनंग कामके समान सुन्दर, कटाक्ष- से सुन्दर
		अपापा—
		८.२५.२९९
		पापरहित, अप + आप जलके समूह- से रहित
		अबलाढ्य—
		१.३४.२२
		अबला—स्त्रियोंसे सहित, अबलों- निर्बलोंसे सहित
		अब्ज—
		४.२५.१५६
		चन्द्रमा (पुं) शंख (पुं) कमल (नपुं)

अभिजात—	४.(८४).१७६	अरति—	३.५०.१३०
सुन्दर		हाथ	
अभिषेक—	३.(५१).३४५	अरविन्दधान—	१.(१३).८
सेनाकी चढ़ाई		कमलोंको धारण करनेवाला	
अमरवधूटी—	१.(९१).४१	अरालकेशी—	२.(२१).६४
देवांगना		घुँघराले बालोंवाली स्त्री	
अमरतरुमुमामोदिनी—	२.१.४९	अरिष्टगेह—	४.५८.१७५
कल्पवृक्षके फूलोंकी गन्धसे युक्त		प्रसूतिगृह	
अमरधराधर—	१.(१३).७	अरुणबिम्ब—	४.३४.१६२
सुमेरुपर्वत		लालबिम्ब, सूर्यबिम्ब	
अमराढी—	१.(६४).३२	अर्चासनाथ—	८.(५२).३०५
देवपंक्ति		प्रतिमाओंसे सहित	
अमर्त्यपति—	१ (४३).२३	अलकाधिल्या—	१.१७.१२
इन्द्र		'अलका' यह नाम, अलक-केशोंकी	
अमानवचरित्र—	४.३५.१६२	शोभा	
लोकोत्तरचरित्र, अमावस्याका		अवन—	१.(१३).८
चरित्र		रक्षक	
अमृतनिष्ठ—	३.३२.१६१	अवधिज्ञानतरणि—	१०.३३.३६५
अमृतभोजी-देव		अवधिज्ञान रूपी सूर्य	
अमृतप्रद—	५.(५५).६१५	अवनीपकजन	२.(१९).५७
मोक्षदायक, जलदायक		राजाओंका समूह	
अमृतशशि—	५.(८).१९३	अश्वीय—	९.(४८).३४४
अमृतका समुद्र, जलकी शशि		घोड़ोंका समूह	
अमृतशशन—	९.२५.३३९	असमवाण—	१.३०.२१
देव		काम	
अमृतान्धोजन—	५.(४).१८९	असिधेनुका—	१.४८.२६
देवसमूह		छुरी	
अम्बर—	१.(३३).१९	असुभृत्कदम्ब—	१.(३१).१७
आकाश, वस्त्र		प्राणिसमूह	
अम्बरमणि—	२.४३.७९		
सूर्य			
अम्बरचारी—	३.९.१०२		
आकाशमें चलनेवाले चारण ऋद्धि-			
धारी मुनि			
अम्बुजबान्धव—	१.१९.१३		
सूर्य			
अम्बुजरागरत्न—	१.१५.१०		
पद्मरागमणि			
अथस्कान्त—	१.३१.२१		
चुम्बकमणि			

[आ]

आचाम्लवर्धन	२.(५९).७३
एक व्रत	
आदितेय—	९.(३९).३३९
देव	
आधियुता—	२.२५.६६
मानसिक पीड़ासे युक्त	
आन्तर—	५.२१.२०८
हृदिक	

आभुग्न-

१.(८५).३९

[ए]

झुका हुआ

आरमटी-

५.(३९).२१०

नाटककी एक वृत्ति

आस्थान-

८.४६.३१८

समवसरण

आहिततनु-

३.२०.११०

शरीरको धारण करनेवाला

[इ]

इन्दिन्दिर-

२.(७७).८०

भ्रमर

ईर्याशुद्धि-

२.(१०५).९२

मार्ग सम्बन्धी शुद्धि

[उ]

उच्चकरेशु-

३.१.९७

ऊँचे हाथी, ऊँची उड़नेवाली धूलि

उच्चकोरकसंनिभ-

१.७१.४५

उत्कृष्ट चकोर पक्षीके समान, उन्नत
कोरक-कमलकी बोंड़ीके समान

उत्तमश्री

४.(५८).१६५

उत्कृष्ट लक्ष्मी, उठते हुए अन्धकार-
की शोभा

उदन्त-

१.(३१).१८

वृत्तान्त

उद्गण्डकाण्ड-

५.(६).१९१

ऊपरकी ओर छलकता हुआ पानी,
लम्बे बाण,

उपघ्नदण्ड-

६.(७४).२४९

आश्रयदण्ड

उपस्थका-

१.(१३).९

पर्वतके नीचेका मैदान

उल्लसद्धार-

२.(१०).५३

जिनपर हार सुशोभित है, जिनकी
धारा सुशोभित है।

उरु-

६.(१३).२२७

विशाल

ऊरु-

६.(१३).२२७

जाँघ

एकावलीतरलमणि-

४.(९५).१८०

एक लड़के हारके नीचे लगा हुआ
बड़ा मध्यमणि

ऐशवण

४.(९१).१७८

देवोंका हाथी। यह हाथी विक्रियासे
३२ मुख बनाता है, प्रत्येक मुखमें
८-८ दाँत होते हैं, प्रत्येक दाँतपर
सरोवर बनाता है, प्रत्येक सरोवरमें
३२-३२ पंखुड़ियोंवाला कमल
बनाता है और प्रत्येक पाँखुड़ीपर
देवांगनाओंका नृत्य दिखाता है।

[क]

कंकण-

२.(३५).६३

जलके कण, हाथका कड़ा

कंखुक-

४.(५४).१६४

स्तनवस्त्र

कंखुकी-

३.(१५).१०२

अन्तःपुरका वृद्ध पहरदार, साँप

कण्ठीरवकण्ठरव-

४.(४९).१७०

सिंहके कण्ठका शब्द

कथारसंज्ञा-

१.९.५

कथाके रसको जाननेवाली

कनकयन्त्रधर

२.(९).९३

सोनेकी पिचकारीको धारण करने-
वाला

कनकशिखरी-

१.(४५).३३

सुमेरुपर्वत

कनकाचल

२.(७७).८०

सुमेरुपर्वत

कनकावली

२.(५३).७०

एक तप

कनोयान्

१.५४.३५

छोटा

कन्तुक-

४.(५४).१६४

काम

कबन्ध-

५.(६).१९१

पानी, शिररहित धड़

कमलवन्धु— सूर्य	६(३०).२३२	कल्याणगुण— स्वर्णकी लड़ीवाला वस्त्र	७.(१९).२६१
कमलसहचर— कमलके समान, कमलोंका मित्र	६.(२७).२३३	कल्याणांचित— सुवर्णसे शोभित, गर्भादि पाँच	४.(१०१).१८२
कमलाधिकपरिपोष— कमलोंका अधिक पोषण, कमला— लक्ष्मीका अधिक पोषण करनेवाला	६.(३८).२३७	कल्याणोंसे शोभित	
करकाशंका— ओलोंकी शंका	५.(१९).१९९	कल्याणाद्रि— सुमेरु पर्वत	१.४७.३१
करभ— कलाईसे लेकर छिगुरी तक हाथकी बाह्य कोर	६.(१३).२२७	कलोल— सन्तति	१.(१७).११
करुणावरुणालय— दयाके सागर	९.(३७).३३९	कबरी— स्त्रीकी चोटी	२.६८.९५
करेणु— हाथी	४.५५.१७३	कांचनाचलसंनिभ— सुमेरुके समान	२.४२.७९
कर्णप्रणय— राजा कर्णका स्नेह, कान तक लम्बे	१.(२६).१५	कांचीकलाप— मेखला	२.(७७).८०
कलकण्ठ— कोयल	३.(४२).१११	काण्डवस्त्र— कमरका वस्त्र—लेंहगा	१.१४.१०
कलभकर— हाथीके बच्चेकी सूँड	६.(१३).२२७	कान्तारागांचित— स्त्रियोंके रागसे सहित, कान्तार + अग — वनके वृक्षोंसे सहित	५.(८).१९३
कलशतटिनीविट— क्षीरसमुद्र	७.(५७).२७८	कान्दविक— हलवाई	३.(३६).१०८
कलापिकलाप— मयूरसमूह	९.(४).३२३	कादम्बिनी— मेघमाला	९.(२८).३३६
कलितमहातपस्थिति— बहुत भारी धूपमें स्थित, बहुत कठिन तप करनेवाला	६.(५).२२४	कालारि— समयका शत्रु, यम—मृत्युको जीतने- वाला	४.(६०).१६६
कल्प— स्वर्ग	२.(१).४८	काश्यपी— पृथिवी	५.(४१).२११
कल्पद्रु कल्पवृक्ष	१.१.१	काष्ठा— सीमा	८.(११).२८८
कल्पपादपवार कल्पवृक्षोंका समूह	३.(४५).११३	कीर्ति— यश, वर्षा	५.(१५).१९७
कल्पभूज कल्पवृक्ष	१.(८२).३७	कीलाल— रुधिर, जल	४.(४१).१६०
कल्पेश्वर— स्वर्गके इन्द्र	५.६.१९४	कुब्जरारातिकिशोर— सिंह शिशु	६.(३६).२३६
		कुसुदिनीकान्त— चन्द्रमा	१.(३१).१८

कुलिशधर— इन्द्र	५.(३५).२०८	खलतामिव— अमरबेलके समान	१०.९.३५२
कुचलय— नीलकमल, महीमण्डल	४.(२३).१५१	खेचरकुम्भिनीपति— विद्याधरोका राजा	१.(४८).२५
कुचलयानन्द— पृथिवीमण्डलका आनन्द, नील- कमलका विकास	४.(७८).१७२	[ग]	
कुशलिमकर— कुशलताको करनेवाला, कुशल- सहित-मकरोसे युक्त	६.३७.२४५		
कुशेशयनिकर— कमलसमूह, तपस्विसमूह	६.(५).२२४	गणधर— तीर्थकरके प्रमुख श्रोता, अनेक मुनिगणोंके नायक	१.६.४
कृतमाल— चिरालका वृक्ष	२.(२१).५८	गन्धर्वहस्तनन्धय— मन्द वायु	५.(३०).२०६
कृत्रिम क्षतञ्ज— बनावटी खून	१.(४८).२६	गाङ्गेयकुम्भ— सुवर्ण कलश	५.३.१९०
केशव— नारायण	२.(४९).६८	गिरीश— गिरि + ईश = पर्वतोंका राजा, गिरि + ईश = वाणीका स्वामी	४.(१०१).१८२
केसर— बकुल वृक्ष	२.(२१).५८	गुण— सम्यग्दर्शनादि गुण, धनुषकी डोरी	२.५.५१
कौमुदी— चाँदनी	५.(१२).१९५	गृहमेधी— गृहस्थ	२.(४८).६७
क्षणदाक्षय— रात्रिका अन्तिम भाग	१,७६.३६	गोत्रातिशय— पर्वतोंको डुबानेवाला, उच्चगोत्र- वाला	५.(८).१९३
क्षमधर— पर्वत, क्षमागुणके धारक	१.(२६).१५	गोत्राहित— इन्द्र	७.११.२५८
क्षमता— कृपाता	२.(३४).६२	गोधिका— छिपकुली	१.(४८).२६
क्षोणीकल्पतरु— पृथिवीके कल्पवृक्ष	६.१.२२२	ग्रामकूट— ग्रामका स्वामी	२.(२७).६०
क्षमाप— राजा	१.१८.१३	ग्रामसिंह— कुत्ता	६.४६.२४९

[ख]

[घ]

खण्डप्रपात— विजयार्थ पर्वतकी एक गुफा	९.(५७).३४७	घनकीलाल— अत्यधिक पानी, अत्यधिक रक्त	५.(६).१९१
खशंशुकान्त— सूर्यके समान सुन्दर	२.(१९).५७	घनपुष्प— जल, अत्यधिक पुष्प	५.(४).१९०
खलता— दुष्टता	१०.९.३५२	घनपुष्पवृष्टि— अधिक पुष्पवर्षा, जलवृष्टि	५.(१५).१९७

घनतानघ—	४.(५४).१६४	चमरजात—	३.(१५).१०२
घन—कांस्य आदि बाजेकी तानका		चमरीमृगोंका समूह, चमर	
घ—शब्द		चरमाङ्ग—	६.(३०).२३३
घनश्री—	६.९.२२६	उसी भवसे मोक्ष प्राप्त करनेवाला	
अधिक लक्ष्मी, मेघकी शोभा		चलाचल—	१.(५२).२८
घनसार—	२.८.५५	अत्यन्त चंचल	
कपूर		चारणचरितविदित—	२.(२६).६०
घनाश्वसंघ—	५.(३७).२०८	चारणकृद्धि धारक मुनियोंके गमन-	
बहुत भारी पापोंका समूह		से प्रसिद्ध	
घृणि—	१.(९१).४१	चित्रकेतना—	९.३८.३४७
किरण		नाना पताकाओंसे युक्त	
घृणिपूर—	६.(२२).२३७	चित्तभू —	६.(५५).२४४
किरणसमूह		कामदेव	
		चिरत्न—	२.(९५).८६
		प्राचीन	
		चिरत्नरत्न—	४.(६६).१६९
		प्राचीन रत्न	

[च]

चक्रशोभा—	६.(३३).२३४
चक्रवाकपक्षीके समान शोभा, चक्र-	
रत्नकी शोभा	
चक्राङ्गना—	१.१५.१०
चक्रबी	
चक्रिप्राच्यक्षितिम्बुद—	१०.३३.३६५
चक्रवर्तीरूपी पूर्वाचल	
चञ्चद्—	५.१२.२०१
शोभमान	
चञ्चरीकसंघ—	१.(१७).११
भ्रमरसमूह	
चञ्चलानन्द—	५.(१५).१९७
बिजलीकी कौंध, क्षणभंगुर आनन्द	
चण्डमानु—	१.५०.२६
सूर्य	
चतुर्भुजायत्रिदश—	४.५४.२७२
भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और	
वैमानिक ये चार प्रकारके देव	
चन्द्र—	२.(३५).६३
चन्द्रमा, कपूर	
चन्द्रहास—	२.४०.७९
तलवार	
चन्दनस्थासक—	२.(१०९).९३
चन्दनका तिलक	

[ज]

जगद्गुरु—	५.५.१९४
जिनेन्द्र	
जगद्गुप्तामरकारी—	४.७.१४३
जगद्विजयी	
जंघायुग—	६.१०.२२७
-पिंडरियोंका युगल	
जंघालता	१.(२६).१४
जंघारूपी लता, शीघ्रगामिता	
जडभृदरुचि—	२.(९८).८७
मेघके समान कान्ति, मूर्खोंमें रुचि	
जडजुरुचि—	९.२२.३३७
कमलके समान कान्ति, मूर्खोंमें	
उत्पन्न होनेवाली इच्छा	
जम्भारिमणि—	२.(४१).६५
इन्द्रनीलमणि	
जम्भालम्भन	५.(१).१८८
इन्द्र	
जाङ्गल—	७.(१२).२५७
जलरहित देश	
जातकर्म—	९.१.३२१
जन्मसंस्कार	

जातकर्मोत्सव— जन्मसंस्कारका उत्सव	५.२०.२०७	तारापथ— आकाश	४.(९५).१८०
जामी— बहिन	६.१५.२२९	तारोस्लास— नक्षत्रोंका उल्लास, अत्यधिक	६.२३.२३४
जितासमशर— कामदेवको जीतनेवाले	६.४८.२५०	आनन्द	
जिनगुणसंपत्ति— एक तप	२.(३०).६१	तेजन— बाँसके वृक्ष	४.(२३).१५०
जिनचन्द्र— जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा	१.(८२).३७	त्रिदशद्विप— ऐरावत हाथी	४.६२.१७७
जिनचण्डडीधिति— जिनसूर्य	४.४२.१६७	त्रिदशाधिकस्नेह— देवोंका अधिक स्नेह, तीन बत्तियाँ	४.(५८).१६५
जिनपोत— जिनबालक	४.६३.१७८	और तैल	
जीवजीवप्रति— प्रत्येक जीवको, चकोरको	१.३.३	त्रिदशोपसेवित— तीन बत्तियोंसे सेवित, देवोंसे	१.४८.३२
जीवितान्तकालिक— मरण समय होनेवाला	१.(५०).२७	सेवित	
जैत्र— विजयशील	१.५.४	त्रिदोषसंभवामय— वात, पित्त और कफ इन तीन	६.(२).२२२
जैष्णव— चक्रवर्ति सम्बन्धी	९.३३.३४४	दोषोंसे होनेवाले रोग	
		त्रिवर्गप्राप्ति— धर्म, अर्थकामकी प्राप्ति	५.२२.२०८
		त्रिसाक्षिक— इन्द्र, सिद्ध और आत्मा इन तीनकी	७.३९.२७६
		साक्षी पूर्वक	

[त]

[द]

तडिलकताविलसित— बिजलीकी कौंध	१.(५२).२८	दक्षिणमरुद्धर— दक्षिण दिशासे आनेवाली मलय-	२.(३५).६३
तनु— शरीर	१.(२६).१५	समीर, उदारहृदय-श्रेष्ठदेव	
तपनबिम्ब— सूर्यमण्डल	५.(१९).२००	दंशूक— सर्प	१.(७५).३५
तमोनाशन— अज्ञान और अन्धकारको नष्ट करने-	२.२.२	दन्तावल— हाथी	१.(४८).२५
वाला		दम्भोलि— वज्र	१.१०.५
तरङ्गित— बढ़ा हुआ	१.(१३).६	दर— शंख	१.(२६).१५
तुका— तुलाराशि, उपमा	२.४८.८२	दर्पककेलिकाल— कामक्रीड़ाके समय	२.६८.९५
तुकिताङ्गज— कामदेवकी तुलना करनेवाला	१.६३.४०	दिनमणि— सूर्य	४.३८.१६५

दिविजभूय— देवपर्याय	१.४०.२८	द्विजराज— चन्द्रमा	४.३३.१६२
दिवि + अध्वनि + समासीनः— आकाशमार्गमें स्थित	१.१.१	[घ]	
दिविज— देव	७.(१).२५१	धर— पर्वत	५.(४१).२११
दिविषद्— देव	४.५५.१७३	धरा— पृथिवी	५.(४१).२११
दिव्यदेह— वैक्रियिक शरीर	१.४०.२८	धराधिराज— राजा वज्रजंघ	३.१०.१०३
दिव्यध्वनिमृदुलालंकृतमुख— दिव्यध्वनिकी कोमलतासे सुशोभित मुखवाले	१.१.१	धीरतरधी— अत्यन्त गम्भीर बुद्धि	४.(५४).१६४
दिव्यामललोचन— अवधिज्ञानरूपी नेत्र	६.(३०).२३२	[न]	
दिशावशाधल्लभ— दिग्गज	६.(६८).२४७	नखरांशुकान्त— नखोंकी कान्तिसे सुन्दर	२.(१९).५७
दीर्घनिद्रा— मृत्यु	३.४५.११२	नगेन्द्र— न चलनेवालोंमें श्रेष्ठ, पर्वतश्रेष्ठ- विजयार्थ	१.(१३).८
दुर्गत— दरिद्र	१.(७९).३७	नदवनज— नदीका कमल	४.३१.१६१
देवदेव— भगवान् वृषभदेव	६.१८.२३१	नदीन— नदियोंका इन-स्वामी, दीन नहीं	६.(१०).२२६
देवब्राह्मण— ब्राह्मण	१०.३०.३६४	नदीनबन्धु— समुद्रबन्धु	४.(२३).१५१
देवमानुक— मेघवृष्टिपर निर्भर रहनेवाले देश	७.(१२).२५७	नदीपबन्धु— समुद्रके समान, दीपकके समान नहीं	४.४०.१६६
दोषाकर— दोषोंकी खान, चन्द्रमा	५.(५३).२१५	नदेश— समुद्र	५.(७).१९२
दोषाकरश्री— दोषोंकी खानस्वरूप लक्ष्मी, चन्द्रमा- के समान लक्ष्मी	९.२२.३३७	नमश्चर— विद्याधर	७.(५०).२७५
द्युतटिनी— आकाशगंगा	१.१५.१०	नमोग— विद्याधर	१.३०.२१
द्युसिन्धु— आकाशगंगा	१०.२३.३६०	नमोगता— भोगाभाव, आकाशगामिता	२.४६.८१
द्राक्षावली— दाखोंका समूह	४.३६.१६३	नमस्कारपद— णमोकारमन्त्र	१.(८५).३९
द्रोणी— जहाज	१.४६.३०	नरपालनिकाय— राजसमूह	९.(३५).३३८

नरमणीय—	२.(९५).८७	निलिम्प—	७.(५०).२७५
श्रेष्ठ मनुष्योंसे सुशोभित		देव	
नरसार्थ—	३.४४.१२४	निलिम्पकरमुक्त—	१०.(२८).३५९
मनुष्य समूह		देवोंके हाथोंसे छोड़े हुए	
नरोचितवृत्ति—	४.(८४).१७६	निलिम्पनटी—	८.(४९).३०१
असुन्दरवृत्तिवाला, मनुष्योंके योग्य		देवतर्तकी	
वृत्तिवाला		निलिम्पपति—	४.(७२).१७१
नवन—	४.(८२).१७५	इन्द्र	
स्तवन		निशान्त—	२.(१).४८
नाग—	४.(७८).१७२	प्रभात	
हाथी		निष्ठा—	५.११.२०१
नान्दी—	५.(३७).२१०	समाप्ति	
नाटकके प्रारम्भमें की जानेवाली		निस्त्रिंशजा—	९.२२.३३७
स्तुति		तलवारसे उत्पन्न, क्रूर मनुष्यसे	
नामिजात—	४.(८४).१७६	उत्पन्न	
असुन्दर, नाभिराजसे उत्पन्न		नीप—	२.(२१).५८
नालीक—	५.४०.२१९	कदमका वृक्ष	
कमल		नीरजात—	२.(२१).५८
निचय—	१.६.४	कमल	
समूह		नीरजाक्षी—	७.२५.२७०
निधनद—	१०.(६).३५०	कमलनयना	
मृत्युदायक		नीराजित—	२.३२.७५
निधिराट्—	९.२३.३३८	आरती उतारा हुआ	
चक्रवर्ती		नीरसहित—	३.(९२).१२९
नियन्ता—	९.२१.३३७	जलसे सहित, नीरस मनुष्योंके लिए	
नियन्त्रण करनेवाला		हितकर	
नियुद्धशिल्प—	१०.२४.३६०	नीरसस्थ—	९.११.३३०
बाहु युद्धसम्बन्धी चतुराई		नीरसता, जलका सञ्भाव	
निर्जरजन—	४.(२३).१४९	नीरेक—	१०.१३.३५४
देवसमूह, तरुणसमूह		शंकारहित	
निर्दोष विषय—	८.(१५).२८५	नीलाचल—	१०.(२४).३५७
निर्दोष आहार		एक कुलाचल	
निर्धूममंजरी—	१.२२.१४	नीवा—	२.६८.९५
प्रज्वलित ज्वाला		स्त्रीके अधोवस्त्रकी गाँठ	
निर्मलमानस—	१.६.४	नेत्र—	६.९.२२६
स्वच्छमनरूपी मानसरोवर		वस्त्र, नयन	
निर्वृत्तिमन्दिर—	६.५.२२५		
मोक्षस्थान			
निर्वेग—	७.२३.२६९	पंक—	५.(१५).१९७
वैराग्य		कीचड़, पाप	

[प]

पंकजात— कमल, पापोंका समूह	८.४३.२९८	पश्चिम— पिछले	८.(१७).२८७
पंचता— पाँच संख्या	५.(५१).२१४	परिस्वंग— आलिंगन	२.(१६).५६
पंचता— पाँच संख्या, मृत्यु	६.३१.२४०	परिमलित— मलिन, परिमल—सुगन्धसे युक्त	१.(१३).९
पंचशर— कामदेव	३.(११६).१३८	पल्लव— नयी कोपल, पद—पैरका तल— नीचेका भाग	६.११.२२७
पंचेषुपट्टकरणी— कामको उत्तेजित करनेवाली	१.६८.४२	पाकाहित— इन्द्र	७.(३२).२६९
पतंग— पक्षी, सूर्य,	२.(८५).८३	पाटीरगिरि— मलयाचल	६.(३६).२३५
पतिव्रत— अपने आपको झूठमूठ पति कहने- वाले	२.(७०).७७	पाथोज— कमल	१.१५.१०
पतिवरा— कन्या	६.१५.२२९	पाद— पैर, प्रत्यन्त पर्वत	१.(१३).८
पत्नी— बाण	९.(७).३२६	पाद— चरण, किरण	४.(४६).१६९
पद्मिपति— गरुड	९.(७).३२६	कान्तारचर्या— वनमें आहार लेनेका नियम	३.९.१०२
पद्मवन्धुविम्ब— सूर्यमण्डल	९.(४८).३४४	पापचक्र— पापोंका समूह पापी, चकवे	६.२७.२३७
पद्मकुल्यमानमल्लिकासदृक्कन— खिलती हुई श्रेष्ठ मालती	१.(१३).९	पापावग्रह— पापरूपी वृष्टिका प्रतिबन्ध	८.(७८).३१९
पयोधर— मेघ, स्तन	२.(१०).५३	पार्थिव— राजा, मिट्टीके घड़े	१०.१२.३५३
परचक्रकलित— परसैन्यकुत	९.(४८).३४३	पूर्वक्षमाधर— उदयाचल	६.१२.२२८
परमहिमयुत— परमउत्कृष्ट हिम—बर्फसे युक्त, पर- उत्कृष्ट महिमासे युक्त	६.६.२२५	पूर्वपक्ष— शंकापक्ष, कृष्णपक्ष	५.(५३).२१५
परमोहप्रतिपादन— परम + ऊह—तर्कका कथन, दूसरेके मोह—विभ्रमका कथन	१.(३३).१९	पृतनाधिराज— सेनापति	३.२.९७
परिगति— प्रदक्षिणा	८.२५.३०८	पुरन्दरकाष्ठा— पूर्वदिशा	५.(३२).२०७
परिनिष्क्रमण— दीक्षाकल्याण	७.(५०).२७५	पुरन्दरमणि— इन्द्रनीलमणि	७.(१७).२५९
		पुरन्दर सुन्दरी— इन्द्राणी	७.(५०).२७६

पुरुनन्दन— भरत	६.३४.२४२	प्रव्रज्या— दीक्षा	१.४३.३०
पुलोमजा— इन्द्राणी	५.(२४).२०२	प्रस्थ— शिखर, मानभेद	१.(१३).८
पुष्पधर— भ्रमर	८.(१).२८०	प्रागल्भ्य— गम्भीरता	१.१०.५
पेयतरु— नारियलका वृक्ष, अथवा ताड़वृक्ष	२.(२१).५८	प्राची— पूर्वदिशा	४.३८.१६५
पैतृवस्त्रीय— बुआका पुत्र	२.३७.७६	प्रायेयात्रि— हिमगिरि	१.४२.२८
प्रकटितद्शावतार— जिसमें दश जन्मोंका वृत्तान्त प्रकट किया गया था, जिसमें दशा—वृत्तीका अवतार प्रकट था	५.(३७).२०९	प्रौढध्वान्त— गाढ अन्धकार, भारी अज्ञान	१.३.३
प्रकामेज्ज्वला— अत्यन्त उज्ज्वल	१.१२.६	प्रौढशोभनखरांशुवैभव— जिसके नखोंकी किरणोंका वैभव अत्यन्त शोभमान है, जिसकी तीक्ष्ण किरणोंका वैभव अत्यन्त शोभमान है	४.४२.१६७
प्रकृति— प्रजाजन	७.(८).२५५	[फ]	
प्रकृति— मन्त्री अदि, प्रजाजन	३.४.९९		
प्रचुरोर्मिकाव्रज— बहुत भारी तरंगों का समूह, बहुत अंगूठियोंका समूह	४.(४१).१६१	फणोश्वर— धरणेन्द्र	८.(१२).२८५
प्रतीक— शरीर	३.(४२).११०	[ब]	
प्रत्यग्दिशा— पश्चिमदिशा	१.(१३).७		
प्रत्यर्थादावानल— शत्रुरूपी वनको भस्म करने वाली वनाग्नि	१.३६.२४	बन्धुजीव— दुपहरियाका फूल, भाइयोंका जीवन	७.(३).२५३
प्रमासाब्ज— प्रातःकालका चन्द्रमा	२.(१).४८	बम्भरी— भ्रमरी	१.२४.१७
प्रमदालिमधुरालाप— सखियोंका मधुर भाषण, हर्ष विभोर भ्रमरोंका मधुर शब्द	२.(३५).६३	बल— बलभद्र	२.(४९).६८
प्रवाल— भूंगा, किसलय	५.(४).१९०	बलधन	६.९.२२६
प्रवीचार— कामसेवन	३.५०.१३०	बलरिपु— इन्द्र	७.२५.३०८
		बलारि— इन्द्र	५.(३७).२०८
		बलार्णव— सेनारूपी समुद्र	१०.१८.३५८
		बहिर्मुख— देव	४.(९१).१७८
		बहुलोह— बहुत लोहा, बहुत तर्क	४.६७.१८१

बाहा—	६.३३.२४१	मंजुलास्यविराजित—	४.(८२).१७५
बाहु—भुजा		मंजु—मनोहर लास्य—नृत्यसे सुशो-	
वृत्राहित—	७.(१२).२५७	भित, मंजुल—मनोहर आस्य—मुखसे	
इन्द्र		सुशोभित	
ब्रह्म—	७.(१२).२५७	मण्डलाग्र—	६.(३३).२३४
ज्योतिषशास्त्रका एक योग		तलवार	
	[भ]	मदकण्डूक—	१.(६१).३०
मंग—	५.(६).१९१	मद की खुजली से युक्त	
तरंग, पराजय		मदनसहकार—	३.(४२)१११
भगवदास्थान—	१०.(४६).३६४	काम का सहायक	
भगवान्का समवसरण		मधु—	१०.२.३४९
भरत शास्त्र—	७.(५).२५४	वसन्त	
नाट्य शास्त्र		मधुकरवितति—	५.२४.२११
भव—	८.२४.२९९	भ्रमरपंक्ति	
संसार, महादेव		मधुप—	२.(९८).८७
भववाराशि—	४.६३.१७८	मद्यपायी, भ्रमर	
संसार समुद्र		मन्दगन्धर्वह—	१.(१३).९
भुजान्तर—	४.(९५).१८०	मन्दवायु	
वक्षःस्थल		मन्दराग—	४.(१०१).१८२
भुवनपति—	५.(७).१९१	मन्द प्रीति का धारक, मन्दर +	
राजा, जलपति		अग — मन्दर गिरि — सुमेरु	
भूदेव—	१०.३०.३६४	मन्दरोद्यान—	१.(१०१).४६
ब्राह्मण		मेरु पर्वत का बगीचा	
भ्रमरहित—	१.१.१	मन्द्रतम—	१.(१७).११
भ्रमसे रहित, भ्रमरोंके लिए		गम्भीर—जोरदार	
हितकारी		मन्मन—	६.(५०).२४२
भ्रमराजित—	२.(१०).५२	बच्चों की अस्पष्ट बोली	
भ्रमरोंसे अपराजित, भ्रम—भँवरके		मराळी—	४.(२३).१४८
समान सुशोभित		हंसी	
		मलयज—	२.८.५५
		चन्दन	
	[म]	मलिकामतल्लिका—	३.४२.१११
मंजुककज—	१.(१३).७	श्रेष्ठ मालती	
मनोहर कमल		महार्घ—	५.(३२).२०७
मंजुमंजीर—	१.(१७).११	महामूल्य	
मनोहर नूपुर		महादर्श—	४.३४.१६२
मंजुककुचोज्ज्वल—	७.(३).२५३	अमावास्या, महादर्पण	
मंजुल—मनोहर कुचोंसे उज्ज्वल,		महाप्रव्रज्या—	८.(७२).३१८
मंजु—मनोहर लकुचोंसे उज्ज्वल		दिगम्बर दीक्षा	

महारजत— बहुत भारी चाँदी, सोना	४.६७.१८१	मुक्तावली— एक व्रत	२.(५१)६९
महारजत महीधर— सोने का पर्वत-सुमेरु	१.(४३).२३	मुक्तोपम— उपमारहित, मोतियों की उपमा से	१.(१६).११
महास्थपति— स्थपतिरत्न-प्रधानतक्षक	२.५३.८६	युक्त, मुक्त-सिद्ध परमेष्ठी की उपमा से सहित	
महिषी— पट्टरानी, भैंस	३.(१५).१०३	मुनिविकर्तन— मुनिरूपी सूर्य-श्रेष्ठ मुनि	१.(५५).२७
महीकमन— राजा	२.(१०).५२	मुष्टिसमीक— मुष्टि युद्ध	९.३२.३४४
महोदक— उत्कृष्ट फल से युक्त	२.५०.६९	मेखला— पर्वत की कटनी, कटिसूत्र-करधनी	६.(२७).२३१
माकन्दतरुसंदोह— आम के वृक्षों का समूह	१.(१३).९	मेचकपक्षक— कृष्णपक्ष	७.४०.२७७
मातुलानी— मामा की स्त्री	२.(६८).७६	मेचकरुवि— कृष्णकान्ति	५.(३७).२०८
मातृचर— भूतपूर्व माता का जीव	२.(५०).६८	मोचाफल— केला	१.१०.५
मानस— मानसिक-मनसम्बन्धी	३.५०.१३०	मोहक्षमावहकम— मोहरूपी राजा	१.५.४
मानस— मानससरोवर, चित्त	५.३३.२१५	[य]	
मार-काम	२.२०.६४		
मार— काम, मारने वाला	२.८५.८३	यवनिकाविभ्रम— परदा का सन्देह	५.(३९).२१०
मार्गण— बाण, गति आदि १४ मार्गणा	२.५.५१	युगायत— युग-जुवारी के समान लम्बा	६.(७३).२४८
मीनकेतन— कामदेव	२.१०.५२	योगयोग्य— ध्यानके योग्य	८.(३५)२९३
भृदुरुतालंकृतमुख— कोमल लताओं से अलंकृत अग्रभाग वाला	१.१.१	[र]	
भृस्ना— अच्छी मिट्टी	७.(१७).२५९		
मुक्ता— मुक्तजीव, मोती	६.५.२२५	रक्त— लाल, अनुराग से युक्त	२.५.५०
मुक्ताधिकशोभांचित— मोतियों की अधिक शोभा से अंचित, मुक्तजीवों की अधिक शोभा से अंचित	७.(३).२५३	रजतमहीधर— विजयार्थ पर्वत	१.(४३)२३
		रजताचल— विजयार्थ पर्वत	१.(१३).९
		रजोराजी— घूलिपंक्ति	९.१८.३३६
		रत्नकोटीर कोटि— रत्नमय मुकुट की कलंगी	६.१८.२३१

रत्नत्रय— सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्- चारित्र्य	१.५.४	कृतान्त— पुष्प	१.(३१).१८
रत्नप्रचय— रत्नोंका समूह	१.१३.१०	कलिताङ्गचर— पूर्वका ललिताङ्ग	२.३६.७६
रत्नाबलि— एक तप	२.(५).७०	लवणतरङ्गिणीरमण— लवणसमुद्र	१.(१३).७
रथकडथा— रथोंका समूह	१०.(२२).३५६	लेख— देव	८.२४.२९६
रशना— मेखला	२.(९८).८९	लेखस्त्री— देवी	४.३९.१६५
रसज्ञा— जिह्वा	१.९.५	लेखाचल— सुमेरु	१.२१.१४
राका कोकरिपु— पूर्णमाका चन्द्रमा	३.४९.१२८	लोलम्ब— भ्रमर	१.(१३).७
राका कोकारि— पूर्णमाका चन्द्रमा	४.४५.१६८	लोलम्ब निकुम्ब— भ्रमरसमूह	१.(९१).४१
राकाहिमकर— पूर्णमाका चन्द्रमा	६.२१.२३३	लोलम्बकेशी— काले केशोंवाली स्त्री	४.३६.१६३
राकेन्दुबिम्बानना— पूर्णचन्द्रमुखी	१.३६.२४	लोलाक्षी— चपल नेत्रोंवाली स्त्री	२.(५).५०
राजनृ — चन्द्रमा, नृपति	१.(२६).१६	[व]	
राजता— चन्द्रता, नृपतिता	६.(२७).२३१		
राजराज— राजाधिराज चक्रवर्ती भरत	१०.४.३५१	वक्षोरुह— स्तन	२.(१०).५३
राजहंसमनोरमा— राजहंस पक्षियोंसे मनोहर, श्रेष्ठ	३.(४२).१११	वक्षोहर— दूत	१०.१३.३५४
राजहंस— राजहंसपक्षी, श्रेष्ठ राजा	१.१६.११	वज्रकाण्ड— चक्रवर्तीका धनुष	९.(१८).३३२
राजा— राजा, चन्द्रमा	४.(३२).१५१	वज्रकिरीट— हीरोंका मुकुट	१०.६.३५१
रीति— पीतल, प्रचार	४.६७.१८१	वज्रधर— इन्द्र	५.(४१).२११
[ल]		वज्री— इन्द्र	२.२.४९
		वदनविधु— मुखरूपी चन्द्रमा	१.(१३).९
लज्जायवनिका— लज्जारूपी परदा	२.१५.६०	वनवासी— जलमें निवास करनेवाला, वनमें निवास करनेवाला	६.(५).२२४

वनशुण्डाल— जंगली हाथी	१.(६१).३०	वाकधी— पूछ	१.(४८).२६
वनामर— व्यन्तर देव	९.२१.३३७	वालिश्य विलसित— मूर्खकी चेष्टा	१०.(४९).३६५
वनीष— बगिया का रक्षक	२.(२१).५८	वाहिनी— सेना, नदी	३.७.१०१
वनीपकजन— याचकजन	२.(१९).५७	वाहिनी— सेना	४.७१.१८६
वन्दित्रात— स्तुतिपाठक चारणोंका समूह	२.१९.२३२	वाहिनीपति— सेनापति, समुद्र	५.(६).१९१
वर्ण— ब्राह्मणादिवर्ण, रंग	४.(५४).१६४	विकृत— विक्रियासे निर्मित	५.५.१९४
वर्णोत्तम— ब्राह्मण	१०.३०.३६४	विचित्रोपायन— नाना प्रकारके उपहार	९.(५७).३४६
वर्षति— एक वर्षके समान आचरण करता है	२.२०.६४	विच्छित्ति— चमत्कार	१.१२.६
वर्षति— बरसाता है	२.२०.६४	विजय बैजयन्ती— विजयपताका	६.(५२).२४३
वलक्षेतर— कृष्ण	४.३६.१६५	विटपालम्बिताम्बरा— जिसके वस्त्र गुण्डों द्वारा पकड़े गये हैं ऐसी स्त्री, शाखाओंसे आकाशको छूनेवाली वृक्षावली	१.(१०१).४६
वलग्न— मध्यभाग	६.९.२२६	विद्रुत— पिघले हुए	१.(१३).९
वल्लकी— बीणा	१.(१७).११	विद्रुम— मूंगा	१.(२६).१४
वशा— हस्तिनी	१.(१०१).४६	विद्रुमच्छाय— वृक्षोंकी छायासे रहित, मूंगाके समान कान्तिसे युक्त	७.(३).२५३
वशावल्लभ— हाथी	१.(१०१).४६	विधुमणि— चन्द्रकान्तमणि	१.(१३).९
वसुधानुभव— पृथिवीका अनुभव, 'व' छोड़कर सुधा-अमृतका अनुभव	६.(२७).२३१	विप्रयोग— विरह	१.१५.१०
वस्त्राङ्गमहीज— वस्त्राङ्गजातिका कल्पवृक्ष	४.(१०९).१८७	विबुधजन— देवसमूह	८.(२५).२९०
वाचालित— शब्दायमान	४.(७८).१७३	विभुतया— महिमासे, भुवनपति शब्दमेंसे 'भु' को पृथक् कर देनेसे	४.(६०).१६६
वातमार्ग— आकाश	३.१९.११०	विमन— शत्रु	२.२.५०.
वानीरजात— वैतके वृक्ष	२.(२१).५८		

विकक्षण—	४.(८४).१७६	व्यातस—	५.१.१८९
लक्षणोंसे रहित, अद्भुत		विस्तृत	
विकासमन्दिर—	६.(३६).२३५	व्यातुक्षिका—	४.(४१).१६१
क्रीडाभवन		फाग	
विविचय्याहारपेशला—	४.(४१).१६१	व्यामुक्त—	७.(१७).२५९
नाना प्रकारके शब्दोंमें कुशल		लटकते हुए	
विवेकवार्ता—	१.(२६).१५	व्याकोल—	४.(६६).१६९
भेदवार्ता, हिताहितका ज्ञान		चंचल	
विशङ्कट—	२.(१).४८	व्याहृत—	१०.३६.३४६
विशाल		बुलाया हुआ	
विशसित कुशासन—	१.४.३	[श]	
मिथ्यामतको नष्ट करनेवाला		शतमन्यु—	६.३१.२४०
विशिश्व—	९.३४.३४५	सैकड़ों शोकोंसे सहित, इन्द्र	
बाण		शम्पावल्ली—	२.६६.९४
विशेषकायमाण—	८.(१७)२८६	विजलीरूपी लता	
तिलकके समान आचरण करनेवाला		शम्बर—	४.४१.१६७
विश्व—	४.३८.१६५	जल	
ज्योतिषशास्त्रमें प्रसिद्ध महायोग		शंवरारि—	४.४१.१६७
विष—	२.(८५).८३	काम, जलके शत्रु	
जल, जहर		शर्करा—	३.(४५).११३
विषराशि—	५.(८).१९३	धूलि	
जहरकी राशि, जलकी राशि		शर्करा—	३.(४५).११३
विषराशि—	७.२६.२७०	शक्कर	
समुद्र		शर्मभोगेच्छा—	१.५२.३४
विष्बाण—	३.५०.१३०	सुख भोगकी इच्छा	
भोजन		शातकुम्भमय—	६.(२२).२३०
विस्मय—	१.(८२).३७	सुवर्णमय	
विश्वास		शाश्वतपद—	१.(५७).२९
वृक्ष—	१.१२.६	मोक्ष	
छन्द		शिखी—	२.(८५).८३
वृत्ति—	७.९.२५८	मयूर, अग्नि	
आजीविका		शीतरोषिप्—	६.२८.२३८
वृन्दारकवृन्द—	४.(८२).१७४	चन्द्रमा	
देवसमूह		शुक्तिकाशकल—	५.(१९).१९९
व्यजनपवनपोत—	२.८.५५	सीप के टुकड़े	
पंखेकी मन्दवायु		शुचि—	२.(८५).८३
व्याकीर्ण—	५.२.१८९	उज्ज्वल, अग्नि	
बिखरे हुए		शुद्धान्त—	१.३१.१८
व्याघ्रचर—	६.२२.२३३	अन्तःपुर	
पहलेका व्याघ्र			

शुभतरलाक्ष-	२.(१०).५३	सत्पथ-	१.३.३
अत्यन्त शुभ लाक्षा-महावरसे युक्त;		समीचीन मार्ग, आकाश	
शुभ और चंचल नेत्रोंसे युक्त		सत्पति-	३.(११५).१३६
श्यामा-	६.२७.२३७	नक्षत्रों का पति-चन्द्रमा, सज्जनों	
यौवनवती		का पति	
श्रितजनतति-	१.१.१	सदागतिस्वभाव-	४.४३.१६८
आश्रित जनसमूह		वायु के समान स्वभाव वाला, सदा +	
श्रीपति-	६.१०.२२७	अगति-निर्वाण स्वभाव वाला	
भगवान् वृषभदेव		सदानन्दी-	५.३२.२१४
श्रीमान्-	१.२.२	सदा हृषित रहने वाला, सत्पुरुषोंको	
शोभासहित, अनन्तचतुष्टयरूप		आनन्दित करने वाला	
लक्ष्मी से युक्त		सदापरागरुचिशोभित-	६.(५).२२४
श्रुतज्ञान-	२.(३१).६२	सर्वदा मकरन्दकी कान्तिसे	
एक तप		शोभित, सदा + अपराग-वीत-	
इवसूर्य-	२.(७०).७८	रागतासे शोभित	
इवसुर का पुत्र		सद्गानतिगमरश्मि-	३.३०.११६
		सम्यग्दर्शन रूपी सूर्य	

[ष]

षडङ्गवाहिनी-	१०.२२.३५६	सद्गुत्तरत्न-	३.(९).९९
हाथी, घोड़ा, रथ, पयादे, बैल और		सदाचाररूपी रत्नसे सुशोभित,	
गन्धर्व इन छह की सेना		सत्-रेखादि दोषोंसे रहित गोल	
		रत्नोंसे सुशोभित	

[स]

सकलकल-	६.(२६).३२२	सद्वपशोभित-	१.(१०१).४६
कलकल शब्द से सहित, सकल-		सत्-उत्तम रूपसे शोभित, सत्-द्रु-	
कलाओं से सहित		उप-शोभित-अच्छे वृक्षोंसे सुशो-	
सकलभुवनभृत्-	५.(१५).१९७	भित ।	
समस्त मेघ, समस्त राजा		सपथी-	१.(६६).३३
सकलमहीभृन्मस्तक-	६.(५).२२४	पूजा	
समस्त पर्वतों के शिखर, समस्त		ससपर्णोपशोभित-	८.(४५).२९९
राजाओं के मस्तक		सात पत्तोंसे शोभित, ससपर्ण	
सकललैख-	१०.(६५).३७१	नामक वृक्षोंसे शोभित	
समस्त देव		समरेखिका-	१.३४.२०
सज्जवनोज्ज्वल-	२.६.५२	नायिका, तलवार	
सजल मेघों के समान शोभमान,		समस्तहरित-	१०.२६.३६१
सुन्दर नितम्बों से सुशोभित		समस्त दिशाएँ	
सज्जनक्रमकर-	५.(८).१९३	समा-वर्ष	३.५१.१३०
सज्जनों के क्रम को करने वाला,		समासीन-	१.१.१
तैयार मगर-मच्छों से युक्त		समवसरणमें स्थित	
		समोरकिशोर-	१.(९१).४१
		मन्द वायु	

समुत्ततवंशपोत—	४.(८४).१७५	सुदृग्—	१.१६.११
ऊँचे बाँसे युक्त जहाज, उच्च- कुलीन बालक		सम्यग्दृष्टि, सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियाँ	
सर-हार	१.(२६).१५	सुधा—	५.१०.१९९
सरसत्त्व—सरसता, सजलता	९.११.३३०	चूना-कलई	
सरःस्थिति—सरस्थिति—	४.३२.१६१	सुधा-अमृत	३.(४५).११३
सरोवरकी स्थिति, हारकी स्थिति		सुधावदाता—	२.(५).५०
सर्वस्रोमुख—	४.(२३).१५०	चूना के समान उज्ज्वल	
पानी, सब ओर फैलने वाली		सुधासूति—चन्द्रमा	२.७१.९६
सर्वतोमद्ग—एक तप	२.(५०).६९	सुपर्वनदी—गङ्गा नदी	१.२१.१४
सहकार—सुगन्धित आम	३.(४२).१११	सुपर्वपर्वत—सुमेरुपर्वत	३.(४५).११२
सहस्रनेत्र—इन्द्र	५.(३७).२०९	सुपर्वराज—	१.(१०१).४६
संकन्दन—इन्द्र	१.(७१).३४	पूर्णिमा का चन्द्र, इन्द्र	
संभ्रामसिंह—युद्धमें शूर	६.४६.२४९	सुपर्वराज—इन्द्र	४.५४.१७२
संजवन—वेग	५.(१९).२००	सुपर्वाचित—	७.(१९)२६२
संजरीजृम्भमाण—बढ़ता हुआ	१.(१३).९	देवों से पूजित, उत्तम परतों से सहित	
संश्रासन—भय देने वाला	१.४.३	सुप्रतीक—	३.४३.१२४
संवेग—संसारसे भय	७.२३.२७९	दिग्गज विशेष, सुन्दर शरीर वाला	
सागर—असंख्यात वर्ष	३.(२१)१०४	सुमनस्—देव, पुष्प	१.१.१
साधुचक्र—	२.(९८).८८	सुमनोजात—	१.७२.४५
सज्जनोंका समूह, उत्तम चक्रवा		पुष्पसमूह, विद्वत्समूह, उत्तम काम- देव, देव समूह	
सामि—अल्प	१०.८.३५२	सुमनिकर—पुष्पसमूह	३.१५.१०२
सामोद—हर्ष सहित, गन्ध सहित	१.१.१	सुमचाप—कामदेव	२.४१.७९
सार्वभौम—	३.४३.१२४	सुमनोमाला—	३.(१०५).१३२
दिग्गज विशेष, समस्त भूमिका स्वामी		फूलों की माला, विद्वानों का समूह	
सिकता—बालू	४.३६.१६३	सुमित्रानन्दन—	६.(३३).२३४
सितच्छद—हंस	९.३.३२२	उत्तम मित्रों को आनन्द देने वाला, सुमित्रा का पुत्र—लक्ष्मण	
सिता—मिश्री	४.३६.१६३	सुनाशीर शरासन—	७.(१७).२५९
सिद्धमातृका—वर्णमाला	७.(५).२५४	इन्द्रधनुष	
सिद्धार्थवृक्ष—	८.(५२).३०४	सुरगुरु प्रतिच्छन्द—	८.(१९).२८७
संभवशरण के वृक्ष विशेष		बृहस्पति के तुल्य	
सिद्धार्चा सनाथ—	८.(५८)३०४	सुरतानन्द—	४.(२३).१४९
सिद्ध प्रतिमाओं से सहित		सुरता—देवत्वका आनन्द, सुरत— संभोगका आनन्द	
सिन्धुरन्ध्र—हाथी	३.८.१०२	सुरतरुचिरलीलास्पद—	७.(३).२५३
सिंहनिष्कीडित—एक व्रत	२.५०.६९	सुरतरु—कल्पवृक्षोंकी चिरलीलाका स्थान, सुरत—संभोगकी रुचिर— मनोहर लीलाका स्थान	
सुत्रामा—इन्द्र	४.१८.१४८		
सुत्रामचापोत्कर—	८.२८.३००		
इन्द्रधनुषों का समूह			
सुदती—सुन्दर दाँतों वाली स्त्री	२.२२.५९		

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA

MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

General Editors :

Dr. H. L. JAIN, Jabalpur : Dr. A. N. UPADHYE, Kolhapur.

The Bhāratīya Jñānapīṭha, is an Academy of Letters for the advancement of Indological Learning. In pursuance of one of its objects to bring out the forgotten, rare unpublished works of knowledge, the following works are critically or authentically edited by learned scholars who have, in most of the cases, equipped them with learned Introductions, etc. and published by the Jñānapīṭha.

Mahābandha or the Mahādhaḥvalā :

This is the 6th Khaṇḍa of the great Siddhānta work *Ṣaṭkhaṇḍāgama* of Bhūtabali : The subject matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina Philosophy who desire to probe into the minutest details of the Karma Siddhānta. The entire work is published in 7 volumes. The Prākṛit Text which is based on a single Ms. is edited along with the Hindī Translation. Vol. I is edited by Pt. S. C. DIWAKAR and Vols. II to VII by Pt. PHOOLACHANDRA. Prākṛit Grantha Nos. 1, 4 to 9. Super Royal Vol. I : pp. 20 + 80 + 350; Vol. II : pp. 4 + 40 + 440; Vol. III : pp. 10 + 496; Vol. IV : pp. 16 + 428; Vol. V : pp. 4 + 460; Vol. VI : pp. 22 + 370; Vol. VII : pp. 8 + 320. First edition 1947 to 1958. Vol. I Second edition 1966. Price Rs. 15/- for each vol.

Karalakkhana :

This is a small Prākṛit Grantha dealing with palmistry just in 61 gāthās. The Text is edited along with a Sanskrit Chāyā and Hindī Translation by Prof. P. K. MODI. Prākṛit Grantha No. 2. Third edition. Crown pp. 48. Third edition 1964. Price Rs. 1/50.

Madanaparājaya :

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Samvat 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid. Critically edited by Pt. RAJKUMAR JAIN with a Hindī Introduction, Translation, etc. Sanskrit Grantha No. 1. Super Royal pp. 14 + 58 + 144. Second edition 1964. Price Rs. 8/-.

Kannada Prāntīya Tāḍapatriya Grantha-sūci :

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss. in the Jaina Bhaṇḍāras of Moodbidri, Karkal, Aliyoor, etc. Edited with a Hindī Introduction, etc. by Pt. K. BHUJABALI SHASTRI. Sanskrit Grantha No. 2. Super Royal pp. 32 + 324. First edition 1948. Price Rs. 13/-.

Tattvārtha-vṛtti :

This is a critical edition of the exhaustive Sanskrit commentary of Śrutasāgara (c. 16th century Vikrama Saṁvat) on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti which is a systematic exposition in Sūtras of the fundamentals of Jainism. The Sanskrit commentary is based on earlier commentaries and is quite elaborate and thorough. Edited by Pts. MAHENDRAKUMAR and UDAYACHANDRA JAIN. Prof. MAHENDRAKUMAR has added a learned Hindī Introduction on the exposition of the important topics of Jainism. The edition contains a Hindī Translation and important Appendices of referential value. Sanskrit Grantha No. 4. Super Royal pp. 108 + 548. First edition 1949. Price Rs. 16/-. (out of print)

Ratna-Manjūsā with Bhāṣya :

An anonymous treatise on Sanskrit prosody. Edited with a critical Introduction and Notes by Prof. H. D. VELANKAR. Sanskrit Grantha No. 5. Super Royal pp. 8 + 4 + 72. First edition 1949. Price Rs. 3/-.

Nyāyavinīścaya-vivarana :

The Nyāyavinīścaya of Akalaṅka (about 8th century A. D.) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (c. 11th century A. D.) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular. Edited with Appendices, etc. by Pt. MAHENDRAKUMAR JAIN. Sanskrit Grantha Nos. 3 and 12. Super Royal Vol. I : pp. 68 + 546 ; Vol. II : pp. 66 + 468. First edition 1949 and 1954. Price Rs. 18/- each.

Kevalajñāna-Prasna-cūḍāmaṇi :

A treatise on astrology, etc. Edited with Hindī Translation, Introduction, Appendices, Comparative Notes, etc. by Pt. NEMICHANDRA JAIN. Sanskrit Grantha No. 7. Second edition 1969. Price Rs. 5/-.

Nāmamālā :

This is an authentic edition of the Nāmamālā, a concise Sanskrit Lexicon of Dhanamjaya (c. 8th century A. D.) with an unpublished Sanskrit commentary of Amarakīrti (c. 15th century A. D.). The Editor has added almost a critical Sanskrit commentary in the form of his learned and intelligent foot-notes. Edited by Pt. SHAMBHUNATH TRIPATHI, with a Foreword by Dr. P. L. VAIDYA and a Hindī Prastāvanā by Pt. MAHENDRAKUMAR. The Appendix gives Anekārtha nighaṇṭu and Ekākṣarī-kośa. Sanskrit Grantha No. 6. Super Royal pp. 16 + 140. First edition 1950. Price Rs. 4/50.

Samayasāra :

An authoritative work of Kundakunda on Jaina spiritualism. Prākṛit Text, Sanskrit Chāyā. Edited with an Introduction, Translation and Commentary in English by Prof. A. CHAKRAVARTI. The Introduction is a masterly dissertation and brings out the essential features of the Indian and Western thought on the

all- important topic of the Self. English Grantha No. 1. Super Royal pp. 10 + 162 + 244. Second edition 1971. Price Rs. 15/-.

Jātakatthakathā :

This is the first Devanāgarī edition of the Pāli Jātaka Tales which are a store-house of information on the cultural and social aspects of ancient India. Edited by Bhikshu DHARMARAKSHITA. Pāli Grantha No. 1, Vol. 1. Super Royal pp. 16 + 384. First edition 1951. Price Rs. 9/-.

Kural or Thirukkural :

An ancient Tamil Poem of Thevar. It preaches the principles of Truth and Nonviolence. The Tamil Text and the commentary of Kavirājapaṇḍit³. Edited by PROF. A. CHAKRAVARTI with a learned Introduction in English. Tamil Series No. 1. Demy pp. 8 + 36 + 440. First edition 1951. Price Rs. 12/- (out of print)

Mahāpurāṇa :

It is an important Sanskrit work of Jinasena-Guṇabhadra, full of encyclopaedic information about the 63 great personalities of Jainism and about Jaina lore in general and composed in a literary style. Jinasena (837 A. D.) is an outstanding scholar, poet and teacher; and he occupies a unique place in Sanskrit Literature. This work was completed by his pupil Guṇabhadra. Critically edited with Hindi Translation, Introduction, Verse Index, etc. by PT. PANNALAL JAIN. Sanskrit Grantha NOS. 8, 9 and 14. Super Royal : Vol. I : pp. 8 + 68 + 746, Vol. II : pp. 8 + 556; Vol III : pp. 24 + 708; Second edition 1963-68. Price Rs. 20/- each.

Vasunandi Śrāvakācāra :

A Prākṛit Text of Vasunandi (c. Saṁvat first half of 12th century) in 546 gāthās dealing with the duties of a householder, critically edited along with a Hindi Translation by PT. HIRALAL JAIN. The Introduction deals with a number of important topics about the author and the pattern and the sources of the contents of this Śrāvakācāra. There is a table of contents There are some Appendices giving important explanations, extracts about Pratiṣṭhāvidhāna, Sallekhanā and Vratas. There are 2 Indices giving the Prākṛit roots and words with their Sanskrit equivalents and an Index of the gāthās as well. Prākṛit Grantha No. 3. Super Royal pp. 230. First edition 1952. Price Rs. 6/-.

Tattvārthavārttikam or Rājavārttikam :

This is an important commentary composed by the great logician Akalaṅka on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti. The text of the commentary is critically edited giving variant readings from different Mss. by Prof. MAHENDRAKUMAR JAIN. Sanskrit Grantha Nos. 10 and 20. Super Royal Vol. I : pp. 16 + 430; Vol. II : pp. 18 + 436. First edition 1953 and 1957. Price Rs. 12/- for each Vol.

Jinasahasranāma :

It has the Svopajña commentary of Paṇḍita Āśādhara (V. S. 13th century). In this edition brought out by PT. HIRALAL a number of texts of the type of

Jinasahasranāma composed by Āśādhara, Jinasena, Sakalakīrti and Hemacandra are given. Āśādhara's text is accompanied by Hindī Translation. Śrutasāgara's commentary of the same is also given here. There is a Hindī Introduction giving information about Āśādhara, etc. There are some useful Indices. Sanskrit Grantha No. 11. Super Royal pp. 288. First edition 1954. Price Rs. 6/-.

Purāṇasara-Saṃgraha :

This is a Purāṇa in Sanskrit by Dāmanandi giving in a nutshell the lives of Tīrthamkaras and other great persons. The Sanskrit text is edited with a Hindī Translation and a short Introduction by Dr. G. C. JAIN. Sanskrit Grantha Nos. 15 and 16. Crown Part I : pp. 20 + 198; Part II : pp. 16 + 206. First edition 1954 and 1955. Price Rs. 5/- each. (out of print)

Sarvārtha-Siddhi :

The Sarvārtha-Siddhi of Pūjyapāda is a lucid commentary on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti called here by the name Ḡṛdhrapiccha. It is edited here by Pr. PHOOLCHANDRA with a Hindī Translation, Introduction, a table of contents and three Appendices giving the Sūtras, quotations in the commentary and a list of technical terms. Sanskrit Grantha No. 13. Double Crown pp. 116 + 506, Second edition 1971, Price Rs. 18/-.

Jainendra Mahāvṛtti :

This is an exhaustive commentary of Abhayānandi on the *Jainendra Vyākaraṇa*, a Sanskrit Grammar of Devanandī alias Pūjyapāda of circa 5th-6th century A. D. Edited by Pts. S. N. TRIPATHI and M. CHATURVEDI. There are a Bhūmikā by Dr. V. S. AGRAWALA, *Devanandikā Jainendra Vyākaraṇa* by PREMI and *Khilapāṭha* by MIMĀNSAKA and some useful Indices at the end. Sanskrit Grantha No. 17. Super Royal pp. 56 + 506. First edition 1956. Price Rs. 18/-.

Vratatithinirnaya :

The Sanskrit Text of Sinhanandi edited with a Hindī Translation and detailed exposition and also an exhaustive Introduction dealing with various Vratas and rituals by Pt. NEMICHANDRA SHASTRI. Sanskrit Grantha No. 19. Crown pp. 80 + 200. First edition 1956. Price Rs. 5/-.

Pauma-cariu :

An Apabhraṃśa work of the great poet Svayambhū (677 A. D.). It deals with the story of Rāma. The Apabhraṃśa text with Hindī Translation and Introduction of Dr. DEVENDRAKUMAR JAIN, is published in 5 Volumes. Apabhraṃśa Grantha. Nos. 1, 2, 3, 8 & 9. Crown Vol. I : pp. 28 + 333; Vol. II : pp. 12 + 377; Vol. III : pp. 6 + 253, Vol. IV : pp. 12 + 342, Vol. V : pp. 18 + 354. First edition 1957 to 1970. Price Rs. 5/- for each vol.

Jīvaṃdhara-Campū :

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jīvaṃdhara and his romantic adventures. It has both the features of a folk-tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism. The Sanskrit Text is edited

by PT. PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation and Prastāvanā. There is a Foreword by PROF. K. K. HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jivamdhara tale by Drs. A. N. UPADHYE and H. L. JAIN. Sanskrit Grantha No. 18. Super Royal pp. 4 + 24 + 20 + 344. First edition 1958. Price Rs. 15/-.

Padma-purāṇa :

This is an elaborate Purāṇa composed by Raviṣeṇa (V. S. 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale. It is edited by PT. PANNALAL JAIN with Hindī Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindī dealing with the author and some aspects of this Purāṇa. Sanskrit Grantha Nos. 21, 24, 26. Super Royal Vol. I : pp. 44 + 548; Vol. II : pp. 16 + 460; Vol. III : pp. 16 + 472. First edition 1958-1959. Price Vol. I Rs. 16/-, Vol. II Rs. 16/-, Vol. III Rs. 13/-.

Siddhi-viniscaya :

This work of Akalaṅkadeva with Svopajñāvṛtti along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr. MAHENDRAKUMAR JAIN. This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature. It is a feat of editorial ingenuity and scholarship. The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and Hindi, and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author. There are some 12 useful Indices. Sanskrit Grantha Nos. 22, 23. Super Royal Vol. I : pp. 16 + 174 + 370 ; Vol II : pp. 8 + 808. First edition 1959. Price Rs. 20/- and Rs. 16/-.

Bhadrabāhu Samhitā :

A Sanskrit text by Bhadrabāhu dealing with astrology, omens, portents, etc. Edited with a Hindī Translation and occasional Vivecana by PT. NEMICHANDRA SHASTRI. There is an exhaustive Introduction in Hindī dealing with Jain Jyotiṣa and the contents, authorship and age of the present work. Sanskrit Grantha No. 25. Super Royal pp. 72 + 416. First edition 1959. Price Rs. 14/-.

Pancasaṃgraha :

This is a collective name of 5 Treatises in Prākṛit dealing with the Karma doctrine the topics of discussion being quite alike with those in the Gommatasāra, etc. The Text is edited with a Sanskrit Commentary, Prākṛit Vṛtti by PT. HIRALAL who has added a Hindī Translation as well. A Sanskrit Text of the same name by one Śrīpāla is included in this volume. There are a Hindī Introduction discussing some aspects of this work, a Table of contents and some useful Indices. Prākṛit Grantha No. 10. Super Royal pp. 60 + 804. First edition 1960. Price Rs. 21/-.

Mayaṇa-parajaya-carīu :

This Apabhraṃśa Text of Harideva is critically edited along with a Hindī Translation by PROF. Dr. HIRALAL JAIN. It is an allegorical poem dealing with the defeat of the god of love by Jina. This edition is equipped with a learned

Introduction both in English and Hindi. The Appendices give important passages from Vedic, Pāli and Sanskrit Texts. There are a few explanatory Notes, and there is an Index of difficult words. Apabhraṃśa Grantha No. 5. Super Royal pp. 88 + 90. First edition 1962. Price Rs. 8/-.

Harivamsa Purāṇa :

This is an elaborate Purāṇa by Jinasena (Śaka 705) in stylistic Sanskrit dealing with the Harivamśa in which are included the cycle of legends about Kṛṣṇa and Pāṇḍavas. The text is edited along with the Hindi Translation and Introduction giving information about the author and this work, a detailed Table of contents and Appendices giving the verse Index and an Index of significant words by PT. PANNALAL JAIN. Sanskrit Grantha No. 27. Super Royal pp. 12 + 16 + 812 + 160. First edition 1962. Price Rs. 25/-.

Karmaprakṛti :

A Prākṛit text by Nemicandra dealing with Karma doctrine, its contents being allied with those of Gommatasāra. Edited by PT. HIRALAL JAIN with the Sanskrit commentary of Sumatikīrti and Hindi Tīkā of Paṇḍita Hemarāja, as well as translation into Hindi with Viśeṣārtha. Prākṛit Grantha No. 11. Super Royal pp. 32 + 160. First edition 1964. Price Rs. 8/-.

Upasakadhyayana :

It is a portion of the Yaśastilaka-campū of Somadeva Sūri. It deals with the duties of a householder. Edited with Hindi Translation, Introduction and Appendices, etc. by Pt. KAILASHCHANDAR SHASTRI. Sanskrit Grantha No. 28. Super Royal pp. 116 + 539. First edition 1964. Price Rs. 16/-.

Bhojacaritra :

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavallabha (15th century A. D.). Critically edited by Dr. B. CH. CHHABRA, Jt. Director General of Archaeology in India and S. SANKARNARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names. Sanskrit Grantha No. 29. Super Royal pp. 24 + 192. First edition 1964. Price Rs. 8/-.

Satyasaṁsana-parīkṣā :

A Sanskrit text on Jain logic by Ācārya Vidyānanda critically edited for the first time by Dr. GOKULCHANDRA JAIN. It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy. There is an English compendium of the text, by Dr. NATHMAL TATIA. Sanskrit Grantha No. 30. Super Royal pp. 56 + 34 + 62. First edition 1964. Price Rs. 5/-.

Karakāṇḍa-cariu :

An Apabhraṃśa text dealing with the life story of king Karakāṇḍa, famous as 'Pratyeka Buddha' in Jaina & Buddhist literature. Critically edited with Hindi & English Translations, Introductions, Explanatory Notes and Appendices, etc. by Dr. HIRALAL JAIN. Apabhraṃśa Grantha No. 4. Super Royal pp. 64 + 278. 1964. Price Rs. 15/-.

Sugandha-dasamī-kathā :

This edition contains Sugandha-daśamī-kathā in five languages, viz. Apabhraṁśa, Sanskrit, Gujarātī, Marāṭhī and Hindī, critically edited by Dr. HIRALAL JAIN. Apabhraṁśa Grantha No. 6. Super Royal pp. 20 + 26 + 100 + 16 and 48 Plates. First edition 1966. Price Rs. 11/-.

Kalyāṇakalpadruma :

It is a Stoṭra in twenty five Sanskrit verses. Edited with Hindī Bhāṣya and Prastāvanā, etc. by Pt JUGALKISHORE MUKHTAR. Sanskrit Grantha No. 32. Crown pp. 76. First edition 1967. Price Rs. 1/50.

Jambū sāmi carīu :

This Apabhraṁśa text of Vīra Kavi deals with the life story of Jambū Svāmi a historical Jaina Ācārya who passed in 463 A. D. The text is critically edited by Dr. VIMAL PRAKASH JAIN with Hindī translation, exhaustive introduction and indices, etc. Apabhraṁśa Grantha No. 7. Super Royal pp. 16 + 152 + 402. First edition 1968. Price Rs. 15/-.

Gadyacintāmani :

This is an elaborate prose romance by Vādībha Singh Sūri, written in Kāvya style dealing with the story of Jivāṁdhara and his romantic adventures. The Sanskrit text is edited by Pt. PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation, Prastāvanā and indices, etc. Sanskrit Grantha No. 31. Super Royal pp. 8 + 40 + 258. First edition 1968. Price Rs. 12/-.

Yogasāra Prābhṛta :

A Sanskrit text of Amitagati Ācārya dealing with Jaina Yoga vidyā. Critically edited by Pt. JUGALKISHORE MUKHTAR with Hindī Bhāṣya, Prastāvanā, etc. Sanskrit Grantha No. 33. Super Royal pp. 44 + 236. First edition 1968. Price Rs. 8/-.

Karma-Prakṛti

It is a small Sanskrit text by Abhayacandra Siddhāntacakravartī dealing with the Karma doctrine. Edited with Hindī translation, etc. by Dr. GOKUL CHANDRA JAIN. Sanskrit Grantha No. 34. Crown pp. 92. First edition 1968. Price Rs. 2/-.

Dvisāṁdhāna Mahākāvya

The Dvisāṁdhāna Mahākāvya also called Rāghava-Pāṇḍavīya of Dhanamjaya is perhaps one of the oldest if not the only oldest available Dvisāṁdhāna Kāvya. Edited with Sanskrit commentary of Nemicandra and Hindī translation by Prof. KHUSHALCHANDRA GORAWALA. There is a learned General Editorial by Dr. H. L. Jain and Dr. A. N. Upadhye. Sanskrit Grantha No. 35. Super Royal pp. 32 + 404. First edition 1970. Price Rs. 15/-.

Saddarsanasamuccaya

The earliest known compendium giving authentic details about six Darśanas, i.e. six systems of Indian Philosophy by Ācārya Haribhadra Sūri. Edited with the

commentaries of Guṇaratna Sūri and Somatilaka and with Hindī translation, Appendices, etc. by Pt. Dr. MAHENDRA KUMAR JAINA NYĀYĀCĀRYA. There is a Hindī Introduction by Pt. D. D. MALVANIA. Sanskrit Grantha No. 36. Super Royal pp. 22 + 536. First edition 1970. Price Rs 22/-.

Sākatāyana Vyākaraṇa with Amoghavṛtti.

An authentic Sanskrit Grammar with exhaustive auto-commentary. Edited by PT. ŚAMBHU NATHA TRIPATHI. There is a learned English Introduction by PROF. Dr. R. BIRWE of Germany, and some very useful Indices, etc. Sanskrit Grantha No. 37. Super Royal pp. 14 + 127 + 488. First edition 1971. Price Rs. 32/-.

Jainendra-Siddhānta Kōśa

It is an Encyclopaedic work of Jaina technical terms and a source book of topics drawn from a large number of Jaina Texts. Extracts from the basic sources and their translations in Hindī with necessary references are given. Some Twenty-one thousand subjects are dealt in four vols. Compiled and edited by Śrī Jinendra Varmā. Two volumes are published and as Sanskrit Grantha No. 38 and 40. Super Royal pp. Vol. I pp. 516, Vol. II pp. 642. First edition 1970-71. Price Vol. I Rs. 50/-, Vol. II Rs. 55/-. Advance Price for full set Rs. 150/-.

Dharmasarmabhyudaya

This is a Sanskrit Mahākāvya of very high standard by Mahākavi Haricandra. Edited with Sanskrit commentary, Hindī translation, Introduction and Appendices, etc. by PT. PANNALAL JAIN. Sanskrit Grantha No. 39. Super Royal pp. 30 + 397. First edition 1971. Price Rs. 20/-.

Nayacakra (Dravyasvabhāvaprakāśaka)

This is a Prakrit text by Śrī Māilla Dhavala dealing with the Jaina Theory of Naya covering all the other topic dealt in the Ālāpapaddhati. Edited with Hindī translation and useful indices, etc. by PT. KAILASH CHANDR SHASTRI. In this edition Ālāpapaddhati of Devasena and Nayavivaraṇa from Tatvārthavārtika are also included with Hindī translations. Prakrit Grantha No. 12. Super Royal pp. 50 + 276. First edition 1971. Price Rs. 15/-.

Dakṣiṇa Bhārata Men Jaina Dharma

A study in the South Indian Jainism by PT. KAILASH CHANDRA SHASTRI. Hindī Grantha No. 12. Demy pp. 209. First edition 1967. Price Rs. 7/-.

Sanskrit Kāvya ke Vikāśa men Jaina Kaviyon kā Yogadāna

A study of the contribution of Jaina Poets to the Development of Sanskrit Kāvya literature by Dr. NEMI CHANDRA SHASTRI. Hindī Grantha No. 14. Demy pp. 32 + 684. First edition 1971. Price Rs. 30/-.

For Copies Please write to :

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA,
3620/21, Netaji Subhash Marg, Dariyaganj, Delhi-6

